



अष्टाध्यायी-प्रकाशिका

श्रीमत्पद-वाक्य-प्रमाणपारावारपारीण-आचार्य-श्रीब्रह्मदत्त
जिज्ञासु-महोदयानामन्तेवासिना व्याकरण-निरुक्ता-
चार्येण शास्त्रिणा वी० ए० इन्द्रप्रस्थीय-
पाणिनि - महाविद्यालयस्याचार्येण
देवप्रकाशपातञ्जलेन

व्याख्याता

सा च

“संस्कृत-व्याकरणशास्त्र का इतिहास”-आदि-नैकविध-
प्राचीन-प्रवन्धानां सम्पादयित्रा
श्रीषुधिष्ठिरमीमांसकेन
परिष्कृता

भूमिका-लेखकः

प्रो० डा० रघुवीरः एम० ए०, पी० एच० डी०,
डि० लिट् एट् फिल्

प्रकाशको वितरकश्च
देवप्रकाशपातञ्जल शास्त्री बी०ए०
अध्यक्ष पाणिनिग्रन्थसंग्रहालय
१, जी० जवाहरनगर, देहली

सर्वेऽविकारा प्रकाशकेन सुरक्षिता

मूल्यम् शा॥)

मुद्रक—

जगदेवासिह शास्त्री 'सिद्धान्ती'

सम्राट् प्रेस

पद्माडी बीरज, देहली

समर्पणम्

श्रोमिथ्रान्वय-मञ्जुमौवितकमणि साहित्य-सेवा-व्रती
नानाशास्त्र-विचार-चारु-चतुरो गीर्वाण-वाङ्-नन्दन ।
धीरोदात्त-मना गुणैक-रसिकः सञ्छासनाधिष्ठित
सौज्य पाणिनिपद्धते प्रणयवान् श्रीसत्यदेवो बुध ।
बुद्धिसागर-सम्भूत—निष्कलङ्क-सुधाशवे ।
तस्मै श्री सत्यदेवाय ग्रन्थ एष समर्प्यते ॥

समर्पणम्

श्रीमतां विविधानवद्यविद्योतितान्त करणानां

सुहृद्वरथीसत्यदेवमिश्राणां

कर-कमलयो

अष्टाध्यायी-प्रकाशिकेयं

सादरं समर्पते

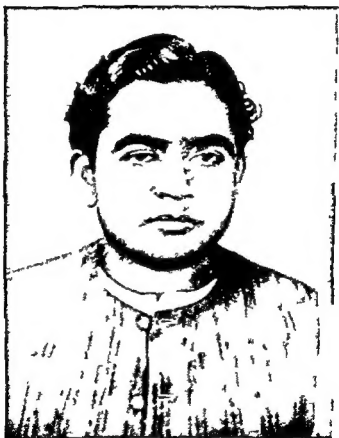
विजयादशमी

२०१२

}

तदीक्षणमुग्धेन—

श्रीदेवप्रकाशपातञ्जलेन




श्रीमान पण्डितसत्यदेवमिध

भूमिका

श्री देवप्रकाश पातञ्जल शास्त्री की नवीन कृति अष्टाध्यायी-प्रकाशिका मैंने देखी । इसमें १३, १४ सौ अष्टाध्यायी के सूत्र और उसकी सुन्दर व्याख्या है । अष्टाध्यायी का क्रम होने से विद्यार्थियों को वृत्ति रटने की आवश्यकता न पड़ेगी । उदाहरण की सिद्धियों को इस प्रकार से समझाया गया है कि विद्यार्थी अत्यन्त सुगमता से इसको समझ सकते हैं ।

सूत्रों को समझने में हिन्दी में अनुवाद तथा उसकी व्याख्या अत्यन्त सहायक है । सूत्रों के पहले स्थान-स्थान पर प्रकरण का भी निर्देश है । सूत्रों की व्याख्या में महाभाष्य न्यासादि से उद्धरण लिये गये हैं । ग्रन्थ सुन्दर है । इस ग्रन्थ का वही क्षेत्र है जो लघुकौमुदी का है । मुझे आशा है, पाठक इससे लाभ उठावेंगे ।

५. १०. २२



प्रो० डा० रघुवीर एम.ए., पी. एच. डी.

(लंदन) डी० लिट० एट० फिल०

[सदस्य राज्य समा, नयी देहली;

डाईरेक्टर, इंटरनेशनल एकेडेमी आफ

इण्डियन कल्चर, नागपुर]

• विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	अधिकारमूत्र) ।
पृष्ठभूमि	१	सप्तम व्याख्यान ६४
प्रस्तावना	१०	{ प्रकरण तथा अनुवृत्ति, ङित्प्रकरण, इत्सजाप्रकरण, भारमनेपद-परस्मैपद-प्रकरण, समास- प्रकरण, समास के भवान्तर भेद समास की सिद्धि, विभक्ति-प्रकरण) ।
व्याख्यानमाला		अष्टम व्याख्यान ७७
प्रथम व्याख्यान २०		(विकरण प्रकरण, चारो प्रकिया, वच्य परिवर्तन के नियम, धातुओं के ६ प्रकार 'ङित् लकार, टित् लकार', ङित् लकार विकरण, तिङन्त के सिद्धि-प्रकार)
(हिन्दी के शब्दों पर विचार, कारक और विभक्तियाँ, विभक्तियों के चिह्न) ।		नवम व्याख्यान ८४
द्वितीय व्याख्यान २६		कृत्यप्रत्ययप्रकरणम्
(सङ्कृत भाषा में कारक तथा विभक्तियों का स्वरूप, लिङ्ग पर विचार, अकारान्त पुलिङ्ग संज्ञा शब्द 'राम', प्रतिनिधि प्रातिपदिकों के रूप)		(ङृत्, कृत्, कृत् तथा कृत्य सज्ञा का फल, उपपद, उपपद की पहचान, सूत्रार्थ की शैली, कृदन्त की सिद्धि, तिङन्त सिद्धि में विशेषता, सादशप्रकरण)
तृतीय व्याख्यान ३६		दशम व्याख्यान ८७
(क्रिया का विभलेपण, भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान काल में धातुओं के रूप) ।		(स्त्रीप्रत्यय की विशेषता, स्त्री प्रत्यय की सिद्धि तद्धितप्रत्ययप्रकरणम् (तद्धित शब्द का अर्थ, तद्धित- प्रकरण के सूत्रों की अर्थशैली, तद्धित प्रत्यय की सिद्धि, समासान्तप्रकरणम्)
चतुर्थ व्याख्यान ४२		एकादश व्याख्यान ९२
(प्रत्यय, शब्दों के तीन प्रकार)		(द्विवचन का अर्थ, द्विवचन का ज्ञान, लिट् लकार में द्विवचन) संहितान्तर्यप्रकरणम्
पञ्चम व्याख्यान ४४		
(सूत्रों के अङ्ग पदच्छेद, विभक्ति समास, अनुवृत्ति, अर्थ, उदाहरण, सिद्धि, सूत्रों के अन्वय की शैली)		
षष्ठ व्याख्यान ५३		
(सूत्रों के प्रकार—संज्ञा, परि- भाषा, विधि, निषेध, नियम अतिदेश, अधिकार, सज्ञामूत्र, परिभाषामूत्र, विधिगूत्र, निषेधगूत्र, नियमगूत्र, अतिदेश गूत्र, (कार्पातिदेश तथा रूपातिदेश)		

(एकादेश, परस्मै एकादेश, पूर्वभूय एकादेश)	विकरणप्रकरणम्	१३२
वृद्धिप्रकरणम् ६७	कृतप्रत्ययप्रकरणम्	१५२
(सिचि वृद्धि परस्मैपदेषु, लुङ् लकार, इटप्रकरणम्, ध्रम्यासप्रकरणम्)	कृतप्रत्ययप्रकरणम्	१५३
	लकारार्थनिर्णयप्रकरणम्	१६८
	नादेशप्रकरणम्	२०८
द्वादश व्याख्यानम्	चतुर्थोऽध्याय २२३-२६७	
वर्णोच्चारणशिक्षा	स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम्	२२५
सकेत-मूर्चा १००	तद्धितप्रत्ययप्रकरणम्	२३७
	अपयाधिकार	२४०
प्रथमोऽध्याय १-८३	रक्तान्तप्रकरणम्	२४७
सज्ञापरिभाषाप्रकरणम्	चातुरार्थिकप्रकरणम्	२५२
स्यानिवृत्तिप्रकरणम्	शैषिकप्रकरणम्	२५४
संज्ञापरिभाषाप्रकरणम्	[विकारार्थप्रत्यय, ठगधि- कार, यदाधिकार., २६२-२७७	
द्विकृतप्रकरणम्	पञ्चमोऽध्याय २६७-३०२	
सज्ञापरिभाषाप्रकरणम्	ठगधिकार, तद्धितप्रत्यया, पूरणार्थप्रत्यया, मत्वर्थि- प्रत्यया.]	२७७
इत्सज्ञाप्रकरणम्	प्राग्विज्ञाप्रत्ययप्रकरणम्	२७८
आत्मनपदप्रकरणम्	स्थाधिकप्रत्यया.	२८४
परस्मैपदप्रकरणम्	समासान्तप्रकरणम्	२८६
नद्यादिसज्ञाप्रकरणम्	षष्ठोऽध्याय २०३-३७५	
कारकप्रकरणम्	द्विवचनप्रकरणम्	३०३
निपातसज्ञाप्रकरणम्	सप्रसारणप्रकरणम्	३०६
सज्ञाप्रकरणम्	धात्वादरादेशप्रकरणम्	३११
द्वितीयोऽध्यायः ८७-१२०	सहिताप्रकरणम्	३१४
समासप्रकरणम्	स्वरप्रकरणम्	३२५
विभक्तिप्रकरणम्	भलुक्प्रकरणम्	३२८
एकवद्भावप्रकरणम्	पुं वद्भावप्रकरणम्	३३०
सुबन्तुप्रकरणम्	मुमागम प्रकरणम्	३३५
तृतीयोऽध्यायः १२६-२१८		
प्रत्ययाधिकारप्रकरणम्		
सनादिप्रकरणम्		

(भङ्गाधिकार	३४२-४७२	असिद्धप्रकरणम्	४७४
प्रत्यये विकारप्रकरणम्	३४२	विसर्गसत्त्वप्रकरणम्	४८४
भसजाधिकारप्रकरणम्	३६७	मूढन्यादेशप्रकरणम्	४८७
सप्तमोऽध्याय	३७६-४७२	एत्वप्रकरणम्	५००
प्रत्ययस्य विकारप्रकरणम्	३७६	सहिताकायप्रकरणम्	५०३
नुमागमप्रकरणम्	३८८	नामप्रकरणम्	५१०-५१३
प्रत्यये विकारप्रकरणम्	३८६	आख्यातप्रकरणम्	५१४-५४६
द्वट्प्रकरणम्	४००	म्वादय	५१४
प्रत्यय विकारप्रकरणम्	४१६	अदादय	५२६
वृद्धिप्रकरणम्	४२८	अहोत्यादय	५३४
प्रत्यय विकारप्रकरणम्	४३३	दिवादय	५३७
गुणप्रकरणम्	४४०	स्वादय	५४०
प्रत्यये विकारप्रकरणम्	४४६	तुदादय	५४५
अभ्यासप्रकरणम्	४६२	घादादय	५४४
अष्टमोऽध्याय	४७३ ५०६	तनादय	५४५
पदाधिकारप्रकरणम्	४७३	कयादय	५४७
		चुरादय	५४६
		सशोचन पत्रम्	५४६ ५५२



पृष्ठभूमि

पाणिनीय अष्टाध्यायी और उसका उद्धार

संस्कृत वाङ्मय में व्याकरण शास्त्र अपना प्रमुख स्थान रखता है। इसका वाङ्मय अति विशाल है। इस समय विभिन्न आचार्यों के लिखे लगभग २० व्याकरण उपलब्ध हैं। उनके ऊपर टीका टिप्पणी के रूप में वे लिखे गए शतशः ग्रन्थ विद्यमान हैं। इन भद्र उपलब्ध व्याकरणां में पाणिनीय व्याकरण ही मय से श्रेष्ठ है इसमें किसी भी युद्धिमान् को विप्रतिपत्ति नहीं है।

आचार्य पाणिनि से पूर्व भी अनेक व्याकरण शास्त्र प्राचीन ऋषि मुनि तथा आचार्यों ने लिखे थे उन में दत्त का नाम स्वयं पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में लिखे हैं। पाणिनि ने प्राचीन कोई भी व्याकरण शास्त्र इस समय उपलब्ध नहीं। इसलिए उनके विषय में कुछ भी कहना कठिन है। हमने अपने 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास' नामक ग्रन्थ में पाणिनि से पूर्ववर्ती २३ आचार्यों का और उसमें उत्तरवर्ती १५ व्याकरणां का पूरा परिचय दिया है पाठक इस विषय के लिए उक्त ग्रन्थ का अवलोकन करें।

पाणिनि का कालः—पाणिनीय व्याकरण की रचना विद्वान् से २८०० वर्ष पूर्व हुई थी। उन समय संस्कृत भाषा शिष्ट-वर्ग की बाल बाल की भाषा थी। उन काल में भाषा में उदात्तादि स्वरों का यथा स्थान व्यवहार होता था। इसलिए पाणिनि ने लोक और घेद दोनों में व्यवहृत उदात्तादि स्वरों का प्रतिपादन अत्यन्त विस्तार में किया है। यदि पाणिनि के काल में उदात्तादि स्वरों का यथायोग्य उच्चारण न होता तो वह अपने ग्रन्थ में इनको स्थान न देता और उसका ग्रन्थ एक पनुर्पाश छोटा हो सकता था।

सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय को ईसा में लगभग १४०० वर्ष पूर्व के अल्प काल में समेटने वाले पारिचाय्य विद्वान् पाणिनि का काल ईसा

से ३ शताब्दी पूर्व से ६ शताब्दी पूर्व तक विभिन्न समय में स्वीकार करते हैं। हमने अपने “संस्कृत व्याकरण का इतिहास” ग्रन्थ में पारचा-त्य मत की सम्यक् आलोचना करके अनेक प्रमाणों के आधार पर पाणिनि का काल विक्रम से २८०० वर्ष पूर्व स्थापित किया है। पाणिनि, उसकी अष्टाध्यायी तथा उस पर वातिक, महाभाष्य तथा धृति आदि लिखने वाले लगभग १०० ग्रन्थकारों का वर्णन अपने उक्त ग्रन्थ में कर चुके हैं इसलिए इस विषय में यहाँ लिखना उचित नहीं समझते। पाठकों को चाहिये कि इस विषय के यथार्थ ज्ञान के लिए हमारा उक्त ग्रन्थ देखें।

पाणिनीय व्याकरण के पठन पाठन में विपर्यास

विक्रम १२ वीं शताब्दी पर्यन्त पाणिनीय व्याकरण का पठन पाठन उसे अपने अष्टाध्यायी के क्रमानुसार ही होता रहा। इतना ही नहीं, १२ शताब्दी से पूर्व संस्कृत व्याकरण पर जितने ग्रन्थ रचे गए उनकी रचना पाणिनीय अष्टाध्यायी के प्रकरणानुसार ही हुई। विक्रम की १२ वीं शताब्दी में सरलता की दृष्टि से प्रयोगसिद्धि-क्रमानुसारी अनेक छोटे-छोटे व्याकरणों की रचना होने लगी। उनके प्रचार के कारण पाणिनीय व्याकरण के पठन पाठन में शिथिलता आने लगी। इसलिए उस समय के पाणिनीय व्याकरणों ने उस शिथिलता को दूर करने तथा नवीन व्याकरणों के प्रचार को रोकने के लिए रूपावतार रूपमाला आदि आदि ग्रन्थों की रचना की, जिनमें प्रयोगसिद्धि के अनुसार पाणिनीय सूत्रों का संकलन किया। इस प्रयास से पाणिनीय ऋणकरण के तात्कालिक हास को रोकने में कुछ सफलता मिली, और उस से प्रयोग सिद्धि-अनुसारी सूत्र संकलन की प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। इस कारण रामचन्द्राचार्य प्रक्रिया कौमुदी नामक बृहद् ग्रन्थ रचा जिस में अष्टाध्यायी के तीन सहस्र से ऊपर सूत्र संकलित किए गए। तदनन्तर भट्टोजि दीक्षित ने उत्तर भारत में और नारायण भट्ट ने दक्षिण भारत में एक काल में ही ऐसे ग्रन्थों का निर्माण किया जिनमें अष्टाध्यायी के समस्त सूत्रों का प्रयोगसिद्धि क्रम के अनुसार व्यवस्थित सन्निवेश कर दिया। व्याकरण शास्त्र का पठन पाठन दक्षिण भारत की अपेक्षा उत्तर भारत में अधिक होता रहा और अब भी होता है इस कारण भट्टोजि दीक्षित का मिद्धान्त कौमुदी ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध हो गया और नारायण

भट्ट का प्रक्रिया-मर्मव्य विशेष ग्राहि को प्राप्त न हो सता। वस्तुतः व्याकरण ज्ञान में नारायण भट्ट भट्टोजि दीक्षित ने कहीं बढ़ा चढ़ा था यह दोनों के ग्रन्थों का अनुशीलन करने में स्पष्ट मान होता है।

इस प्रकार प्रक्रियानुमारी सूत्र संकलन में वृद्धि होते-होते जय पूर्णता को प्राप्त हो गया तब उसका दुरुक्ता की प्रतीति होने लगी। अतः उत्तर काल में वरदराज आदि ने लघु कौमुदी और मध्य कौमुदी की रचना की। इस प्रकार लगभग ४०० वर्ष में पाणिनीय व्याकरण का पठन पाठन पाणिनाय सूत्र क्रम को छोड़कर प्रक्रियानुसार संकलित ग्रन्थों के आधार पर हो रहा है।

प्रक्रियानुमारी ग्रन्थों से हानि

प्रक्रियानुमारी ग्रन्थों के द्वारा पाणिनीय व्याकरण के अध्ययन में छात्रों की कठिनाई बहुत बढ़ गई। पाणिनि ने सूत्र के संक्षेप के लिए जो अनुवृत्ति का प्रसार अपने ग्रन्थ में यहाँ था और जिसके द्वारा उत्तरोत्तर सूत्रार्थ स्पष्ट होना जाता था। अष्टाध्यायी सूत्रों का प्रक्रियानुसार संकलन में अनुवृत्ति का बोध मर्मव्या अमग्नय हो गया। अनुवृत्ति का ज्ञान न होने में सूत्रार्थ का बोध होना अत्यन्त कठिन हो गया। अतः छात्रों को सूत्र के साथ-साथ सूत्र में ५ : ६ गुनी वृत्ति की भी कष्टाब्ध करना पड़ता है। इतना महान् परिश्रम करने पर भी अष्टाध्यायी सूत्रपाठ क्रम में सम्मग्न करने वाला पूर्वापर विप्रतिषेध तथा पूर्वानिष्ठम् का प्रसार उनके बुद्धि में धार हो गया।

प्रक्रियानुमारी ग्रन्थों द्वारा पाणिनीय व्याकरण के अध्ययन में छात्रों को किन्ती कठिनाई का सामना करना पड़ता है और अष्टाध्यायी के व्याभाविक क्रमानुसार किन्ती सरलता में व्याकरण ज्ञान का बोध हो जाता है, इसकी विवेचना हमने अपने संकलित व्याकरण ज्ञान का इतिहास' ग्रन्थ के १६ वें अध्याय में विस्तार में की है। इन उमदा यों पुनः विष्ट पेश करना उचित नहीं समझते।

अष्टाध्यायी क्रम का पुनरुद्धार

विगत ३ : ४ गताब्दों में पाणिनीय व्याकरण का अध्वन निदान कीनुदी आदि प्रक्रियानुसार संकलित ग्रन्थों के अनुसार प्र-

लित हो चुका था। और अष्टाध्यायी सूत्र पाठ क्रमानुसारी पठन पाठन सर्वथा लुप्त हो चुका था। ऐसे काल में विक्रम स० १६१० के लगभग पाणिनीय व्याकरण के अप्रतिम विद्वान् मथुरा निवासी श्री दण्डी स्वामी विरजानन्द जी का अष्टाध्यायी सूत्र क्रम से व्याकरण पढ़ने की विशेषता और प्रक्रियानुसारी ग्रन्थों से होने वाली हानि की उपज्ञा हुई। उन्होंने ३४ शताब्दियों से विलुप्त अष्टाध्यायी क्रम का पुनरुद्धार किया और घोषणा की—“अष्टाध्यायीमहाभाष्ये व्याकरणस्य द्वे पुस्तके” अर्थात्—व्याकरण के अष्टाध्यायी और महाभाष्य ये दो ही ग्रन्थ हैं।

श्री दण्डी विरजानन्द ने स० १६१० से अपनी पाठशाला में अष्टाध्यायी और महाभाष्य का पठन पाठन प्रारम्भ किया। इस समय श्री स्वामी विरजानन्द जी की आयु लगभग ७० वर्ष की थी। सन् १६१७ में श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती मथुरा पहुँचे और श्री दण्डी स्वामी विरजानन्द जी से महाभाष्य के द्वारा पाणिनीय व्याकरण का अभूतपूर्व पाण्डित्य प्राप्त किया। तत्पश्चात् उन्होंने न केवल अष्टाध्यायी और महाभाष्य के पठन पाठन पर विशेष बल ही दिया अपितु सिद्धान्त कौमुदी आदि के पठन पाठन की हानियाँ भी दर्शा कर उसका घोर विरोध किया।

ऋषि दयानन्द सरस्वती ने अपने सत्यार्थ प्रकाश ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका और सस्कार विधि में पठन पाठन का विस्तार से प्रतिपादन किया।

ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों को पढ़ कर आर्य समाज के प्रारम्भिक मनीषियों ने गुरुकुलों में अष्टाध्यायी के पठन पाठन का उपक्रम किया, परन्तु अष्टाध्यायी में निष्ठावान् अध्यापकों के अभाव में वह क्रम उचित रूत से प्रचलित न हो सका। पौराणिक अध्यापक स्पष्टतया कहने लगे कि अष्टाध्यायी से पण्डित नहीं बन सकता। इसका प्रभाव शनैः शनैः आर्य व्यक्तियों पर भी पड़ने लगा। और अनेक व्यक्ति तथा गुरुकुल अष्टाध्यायी से विमुख होने लगे।

अष्टाध्यायी क्रम के पुनः प्रवर्तक

ऐसे भीषण समय में ऋषि दयानन्द सरस्वती के वचनों में परम

निष्ठावान् दो व्यक्तियों ने अष्टाध्यायी क्रम के पुनः प्रवर्तन का बीड़ा उठाया। इनके नाम हैं “श्री पूज्य प० गङ्गार देव जी” और “श्री पूज्य प० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु।” त्रैलोक्य में इन दोनों का परम्पर महयोग हो गया और उन्होंने मिलकर स्वर्गाय स्वामी सर्वज्ञानन्द जी महाराज के साधुआश्रम (अलीगढ़) में सन् १९७७ में त्रिजानन्द आश्रम की (कुछ समय परचान यह आश्रम साधु आश्रम अलीगढ़ में हल्कर अमृत-सर काशी लाहौर आदि स्थानों में प्रतिष्ठित होता रहा) स्थापना की। उक्त दोनों महानुभावों के अथक परश्रम और परम श्रद्धा में न केवल अष्टाध्यायी के वास्तविक पठन पाठन क्रम का पट्टिनार ही हुआ अपितु ऋषि दयानन्द सरस्वती के लेख की “अष्टाध्यायी और महामाध्य के द्वारा ही व्याकरण का पूर्ण विद्वान् हो सकता है” कि पूर्ण सभ्यता प्रगट हो गई। यद्यपि सन् १९८५ में निम्ना परिस्थितियों के कारण दोनों ग्रन्थ प्रथक् हो गए, तथापि अष्टाध्यायी क्रम पुनः प्रतिष्ठित और उसे परिष्कृत करने में दोनों का परस्पर हाथ रहा यही करना ठीक होगा।

यद्यपि आर्य समाज के क्षेत्र में अन्य अनेक महानुभावों ने अष्टाध्यायी के पठन पाठन क्रम के प्रचलित करने का प्रयत्न किया, परन्तु जैसी पूर्ण सफलता इन दोनों को प्राप्त हुई वैसी अन्यो को उपलब्ध न हो सकी। अष्टाध्यायी के पठन पाठन वास्तविक शैली इन दोनों महानुभावों की विषय परम्परा में ही प्रतिष्ठित है, यह करना अशुक्ति नहीं, नर्तक सत्य है।

अष्टाध्यायी और महामाध्य के पठन पाठन में सफलता प्राप्त करने के परचान श्री पूज्य प० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु ने निम्न और दर्शन शास्त्रों के ऋषि दयानन्द सरस्वती के दृष्टि कोण में अध्ययन अध्यापन पर परिश्रम किया और उन्हें इन विषय में भी पराजित सफलता मिली। सन् १९४७ में देश विभाजन के काल में लाहौर में श्रान्त रहना पड़ा। भारी परिस्थितियाँ बदल गईं, पुनरपि आप अथ श्री यथा साधन अपना साधना में पराजित लगे हुए हैं और उन्नी का यह फल है कि अष्टाध्यायी के सफल पठन पाठन क्रम को देख कर काशी के अनेक पौराणिक विद्वान् भी अष्टाध्यायी क्रम की सरलता को स्वीकार कर चुके हैं। उन्नी के मन्त्रों परिश्रम में काशी राजकीय मन्त्र महाविद्यालय की परोक्ष-ज्ञाओं में अष्टाध्यायी महामाध्य क्रमानुसारी व्याकरण-अध्यायन की स्थान

प्राप्त हो चुका है और वेद सम्बन्धी परीक्षाओं में भी नैरुक्त प्रक्रिया का सन्निवेश हो चुका है।

श्री पूज्य शंकर देव जी भी आज तक अष्टाध्यायी महाभाष्य के पठन पाठन में संलग्न हैं और निष्काम भावना से ऋषि दयानन्द के आदेश का पालन कर रहे हैं।

आर्य समाज के विद्या क्षेत्र में और विशेष कर ऋषि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पठन पाठन विधि को वास्तविक रूप में सफल करने में इन महानुभावों ने जो मुक्त सेवा की है, वह अपनी उपमा नहीं रखता। सत्य है, सफलता तभी प्राप्त होती है जब मनुष्य निष्काम भाव से सतत् श्रद्धापूर्वक किसी कार्य में लगा रहे। इसलिए वेद ने कहा है—“श्रद्धया सत्यमाप्यते” (यजुः)।

किञ्चिन्निवेदनम्

समस्त भारतीय प्राचीन वाङ्मय संस्कृत भाषा में निबद्ध है। उस वाङ्मय में सभी विषयों पर महान् ग्रन्थ-राशि विद्यमान है। प्रत्येक विषय का जितना वैज्ञानिक वर्णन प्राचीन आर्य ग्रन्थों में उपलब्ध होता है उतना संसार की किसी भी भाषा के ग्रन्थों में नहीं मिलता। संसार की किसी भी भाषा का वाङ्मय भारतीय आर्य वाङ्मय जितना प्राचीन और प्रामाणिक नहीं है। उस में न केवल भारत का, अपितु संसार के अधिकांश भाग का अति प्राचीन इतिहास सुरक्षित है।

भारतीय प्राचीन संस्कृति और सत्य इतिहास का ज्ञान करना प्रत्येक भारतीय का आवश्यक कर्तव्य है। इस के लिए जन तक मूल संस्कृत ग्रन्थ न पढ़े जाएं तो तब तक उन ग्रन्थों का वास्तविक अभिप्राय कदापि समझ में नहीं आ सकता। जो व्यक्ति अंग्रेजी अनुवादों को पढ़ कर भारतीय संस्कृति और इतिहास को जानने और जनाने का प्रयत्न करते हैं वे स्वयं भी धोखे में रहते हैं और दूसरों को भी धोखा देते हैं। इसलिए प्रत्येक भारतीय को चाहिए कि वह न्यूनातिन्यून इतनी संस्कृत अवश्य सीखे जिससे रामायण महाभारत गीता मनु-स्मृति आदि ग्रन्थों को समझने में समर्थ हो सके।

संस्कृत भाषा के अध्ययन का मार्ग

सम्प्रति संस्कृत के दो मार्ग विशेष रूप से आ रहे हैं एक है

कतिपय शताब्दियों में चल रही संस्कृतों की परिपाटी, और दूसरी स्कूल कालेजों के अंग्रेजी माध्यम द्वारा संस्कृत में पढ़े हुए श्री० ए०, एम० ए०, पी एच डी०, डॉलिट् आदिकों की। पुरानी परपाटी के अनुसार काशी आदि स्थानों में जिस क्रम से संस्कृत पढ़ाई जाती है उसके अनुसार बारह वर्ष पढ़ कर भी छात्र को व्याकरण का बोध नहीं होता अन्य विषयों का तो कहना ही क्या। दूसरे मार्ग में न केवल व्याकरण की उपेक्षा की जाती है अपितु उसके प्रति घृणा उपद्रव करके संस्कृत ग्रन्थों के पाठ मात्र द्वारा संस्कृत सिखाने का प्रयत्न किया जाता है। इसका फल यह होता है कि एम० ए और पी० एच डी० आदि उच्चार्ण करने पर भी संस्कृत भाषा के साधारण सन्धि के नियमों का भी बोध नहीं होता।

इन दोनों परिपाटियों में उभयत्र समान रूप से एक दोष और है और वह है बड़ी आयु के छात्रों को बिना समझे रटने के लिए प्रेरित करना। इसका यह फल होता है कि स्कूल और कालेजों में लड़के संस्कृत लेने से घबराते हैं।

उचित मार्ग

संस्कृत सीखने का उचित मार्ग यह है कि संस्कृत पढ़ाते हुए साथ साथ उसके व्याकरण के नियमों का भी शनैः शनैः यथा शक्ति उचित बोध कराया जाए। इसी लिए महामुनि पतञ्जलि ने "व्याकरण" का लक्षण करने हुए लिखा है—

लक्षणलक्षणं व्याकरणम्

अर्थान्—लक्षण और लक्षण=उदाहरण और नियम दोनों के समुदाय का नाम व्याकरण है।

लक्षणों का लक्षण=प्रयोगों के साथ समन्वय करके ज्ञान न कराया जायगा तब तक न व्याकरण का बोध होगा और न भाषा न। इसी दृष्टि में भगवान् पाणिनि ने भी अष्टाध्यायी रूपी लक्षण ग्रन्थ के प्रयत्न में साथ साथ लक्षण रूप जाम्बवती विजय नानक महासाह्य की रचना भी की थी।^{१६}

व्याकरण के नियमों के परिज्ञान के विषय में क्रमशः ग्लूता ने^{१७} पाणिनि के काल और उसके रचे अष्टाध्यायी, धातुशास्त्र, गणशास्त्र, जाम्बवती विजय महासाह्य आदि के विषय में हम अपने 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, नामक ग्रन्थ में विस्तार में लिख चुके हैं।

सूक्ष्मता की ओर बढ़ना चाहिए। जब विद्यार्थी को न्यूनातिन्यून पञ्चतन्त्र समझने की योग्यता हो जाए तब उसे व्याकरण के सूक्ष्म नियम बताए जाएं, जिनके द्वारा संस्कृत सीखने वाले थोड़े ग्रन्थ से अधिक से अधिक प्रयोगों की ऊँहा करने में स्वयं सन्तुष्ट हो सके।

इस कार्य के लिए पुरानी परिपाटी से पढ़ाने वाले लघु कौमुदी का आश्रय लेते हैं, परन्तु वह छोटा सा ही ग्रन्थ इतना दोषपूर्ण है कि विद्यार्थी रटते रटते दो वर्ष में भी उसका पार नहीं पाते। अतः वह ग्रन्थ सुकुमार मति वालका तथा प्रौढ़ व्यक्तियों दोनों के लिए न केवल अहितकर ही है अपितु संस्कृत भाषा के प्रसार में महती बाधा स्वरूप है। उसकी अपेक्षा तो साहित्य ग्रन्थों के द्वारा संस्कृत का बोध प्राप्त कर लेना श्रेयस्कर है।

सरलतम मार्ग

संस्कृत भाषा सिखाने के लिए अध्यापक के लिए आवश्यक है कि वह पञ्चतन्त्र आदि ग्रन्थों को पढ़ाता हुआ साथ साथ व्याकरण के उन नियमों का भी बोध करावे जिनके द्वारा साधारण संस्कृत जानने वाला सरलता पूर्वक अधिक से अधिक शब्दराशि को स्थापित कर सके। व्याकरण के वे नियम चाहे अपने शब्दों में बताए जाएँ या किसी व्याकरण ग्रन्थ के आश्रय से। भूमिति उपलब्ध समस्त व्याकरणों का अनुशीलन करके हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि व्याकरण के नियमों का बोध कराने के लिए पाणिनीय व्याकरण सर्वश्रेष्ठ है। परन्तु उसका बोध पाणिनीय क्रम अर्थात् अष्टाध्यायी के अपने क्रम के अनुसार ही कराया जाए तभी पढ़ने वाले छात्र के लिए हितकर होता है।

पाणिनि ने संस्कृत भाषा की अनन्त शब्दराशि का बोध केवल चार सहस्र सूत्रों द्वारा संपन्न करा दिया। इन सूत्रों द्वारा वैदिक तथा लौकिक सभी शब्दों का बोध हो जाता है। पाणिनि की शैली इतनी सरल सुबोध और वैज्ञानिक है कि उसके द्वारा साधारण संस्कृत जानने वाला व्यक्ति भी अल्प समय में इसे स्थापित करके शब्द शास्त्र का पारङ्गत हो जाता है।

अष्टाध्यायी का दो प्रकार का पठन पाठन

जो व्यक्ति संस्कृत भाषा का प्रकट पण्डित बनना चाहता है विशेष कर वैदिक वाङ्मय का उसके लिए सम्पूर्ण अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य का अध्ययन करना परम आवश्यक है। यद्यपि साहित्य ग्रन्थों के

अध्ययन के लिए अष्टाध्यायी से भिन्न अन्य व्याकरण ग्रन्थों का भी आश्रय लिया जा सकता है, परन्तु वैदिक वाङ्मय का ज्ञान बिना अष्टाध्यायी के कदापि सम्भव नहीं है। वैदिक वाङ्मय में उदात्तादि स्वरों का ज्ञान हुए बिना उसका सूक्ष्म तात्पर्य प्रकट नहीं होता। ऋग्वेद स्वर शास्त्र का सूक्ष्म ज्ञान एक मात्र अष्टाध्यायी में निहित है। प्रातिशाख्य आदि भी स्वर की उतनी सूक्ष्म विवेचना नहीं करते जिमसे अर्थ ज्ञान में सहायता मिल सके।

सम्पूर्ण अष्टाध्यायी और महाभाष्य का सम्यक् अध्ययन अष्टाध्यायी के क्रम से लगभग ४ वर्ष में यही मरलता पूर्वक हो सकता है। अष्टाध्यायी के क्रम से ४ वर्ष में राजशास्त्र का जितना ज्ञान हो जाता है उतना लघुर्जीमुनी, मिद्धान्तर्जीमुनी और शंकर आदि ग्रन्थों के द्वारा १२ वर्ष में भी नहीं होता। इसलिए जो व्यक्ति सत्सङ्ग भाषा की अनन्त राजशक्ति को स्थायित्व करना चाहता है और विशेष करके वैदिक वाङ्मय के वास्तविक अभिप्राय तक पहुँचना चाहता है उसे पाणिनीय व्याकरण का ही अध्ययन करना चाहिए और वह भी भगवान् पाणिनि द्वारा रचित अष्टाध्यायी सूत्रपाठ के क्रम में ही। तभी वह अपने इष्ट लक्ष्य तक पहुँच सकता है, अन्यथा असम्भव है।

अष्टाध्यायी का मञ्जिप्त मस्करण

आज कल के यह युगमाय युग में और विशेष कर उन व्यक्तियों के लिए जो आज्ञाविमर्श के लिए दिन रात सत्रर्पण करते हुए सत्सङ्ग मीलने के अभिलाषी हैं उनके लिए सम्पूर्ण अष्टाध्यायी का पठन-पाठन क्रम युक्त नहीं है। उनके लिए अष्टाध्यायी का एक मञ्जिप्त मस्करण तैयार करना चाहिये। व्याकरण के प्रधान नियमों का बोध कराने के लिए सूत्र पाठ क्रम में ही सूत्रों का मञ्जलन करना चाहिए और इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि सूत्रार्थ समझने में प्रयत्न मग्यर अनुवृत्ति का नाश न हो और सभी मुख्य-मुख्य विषय तथा सूत्र मञ्जलित हो जायें।

ॐ अनधीत व्याकरण शास्त्र अवलोचन साहित्य ज्ञान पण्डितमन्य अनेक व्यक्ति चेदार्थ में स्वर की न केवल उपेक्षा करते हैं अपितु उसे चेदार्थ में जानक मानते हैं। ऐसे व्यक्तियों को पहले स्वर शास्त्र का सम्यक् ज्ञान करके उनकी आलोचना करनी चाहिए। स्वर ज्ञान चेदार्थ में किना महायुक्त है इसके लिए देखो हमारा 'वैदिकशास्त्र' नामक लेख।

अष्टाध्यायी के संचिप्त संस्करण का प्रयास

मैंने सन् १९६० में काशी में दर्शन शास्त्र का अध्ययन करते हुए अपने मित्र स्वर्गीय प० मुरारीलाल जी वैद्य को व्याकरण का बोध कराने के लिए अष्टाध्यायी के लगभग ७०० सूत्रों का सकलन किया था और उन्हें उसी के आधार पर संस्कृत का बोध भी कराने की चेष्टा की थी। उसमें सफलता मिलने से मेरी उसी समय से यह धारणा हो गई थी कि अष्टाध्यायी का भी एक संचिप्त संस्करण सरल व्याख्या सहित प्रकाशित करना चाहिए, जिससे उन व्यक्तियों को भी संस्कृत का सरलता से बोध हो जाए जो सम्पूर्ण व्याकरण पढ़ना नहीं चाहते या जिनके पास इतना समय नहीं है। परन्तु मैं चाहता हुआ भी अनेक बाधाओं के कारण अपने विचार को कार्यरूप में परिणत न कर सका।

इसके अनन्तर स० २००७ में श्री पूज्य गुरुवर्य प० ब्रह्मादत्त जी जिज्ञासु का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। इसके परीक्षण तथा प्रचार के लिए उन्होंने काशी में पाणिनि महाविद्यालय की स्थापना की। उसमें उन्हें बहुत सरलता मिली। श्री पूज्य गुरुवर्य से मैंने प्रार्थना की कि वे इसे लेख बद्ध करें, परन्तु अनेक कार्यों में व्यस्त रहने के कारण वे इसे लिखित रूप में परिणत न कर सके। स० २००६ में पाणिनि महाविद्यालय की शाखा सुलतानपुर (उत्तर प्रदेश) में खुली। उसमें प० देव प्रकाश जी ने हाईस्कूल की नवम दशम श्रेणी के छात्रों को अष्टाध्यायी के क्रम से व्याकरण पढ़ाया। छात्रों को दो वर्ष के काल में ही मैट्रिक के सभी विषयों को पढ़ते हुए काशी की मध्यमा के समकक्ष व्याकरण आदि का बोध हो गया। यह एक नवीन परीक्षण था, जो कि पर्याप्त सफल रहा। तदनन्तर स० २०११ के प्रारम्भ में देहली में पाणिनि महाविद्यालय की स्थापना की गई। उसमें प्रौढ व्यक्तियों को पढ़ाने के लिए प० देव-प्रकाश पातञ्जल को ही नियुक्त किया गया।

प० देवप्रकाश पातञ्जल को पढ़ाते समय उपयुक्त ग्रन्थ का अनुभव स्वतन्त्रता था। अतः उन्होंने अपने अध्यापन के अनुभव के आधार पर सहान् परिश्रम करके इस ग्रन्थ की रचना की।

प्रस्तुत ग्रन्थ

अष्टाध्यायी में से उपयोगी सूत्रों को छांटना और उनकी व्याख्या करना सरल कार्य नहीं है। इसमें दृष्टि भेद से प्रत्येक व्यक्ति का भिन्न-

भिन्न मत हो सक्ता है। फिर भी ५० देवप्रसाश पातञ्जल ने जो महाने प्रयत्न किया वह प्रशमनीय है। इसमें लिए मैं उनका धन्यवाद करता हूँ कि उन्होंने संस्कृत सीखने वाले व्यक्तियों के लिए बहुत उपयोगी ग्रन्थ तैयार कर दिया है। इस उपयोग में लाना और लाभ उठाना अध्यैताओं का काम है।

यह ग्रन्थ इस दृष्टि से नहीं लिखा गया है कि इसे पढ़कर कोई व्यक्ति व्याकरण शास्त्र का ग्रीढ़ पण्डित बनेगा, अपितु इसकी रचना व्याकरण का व्यावहारिक प्रयोग ज्ञान कराने के लिए इसकी रचना की गई है।

५० देवप्रसाश जी ने ग्रन्थ लिखकर मुद्रण से पूर्ण मुझे पूर्णतया देखने और परिष्कार करने के लिए आग्रह किया। मैं फाशी में निरन्तर १॥ वर्ष रोगी रह कर रहा आया ही था, अभी रोग से आक्रान्त था, निर्मलता अधिष्ठ थी तथा नये स्थान पर नये कार्य का भार अधिक पड़ना स्वाभाविक था। इन सब परिस्थितियों में मेरे लिए ग्रन्थ के परिष्कार का भार उठाना सर्वथा असम्भव था, परन्तु मैं उनके आग्रह को टाल भी नहीं सकता था क्योंकि उन्होंने एक प्रकार से मेरे चिरकाल के विचार को मूर्तिरूप दिया था। अतः मैंने उपर्युक्त अत्यन्त विषम परिस्थितियों में भी जितना महयत्न दिया जा सकता था, देना उचित समझा।

मैंने इस सम्पूर्ण ग्रन्थ का सरसरी दृष्टि से देखा और अनेक इसमें उचित मशोचन किए। कई सूत्रों पर अपने नए विचार टिप्पणियों में दर्शाए। जिन विषयों या श्रुतियों पर मेरा तथा लेखक का मौलिक विचार भेद था उसे वैसा ही रहने दिया।

लेखक ने इस ग्रन्थ को दो दृष्टियों से लिखा है। एक है संस्कृत सीखने वाले ग्रीढ़ व्यक्तियों के व्याकरण के नियमों का बोध कराना और दूसरी संस्कृत की विविध परीक्षाओं में प्रचलित लघुसिद्धी के स्थान पर अष्टाध्यायी के क्रम में सरल ढंग में संस्कृत व्याकरण का ज्ञान कराना। अतः यह ग्रन्थ दोनों ही प्रकार के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

यह अपने ढंग का प्रथम प्रयास है। आशा है जनता इसका समुचित स्वागत कर लाभ उठायेगी।

प्रस्तावना

अग्निमोढे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।

होतार रत्नधातमम् ॥ ऋ० १. १. १.

अष्टाध्यायी पढ़ने की अभिलाषा

जब मैं दूसरी या तीसरी श्रेणी में पढ़ता था । उस समय सनातन धर्म तथा धर्म समाज के विद्वानों में शास्त्रार्थ श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । इस सौभाग्य का विशेष कारण यह था कि मेरे पिताजी सनातन धर्म हरिकीर्तन समाज के मन्त्री थे तथा मेरे ज्येष्ठ भ्राता धर्मसमाज के मन्त्री थे । एक स्थान का शास्त्रार्थ मुझे स्मरण है । धर्मसमाज का उत्सव हो रहा था, उसमें मेरे पिताजी के प्रबन्ध से सनातन धर्म के अच्छे-बुरे विद्वान् वहाँ पर शास्त्रार्थ करने के लिये पधारे थे । मेरे पिता जी तथा भ्राता जी में भी सदा शास्त्रार्थ होता रहता है । इन अवसरों पर स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की भी चर्चा प्राया करती थी । मेरे बड़े भाई सदा कहा करते थे कि वेदों में यह प्रमाण प्राया है अतः सर्वथा मान्य है । वेद स्वतः प्रमाण है क्योंकि वह अपौरुषेय है । वेदों को छोड़कर अन्य ऋषि-महर्षि प्रणीत जितने ग्रन्थ हैं वे सभी परतः प्रमाण है । संस्कृत का ज्ञान अष्टाध्यायी से ही हो सकता है इत्यादि । इन बातों को सुनकर मेरे मन पर प्रभाव पड़ता था कि वेदों को पढ़ने के लिये अष्टाध्यायी ही पढ़नी चाहिये । यह भावना मेरे में तभी जागृत हुई जब मैं ८, ९ वर्ष का रहा होगा । १९३३ ई० में मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् मेरे ग्राम में एक संस्कृत टील विद्यालय था, उसमें पढ़ने के लिये मुझ कहा गया । मैं वहाँ पढ़ने लगा । लघुकोमुदी पढ़ाई जाती थी । संस्कृत के प्रधानाचार्य पूज्य प० रत्नेश्वरी पाण्डेय जी थे । उन्होंने लघुकोमुदी पढ़ाना प्रारम्भ किया । उस समय तक संस्कृत में कुछ भी नहीं जानता था । पण्डित जी अर्थ भी पढ़ाते थे और कण्ठस्थ करने के लिये कहते थे । अन्तु यह क्रम कुछ समय तक चला परन्तु रटते-रटते मेरी व्याकरण से अनिच्छा हो गई । जिस कारण अपने पिता जी से कहा कि मैं संस्कृत नहीं पढ़ूँगा ।

वहाँ से पढ़ाई छोड़ने के पश्चात् मैं अपने जिले के नगर मोतीहारी (बिहार) के हाई स्कूल में पढ़ने लगा । वहाँ से जाने का सारा श्रेय स्वर्गीय

श्री बा० रामसूरत सिंह जी को है। वहाँ आपने जेर पटने की मांग व्यवस्था की। आप अत्यन्त ही सज्जन, मरन हृदय और मिलनसार थे। वहाँ मैंने हार्ट स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् प्रो० डा० विद्वनाथप्रसाद वर्मा (राजनीति विभाग) पटना कालेज, की प्रेरणा से मैं पटना आया। यहाँ अपने अध्ययनकाल में मुझे जिनमें प्रेरणा मिली है वे हैं बा० कामाध्या प्रसाद तथा प्रो० आद्यानरत्न शर्मा, पटना कालेज। इस बीच मैं डा० वर्मा व माधव पूज्य प० ब्रह्मानन्द जी से अष्टाध्यायी भी पढ़ता रहा। समय चल रहा था। देश में क्रांति की लहर दौड़ रही थी। विद्यार्थी वर्ग उसमें अछूता न था। अनेक विद्यार्थियों के माथ में भी कालेज छोड़ दिया। यही रट थी कि देश स्वतन्त्र हो। जब तक तेरा स्वतन्त्र न होगा मैं भी कालेज में नहीं पढ़ूँगा, ऐसी मैंने प्रतिज्ञा की। लगभग ६ महीने तक काग्रेस का कार्य करता रहा। यहाँ मेरे पूज्य बा० रामसूरतसिंह जी ने फिर मार्ग प्रदर्शन किया और ससृज अध्ययन की ओर आकृष्ट किया। उनकी आज्ञा मैंने मान ली और परम विद्वान् प० ब्रह्मानन्द जी ने अष्टाध्यायी पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। हार्ट स्कूल में ससृज भी मेरा विषय था अतः सूत्रों को समझने में विशेष कठिनाई नहीं होती थी। पठन-पाठन के विषय में पण्डित जी कहा करते थे कि या तो वे स्वयं अष्टाध्यायी पढ़ाते थे या रावी नदी के तट पर पूज्य प० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु।

अष्टाध्यायी का अध्ययनकाल

पूज्य पण्डित जी के पटना चले जाने पर मैंने अष्टाध्यायी पढ़ने के उद्देश्य से पत्रात्र जाने का निश्चय किया और १९४३ ई० में वहाँ पर किसी तरह पहुँच गया।

वहाँ पर पूज्य गुरुवर्य (श्रीमान् प० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु) के दर्शन हुए। उन्होंने कहा कि ससृज पढ़ने के मार्ग बहुत ही कठिन है आप कालेज में पढ़कर वहीं प्रोफेसर हो सकते हैं, अतः यहाँ पढ़ने से क्या लाभ? मैंने कहा मैं तो निश्चय करके ही बिहार से यहाँ आया हूँ। वे बोले, यहाँ जो अष्टाध्यायी कण्ठस्थ करके आता है उसी से हम पढ़ने की बात करते हैं। मैंने कहा कि मैं अष्टाध्यायी कण्ठस्थ कर लूँगा। इत्यादि अनेक प्रकार की बातें हुईं और उन्होंने मुझे अपने आश्रम में स्थान दिया। आर्थिक सहायता के लिये आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, पंजाब का मैं आभारी हूँ विशेषकर महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज का, जिन्होंने लाहौर में सदा मेरी सहायता की। यहाँ आश्रम में पठन और पाठन की पद्धति चरितार्थ होती थी और आज भी है।

बड़े विद्यार्थी छोटे विद्यार्थी को पढ़ाते हैं और पूज्य गुरु जी बड़े विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं। अतः मुझे अष्टाध्यायी पढ़ाने वाले बड़े विद्यार्थी श्री ५० धर्मव्रत जी तथा श्री ५० वाचस्पति जी विष्णु (बुलन्दशहर) थे। महाभाष्य प्रारम्भ में पूज्य श्री गुरुजी ने पढ़ाया। तत्पश्चात् श्री ५० मुनीश्वर जी (देवरिया) तथा श्री ५० धर्मदेव जी (काशी) पढ़ाते रहे। तीन वर्ष तक यह क्रम चला। इस पढ़ाई पर गुरुजी का सदा निरीक्षण होता रहा वे पाठ भी सुनते रहते थे। तीन वर्ष अर्थात् १९४३-४६ तक मैंने अष्टाध्यायी और महाभाष्य की शिक्षा गुरु कृपा से प्राप्त की। इसके पश्चात् प्रसिद्ध शास्त्रज्ञ श्री ५० युधिष्ठिर जी भीमासक से मेरे निरुक्त की शिक्षा प्राप्त की। इसमें भी गुरु जी का पर्याप्त हाथ रहा। इन महानुभावों को जितनी भी कृतज्ञता प्रकट करूँ थोड़ी है।

अष्टाध्यायी का अध्यापन काल

सन् १९४६ के मध्य में आश्रम छोड़कर देवरिया चला आया। यहाँ पूज्य ५० इन्द्रदेव जी ने दर्शन शास्त्र का अध्ययन कराया। आप छात्रों के बड़े ही हितैषी तथा दर्शन शास्त्र के प्रतिभासम्पन्न विद्वान् हैं। वहाँ ही राधाकृष्ण मस्कन कालेज के आचार्य श्री ५० वामुदेव जी मिश्र से मुलावली प्रादि नव्य-न्याय का भा अध्ययन करता रहा। परन्तु कारणवश १९४७ ई० में कलकत्ते जाना पड़ा जहाँ देश के स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात् कालेज में पुन पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। परन्तु फिर १९५० ई० में पूज्य गुरुजी के पास बनारस चला आया।

आपने मुझे अष्टाध्यायी पढ़ाने के कार्य में लगाया। १९५२ ई० में सुलतानपुर पाणिनि महाविद्यालय में आचार्य पद पर मुझे भेजा गया। वहाँ दो वर्ष अष्टाध्यायी पढ़ाने का अवसर मिला। वहाँ पर मैंने ६ बों श्रेणी के छात्रों को तथा ६ बों श्रेणी के छात्रों को अष्टाध्यायी पढ़ाना प्रारम्भ किया। बोर्ड पर उनकी लिखकर बताना पड़ता था क्योंकि उस समय कोई हम लोगों की पद्धति की पुस्तक नहीं थी। और न आज तक है। क्योंकि आज तक प्रथमा वृत्ति की सर्वाङ्गपूर्ण पुस्तक लिखी ही नहीं गई, ऐसी मेरी धारणा है। पढ़ने के समय में वाशिका से सहायता ली जाती थी और आज भी वाशिका से ही ली जाती है। ग्रन्थों के अभाव में नामिक, सन्धि विषय और व्याख्यातिक से सहायता लेकर छात्र सुलतानपुर में पढ़ते रहे। वहाँ से प्रौढ पाठशाला में पढ़ाने के लिये मुझे देहली भेजा गया। यहाँ भी गत दो वर्षों से पढ़ा रहा हूँ।

अध्यापन में अनेक अनुभव हुए हैं। सूत्रों की व्याख्या बोर्ड पर लिखने-

निखान में अध्यापक और छात्रों दोनों को जो कठिनाई पड़ती है उस मुक्त भोगी हो जानने है । यह गणित आदि के समान तो विषय नहीं है जो बाट पर टाँक समझाया जा सके । सूत्रों की व्याख्या आदि निखन-निखन छात्र भी कठिनाई का अनुभव करते हैं । जो 'काम' कुछ मष्टाहों में समाप्त होना चाहिये उस पूर्ण करने में महीन लग जात है । यह सब धपन विषय की भार्य पद्धति पर समझाने वाली पुस्तक के समान की बात है । जिना किसी पुस्तक के कठिनाई का अनुभव होना है ।

ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा

आज भारत स्वतन्त्र है तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी स्वीकृत हो चुकी है । भारतीय सभ्यता एवं संहति का मूल ध्येय मस्कृत है इसमें किसी व्यक्ति को भी विप्रतिपत्ति नहीं है । मत दो नौ वर्षों से जो पाश्चात्य विद्वानों ने वैदिक संहति पर आक्षेप उठाये हैं तथा कपानकलिन तथाकथित भारतीय भाषा को सभी भाषाओं की जननी है, धापिन की, जिसका सारा विश्व मानना है । देश में संहत और संहति की आवश्यकता है, क्योंकि कोई भी देश अपनी सभ्यता एवं संहति को छोड़ निश्चयस और धम्युदय का नहीं प्राप्त कर सकता । आज विशेष-विशेष शब्द चाहिये । जिसके निर्माणवा व्याकरण की आवश्यकता है । मेरा विश्वास है कि जहाँ मैं मैं मारी भाषाओं निकली हैं वहाँ मैं ही प्रचलित सभी भाषाओं के जन्म उपरग्य हो सकत है, दूसरा कोई भी उपपन्न नहीं । और वह भाषा संहत है । विश्वविद्यालय में पढ़ने से मेरा निश्चित विश्वास हो गया कि यूरोप का सारा आक्षेप भ्रान्ति पूर्ण ही नहीं अपितु अक्षरशः निर्मूल है । यह कहने में थोड़ी भी असुक्ति नहीं कि इस देश का तथा पश्चिम के देशों की विचारधारा की एक मात्र भित्ति अष्टाध्यायी है । आज अष्टाध्यायी की वह स्थिति हो चुकी है जिससे जिना इसकी सहायता लिये मानव मस्तिष्क भाषा सम्बन्धी कोई विचार ही नहीं कर सकता । देश के सामने भी प्रश्न है संहत का प्रचार कैसे हो । आज संहत अनिवार्य हो या नहीं लेकिन यह समय की पुकार है कि आगामी कुछ वर्षों में संहत शिक्षा को अनिवार्य करनी पड़ेगी । इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए समय के अनुसार अष्टाध्यायी का पुनरुद्धार आवश्यक है । उसकी प्राचीनता के कारण नहीं बल्कि इसलिए कि जिना इसके संहत का प्रचार सम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है । इन्हीं कारणों से तथा संहत व्याकरण को मुषम और सुबोध बनाने की बलवती इच्छा ने मुझे यह ग्रन्थ लिखने की प्रेरित किया जो अब आपका सम्पन्न है ।

संस्कृत ज्ञान की दो धागयें

दो प्रकार की संस्कृत भाषा है। (१) वैदिक और (२) लौकिक। जहाँ तक लौकिक संस्कृत के ज्ञान का सम्बन्ध है वहाँ तक तो अंग्रेजी ढंग से लिखे गये व्याकरण से कुछ काम चल सकता है। क्योंकि साधारण ज्ञान लट्, लोट्, लङ्, विधिलिट्, लृट् इन पाँच लकारों से हो जाता है। लेकिन जब अदादि और जुहोत्यादि गण के धातुओं के रूप चलाने पड़ते हैं तो समस्या जटिल हो जाती है जिसका समाधान इस पद्धति से सम्भव नहीं। वहाँ पर बिना सूत्र को दृष्टिकोण में रखे हुए रूप याद रखना अत्यन्त ही कठिन है। फिर भी सामान्य ज्ञान इस पद्धति से हो सकता है। लेकिन इस ज्ञान की इयत्ता पञ्चतन्त्र तक कठिनता से कही जा सकती है इसका पश्चान् अंग्रेजी पद्धति पर लिखे व्याकरण की कोई गति नहीं। जहाँ लौकिक साहित्य में महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, चम्पूकाव्य और गद्यकाव्यों को समझने की बात है वहाँ यह व्याकरण काम नहीं दे सकता। समासों को यथातथ्य समझने के लिये इन व्याकरणां से काम नहीं चल सकता है।

वैदिक साहित्य में तो इन व्याकरण के ग्रन्थों से काम चलना असम्भव है। वहाँ पर पदे-पदे धातु और प्रत्यय की समस्या बनी रहती है। वहाँ सूत्रात्मक व्याकरण सफल होगा, इन व्याख्यानशैली व्याकरण से काम नहीं चल सकता।

हाँ एक स्वरूप है जिससे अंग्रेजी व्याकरण से भी काम चलाया जा सकता है। वह है लौकिक साहित्य के लिये काले महोदय का उच्चतर व्याकरण आदि। यदि अक्षर-प्रक्षर कण्ठाय हो जाय तो काम चल सकता है। पूर्ण पाण्डित्य फिर भी नहीं हो सकता। प्रचलित धारा में सिद्धान्तकौमुदी, सारस्वत चन्द्रिका इत्यादि ग्रन्थ हैं। इसके विषय में अधिक न कह कर इतना ही कहना उचित है कि जहाँ आज संस्कृत की अवनीति के अनेक कारण वर्तमान हैं वहाँ सिद्धान्तकौमुदी का पठन पाठन भी एक अपरिहार्य कारण है। इसी सिद्धान्तकौमुदी के कारण भी लोग संस्कृत को रटन्ट वाली भाषा समझते हैं। इसकी प्रतिक्रिया यहाँ तक हुई कि किसी प्रान्त में लघुत्रयी, बृहत्त्रयी ही पढ़ कर सन्तोष करने की भावना हो गई। कही शब्दरूप, धातुरूप ही रट कर काम चलाने की भावना हो गई। व्याकरण जो साधन था आज साध्य हो गया। आज भारत के संस्कृत विद्यालयों में पढ़ने वाले छात्रों की संख्या भी अल्प हो रही है इसकी कठिनता प्रत्यक्ष ही है क्योंकि इस बात को बड़े-बड़े विद्वान् अनुभव कर रहे

हैं। क्योंकि लगभग सभी परीक्षाओं से फक्किवा का अंश निकाल दिया गया। इन उपर्युक्त बातों पर विचार करने से यह सिद्ध है कि आज की दोनों प्रक्रियाओं में संहृत का पढ़ना पढ़ाना असफल हो चुका है। जो विद्वान् १०, १५ वर्ष सिद्धान्त कीमुदी में ही लगे रहते हैं उनकी बात यहाँ नहीं कही जा रही है। जो इतना समय लगावेगे उनका तो व्याकरण का ज्ञान होना ही चाहिये। उनमें भी अधिकांश को साधुत्वाश पर नियन्त्रण नहीं होता बल्कि कुछेक सूत्रों पर शास्त्रार्थ नट्यन्याय का नेबर याद रहता है। अतः सर्व साधारण छात्रों के लिये वही माग उपयुक्त है जिस भाग से आज से ४८०० वर्ष पूर्व तक्षशिला में बैठ कर आचार्य पाणिनि अपनी अष्टाध्यायी पढ़ाया करने में। उन्हीं की पद्धति से संहृत का उद्धार हो सकता है अन्यथा कदापि नहीं।

पाणिनि की शैली

आचार्य पाणिनि का अष्टाध्यायी ग्रन्थ प्रक्रिया ग्रन्थ नहीं अपितु प्रकरण ग्रन्थ है। आचार्य ने प्रक्रिया के अनुसार ग्रन्थ का प्रवचन नहीं किया बल्कि प्रत्येक प्रकरण के सूत्रों को यथा स्थान रखा है। अष्टाध्यायी में एक स्थान पर सुबन्त या तिङन्त के प्रकरण नहीं हैं जो व्याकरण का मुख्यांश है। इस समस्या को कैसे मुलभूत किया जाय यह प्रश्न उपस्थित है। अरज-पाणिनि भगवान् नहीं हैं परन्तु उनकी अष्टाध्यायी है। कारण से कार्य की उत्पत्ति होती ही है। अतः कारणशरीर से उस कार्यशरीर का भी प्ररपक्ष हो गया। मेर पूज्य गुरुजी ने जिस पद्धति से भुके पढ़ाया, उसी को मैं पाणिनि की शैली समझता हूँ क्योंकि इसी भाष्य शैली से ही केवल ३ वर्ष में ही अष्टाध्यायी महाभाष्य के द्वारा लौकिक तथा वैदिक शब्दों का पूर्ण ज्ञाता बन सकता है, दूसरा कोई मार्ग अभी तक नहीं निकला।

अष्टाध्यायी-प्रकाशिका की शैली

प्रत्येक सूत्र का पदच्छेद विभक्ति, समास अनुवृत्ति, अर्थ, उदाहरण देकर आगे पीछे के सभी सूत्रों को लगा कर उदाहरणों को सिद्ध किया गया है। इस ग्रन्थ में उदाहरण अधिकतर काशिका से लिये गये हैं। समास के विग्रह में कहीं पर जाति पक्ष और कहीं पर व्यक्ति पक्ष का समाश्रयण किया गया है। कहीं-कहीं एक ही शब्द के विग्रह में इन दोनों पक्षों का आश्रय दिया गया है। समास करने के समय अधिकतर तो प्रथमा विभक्ति में रूप खला कर विग्रह किया है और कहीं-कहीं समझने में दुर्बुद्ध न हो जाय इस विचार से प्रातिपदिक का ही रूप विग्रह में रहने दिया है। बड़े कोष्ठक में अनुवृत्ति लिख दी

गयी है। विभक्ति निरूपण में विभिन्न विभक्तियों के होने के कारण यत्र-तत्र निर्देश किये गये हैं। ■

व्याख्याओं की विशेषता

आजकल व्याकरण कठिन इसलिए भी हो गया है क्योंकि भूमिका रूप से उसके विषय में कुछ समझाया नहीं जाता और सूत्र प्रारम्भ कर दिया जाता है। अतएव इन बातों को ध्यान में रख कर ४ व्याख्यान सामान्य संस्कृत ज्ञान के निमित्त मैने लिखे हैं। उन व्याख्यानों को पढ़ने के पश्चात् ही पाचवाँ व्याख्यान पढ़ना चाहिये। पचम से अन्त तक के सभी व्याख्यान पूर्ण रीति से समझकर आगे पढ़ना चाहिये। जो बात समझ में न आवे उसे व्याख्यान में ही खोजना चाहिए। आवश्यकतानुसार सब कुछ लिखन का प्रयत्न किया गया है। मैने छात्रों को पढ़ाकर कठिनाइयों के अनुभव के पश्चात् ही बातें लिखी हैं।

सम्भव है, इन व्याख्यानों को समझा और कुछ कुछ याद करने में समय लग जाय। जब व्याख्यानों को समझ लिया जायगा तब शेष अष्टाध्यायी प्रकाशिका अष्टम अध्याय तक केवल एक घण्टा प्रतिदिन परिश्रम करने से ५ मास में याद हो सकता है। शेष नाम और व्याख्यात प्रकरण न्यूनातिन्यून १५ दिन में समाप्त हो सकते हैं। एक वर्ष के समय में तो विद्यार्थी सूत्र भी कण्ठस्थ करके पठ सकते हैं। सूत्रों का कण्ठस्थीकरण रामलाल कपूर ट्रस्ट अमृतसर द्वारा प्रकाशित अष्टाध्यायी से चिह्न लगाकर ही करना चाहिए। अष्टाध्यायी के पठन पाठन के सरलतम उपायों पर मेरे पूज्य गुरुजी द्वारा प्रकाशित वेदवाणी के अङ्कों से संप्रहीत पाठमाला भी संस्कृत बोध में अनुपम सहायक है। उन पाठमालाओं के पढ़ने से भी महान् लाभ होगा। इस प्रकार से अष्टाध्यायी प्रकाशिका से व्याकरण का व्यावहारिक पूर्ण ज्ञान प्रौढों को केवल ६ मास और छात्रों को एक वर्ष में हो जायेगा ऐसी मेरी धारणा है। इन व्याख्यानों में मैने जैसे छात्रों को पढ़ाया है उसी भाषा का प्रयोग किया है। मेरा उद्देश्य भाषा को प्रशस्त करना नहीं अपितु समस्याओं को सुलझाना है।

कृतज्ञता प्रकाश

सर्वप्रथम प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद गुरुवर के चरण कमलों में अपनी श्रद्धा अर्पित करना है जिनकी कृपा से मेरे इस ग्रन्थ के लिखने में समर्थ हो सका। ५० युधिष्ठिर जी भीमामक का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने अस्वस्थ रहते हुए भी ग्रन्थ का आलोचनान्त निरीक्षण करके उसका परिष्कार किया और यत्र तत्र आवश्यक टिप्पणियाँ देकर इस ग्रन्थ को अत्यधिक उपादेय बनाया। ..

अपने अभिन्न हृदय प० सत्यदेव जी मित्र को धन्यवाद देना क्या उचित होगा । वस्तुतः इस ग्रन्थ को लिखने की सारी प्रेरणा उन्हीं से मिली है और इसके प्रकाशन में भी उन्होंने जो सक्रिय सहायता दी है वह लिखी नहीं जा सकती । यह उन्हीं के प्रेम, उत्साह और परिश्रम का परिणाम है कि यह ग्रन्थ अपने इस रूप में आपके सम्मुख विद्यमान है । व्याख्यानो की भाषा उसमें परिवर्तन, परिवर्धन और अनेक लाभप्रद सुझाव भी मित्र जी ने दिए हैं ।

सहयोग के लिए श्री ठाकुरदास जी बाठपालिया, श्री मेलाराम जी प्रधान, भायं समाज, देवनगर, बैद्य श्री हजारीलालजी, श्री रणवीर जी बी० ए० सचालक दैनिक मिलाप, रायबहादुर श्री प० नारायण दास जी, मन्त्री लक्ष्मी-नारायण मन्दिर ट्रस्ट, श्री प० महेन्द्रभा जी बी० ए०, बा० फूजसिंह जी तथा श्री मेलाराम जी प्रधान, भायं समाज, हनुमान रोड आदि महानुभावों का भी अनुगृहीत है ।

कलाकार चित्रकार श्री धरणीधरचन्दोला जी को धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने भगवान् पाणिनि का चित्र चित्रित किया है चन्द्रमोहन दास्त्री व बा० नारायण सिंहजी का विशेष धन्यवाद है क्योंकि उन्होंने इस ग्रन्थ के छपने में प्रेस कार्य में बड़ी तत्परता से कार्य किया है । अन्त में अपनी धर्मपत्नी श्रीमती उर्मिला देवीजी को साधुवाद देता हूँ जिन्होंने ग्रन्थ के लिखने तथा प्रूफ देखने में सदा सहायता प्रदान की ।

१ जी, जवाहर नगर

सञ्जीमण्डी, देहली

देवप्रकाश पाठञ्जल

प्रथम व्याख्यान

महामुनि पाणिनि प्रणीत अष्टाध्यायी के सूत्रों की व्याख्या प्रारम्भ करने के पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि विद्यार्थियों को भाषा के माध्यम द्वारा संस्कृत भाषा तथा उसके व्याकरण का प्रारम्भिक ज्ञान करा दिया जाय, जिसके द्वारा वे इस विषय में प्रवेश पा सकें और इस ग्रन्थ की लेखन पद्धति को समझ सकें। इससे उन्हें बहुत लाभ होगा। वे न केवल सूत्रों का अर्थ ही समझने लगेंगे बल्कि इन सूत्रों का 'शब्द-सिद्धि' में किस प्रकार प्रयोग किया जा जाता है, यह भी जान जायेंगे। इन प्रारम्भिक व्याख्यानों के अध्ययन से उन्हें संस्कृत का आवश्यक ज्ञान भी हो जायगा और विषय-प्रवेश उनके लिए सुलभ होगा। छात्रों की भाषा विषयक सभी कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए ही इन व्याख्यानों को लिखा गया है। आशा है संस्कृत पढ़ने के अभिलाषी छात्र धैर्य पूर्वक इसका अध्ययन करने के पश्चात् ही ग्रन्थ पढ़ना आरम्भ करेंगे, और संस्कृत के व्याकरण शास्त्र का ज्ञान लाभ करेंगे।

इस व्याख्यानमाला के प्रथम चार व्याख्यान सरल संस्कृत का पढ़ना, समझना, लिखना और बोलना सिखाते हैं, तथा शेष सभी अष्टाध्यायी अध्ययन का बोध कराते हैं। उनसे सूत्रों की व्याख्या, पद-च्छेद, विभक्ति, समासादि द्वारा अर्थ, उनका प्रयोग, अनुवृत्ति तथा शब्दानुशासन में उनका स्थान आदि आवश्यक बातों का ज्ञान होता है। अतएव, ग्रन्थ प्रारम्भ करने के पूर्व इन व्याख्यानों का समझना आवश्यक है अन्यथा अध्ययन में कठिनाई हो सकती है। वास्तव में ये व्याख्यान उन विद्यार्थियों के लिए लिखे गये हैं जिन्हें हिन्दी का ज्ञान है और जो संस्कृत पढ़ने के अभिलाषी हैं। इसके पश्चात् संस्कृत व्याकरण उनके लिए सरल हो जायगा, और रटना भी नहीं पड़ेगा ऐसी मेरी धारणा है।

हिन्दी के शब्दों पर विचार

समस्त पढ़ने में पूर्व यह आवश्यक है कि विद्यार्थियों को हिन्दी भाषा के व्याकरण का प्रार्थन ज्ञान हो। इसमें संस्कृत व्याकरण के सम-मने में आसानी होगी और उसके शब्दों का अर्थ लगाने में सुगमता। अतएव हम सक्षेप में हिन्दी व्याकरण की मुख्य बातें बताने की चेष्टा करेंगे।

हिन्दी के सभी शब्दों में हम मुख्यतः पाँच विभागों में विभा-जित कर सकते हैं जो इस प्रकार हैं —

(१) सज्ञा (२) सर्वनाम (३) विशेषण (४) क्रिया और (५) अव्यय।

इनमें से प्रथम चार प्रकार के शब्द सविभक्त कहलाते हैं क्योंकि उनका रूप बहुधा बदलता रहता है। पाँचवें प्रकार के शब्द क्रिया विशेषण, सम्बन्धबोधक विस्मयान्निवाधक आदि निर्विकार हैं, क्योंकि उनका रूप नहीं बदलता है अतः इनको अव्यय कहते हैं।

सज्ञा—किसी वस्तु या प्राणी के नाम को सज्ञा कहते हैं। जैसे—राम, मोहन, बेड, हिमालय, गङ्गा आदि।

सर्वनाम—जो शब्द किसी सज्ञा के बदले में आता है या प्रयोग किया जाता है उसे सर्वनाम कहते हैं। जैसे—राम अच्छा लड़का है। यह प्रतिदिन पाठशाला जाता है। यहाँ पिछले वाक्य में, 'यह' सर्वनाम पहले वाक्य के 'राम' पद के बदले में आया है।

विशेषण—जो शब्द किसी सज्ञा की विशेषता या उसके गुणों को प्रकट करते हैं उन्हें विशेषण कहते हैं। सज्ञा या भेद प्रकट करने के कारण उन्हें 'भेदक' भी कहते हैं। जैसे—'काला कुत्ता'। 'काला' शब्द कुत्ते को अन्य कुत्तों से पृथक् कर देता है। यहाँ 'काला' शब्द विशेषण या भेदक और 'कुत्ता', विशेष्य या भेद्य है।

क्रिया—जिसमें किसी काम का करना या होना पाया जाय उसे क्रिया कहते हैं। जैसे—मोहन पुस्तक पढ़ता है। श्याम हँसता है। इन वाक्यों में 'पढ़ता है', व 'हँसता है' ने पढ़ने व हँसने कार्यों का करना या होना पाया जाता है। अतः ये शब्द क्रिया हैं।

अव्यय—उन शब्दों को कहते हैं जिनमें संज्ञा व त्वनाम की भांति न तो कोई विकार होता है न कोई लिङ्ग, वचन और विभक्तियों का भेद। ये वाक्यों में विभिन्न अर्थों को बताने के लिए प्रयोग में लाये जाते हैं। कुछ उदाहरण देखिये —

१. क्रिया विशेषण—अच्छा, धीरे-धीरे, अचानक, सहसा, तुरन्त, आदि।

२. समुच्चयार्थक—और, तथा, एवं, वर, परन्तु, अतः, अतएव, किन्तु, प्रत्युत, लेकिन आदि।

३. विकल्पार्थक—या, वा, अथवा आदि।

४. समयार्थक—आज, कल, परसो, फिर, अब, तब, अभी, जभी आदि।

५. स्थानार्थक—यहाँ, वहाँ, इधर, उधर।

इसी प्रकार अव्यय के अनेक भेद होते हैं जिनका स्थानाभाव से वर्णन करना संभव नहीं है। इस विषय में इतना ज्ञान लेना आवश्यक है कि इनका रूप नहीं बदलता और विभिन्न स्थानों में व्यवहार और प्रयोग के अनुसार इनका अर्थ समझ लेना चाहिए।

कारक और विभक्तियाँ—क्रिया की सिद्धि में जो सहायक हो उसे 'कारक' कहते हैं, अर्थात् संज्ञा और सर्वनाम शब्दों का क्रिया के साथ जो सम्बन्ध होता है उसे कारक कहते हैं। इनका रूप भी क्रिया से सम्बन्ध होने के कारण भिन्न भिन्न होता रहता है। जिस प्रकार की क्रिया से कारक का सम्बन्ध होता है उसका रूप भी वैसा ही होता है। ये कारक '६ प्रकार' के होते हैं —

१. कर्त्ता—कार्य के करने वाले को कर्त्ता कहते हैं जैसे—राम पढ़ता है। यहाँ पढ़ने का कार्य करने वाला राम 'कर्त्ता' है।

२. कर्म—कर्त्ता के इष्टतम (अत्यन्त चाहा हुआ) कारक को 'कर्म' कहते हैं। जैसे—राम आम खाता है। राम का अत्यन्त चाहा हुआ आम (इष्टतम) कारक है। अतएव इसको कर्म कहते हैं।

३. करण—जिसके द्वारा क्रिया की जाय उसे करण कहते हैं

जैसे—राम चाकू से कलम बनाना है । यहाँ कलम बनाने की क्रिया चाकू द्वारा हो रही है अतएव 'चाकू' कारक कारक है ।

४. सम्प्रदान—जिम्हारे लिए दिया जाय अप्रान क्रिया के द्वारा जिम्हारे अभिप्राय को भली प्रकार से सिद्ध किया जाय उसको सम्प्रदान कहते हैं । जैसे, 'उपाध्याय' के लिए (को) गाय देता है । यहाँ उपाध्याय को 'गाय' दी जाती है अतः 'उपाध्याय' सम्प्रदान कारक है । सम्प्रदान का अर्थ है, "पूर्ण रूप या अच्छी तरह से देना" । इसमें दी हुई वस्तु के वापिस लेने की भावना निहित नहीं है । जैसे—मोहन घोड़ी को बखर देता है । यहाँ 'वस्त्र' घोरर वापिस लेने की भावना में दिया गया । अतएव घोड़ी सम्प्रदान कारक नहीं होगा । धर्म कारक भी नहीं हो सकता क्योंकि कर्ता का इष्ट वस्त्र है घोड़ी नहीं । यहाँ कोई कारक नहीं है । फिर क्या है ? संस्कृत भाषा के अनुसार रजक (घोड़ी) शब्द में पष्ठी होती है यद् पष्ठी विभक्ति की व्याख्या के समय बताया जायगा ।

५. अपादान—जिम्हारे कोई वस्तु अलग हो । दो वस्तुओं में से एक दूसरे में अयाय (वृथक) होने पर निश्चय कारक को अपादान कारक कहते हैं । जैसे—वृक्ष में पत्ते गिरने हैं । पत्तों के अलग होने पर वृक्ष भी निश्चय रहा । अतः 'वृक्ष' अपादान कारक है ।

६ होते हैं । सम्बन्ध और सम्बोधन कारक नहीं है । किन्तु वाक्य में इन की स्थिति आवश्यक होती है जैसा कि ऊपर कह चुके हैं । संस्कृत में कारक, सम्बन्ध और सम्बोधन के रूप में प्रयुक्त होने वाले जितने भी सज्ञा सर्वनाम आदि सज्ञक शब्द हैं उनके केवल सात विभाग होते हैं । प्रश्न उठता है कि इन ६ कारकों, सम्बन्ध और सम्बोधन के आठ विभाग होने चाहिए । किन्तु विभाग सात ही हैं । इनकी व्यवस्था इस प्रकार समझनी चाहिए कि जितने भी कर्ता कारक क शब्द हैं वे प्रथम विभाग में रखे जाते हैं । इसी प्रकार कर्म के द्वितीय, करण के तृतीय, सम्प्रदान के चतुर्थ, अपादान के पञ्चम और अधिकरण कारक के शब्द सप्तम विभाग में होते हैं । विभागों के अभाव के कारण 'सम्बोधन' को भी प्रथम विभाग ही में रखा जाता है । इसका यह अर्थ नहीं है कि सम्बोधन भी कर्ता कारक हो गया । इसको कारक न होते हुए भी प्रथम विभाग ही में रखा जाता है, ऐसा पाणिनि मुनि का निर्देश है । जो शब्द इन विभागों के अन्तर्गत नहीं आते उन्हें षष्ठ विभाग में समझना चाहिए । इसी नियम के अनुसार धोवी (रजक) के लिए वस्त्र देता है । इस वाक्य में धोवी शब्द किसी अन्य विभाग में न आने के कारण षष्ठ विभाग में रखा जाता है । इन्हीं विभागों को आचार्य पाणिनि के पारिभाषिक शब्दों में 'विभक्ति' के नाम से पुनारा जाता है । 'विभक्ति' शब्द स्त्रीलिङ्ग है अतः उसका विशेषण 'प्रथम' भी प्रथमा' के रूप से आगेगा—यथा 'प्रथमा विभक्ति' द्वितीया विभक्ति, तृतीया विभक्ति, चतुर्थी विभक्ति, पञ्चमी विभक्ति, षष्ठी विभक्ति तथा सप्तमी विभक्ति । यही सात विभक्तियाँ हैं ।

विभक्तियों के चिह्न—यद्यपि उपर्युक्त परिभाषाओं तथा व्याख्या से इन विभागों के समझने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए तथापि साधारण ज्ञान के विद्यार्थियों के लिए इन्हें समझने में सुगमता हो इसलिए इन विभक्तियों के चिह्नों को लिखा जाता है जो इस प्रकार हैं—

कारक	विभक्ति	चिह्न	वाक्य में प्रयोग
कर्ता	प्रथमा	०, ने	१. राम जाता है २. रामने कहा ।
कर्म	द्वितीया	०, को	१. राम राम खाता है । २. राम श्याम को देखता है ।

करण	तृतीया	से	चाकू से कलम बनाता है ।
सम्प्रदान	चतुर्थी	को, के लिए	२. राम उपाध्याय को या के लिए गाय देता है ।
अपादान	पञ्चमी	से	वृच से पत्ता गिरता है ।
सम्यन्ध	षष्ठी	का, के, की,	१. आपना आपके आपकी
		रा, रे, री,	२. तुम्हारा तुम्हारे तुम्हारी
		ना, ने, नी,	३. अपना अपने अपनी
अधिनरण	सप्तमी	में, पर,	१. सन्दूक में
			२. छत पर
सम्बोधन	प्रथमा	हे, अरे,	१. हे राम
			२. अरे भाई

विशेष स्पष्टीकरण के लिए इन चिह्नों के साथ बालक शब्द के रूप एक वचन व बहुवचन में दिये जाते हैं :—

कारक	विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	प्रथमा	बालक ने	बालकों ने
कर्म	द्वितीया	बालक को	बालकों को
करण	तृतीया	बालक से	बालकों से
सम्प्रदान	चतुर्थी	बालक केलिये	बालकों केलिये
अपादान	पञ्चमी	बालक से	बालकों से
सम्यन्ध	षष्ठी	बालक का, के, री	बालकों का, के, की
अधिनरण	सप्तमी	बालक में, पर	बालकों में, पर
सम्बोधन	प्रथमा	हे बालक	हे बालकों

उपर्युक्त चिह्नों को ध्यान पूर्वक देखिये । आप देखेंगे कि चर तत्र 'बालक' शब्द में परिवर्तन हुआ है किन्तु चिह्न नहीं बदले । चिह्न जैसे थे वैसे ही हैं । जैसे—'बालक ने', 'बालकों ने' । यहाँ 'बालक' शब्द का 'बालकों' बन गया । इसके अतिरिक्त दोनों वचनों में चिह्न एक ही प्रकार के हैं । उनमें कोई परिवर्तन नहीं है । इससे प्रतीत होता है कि हिन्दी में सहा तथा सर्वनाम आदि के वाचक शब्दों में ही परिवर्तन होता है चिह्नों में नहीं । यह बात ध्यान में रखने योग्य है ।

नोट :—यही-वही विशेष कारणों से कर्ता और कर्म में चिह्न नहीं लगते । जैसे—राम पढ़ता है । राम पुस्तक पढ़ता है । इन

वाक्यों में 'राम और 'पुस्तक' क्रमशः कर्ता और कर्म हैं किन्तु उनके चिह्न 'ने' और 'को' का प्रयोग नहीं हुआ है। ऐसा क्यों होता है यह व्यवहार से ही जानना चाहिए। विस्तार भय से यहाँ उनके कारणों पर विचार नहीं कर रहे हैं।

स्मरण संकेत :—

१. हिन्दी में ५ प्रकार के शब्द हैं। सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, और अव्यय।
२. क्रिया की सिद्धि में जो सहायक हो उसे कारक कहते हैं।
३. कारक ६ हैं। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, और अविकरण।
४. 'सम्बन्ध' और 'सम्बोधन' कारक नहीं हैं क्योंकि वे क्रिया की सिद्धि में सहायक नहीं होते।
५. विभक्तियाँ सात होती हैं।
६. हिन्दी में यत्न भेद से केवल सज्ञा तथा सर्वनाम आदि शब्दों में ही परिवर्तन होता है, 'ने' 'को' आदि चिह्नों में नहीं।

द्वितीय व्याख्यान

संस्कृत भाषा में कारक तथा विभक्तियों का स्वरूप

प्रथम व्याख्यान में हम हिन्दी के कारक तथा विभक्तियों के स्वरूप की चर्चा कर चुके हैं। यहाँ संस्कृत के कारक तथा विभक्तियों के स्वरूप का संक्षेप से वर्णन करेंगे। संस्कृत भाषा के अध्ययन के लिए इनके स्वरूप और चिह्नों का सम्यक् प्रकार से समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसा करने से विद्यार्थियों को संस्कृत के अध्ययन में कोई कठिनाई नहीं होगी और भाषा अपने सरल रूप में उनके सम्मुख आयेगी। वास्तव में हिन्दी और संस्कृत के कारक तथा विभक्तियों के स्वरूप में परस्पर कोई भेद नहीं है। जो बातें हिन्दी में आवश्यक हैं वे ही न्यूनाधिक संस्कृत के लिए ठीक हैं। भेद केवल चिह्नों में है। दोनों भाषाओं के चिह्न पृथक् पृथक् हैं, और शब्दों के साथ उन्हें जोड़ने के नियम भी

।मन्न हैं। दूसरी बात जा ध्यान में रखने योग्य है वह यह है कि हिन्दी में केवल एकवचन और बहुवचन ही होते हैं, जब कि संस्कृत में तीन वचन होते हैं, एकवचन, द्विवचन और और बहुवचन। इस वचन, भेद के कारण भी चिह्नों के रूप में अन्तर होता है। अस्तु इसका वर्णन यथास्थान आगे होगा। अब इस विषय के अन्य आवश्यक बातों को समझना चाहिए।

प्रातिपदिक—यह शब्द केवल संस्कृत व्याकरण ही में प्रयुक्त होता है, अन्यत्र नहीं। प्रातिपदिक उस मूल शब्द को कहते हैं जिसके परचान् या जिसमें विभक्ति के चिह्नों को जोड़ कर रूप चलाया जाता है। जैसे—‘राम ने’ इसमें प्रथमा विभक्ति का चिह्न ‘ने’ ‘राम’ के साथ जोड़ा गया है। अब ‘राम’ शब्द प्रातिपदिक कहलायेगा। इसी प्रकार किसी भी विभक्ति रहित मूल शब्द को प्रातिपदिक कहते हैं।

अब संस्कृत के इन विभक्ति चिह्नों पर ध्यान दीजिये हिन्दी में चिह्न दोनों वचनों में एक ही समान रहते हैं। उनके रूप में कोई परिवर्तन नहीं होता। जैसे राम ने, रामों ने। यहाँ चिह्न ‘ने’ में कोई परिवर्तन न होकर मूल शब्द ही में परिवर्तन हुआ। इसके विपरीत संस्कृत में वचन भेद से ये विभक्तियाँ बदलती रहती हैं। तीनों वचनों में उनके भिन्न भिन्न रूप होते हैं। प्रातिपदिक शब्दों में प्रायः परिवर्तन नहीं होता। सुगमता के लिए दोनों भाषाओं के ये विभक्ति चिह्न नीचे दिये जाते हैं।

हिन्दी

संस्कृत

	एकवचन, बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र. वि —	ने	ने	मु	तु
द्वि. वि —	को	को	अम्	औद्
तृ. वि —	से	से	टा	भ्याम्
च वि —	के लिए	के लिए	डे	भ्याम्
प वि —	से	से	इसि	भ्याम्
प वि —	का, के, की	का, के, की	इस्	ओम्
स वि —	में, पर	में, पर	जि	ओस्
सम्बोधन—	हे, अरे	हे, अरे	मु	औ

उपर्युक्त चिह्नों की ध्यान से परीक्षा करने पर ज्ञात होगा कि संस्कृत में प्रथमा विभक्ति के एकवचन औरद्विवचन बहुवचन

में क्रमशः 'सु' औ, जस् चिह्नों का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार द्वितीया विभक्ति में अम् औट् शस् आदि चिह्नों का। अन्य शेष विभक्तियों में से भी इसी प्रकार जानना चाहिए। प्रातिपदिकों के साथ योग होने पर इन चिह्नों में यह परिवर्तन कहाँ और किस प्रकार में होता है, इसका निर्देश भगवान् पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में यथा स्थान कर दिया है। इन्हीं सूत्रों तथा नियमों को सरल और सुगोचर बनाने के लिए ही प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की है, अस्तु। इन चिह्नों को हृदयगम्य कर कण्ठस्थ कर लेना चाहिए जिससे यथा स्थान इनके प्रयोग में सुविधा हो।

सभी विभक्तियों में इनके रूप निम्न प्रकार से चलेंगे —(प्रातिपदिक राम के साथ)

हिन्दी

संस्कृत

विभक्तियाँ	एकवचन	द्विवचन	एकव०	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा—रामने	रामों ने	राम सु	राम औ	राम जस्	
द्वितीया—राम को	रामों को	राम अम्	राम औट्	राम शस्	
तृतीया—राम से	रामों से	राम टा	राम भ्याम्	राम भिस्	
चतुर्थी—राम के लिए	रामों के लिए	राम डे	राम भ्याम्	राम भ्यस्	
पञ्चमी—राम से	रामों से	राम इसि	राम भ्याम्	राम भ्यस्	
षष्ठी—राम का	रामों का	राम इस्	राम ओस्	राम आम्	
सप्तमी—राम में	रामों में	राम डि	राम ओस्	राम सुप्	
सम्बोधन—हे राम,	हे रामों	राम सु	राम औ	राम जस्	

इसी प्रकार किसी भी प्रातिपदिक के पश्चात् इन विभक्ति चिह्नों को जोड़ कर रूप चलाये जा सकते हैं। जिस प्रकार हिन्दी में 'ने' आदि चिह्न लगा कर रूप चलाते हैं उसी प्रकार संस्कृत में सु, औ, अम् आदि चिह्नों को मक्षा आदि (प्रातिपदिकों या शब्दों) के साथ जोड़ कर सभी विभक्तियों में रूप चलाये जाते हैं। इनका अर्थ भी हिन्दी की भांति ही होता है। उसमें कोई भेद नहीं। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि आप संस्कृत में 'राम का' कहना चाहते हैं। 'का' षष्ठी विभक्ति का चिह्न, जिसका संस्कृत में समान वाची चिह्न 'इस्' है। अतः 'राम का' का संस्कृतानुवाद 'राम इम्' होगा। इसी प्रकार अन्य विभक्तियों में जानना चाहिए। जैसे—'राम में' का संस्कृतानुवाद 'राम

हि' 'रामों में' का 'राम सुप्', 'राम को' का 'राम अम्' 'रामों ने' का 'राम जस्' होगा। यहाँ करण और अपादान अर्थात् तृतीया और पञ्चमी विभक्तियों के चिह्नों के चुनाव में विद्यार्थी को कठिनाई हो सकती है क्योंकि दोनों का चिह्न 'से' ही है। इस विषय में यह लक्षण याद रखना चाहिए कि जिसके द्वारा क्रिया की जाय उसे करण, और जिससे अलग होना पाया जाय उसे अपादान कहते हैं। जैसे—राम 'चाहूँ से' कलम बनाता है। यहाँ 'करण' और आकाश 'से' तारे टूटते हैं में 'अपादान' समझना चाहिए। 'करण' और 'अपादान' का यह भेद इसी लक्षण द्वारा ज्ञात करना चाहिए चिह्न द्वारा नहीं। इसकी व्याख्या कारक-प्रकरण प्रथम-व्याख्यान में भी की जा चुकी है।

लिङ्ग पर विचार—हिन्दी में लिङ्ग केवल दो प्रकार के होते हैं, स्त्रीलिङ्ग और पुल्लिङ्ग। संस्कृत में लिङ्ग तीन प्रकार के होते हैं, स्त्रीलिङ्ग पुल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग। इनके उदाहरण देखिये—
स्त्रीलिङ्ग—रमा, लक्ष्मी, राधा, सीता, कमला आदि। पुल्लिङ्ग—राम, कृष्ण, दयानन्द, शंकर, जवाहर, आदि। नपुंसक लिङ्ग—फल, मधु, दधि, इत्यादि। इसी प्रकार अन्य वस्तुओं के लिंग भेद को व्यवहार से जानना चाहिए।

संस्कृत व्याकरण में एक विशेषता है। विशेष्य (सज्ञा) का जो लिङ्ग होता है वह वही लिङ्ग विशेषण का भी होता है। यह संस्कृत व्याकरण का नियम है। हिन्दी में इस नियम का सर्वथा पालन नहीं होता। जैसे—सुन्दर कविता। यहाँ कविता स्त्रीलिङ्ग है, अतः उसका विशेषण भी स्त्रीलिङ्ग होना चाहिए। किन्तु ऐसा नहीं है। संस्कृत में विशेष्य और विशेषण दोनों का समान लिङ्ग ही होता है यदि विशेष्य पुल्लिङ्ग है तो उसका विशेषण भी पुल्लिङ्ग ही होगा। इसी प्रकार अन्य लिङ्गों की व्यवस्था जाननी चाहिए। सभी प्रातिपदिकों के रूप इन्हीं तीन लिङ्गों के अनुसार सातों विभक्तियों में चलते हैं।

संस्कृत में हम १२ प्रातिपदिकों (सज्ञा सर्वनाम) को चुनते हैं जिनके रूप तीनों लिङ्ग और वचनों में यहाँ दिये जाते हैं। इन्हीं प्रातिपदिकों की भाँति अन्य प्रातिपदिकों के रूपों को हृदयङ्गम कर लेने के पश्चात् संस्कृत भाषा बहुत कुछ सरल हो जाती है।

जैसा पहले भी कहा जा चुका है, इस विषय में ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रातिपदिक के पश्चात् जो भी विभक्ति चिह्न जोड़े जाते हैं उनमें परिवर्तन होता रहता है। कभी-कभी विभक्ति का एक अक्षर लोप हो जाता है, और कभी-कभी सम्पूर्ण चिह्न। कहीं-कहीं एक विभक्ति के स्थान पर कोई अन्य शब्द प्रयोग में लाया जाता है। ऐसा क्यों होता है, इस परिवर्तन के सभी नियम सूत्रों द्वारा भगवान् पाणिनि ने अष्टाध्यायी में निर्देश किये हैं। इस लोप का ज्ञान इत्सज्ञा प्रकरण में होगा। किन्तु परिस्थितियों और स्थानों पर एक विभक्ति के स्थान पर दूसरे शब्द रखे जाते हैं इसका प्रकरण अष्टाध्यायी के सप्तम अध्याय के प्रथम पाद में किया गया है। इस समय केवल इतना समझ लीजिए कि उपर्युक्त बात होती है। अभी तो विभक्तियों के साथ प्रातिपदिकों का अर्थ जानना चाहिए जिससे साधारण संस्कृत का ज्ञान हो। व्याख्यानों की समाप्ति तक शब्द निर्माण का विषय भी आजायगा।

यहाँ विद्यार्थियों की विशेष जानकारी के लिए संस्कृत के १० चुने हुए तथा प्रतिनिधि प्रातिपदिकों का सिद्ध किया हुआ रूप दिया जाता है, जिसका अर्थ प्रत्यय याद कर लेना चाहिए। यदि एक प्रातिपदिक के रूप और रूपों का अर्थ याद या हृदयङ्गम कर लिया तो शेष सभी प्रातिपदिक आपको स्मरण हो जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं।

चुने हुए प्रातिपदिकों की सूची —

- | | |
|------------------------------|----------------------------------|
| १. राम — अकारान्त पुँल्लिङ्ग | ८. बालिका — अकारान्त स्त्रीलिङ्ग |
| २. तद् — यह सर्वनाम | ९. फल — अकारान्त नपुंसक |
| ३. यद् — जो ” | १०. मुनि — इकारान्त पुँल्लिङ्ग |
| ४. किम् — कौन ” | ११. साधु — उकारान्त पुँल्लिङ्ग |
| ५. इदम् — यह ” | १२. नदी — ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग |
| ६. युष्मद् — तुम ” | |
| ७. अस्मद् — मैं ” | |

अकारान्त पुँल्लिङ्ग मंज्ञा शब्द 'राम'

विभक्ति	हिन्दी	संस्कृत,	सिद्ध रूप
प्रथमा	राम ने	— राम सु	राम

	दा रामों ने — राम श्री	रामो
	बहुत रामों ने— राम जस्	रामाः
द्वितीय	रामको — राम अम्	रामम्
	दो रामों को —राम औट	रामो
	बहुत रामों को—राम शस्	रामान्
तृतीय	राम से — राम टा	रामेण
	दो रामों मे — राम भ्याम्	रामाभ्याम्
	बहुत रामों मे— राम भिस्	रामैः
चतुर्थी	राम के लिये — राम डे	रामाय
	दो रामों के लिये—राम भ्याम्	रामाभ्याम्
	बहुत रामों के लिये—राम भ्यम्	रामेभ्यः
पञ्चमी	राम मे — राम इसि	रामात्
	दो रामों मे — राम भ्याम्	रामाभ्याम्
	बहुत रामों मे — राम भ्यस्	रामेभ्यः
षष्ठा	राम का के की — राम इम्	रामस्य
	दो रामों का के की— राम आम्	रामयोः
	बहुत रामों का के की—राम आम्	रामाणाम्
सप्तमी	राम में — राम डि	रामे
	दो रामों में — राम आम्	रामयोः
	बहुत रामों में — राम मुप्	रामेषु
अष्टम	हे राम — राम सु	हे राम
	हे दो रामों — राम श्री	हे रामो
	हे रामों — राम जम्	हे रामाः

अथ प्रातिपदिकों का केवल संस्कृत रूप ही लिया जायगा। इनका हिन्दी रूप प्रत्येक विभक्ति में राम की भांति ही जानना चाहिए। जैसे— 'राम ने' 'राम को' आदि। संस्कृत विभक्तियों का अर्थ हिन्दी के प्रकरण में बता चुके हैं जैसे—संस्कृत विभक्ति 'मु' का हिन्दी अर्थ है 'ने' और 'अम्' का अर्थ है 'को'। इसी प्रकार अन्य विभक्तियों का अर्थ जानना चाहिए।

मर्यादा प्रातिपदिकों के विषय में एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि रूप चलाने समय इनका रूप बदल जाता है। नद् का बदल पर

केवल 'त' यद् का 'य' और किम् का केवल 'क' ही रह जाता है और उसी का रूप चलता है। इनके रूप तीनों वचनों में नीचे दिये जाते हैं।

तद् पुँल्लिङ्ग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र.—	सः	तौ	ते
द्वि.—	सम्	तौ	तान्
तृ.—	तेन	ताभ्याम्	तैः
च.—	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पं.—	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
प.—	तस्य	तयोः	तेषाम्
स.—	तस्मिन्	तयोः	तेषु

यद् पुँल्लिङ्ग

विभक्ति	एकव०	द्विवचन	बहुवचन
प्र.—	यः	यौ	ये
द्वि.—	यम्	यौ	यान्
तृ.—	येन	याभ्याम्	वैः
च.—	यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
पं.—	यस्मान्	याभ्याम्	येभ्यः
प.—	यस्य	ययोः	येषाम्
स.—	यस्मिन्	ययोः	येषु

किम् पुँल्लिङ्ग

कः	कौ	के
कम्	कौ	कान्
केन	काभ्याम्	कैः
कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः
कस्य	कयोः	केषाम्
कस्मिन्	कयोः	केषु

इदम् पुँल्लिङ्ग

अयम्	इमौ	इमे
इमम्	इमौ	इमान्
अनेन	आभ्याम्	एभिः
अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
अस्य	अनयोः	एषाम्
अस्मिन्	अनयोः	एषु

इकारान्त पुँल्लिङ्ग 'मुनि' उकारान्त पुँल्लिङ्ग 'साधु'

१ मुनिः	मुनी	मुनयः	साधुः	साधू	साधवः
२ मुनिम्	मुनी	मुनीन्	साधुम्	"	साधून्
३ मुनिना	मुनिभ्याम्	मुनिभिः	साधुना	साधुभ्याम्	साधुभिः
४ मुनये	मुनिभ्याम्	मुनिभ्यः	साधवे	"	साधुभ्यः
५ मुनेः	"	"	साधोः	"	"
६ मुनेः	मुन्योः	मुनीनाम्	साधोः	साध्वोः	साधूनाम्
७ मुनी	मुन्योः	मुनिषु	साधौ	"	साधुषु
८ हे मुने	हे मुनी	हे मुनयः	हे साधो	हे साधू	हे साधवः

ये उदाहरण पुंलिङ्ग सज्ञा या सर्वनाम् प्रातिपदिकों के हैं जो उपर दिये गये हैं। इनमें प्रथम अकारान्त, इकारान्त अथवा उकारान्त का तात्पर्य अकार (अ) इकार (इ) अथवा उकार (उ) है अन्त में जिनके ऐसे शब्द में हैं। जैसे—राम, मुनि और साधु। इसी प्रकार स्त्रीलिङ्ग में आकारान्त ईकारान्त आदि शब्द होते हैं। जैसे—माता, नदी आदि।

अब स्त्रीलिङ्ग प्रतिनिधि प्रातिपदिकों के रूप दिये जाते हैं :—

आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द 'वालिका'

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा —	वालिका	वालिके	वालिकाः
द्वितीया —	वालिकाम्	"	"
तृतीया —	वालिकया	वालिकाभ्याम्	वालिकाभिः
चतुर्थी —	वालिकायै	"	वालिकाभ्यः
पञ्चमी —	वालिकाया	"	"
षष्ठी —	"	वालिक्या	वालिकानाम्
सप्तमी —	वालिकायाम्	"	वालिकामु
सम्बोधन—	हे वालिके	हे वालिके	हे वालिका.

इसी प्रकार स्त्रीलिङ्ग सर्वनामों के रूप भी चलते हैं। इनमें तद् का 'ता', यद् का 'या' और किम् का 'का' हो जाता है और उन्नी में आगे रूप प्रत्यय दिया जाता है। यथा—

तद् = 'ता'—स्त्रीलिङ्ग

यद् = 'या'—स्त्रीलिङ्ग

सा	ते	ताः	या	ये	याः
ताम्	"	"	याम्	"	"
तया	ताभ्याम्	ताभिः	याया	याभ्याम्	याभिः
तस्यै	"	"	यस्यै	"	याभ्यः
तस्याः	"	ताभ्यः	यस्याः	"	"
तस्याः	तयाः	तामाय	यस्याः	याया	यायाम्
तस्याम्	"	तामु	यायाम्	"	यायाम्

‘ता’ का प्रथमा एकवचन में ‘सा’ हो जाता है जैसे पुँल्लिङ्ग
‘त’ का ‘स’ हो गया था ।

किम्=‘का’ स्त्रीलिङ्ग	इदम्-स्त्रीलिङ्ग शब्द
का के वाः	इयम् इमे इमाः
काम् ” ”	इमाम् ” ”
कया काम्याम् काभिः	अनया आभ्याम् आभिः
कस्यै ” काभ्यः	अस्यै ” आभ्यः
कस्या. ” ”	अस्या. ” ”
कस्याः कयो. कासाम्	अस्या. अनयोः आसाम्
कस्याम् ” कासु	अस्याम् ” आसु

अथ नपुंसकलिङ्ग प्रातिपदिकों का रूप लिखते हैं । इनके रूप प्रथमा और द्वितीया विभक्तियों के अतिरिक्त अन्य सभी विभक्तियों में पुँल्लिङ्ग ‘राम’ के समान ही चलते हैं । अत एव यहाँ केवल प्रथमा और द्वितीया विभक्तियों ही में रूप लिखे जाते हैं जो निम्नप्रकार हैं । शेष विभक्तियों में पुँल्लिङ्ग शब्दों के समान ही जानने चाहिए :—

अकारान्त नपुंसकलिङ्ग फल

प्रथमा —	फलम्	फले	फलानि
द्वितीया —	फलम्	फले	फलानि

सर्वनाम नपुंसकलिङ्ग ‘तद्’

प्रथमा —	तत्	ते	तानि
द्वितीया —	”	”	”

‘किम्’ सर्वनाम नपुंसकलिङ्ग

प्रथमा —	किम्	के	कानि
द्वितीया —	”	”	”

‘इदम्’ सर्वनाम नपुंसकलिङ्ग

प्रथमा —	इदम्	इमे	इमानि
द्वितीया —	”	”	”

अब 'युष्मद्' (तुम) और अस्मद् (मैं) इन दोनों प्रातिपदिकों के रूप दिये जाते हैं। इन सर्वनामों की विशेषता यह है कि इनके रूप सभी लिङ्गों में एक समान ही रहते हैं और उनमें कोई परिवर्तन लिङ्ग भेद के कारण नहीं होता।

युष्मद् (तुम)

प्र०	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वि०	त्वाम्	"	युष्मान्
तृ०	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
च०	तुभ्यम्	"	युष्मभ्यम्
पं०	त्वन	"	युष्मत्
प०	तव	युज्योः	युष्माकम्
स०	त्वयि	"	युष्मानु

अस्मद् (मैं)

प्र०	अहम्	अवाम्	अयम्
द्वि०	माम्	"	अस्मान्
तृ०	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
च०	मह्यम्	"	अस्मभ्यम्
पं०	मन्	"	अस्मन्
प०	मम	आवयोः	अस्माकम्
स०	मयि	"	अस्मानु

नोट:—इन रूपों को रट कर स्मरण नहीं करना चाहिए बल्कि तु, श्री, जसु, आदि विभक्तियों को प्रातिपदिकों के परचान् जोड़कर रत्नते और समझते जाइये। ऐसा बारम्बार करने से आपको न केवल ये रूप ही याद हो जायेंगे बल्कि आप विभक्तियों को भी पूर्ण रूप से याद कर सकेंगे। आगे चलकर अष्टाध्यायी के समझने में आपको मरलता होगी।

अभ्यास :—

(१) संस्कृत में अनुवाद कीजिए :—

१. राम का २. मोहन का ३. उसका ४. मेरा ५. तुम्हारा

६ जिसका ७ उसका ८ उसमें ९. तुम्हारे म १० इसमें ११. किनका १२ रामों का १३ मुनियों का आश्रम १४ साधुओं का मन्दिर १५. वह किसका पिता । १६ वे किसके फल । १७ विद्यालय के कोन बालक । १८ हम लोगों के कर में पुस्तकें । १९ जिसका कार्य उसका फल ।

(२) हिन्दी में अनुवाद कीजिये —

१ रामस्य जनक । तय भ्राता । केषा बालक । मुनीना साधूना वा मन्दिरम् । बाटिकाया पुष्पाणि फलानि च । दयानन्दस्य वेदाध्ययनम् । शङ्कराचार्यस्य वेदान्ताध्ययनम् । गौतमस्य न्यायदर्शनम् । कपिलस्य सांख्यदर्शनम् । वाल्मीकिरुवे रामायणम् । भारतस्य मुख्य-नगरम् ।

प्रश्न :—

१. विभक्तियों वित्तनी हैं तथा ये कौन-कौन है ?
- २ हिन्दी की विभक्तियों के चिह्नों का संस्कृत में क्या अनुवाद है ?
- ३ हिन्दी में शब्द परिवर्तन होता है या विभक्तियों में परिवर्तन होता है, संस्कृत की विभक्तियों से तुलना कीजिये ?
- ४ संस्कृत भाषा में विशेषण का लिङ्ग किसके अनुसार होता है ?

तृतीय व्याख्यान

क्रिया का विश्लेषण :—

इस व्याख्यान में हम क्रिया पर विचार करेंगे, और इस बात की चेष्टा करेंगे कि क्रिया, उसके रूप, और उससे सम्बन्धित अन्य विषयों को विद्यार्थी भली प्रकार समझ सक ।

क्रिया—जिससे किसी कार्य का करना या होना पाया जाय उसे क्रिया कहते हैं । इसकी परिभाषा प्रथम व्याख्यान में की जा चुकी है । क्रिया मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है । (१) सकर्मक और अकर्मक ।

सकर्मक—जिस क्रिया का कर्म के साथ सीधा सम्बन्ध हो या जिसका फल किसी वस्तु पर पड़े उसे सकर्मक क्रिया कहते हैं। जैसे—राम पुस्तक पढ़ता है। मोहन फल खाता है। यहाँ पढ़ता है, का सम्बन्ध पुस्तक और 'खाता है' का सम्बन्ध फल से है। अतः ये क्रियायें सकर्मक हैं।

अकर्मक—जहाँ क्रिया में ही कार्य की समाप्ति हो जाय, अर्थात् जिसका फल किसी वस्तु पर न पड़े यथवा जिसका कर्म न हो उसे अकर्मक क्रिया कहते हैं। जैसे—कृष्ण हसता है। राधा मोती है। यहाँ 'हसता है' 'मोती है' इन क्रियाओं में कार्य समाप्त हो जाता है और 'कर्म' की आवश्यकता नहीं है। अतः ये क्रियायें अकर्मक हैं।

इन क्रियाओं की मोटो पहिचान के लिए प्रत्येक वाक्य का क्रिया पर 'किसको' ऐसा प्रश्न कीजिये। उत्तर में यदि कोई वस्तु मिल जाय तो क्रिया सकर्मक है अन्यथा अकर्मक। जैसे—राम पुस्तक पढ़ता है। इसमें 'किसको' पढ़ता है इस प्रश्न का उत्तर 'पुस्तक को' मिल जाना है अतः 'पढ़ता है' यह क्रिया सकर्मक है। राधा मोती है, में 'किसको' का उत्तर नहीं मिलता। अतः यह अकर्मक है।

धातु + प्रत्यय = क्रिया।

संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में धातु और प्रत्यय के योग से क्रिया बनती है। धातु क्रिया के मूल रूप को कहते हैं अर्थात्-क्रियावाची शब्दों में से 'ना' को लोप कर देने पर जो बचता है उसको धातु कहते हैं। जैसे-करना, जाना, लड़ना, पढ़ना, बीड़ना आदि हैं। इन शब्दों में 'कर' जा, लड़, पढ़, बीड़ आदि धातु हैं। धातु के परचान् क्रिया बनाने के लिए जो कुछ जोड़ा जाता है उसे प्रत्यय कहते हैं। जैसे—पढ़ता है, जाना है, राना है। इनमें 'ता' प्रत्यय है, और पढ़, जा, राना, आदि धातु। ये स्त्रीलिङ्ग और पुल्लिङ्ग के भेद से भिन्न-भिन्न होते हैं। जैसे—यदि पुल्लिङ्ग में 'ता' प्रत्यय लगता है तो स्त्रीलिङ्ग में इसका रूप 'नी' होगा। इसी प्रकार काल-भेद में भी इनके रूप और परिवर्तित होते हैं। काल तीन है

भूतकाल—जो समय बीत चुका है उसे भूतकाल कहते हैं। जैसे-प्राचीन काल में महाभारत का युद्ध हुआ। मोहन गया।

वर्तमान काल—वीत रहे हुए समय को वर्तमान काल कहते हैं। जैसे—मैं पुस्तक पढ़ता हूँ। इस काल के प्रत्यय 'ता, ती आदि हैं।

भविष्यत् काल—आने वाले समय को भविष्यत् काल कहते हैं। जैसे—हम कलकत्ता जायेंगे।

'जाना' क्रियावाची शब्द में 'ना' को लोप कर दीजिए। 'जा' बच गया। अथ तीनों कालों में इसका रूप चलेगा। जैसे—वर्तमानकाल का प्रत्यय 'ता' है। तो 'ता' जोड़ने से जाता है वन जायेगा। भूत काल का प्रत्यय 'या' है। यहाँ धातु का भी परिवर्तन हो जाता है। अर्थात् भूत काल में 'जा' धातु का 'ग' हो जायेगा और 'या' प्रत्यय जोड़कर 'गया' क्रिया बनती है। इसी प्रकार भविष्यत् काल में 'येगा' प्रत्यय जोड़ा जाता है। जैसे 'जा' धातु है उसके पश्चात् 'येगा' प्रत्यय जोड़ने से 'जायेगा' क्रिया बन गई। इसी प्रकार से धातु के पश्चात् तीनों कालों के प्रयोगों को जोड़-जोड़ कर रूप बनाये जाते हैं। यह तो हिन्दी की व्यवस्था हुई। संस्कृत व्याकरण में २००० से हज़ार धातु हैं। और उन धातुओं का समग्र पाणिनि भगवान् ने किया है। जहाँ पर धातुआ का समग्र है उस पुस्तक को धातुपाठ कहते हैं। मैंने भी आवश्यक धातुओं का सकलन आख्यात-प्रकरण में कर दिया है। उन धातुआ को स्मरण कर लेना चाहिये। जैसे भू सत्तायाम्, गन्ध वृद्धौ इत्यादि धातुएँ हैं। इसमें 'भू' धातु का अर्थ है 'होना'। इसी प्रकार सभी धातुओं का अर्थ सप्तमी विभक्ति में दिया गया है।

अत्र इन धातुओं के पश्चात् तीनों कालों के भिन्न भिन्न प्रयोगों का जोड़कर क्रियायें बनाई जायँगी। जैसे पठ=पढ़ना, खाद=खाना, गच्छ=जाना, धाव=दौड़ना, लिख=लिखना, वद=बोलना, हस=हसना, पच=पकाना इत्यादि धातु हैं। पहले वर्तमान काल के प्रत्ययों का लीजिये। प्रत्यय जोड़ने के पूर्व हमसे ध्यान देना चाहिये कि जिस प्रकार हिन्दी में ता, ती इत्यादि प्रयोगों में स्त्रीलिङ्ग और पुल्लिङ्ग का भेद है, वैसा संस्कृत में नहीं। संस्कृत प्रयोगों में स्त्रीलिङ्ग और पुल्लिङ्ग का कोई भेद नहीं।

इस प्रकरण में 'पुरुष' के भेद का भी समझ लीजिये। ये तीन प्रकार के होते हैं—

प्रथमपुरुष, मध्यमपुरुष और उत्तमपुरुष । ससार में तीन ही पुरुष होते हैं । एक बोलने वाला, दूसरा सुनने वाला और तीसरा जिसके विषय में बात की जाय । बोलने वाले को उत्तम पुरुष, सुनने वाले को मध्यम पुरुष और जिसके विषय में बात की जाय उसको प्रथम पुरुष कहते हैं । हिन्दी में प्रथम पुरुष को अन्य पुरुष भी कहते हैं ।

मान लीजिये कि हमें 'पठ' धातु के रूप चलाने हैं । ये सभी पुरुषों में चलेंगे । जिस प्रकार प्रथम पुरुष के एकवचन, द्विवचन और बहुवचन में, उसी प्रकार मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष में भी चलेंगे । अर्थात् ६ प्रत्यय चाहिये जिनका धातु के पश्चात् जोड़कर सभी पुरुषों में रूप चलाये जा सकें । संस्कृत भाषा के वर्तमान काल के नव प्रत्यय ये हैं —

ति	त	अन्ति	पठति	पठत	पठन्ति
सि	थ	थ	पठसि	पठथ	पठथ
आमि	आव	आम	पठामि	पठाव	पठाम

प्रथम पुरुष स, तौ, ते के साथ पठ धातु । जैसे—स पठति = यह पढ़ता है । तौ पठत = वे दोनों पढ़ते हैं । ते पठन्ति = वे सब पढ़ते हैं ।

इसी प्रकार मध्यम पुरुष में—

त्व पठसि = तू पढ़ता है, युवाम पठथ = तुम दोनों पढ़ते हो । यूयम् पठथ = तुम सब पढ़ते हो । अहम् पठामि = मैं पढ़ता हूँ । आयाम् पठाव = हम दोनों पढ़ते हैं । वय पठाम = हम सब पढ़ते हैं ।

ऐसे ही लिखति, लिखत, लिखन्ति । लिखसि, लिखथ, लिखथ । लिखामि, लिखाव, लिखाम । इस प्रकार सभी धातुओं के पश्चात् वर्तमान काल में ति त अन्ति इत्यादि प्रत्यय जोड़कर क्रियाय बनायी जाती हैं ।

भूतकाल की क्रिया—भूतकाल में धातु के पहले 'अ' जोड़ा जाडा है और पश्चात् में प्रत्यय भी जो वर्तमान काल से भिन्न हैं । जैसे—न्, ताम्, अन् (प्रथम पुरुष में), तम्, त (मध्यम पुरुष में) अम्, व, म (उत्तम पुरुष में) अन् 'पठ' धातु लीजिये और वचन के भेद से एक एक प्रत्यय उस धातु के पश्चात् जोड़ते जाइये और धातु के रूप बनते जायेंगे ।

यथा —अपठत्, अपठताम्, अपठन् इति प्रथमपुरुषः

अपठः, अपठतम्, अपठत इति मध्यमपुरुषः

अपठम्, अपठाव, अपठाम इति उत्तमपुरुषः

सः अपठन् = उसने पढ़ा । तौ अपठताम् = उन दोनों ने पढ़ा ।
ते अपठन् = उन लोगों ने पढ़ा । त्वम् अपठः = तू ने पढ़ा । युवाम् अप-
ठतम् = तुम दोनों ने पढ़ा । यूयम् अपठत = तुम लोगों ने पढ़ा । अहम्
अपठम् = मैंने पढ़ा । आवाम् अपठाव = हम दोनों ने पढ़ा । वयम्
अपठाम = हम लोगों ने पढ़ा । इसी प्रकार अन्य पञ्च गन्ध इत्यादि
धातुओं का रूप भी चला लेना चाहिये ।

भविष्यत्काल की क्रियायें—

भविष्यत्काल में धातु के पश्चान् 'इष्यति' या 'ष्यति' प्रत्यय
जोड़े जाते हैं । यह ष्यति और इष्यति का भेद क्यों ?

इसकी विस्तृत व्याख्या 'सेट्' 'अनिट्' धातुओं के प्रकरण में की गई
है । जो अष्टाध्यायी के सप्तम अध्याय में है । साधारणतः हलन्त धातु
से इष्यति और अजन्त धातु से ष्यति या ष्यति प्रत्यय होते हैं ।

अब प्रत्येक धातुओं के पश्चात् पुरुष और वचन के भेद से प्रत्यय
जोड़े जायेंगे । इसका रूप वर्तमानकाल के जैसा ही चलता है जैसे :—

पठिष्यति	पठिष्यतः	पठिष्यन्ति
पठिष्यसि	पठिष्यथः	पठिष्यथ
पठिष्यामि	पठिष्यावः	पठिष्यामः ।

गमिष्यति, धाविष्यति, लेखिष्यति, वदिष्यति इत्यादि का रूप
चला लेना चाहिए । अब ष्यति प्रत्यय का रूप चलाने है । आप इष्यति
और ष्यति का भेद केवल 'पकार' से देख रहे हैं इसलिए इस शंका को
दूर करने के लिए पत्वप्रकरण पर व्याख्यान पढ़ लीजिये ।

पच् के पश्चात् ष्यति जोड़ा जायेगा तो—पक्ष्यति, पक्ष्यतः, पक्ष्यन्ति ।

पक्ष्यसि, पक्ष्यथः, पक्ष्यथ । पक्ष्यामि, पक्ष्यावः पक्ष्यामः ।

इसी प्रकार पा = पीना धातु से—पास्याति, पास्यतः, पास्यन्ति ।
पास्यसि, पास्यथः, पास्यथ । पास्यामि, पास्यावः, पास्यामः ।

उपर्युक्त उदाहरणों में से हमने भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान के केवल
एक-एक प्रकार के प्रत्यय को लिया है । भूत, भविष्यत् या वर्तमान के

कितने भेद हैं तथा उनमें कौन और कितने प्रत्यय लगते हैं, उन बातों की यहाँ आवश्यकता नहीं है। उनका विस्तृत व्याख्यान “लभ्यार्थ निर्णय प्रकरण” में करेंगे यहाँ तो अभी प्रारम्भिक सस्कृत ज्ञान के लिए बातें बतायी जा रही हैं। इन बातों को जानने के पश्चात् अष्टाध्यायी पढ़ने में सुविधा प्राप्त होगा। इस सक्षिप्त व्याख्यान में सस्कृत साहित्य या सस्कृत के व्याकरण को पढ़ाने का लक्ष्य नहीं यहाँ तो सस्कृत में प्रवेश कराया जा रहा है। इसलिए इन ताना बालों में धातुओं के रूपों का साधारण ज्ञान होना चाहिये। साधारण ज्ञान के लिए आशा देने के अर्थ में कौन प्रत्यय होगा, इसका विवेचन करना शेष है। जैसे तुम जानो, तुम पढ़ो, इत्यादि।

आशा देने के अर्थ में जो प्रत्यय प्रयोग में आते हैं वे उनके पठ धातु के साथ ये रूप हैं :—तु, ताम्, अन्तु। पठतु, पठताम्, पठन्तु। हि, तम्, त। पठ, पठतम्, पठत। आनि, आव, आम। पठानि, पठाव, पठाम।

इन रूपों में मध्यमपुरुष के पञ्चम्य में अकारान्त के पश्चात् ‘हि’ को लोप हो जाता है। यह विशेष बात है जो गढ़ रखनी चाहिए। अब सभी धातुओं का रूप बतला लेना चाहिए। जैसे गच्छ का रूप गच्छतु, गच्छताम्, गच्छन्तु। गच्छ, गच्छतम्, गच्छत। गच्छानि, गच्छाव, गच्छाम।

स्मरण मंकेत—

(१) क्रिया के दो भेद अकर्मक और सकर्मक।

(२) ‘किसने’ प्रश्न करने पर उत्तर मिले तो उसे सकर्मक क्रिया कहते हैं।

(३) धातु + प्रत्यय = क्रिया।

(४) हिन्दी में क्रियावाची शब्दों में से ‘ना’ के लोप कर देने पर जो बचता है, उसे धातु कहते हैं।

(५) धातु के पश्चात् क्रिया बनाने के लिए जो कुछ जोड़ा जाता है, उसे प्रत्यय कहते हैं।

(६) सस्कृत में पाणिनि मुनि के धातु पाठ में जो २००० क्रियावाची शब्द संगृहीत हैं, उन्हीं को धातु कहते हैं।

(७) संस्कृत में धातु के पश्चात् प्रत्ययों में लिङ्ग का कोई भेद नहीं होता ।

अभ्यास

- १—वर्तमान काल के कौन-कौन से प्रत्यय होते हैं ?
- २—लिख धातु का रूप वर्तमान के प्रत्ययों को जोड़कर लिखें तथा उसी प्रकार से पठ, गच्छ, धाव, इत्यादि धातुओं में वर्तमान, भूत, भविष्यत्, आहार्यक प्रत्ययों को जोड़कर दस दस रूपों को बोलें ।
- ३—भविष्यत् काल में पठ धातु का क्या रूप होता है ।
- ४—भूत काल में लिख धातु का रूप बोलें ।
- ५—आज्ञा देने के लिये किन् किन् प्रत्ययों का व्यवहार होता है, उन प्रत्ययों के साथ गच्छ का रूप बोलें ।
- ६—पठ, लिख, गच्छ, धाव इत्यादि धातुओं का रूप पाच पाच बार वर्तमानादि प्रत्ययों को जोड़ते हुए बोलिये ।

संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद —

रामस्य जनक गच्छति । ॥ विद्यालये पठिष्यति । रमा पाठशालाया पठिष्यति । ॥ पठ । ॥ अगच्छन् । ते कुत्र धावन्तु । मोहन ओदन खाति । तव पिता गृह गच्छति । तस्य अनुज धर्मईनगरे निवसति । धाव धाव । गच्छ गच्छ ।

हिन्दी से संस्कृत में अनुवाद —

राम का पिता जाता है । वह विद्यालय में पढ़ेगा । सीता पाठशाला में पढ़ेगी । तुम पढ़ो । मोहन भात खाता है । तुम्हारा छोटा भाई किस का पत्र लिखता है । जाओ जाओ । लिखो लिखो । उसका भाई कल कल शहर में रहता है । तुमने पत्र लिखा । उसने भात खा लिया ।

चतुर्थ व्याख्यान

गत व्याख्यानों में हम सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया आदि के विषय में विचार कर चुके हैं । प्रस्तुत व्याख्यान में सत्त्व से अव्यय का वर्णन करेंगे ।

अन्यय शब्द का अर्थ है जो 'य' को प्राप्त न हो। व्यय शब्द का वास्तविक अर्थ है 'विशेष रूप में चलना' जैसे, म्पया एक हाथ से दूसरे हाथ में चले जाने पर व्यय को प्राप्त होता है। यह 'व्यय' शब्द वि उपसर्ग पूर्वक 'इण् गती' धातु में बनता है जिसका अर्थ है 'विशेष रूप से चलना'। जो नहीं चलता है अर्थात् जिसके रूप नहीं चलते हैं उसे व्याकरण में अन्यय कहते हैं। गत व्याख्यानों में हम अन्य प्रकार के सज्ञा आदि शब्दों पर विवेचन कर चुके हैं जिनके रूप विभक्तियों में लिङ्ग और वचन भेद के अनुसार बदलते रहते हैं। कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनका किसी भी परिस्थिति में रूप नहीं बदलता है। जो सर्वथा एक ही समान रहते हैं। ऐसे शब्दों को व्याकरण में अन्यय कहते हैं। जैसे, यत्र, तत्र, सर्वत्र, यथा, तथा, अथवा, वा, आदि। इन शब्दों के रूप नहीं चलते। अतएव ये, या इसी प्रकार के अन्य सभी शब्द अन्यय कहलाते हैं। निम्न श्लोक में अन्यय के लक्षण को और भी स्पष्ट रूप में समझ लीजिये।

मन्त्र त्रिषु लिङ्गेषु मर्गेषु च विभक्तिषु ।

वचनेषु च सर्वेषु यन्न न्येति तदव्ययम् ॥

अर्थात् जो तीनों लिङ्गों (पुंलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग, और नपुंसकलिङ्ग), मार्गों विभक्तियों (प्रथमा, द्वितीया आदि) तथा तीनों वचनों (एक वचन द्विवचन और बहुवचन) में जिसके रूप नहीं चलते या बदलते हैं ऐसे शब्द को अन्यय कहते हैं।

कुछ अवयवों का विवरण—

यत्र=जहाँ, तत्र=वहाँ, सर्वत्र=सत्र जगह, यत्र=यहाँ, कुत्र=कहाँ, यत=जहाँ से, तत=वहाँ से, कुत=कहाँ से, यद्वा=अथ, तद्वा=तत्र, कदा=कब, सर्वत्र=सर्वत्र, सदा=सर्वदा, कदा=कब, कदा=जानकर, दया=मारकर, पठितुम्=पढ़ने के लिये, गन्तुम्=जाने के लिये, स्व=स्व (आने वाला) ह्य=कल (पीता हुआ) अथ=अथ परस्व=परस्व, सम्प्रति=इस समय, मास्त्रतम्=इस समय, इत्थानीम्=इस समय, अथुना=अथ च=और, एव=ही, इव=समान, जैसा, यथा=जैसे, तथा=वैसा। इस प्रकार के बहुत अव्यय होते हैं।

शब्दों के तीन प्रकार

उपर्युक्त व्याख्यानों में हम देख चुके हैं कि हिन्दी में शब्द स्थूलतया

पांच प्रकार के होते हैं, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और अव्यय । इन्हीं को निरुक्तकार महामुनि यास्क ने ४ विभागों के अन्तर्गत रखा है । ये विभाग हैं, नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात । किन्तु महामुनि पाणिनि की अष्टाध्यायी में शब्दों के तीन ही विभाग हैं । नाम, आख्यात और अव्यय । उनके मत में उपसर्ग और निपात, अव्यय ही हैं ।

संस्कृत से हिन्दी में अनुवादः—

रामस्य जनकः कदा गृहं गमिष्यति । स कुत्र निवसति । मोहनस्य गृहे कुत्र पुस्तकानि सन्ति । अथ रामः नदिं आगमिष्यति । तस्य भ्राता श्वः गृहं न गमिष्यति । स कथं पत्रं न लिखति ।

हिन्दी से संस्कृत में अनुवादः—

तुम कहा रहते हो । उसका भाई कल कहाँ जायेगा । वह कल कहा गया । आज किसका व्याख्यान है । तुम फल कहा से (आनयसि) लाते हो । तुम्हारी बाटिका में पुष्प और फल है या नहीं ।

पञ्चम व्याख्यान

अभी तक हमने हिन्दी और संस्कृत के व्याकरणों की केवल मोटी बातों पर विचार किया है; और देखा है कि उनमें परस्पर कहाँ-कहाँ भिन्नता है । ये बातें व्याकरण के प्रारम्भिक ज्ञान और विषय प्रवेश के लिए आवश्यक थीं । इनको अच्छी तरह समझ लेने और स्मरण करने के पश्चात् अष्टाध्यायी के सूत्रों का समझना सुगम हो जायगा । अष्टाध्यायी में सब मिलकर लगभग चार सहस्र सूत्र हैं, जिनमें से हम ने १३१६ सूत्रों में इस ग्रन्थ में व्याख्या के लिए चुना है । इस विषय में हमारा यह निश्चित मत है कि यदि इन सूत्रों को अच्छी प्रकार से समझ लिया जाय तो विद्यार्थी या अध्येता को वेद, उपनिषद्, गीता तथा अन्य साहित्यिक ग्रन्थ जैसे वाल्मीकि रामायण, महाभारत, भागवत् आदि के पठन-पाठन में व्याकरण सम्बन्धी कोई कठिनाई उपस्थित

नहीं होगी। अतः अब यह आवश्यक है कि इन व्याख्यानों में जो कुछ कहा जा रहा है उसे पूर्ण रूप में समझ लेना चाहिए।

सूत्र—प्राचीन काल में जब कि छापे की कला का आविष्कार नहीं हुआ था तब हमारे ऋषि मुनि अपने विचारों को या तो श्लोक बद्ध (रचिता में) करते थे या सूत्रों में रहते थे जिसमें छात्रों को उन्हें कण्ठस्थ करने में सरलता होती थी। अत्यन्त सक्षिप्त रूप से कहने को 'सूत्र' कहते हैं जैसे गागर में सागर भर दिया। सूत्र की परिभाषा विद्वानों ने इस प्रकार की है।

अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारविद् विश्वतो मुरम्।

अन्तोभयनयनं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥

अर्थानि—जो थोड़े अक्षरों वाला हो, उसके अर्थ ज्ञान में मन्त्रेह न हो, अनेक अर्थों को सूचित करने वाला हो, अनर्थक वर्ण समुदाय न रहित हो, और उसमें किसी भी अंग में व्यनता न हो, ऐसे वचन को विद्वान् लोग 'सूत्र' कहते हैं। ऐसे ही सूत्रों में भगवान् पाणिनि ने समस्त व्याकरण शास्त्र का प्रवचन किया है।

इनमें से प्रत्येक सूत्र के ६ अङ्ग हैं जो इस प्रकार हैं —

(१) पदच्छेद (२) विभक्ति (३) समास (४) अर्थ (५) उदाहरणम् और (६) सिद्धि।

इन अङ्गा या विषयों पर अविचार होने से सभी सूत्र समझ में आ जायेंगे और कोई कठिनाई नहीं होगी। अब हम इन सब पर पृथक् पृथक् रूप में विचार करते हैं।

(१) पदच्छेदः

पदच्छेद का शाब्दिक अर्थ है पदों को अलग-अलग कर देना। एक सूत्र कई पदों को मिला कर बनता है। इन्हीं पदों को सन्धि विच्छेद आदि करके पृथक् पृथक् करने को पदच्छेद कहते हैं। ऐसा करने से सूत्र का अर्थ समझने या लगाने में सरलता होती है। अब पद की परिभाषा —

पद—मुनन्त और तिङन्त शब्दों की पद सज्ञा होती है अर्थात् सुप् और तिङ् आदि विभक्तियाँ जिन शब्दों के अन्त में जुड़ी होती हैं

उनको 'पद' कहते हैं। सुप् और तिङ् ये कोन सी विभक्तियां हैं ? देखिये :—

सुप्—जैसा कि हम देख चुके हैं, संज्ञा, सर्वनाम आदि प्रातिपदिकों के पश्चात् सु, औ, जस् आदि २१ विभक्तियाँ जोड़ कर रूप चलाये जाते हैं। इन्हीं विभक्तियों में से प्रथम अक्षर (सु) और अन्तिम अक्षर (प्) लेकर 'सुप्' शब्द बनाया गया। अर्थात् सु औ, जस् आदि २१ विभक्तियों ही को 'सुप्' कहते हैं।

तिङ्—इसी प्रकार धातुओं के पश्चात् जोड़ी जाने वाली विभक्तियों को तिङ् कहते हैं। इन विभक्तियों का पहला अक्षर 'ति' और अन्तिम 'ङ्' है, जिनके योग से 'तिङ्' बना। अर्थात् क्रिया बनाने के लिए धातुओं के पश्चात् जोड़ी जाने वाली १८ विभक्तियों को 'तिङ्' कहते हैं, जो ये इस प्रकार हैं।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
परस्मैपद—	तिप्	तस्	मि
	सिप्	थस्	थ
	मिप्	वस्	मस्
आत्मनेपद—	त	आताम्	क
	थास	आथाम	ध्यम्
	इद्	वहि	महिङ्

इन्हीं विभक्तियों से 'ति तः अन्ति' आदि प्रत्यय बने हैं जो धातुओं के पश्चात् जोड़े जाते हैं, और रूप चलाया जाता है।

परस्मैपदी तथा आत्मनेपदी धातुओं का वर्णन अन्यत्र किया जायेगा।

प्रत्याहार—प्रत्याहार का अर्थ है संक्षिप्त करना, अर्थात् किसी एक शब्द या अक्षर समूह के लिए एक सांकेतिक शब्द का प्रयोग करना। जैसे—सु, औ, जस् आदि विभक्तियों के लिए 'सुप्' और तिप्, तस्, मि आदि १८ विभक्तियों के लिए 'तिङ्' सांकेतिक शब्द को व्यवहार में लाना। सुप् और तिङ् संकेतों को प्रत्याहार कहेंगे। इसी प्रकार भगवान् पाणिनि ने प्रत्याहारों का प्रयोग किया है।

“अ ङ उ ण्, ऋ लृक् इत्यादि प्रत्याहार सूत्र कहलाते हैं। इन

चोदह सूत्रों में ४० प्रयाहार बने हैं। जैसे अच्, अच्, हल्, अल्, आदि। अच् कहने से 'अ' से 'क' तक के सभी अक्षरों (अ, इ, उ, ए, लृ) का बोध समझना चाहिए। इसी प्रकार अच् से 'अ' से लेकर 'च्' तक के सभी स्वर, हल् में 'ह' से 'ल्' तक के सभी व्यञ्जन और अल् से 'अ' से लेकर 'ल्' तक के सभी अक्षरों को समझना चाहिए। अतः सुप्, तिङ्, अक्, अच्, हल्, अल्, आदि सभी प्रयाहार हैं और वे अपने-अपने अक्षर समूहों को प्रकट करते हैं। इन मन्त्रों को समझने के पश्चात् पदों की परिभाषा सरल हो जाती है। देखिये, सुप् और तिङ् प्रत्याहार में आने वाला कोई भी प्रत्यय जिस प्रातिपदिक या धातु के अन्त में हो उस प्रत्यय अन्तर्गते शब्द को पद कहते हैं। जैसे, राम पठति आत्ति। राम के अन्त में जो () लगे हैं वह 'सु' का ही परिवर्तित रूप है और पठति के अन्त में तिप् 'ति' प्रत्यय का रूप ही है। अतः ये क्रमशः सुपन्त और तिङन्त पद हैं। ऐसे ही पदों का पृथक्-पृथक् करना 'पदच्छेद' कहलाता है। जैसे—राम गृह गच्छति। इस वाक्य में राम और गृह में क्रमशः सु और अम् तथा 'गच्छति' में 'ति' विभक्ति जुड़ी हुई है। अतः राम और गृहम्, सु, और जस् आदि विभक्तियों के कारण सुपन्त और गच्छति में 'तिप्' होने से तिङन्त है। इस ग्रन्थ में सभी सूत्रों का इसी प्रकार पदच्छेद कर दिया गया है।

(२) विभक्तिः

पदच्छेद के पश्चात् विभक्ति क्रम आपसे आप समझ में आ जाता है। पद के पृथक् हो जाने पर उसकी विभक्ति भी स्पष्ट हो जाती है। मान लीजिये कि किम् प्रातिपदिक के अन्त में 'सु' लगा है तो उसे प्रथमा का पञ्चम कहेंगे। इस ग्रन्थ में इसका चिह्न ११ है जो यथास्थान सूत्र पर लिखा रहेगा। अन्त में डम् लगे रहने पर वह पठि का पञ्चम ६१ होगा। इसी प्रकार सूत्रों के सभी पदों पर विभक्ति लिख दी गई है। किसी भी सूत्र को देख लीजिये।

(३) समासः—अनेक पदों के एक पद हो जाने को समास कहते हैं। जैसे दशरथस्य पुत्र (दशरथ का पुत्र) इसमें दो पद हैं। दोनों को मिला कर दशरथपुत्र एक पद बन गया। इसी को समास कहते हैं।

पदों का 'डस्' और 'सु' का लोप हो गया और फिर एक दूसरा, 'सु' आकर दशरथपुत्र बना। अतः समास में कम से कम दो पदों का एक पद होना निश्चित ही पाया जाता है। इससे अधिक पद भी हो सकते हैं। तो इन दोनों पदों में 'दशरथ' शब्द का पूर्वपद और पुत्र शब्द का उत्तरपद कहेंगे। पूर्व का अर्थ पहल का और उत्तर का अर्थ पश्चात् का है। समास में कभी पूर्व पद प्रधान हो जाता है और कभी उत्तरपद। कभी कभी दोनों पद प्रधान हो जाते हैं और कभी दोनों पदों को छाँटकर एक तीसरा पद ही प्रधान हो जाता है। इसी कारण मुख्यतया समास चार प्रकार के होते हैं। (१) अव्ययीभाव (२) तत्पुरुष (३) बहुव्रीहि (४) द्वन्द्व। कर्मधारय इत्यादि अन्य जितने भेद हिन्दी या संस्कृत में होते हैं, वे सभी इन्हीं चार समासों के भेद हैं।

अव्ययीभावः—पूर्वपदार्थप्रधान अव्ययीभाव अर्थात् जिसमें पूर्वपद का अर्थ प्रधान है, उसे अव्ययीभाव समास कहते हैं। जैसे उपकृष्णम्। उपकृष्णम् में दो पद हैं उप और कृष्णस्य। उप अव्यय है और समीप अर्थ का बोधक है। अतः उपकृष्णम् का विग्रह हुआ कृष्णस्य समीपम्। समस्त पदों की विभक्ति के साथ अलग अलग करने को विग्रह कहते हैं। जैसे दशरथपुत्र यह समास किया हुआ शब्द है। अलग अलग करने पर दशरथस्य पुत्र होगा। विग्रह दो प्रकार का होता है। (१) लौकिक और (२) अलौकिक। लोक अर्थात् संसार में जो वाक्य रूप से बोलने योग्य हो उसको लौकिक विग्रह कहते हैं, तथा जो लोक में बोला न जाता हो, केवल व्याकरण का कार्य दर्शाने के लिए ही विग्रह किया जाता है उसको अलौकिक विग्रह कहते हैं। जैसे दशरथ डस् पुत्र स। ऐसा विग्रह लोक में बोला नहीं जाता। लेकिन व्याकरण में इसकी आवश्यकता पड़ती है, तो उपकृष्णम् यहाँ पर लौकिक विग्रह कृष्णस्य समीपम् हुआ और अलौकिक विग्रह कृष्ण डस् उप सु हुआ। दोनों पदों से मिलकर 'उपकृष्णम्' बना। यह कैसे बना इसका विवेचन समास प्रकरण में किया जाएगा। यहाँ पर तो दो पद मिलकर एक पद बन गया यही जानना चाहिये। अव्ययीभाव समास नपुंसक लिङ्ग और अव्ययसङ्ग होता है। इसलिये इसके रूप सब विभक्तियों में नहीं चलते। अनारान्त अव्ययीभाव से परे विभक्ति

को अर्थ हो जाता है। उपकृष्णम् का अर्थ है कृष्ण के समीप। यहाँ पर उप अव्यय की प्रधानता है न कि कृष्ण की, और उप पूर्वपद है इस लिये उपकृष्णम् में पूर्वपदार्थ की प्रधानता होने से अव्ययी भाव का लक्षण पट गया। पूर्वपदार्थप्रधान अव्ययीभाव इति।

तत्पुरुषः—उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुष। जिस समास में उत्तर-पदार्थ प्रधान होता है उसे तत्पुरुष समास कहते हैं। जैसे दशरथस्य पुत्र इति दशरथपुत्र। इस वाक्य में दशरथ के पुत्र का याव होता है अतः नहीं प्रधान है।

‘राजपुरुष’ पद का अर्थ है राजा का पुरुष। ‘राजपुरुषमा नय’ इस वाक्य का अर्थ है राजा के पुरुष को लाओ। इस वाक्य का सुनने वाला राजा को तो नहीं बल्कि राजा के पुरुष को ही लावेगा। अतः उत्तरपदार्थ प्रधान वाला समास तत्पुरुष समास होता है।

बहुव्रीहिः—अन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहि। जिस समास में दोनों पदों की प्रधानता नहीं बल्कि अन्य ही पदार्थ प्रधान हो उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं। जैसे चित्रगु गच्छति। इस वाक्य का अर्थ है चितकररी गायों वाला कोई व्यक्ति जाता है। अब इस समास पद में चित्र और गो दो पद हैं। जिस व्यक्ति को चित्रगु कहा जा रहा है। वह तो स्वयं चितकररी नहीं है और न वह गाय है परन्तु वह चितकररी गाय वाला है। इससे यहाँ पर प्रधानता चित्र और गो इन दोनों पदों की नहीं है। परन्तु इन दोनों चित्र और गो पदों के अर्थ से भिन्न एक तीसरा पदार्थ जो कोई व्यक्ति है, उसकी प्रधानता है। इसलिये अन्य पदार्थ प्रधान वाला समास बहुव्रीहि समास होता है।

द्वन्द्वः—उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्व। जिस समास में दोनों पदों की प्रधानता होती है उसे द्वन्द्व समास कहते हैं। जैसे रामलक्ष्मणी गच्छत। इस वाक्य का अर्थ है राम और लक्ष्मण जाते हैं। यहाँ पर जाने वाले राम और लक्ष्मण दोनों ही प्रधान हैं। हिन्दी में भी ‘दाल भात’ ‘हाथ पैर’ इत्यादि उदाहरण हैं। दाल और भात दोनों ही प्रधान हैं।

पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभाव आदि जो चारों समासों के लक्षण दिखलाए हैं वे सब मान्य लक्षण हैं। प्रायः करके तत्तत् समास में पूर्वादि पदों की प्रधानता होती है। कहीं कहीं पर इन लक्षणों का न्यायात भी

देखा जाता है यथा राजमाप, राजरोग । यहा तत्पुरुष समास होने से माप और रोग की प्रधानता होनी चाहिए परन्तु प्रधानता है राज की, क्योंकि विग्रह वाक्य मापाणा राजा और रोगाणा राजा में राजा की ही प्रधानता अभिप्रेत है । इसी प्रकार अन्य समासों में भी समझें ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में समासों के अवान्तर भेदों का भी निर्देश किया गया है । जैसे पृष्ठी तत्पुरुष, आदि । अवान्तर भेदों का विस्तृत वर्णन समास प्रकरण के व्याख्यान में देखिये । यहा समास के मुख्य भेदों का निरूपण कर दिया गया है जिससे विद्यार्थी सूत्रों में आये हुए समासों को समझ सकें ।

(४) अर्थः—अर्थ से तात्पर्य सूत्र के अर्थ से है । सूत्र का अर्थ जानना चाहिए अन्यथा उसे रटने से विशेष लाभ न होगा । सूत्रों के अर्थ लगाने के लिए 'अनुवृत्ति' का विशेष रूप से ज्ञान होना चाहिए । इसके बिना ठीक अर्थ नहीं लगाया जा सकता । यह 'अनुवृत्ति' ही अष्टाध्यायी क्रम की विशेषता है क्योंकि ऊपर के सूत्रों से भी कई पद आकर जिस सूत्र का अर्थ करना हो उसमें जुड़ जाते हैं । तभी उसका ठीक अर्थ लगता है अन्यथा नहीं । बार बार एक ही बात को न दुहरा कर उसे केवल एक ही बार कह दिया जाता है और उसकी अनुवृत्ति आगे चलती रहती है ।

ये अनुवृत्तियाँ दो प्रकार की होती हैं, एक लम्बी और दूसरी छोटी । जिस पद या पदों की अनुवृत्ति अनेक सूत्रों में दूर तक जाती है उसे 'अधिकार' कहते हैं ।

वार्त्थ्या उस पद को न कहकर एक ही बार कह दिया जाता है और जहाँ तक उस सूत्र या पद का अधिकार जाता है, वह अपने वाद के सभी सूत्रों में उपस्थिति होकर उस सूत्र का अङ्ग होता है । जैसे—प्रत्यय (३.१.१) परस्च (३.१.२) ये दोनों अधिकार मूल हैं । और इनका अधिकार पञ्चमाध्याय के अन्त तक जाता है । इसका अर्थ हुआ कि ये दोनों सूत्र पञ्चमाध्याय तक सभी सूत्रों में जाकर उसका अङ्ग बन जाते हैं । और तभी उस सूत्र का अर्थ होता है । तृतीयाध्याय में धातो (३.१.६१.) भी अधिकार सूत्र है । उसका अधिकार तृतीयाध्याय के अन्त तक जाता है ।

स्पष्ट करने के लिए मान लीजिये हमें 'वर्तमाने लट्' (३०१०३) सूत्र का अर्थ करना है। अर्थ करने से पूर्व हमें इसके सभी अधिसार सूत्रों को उपस्थित करना चाहिए। यहाँ 'प्रत्यय' (३.१.१) परश्च (३.१.२) और धातो (३.१.६१.) इन तीनों सूत्रों का अधिकार आ रहा है अतः इन तीनों सूत्रों को 'वर्तमाने लट्' सूत्र के साथ जोड़ दीजिये। इस प्रकार सूत्र हो जायगा, "धातो, प्रत्यय, परश्च, वर्तमाने लट्"। किन्तु यह किसी क्रम में नहीं रखे गये। क्रम से रखने को अन्वय करना कहते हैं। अन्वय करने के पर्याप्त ही ठीक अर्थ निकलता है।

अन्वय की शैली—भगवान् पाणिनि ने अष्टाध्यायी के सूत्रों में अधिसार रूप से चार विभक्तियों का ही प्रयोग किया है, प्रथमा, पञ्चमी, पष्ठी और सप्तमी। इन्हीं विभक्तियों की सूत्रों में प्रधानता है। किन्हीं सूत्रों में ये चारों विभक्तियाँ प्रयुक्त हुई हैं और किन्हीं में इन से न्यून। तृतीया, द्वितीया और केवल प्रथमा विभक्ति का भी किन्हीं-किन्हीं सूत्रों में प्रयोग मिलता है अस्तु। इन विभक्तियों को अन्वय रूप में रखने के लिए '५७६१' 'मर्या सूत्रों को यादकर लीजिये। इनमें से प्रत्येक अङ्क अपनी २ विभक्ति का परिचायक है। ५ में पञ्चमी, ७ से सप्तमी, ६ से पष्ठी और १ अङ्क से प्रथमा विभक्ति का ग्रहण करना चाहिए। यदि किसी सूत्र में चारों विभक्तियाँ हो तो उन्हें इसी क्रम से रख दीजिये। सूत्र का अर्थ निकल आयेगा। जो विभक्ति न हो उसका स्थान रिक्त हो जायगा किन्तु अन्वय का क्रम यही रहेगा। अर्थात् पञ्चमी के पर्याप्त सप्तमी, फिर पष्ठी और अन्त में प्रथमा विभक्ति को रखना चाहिए। केवल एक विभक्ति रहने पर एक ही रहेगी। सूत्रों में प्रयुक्त विभक्तियाँ को क्रम से रखने का यही क्रम है जिससे सूत्रों का अर्थ लगाने में सरलता होती है।

अब हम अपने प्रकृत विषय पर आते हैं। 'वर्तमाने लट्' का अर्थ लगाते समय हमने देखा था कि उसका रूप कुछ इस प्रकार का हो गया था। "प्रत्यय, परश्च, धातो, वर्तमाने लट्"। इसमें पष्ठी विभक्ति वाला कोई पद नहीं है। इसलिए दिये हुए 'संख्या-सूत्र' के अनुसार विभक्तियों का क्रम ५७१ के समान रहेगा। अर्थात्, धातो ५१ वर्तमाने ७१ लट् ११ प्रत्यय ११ पर ११ च (अन्वयान् पदम्)।

तदनुसार “धातो वर्तमाने लट् प्रत्यय परश्च” यह सूत्र बना अब इसका अर्थ हिन्दी में करने की चेष्टा करनी चाहिए।

इन चार विभक्तियों की अर्थ-विधि :-

इन विभक्तियों के साधारण साहित्यिक अथवा व्याकरण के अनुसार जो अर्थ होते हैं उनका वर्णन हम गत व्याख्यानों में यथास्थान कर आये हैं। किन्तु इन चारों (५, ७, ६, १) विभक्तियों के अर्थ जो विशेषतया अष्टाध्यायी में ग्रहण किये जाते हैं इस प्रकार हैं —

विभक्ति	अर्थ
१ प्रथमा	— होता है या है।
२. पञ्चमी	— उसके परचात्।
३. पट्टी	— के स्थान में या के
४ सप्तमी	— परे रहने पर या में।

इन्हीं के अनुसार अब ‘वर्तमाने लट्’ सूत्र का अर्थ लगाइये। सूत्र का रूप इस प्रकार हो गया था, “धातो वर्तमाने लट् प्रत्यय परश्च”।

धातो ५।१ = धातु के परचात्।

वर्तमाने ७।१ = वर्तमान काल में।

लट् प्रत्यय १।१ = लट् प्रत्यय होता है।

पर १।१ च अव्यय० = और वह परे होता है।

अर्थात् इस सूत्र का अर्थ हुआ कि धातु के परचात् वर्तमान में लट् प्रत्यय होता है और वह परे होता है। इसी प्रकार से अनुवृत्ति को लेकर सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में सूत्रों का अर्थ करना चाहिए। ‘रटना नहीं चाहिये। थोड़े दिनों के परचात् अनुवृत्ति आप से आप दिखाई देने लगती है। इस ग्रन्थ में अनुवृत्ति को लेकर अर्थ करने के पूर्व [] इस कोष्ठक में लिख दिया है। कोष्ठक में लाये गये पदों की विभक्तियों को जिस सूत्र से वे पद लाये गये हैं, उन सूत्रों पर अकित पदच्छेदादि से देख लेना चाहिये।

५. उदाहरण—सूत्रों के पदच्छेद, विभक्ति, समास, अर्थ आदि समझ लेने के परचात् स्वाभाविक इच्छा उनके उदाहरण जानने की

होती है। ये उदाहरण प्रत्येक सूत्र के साथ ग्रन्थ में लिख दिये गये हैं।
बढ़ी पर देख लाजिये।

६. सिद्धि—उदाहरण का पता लग जाने के पश्चात् यह जानने की इच्छा उत्पन्न होती है कि यह उदाहरण किस प्रकार बना। इसके लिए आगे पीछे के सम्बन्धित सूत्रों के अनुसार किमी उदाहरण को सिद्ध करना पड़ता है। हमने सूत्रों को लगाकर उदाहरणों को सिद्ध किया है। प्रत्येक सूत्र किसी न किमी नियम या कार्य का निर्देश करता है जिसके अनुसार कार्य होता है। किम सूत्र में क्या कार्य हुआ इसका निर्देश भी ग्रन्थ में मली भाति कर दिया है और सम्बन्धित सूत्रों को टिप्पणी में लिख दिया जिससे विद्यार्थी को समझने में कठिनाई नहीं होगी।

इन प्रकार पदच्छेद, विभक्ति, समास, अर्थ, उदाहरण और सिद्धि पूर्वक जो अध्येता अध्याप्यायी के समस्त सूत्रों का अध्ययन करेगा, वह लौकिक तथा वैदिक दोनों प्रकार के शब्दों का पूर्ण ज्ञाता होगा, ऐसा हमारा मत है। अतएव अध्ययन के समय किमी भी अङ्ग को नहीं छोड़ना चाहिए। धैर्य पूर्वक इन व्याख्यानों को पढ़कर अक्षरगत समझकर आगे बढ़ना चाहिए। विरोध कठिनाई होने पर लेखक के साथ पत्र व्यवहार से दूर कर लेना चाहिए। लेखक यथाशक्ति कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न करेगा। इससे अगले संस्करण में भी संशोधन किया जा सकेगा।

पष्ठ व्याख्यान

सूत्रों के प्रकार

इस व्याख्यान में हम अध्याप्यायी में दिये गये सूत्रों और उनके प्रकार पर सचेतन से विचार करेंगे। महामुनि पाणिनि ने अध्याप्यायी में केवल मात्र प्रकार के सूत्रों का प्रवचन किया है, जो इस प्रकार है।

(१) मक्षा, (२) परिभाषा, (३) विधि, (४) निषेध, (५) नियम

(६) अतिदेश और (७) अधिकार ।

अब इन सातों प्रकार के सूत्रों पर पृथक्-पृथक् विचार करते हैं । अष्टाध्यायी-अध्ययन के लिए इन सूत्रों को ठीक ठीक समझ लेना बहुत आवश्यक है ।

१. सज्ञासूत्र—अष्टाध्यायी के प्रथम अध्याय में केवल सज्ञासूत्र दिये हुए है, जिनका तात्पर्य अन्य अध्यायों में प्रयुक्त व्याकरण के शब्दों का विवेचन करना है इसीलिए उन्हें सज्ञासूत्र कहा गया है सज्ञा सम् उप-सर्गपूर्वक ज्ञा धातु से बना है जिसका अर्थ है अच्छी तरह से जानना । सज्ञा शब्द का अर्थ है—सम्यग् जानीयुर्यया सा सज्ञा अर्थात् जिसके द्वारा किसी वस्तु को अच्छे प्रकार से जाना जाय उसे सज्ञा कहते हैं । इसीलिए किसी वस्तु, ग्राम, शहर, मनुष्य, पशु आदि के नाम सज्ञा कहलाते हैं । 'नाम' से वह वस्तु, पशु या मनुष्य शीघ्र पहिचान लिया जाता है ।

अस्तु प्रथम अध्याय में केवल नामों का उल्लेख और परिभाषा दी गई है जिनका प्रयोग अगले ७ अध्यायों में किया गया है । जैसे—वृद्धि, गुण, सयोग, ध्रु, घ, सम्प्रसारणम्, लोप, उपधा, पदम्, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, प्रातिपदिकम्, आत्मनेपदम्, परस्मैपदम्, लघु, गुरु, कर्म, कर्ता, निपात उपसर्ग, गति, विभक्ति, सहिता, अवसानम् आदि । इन सभी सज्ञाओं की व्याख्या भी साथ ही कर दी गई है । जैसे—पहला नाम 'वृद्धि' है । इसका सूत्र है, "वृद्धिरादैच्" । इसका अर्थ है 'आ', 'ऐ', 'औ' इन तीनों वर्णों का नाम वृद्धि है । व्याकरण की भाषा में कहा जायगा कि आ, ऐ, औ, इन वर्णों की वृद्धि सज्ञा है । इसी प्रकार सूत्रों में ही नाम और उनकी व्याख्या दी गई है । छात्रों को चाहिए कि वे इन नामों अर्थात् सज्ञाओं को प्रथम अध्याय में खूब समझ लें जिससे आगे अध्ययन में उन्हें कठिनाई न हो ।

२. परिभाषासूत्र—परिभाषा किसे कहते हैं । इस प्रश्न पर विचार करते हैं । परित् सर्वतो भाष्यन्ते नियमा याभिस्ता परिभाषा । जिससे यह प्रकार नियमों की स्थिरता की जाय उसे परिभाषा सूत्र कहते हैं । ये सज्ञा और परिभाषा सूत्र स्वयं कोई कार्य नहीं करते बल्कि अन्य विधि या निषेध सूत्रों की सहायता करते हैं । जैसे वृद्धिरेचि सूत्र है ।

वहा पर सूत्र का अर्थ है अवर्ण के पश्चात् एच् परे हो तो पूर्व और पर के स्थान में वृद्धि रूप प्रकाश होता है। प्रकाश का अर्थ है दोनों मिलकर एक हो जाना। उदाहरण स्वर्धा + ऐतिकायन यहाँ पर अवर्ण के पश्चात् ऐ है अतः प्रकाश होगा। अतः वृद्धि किसको कहते हैं, इस पर सज्ञा सूत्र वृद्धिरादैच् वहा पर पहुँच जायेगा। और बतायेगा कि आ, ऐ और ओ को वृद्धि कहते हैं। अर्थात् किन किन वर्णों को वृद्धि सज्ञा है, इतना ही निर्देश करके सज्ञा सूत्र का काम समाप्त हो जाता है। अतएव ज्ञात हुआ कि विधि सूत्र जो वृद्धिरेचि है उसकी सहायता करने में सज्ञा सूत्र वृद्धिरादैच् ने काम किया।

सज्ञा सूत्र की विशेषता यह है कि यह विधि सूत्रों का अङ्ग नहीं बनता। वह तो अलग रहते हुए परिचय मात्र कराता है। परन्तु परिभाषा सूत्र में यह बात नहीं। परिभाषा सूत्र जब किसी दूसरे विधिसूत्रों के साथ लगेगा तो वह उस सूत्र का अङ्ग बन जायेगा। और तब दोनों सूत्रों को मिलाकर एक सूत्र समझकर अर्थ करना चाहिये। जैसे इको गुणवृद्धौ (१.१.३) परिभाषा सूत्र है। इसका अर्थ है “गुण और वृद्धि शब्द से जहाँ गुण वृद्धि का विधान किया जाय वहाँ इक् ही के स्थान में होता है।” इक् प्रत्याहार है, और इ से लेकर क तक वर्णों का ग्रहण करता है। अच्छा तो अब गुण विधान करने वाले या वृद्धि विधान करने वाले सूत्रों को देखिये। मिदेर्गुण (७.३.८६) सूत्र से लेकर आगे गुण विधान करने वाले सूत्र हैं। ‘गुण’ किसे कहते हैं? अदेङ्गुण (१.१.२) सूत्र का अर्थ है अ, ए, और ओ की गुण सज्ञा होती है। गुण होने का अर्थ है कहीं पर अ हो जाना, कहीं पर ए हो जाना और कहीं पर ओ हो जाना। अष्टाध्यायी के सभी सूत्रों में यह व्यवस्था जाननी चाहिये कि जहाँ भी गुण अर्थात् अ, ए, ओ होता है वहाँ ऋ के स्थान में अ, इ के स्थान में ए और उ के स्थान में ओ होता है। उसी प्रकार से वृद्धि होने के अर्थ है ऋ के स्थान में आ, इ के स्थान में ऐ और उ के स्थान में औ। कहने का तात्पर्य यह है कि गुण और वृद्धि जहाँ भी होती है वहाँ ऋ के स्थान में गुण ‘अ’, और वृद्धि ‘आ,’ इ के स्थान में गुण ‘ए’ और वृद्धि ‘ऐ,’ उ के स्थान में गुण ‘ओ’ और वृद्धि ‘औ’ होते हैं। गुण और वृद्धि कब होती है, इसका विस्तृत विवरण कृन् प्रत्ययों की सिद्धि के समय दिया जायेगा।

तो देखिये मिदेर्गुण सूत्र कहता है कि मिद् धातु को गुण हो जाय । अम प्रश्न है कि मिद् में तो म्, इ और द् तीन अक्षर हैं किसके स्थान में गुण हो । एक और परिभाषा सूत्र है अलोऽन्त्यस्य (१.१ ४६) वह मिदेर्गुण के पास पहुँच गया । वह परिभाषा सूत्र विधि सूत्र के पास भटिति (शीघ्र) पहुँचते है । तो अलोऽन्त्यस्य सूत्र भी पहुँच कर मिदेर्गुण के साथ लग गया अर्थात् परिभाषा सूत्र विधि सूत्र का अङ्ग होता है इस नियम के अनुसार वह मिदेर्गुण इस सूत्र का अङ्ग हो गया ।

अलोऽन्त्यस्य सूत्र का अर्थ अष्टाध्यायी प्रकाशिका में भी दिया है । पष्ठी निर्दिष्ट आदेश अन्तिम अल् अर्थात् अन्तिम अक्षर के स्थान में होता है । पष्ठी निर्दिष्ट का अर्थ है, पष्ठी विभक्ति से निर्देश अर्थात् अष्टाध्यायी के सूत्रों में पष्ठी विभक्ति से जहाँ पर कोई आदेश कहा गया है । आदेश उसको कहते है जो किसी को हटा कर स्वयं हो जाए ।

आदेश तीन प्रकार का होता है लोप, सर्वादेश और वर्ण विकार । लोप का अर्थ किसी वस्तु का अदर्शन हो जाना । सूत्र भी है अदर्शन लोप (१.१.५६) जिसका दर्शन न हो उसको अदर्शन कहते हैं । पाणिनि किसी को अदर्शन कहते हैं उमका अर्थ यह है कि वस्तु की सत्ता नहीं समाप्त होती बल्कि वह वस्तु बड़ा नहीं रहती । अतः 'लोप' भी आदेश है । जैसे रामस् शब्द में सकार को लोप हो जाय तो केवल राम शब्द रह जायेगा । सर्वादेश उस को कहते हैं जो किसी सम्पूर्ण स्थानी को हटा कर स्वयं हो जाए जैसे 'अस्तेभू' । इस सूत्र का प्रयोजन आर्धधातुक प्रत्यय के विषय में अस् धातु से परे तव्य प्रत्यय लाना है इसलिए अस् पूरी धातु को हटा दिया जाय । यही लोप का अर्थ है ।

वर्ण विकार भी आदेश है । अ इ उ आदि स्वर और क् ख् आदि व्यञ्जन सभी वर्ण हैं । वर्ण विकार का अर्थ है वर्णों में परिवर्तन । जैसे इ (इकार) का परिवर्तन अथवा 'ऐ' भी हो सकना है या जो चाहें सो हो सकना है । पाणिनि की आज्ञा हो जाय तो इ के स्थान में उ भी हो सकता है । तो इसी इ के भिन्न भिन्न रूप होने को इ का विकार अर्थात् वर्ण का विकार कहेंगे । व्यञ्जन का भी

विकार होता है। जैसे 'वाक् अत्र' यहाँ पर संहिता के नियम से क् को ग् हो जायगा तभी तो वागात्र बनेगा। अतएव किसी भी स्वर या व्यञ्जनका बदल जाना वर्ण विकार कहलाता है। कहीं पर लोप होता है, कहीं पर सर्वोदेश होता है और कहीं पर वर्णविकार होता है तो कहीं पर इसी प्रकार आगम होता है। आगम कहते हैं अ । जाने को। सो कहीं कहीं पर कोई वर्ण किसी के आदि में किसी के अन्त में, किसी के मध्य में आकर बैठ जाता है। जैसे घर पर आए सम्बन्धी या मित्र परिवार के अङ्ग बनते हैं वैसे ही जिसको आगम होता है उसका अंग बन जाते हैं।

आदेश का व्यवहार शत्रु के समान होता है। इसलिए जिसको आदेश किया जाता है। उसको यहाँ से भागना ही पड़ता है। जैसे अस् को भू आदेश कहा तो अस् को हटना होगा उसके स्थान पर भू बैठेगा। परन्तु आगम मित्रवत् होता है। जैसे मित्र के आने पर किसी को कोई पष्ट नहीं होता वैसे ही आगम भी किसी को हटाता नहीं जहाँ उचित जगह देखता है आदि अन्त या मध्य में स्वयं बैठ जाता है।

अष्टाध्यायी व्याकरण इसी प्रकार से शब्दों का अनुशासन करता है। इसी लिये महामाप्पकार प्रतञ्जलि कहते हैं "लोपागमवर्णविकारो हि सम्यग्देशान् परिपालयिष्यतीति अभ्येय व्याकरणम्" अर्थात् लोप आगम और वर्ण विकार को अच्छी तरह से जानने वाला ही लौकिक तथा वैदिक शब्दों का जानकर वेदाध्ययन करने में समर्थ हो सकता है इसलिये व्याकरण पढ़ना चाहिये।

अच्छा तो प्रसङ्गवश लोप आगम और वर्णविकार के सम्बन्ध में चर्चा की। पुनः प्रसङ्ग पर आइये। पृष्ठी विभक्ति से निर्देश किया गया जो आदेश अर्थात् लोप, आगम, वर्णविकार वह अन्तिम अक्षर के स्थान में होता है। अत्र मिद् को गुण होना है यहाँ पर इ के स्थान में गुण नहीं प्राप्त है क्योंकि मिदे यहाँ पर पृष्ठी विभक्ति से गुण रूप आदेश का निर्देश किया गया है। इसलिये अलोऽन्तरस्य परिभाषा सूत्र च य मिदेर्गुण के साथ अङ्ग हो जायेगा तो मिदेर्गुण सूत्र का अर्थ होगा मिद् के अन्तिम अक्षर के स्थान में गुण होगा। यह अर्थ दोनों सूत्रों को मिलाकर किया गया। तो यदि अन्तिम अक्षर द् के स्थान में गुण हो तो 'स्थानेऽन्तरतम' इस सूत्र में 'इ' के स्थान में 'ए' 'उ'

के स्थान में 'ओ' गुण होता है। स्थाऽन्तरत् सूत्र का अर्थ है किसी स्थान में होने वाला आदेश सदृशतम होता है। 'इ' का स्थान 'ए' से और 'उ' का स्थान 'ओ' से मिलता है। इसको वर्णोच्चारण नामक व्याख्यान में विस्तार पूर्वक देखिये। यहाँ तो द् के स्थान में 'थ' गुण हो सकता है क्योंकि ऋ के स्थान में जिस प्रकार अ गुण होता है उसी प्रकार द् के स्थान में अ हो सकता है।

अब आप पूछेंगे कि जब ऋ का स्थान और प्रयत्न अ के साथ मिलता ही नहीं तो स्थानेऽन्तरत्तम इस सूत्र से ऋ के स्थान में 'प्र' गुण क्यों हो जाता है।

जब कहीं ऋ का गुण हुआ तो अ, ए और ओ तीनों पहुँचे। इ का एकार के साथ स्थान प्रयत्न मिल गया बस ए हो गया। उसी प्रकार ए के स्थान में ओ स्थान प्रयत्न मिलने के कारण हो गया लेकिन ऋ का अ के साथ न स्थान मिलता है और न प्रयत्न। ये ही दोनों बच गये। स्थान प्रयत्न नहीं मिलते हुए भी ऋ के स्थान में अ गुण हो जाता है।

इसकी व्यवस्था महाभाष्यकार ने सप्तारथदग्धरथवन् न्याय के अनुसार की है। अर्थात् ए का घोड़ा मर गया और दूसरे का रथ टूट गया। दोनों ने मिलकर उंचे हुए घोड़े और रथ को जोड़ कर अपना कार्य किया। इसी न्याय के अनुसार ऋ के स्थान में स्थान प्रयत्न न मिलने पर भी 'अ' गुण हुआ। इसी प्रकार 'वृद्धि' की भी व्यवस्था समझना चाहिए।

इस विषय में एक बात याद रखिए कि जब और जहाँ भी अ गुण और आ वृद्धि होती है तो उरण् रपर (१-८-४६) गुण करने वाले सूत्र के पास अवश्य चला जाता है। यह सूत्र कहता है कि ऋ के स्थान में होता हुआ ऋण् अर्थात् अ इ उ रपर हो जाता है। अर्थात् जब कभी भी ऋ के स्थान में गुण या और किसी प्रकार में अ, इ या उ होता हो तो उस अ, इ, और उ के परचात रेफ आकर अवश्य मिल जाता है। जैसे क धातु का कहीं गुण कइ दिया। ऋ के स्थान में गुण ए और ओ होगा नहीं। होगा अ और अ गुण होते ही उरण् रपर। इस सूत्र में उस अ के परचात 'ए' अवश्य जुड़ जायेगा। इसीलिए तो अंग्रेजी दग की पढ़ाई में अर् को गुं और आर् को वृद्धि कहते हैं। अब

देखिये जय श्रु का अर्थ स्थान और प्रकृत्य न मिलते हुए अ गुण हो सकता है तो इ के साथ भी उसी तर्क से अ गुण हो सकता है किन्तु ऐसा होने से रूप गलत बन जायेगा । अतः अलोऽन्यस्य परिभाषा मिदेर्गुण में नहीं लगता । यहाँ पर इको गुण वृद्धी यह परिभाषा सूत्र लगेगा । यहाँ आप प्रश्न कर सकते हैं कि इन दोनों परिभाषाओं की जय मिदेर्गुण सूत्र में उपस्थिति है तो 'इको गुणवृद्धी' सूत्र ही क्यों लगेगा । 'अलोऽन्यस्य' सूत्र क्यों नहीं ?

इस विषय में याद रखिये कि 'अलोऽन्यस्य' उत्सर्गसूत्र और 'इनें गुणवृद्धी' अपवादसूत्र है । तर्ष साधारण नियम को 'उत्सर्ग' नियम और विशेष नियम को 'अपवाद' कहते हैं । अतः दोनों प्रकार के सूत्र अप्रत्याध्यायी में उपलब्ध हैं । दोनों प्रकार के सूत्र के उपस्थित होने पर सर्वथा अपवाद सूत्र ही को प्रधानता दी जाती है यह बात ध्यान में रखनी चाहिए ।

इसी नियम में 'अलोऽन्यस्य' नहीं लग कर उसका अपवाद 'इनें गुणवृद्धी' ही सूत्र लगा । महाभाष्य में इसके आगे विचार भी किया है लेकिन उनको जानने की आवश्यकता नहीं । अतः 'इको गुणवृद्धी' सूत्र के लगने पर मिदेर्गुण सूत्र का अर्थ हुआ कि मिद् के इक् के स्थान में गुण होंगे । यहाँ पर मिदेर्गुण सूत्र में गुण कह कर गुण का विधान किया जा रहा है । हा यह आप पूछ सकते हैं कि बिना गुण या वृद्धि रहे कैसे गुण या वृद्धि का विधान होता है । तो जानकारी के लिये यह जान लें कि ण्य सूत्र है दिव्य औत् (७१ पृष्ठ) । यहाँ दिव्य के स्थान में औत्तर होता है । यहाँ पर भी 'अलोऽन्यस्य' और 'इको गुणवृद्धी' इन दोनों परिभाषाओं की उपस्थिति होता है लेकिन 'इको गुणवृद्धी' परिभाषा सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो सकती क्योंकि यह ठीक है कि औत्तर वृद्धिरात्रैच् इस सूत्र से वृद्धि सम्मानाला है लेकिन यह औत्तर होना वृद्धि शब्द से नहीं कहा गया है यदि वृद्धि शब्द से विधान किया जाता तो इक् ही के स्थान में होता और वरार के स्थान में नहीं होता । परन्तु यहाँ वृद्धिशब्द में वृद्धि का विधान नहीं किया गया इसलिए अलोऽन्यस्य सूत्र ही पहुँचेगा जिससे अग्निम प्रकार के स्थान में ही औत्तर आदेश होगा तो रूप बनेगा दि औ और फिर 'इको यणचि' से इ का य्, द् य् औ, द्यौ, बन जाता है ।

इसी प्रकार मिद् का गुण मिदेर्गुणः यहाँ पर गुण कह कर विधान किया गया है, अतएव इक् के स्थान में ही गुण होगा। तो इ के स्थान में 'स्थानेऽन्तरतमः' इस सूत्र से ए गुण होगा मिद् का मेद हो जायेगा। इसी वृद्धि करने वाले विधि सूत्रों में भी इसी प्रकार से समझना चाहिये। इस व्याख्यान को तीन चार बार पढ़कर तथा जिन जिन सूत्रों का उद्धरण दिया गया है, उनका अर्थ देखना चाहिये। इस व्याख्यान को समझने के पश्चात् अष्टाध्यायी के सूत्रों को एक बड़ी समझा हो जाती है।

३. विधिसूत्र—

यो विधीयते स विधिर्यिधानं वा अर्थात् जो विधान करता है उसको विधिसूत्र कहते हैं। समास, कृदन्त, तद्धित इत्यादि प्रकरणों में अनेक सूत्र विधान करने वाले हैं। लोप, आगम, वर्णविकार करने वाले भी अनेक सूत्र हैं। जैसे समास में अव्ययं विभक्ति० (२. १. १) द्वितीया भितातीत (२. १. २३) तृतीया तत्कृता० (२. १. २६) कृदन्त में तव्यत्तव्यानीयरः (३. १. ६६) अचो यत् (३. १. ६७) ऋहलोर्ण्यत् (३. १. १२४) यवुन्तुचो (३. १. १३३) कर्मण्यण् (३. २. १) तद्धित में नडादिभ्यः फक् (४. १. ६६) स्त्रीभ्यो ढक् (४. १. १२०) तेन रक् रागात् (४. २. १) इत्यादि। लोप आतो लोप इटि च (६. ४. ६४) श्नाभ्यस्तयोरातः (६. ४. ११२) अतो लोपः (६. ४. ४८) आगम-द्वस्त्वय पिति कृति तुक् (६. १. ६६) छे च (६. १. ७१) इदितो नुम्वातोः (७. १. ५८) आर्धधातुफस्येद्धलादेः इत्यादि। विर्णविकार-मिदेर्गुणः (७. ३. ८०) नार्धधातुफार्धधातुरयोः (७. ३. ८४) पुगन्तलघु पथस्य च (७. ३. ८६) मृजेर्घुटिः (७. २. ११४) अचोऽब्धिपिति (७. २. १५) अत उपधायाः (७. २. ११६) तद्धितेष्वचामादे (७. २. ११७) पिति च (७. २. ११८) सेहोपिन्च (३. ४. ८७) इत्यादि। अर्थात् इसी प्रकार के अनेक विधान करने वाले सूत्रों को विधि सूत्र कहते हैं।

४. निषेधसूत्र—

निषिध्यन्ते निवार्यन्ते कार्याणि यैस्ते निषेधाः। अर्थात् जिसमें द्वारा कार्यों के होने को मना किया जाय उन्हीं निषेध सूत्र कहते हैं। हैं। यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या निषेध केवल विधान करने

वाले सूत्रों का होता है या सज्ञा, परिभाषा, नियम, अतिदेश और अधि-
कार इन सभी प्रकार के सूत्रों का निषेध होता है। निषेध सूत्र की अलग
सत्ता भी नहीं है इस श्लोक में देखिए—

सज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च ।

अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम् ॥

इस श्लोक में निषेध सूत्र का नाम भी नहीं आया तो क्या
निषेध सूत्र की सत्ता अलग स्वीकरणीय है या नहीं? यस्तुत पदार्थ
दो प्रकार के होते हैं (१) भाव और (२) अभाव। भाव का अर्थ होना
अभाव का अर्थ न होना, देना तो अत्र दो प्रकार की सत्ता स्वीकार करते
हैं उस स्थिति में सभी वस्तुओं में दो पहलू हैं। जैसा जीने के विप-
रीत मरना। दुख सुख, हसना रोना, खाना न खाना, आना जाना।
इसी प्रकार भाव और अभाव सदा वर्तमान हैं। सूत्रों में भी किसी
किसी की सज्ञा है, किसी की सज्ञा नहीं है। जैसे तुल्यास्यप्रयत्न मय-
र्णम् (१.१.६) यहाँ पर मुख में होने वाले स्थान और प्रयत्न जिन वर्णों
के समान हैं उनकी सवर्ण सज्ञा होती है लेकिन नाञ्जली (१.१.१०)
सूत्र कहता है कि अच् और हल् के स्थान और प्रयत्न समान होने पर
भी उन लोगों की परस्पर मयर्ण सज्ञा नहीं होती है। यहाँ मयर्ण सज्ञा
नहीं होती है। यहाँ मयर्ण सज्ञा करना और सर्वर्ण सज्ञा का निषेध
करना, दोनों प्रकार की बात पायी जा रही है।

दूसरा उदाहरण लीजिये दाधा ध्वदाप् (१.१.१६) यहाँ पर दा और
धा धातु की घुमत्ता होती है लेकिन दाप् धातु का मना कर दिया।
अर्थात् दाप् धातु की घुमत्ता नहीं होती है। इसी प्रकार अनेक उदा-
हरण हैं।

परिभाषा सूत्र का भी निषेध है। जैसे कि पहले पतलाया
जा चुका है कि 'इमे गुणवृद्धी' (१.१.३) परिभाषा सूत्र है। "गुण और
वृद्धि शब्द से जहाँ पर गुण और वृद्धि का विधान किया जाय वहाँ पर
इक् ही के स्थान में होता है"। लेकिन इस परिभाषा सूत्र का निषेध
इमवे आगे न धातुलोप आर्धधातुके (१.१.४.) ऋडिति च (१.१.४) के
दो सूत्र पढ़ें हैं।

विधि सूत्र का तो निषेध होता ही है। जैसे सामान में पट्टी
(२.२.८) यह विधान सूत्र है लेकिन इसके आगे न निर्द्धारणे (२.२.१०)

पूरणगुण० (२२.१७) इत्यादि ।

अष्टाध्यायी के सभी सूत्रों में जहाँ जहाँ पर 'न' लिखा है वे सभी सूत्र निषेध सूत्र हैं । नियम और अधिकार सूत्र का निषेध नहीं होता है । अतिदेश सूत्र का निषेध होता है ।

नियम सूत्र—नियम्यन्ते निश्चीयन्ते प्रयोगा येस्ते नियमा अर्थात् प्रयोगों का जिसके द्वारा निश्चय किया जाय उसको नियम सूत्र कहते हैं । अष्टाध्यायी में नियम सूत्र अधिक नहीं है । महाभाष्यकार का प्रसिद्ध वचन है 'सिद्धे सति आरम्भो नियमार्थ' अर्थात् किसी सूत्र से उस प्रयोग के सिद्ध हो जाने पर जो फिर दूसरा सूत्र बनाया जाता है उसको नियम सूत्र कहते हैं । जैसे पाठशाला में प्रतिदिन छात्रों का दस बजे आने की आज्ञा है, ऐसा विधान है । फिर भी कई छात्र देर से आते हैं । किन्तु जब किसी अधिकारी को निरीक्षण के लिए आना हो तो अध्यापक छात्रों को उस दिन ठीक दस बजे आने की आज्ञा देता है । विधान होने पर भी विशेष अवसर पर आज्ञा देने की आवश्यकता पड़ी । इसी प्रकार सिद्ध रहने पर जो सूत्र बनाया जाता है उसको नियम सूत्र कहते हैं ।

नियम सूत्र के विषय में जानने के लिये (१) इत्सज्ञा प्रकरण और (२) इट् विधान प्रकरण का व्याख्यान पढ़ लेना चाहिये । विशेष रूप से यहाँ जानना चाहिये कि 'कृ' धातु के पश्चात् लिट् के मध्यम पुरुष एकवचन में इट् का आगम और निषेध कैसे होता है । कृ धातु के पश्चात् लिट् लकार के स्थान में तिप्, तस्, कि आदि ६ परस्मैपद प्रत्ययों के स्थान में परस्मैपदाना० (३४.८२) सूत्र से णल्, अतुस् आदि ६ प्रत्यय आदेश होते हैं । अतएव मध्यम पुरुष एकवचन में थल् प्रत्यय चलादि आर्धधातुक है । आर्धधातुकस्येड्यलदादे (७२.३५) इस सूत्र से चलादि आर्धधातु के होने से इट् प्राप्त होने पर ण्काच उपदेशऽनुदात्तात् इस सूत्र से इडागम का निषेध हो जाता है । अतएव इट् आगम का निषेध स्वयं सिद्ध है, फिर जो कृस्मृ० (७२.१३) सूत्र का बनाकर आचार्य ने 'कृ' धातु के पश्चात् लिट् को इडागम का मना किया इससे यह सूत्र नियम सूत्र हो गया । इससे नियम निरुक्ता कि इन धातुओं को छोड़ कर जो भी अनिट् धातु हैं उनके पश्चात् लिट् को इट् का आगम हो ही जाता है "ण्काच उपदेशोऽनुदात्तात्" इस सूत्र से

इडागम के नियम हैं। जाने पर सर्वत्र अनिट् धातु को लिट् में इट् का आगम इसी नियम सूत्र से होता है, इसी को प्रादिनियम कहते हैं।

(६) अतिदेश सूत्र—अतिदिश्यन्ते तुल्यतया विधीयन्ते कार्याणि यैस्ते अतिदेशा अथान् जिससे किसी की तुल्यता या समता लेकर कार्य करें वह अतिदेश कहलाता है। अतिदेश कार्यातिदेश और रूपातिदेश दो प्रकार का होता है।

कार्यातिदेश—कार्य करने के लिए किसी को किसी से समान मान लेना कार्यातिदेश कहलाता है। जैसे पौरोहित्य कर्म करने के लिये पुरोहित के समान पुरोहित के लड़के को मान लेना।

व्याकरण शास्त्र में स्थानी और आदेश इन दो शब्दों ने अर्थों को जानने के परचान अतिदेश सूत्र का प्रयोजन स्पष्ट हो जाता है। किसी के स्थान पर आने वाले को आदेश और जिसका स्थान था उसका स्थानी कहते हैं। जैसे अस् धातु के स्थान में आर्धधातुरु के विषय में अस्तेभू (२. ४. ४०) सूत्र में भू आदेश हो जाता है। यहाँ पर भूवाच्यो धातव्य (१-३-१) में 'अस् सुवि' की धातु सज्ञा होती है लेकिन अस् के स्थान में भू आदेश की धातु मज्ञा नहीं होता। यह भू, भू सत्तायाम् धातु नहीं, यह तो अस् के स्थान में आदेश हुआ भू है। स्थानिवदा० (१.१. ४५) इस सूत्र में अम् धातु के स्थान में भू के आदेश होने के कारण भू की भी धातु सज्ञा होती है क्योंकि धातु के स्थान में जो आदेश है, वह भी धातु है। अत्र कार्य करने के लिए भू को भी धातु मान लिया गया। कार्य करने के लिये भू की धातु माना गया अतएव यहाँ कार्यातिदेश हुआ।

रूपातिदेश—कार्य करने के लिए रूप की उपस्थिति मानना रूपातिदेश कहलाता है। यह रूप लोप आदि होने के कारण में नहीं रहता है। रूप के अभाव में कार्य होने में बाधा पड़ती है। बिना रूप के कार्य होना असम्भव है। अतः लुप्त हुए रूप को आरोपित करके कार्य कर लिया जाता है। इसी विशेष व्याख्या द्विवचन प्रकरण में देरना चाहिये। जहाँ जहाँ पर वत् प्रत्यय की प्रातिपदिक के परचान लगाया गया है उन्हें अतिदेश सूत्र समझना चाहिये।

(७) अधिहार सूत्र—अधिविद्यन्ते पदार्था यैस्ते अधिहार

अर्थात् जिसके द्वारा पदार्थों का अधिकार किया जाता उसको अधिकार कहते हैं। प्रत्येक सूत्र में उस बात को बारम्बार न कहकर सबसे ऊपर ही उस बात को आचार्य ने लिख दिया है। जिस कारण उस सूत्र या शब्दों की अनुवृत्ति उसके पश्चात् सभी सूत्रों में जाती है। सन्क्षेप करने के लिए इस अधिकार सूत्र का आश्रय किया गया। किसी सूत्र का कोई अंश या वह सूत्र स्वयं अपने आगे कुछ सूत्रों में अर्थ बनाने के लिये लगा जाता है अतएव उसे अनुवृत्ति को अधिकार कहते हैं।

कुछ ऐसे अधिकार हैं जिनके सज्ञा सूत्र हैं और कुछ अधिकार के सज्ञा सूत्र नहीं हैं। जैसे सहितायाम् (६.१.७२) अधिकार सूत्र का सज्ञा सूत्र है, पर सन्निकर्ष. सहिता (१.४.१०६) लेकिन प्रत्यय (३.१.१) परस्व (३.१.२) इसका कोई सज्ञा सूत्र नहीं है। जिन जिन अधिकारों के सज्ञा सूत्र हैं उन उन सभी सज्ञा सूत्रों पर ध्यान देना चाहिये। शब्द की सिद्धि के समय पहले सज्ञा सूत्र लगाकर तब अधिकार सूत्र लगाना चाहिये। सज्ञा सूत्र तथा अधिकार सूत्रों को लगाने के पश्चात् ही तथा उस अधिकार के किसी विधि नियमादि सूत्रों को लगाना चाहिये। जैसे नामि (६.४.३) उस सूत्र को वहीं लगाना है तो पहले यस्मात्प्रत्यय० (१.४.१३) सज्ञा सूत्र पुन. अङ्गस्य (६.४.६) यह अधिकार सूत्र, इन दोनों सूत्रों के पश्चात् ही नामि सूत्र को लगाना चाहिये। अष्टाध्यायी प्रशशिका में सर्वत्र अधिकार सूत्र को बता दिया गया है।

सप्तम व्याख्यान

प्रकरण तथा अनुवृत्ति

महामुनि पाणिनि कृत् अष्टाध्यायी में जहाँ अनेक विशेषताये हैं वहाँ दो ऐसी विशेषता हैं जो अन्यत्र प्रक्रियानुमारी ग्रन्थों में कहीं प्राप्त नहीं हो सकती वह है (१) अनुवृत्ति और (२) प्रकरण। इन दोनों विशेषताओं को सिद्धान्तकीमुदी आदि प्रक्रिया ग्रन्थों में नष्ट कर दिया गया है।

अनुवृत्ति-क्रमबद्ध सूत्रों के होने से एक सूत्र से दूसरे सूत्र में अनुवृत्ति सरलता से ली जाती है। और कुछ दिनों तक अष्टाध्यायी के सूत्रों को पढ़ने के पश्चात् किस पद की अनुवृत्ति किस सूत्र से आती है यह बात बिना किसी प्रयास के आपम आप समझ आ जाती है। प्रक्रिया प्रन्थों में सूत्रों को इधर से उधर ले जाने के कारण सूत्रों की अनुवृत्ति का क्रम सर्वथा नष्ट हो जाता है। यही कारण है कि कौमुदी आदि प्रन्थों के पढ़ने वाले छात्रों को वृत्ति रटनी पड़ती है। बात ठीक भी है अनुवृत्ति नहीं आती तो वृत्ति तो रटनी ही पड़ती है। अब अनेक विद्वान् यह भी कहने लगे हैं कि कौमुदी में भी वृत्ति रटने की कोई आवश्यकता नहीं। यह मत ठीक नहीं प्रतीत होता। बात निश्चित है कि छात्र को सूत्रों का अर्थ जानना चाहिए। चाहे वह अनुवृत्ति से जाने अथवा वृत्ति से। कौमुदी में तो अनुवृत्ति है नहीं और यह वृत्ति भी याद नहीं करता तो भला बताइये उसमें सूत्र का अर्थ कैसे स्मरण हो जाता है। और यदि सूत्रार्थ ही नहीं याद हुआ तो व्याख्यान उसका क्या आयेगा। कौमुदी से व्याख्यान पढ़ने वाले छात्रों को इसी लिए वृत्ति रटनी पड़ती है किन्तु अष्टाध्यायी क्रम से पढ़ने वाले छात्रों को ऐसा नहीं करना पड़ता।

प्रकरण-अष्टाध्यायी की दूसरी विशेषता 'प्रकरण' की है। अष्टाध्यायी के सूत्रों को प्रकरणबद्ध पाणिनि ने लिखा है। छात्रों की जानकारी के लिये इनने अष्टाध्यायी-प्रसाशिका में सभी आवश्यक प्रकरणों का नाम लिख दिया है। अष्टाध्यायी के पढ़ने वालों को चाहिए कि इन प्रकरणों को करठस्थ कर लें। और प्रकरणों में से सूत्र किस प्रकार लेकर किसी शब्द की सिद्ध में लगाये जाते हैं उनका ज्ञान कर लें। वम अष्टाध्यायी पर पूर्ण अधिकार हो जायेगा। अभा में प्रकरणा की विशेषता पर लिखूंगा। और प्रकरणों के पश्चात् कृन् आन् प्रत्ययों को लगाकर प्रातिपदिक की सिद्धि करूंगा।

यहां पर एक बात और ज्ञातव्य है कि पाणिनि ने जिन-जिन प्रकरणों का अभिप्रेत करके सूत्रों का निर्माण किया था वे सभी के सभी अभिप्राय कौमुदी में नष्ट कर दिये गये। जैसे कौमुदी में पञ्चमन्य प्रकरण, सुषन्त प्रकरण, तिङन्त प्रकरण आन्। पाणिनि ने इन प्रकरणों के अनुसार सूत्रों का निर्माण नहीं किया। यदि कौमुदी गत आवे दृष्ट

प्रकरण के अनुसार ही सूत्र बनाना था तो क्या भगवान् पाणिनि अष्टाध्यायी की प्रक्रिया ग्रन्थ ही नहीं बनाते। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। वे जानते थे कि प्रक्रिया ग्रन्थ से व्याकरण बहुत ही दुरुद्ध हो जायेगा। अतएव यह समझ लेना चाहिए कि कौमुदी में अष्टाध्यायी के प्रकरणों को तौड़कर दीक्षित जी ने अपने ढंग से प्रकरण बनाया। यही कारण है कि जैसा व्याकरण का साङ्गोपाङ्ग ज्ञान अष्टाध्यायी महाभाष्य से केवल तीन वर्ष में होता है, वैसा ज्ञान कौमुदी आदि अनार्ष ग्रन्थों से १० वर्ष में भी नहीं हो सकता। व्याकरण का पूर्ण ज्ञान बिना अष्टाध्यायी और महाभाष्य पढ़े कदापि नहीं हो सकता, यह सवर्था सत्य है। अष्टाध्यायी-प्रकाशिका के अन्तर्गत आये हुए जितने प्रकरण हैं, उनको विषयोपक्रमणिका से देख लेना चाहिये। अब हम एक एक प्रकरण को लेकर व्याख्यान करेंगे।

टिक्त्तिप्रकरणम्

टिक्त्तिन् प्रकरण के पहले प्रकाशिका में दो प्रकरण अर्थात् सहा-परिभाषा और स्थानियत् प्रकरण आ चुके हैं, उनका विस्तृत व्याख्यान 'सूत्रों के प्रसार' नामक व्याख्यान में कर चुके हैं। अब कम प्राप्त टिक्त्तिन् प्रकरण ही है।

इस प्रकरण का सर्व प्रथम सूत्र है "गाड्डुटादिभ्योऽव्यङ्गिहत् (१.०.१) इस सूत्र के चरित्र पर विचार करने से पता लगता है कि यह सूत्र सहा सूत्र है। क्योंकि अतिदेश सूत्र के अन्त में यत्=समान लिखा रहता है। यहाँ पर यत् शब्द का प्रयोग नहीं है। अन्य ग्रन्थकारों ने भी इसका अतिदेश सूत्र ही माना है। यद्यपि प्राचीन परम्परा में इसको सहा सूत्र ही मानते हैं, फिर भी स्पष्टता के लिये भाष्यानुसार हमने अतिदेश सूत्र माना है और यत् जोड़कर इसका अर्थ दिया है।

अतएव इस प्रकरण के सूत्रों का काम है, जो धर्म प्रत्यय में नहीं हैं, उस धर्म को उत्तम आरोपित कर देना। जैसे सार्धधातुकमपित् (१.२.३) इस सूत्र का अर्थ है जिस प्रत्यय में पकार की इन् मज्ञा नहीं हुई है उसे सार्धधातुक प्रत्यय क्त्विषत् होते हैं अर्थात् हित् के समान होते हैं। जैसे कर्त्तरि शप् (३.१.) और दियादिभ्यः श्यन् (३.१.) इन दो सूत्रों पर विचार कीजिए शप् प्रत्यय के शकार की इत्मज्ञा

लशक्वतद्धिते (१.३.८) तथा ककार की इत्सज्ञा हलन्तयम् (१.३.३) इस सूत्र से होती है। अत्र वचा हुआ जो 'अ' प्रत्यय है, वह शिन् भी है और पिन् भी है। उसी प्रकार श्यन् में इत्सज्ञा और लोप करने पर केवल 'य' वचता है, यह प्रत्यय नित् भी है और शिन् भी है। अत्र एक सूत्र है तिङ्शित्सार्वधातुम् (३.४.११३) आर्धधातुक शेष (३.४.११४) अर्थात् धातु के पश्चात् जितने प्रत्यय आते हैं उन प्रत्ययों में तिप् तस् आदि १८ प्रत्यय जो तिङ् प्रत्याहार के अन्तर्गत हैं, वे तथा शरार इत्सज्ञा वाले प्रत्यय को सार्वधातुक कहते हैं। अत्र शप् प्रत्यय तिङ् शिन् सार्व० सूत्र से आर्धधातुक है, वैसे ही श्यन् भी सार्वधातुक हुआ। सार्वधातुक होते हुए शप् ककार इत् वाला है और श्यन् प्रकार इत्सज्ञा वाला नहीं है। लेकिन सार्वधातुस्मपिन् सूत्र कहता है, जिस प्रत्यय के प्रकार की इत्सज्ञा नहीं हुई है ऐसे आर्धधातुक प्रत्यय ङित् के समान होते हैं, इससे शप् प्रत्यय ङित् के समान नहीं हुआ लेकिन श्यन् प्रत्यय ङित् वाला हो गया। इसमें यह तात्पर्य निकला कि जो प्रत्यय प्रत्यक्ष रूप से ककार इत् वाले नहीं हैं उनमें भी ङित् धर्म वाला, या ङित् धर्म वाला बना देना ही इस प्रकरण का मुख्य लक्ष्य है।

इस प्रकरण से लाभ यह है कि जैसे विभिन्न प्रत्ययों में ककार और ककार की इत्सज्ञा की जाती है और ककार और ककार इत्सज्ञा करने से जो कार्य किया जात है, वे सभी कार्य इस प्रकरण के सूत्रों से क्तिवन् और क्तिवन् कर देने से सिद्ध हो जायें। धातु के पश्चात् जब कोई प्रत्यय आता है तो धातु को जहाँ अनेक कार्य किये जाते हैं वहाँ गुण करना भी एक काम है। परन्तु ककार इत् वाले तथा ककार श्याले प्रत्ययों के परे रहने पर "क्विति च (१.१.५.) सूत्र से गुण का निषेध होता है। जैसे भू धातु से 'क्त' प्रत्यय आया। अत्र यहाँ पर लशक्वतद्धिते (१.३.८) सूत्र से ककार की इत्सज्ञा हो गई। अत्र जब गुण करने लगे तब 'क्विति च' (१.१.५) इस सूत्र से गुण का निषेध हो जायेगा। उसी प्रकार तुद् धातु के पश्चात् वर्तमान काल में तिप् प्रत्यय लाया गया जिससे "तुद् तिप्" और पुन "तुदादिभ्य ग" से 'श' प्रत्यय आया। अत एव "तुद् श तिप्" इस स्थिति में इमज्ञा और लोप करने के पश्चात् "तुद् अ ति" वचा। अत्र 'पुगन्तलवृषधस्य च (७.३.८४) सूत्र से गुण करना चाहते हैं तो यहाँ पर 'श' प्रत्यय

शित् होने से सार्वधातुकसंज्ञा वाला है और “सावधातुकमपित्” इस सूत्र से इसे डिन् धर्म वाला भी बना दिया गया, जिससे गुण का निषेध “क्विडिति च” सूत्र ने कर दिया। इस प्रकरण का यही काम होता है कि जहाँ कहीं भी डित् और किन् को निमित्त मानकर सूत्रों में विधान किया गया है वहाँ वहाँ इन सूत्रों से जिन-जिन प्रत्ययों को डिन् और किन् बना दिया गया है, उन-उनका कार्य भी वैसे ही होगा जैसे प्रत्यक्ष डित् किन् वाले प्रत्ययों का होता है।

इत्संज्ञाप्रकरणम्

अष्टाध्यायी क्रम में इत्संज्ञा प्रकरण अपना एक विशेष स्थान रखता है। यह बहुत महत्वपूर्ण है। उसे अष्टाध्यायी सूत्रों का प्राण समझना चाहिए। इस प्रकरण को बिना समझे व्याकरण के अनेक कार्य सम्पन्न नहीं हो सकते। प्रातिपदिक और क्रियाओं के साथ प्रत्यय, विभक्ति आदि जोड़ने का कार्य इन सूत्रों के बिना पूर्ण नहीं हो सकता। सु, श्री, जस् और तिप्, तस्, कि, आदि विभक्तियों का वास्तविक स्वरूप इनके बिना सिद्ध नहीं होता। इस प्रकरण के लगभग सभी सूत्र अष्टाध्यायी के प्रथम अध्याय तृतीय पाद के प्रारम्भ में दिए गए हैं। ये सभी सूत्र जैसे उम स्वागतकारिणी समिति के सदस्य हैं जो प्रत्यय विभक्ति, आदेश, आगम आदि का शब्दों में जोड़ने के लिए स्वागत करती हैं और उसके रूप को स्थिर करती हैं। इनमें जो भी स्वर या व्यञ्जन (अच् और हल्) सिद्ध रूप के लिए अनावश्यक हैं उनका लोप करती हैं और इस प्रकार उसे प्रातिपदिक आदि में जोड़ने का कार्य सम्पादन करती हैं।

इन् का अर्थ है जाना। ‘इण् गतो’ धातु से इन् शब्द बनता है जिसका अर्थ होना है, ‘गति गच्छति इति इत्’ अर्थात् जिसरी भी इत्, मत्ता होगी अर्थात् जिसका नाम इन् रख दिया गया, उसका लोप हो जायेगा। लोप कहते हैं अदर्शन को क्यों कि आचार्य का सूत्र ही है “अदर्शन लोपः” (१.१.५६)। उदाहरण स्वरूप सुँ, श्री, जस् को लीजिये यहाँ पर सुँ में ‘ऊँ’ उपदेशोऽनुनासिक इत् (१-३-८) से इत् लगाया जाता है। इत् संज्ञा होने पर ‘तस्य लोपः’ सूत्र से उसका लोप हो गया और अदर्शन लोपः सूत्र से उम ‘उँ’ का अदर्शन हो गया। वही प्रकार ‘जस्’ में ‘चुट्’ से ज् की इत्संज्ञा और लोप हो

जाता है। सू की 'न विभक्तौ तुस्माः' में निषेध हो गया।

अब यहां पर विचारणीय बात है कि सु तो सूत्र में केवल 'सु' लिखा है, इसको अनुनासिक कैसे माना जाय। और दूसरी बात यह है कि उपदेश का क्या अर्थ है। इन दोनों बातों के लिए यह जानना चाहिए कि पाणिनि को जिस जिस अच् की इ संज्ञा करनी थी उसे उन्होंने अनुनासिक ही पढ़ा था परन्तु वह परम्परा सैंकड़ों वर्षों से लुप्त हो गई अर्थात् अनुनासिक चिह्न ग्रन्थों से लुप्त हो गए। अतः अब इसका ज्ञान परम्परा ने ही हंता है अतः आपको भी पढ़ते पढ़ते एक दो गद्दीने में स्वयं पता लगने लग जायेगा कि यहां का अच् अनुनासिक है और यहाँ का नहीं। यह बात गुरु परम्परा से ज्ञात होगी। दूसरी बात उपदेश की है तो मूल में जितनी बातें आचार्य पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि ने कही हैं ये सभी उपदेश कहलाती हैं। अब इसी प्रकार से जहाँ जहाँ आवश्यकता पड़े इन् संज्ञा करनी चाहिये। आप को याच् शब्द का रूप ७ विभक्तियों में इ-संज्ञा करके पनाना चाहिये। उसके पश्चात् पूरा पूरा इत्संज्ञा के सूत्रों पर अधिकार हो जायेगा।

आत्मनेपद-परस्मैपदप्रकरणम्

आत्मनेपद और परस्मैपद का शाब्दिक अर्थ है जिस पद का प्रयोग अपने लिये किया जाये उसको आत्मनेपद और जिस पद का प्रयोग दूसरे के लिए किया जाय उसको परस्मैपद कहते हैं। आत्मन् शब्द से चतुर्थी के एकवचन में आत्मने शब्द बनता है उसी प्रकार 'पर' शब्द से चतुर्थी एकवचन में 'परस्मै' शब्द बनता है। मुप् और तिङ् को पद कहते ही हैं। इसलिये ऐमा अर्थ किया गया।

तिङ् प्रत्ययों में प्रारम्भ के नौ परस्मैपद हैं और उसके पश्चात् तङ् जो नौ हैं, वे आत्मनेपद हैं। जब इनका इतना पता लग गया तो यह ज्ञान सरलता से हो जाना चाहिये कि जिन धातुओं के पश्चात् आत्मनेपद के प्रत्यय आते हैं, उन धातुओं को आत्मनेपदी धातु कहा जाता है और जिन धातुओं के पश्चात् परस्मैपद के प्रत्यय आते हैं, उन धातुओं को परस्मैपदी धातु कहा जाता है।

यहां पर चार पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान आवश्यक है। उदात्तः, अनुदात्तः उदात्तेत् और अनुदात्तेत्। धातुपाठ में जिन जिन धातुओं को उदात्तः पढ़ा गया है, उन उन धातुओं के पश्चात् प्रत्ययों को इट्

का आगम होता है, और जिनको 'अनुदात्त' पढ़ा गया है, उनके पश्चात् प्रत्ययों का इट् का आगम नहीं होता है। धातुओं को जहाँ उदात्तेत् कहा है, वे धातु परस्मैपदी हैं और जहाँ अनुदात्तेत् कहा है, वे सभी आत्मनेपदी हैं। कौन परस्मैपदी हैं, इस बात का ज्ञान धातु पाठ से ही करना चाहिये। विस्तार के भय से इसका विस्तृत व्याख्यान यहाँ नहीं हो सक्ता। इस ग्रन्थ को समझने के लिये इतना ही विषय आवश्यक है।

कुछ धातु उभयपदी हैं उन से आत्मनेपद और परस्मैपद दोनों प्रकार के प्रत्यय होते हैं। जय कर्ता किसी क्रिया को अपने लिए करे अर्थात् क्रिया से निष्पन्न होने वाला फल उस के अपने लिए हो तो आत्मनेपद होता है दूसरे के प्रति फल होने से परस्मैपद। ऐसी धातुओं को पाणिनि ने स्वरितेत् और अित् पढ़ा है।

समासप्रकरणम्

समास प्रकरण पर व्याख्यान करने के पूर्व यथा प्राप्त दो प्रकरणों पर कुछ प्रकाश डालना चाहिये। नद्यादिसज्ञा तथा निपातप्रकरण। कुछ शब्द हैं जिनको नदी नाम से पुकारते हैं और नदी कहकर ही उनके सम्बन्ध में काम किया जाता है। सूत्र है आपनद्या (७.३.११२) यहाँ पर नदी सज्ञा वाले सभी शब्दों का काम होगा। इसी प्रकार घि सज्ञा वाले शब्दों से घेदिति (७.३.११८) सूत्र से जिन जिन शब्दों की घिसज्ञा हो जाती है, उन उन सभी का काम होता है।

निपात प्रकरण का महत्व यह है कि जिन जिन शब्दों की निपात सज्ञा होती है उन उन शब्दों की 'स्वरादिनिपातमव्ययम्' (१.१.३६) सूत्र से, अव्यय सज्ञा हो जाती है। और तब अव्यय मानकर जो काम प्राप्त है वे सभी काम निपात को भी हो जाते हैं।

समास—समास, समाज, समष्टि इत्यादि का एक ही अर्थ है। जहाँ अनेक व्यक्ति एक साथ मिल जाते हैं वहाँ समाज कहा जाता है। जैसे मानवसमाज, आर्यसमाज, ब्राह्मणसमाज। उसी प्रकार समष्टि का भी अर्थ है विभिन्न व्यक्ति जहाँ एक साथ हो जाते हैं वहाँ ही समष्टि शब्द का प्रयोग किया जाता है। उसी प्रकार समास शब्द का भी प्रयोग है। समाज में व्यक्ति लेकिन समास में पद रहने

ह। समास में केवल पदों की सत्ता रहती है। अनेक पदों के मिलने से समास होता है। अर्थात् (१) अनेक पदों का एक पद होना (२) अनेक विभक्तियों का एक विभक्ति होना, (३) अनेक स्वरों का एक स्वर होने को समास कहते हैं। इन बातों का उदाहरण इसी व्याख्यान में स्पष्ट हो जायेगा।

समास मुख्यरूप से चार प्रकार के होते हैं (१) अव्ययीभाव, (२) तत्पुरुष, (३) बहुव्रीहि तथा (४) द्वन्द्व ॥

इन समासों की परिभाषाओं पर पूर्व व्याख्यान में प्रकाश डाल चुके हैं। अब इनके अवयव विभाग (प्रकारों) पर व्याख्यान करने। तत्पुरुष समास के ६ भेद हैं—द्वितीया तत्पुरुष, तृतीया तत्पुरुष, चतुर्थी तत्पुरुष, पञ्चमी तत्पुरुष, षष्ठी तत्पुरुष, सप्तमी तत्पुरुष, कर्मधारय, द्विगु तथा नञ् तत्पुरुष ॥

द्वन्द्व समास के २ भेद हैं—समाहार और इतरेतर ॥

अव्ययीभाव तथा बहुव्रीहि समास के कोई विशेष भेद नहीं।

इन समास गत अवयव विभागों तथा समासों पर विचार करने से पूर्व ध्यान देने योग्य कुछ बात इस प्रकार है —

समास के सूत्रों के अर्थ करने से पहले तीन पद पर सदा ध्यान रखना चाहिये। यदि इन तीन पदों का प्रत्यक्ष हो जाय तो समास के किसी भी सूत्र का अर्थ सरल हो सकता है। ये हैं—सुप् (० १ ०), सह सुपा (० १ ४)। सुप्, सह सुपा, सुप् प्रथमा का एक वचन। सह-अव्यय पदम्। सुपा-तृतीया का एक वचन ॥ इन तीनों पदों का समास के सूत्रों में अधिकार जाता है। इन तीनों पदों का अर्थ है “सुपा सह सुप् सम्-स्यते” अर्थात् सुप्रन्त के साथ सुप्रन्त समास को प्राप्त होता है।

इस समास प्रकरण में प्रथमान्त तृतीयान्त और सप्तम्यन्त ये तीन प्रकार के पद आते हैं। अत एव सुप् का सम्बन्ध प्रथमान्त के साथ और सह सुपा का सम्बन्ध तृतीयान्त के साथ करा देना चाहिये। सप्तम्यन्त पद अर्थ द्योतन करने के लिये रखा गया है। अब इन तीनों पदों को लगाकर सूत्र का अर्थ (द्वितीया ० १ २३) का अर्थ हुआ द्वितीयान्त सुप्रन्त श्रितादि सुप्रन्तों के साथ समास के प्राप्त होता है। यहाँ पर एक बात और ध्यान देने के योग्य है। जिस समास का अधिकार हो वह भी

कहना पड़ता है। तो अब अर्थ हुआ। द्वितीयान्त सुबन्त श्रितादि सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त होता है और वह तत्पुरुष सज्ञा वाला होता है अर्थात् उसकी तत्पुरुष सज्ञा होती है। एक बात और। पहले के व्याख्यान से आपको पता होगा कि सम्बन्धी पदों का ही समास होता है, अतएव 'समर्थ पदविधि' का अधिकार समस्त अष्टाध्यायी में जाता है। इसलिये अर्थ होगा "द्वितीयान्त समर्थ (सम्बन्धी) सुबन्त श्रितादि सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त होता है, और उसकी तत्पुरुष सज्ञा होती है। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि सूत्र में तो द्वितीया पढ़ा गया और अर्थ में द्वितीयान्त कहा गया यह कैसे। तो यहाँ पर येनविधिस्तदन्तस्य (१ १ ७१) से अन्त का बोध होता है।

अब तत्पुरुष के भेदों को लीजिये। जब द्वितीयान्त सुबन्त समास को प्राप्त होता है, तब द्वितीया तत्पुरुष कहते हैं। उसी प्रकार तृतीयान्त, चतुर्थ्यन्त, पञ्चम्यन्त, षष्ठ्यन्त तथा सप्तम्यन्त जब सुबन्त के साथ समास को प्राप्त होता है तब तृतीया, चतुर्थी आदि तत्पुरुष कहते हैं। जैसे कष्ट श्रित। यहाँ पर कष्ट पद द्वितीयान्त है और श्रित-प्रथमान्त है। तो समास होने से एक पद हो जायेगा, अतएव कष्टश्रित बन गया। उन्ही प्रकार विस्मयम् आपन्न विस्मयापन्न, गृह गत गृह-गत, शरण प्राप्त शरणप्राप्त इत्यादि द्वितीया तत्पुरुष के उदाहरण हैं।

शङ्कुलाय खण्ड शङ्कुलाखण्ड, किरिणा काण किरिकाण (किर-किरी से एक आख का काना हो जाना) इत्यादि तृतीया तत्पुरुष हैं। यूपाय नारु यूपनारु, कुण्डलाय हिरण्यम् कुण्डलहिरण्यम् इत्यादि चतुर्थी तत्पुरुष के उदाहरण। वृक्षेभ्यो भयम् वृक्षभयम्। चौरैभ्यो भयम् चौरभयम् इत्यादि पञ्चमी तत्पुरुष। राज्ञे पुरुष राजपुरुष, दशरथस्य पुत्र दशरथपुत्र इत्यादि षष्ठी तत्पुरुष। अक्षेऽपु धूर्त् अक्षधूर्त् इत्यादि सप्तमी तत्पुरुष के उदाहरण हुए ॥

कर्मधारय—सूत्र है तत्पुरुष समानाधिकरण कर्मधारय (१ = ४०) सूत्र का अर्थ है एक अर्थात् एक अधिकरण है दो पदों का उसमें समानाधिकरण कहते हैं। जैसे नीलोपलम्। इसमें नील और उपल शब्दों का समास हुआ। नील शब्द का अर्थ

है नील रङ्ग तथा उत्पल का अर्थ है कमल । अत्र देखिये नील से नीले रङ्ग का बोध होता है और उत्पल से कमल का बोध होता है । अर्थात् इन दोनों शब्दों का अधिभरण अलग अलग है । लेकिन एक ऐसा कमल भी होता है जो कमल तो होता ही है परन्तु साथ ही साथ 'नील' भी होता है । उस कमल को नीलोत्पल कहते हैं । नील और उत्पल इन दोनों का आधार एक ही पृथ्वी जो नीले रङ्ग का है, वह हो गया, अतएव इसमें कर्मधारय समास कहते हैं । इसी प्रकार रत्नोत्पलम् इत्यादि जानना चाहिये ।

नञ् समास—नञ् का न् इत्सम्बन्ध और लोप हो जाता है । यह 'न' जन्तुस्यन्त के साथ सामान्य को प्राप्त होता है, तब नञ् समास होता है, चूंकि यह तत्पुरुष के अधिकार में है, अतः नञ् तत्पुरुष समास हुआ । न ब्राह्मण, अप्राब्रह्मण, न ईश्वरवाद अनोश्वरवाद इत्यादि इसके उदाहरण हैं ।

द्विगुः—जिन तत्पुरुष समास का पूर्व पद सख्या वाची होता है, उनमें द्विगु समास पड़ते हैं । जैसे—अष्टानामध्यायाना समाहार इति अष्टाध्यायी । यहाँ पर अष्ट और अध्याय दो पद हैं जिनमें पूर्व पद अष्ट सख्या वाला है, इसलिए इसका नाम द्विगु तत्पुरुष पड़ गया । सूत्र है सख्या पूर्वो द्विगु (८.१.५१)

द्वन्द्वसमासः—जहाँ च (=और) का अर्थ होता है, वहाँ द्वन्द्व-समास होता है । अत्र च (और) शब्द के चार अर्थ हैं, समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतर और समाहार । जैसे—अन्वाचय में च का अर्थ है—किसी आश्रित घटना का किसी प्रधान घटना के साथ जोड़ना । जैसे—भिक्षा च चर गाव्चानय (गाम् च आनय) = भिक्षा मागने जाओ और (उसके साथ ही साथ) गाय भी लेते आना । यहाँ पर 'च' ने प्रधान घटना भिक्षा मागना के साथ आश्रित घटना गाय का लाना भी जोड़ दिया । अतः गाय मिलेगी तो ले आयेगा अन्यथा भिक्षा चरण करेगा ही ।

समुच्चय में—रादति च, खेलति च, पठति च, यहाँ पर 'च' से अनेक परस्पर अमन्य द्विधाओं के समूह का बोध होता है ।

इतरेतर में—रामश्च लक्ष्मणश्च रामलक्ष्मणी (राम और लक्ष्मण)

यहा पर 'च' से परस्पर का सध्वन्व द्योतन होता है ।

समाहार में—पाणी च पादौ च, पाणिपादम्=हाथ पैर की समष्टि—यहा पर सामूहिक एकता का द्योतन होता है ।

अत एव उपर्युक्त चारों में जत्र च का अर्थ इतरेतर और समाहार होता है तत्र समास होता है । लेकिन समुच्चय और अन्वाचय में समास नहीं होता । क्यों नहीं होता इसका उत्तर है, सम्यन्वी पदों में समास होता है समुच्चय और अन्वाचय में कोई सम्बन्ध नहीं है, इसलिये समास नहीं होता ।

इतरेतर योग में जहा द्वन्द्व समास होता है वहाँ द्विवचन या बहुवचन होता है और जहा समाहार में द्वन्द्व होता है वहा एकवचन ही होता है इस प्रकार द्वन्द्व समास के दो भेद होते हैं ।

बहुव्रीहि समास के चार अवान्तर भेद हो सकते हैं । समानाधिकरण, व्यधिकरण, तुल्ययोग और व्यतिहार । तत्र समास में आने वाले पदों की एक ही प्रकार की विभक्तिया होती हैं तब तो वह बहुव्रीहि समानाधिकरण बहुव्रीहि होता है और जब भिन्न भिन्न विभक्तिया होती हैं, तब व्यधिकरण बहुव्रीहि कहा जाता है । जैसे—निगत भय यस्मात् स निर्गतभय (पुरुष) अर्थात् जिस पुरुष से भय चला गया है उस पुरुष को निर्गतभय कहा जाता है । पराजिता रिपवो येन स पराजितरिपु (राजा) अर्थात् पराजित हो गये शत्रु जिससे उस राजा को पराजितरिपु कहा जाता है । यहा पर 'निर्गत, सु भय सु' में प्रथमा का एक वचन है तथा 'पराजित जस् रिपु जस' यहा पर प्रथमा का बहुवचन है अर्थात् एक ही प्रकार की विभक्तिया विग्रह होने वाले पदों में हैं इसलिये इसको समानाधिकरण बहुव्रीहि कहते हैं । अत्र पुण्ये मति यस्य स पुण्यमति (सत्यदेव) । धनु पाणौ चस्य म धनुषाणि (रामभद्र) कुम्भात् जन्म यस्य स कुम्भजन्मा । यहा तीना समस्त पदों के विग्रह में आने वाले जो पद हैं उनमें भिन्न भिन्न विभक्तिया हैं जैसे पुण्ये ७।१ मति १।१॥ धनु १।१ पाणौ ७।१॥ कुम्भात् ५।१ जन्म १।१॥ अतएव ये समास व्याधिकरण बहुव्रीहि हुए ॥ व्यतिहार और तुल्ययोग के लिये बहुव्रीहि समास में एक २ सूत्र है यहाँ देख लीजिये ।

इम प्रकरण में आवश्यक बात यह भी जाननी चाहिये कि एक प्रकार का विशेष और समास होता है जिसको नित्य समास कहते

हैं। अर्थात् उन नियमनाम का अर्थ है कि उनका निरुद्धाने पर अलग पदों में अर्थ करने की शक्ति नहीं होती। अर्थात् मन्त्र पद से निम्न प्रकार का अर्थ छा जाता है वह अर्थ विन्दा में पाये हुए अलग पदों में नहीं छा जा सकता। निम्न मन्त्र में मन्त्र पद के अर्थ को बताने के लिए दो में से एक पद अलग हो निकल रहा है। यथा प्राक्कडायन् मनामः का निरुद्धाने प्राक्कडायन् न बचान् ।

इसी प्रकार उपसर्जन का निरुद्धाने उपसर्जन मर्दान्। यहाँ वय का अर्थ सर्वान् शब्द से व्यक्त किया गया ।

मनाम का प्रकरण लम्बा होता जा रहा है और बहुत सी बातें कहना चाहते हैं परन्तु विन्दा नद ने इसे यही मनाम करते हैं ।

मनाम की निधि—

(१) मनी अधिकार सूत्रों को कहना जैसे समर्थः पदविधिः, प्राक्कडायन् मनामः, सह मुपा और जिम ममास का अधिकार हो । इन चार सूत्रों का मनी प्रथम लगाना, उनके परचान् (२) विधाक सूत्र को कहना जैसे पृष्ठी (२.२.७) उनके परचान् लौकिक तथा अलौकिक विप्रद को बताना जैसे दशरथस्य पुत्रः इति दशरथपुत्रः, अलौकिक विप्रद-दशरथ इम् पुत्र सु, उनके परचान्

(३) उपसर्जन संज्ञा करना—प्रथमनिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् (१.२. ४४), और जिमका 'उपसर्जनम् पूर्वम् इत्यादि सूत्रों से पूर्वप्रयोग होता हो उनका पूर्व प्रयोग करना । दशरथस्य पुत्रः यहाँ पर एक बात जाननी चाहिये कि सूत्रों में प्रथना निर्दिष्ट देखा जाता है न कि उदाहरणों में । अधिकतर पाठक उदाहरण में देखने लगते हैं, सो ठीक नहीं । अतएव हम उदाहरण में 'पृष्ठी' सूत्र से समास होता है, हमलिये पृष्ठी सूत्र हो देखना चाहिये । इसमें पृष्ठी पद को प्रथमा विभक्ति से निर्देश किया गया है, अतः उसकी उपसर्जन संज्ञा होती है, और 'उपसर्जन पूर्वम्' से उसीका पूर्व में प्रयोग होता है । उपसर्जन पूर्वम् सूत्र का कार्य बताने के लिये इस का विप्रद 'पुत्रः दशरथस्य = पुत्र + सु, दशरथ + इस्' ऐसा भी बताना अधिक युक्त रहता है । अतएव दशरथ इम् पुत्र सु इसके परचान्

४. कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा करके 'मुपा धातु-

प्रातिपदिकयो (२४. ७७) सूत्र से विभक्तियों का लुक् करना, जैसे दशरथपुत्र, अब इसके पश्चात्

५ सु विभक्ति लाना और सु विभक्ति आ जाय तव उसके पश्चात् वृद्धिरादैच् पर जो शालीय का उदाहरण दिया गया है, तथा सु को विसर्ग करने में जो-जो सूत्र लगाये गये हैं, उस क्रम से सूत्रों को लगाकर दशरथपुत्र की सिद्धि करना। वस, यही विधान सभी प्रकार के समासों में होता है। और जो जो विशेष विशेष सूत्र लगते हैं, उनको समास प्रकरण के अव्यय विभक्तिममीप० (२१ ६) सूत्र के 'अधिरि' उदाहरण पर देखना चाहिये। उन सूत्रों के अर्थ तथा वे सूत्र क्या क्या काम करते हैं, उनका कार्य प्रदर्शन भी ज्ञात कर लेना चाहिये।

विभक्तिप्रकरणम्

प्रथम व्याख्यान में कारक तथा विभक्ति विषय पर प्रारम्भिक प्रकाश डाला गया था। अब कुछ विशेष विचार उपस्थित करते हैं। क्रिया की सिद्धि में जो सहायक हो उसको कारक कहते हैं। इस प्रकार ही कारक की परिभाषा से राम गच्छति। राम सीता पश्यति। इत्यादि वाक्यों में कर्त्ता, कर्म इत्यादि की व्यवस्था होती है। परन्तु कुछ ऐसे पद भी हैं जिनके कारण से विभक्तियों के उपर प्रभाव पड़ता है। कारक होने के कारण से तो प्रथमा, द्वितीया, आदि विभक्ति होना तो स्वाभाविक ही है परन्तु कारक न होते हुए भी विभक्तियों पर प्रभाव पड़ना एक विचित्र बात है। जैसे रामेण सह मोहन गच्छति। यहाँ पर राम में कृताया विभक्ति क्यों हुई, राम शब्द की वरण सज्ञा तो 'साधकतम प्रकरण' इन सूत्र से है नहीं, पुन कृतीया विभक्ति होने का कारण क्या है। इसी प्रकार गुरवे नम, स्वस्ति प्रजाभ्य इत्यादि विभक्ति प्रकरण के अनेक उदाहरणों में केवल उन उन पदों के समीप में होने के कारण से विभक्तिया की व्यवस्था होती है। इन्हीं उपपद विभक्ति कहते हैं। उपपद का अर्थ है पदस्य समीपम् उपपदम् अर्थात् पद के समीप को उपपद कहते हैं। अतः विभक्तिया दो प्रकार की होती हैं, एक कारकविभक्ति और दूसरा उपपदविभक्ति। अर्थात् पदों के कारक होने के कारण से जो विभक्तियों की व्यवस्था होती है उन्को कारक विभक्ति तथा पद के समीप होने के कारण से जहाँ विभक्तियों की व्यवस्था होती

हैं उसको उपपद विभक्ति कहते हैं।

विभक्ति प्रकरण में जहाँ कहीं भा शब्दों के योग से विभक्ति का विधान किया गया है, सभी उपपद विभक्तियाँ हैं ऐसा जानना चाहिए।

अष्टम व्याख्यान

विकरणप्रकरणम्

विकरण किमे कहते हैं तथा व्याकरण शास्त्र में उसका क्या महत्त्व है, इस विषय पर चर्चा करने से पहले प्रक्रिया शब्द का अर्थ तथा प्रयोजन जानना आवश्यक है। प्रक्रिया ढग को कहते हैं। विचित्र कामों को करने के कारण किसी व्यक्ति को विचित्र ढग का मनुष्य कहा जाता है उसी प्रकार २००० धातुओं का भी ढग होता है। अर्थात् सभी धातुओं की केवल चार ही प्रक्रिया होती हैं। (१) कर्तृप्रक्रिया, (२) कर्मप्रक्रिया (३) भावप्रक्रिया और (४) कर्मकर्तृप्रक्रिया। इन्हीं चारों प्रक्रियाओं में सभी धातुओं के रूप चलते हैं। सक्र्मक धातुओं का रूप कर्तृप्रक्रिया और कर्मप्रक्रिया में तथा कर्मकर्तृप्रक्रिया में चलते हैं और असक्र्मक धातुओं के रूप कर्तृप्रक्रिया और भावप्रक्रिया में चलते हैं। इन चारों प्रक्रियाओं को क्रमशः कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य, भाववाच्य और कर्मकर्तृवाच्य कहते हैं।

कर्तृप्रक्रिया या कर्तृवाच्य—जिस वाक्य में क्रिया के द्वारा कर्ता कहा जाय, उस धातु को कर्तृवाच्य में कहा जायेगा तथा उसका रूप कर्तृप्रक्रिया में चलेगा। जैसे राम घेद पठति=राम घेद पढ़ता है। यहाँ पर 'पठति' क्रिया के द्वारा राम कर्ता कहा जा रहा है। अतः यहाँ पर पठ धातु का रूप कर्तृवाच्य में वचन भेद से पठति, पठत, पठन्ति आदि चलेगा।

कर्मवाच्य या कर्मप्रक्रिया—जिस वाक्य में क्रिया के द्वारा कर्म कहा जाय, उस धातु को कर्मवाच्य में कहा जायेगा तथा उस धातु

का रूप कर्मप्रक्रिया में चलेगा। जैसे रामेण पुस्तक पठ्यते=राम से पुस्तक पढ़ी जाती है। इसका कर्तृवाच्य या राम पुस्तक पठति=राम पुस्तक पढ़ता है। “रामेण पुस्तक पठ्यते” इस वाक्य में पुस्तक में प्रथमा का एकवचन है। लेकिन जब पठ धातु राम पुस्तक पठति इस वाक्य में कर्तृप्रक्रिया में था तब कर्त्ता राम’ को कहता था लेकिन अब कर्मवाच्य में ‘पुस्तक’ को कहता है। चूंकि कर्तृप्रक्रिया में ‘पुस्तक’ कर्म था और अब वही कर्त्ता हो गया है इसलिये पठ्यते यह रूप कर्मप्रक्रिया में है। क्योंकि पहले का कर्म ‘पुस्तक’ अब कर्त्ता होकर क्रिया के द्वारा कहा जा रहा है।

भाववाच्य या भावप्रक्रिया—जिस वाक्य में क्रिया के द्वारा केवल भाव अर्थात् धातु के अर्थ का कथन हो उस धातु को भावप्रक्रिया में कहा जायेगा। जैसे कर्तृप्रक्रिया में राम हसति=राम हँसता है। यह वाक्य भाव प्रक्रिया में रामेण हस्यते=राम से हँसा जाता है। इस धातु अकर्मक है अब एवं कर्मवाच्य में इनका रूप नहीं हो सकता। यहाँ पर तो इस धातु के अर्थ का केवल कथन किया जा रहा है। इसी प्रकार अकर्मक धातुओं से भावप्रक्रिया में रूप चलते हैं।

कर्मकर्तृप्रक्रिया—जिस वाक्य में कर्म अर्थात् क्रिया इतनी मरलता से सिद्ध हो कि कर्त्ता के प्रयत्न की कोई आवश्यकता ही न प्रतीत हो, वहाँ कर्म, कर्त्ता की तरह हो जाता है। चूंकि कर्म, कर्त्ता की तरह हो जाता है इसीलिये उसको कर्मकर्त्ता कहते हैं। उस धातु का रूप कर्म कर्तृप्रक्रिया में चलता है। कर्मकर्तृप्रक्रिया तथा कर्मप्रक्रिया के रूपों में साधारणतः कोई भेद नहीं होता। जैसे —

कर्तृवाच्य—धनीराम बाण्ड भिनत्ति=धनीराम लकड़ी को पाड़ता है।

कर्मवाच्य—धनीरामेण बाण्ड भिद्यते=धनीराम से लकड़ी पाड़ी जाती है।

कर्मकर्तृवाच्य—बाण्ड भिद्यते स्वयमेव=लकड़ी स्वयं पट रही है। इस प्रक्रिया में “स्वयमेव” का प्रयोग होता है। इन तीनों प्रक्रियाओं के वाक्यों पर ध्यान लीजिये।

कर्तृवाच्य में कर्त्ता धनीराम लकड़ी पाड़ रहा था, कर्मवाच्य में

चराराम से लकड़ी फट्टी जा रही थी। लेकिन कर्मकर्तृवाच्य में लकड़ों के फटने में इतनी सरलता हो गई कि कहा जा रहा है कि लकड़ी धनी-राम के द्वारा क्या फाड़ी जा रही है वल्कि लकड़ी आप से आप फट रही है। यहाँ पर कर्त्ता धनीराम में प्रयत्न की आवश्यकता प्रतीत ही नहीं होती।

वाच्य परिवर्तन—कर्तृवाच्य के वाक्य को कर्मवाच्य या भाव-वाच्य तथा कर्मवाच्य या भाववाच्य के वाक्य को कर्तृवाच्य में कर देना ही वाच्य परिवर्तन है। वाच्य परिवर्तन करते समय क्रिया उभका कर्त्ता, कर्त्ता के विशेषण, कर्म और कर्म के विशेषण, इन सभी में परिवर्तन होता है।

वाच्य परिवर्तन के नियम (१)—कर्मवाच्य बनाने में प्रथमान्त कर्त्ता को तृतीयान्त और द्वितीयान्त कर्म को प्रथमान्त करना पड़ता है।

(२) कर्तृवाच्य में जो क्रिया कर्त्ता के अनुसार होती है वह कर्म के अनुसार बना देने की पड़ती है।

(३) क्रिया जिस काल या जिस लकार की होगी वाच्यान्तर में भी वह उसी काल और लकार की होगी।

(४) कर्त्ता और कर्म के अनुसार ही उसके लिंग तथा वचन में परिवर्तन होंगे।

(५) भाव और कर्म वाच्य में धातु आत्मेनपदी हो जाता है। तथा उसका विकरण यक् होता है।

जैसे—कर्तृ० मुरलीलः बालकः स्वकीयं पाठं पठति ॥ कर्म०—मुरलीलेन बालकेन स्वकीयः पाठः पठ्यते। इसी प्रकार वाक्यों को घना कर अभ्यास करना चाहिए।

उपर्युक्त ४ प्रक्रियाओं में जिन धातुओं के रूप बलाये जाते हैं उनके प्रकार :—

प्रकृत्यन्तः सनन्तरच यङन्तो धङ्लुगे च।

एयन्तो एयन्तसनन्तरच पङ्विधा धातुरुच्यते ॥ दुर्गाचार्यः ॥

स्याच्छ्रुद्धा प्रहतिर्यन्ता सनेन्ता णिचि सम्परा।

यहन्ता यङ्लुगन्ता च नातोऽन्या निष्प्रबोचना ॥ श्रीरामायणी ॥

अर्थात् (१) शुद्ध प्रकृति (२ हजार धातु) (२) णिच् प्रत्ययान्त, (३) सन् प्रत्ययान्त, (४) णिजन्त से सनन्त, (५) यङ्प्रत्ययान्त और (६) यङ्लुगन्त ये ६ प्रकार के धातु होते हैं तथा इस प्रकार से भिन्न और कोई धातु या प्रकृति नहीं है और यदि हैं वे सभी प्रयोजन रहित हैं। सूत्र निर्देश पूर्वक इन प्रत्ययान्त धातुओं का विवरण :—

घतेमान काल प्रथम पुरुष एक वचन के रूप—

पठ्=पठति=पढ़ाता है।

पठ् णिच्=पाठयति=पढ़ाता है-हेतुमति च (३.१.१६)

पठ् सन्=पिपठिपति=पढ़ने की इच्छा करता है-धातो० (३.१.७)

पठ् णिच् सन्=पिपाठयिपति=पढ़ाने की इच्छा करता है—

धातो० (३.१.७)

पठ् यङ्=पापठ्यते=बारम्बार या अत्यधिक पढ़ता है—

धातो० (३.१.१३)

पठ् यङ्लुक्=पापठीति=बारम्बार या अत्यधिक पढ़ता है—

यङोऽचि च (२.४.६८)

यहाँ पर णिच् प्रत्यय के सम्बन्ध में एक बात ज्ञातव्य है। पढ़ धातु की प्रेरणार्थक क्रिया पढ़ाना और पढ़वाना दोनों होती है। अतएव पठ् पढ़ना, पठ् णिच् पढ़ाना, पठ् णिच् णिच् पढ़वाना। दो बार णिच् प्रत्यय किया जाता है।

लकार—लकार का अर्थ है केवल ल्। लकार दस होते हैं। कुछ लकार वर्तमानादि कालों में तथा कुछ लकार वृत्तियों में उपदेश किये गये हैं। आह्वा देना, निमन्त्रण करना आदि को वृत्ति कहते हैं। अइ-चण्, ऋलृक्, ऐ ओङ् इन तीन प्रत्याहारों से दस लकारों का ज्ञान होता है। इन अ, इ, उ, ऋ, ए और ओ को बीच में रखकर पहले ल् और बाद में ट् एवं ङ् रख देने से इन लकारों के नाम याद हो जाते हैं :—जैसे ल् अ ट् लट्। इसी प्रकार लिट्, लुट्, लृट्, लेट् और लोट् तथा ङ् जाड़कर लङ्, लिङ्, लुङ् तथा लृङ् ये ही दस लकार होते हैं। चूँकि इन दस लट् आदि में टकार आदि को इत्संज्ञा लोप करने पर केवल ल् बच जाता है इसलिए इनका लकार कहते हैं। लिङ् के विध्यादि लिङ् तथा आशिपि लिङ् ये दो भेद होते हैं।

टिट् लकार—लट् आदि ६ लकारों में टकार की इत्संज्ञा होती है अतएव इन ६ लकारों को टिट् लकार कहते हैं।

डित् लकार—लङ् आदि ४ लकारों में डकार की इत्सहा होती है, अतएव इन्हें डित् लकार कहते हैं। डित् और टित् का अर्थ है डकार और टकार जिसका लोप हुआ है।

विकरण—जिसके कारण से धातु में विकार होता है उसको विकरण कहते हैं। विकरण के कारण से ही धातुओं में गुण और वृद्धि रूप विकार होता है। विकरण ६ प्रकार के धातुओं के पश्चात् तथा तिप् तस् आदि १८ प्रत्ययों के पहले आते हैं।

लोट् का विकरण 'सिप्', लृट् तथा लृङ् का 'र्य', लुट् का 'तासि', लुङ् का 'सिच्', लिट् का विकरण नहीं होता। ६ प्रकार के धातुओं के पश्चात् इन लकारों के परे रहने पर ये विकरण आते हैं। क्योंकि इन विकरणा के साथ किसी गण का सम्बन्ध नहीं है। शेष लट्, लोट्, लङ् और विभ्यादिलिङ् लकारों में गण भेद से विकरण भेद हो जाता है। विकरण भेद के कारण ही धातुओं का दस समूहों में विभाजन किया गया है—

भ्याद्यदादी जुहोत्यादि दिवादि स्वादिरेव च।

तुदादिश्च रुधादिश्च तनक्यादिचुरादय ॥

अर्थात् भ्यान्, अदादि, जुहोत्यादि, दिवान्, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्रयादि और चुरादि ये दस गण हैं। दिवादिभ्य शप् (३१ ६६) इन सूत्र से कर्त्तरि सार्धधातुक प्रत्यय के परे रहने पर शप् के स्थान में श्यन् आदेश होता है। इसी प्रकार सभी गण के सूत्रों को विकरणप्रकरण में देखना चाहिए। उस प्रकरण में अदादिगण, जुहोत्यादिगण तथा चुरादिगण के विकरण का निर्देश नहीं है। अतएव अदिप्रभृतिभ्य शप् (२४ ७०) से अदादिगण के शप् विकरण का लुक् कहकर लोप कर दिया जाता है। उसी प्रकार जुहोत्यादिभ्य श्लु (२४ ७५) से शप् का श्लु कहकर लोप कर दिया जाता है। इन विकरणों के पश्चात् भ्यान्दिगण, णिजन्त, सनन्त, यञन्त इत्यादि धातुओं के पश्चात् कर्त्तरि शप् से लट् लोट् लङ् विभ्यादिलिङ् में शप् विकरण होता है। क्योंकि कर्त्तरि शप् का किसी गण से सम्बन्ध नहीं। गणों से बचे हुए सभी धातुओं के पश्चात् शप् विकरण होता है। इस लिए भ्यादिभ्य शप् सूत्र न बनाकर आचार्य ने कर्त्तरि शप् बनाया। यङ्

लुगन्त में इन लकारों में शप् विकरण का अदिप्रभृ० (२. ४७२) से लुक् होता है। क्योंकि यङलुगन्त को अदादि के समान ही माना जाता है। इन चारों लकारों में सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहने पर इन भ्वादि तथा सनन्तादि धातुओं के पश्चात् विकरण शप् होता है और दिवादि आदि धातुओं के पश्चात् भी सार्वधातुक परे रहने पर श्यन् आदि विकरण होते हैं इसलिए आशिपि लिङ् तथा लिट् में विकरण नहीं होता क्योंकि लिङाशिपि (३४११६) लिट् च (३४११५) से इनकी आर्धधातुक सज्ञा होती है। लट्, लोट्, लङ् विध्यादिलिङ् के विकरण सार्वधातुक सज्ञक हैं, इसलिए इनको नार्धधातुकलकार तथा अन्य लकारों के विकरण आर्धधातुक सज्ञक हैं, इसलिये उनको आर्धधातुकलकार कहते हैं।

इन सभी लकारों में कुछ का विधान तृतीयाध्याय के तृतीयपाद के लकारार्थनिर्णयप्रकरण में तथा कुछ का विधान तृतीयाध्याय के द्वितीयपाद में किया गया है। अष्टाध्यायी-प्रकाशिका में इस सभी सूत्रों को देखना चाहिए।

तिङन्त के सिद्धिप्रकार—किसी भी धातु से किसी लकार में रूपों को सिद्ध करने के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए—

सिद्धि करने के लिए तिङन्त की सिद्धि को दो भागों में विभक्त करना चाहिए। (१) किसी धातु के पश्चात् तिप्, तस्, भि इत्यादि प्रत्यय का आना (२) तत्पश्चात् धातु + विकरण + प्रत्यय को जोड़कर उस तिङन्त की सिद्धि।

सिद्धि के प्रथम सण्ड में—

(१) परिचय—अर्थात् भूवादयो धातव (१३१) इस सूत्र से उस धातु का परिचय। जैसे—हुपचप् पावे की धातु सज्ञा हुई।

(२) स्वागत—धातु में लगे हुए अनुगन्धों की इससज्ञा करके, उसका लोप करना। जैसे—इत्सज्ञा लोप के पश्चात् हुपचप् का पच्।

(३) धातो (३.१.६१) का अधिकार, वतमाने लट् (३.२.१२३) इत्यादि लट् लिट् आदि विधि सूत्रों को लगाना, लट् आदि के अनुगन्धों का लोप, लस्य (३.४.७७) का अधिकार तथा तिप्, तस्, भि इत्यादि प्रत्ययों में से किसी एक का लकार के स्थान में आदेश करना। जैसे प तिप्।

नोट—सन्, यङ्, णिच् आदि प्रत्यय हैं अन्त में जिन धातुओं के उनकी धातु सन्नाद्यन्ता धातव (३.१.३२) से करनी ।

मिद्धि का द्वितीयखण्ड—

(४) विकरण को लाना । विकरण को लाने के लिये लकारों के अनुसार विकरणप्रकरण के किसी सूत्र का लगाना । जैसे पच् शप् तिप् ।

(५) सार्वधातुक लकारों में इट् का आगम नहीं होता लेकिन आर्धधातुकलकारों में सार्वधातुकविकरण को इट् का आगम होता है । जैसे भू लृट् । भू ल् । भू तिप् । भू स्य तिप् । भू इट् स्य तिप् ।

(६) धातु या विकरण का गुण या वृद्धि । जैसे—(धातु का गुण) भो इट् स्य तिप् । (विकरण का गुण)—कृ लट् । कृ ल् । कृ तिप् । (तनादिष्टव्य ४. (३.१.७१) कर् उ तिप् । कर् आं तिप् कर् अंति ।

(७) संहितानार्थप्रकरण, ण्यप्रकरण या मूर्द्धन्यादेशप्रकरण के किसी सूत्र से सन्धि, नकार के णकार का आदेश, मकार में पसार का आदेश करना । जैसे—भव् इ स्य ति । इत्तज्जा लोप के लिये फोंडे निग्रम नहीं लागत तो कभी भा किया जा सकता है । यहा पर 'भो' का भव् इ स्य ति हुआ । यहा आदेशप्रत्ययों में मकार का पसार हो गया । सिद्धि के इन ७ सीद्धियों को स्मरण कर लेना चाहिये । इनका अभ्यास हो जाय इसलिये प्रमाशिरा में अदेह्गुण (१.१.३) सूत्र पर पचन्ति की मिद्धि, इत्ता गुणवृद्धो (१.१.३) सूत्र पर तरति, नरति, अरुपर्ण् की मिद्धि देग लेना चाहिये । इन्ही तरीकों के आधार पर सभी तिहन्नों की मिद्धि का गई है । जो जो सूत्र लगे उन उन सूत्रों की ग्रन्थ में निष्काल कर देरना चाहिये तथा उम उम सूत्र में स्मि स्मि सूत्र का अधिनार है या अनुवृत्ति, जानना चाहिये । उन सूत्रों के अर्थों पर भी उसी समय विचार कर लेना चाहिये । उम सूत्र ने क्या काम किया, इस प्रकार सूत्रों के स्मरण से तीन चार तिहन्नों की मिद्धि के परचाय यही भी बठिनाई नही पडती ।

नवम व्याख्यान

कृतप्रत्ययप्रकरणम्

कृत्—धातु के पश्चात् कृत् और तिङ् ये दो ही प्रकार के प्रत्यय होते हैं। तिप्, तस्, मि इत्यादि १८ प्रत्ययों को तिङ् और इन १८ प्रत्ययों को छोड़कर अन्य शेष प्रत्ययों को कृत् कहते हैं। जैसे—तव्य, तव्यन्, अनीयर्, यत्, क्यप्, एबुल्, तृच्, घञ्, क्त, क्तयत्, शवृ, शानच्, क्त्वा इत्यादि प्रत्यय कृत प्रत्यय कहलाते हैं। आचार्य का सूत्र है कृततिङ् (३.१.६३)

कृत्य—धातोः (३.१.६१) अधिकार सूत्र के पश्चात् एबुल्लुच्चा (३.१.१३३) इस सूत्र तक तव्य, तव्यत्, अनीयर् आदि सभी प्रत्यय कृत्य कहलाते हैं। इन सूत्रों को निकालकर देखना चाहिये।

कृत् तथा कृत्य संज्ञा का फल—सभी कृत् प्रत्यय साधारणतः कर्त्ता में ही होते हैं। कभी-कभी अपादन, सम्प्रदान, करण, अधिकरण आदि कारकों में तथा केवल धातु के अर्थ को बताने के लिये भी ये कृत् प्रत्यय होते हैं। जैसे कृ धातु से तृच् प्रत्यय होकर कर्त् रूप बनता है। इसका प्रथमा एक वचन में कर्त्ता होता है जिसका अर्थ “करने वाला” है।

कृत्य प्रत्यय कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में होते हैं। जैसे रामेण वेद. पठितव्य.। रामेण उपनिषत् पठितव्या। रामेण पुस्तक पठितव्यम्। इन तीनों वाक्यों में पठ् धातु से ‘तव्य’ प्रत्यय कर्मवाच्य में हुया है। जिसका अर्थ है राम से वेद पढ़ा जाना चाहिये। राम से उपनिषद् पढ़ी जानी चाहिये। राम से पुस्तक पढ़ी जानी चाहिये। कृत्य प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों का लिङ्ग और वचन कर्म के अनुसार परिवर्तित होते हैं। जो कि उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है। इसके विवेचन के लिये कर्त्तरि कृत् (३.४.६७) और तयोरेवकृत्य० (३.४.७०) सूत्रों को देखना चाहिये ॥

उपपद—धातु के पश्चात् कृत् प्रत्यय आते हैं। कभी-कभी केवल धातु से ही कृत् प्रत्यय आते हैं। तो जो भी सुबन्त पद धातु के पहले

आते हैं उनको उपपद कहते । जैसे—कृ+तृच् यहां पर बिना उपपद के दो कृ धातु से (कृन्) तृच् प्रत्यय हो गया । कुम्भम्+कृ+अण् यहां पर कुम्भम् (घड़ा) सुबन्त पद कृ धातु के पहले है, तब अण् प्रत्यय आया । अत एव यह कुम्भम् २।१ पद उपपद हुआ ।

उपपद की पहचान—‘धातोः’ अधिकार में पञ्चमी, सप्तमी और प्रथमा विभक्तियों का बाहुल्य है । धातुओं से पञ्चमी और प्रत्ययों के लिये प्रथमा विभक्ति का प्रयोग है । सप्तमी विभक्ति उपपद एवं अर्थ इन दोनों धातों के निर्देश के लिये आती है । जैसे कर्मण्यण् (३.२.१) अधिकरणे शैतेः (३.२.१४) इत्यादि सूत्रों में मन्तमी विभक्ति उपपद निर्देश के लिये है तथा कर्त्तरि कृन् (३.४.६७) तैयार्य कृत्य० (३.४.७०) इत्यादि सूत्रों में सप्तमी विभक्ति अर्थ निर्देश के लिये है ।

सुत्रार्थ की शैली—धातोः (३.१.६१) अधिकार के प्रकरण में ४७७१ क्रमाङ्क को याद रखना चाहिये । अमुक धातु से, अमुक के उपपद रहने पर, अमुक अर्थ में, अमुक प्रत्यय होता है । जैसे—कर्मण्यण् (३.२.१) का अर्थ होगा “धातु से कर्म के उपपाद रहने में कर्त्ता अर्थ में अण् प्रत्यय होता है । कृन् प्रत्यय भी कर्त्तरि कृन् (३.४.६७) से कर्त्ता में ही होते हैं ।

कृदन्त की सिद्धि :—

कृन् प्रत्ययों को लाने के लिये तिङन्त की सिद्धि में निर्दिष्ट लट् आदि प्रत्ययों को लाने तक जितने कार्य किये गये हैं, वे सभी यहां भी करने चाहिये । ततः परधान्—

- (१) इट् का आगम या इट् का निषेध ।
- (२) गुण या वृद्धि या गुण या वृद्धि का निषेध ।
- (३) इयङ् या उयङ् का आदेश ।

अब यहाँ पर इट् का आगम आर्घधातुकस्येडधतौदेशः (७. २. ३५) और निषेध एकाच उपदेशोऽनुदात्तात् (७. २. १०) से करना चाहिये ॥

सार्धधातुकार्धधातुकयोः (७. ३. ८४) तथा पुगन्तलृपृचस्य च (७. ३. ८६) इन दो सूत्रों से गुण का विधान करना चाहिए तथा अचञ्छिति (७. २. ११५) से वृद्धि का विधान करना चाहिये परन्तु गुण और वृद्धि

इन दोनों का निषेध किङ्कति च (१. १. ५) से हो जाता है। अचि शुधातु० (६. ४. ७७) से ड्यङ् अथवा उवङ् का आदेश होता है।

तिङन्त की सिद्धि में विशेषता—

जिस प्रकार कृदन्त की सिद्धि बतलाई गई उसी प्रकार तिङन्त की सिद्धि भी होती है। तिङन्त के लिए केवल एक लादेशप्रकरण विशेष ध्यान देने योग्य है अन्यथा कृदन्त और तिङन्त की सिद्धि में कोई भेद नहीं ॥

नमूना रूप में कृदन्त की सिद्धि के लिये अदेङ् गुण (१. २. २) सूत्र पर तरिता, चेता की सिद्धि, निष्ठा (३. २. १०२) सूत्र पर 'कृत' की सिद्धि देखनी चाहिये। कार्य प्रदर्शन पर पूर्ण ध्यान रखना आवश्यक है। किस किस प्रकार से इट् का आगम, गुण वृद्धि का विधान या निषेध किया गया है, इन बातों की सूक्ष्मता का ज्ञान करना आवश्यक है।

लादेशप्रकरणम्

लादेश प्रकरण के पहले लकारार्थनिर्णयप्रकरण आया है। लकार अर्थात् लट्, लिट्, इत्यादि प्रत्ययों का क्या अर्थ है इन बातों को बतलाने के लिये यह प्रकरण है। सूत्रों के अर्थ जानने से ही इन लकारों का अर्थ जाना जा सकता है। पहले भी मैं बतला चुका हूँ कि सस्कृत व्याकरण में कुछ लकार काल को बतलाते हैं और कुछ वृत्तियों को जैसे वर्तमाने लट् (३. २. १२३) सूत्र वर्तमान काल को बतलाता है, लोट् और विध्याविलिङ् वृत्ति को बतलाते हैं। अकारादि क्रम से सभी लकारों का सूत्र याद कर लेना चाहिये।

लादेशप्रकरण में उन सूत्रों को रखा गया है जिनके द्वारा लकार के स्थान में होने वाले सभी परिवर्तन विधान किये जाते हैं। अतएव इस प्रकरण के सूत्रों से काम लेने के पहले लट् आदि प्रत्यय धातु के पश्चात् लाने चाहिये। पुन केवल लकार के स्थान में आत्मनेपद तथा परस्मैपद के नियम के अनुसार तिप् या 'त' आदि आदेश करना चाहिये। आदेश कर लेने के पश्चात् विकरण लाना चाहिये। तब आदेश हुये के स्थान में होने वाले परिवर्तन करने चाहिये। इस प्रकार

का क्रम सरलता के लिये बताया गया। जैसे एध् लट्। एध् ल्। एध् त। एध् शप् त। एध् अ त। इस स्थिति में टित् आत्मनेपदानां टेरे लगाने चाहिये। इस सूत्र का अर्थ सूत्र पर देख लीजिये। सूत्र के द्वारा आत्मनेपद की 'टि' को एकार हो गया जिससे बना एध् अ ते। एधते। इस प्रकरण के सूत्रों का विनियोग करने का यही क्रम है। इन सूत्रों में टित् लकार और ङित् लकार का अर्थ अच्छी तरह जानना चाहिये। टित् और ङित् लकार का अर्थ विभरण के व्याख्यान में बताया चुके हैं।

दशम व्याख्यान

स्त्रीलिङ्गप्रकरणम्

किस शब्द का कौन सा लिङ्ग है, इस विषय पर महाभाष्यकार पतञ्जलि ने अत्यधिक विचार किया है। अन्त में उन्होंने निर्णय किया कि "लिङ्गमशिष्य लिङ्गाश्रयत्वाल्लोकस्य" अर्थात् शब्दों के लिङ्गों का निर्धारण नहीं किया जा सकता। सत्तारही इस बात का प्रमाण है। लोक में जिस प्रकार बोला जाता है, उसीको प्रमाण मानना चाहिये। लोक में 'वारा' जिसका अर्थ स्त्री है, उसको पुल्लिङ्ग माना जाता है। अतएव यह निश्चय हुआ कि लिङ्ग के सम्यन्ध में कृत् इत्यादि प्रत्ययों के समान कोई ऐसा नियम नहीं जिससे गीत्र पता चल जाय कि अमुक शब्द स्त्रीलिङ्ग है या पुल्लिङ्ग। फिर महामुनि पाणिनि ने लिङ्गानुशासन में लिङ्गों का विवेचन किया है। यदि उन्हीं सूत्रों का अभ्यास कर लिया जाय तो यह समस्या बहुत कुछ सुलभ जाती है। इस लिङ्गानुशासन में किस शब्द का क्या लिङ्ग है, बताया गया है। यह नहीं बताया गया कि अमुक शब्द स्त्रीलिङ्ग या नपुंसक क्यों हुआ। इसके लिये तो परम्परा का ही आश्रय लेना पड़ेगा।

यहाँ पर एक प्रश्न उठता है कि आचार्य ने स्त्रीप्रत्यय का ही विधान क्यों किया। उनको नपुंसक और पुल्लिङ्ग का भी विधान

करना चाहिये था। इसका उत्तर यह है कि प्रातिपदिक मात्र ही नपुंसक या पुल्लिङ्ग होता है लेकिन स्त्रीलिङ्ग के लिये अविभक्त प्रातिपदिक के परचात् स्त्रीलिङ्ग का दातक प्रत्यय लगाया जाना है इसलिये स्त्री-प्रत्यय का प्रकरण आवश्यक था।

मुख्यतया डीप्, डीप, डीन् तथा टाप्, डाप् और चाप् ये ६ स्त्रीलिङ्ग के प्रत्यय हैं। इन्हीं ६ प्रत्ययों का 'इयाप्प्रातिपदिकात्' सूत्र (४११) में निर्देश किया गया है। डीप, डीप्, डीन् म से नकार का इसज्ञा करने पर 'डी' वच जाता है और चाप्, टाप्, डाप् म च, र, ङ् की इसज्ञा करने पर आप् वच जाता है। अब डी+आप् दोनों मिलकर इयाप् बन गया। अतः सूत्र का अर्थ हुआ। डी आप् है अन्त में जिसके और प्रातिपदिक से आगे कहे जाने वाले प्रत्यय होते हैं। अर्थात् ड्यन्त, आवन्त और प्रातिपदिक से आगे कहे जाने वाले प्रत्यय होते हैं। इससे यह ज्ञान हुआ कि प्रातिपदिक से ही स्त्री प्रत्यय होते हैं।

स्त्री प्रत्यय की सिद्धि

(१) अर्थवदधातुरप्रत्यय ० (१०४५) से प्रातिपदिक सज्ञा करना। जैसे—अज शब्द की इससे प्रातिपदिक सज्ञा होती है।

(२) इयाप्प्रातिपदिकात् (४११) तथा स्त्रिया (४१३) का अधिकार करना।

(३) स्त्री प्रत्यय विधायक सूत्र। जैसे—अज प्रातिपदिक से अजाद्यतष्टाप् (४१४) प्रत्यय (३११) परश्च (३१२) से अज टाप् हुआ।

(४) अङ्ग कार्य करना। यहां पर अक सवर्णे दीर्घ (६१६७) से दीर्घ एकादश होता है। अज+आ=अजा।

(५) सु औ जस् की उत्पत्ति। (४) विधान म चदा पर सहिता कार्य किया गया है लेकिन डीप्, डीप, डीन् प्रत्ययों में भसज्ञा करनी पडती है। जिसका सूत्र है यचि भम् (१४१८) पुन भस्य (६४१२६) का अधिकार करके यस्येति च (६४११८) से इवर्ण और अवर्ण का लोप करना होता है। इस प्रकार इन प्रकारों से स्त्रीप्रत्यय सिद्ध हो जाते हैं।

तद्धितप्रत्ययप्रकरणम्

तद्धित प्रत्यय का विधान आचार्य ने तद्धिता. (४ १.७६) सूत्र से लेकर ५ अध्याय पर्यन्त किया है। यह बहुत लम्बा प्रकरण है। इस में अष्टाध्यायी-प्रभाषिका में तद्धित के सिद्धान्तों को समझाने के लिये तथा आवश्यक ज्ञान के लिये प्रमिद्ध-प्रमिद्ध सूत्र ले लिये हैं। सामान्य और आवश्यक ज्ञान के लिये ये चुने हुए सूत्र पर्याप्त हैं।

तद्धिता शब्द का विग्रह है तस्मै हितम् तद्धित ते तद्धिता। यहाँ पर हित के योग में चतुर्थी विभक्ति है। वस्तुतः सभी विभक्तियों में इसका विग्रह करना चाहिये लेकिन हित के योग में चतुर्थी विभक्ति ही होती है। सभी विभक्तियों के साथ हित का समास करके एकशेष करने पर तद्धिता में उहुयचन उपपन्न होता है। नहीं तो तद्धित सूत्र न देकर तद्धिता दिया, इस बात का क्या उत्तर है। सभी विभक्तियों में विग्रह करने से प्रथमासमर्थ, द्वितीयासमर्थ, तृतीयासमर्थ इत्यादि अर्थ सम्भव हो सकता है। अन्यथा केवल चतुर्थी समर्थ प्रातिपदिक से ही तद्धित प्रत्यय होता है ऐसा अर्थ होना चाहिये था।

अभी उपर्युक्त पक्तियों में प्रथमा समर्थ शब्द का प्रयोग किया है उसका अर्थ इस प्रकार समझना चाहिये। तद्धित प्रत्यय न्यूनत आनन्त और प्रातिपदिक से होते हैं, इसका अधिनार आ रहा है। यह भी निश्चय है कि तद्धित प्रत्यय किसी न किसी अर्थ में आते हैं। प्रत्यय का स्मार्थ हो या परार्थ, लेकिन उसका अर्थ अपश्य रहता है।

एत सूत्र को लेकर समझना चाहिये। जैसे तस्यापयम् (५.१.६०) अतः इन् (४.१.६५) सूत्र का अर्थ है उसका अप्रय (मन्तान) इस अर्थ में इन् प्रत्यय होता है। उदाहरण दशरथिः। दशरथस्य अपयं पुमान् दशरथिः। अथ यत्र पर दशरथस्य और अपयम् ये दो सम्बन्धी पद हैं। क्योंकि पहले समास प्रकरण में ही यत्ता दिया गया है कि सम्बन्धी पदों का ही इस शब्दानुमानन नामक शास्त्र में विधान किया जाता है। जैसे यत्र पर कथं जाय कि “यत्र दशरथस्य अपयं मुदामस्य” तो अथ दशरथ का राज्ञ और मुदान का अपय यहाँ पर दशरथ और अपत्य में कोई सम्बन्ध ही नहीं। इसलिये ‘समर्थ’ शब्द का अर्थ है सम्बन्धी। अथ यत्र पर दशरथस्य और अप-

त्यम् इन दोनों पदों में से किससे तद्धित प्रत्यय का विधान किया जाय उसके लिये सूत्र है “समार्थानां प्रथमाद् वा ।” सम्बन्धी पदों में से प्रथम पद से तद्धित प्रत्यय को विकल्प से उत्पत्ति होती है । कोई तद्धित प्रत्यय नहीं करना चाहता, उसके लिये वह स्वतन्त्र है । वह दशरथस्य अपत्यम् ही का व्यवहार करता है, वह भी ठीक है, इसलिये ‘वा’ शब्द का प्रयोग किया गया है । अत्र दशरथस्य अपत्यम् यहा पर प्रथम सम्बन्धी पद दशरथस्य है उससे तद्धित इष् प्रत्यय होता है । यहा पर एक प्रश्न उठता है कि प्रथम का अर्थ केवल लिखने की आनुपूर्वा से है या इसमें कोई और बात है । यदि आनुपूर्वा से ही है तो कोई यह भी कह सकता है कि अपत्यम् दशरथस्य यहा पर प्रथम सम्बन्धी पद अपत्यम् है अतएव अपत्य पद से ही तद्धित को उत्पत्ति होनी चाहिये । इस प्रश्न के उत्तर में प्रथम शब्द की व्याख्या यह समझनी चाहिये कि प्रथम शब्द आनुपूर्वा के लिये नहीं बल्कि प्रथम प्रकृति का द्योतन करता है । अर्थात् प्रथम प्रकृति दशरथ है न कि उसका अपत्य । पिता तो पुत्र से पहले ही उत्पन्न हुआ रहता है । अतएव प्रथम प्रकृति दशरथ है । चाहे दशरथस्य पद को पहले या बाद में रखे इसमें कोई अन्तर नहीं आता ।

इस तद्धित के प्रकरण में अर्थों के तथा प्रत्ययों के अधिकार है । प्राग्दीव्यतोऽण् (४१८३) यह प्रत्यय का अधिकार है । तथा तस्यापत्यम् यह अर्थ का अधिकार है । इसी प्रकार ४ और ५ अध्याय में व्यवस्था है । जब प्रत्यय का अधिकार चलता है, तब यह बात ध्यान देने की है कि जब किसी सूत्र में किसी प्रत्यय का विधान नहीं है तभी अधिकार से प्राप्त प्रत्यय जानना चाहिये और जहाँ किसी प्रत्यय का विधान है वहाँ पर अधिकार से प्राप्त प्रत्यय नहीं लगता । जैसे स्त्रीभ्यो ढक् (४१-१००) यहा पर अण् का भी अधिकार है और ढक् प्रत्यय का भी विधान किया है । अतएव यहाँ पर अधिकार प्राप्त प्रत्यय नहीं होता, ढक् ही होता है ।

तद्धितप्रकरण के सूत्रों की अर्थशैली—

सूत्रों में प्रथमा, द्वितीया, तृतीया विभक्ति से भी निर्देश किया गया है जैसे तदस्यास्त्यस्मिन्निति मनुष् (५२६४), यहा पर तद् १११,

तद्धीते तद्वेद (५.२.५६) तद् २।१, तेन रम्भ रागात् (५.२.१), तेन ३।१, तस्मै हितम् (५.१.५), तस्मै ४।१, पञ्चम्यात्तसिल् (५.३.७), पञ्चम्या ५।१, तस्यापयम् (४.१.६०) तस्य ६।१, तत्र तस्येन (५.१.१७६) तत्र (सप्तमी के अर्थ में) ट्यादि रगना में इन विभक्तियों के देने का समर्थ प्रातिपदिक में अर्थ करना ही अभिप्राय है। इयाप्प्रातिपदिक का अधिकार होने से सर्वत्र पञ्चमो विभक्ति होती है और कहीं कहीं पष्ठी विभक्ति भी। इसका कारण धातो (३.१.६१) सूत्र पर देखना चाहिये। अतएव सर्वत्र प्रकृति में पञ्चमी विभक्ति और प्रत्यय में प्रथमा विभक्ति होती है। अर्थ में प्रायः सप्तमी विभक्ति होती है और समर्थप्रातिपदिक में उपर्युक्त सातों प्रकार की विभक्तियाँ आती हैं। अब सूत्र का अर्थ हुआ अमुक प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से अमुक अर्थ में अमुक प्रत्यय होता है। अर्थात् इस प्रकरण के लिये ५.७१ याद रखना चाहिये। जैसे अत इञ् (४.१.६५) का अर्थ हुआ अगारान्त प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में इन् प्रत्यय होता है इसी प्रकार प्रत्येक सूत्र में कम से कम तीनों विभक्तियों को देखना चाहिये। इनमें से कोई विभक्ति यदि सूत्र में न हो तो अनुवृत्ति से लाना चाहिये। या तो कहीं ऊपर के अधिकार सूत्र से अनुवृत्ति आती होगी या पाम के किसी सूत्र से ही।

तद्धित प्रत्यय की मिद्धि

(१) अर्थवद् ० (१.२.५५) में प्रातिपदिक सजा करना। जैसे—
दशरथ शब्द की इस सूत्र से प्रातिपदिक सजा होती है।

(२) ऋयाप्प्रातिपदिकान् (२.१.१), तद्धिता (५.१.७६), समर्थानां प्रथमाद् वा (४.१.८०) तथा अर्थ और प्रत्यय विचारन सूत्रों का अधिकार करना।

(अर्थ का अधिकार) तस्यापत्यम् (२.१.६०), तथा प्रत्यय का प्राप्तीव्यतोऽण् (५.१.८३) है।

(३) प्रत्यय विचारक सूत्र। जैसे अत इञ् (५.१.६५) में दशरथस्य इञ्, प्रत्यय. (३.१.१), परस्व (३.१.२) इन दो सूत्रों को भी लगाना।

(४) मुपो धातुप्रातिपदिकयो (२.४.७६) मुप का लुक् करना।

(५) मसम्ना तथा वसना कार्य करना। इसके लिये अधिकार

सूत्रों के साथ यस्येति च (६.४.१४८) सूत्र लगाना । दशरथ् ३ ।

(६) गुण या वृद्धि तथा अन्य अङ्ग सम्बन्धी कार्य । जैसे 'दशरथ् ३' में तद्धितेऽप्यचामादेः (७.२.११०) सूत्र से आदि अच की वृद्धि ।

इसकी सिद्धि के लिये वृद्धिरादैच् (१.१.१) सूत्र के शालीयः, ऐतिहायनः और औपगवः, इन उदाहरणों को देखना चाहिये ॥

समासान्तप्रकरणम्

समासान्त का अर्थ है समास का अन्त अर्थात् समास हो जाने के पश्चात् इन प्रत्ययों का विधान किया जाता है । समास प्रकरण में इन सूत्रों को कदापि नहीं पढ़ना चाहिये । क्योंकि ये तद्धित प्रत्यय हैं और जो कार्य तद्धित के होते हैं उसी प्रकार इन प्रत्यय के भी कार्य होते हैं । समास समासप्रकरण से तथा समासान्त प्रत्यय इस प्रकार से पढ़ना चाहिये । यही प्रकरण की उपयोगिता है ।

एकादश व्याख्यान

द्विर्वचनप्रकरणम्

चङ् में “पच पच चङ्, श्लु में हु हु तिप् ॥ यह श्लु प्रत्यय नहीं बल्कि जुहोत्यादिगण के धातुओं के परचान् शप् का श्लु द्वारा लोप कर दिया जाता है। अत एव इसी श्लु के विषय में जुहोत्यादिगणीय सभी धातुओं का द्विर्वचन हो जाता है।

द्विर्वचन का काल—धातु के परचान् जब ये पाच प्रत्यय आ जाते हैं तब द्विर्वचन का प्रश्न उपस्थित होता है क्योंकि द्विर्वचन विधायक सूत्र है लिटि० (६१ नं), सन्यङो (६१ नं) श्लो (६१११) और चङि (६१११) परन्तु धातु के परचान् जब कोई प्रत्यय आ जाय तब तबसे प्रथम अङ्ग सम्बन्धी कार्य करना चाहिये। अङ्ग सम्बन्धी लोप, आगम, धर्मधिकार ये तीन प्रकार के ही कार्य हो सकते हैं। इन कार्यों के करने के परचान् ही द्विर्वचन करना चाहिये।

लिट् लकार में द्विर्वचन—धातु के परचान् जब लिट् प्रत्यय आ जाय तब लादेश का कार्य करके अङ्ग सम्बन्धी कार्य होता है। जैसे हुङ् लिट्। कृ ल्। कृ तिप्। कृ णल्। कृ अ। इस स्थिति में अचो णिणिति (७०११५) सार्वधातुकार्धधातुकयो (७३ नं) सूत्र का अपवाद है अतः उससे वृद्धि तथा उरण् स्वर (११५०) से स्वर होकर “कार् अ” हो गया। अब यहाँ पर द्विर्वचन “कार् कार् अ” करना चाहिये। इसी प्रकार जब “कृ अतुम्” का रूप बनाने लगेंगे तो यहाँ पर इत्ता प्रणचि (६१७४) सूत्र से इत् के स्थान में यल् हो जायेगा जिस से “कृ अतुस्” हो जाता है। इस स्थिति में जब द्विर्वचन का काल आया तो द्विर्वचन हो ही नहीं सकता क्योंकि एजाचो द्वे प्रथमस्य (६११) सूत्र का द्विर्वचन प्रकरण के सूत्रों में अविवक्षित है। अतः ‘कृ अतुम्’ में अच है ही नहीं तो द्विर्वचन प्राप्त ही नहीं होता। इसलिये यहाँ पर द्विर्वचनेऽचि (११५८) सूत्र लगता है। सूत्रार्थ है द्विर्वचन निमित्त वाला अजाचि प्रत्यय के परे रहने पर अच् का आदेश स्वान्ति के समान हो जाता है द्विर्वचन के ही करने में। अर्थात् जिस का आदेश हुआ हो उसीका रूप उपस्थित हो जाता है। ऐसा करने से “कृ अतुस्” का रूप “कृ अतुस्” हो गया। अब अच् मिलने से “कृ कृ अतुस्” द्विर्वचन होता है। इसी प्रकार पपत्, पपु की सिद्धि भी द्विर्वचनेऽचि सूत्र पर देख लेना चाहिये। सन् यङ् इत्यादि अन्य प्रत्ययों में द्विर्वचन की विधि

सूत्रों के साथ यस्येति च (६४.१४८) सूत्र लगाना । दशरथ् ३ ।

(६) गुण वा वृद्धि तथा अन्य अङ्ग सम्बन्धी कार्य । जैसे 'दशरथ् ३' में तद्धितेऽप्यचामादे (७०.११०) सूत्र से आदि अच की वृद्धि ।

द्रसनी तिद्धि के लिये वृद्धिरादैच् (१.१.१) सूत्र के शालीय, ऐतिहायन और ओपगव, इन उदाहरणों का देसना चाहिये ॥

समासान्तप्रकरणम्

समासान्त का अर्थ है समास का अन्त अर्थान् नमास हो जाने के पश्चात् इन प्रत्ययों का विधान किया जाता है । समास प्रकरण में इन सूत्रों को कदापि नहीं पढ़ना चाहिये । क्योंकि ये तद्धित प्रत्यय हैं और जो कार्य तद्धित के होते हैं उसी प्रकार इन प्रत्यय के भी कार्य होते हैं । समास समासप्रकरण से तथा समासान्त प्रत्यय इस प्रकार से पढ़ना चाहिये । यही प्रकरण की उपयोगिता है ।

एकादश व्याख्यान

द्विर्वचनप्रकरणम्

यह प्रकरण तिङन्त से सम्बन्धित है । दो हजार धातुओं के पश्चात् लिट्, सन्, यङ्, श्लु और चङ् प्रत्यय जन आते हैं तब इस प्रकरण का कार्य उपस्थित होता है । इन पांच प्रत्ययों के परे रहने पर धातु का द्विर्वचन होता है । द्विर्वचन शब्द का अर्थ है दो बार धोलना । जैसे राम शब्द का द्विर्वचन हो जाय, यदि ऐसा विधान किया जाय तो 'राम' शब्द का 'राम राम' द्विर्वचन हो जायेगा । इस प्रकार इन प्रत्ययों के परे रहने पर सभी धातुओं का द्विर्वचन होता है । जैसे "हुपचप् पाके" धातु के पश्चात् परोक्षे लिट् (३०.१२५) से लिट् प्रत्यय आया । अत्र लिटि धातोरनभ्यासस्य (६१.८) से लिट् के परे रहने पर धातु का द्विर्वचन "पच् पच् लिट्" ऐसा होता है । इसी प्रकार पच् धातु का द्विर्वचन सन् में "पच् पच् सन्" यङ् में "पच् पच् यङ्" ।

षड् में “पच पच चङ्, श्लु में हु हु तिप् ॥ यद् श्लु प्रत्यय नहीं बल्कि जुहत्यादिगण के धातुओं के पश्चात् शप् का श्लु द्वारा लोप कर दिया जाता है। अतः एव इसी श्लु के विषय में जुहत्यादिगणीय सभी धातुओं का द्विवचन हो जाता है।

द्विवचन का काल—धातु के पश्चात् जत्र ये पाच प्रत्यय आ जाते हैं तब द्विवचन का प्रश्न उपरिष्ठ होता है क्योंकि द्विवचन विधायक सूत्र है लिटि० (६१८), मन्थन्ते (६१८) श्लो (६१११) और चङि (६१११) परन्तु धातु के पश्चात् जत्र कोई प्रत्यय आ जाय तब सत्रमे प्रथम अङ्ग मन्थन्ती कार्य करना चाहिये। अङ्ग मन्थन्ती लोप, आगम, वर्गाधिसार ये तीन प्रकार के हैं कार्य हो सक्ते हैं। इन कार्यों के करने के पश्चात् ही द्विवचन करना चाहिये।

लिट् लकार में द्विवचन—धातु के पश्चात् जत्र लिट् प्रत्यय आ जाय तब लोप का कार्य करके अङ्ग मन्थन्ती कार्य होता है। जैसे हुहृष् लिट्। कृ ल्। कृ तिप्। कृ णल्। कृ अ। इस स्थिति में अचो णिति (७० ११५) मार्चधातुमार्चधातुस्यो (७३ ८४) सूत्र का अपवाद है अतः उससे वृद्धि तथा उरण् स्वर (११५०) से स्वर हान्तर “कार् अ” हो गया। अतः यहाँ पर द्विवचन “कार् कार् अ” करना चाहिये। इसी प्रकार जत्र “कृ अतुम्” का रूप बनाने लगेंगे तो यहाँ पर इत्ता यणचि (६१७४) सूत्र से इत् के स्थान में यण् हो जायेगा जिस से “क्र अतुम्” हो जाता है। इस स्थिति में जत्र द्विवचन का काल आया तो द्विवचन हो ही नहीं सकता क्योंकि एकाचो द्वे प्रथमस्य (६११) सूत्र का द्विवचन प्रकरण के सूत्रों में अधिसार है। अतः ‘क्र अतुम्’ में अत्र है ही नहीं तो द्विवचन प्राप्त ही नहीं होता। इसलिये यत्र पर द्विवचनऽपि (११५८) सूत्र लगता है। सूत्रार्थ है द्विवचन निमित्त वाला अजादि प्रत्यय के परे रहने पर अच का आदेश स्थानी के समान हो जाता है द्विवचन के ही करने में। अर्थान् जित् का आदेश हुआ हो उसीका रूप उपस्थित हो जाता है। ऐसा करने से “क्र अतुम्” का रूप “कृ अतुस्” हो गया। अतः अच् मिलने से ‘कृ कृ अतुम्’ द्विवचन होता है। इसी प्रकार पपतु, पपु की सिद्धि भी द्विवचनेऽपि सूत्र पर देख लेना चाहिये। सब यङ् इत्यादि अन्य प्रत्ययों में द्विवचन की विधि

को तत् तत् विधायक सूत्रों पर देखना चाहिये ।

संहिताकार्यप्रकरणम्

अत्यन्त निकट की संहिता सज्ञा होती है । यहा पर अत्यन्त निकट का तात्पर्य है अर्ध मात्रा काल का व्यवधान । जैसे दधि अत्र, यहा पर दधि का अन्तिम वर्ण इ और अत्र का आदि वर्ण अ, इन दोनों में अर्ध मात्रा काल का ही व्यवधान है । इस प्रकार से यहा पर संहिता है ।

सन्धि—संहिता प्रकरण में सन्धि होती है । सन्धि दो में ही सम्भव है अतः कभी दोनों परिवर्तित होकर एक तीसरा ही रूप धारण कर लेते हैं । कभी कभी दोनों में से एक हा का रूप परिचित होता है ।

एकादेश—जहाँ पर पूर्व और पर इन दोनों का एक रूप होता है उसके तीन प्रकार हैं । कभी दोनों अपना रूप मिटा कर एक तीसरा रूप धारण कर लेते हैं । जैसे—आद् गुण (६१ ८४) इस सूत्र का अर्थ ग्रन्थ से देखिये । उदाहरण देव+इन्द्र है । यहा पर अ+इ की संहिता सज्ञा है अतः एव अ इ मिलकर गुण 'ए' होता है । इस 'ए' में अ अथवा इ का रूप नहीं बल्कि एक तीसरा रूप आ गया । इसी प्रकार गुण सन्धि में उसी सूत्र से अ+ई=ए, अ+उ=ओ, अ+ऋ=अर्, वृद्धि अ+ए, अ+ओ=औ, अ+ऐ=ऐ, अ+औ=औ, इत्का सूत्र वृद्धिरेचि (६१ ८५) देखना चाहिये ।

पररूप एकादेश—कभी कभी संहिता में पररूप एकादेश होता है । पररूप का अर्थ है जो पर का रूप होता है, वही रह जाता है अर्थात् पूर्व का रूप नहीं रहता । जैसे "पच+अन्ति" यहा पर अतो गुणे (६१ ८४) सूत्र से पररूप होता है । अर्थात् पच का अन्तिम अकार अन्ति के आदि अकार से मिलकर उसी का रूप धारण का लेता है । जब वह पर से मिलता है तो उसकी अपनी सत्ता समाप्त हो जाती है ।

पूर्वरूप एकादेश—इसी प्रकार पर जानर पूर्व से मिलता है और अपनी सत्ता समाप्त कर देता है । जैसे "राम अम्" यहा पर अमि पूर्व (६१ १०३) सूत्र से पूर्वरूप एकादेश होता है । अब अम् का 'अ' राम के अन्तिम अकार से मिलता है तो अपनी सत्ता खोकर मिलता है इसीलिये रामम् रूप होता है । इस प्रकरण के जितने सूत्र हैं वे सन्धि

के सूत्र कहलाते हैं। अतः इन सूत्रों का सर्वत्र काम पड़ता है। अत एव पाठनों को इस प्रकरण के सभी सूत्रों को कण्ठ कर लेना चाहिये तथा इनके अर्थ उदाहरणों का अभ्यास करना चाहिये।

वृद्धिप्रकरणम्

सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु

यह वृद्धि प्रकरण गुण प्रकरण का अपवाद है। क्योंकि धातु के परचात् जो भी प्रत्यय होते हैं उनकी सार्वधातुक या आर्धधातुक में ई न कोई संज्ञा हो ही जाती है और सर्वत्र सार्वधातुकार्धधातुक्योः (६.३.८४) या पुगन्तलघूपधस्य च (७.३.८६) में गुण की प्राप्ति है। यह गुण उत्सर्ग कार्य है। उन सूत्रों के द्वारा गुण की प्राप्ति में इस वृद्धि विधान का आरम्भ किया गया है। अतएव ये सभी सूत्र अपवाद हैं। सिद्धि के समय गुण प्राप्ति का दर्शन कराना आवश्यक है।

लुङ् लकार—इस लुङ् लकार में रूपों को सिद्ध करने के लिए सिचि वृद्धिः (७.२.१.) वदत्रज० (७.२.३.) नेटि (७.२.४.) और अतो ह्लादिः० (७.२.७.) का अर्थ सममन्त्र स्मरण कर लेना चाहिये। जिस धातु में इक् अन्त में हो वहाँ सिचि वृद्धिः० (७.२.१.) सूत्र लगता है। क्योंकि वृद्धि शब्द से वृद्धि का विधान किया गया है। अतएव यहाँ इको गुणवृद्धी (१.१.३) परिभाषा सूत्र उपस्थित हो ही जायेगा। जिस धातु के अन्त में इक् प्रत्याहार में आने वाला कोई वर्ण नहीं है, वहाँ पहले वदत्रज० (७.२.) से वृद्धि प्राप्त होती है। यदि वह सेट् धातु है तो नेटि (७.२.४) से वृद्धि का निषेध होता है, पुनः यदि वह धातु ह्लादि है, और लघु आकार वाला है तो “अतो” = (७.२.७) से विकल्प में वृद्धि का मना होता है जैसे “गद् व्यक्तायांवाचि” धातु है। गद् लुङ्। गद् तिप् गद् च्लि तिप्। गद् सिच् तिप्। गद् म् ति। गद् इट् स् ति। गद् ड स् ति इस स्थिति में सिचि वृद्धिः ७.२.१) तो लगेगा नहीं क्योंकि इसमें इक् है ही नहीं। वदत्रज० (७.२.३) में वृद्धि प्राप्त होती है। उस वृद्धि को नेटि (७.२.४) मना कर देता है पुनः अतो० (७.२.७) विकल्प में मना करता है। अतएव इसके दो रूप बनते हैं। इसकी पूर्ण सिद्धि के लिए इको गुणवृद्धी (१.१.३) सूत्र के उदाहरणों को देखना चाहिए। इसके अगदीत् और अगादीन् ये दो रूप बनते हैं।

इट्प्रकरणम्

इस प्रकरण से लिए उदात्त और अनुदात्त इन दो शब्दों का तात्पर्य अच्छी तरह से समझ लेना चाहिये। धातुपाठ में जिन जिन धातुओं का उदात्त पढ़ा है। उनका अर्थ है कि उन धातुओं के पश्चात् यलादि प्रत्यय को इट् का आगम होता है अर्थात् वे सेट् धातु हैं। इसी प्रकार जिन धातुओं का अनुदात्त पढ़ा है, वे सभी अनिट् धातु हैं। विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि इट् का आगम प्रत्यय का होता है, धातु का नहीं। इस प्रकरण में ऋादिनियम, और भारद्वाजनियम, ये दोनों बहुत प्रसिद्ध नियम हैं। जब तक इन नियमों की अनुभूति नहीं होगी तब तक लिट् लकार में प्रयागा का बनाना असम्भव है। इसलिये इन दो नियमों का जानना चाहिए। विस्तार भय से यहाँ नहीं लिखते। ऋता भारद्वाजस्य (७०६३) सूत्र पर भारद्वाज के नियम का व्याख्यान किया गया है। तथा सूत्रों के प्रकार पर व्याख्यान में ऋादिनियम का वर्णन किया गया है, वहाँ ही देखना चाहिये।

इस प्रकरण के एकाच उपदेशोऽनुदात्तात् (७०१०) श्रुत्युक् किति (७०११) आर्धधातुकस्येड्विस्वाद् (७०३५) स्वरति० (७२४४) ऋतो भारद्वाजस्य (७०६३) इत्यान् प्रसिद्ध तथा आवश्यक सूत्र हैं। इन सूत्रों का अर्थ और प्रयोजन इन सूत्रों का पढ़कर जान लेने से शब्द सिद्ध में अव्याहत गति होती है।

अभ्यासप्रकरणम्

अभ्यास प्रकरण अत्र लोपाऽभ्यासस्य (७४५८) से आरम्भ होता है। धातु के द्विवचन हाने के पश्चात् पूर्वोऽभ्यास (६१४) सूत्र पच् लिट्। पच् अतुस् इसका द्विवचन होकर (१) पच् (२) पच् अतुस् होता है। इसमें (१) अभ्यास सज्ञा वाला है। इस अभ्यास सज्ञक पच् का अर्थ जा भी अभ्यास कार्य होगा तब सभी कार्यों को इस प्रकरण के सूत्र करेंगे।

इस प्रकरण में ह्रस्व (७४५६), इलादि शेष (७४६०) शपूर्वा खय (७४६१) उरत् (७४६६) इत्यान् महत्त्व पूर्ण सूत्र हैं। इस प्रकरण के सूत्रों को समझने के लिये न पदान्त० (११५७) सूत्र पर चिकीर्षक की सिद्धि देखनी चाहिये।

द्वादश व्याख्यान

वर्णोच्चारण शिक्षा

किसी वर्ण का क्या क्या स्थान तथा क्या क्या प्रयत्न होता है, इस बात का ज्ञान रखना अष्टाध्यायी के सूत्रों को समझने के लिए अत्यावश्यक है। मयर्ण संज्ञा के किये बिना अरु मयर्णों दीर्घ (६.१.६७) इत्यादि सूत्रों की गति हो ही नहीं सकती।

स्थान—मुख में कण्ठ, तालु, मूढ़ां, दात, ओष्ठ, आदि स्थान होते हैं। वर्णों को इन्हीं स्थानों में उच्चारण किया जाता है।

प्रयत्न—किसी वर्ण में थोड़ा प्राण, किसी में अधिक प्राण, किसी में गर्मी निकलती है, किसी वर्ण का उच्चारण करने के समय थोड़ा स्पर्ग होता है, इत्यादि अनेक प्रकार के प्रयत्न होते हैं।

सवर्णसंज्ञा—जब स्थान और प्रयत्न किसी दो वर्णों का समान होता है तो उसकी सवर्णसंज्ञा होती है अर्थात् एक जाति होती है। एक जाति में ही कार्य भी होता है।

इन वर्णों के सम्यन्ध में विशेष ज्ञान करने के लिये वैदिक यन्त्रालय से मुद्रित वर्णोच्चारण शिक्षा देखनी चाहिये। यहाँ सवर्णसंज्ञा करने के लिये जितनी बातों की आवश्यकता है, उनकी ही चर्चा करेंगे। पाणिनि मुनि ने सूत्रों में ही उक्त वर्णोच्चारण शिक्षा का निर्माण किया है। हम इन बातों को पञ्चकेशवदास के श्लोकों में बतावेगे। श्लोक कण्ठ कर लेने से इन बातों की याद करने में बड़ी सरलता होती है। वर्णोच्चारण शिक्षा से सूत्रों का कण्ठस्थीकरण अत्यन्त आवश्यक है।

स्थान - प्रयत्नतुल्यत्वं वर्णसान्दर्भमिष्यते ।

प्रयत्नास्तु द्विधा प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरभेदतः ॥१॥

स्थानानि—विमर्गस्याकुहा ऋण्तालुस्थौ तु यशाविचू ।

मूर्वास्थान ऋदुरपा दन्ता लृतुलसा तथा ॥२॥

स्थान और प्रयत्न की समानता होने पर वर्णों की सवर्णसंज्ञा होती है बाह्य और आभ्यन्तर भेद से प्रयत्न दो प्रकार के होते हैं ॥१॥ अ, कवर्ग, ह और विमर्जनीय ऋ ऋण् । इ, चवर्ग, य, श का तालु । ऋ, टवर्ग, ण, प का मूर्वा । ल, तप, ल, म का दन्त । उ, पवर्ग, ऋभ-

उपपद्मानिमोष्ठायेते। कण्ठतालु तत् ।
 नासिक्या विन्दुवर्गान्त्या ओदौतोरोष्ठकण्ठम् ॥३॥
 दन्तोष्ठ स्याद् वकारस्य जिह्वामूल तु तद्भवे ।
 इति स्थानानि वर्णानामुच्चार्याणा ममामत ॥४॥

प्रयत्ना — [प्रयत्नास्तु द्विधा प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरभेदे]

बाह्या — आमूलाकण्ठपर्यन्त प्रयत्ना बाह्यसङ्गता ।

आभ्यन्तरा — कण्ठादौष्ठ मुग्धे ये स्युस्ते बाह्याभ्यन्तरसङ्गता ॥५॥

भेदा — अप्रो बाह्यप्रयत्ना स्युर्भाष्यकारमते मता ।

अन्यान्यपरीक्षायामुत्थाने मूषयोगिन ॥६॥

श्वामो नादो विवारोऽथ घोषाऽघोषोऽपि सवृत ।

अल्पप्राणो महाप्राण इत्यष्टौ नामत स्मृता ॥७॥

वैपा वै — वर्गोणा प्रथमे वर्णोऽस्तृतीया पञ्चमा यण ।

अल्पप्राणा ममाकृषता महाप्राणा परे शल ॥८॥

खरो विवारा श्वासाश्चाघोषाश्च परिकीर्तिता ।

मवाराश्चाथ नादाश्च घोषाश्चापि हरा स्मृता ॥९॥

आभ्यन्तरभेदा — स्पष्टेपत्स्फुट विवृतमीपद्विवृत सवृतम् ।

नीय का ओष्ठ । ण, ओं ना कण्ठ तालु । विन्दु अर्थान् अनुस्वार और वर्ण के अन्तिम व्यञ्जन का नासिका । ओ, औ का ओष्ठ-कण्ठ । वकार का दन्त ओष्ठ जिह्वामूलीय < का जिह्वामूल । उच्चारण किये जाने वाले वर्णों के स्थान सक्षिप्त रूप से वर्णन किये गये ॥ २, ३, ४ ॥

नाभि से कण्ठ तक सभी प्रयत्ना को बाह्य प्रयत्न कहते हैं । कण्ठ से लेकर ओष्ठ तक के सभी प्रयत्न आभ्यन्तर प्रयत्न होते हैं ॥३॥ वर्णों के सादृश्य में उत्पन्न उपयोगी आठ बाह्य प्रयत्न होते हैं ॥६॥ श्वाम, नाद, विवार, घोष, अघोष, सवार (सवृत), अल्पप्राण और महाप्राण ये आठ बाह्य प्रयत्न होते हैं ॥७॥ वर्ग के प्रथम, तृतीय, पञ्चम और यण (य र ल व) का अल्पप्राण, तथा वर्ग के अन्य द्वितीय और चतुर्थ वर्ग, तथा शल् (श प म ह) का महाप्राण प्रयत्न है ॥८॥ खर् प्रयाहार के वर्णों का विवार, श्वास और अघोष तथा हर (ह से लेकर श तर) का सवार, नाद और घोष प्रयत्न हैं ॥९॥ स्पष्ट, ईपत्स्फुट,

आभ्यन्तरप्रयत्नस्य भेदा पञ्च इमे स्मृता ॥१०॥

केपा क—[कादयो माचमानाश्च वर्णा स्पर्शा प्रतीतिता]

स्पृष्ट प्रयत्न स्पर्शानामीप्सस्पृष्ट यत्न स्मृतम्

विद्युत् तु स्वराणां स्यादापद्विद्युत्तमूपमणाम् ॥११॥

ह्रस्वदीर्घप्लुनादीनामुदात्तादिप्रभेदेन ।

अनुनामिभेदाच्च भेदास्तप्यादग स्मृता ॥१२॥

विद्युत्, ईपद्विद्युत् और सद्युत् ये पांच आभ्यन्तर प्रयत्न हैं ॥१०॥

[क मे लेखर म तक के सभी वर्णों अर्थात् पाचों वर्ग के सभी वर्णों को स्पर्श कहते हैं] स्पृष्टों का स्पृष्टप्रयत्न, यत्न का ईपद्विद्युत्, स्वरों का विद्युत् तथा गल् अर्थात् श प म ह का ईपद्विद्युत् प्रयत्न है ॥११॥ ह्रस्व, दीर्घ, प्लुन, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, तथा निरनुनासिक और मानुनासिक भेद से स्वरों के १० भेद हैं ।

अन्तिम निवेदन

इन व्याख्यानों को आरम्भ पढ़ना चाहिए । जो भी मूल व्याख्यानों में आते हैं, उनका अर्थ और प्रयोजन ग्रन्थ में अवश्यमेव देखना चाहिये । सूत्रों को देखते देखते इतना अभ्यास हो जायेगा कि व्याख्यान नमाप्त होते होते व्याकरण की सारी समस्या समझ में जायेगी । भगवान् पाणिनि का अष्टाध्यायी वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर निर्मित है । तथा इन्हीं सूत्रों के द्वारा समस्त संस्कृत वाङ्मय के शब्दों को सिद्ध किया गया है । सूत्रों में लोग भय खाते हैं लेकिन यह भय की बात नहीं । यदि १०० सूत्रों का अर्थ भा समझ में आ जाय तो अष्टाध्यायी पढ़ने में नैमगिक मुश्किल की प्राप्ति होती है । अष्टाध्यायी पढ़ना घेद पढ़ना है क्योंकि ६ अङ्गों में यह एक प्रधान अङ्ग है । महाभाष्यकार कहते हैं “पडङ्गेषु प्रधान व्याकरणम्” व्याकरण जिह्वा है । जिना जिह्वा का मानन मूल होता है । सूत्रात्मक पद्धति से यदि ढाई सूत्रों, कालेजों में भी संस्कृत व्याकरण का शिक्षण हो तो सारी कठिनाइया दूर हो जायेंगी ।

इन व्याख्यानों के लिखने का हमारा प्रयोजन है कि सभी लोग इस ग्रन्थ में लाभ उठावें । आधारण हिन्दी पढ़ा लिखा व्यक्ति भी इस ग्रन्थ में संस्कृत का व्यावहारिक पूर्ण बोध प्राप्त कर सके ।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

प्रतीकों का स्पष्टीकरण

प० वि० पदच्छेदः विभक्तिः

म० समासः

अर्थ०—अर्थः

उदा०—उदाहरणम्

सि०—मिद्धिः

अ०—अव्ययपदम्

१।१—प्रथमायाः एकवचनम्

प०तत्पु०—पृष्ठी तत्पुरुषः

* * व्याख्याकारस्य व्याख्या

ममा०द्वन्द्वः—समरहारो द्वन्द्वः

बहु०—बहुव्रीहिः

कर्म०—कर्मधारयः

न०तत्पु०—नञ् तत्पुरुषः

इतरे०द्वन्द्वः—इतरेतरो द्वन्द्वः

[] —अनुवृत्तिनिर्देशः

× × —वार्तिकनिर्देशः

अविभ०—अविभक्तिः को निर्देशः



प्रवक्तुं पितृचरणा •
श्रीसन्तमणिरामदासमहोदयाः
[श्रीमद्देवप्रसादा]

अष्टाध्यायी-प्रकाशिका

प्रथमोऽध्यायः

अथ शब्दानुशासनम्

५० वि०—अथ अ० । शब्दानुशासनम् ? । १ । स०—शब्दानाम् अनुशासनम् इति शब्दानुशासनम् (५० तत्पु०) ।

अर्थ—शब्दानुशासनं नाम शास्त्रम् अविवृतं वेदितव्यम् । (शब्दानुशासनं नामक शास्त्र का अविवृत किया जाता है)

ॐ केषां शब्दानामनुशासनम् ? लौकिकानां वैदिकानां च । लोके प्रयुक्ताः शब्दाः लौकिकाः, वेदे प्रयुक्ताः शब्दा वैदिकाः । कथमनुशासनम् ? प्रकृतिप्रत्ययविभागकल्पनया उत्सर्गापवादेन सूत्रेण च ॐ

(किन शब्दों का अनुशासन करते हैं—लौकिक तथा वैदिक शब्दों का । शोक अर्थात् सप्ताह में प्रयुक्त होनेवाले शब्दों को लौकिक तथा वेदों में प्रयुक्त होनेवाले शब्दों को वैदिक कहते हैं । शब्दों का अनुशासन किस प्रकार से करना चाहिये—प्रकृति और प्रत्यय के विभाग की कल्पना से, एवं उत्सर्ग और अपवाद सूत्रों के द्वारा) ।

अइउए । ऋलृक् । एओङ् । ऐऔच् । ह्यवरट् । लण् ।
अमढणानम् । भभम् । घढधप् । जवगडदश् । खफछठथचट-
तव् । फपय् । शपसर् । हल् । इति प्रत्याहारसूत्राणि ॥

सनापरिभाषाप्रकरणम्

वृद्धिरादेच् १।१।१

५० वि०—वृद्धिः १।१ आदेच् १।१ । स०—आच्च ऐच्च अनयोः समाहार इति आदेच् (समा० द्वन्द्वः)

अर्थ—आ ऐ औ इत्येतेषां वर्णानां वृद्धिः संज्ञा भवति । (आ ऐ औ इन वर्णों की वृद्धि संज्ञा होती है)

उदा०—आ-शालीय, मालीय । ऐ—ऐतिकायन । औ—औपगवः ।

सि०—शालायां भव इति शालीय । मालायां भव इति मालीय । शाला छ^१ । शाला ईय^२ अ । शाल्^३ ईय । शालीय सु^४ । शालीय स्^५ । शालीय रु^६ । शालीयर्^७ । शालीय^८ । इतिकस्य गोत्रापत्यम् इति ऐतिकायन । इतिक फक्^{१०} । इतिक फ । इतिक आयन् अ । इतिक आयन । ऐतिकायन^{११} । ऐतिकायन सु । ऐतिकायन रु । ऐतिकायनर् । ऐतिकायन । औपगव । उपगोरपत्यम् इति विग्रह । उपगु । उपगु अर्^{१२} । उपगु अ^{१३} । औपगु^{१४} अ । औपगो^{१५} अ । औपगव^{१६} अ । औपगव सु । औपगव स् । औपगवरु । औपगवर । औपगव ॥

१—अथवदधातुरप्रत्यय प्रातिपदिकम् (१ २ ४५) इयाप्रातिपदिकात् (४ १ १) तद्धिता (४ १ ७६) समर्थानां प्रथमाद् वा (४ १ ८२) तत्र भव^१ (४ ३ ५३) वृद्धिर्यस्याच्चाभादिस्तद् वृद्धम् (१ १ ७२) वृद्धिरादैच् (१ १ १) वृद्धाच्छ (४ २ ११४) प्रत्यय (३ १ १) परस्व (३ १ २) । २—यस्मात्प्रत्ययविधित्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् (१. ४ १३) अङ्गस्य (६ ४ १) आयनेयीनीयियः फलछया प्रत्ययादीनाम् (७ १ १) यथासह्यमनुदेश समानाम् (१ ३ १०) । ३—यच्च भम् (१ ४. १८) यस्मात्प्रत्यय० (१-४-१३) अङ्गस्य (६ ४. १) भस्य (६ ४ १२६) यस्येति च (६ ४. १४८) । ४—कृतद्वितसमासाश्च (१ २ ४६) इयाप्रातिपदिकात् (४ १ १) स्वीजसमोद्घट्टाम्याम्भिसङ्केम्याभ्यसृडसिम्प्याभ्यसृडसोसाम्भ्योस्तुप् (४ १ २) सुप् (१ ४ १०३) विभक्तिश्च (१ ४ १०४) द्वयेक्योद्विवचनैकवचने (१ ४ २२) इति एकत्वे विवक्षिते नु प्रत्यय (३. १ १) परस्व (३ १ २) । ५—उपदेशेऽजनुनासिक इत् (१ ३ २) तस्य लोपः (१ ३. ८) अदशन लोप (१ १ ५९) । ६—सुप्तिङन्त पदम् (१ ४ १४) । ७—पदस्य (८. १ १६) सप्तजुषो रुः (८. २ ६६) । ८—उपदेशेऽजनुनासिक इत् (१ ३ २) तस्य लोप (१ ३ ८) । ९—पर सन्निकर्षं सहिता (१ ४. १०६) । सहितायाम् (८ २. १०८) खरवसानयोर्विसर्जनीयः (८ २ १५) । १०—तस्यापत्यम् (४ १ ९२) नडादिभ्य फक् (४ १ ६६) । ११—किति च (७ २ ११८) १२—प्राद्विव्यतोऽण (४ १ ८३) तस्यपत्यम् (४ १. ९२) । १३—हलन्त्यम् (१ ३ ३) १४—यस्मात्प्रत्यय० (१ ४ १३) अङ्गस्य (६ ४ १) तद्धितेष्वचामादेः (७ २ ११७) वृद्धिरादैच् (१ १ १) स्थानेऽन्तरतमः (१ १ ४९) । १५—यच्च भम् (१. ४. ८), यस्मात्प्रत्यय० (१ ४. १३) अङ्गस्य (६ ४. १) भस्य (६ ४. १२६) ओगुंश्च (६ ४-१ ४६) अदेश्युणः (१ १. २) स्थानेऽन्तरतम (१ १ ४९) १६—पर सन्निकर्षः सहिता (१ ४ १०९) सहितायाम् (६. १. ७२) एचोऽयवायाव (६ १ ७८) यथासह्यमनुदेश समानाम् (१. ३. १०) ।

अदेङ्गुण १११२

प० वि०—अदेङ् १११ गुण १११। स०—अच गङ् च अनयो
ममाहार इति अदेङ् (समा० द्वन्द्व) ।

अर्थ—अ ग ओ इत्येतेषा वर्णानां गुणसंज्ञा भवन्ति । (अ ए आ
इन वर्णों की गुण संज्ञा जानी है)

उदा०—अ—तरिता । ग—चेता । ओ—भोता । पचन्ति ।
जयन्ति । अह पचे ।

सि०—न प्लयनसतरणयो । तृहृच्^१ । तृहृ^२ । तृहृ^३ हृ ।
तृहृ^४ । तृ^५ इहृ । तृ^६ इहृ । तरिहृ । तरिहृ मु^१ । तरित्
अनच्^२ मु । तरित् न्म् । तरितान्^३ न्म् । तरितान्^४ । तरिता^५ ।
चिन् चयने । चि हृच्^६ । चि हृ । चेहृ^७ । चेहृ मु ।
चेन् अनच्^८ मु । चेतन् मु । चेतान्^९ न्म् । चेतान् । चेता । छुन्

१—भूवादया घातक (१ ३ १) घाता (३ १ ६१) वृद्धिश्च (३ १ ९३),
वत्तरिहृन् (३ ४ ६७) ष्वुत्तुषी (३ १ १३३) प्रत्यय (३ १ १) परस्व
(३ १ २) । २—हनन्त्यम् (१ ३ ३) तस्य लोप (१ ३ ८) अदर्शन लोप
(१ १ ५६) ३—आर्धधातुक शेष (३ ४ ११४) यस्मात्प्रत्ययविधित्वादिति
प्रत्ययेऽङ्गम् (१ ४ १३) अङ्गस्य (६ ४ १) आर्धधातुकस्यङ्गवनादे (७ २
३५) आघातो दक्षितो (१ १ ४५) ४—आर्धधातुकार्धधातुकयो (७ ३ ८४)
इवा गुणवृद्धी (१ १ ३) अदेङ्गुण (१ १. २) स्थानान्तरतमः (१ १ ४९)
५—उरण् रपर. (१ १ ५०) ६—इतिदित० (१ २ ४६)
इयाप्रातिपत्तिनात् (४. १. १) स्वीजमयी० (४. १. २)
मुप (१. ४. १०३) विभक्तिश्च (१. ४. १०४) द्वेकयोद्विवर्तैकवचने
(१. ४. २२) एकत्वे विवक्षित मु, प्रत्यय (३. १. १) ७—अनङ् लो (७. १.
६३) ऋदुगनस्पृशसोऽनेहसा च (७. १. ६४) डिच्च (१ १. ५२) ८—
मुहनपुसकस्य (१. १ ४२) सवनामस्याने चासम्बुद्धौ (६. ४. ८) ९—
हृहृपान्म्यो दीर्घात्पुतिस्मृकन हृन् (६. १. ६८) अदर्शन लोपः (१. १. ५६)
१०—मुप्तिङन्त पदम् (१. ४ १४) नलोप प्रातिपदिकान्तस्य (८. २ ७) ११—
आर्धधातुक शेष (३. ४. ११४), आर्धधातुकार्धधातुकयो (७. ३. ८४), इको
गुणवृद्धी (१. १. ३) अदेङ्गुण (१. १. २) स्थानान्तरतमः (१. १. ४६)

स्तुतौ । णु^१ । स्तु^२ । स्तु वृच् । स्तु वृ । स्तो^३ वृ । स्तोवृ सु ।
 स्तोत् अनङ् सु । स्तोतन् सु । स्तोतान् णु । स्तोतान् । स्तोता । डुपचप्
 पाके । डुपचप् । डुपच^४ । डुपच्^५ । पच्^६ । पच् लट्^७ । पच्
 ल । पच् लृ^८ । पच् मि^९ । पच् शप्^{१०} मि । पच् श^{११} मि । पच्
 अ मि । पच् अ अन्त^{१२} इ । पच् अन्ति । पचन्ति^{१३} । जि जये । जि ।
 जि मि । जि शप् मि । जि श मि । जि अ मि । जि अ अन्ति । जे^{१४}
 अ अन्ति । जय् अ अन्ति । जय अन्ति । जयन्ति^{१५} । डुपचप् । डुपच ।
 पच् । पच् लट् । पच् इट् । पच् शप् इ । पच् अ इ । पच् अ ए^{१६} ।
 पच् ए^{१७} । पचे ।

१—ध्वाद्यो घातव (१ ३ १) हलन्त्यम् (१ ३ ३) तस्य लोप-
 (१. ३. ६) २—घात्वादे यः स (६ १ ६४) ३—प्रार्थधातुक शप्
 (३ ४ ११४) सार्वधातुकार्धधातुकयो (७. ३ ८४) इको गुणवृद्धौ (१ १ ३)
 स्थानेऽन्तरतम (१ १ ४६) ४—हलन्त्यम् (१ ३ ३) तस्य लोप (१ ३
 ६) अदर्शन लोप (१ १ ५६) ५—उपदेशेऽजनुनासिक इत् (१. ३ २)
 तस्य लोप (१ ३ ८) अदर्शन लोप (१ १ ५६) । ६—आदिभिर्दुङ् (१
 ३ ५) तस्य लोप (१ ३. ९) अदर्शन लोप (१. १ ५६) ७—भूवाद्यो
 घातव (१ ३. १) घातो (३ १ ६१) वतमान लट् (३ २. १२३) प्रत्यय-
 ३ १ १) परस्मैपदम् (३ १ २) हलन्त्यम् (१ ३. ३) तस्य लोप (१ ३ ९)
 अदर्शन लोप (१ १. ५६) ८—उपदेशेऽजनुनासिक इत् (१ ३. २) तस्य
 लोप (१ ३. ६) अदर्शन लोप (१ १. ५६) ९—तस्य (३ ४. ७७)
 तिपृतस्फितिपथस्थमिभ्यस्मस्ताताभ्यासायाभ्यमिह्वहिमहिङ् (३ ४ ७८)
 ल परस्मैपदम् (१ ४ ६६) तडानावात्मनेपदम् (१ ४ १००) अनुदासङित
 आत्मनेपदम् (१ ३ १२) स्वरितञित कर्त्तृभिप्राये क्रियाफले (१ ३ ७२)
 शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदम् (१. ३ ७८) तिङ्स्थ्रीणित्रोणि प्रथममध्यमोत्तमा
 (१ ४ १०१) तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकश (१ ४ १०२) युष्मद्युपपदे
 समानाधिक्तरणे स्थानिन्यपि मध्यमः (१. ४ १०५) अस्मद्युत्तम (१. ४ १०७)
 शेष प्रथम (१ ४ १०८) बहुषु बहुवचनम् (१ ४ २१) इति बहुत्वे विवक्षि-
 ते मि १०—तिङ्शित्मावंधातुकम् (३ ४. ११३) [सार्वधातुके] यक् (३ १-
 ६७) कर्त्तरि शप् (३ १ ६८) ११—लक्षवचनद्विते (१. ३. ८) तस्य लोप
 (१ ३. ९) १२—भोऽत (७ १ ३) । १३—अदेङ्गुण (१. १. २) अतो
 दुणे (६. १. ६७) । १४—टित् आत्मनेपदाना टेरे (३ ४. ७६) ।

लूल् । लू तिप् । लू च्लि तिप् । लू सिच् तिप् । लू सि तिप् । लू स् तिप् ।
लू स् ति । लू इट्^१ स् ति । लो इ स् ति । लाव् इ स् ति । लाव् इ
स् त् । लाव् इ स् ईट्^२ त् । लाव् इ स् ई त् । लाव् इ^३ ई त् । लाव् ई^३
त् । लावीत् । अट् लावीत् । अलावीत् । पूञ् । अपावीत् ॥

न धातुलोप आर्धधातुके १।१।४

प० वि०—न अ० । धातुलोपे ७१ । आर्धधातुके ७ । १ निमित्त-
सप्तमी । स०—धातोरवयवः धात्ववयवः (प० तत्पु०) । धात्ववयवस्य
लोपः धातुलोपः (उत्तरपदलोपी समासः) तस्मिन् ।

अर्थ—[इको गुणवृद्धी] आर्धधातुकनिमित्तो धात्ववयवस्य लोपे इकः
स्थाने ये गुणवृद्धी प्राप्नुतस्ते न भवतः । (आर्धधातुक को निमित्त कारण
मानकर इक् के स्थान में ओ गुण और वृद्धि प्राप्त होती है वे नहीं होती) ।

उदा०—लोलुवः । पोपुवः । मरीमृजः ।

सि०—लूञ् । लू यङ्^४ । लू य । लू लू^५ य । लो^६ लू य । लोलूय ।
लोलूय अच्^७ । लोलूय अ । लोलू^८ अ । लोलू^९ अ । लोलू यङ्^{१०} अ ।
लोलुवङ् अ । लोलुव अ । लोलुव् अ । लोलुव सु । लोलुव स् । लोलुव
रु । लोलुव र् । लोलुवः । पूञ्-पोपुवः । मृजूप शुद्धौ । मृजु - मृज् । मृज्

लृङ्क्ष्वद्वातः (६. ४. ७१) ।

१—आर्धधातुकस्येड्वलादे (७. २. ३५), आद्यन्ती टक्षिती (१. १. ४५)
२—इट् ईटि (८. २. २८) ३—अक सवर्णे दीर्घं (६. १. १०१) पूर्वत्रा-
सिद्धम् (८. २. १), सिज्लोप एवादेशे सिद्धो वक्तव्य (८. २. ३ व.) तुल्यास्य-
प्रत्यय सवर्णम् १. १. ६) ४—धातुरेकाचो० (३. १. २२) प्रत्यय (३. १.
१), परश्च (३. १. २) ५—एकाचो द्वे प्रथमस्य (६. १. १) सन्ग्रहो
(६. १. ६) ६—पूर्वोऽभ्यासः (६. १. ४) अत्र लोपोऽभ्यासस्य (७. ४. ५८)
गुणो यङ्लुको (७. ४. ८२) इको गुणवृद्धी (१. १. ३) स्थानेऽन्तरत्तम (१.
१. ४६) ७—सनाद्यन्ता धातवः (३. १. ३२) धातो (३. १. ६१), कृदतिङ्
३. १. १३) कर्त्तरि कृत् (३. ४. ६७), अज्विधिः सर्वधातुभ्यः (३. १. १३४.
वा०) प्रत्यय (३. १. १), परश्च (३. १. २) ८—यङोऽचि च (२. ४. ७४),
प्रत्ययस्य लुक्श्चलुपः (१. १. ६०) ९—आर्धधातुक शेषः (३. ४. ११४) साव-
धातुवार्धधातुकयोः (७. ३. ८४), न धातुलोप आर्धधातुके (१. १. ४) १०—
अचि णुधातुभ्रूवा ख्योरियङ्वङौ (६. ४. ७७) डिञ्च (१. १. ५२)

यङ् । मृज् य । मृज् मृज् य । मृ^१ मृज् य । म^२ मृज् य । मर^३
मृज् य । म^४ मृज् य । मरीक्^५ मृज् य । मरीमृज् य अच् । मरी-
मृज् अच् । मरीमृज्^६ अ । मरीमृज् अ । मरीमृज । मरीमृज सु ।
मरीमृज स् । मरीमृज रु । मरीमृज रू । मरीमृज ॥

क्विकडति च १।१।५

प० वि०—क्विकडति ७।१ निमित्तसप्तमी । च अ० । स०—गरश्च
करश्च इरश्च इति क्वकड् ॥ इक्च इक्च इक्च इति इत् । क्वड् इतो यस्येति
क्विकडत् तस्मिन् क्विकडति ।

अर्थ—[न इतो गुणवृद्धि] क्विकडन्निमित्तो ये गुणवृद्धो प्राप्नुतस्ते
न भवत । (गित् कित् घोर इत् को निमित्त कारण मानरर इक् के स्थान
में जा गुण वृद्धि प्राप्त होती है वे नहीं होती) ।

उदा०—गित् - जिप्पु, भूपु । कित् - चित्, चितवान् ।
डित् - चिनुत, चिन्वन्ति ।

सि०—ग्लानिस्थश्च कस्तु (३. २. १३६) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ॥ चित्
निष्ठेति (३. २. १००) सूत्रे, चिनुत सार्वधातुस्मपित (१. २. ४)
इति सूत्रे चैषां साधन द्रष्टव्यम् ।

हलोऽनन्तराः सयोगः १।१।७

प० वि०—हल १।३ अनन्तरा १।३ सयोग १।१ । स०—हल् च
हल् च इति हलो । हल च हल् च हल् चेति हल । हलो च
हलश्चेति हल ॥ अविद्यमानम् अन्तरम् एषां ते अनन्तरा. (बहु०) ।

अर्थ—अविद्यमानम् अन्तरमेषां ते हल सयोगसज्ञा भवन्ति ।
(जिसका बीच में [अर्थात्] व्यवधान नहीं होता ऐम हला की सयोग सज्ञा
होती है) ।

छिन्नत्रेदं पोष्यम्—हल इत्यत्र बहुवचनं, तेन बहूना हल सयोगसज्ञा

१—पूर्वोऽभ्यास. (६. १. ४) अत्र सापोभ्यासस्य (७. ४. ५८) इत्यादि षण् (७.
४. ६०) २—उल्ल (७. ४. ६६) ३—उरण् एपर (१. १. ५०) ४—इत्यादि
षेपः (७. ४. ६०) ५—पूर्वोऽभ्यास (६. १. ४) अत्र सापोभ्यासस्य (७. ४.
५८) रीणुदुपस्य च (७. ४. ६०) घाण्णो टडितो (१. १. ४५) ६—मूत्रे-
वृंदि (७. २. ११४) न घाणुवाय घापघाणुव (१. १. ४) ।

सिद्धा मयति, द्वयोर्न सिध्यति । अत एव फारणात् पूर्वं द्वयोर्हलोः एकशेषः कर्त्तव्यः । पुनश्च बहूनां हलासेकशेषः कर्त्तव्यः । एवं कृते सति हलो हलः इत्येतयोरपि एकशेषः । तथा सति द्वयोर्हलोर्वा बहूनां हलां वा संयोगसंज्ञा सिध्यति ॥

उदा०—अग्निः इति गनौ । इन्द्रः इति नदराः ॥

मुखनासिकावचनोऽनुनासिक १।१।८

प० वि०—मुखनासिकावचनः १।१ अनुनासिकः १।१ । स०—मुखं च नासिका चेति मुखनासिकम् । ईपद् वचनम् आयचनम् । मुखनासिकम् आवचनं यस्य वर्णस्य स मुखनासिकावचनः (बहु०) ।

अर्थ—मुखनासिकम् आवचनं यस्य वर्णस्य सोऽनुनासिकसंज्ञो भवति । (कुछ मुख और कुछ नासिका से जिस वर्ण का उच्चारण किया जाता है उसकी अनुनासिकसंज्ञा होती है) ।

उदा०—सुँ । एँ । स्पँ । गाधँ ॥ ड् ब् ण् न् म् य् ल् व् ।

तुल्यास्यप्रयत्न सवर्णम् १।१।९

प० वि०—तुल्यास्यप्रयत्नम् १।१ सवर्णम् १।१ । स०—तुल्यः आस्ये प्रयत्नः येषां वर्णानां तत् तुल्यास्यप्रयत्नम् (त्रिपदबहु०) ।

अर्थ—तुल्यः आस्ये प्रयत्नो येषां वर्णानां ते सवर्णसंज्ञाः भवन्ति । (मुखमें होने वाले समान है स्थान और प्रयत्न जिन वर्णों के, उनकी सवर्णसंज्ञा होती है) ।

उदा०—दण्डग्रम् । भानूदयः । गिरीशः ।

सि०—दण्ड+अग्रम् । भानु+उदयः गिरि+ईशः ।

नाज्झलौ १।१।१०

प० वि०—न । अ० । अज्झलौ १।२ स०—अच्च हल् चेति अज्झलौ ।

अर्थ—[सवर्णम्] अच्च हल् इत्येतौ परस्पर सवर्णसंज्ञौ न भवतः । (अच्च और हल् की परस्पर सवर्णसंज्ञा नहीं होती है)

उदा०—दण्ड हस्तः । दधि शीतम् ॥ इत्यत्र सवर्णदीर्घत्वं न भवति ॥

१—परः सन्निकर्षः सहिता (१. ४. १०६), सहिताग्रम् (६. १. ७२)

एकः पूर्वपरयोः (६. १. ८४), अकः सवर्णं दीर्घं. (६. १. १०१) तुल्यास्य-प्रयत्न सवर्णम् (१. १. ९)

ईदूदेद्विवचन प्रगृह्यम् १।१।११

प० वि०—ईदूदेत् १। १ द्विवचनम् १।१ प्रगृह्यम् १।१ ॥ स०—ईश् उच्च एच्चेति ईदूदेत् (समा० द्वन्द्वः)

अर्थ—ईदन्तम् उदन्तम् एदन्तं च यद् द्विवचनं तद् प्रगृह्यमज्ञं भवति । (ईकारान्त, उकारान्त और एकारान्त जो द्विवचन उमकी प्रगृह्यसज्ञा होती है)

उदा०—अग्नी इति । वायू इति । माले इति । पचेते इति ।

सि०—अग्नी^१ इति । वायू इति ॥

अदसो मात् १।१।१२

प० वि०—अदसः ६।१ मान् ५।१ ।

अर्थ—[ईदूदेत्, प्रगृह्यम्] अदसः सम्यन्धी यो मकारस्तस्माद् ईदूदेतः प्रगृह्यसंज्ञा भवन्ति (अदम् सम्यन्धी जो मकार उमके पदवान् ईकार, उकार और एकार की प्रगृह्यसज्ञा होती है)

उदा०—अमी अग्र । अमी आसते । अमू अग्र । अमू आसाते ।
ऋणकारम्योदाहरणं नास्तिः

निपात एकाजनाङ् १।१।१४

प० वि०—निपातः १।१ एकाच् १।१ अनाङ् १।१ । स०—एकदयासी अय इति एकाच् (कर्म० तत्पु०) । न आङ् इति अनाङ् (न० तत्पु०)

अर्थ—[प्रगृह्यम्] आङ्वर्जित एकाच् यो निपातः सः प्रगृह्यसंज्ञो भवति । (आङ् को छोड़कर जो एकाच् निपात उमकी प्रगृह्यसंज्ञा होती है)

उदा०—अ अपेहि । उ इन्द्रं पश्य । उ वसिष्ठ ।

ओत् १।१।१५

प० वि०—ओत् १।१ ।

अर्थ—[प्रगृह्यम् निपातः] ओदन्तो यो निपातः स प्रगृह्यसंज्ञो भवति । (ओकारान्त निपात की प्रगृह्य संज्ञा होती है)

उदा०—आहो इति । उताहो इति ।

सम्बुद्धो शाकल्यस्येतावनार्षे १।१।१६

प० वि०—सम्बुद्धो ७।१ शाकल्यस्य ६।१ इती ७।१ अनार्षे ७।१
स०—न आर्यः अनार्षः (न० तत्पु०) तस्मिन् ।

१—ईदूदेत् द्विवचन प्रगृह्यम् (१.१.११) प्लुतप्रगृह्या पवि नियम् (८.१. १०५)

अर्थ—[ओत] सम्बुद्धौ य ओकारान्त स शाकल्याचार्यस्य मतेन प्रगृह्यसङ्गो भवति, अवैदिके इतिशब्दे परत ।

(सम्बुद्धि म जो ओकारात् उसकी शाकल्याचार्य के मत से प्रगृह्य सङ्ग होत। है अवैदिक इति शब्द के परे रहन पर) ।

उदा०—वायो इति (ऋक्पद० १।२।१) अव्ययो इति (ऋ० ३।५३।३) ।

सि०—वायु सु । वायो^१ सु । वायो स । वायो^२ । वायो^३ इति ।

ॐ अत्रेव बोध्यम्—सर्वेऽपि पाणिनीया वैयाकरणा शाकल्यग्रहण विकल्पार्थं मत्वा पक्षे 'वायविति' इत्यादिषु प्रगृह्याभावेऽत्रादेशमुदाहरन्ति । तदसत् यतो हि सहितापाठस्य पदपाठे क्रियमाणे यत्र पदकारा विशेषानभिप्रायान् द्योतयितुं यैदिकपदात् परमितिकरणं कुर्वन्ति तदेवेति करणमनार्पपदेन व्यपदिश्यते, न तु लौकिकवाक्यस्थम् । इदमेव चानार्पमितिकरणं प्रातिशाल्येषु 'उपस्थितपदेन स्मर्यते' (३० ऋक्प्राति० १०।१२॥ शु० य० प्रा० ४।६०), भगवता पाणिनिनाऽपि 'अप्लुतवदुपस्थिते' (६।१।१२६) इत्यत्र प्रयुज्यते । न च केचनापि पदकारा ओकारान्तसंबुद्धे परमितिपदं प्रयुज्यावादेश (वायविति-इत्येव रूपम्) विदधति, तस्मात् 'वायविति' इत्येवमादीनि लक्षणैकचक्षुष्कैर्निर्दिष्टानि लक्ष्यविरुद्धानि उदाहरणानि चिन्त्यानि । वस्तुतस्तु शाकल्यग्रहणमत्र पूजार्थम्, न विकल्पार्थम् । शाकल्येन स्वीयर्कपदपाठे ओकारान्तसंबुद्धे परमितिकरणं प्रयुज्य पदस्वरूपप्रदर्शनाय प्रकृतिभाव उक्त, तदनु अन्यैरपि पदकारैः स नियम स्वीकृत । भगवान् पाणिनिरपि तमेव पदपाठनियमं बोधयितुं सूत्रमिदं प्रोक्तवान् ।

एवमेव चोत्तरसूत्रेऽपि 'उव उँ' इत्येक योग विभज्य अनार्प इति परे 'उ इति, विति, उँ इति' इत्येव त्रीण्युदाहरणानि प्रदर्शयन्ति । तत्रापि उ इति 'विति' इति उदाहरणद्वयं पूर्वोक्तेनैव हेतुना चिन्त्यम् । वेदे 'उ' इति पदं बह्वर्थाकं श्रूयते । तत्रार्थभेदपरिज्ञानाय वैयाकरणैर्द्वौ निपातौ स्वीकृतौ—उ इति उञ् इति च । तत्र पदकारेण शाकल्येन उच्चार्यकोऽयमुकारो न निरनुबन्धकार्य इयस्य परिज्ञानाय पदपाठे उच्चार्यकस्य उकारस्य स्थाने 'उँ' आदेश विधाय इतिकरणं प्रयुक्तम् (अन्यैरपि पदकारैरयं नियम स्वीकृत) । तेन उँ इति इत्येवोदाहरणं युक्तम् ।

१ ह्रस्वस्य गुण (७ ३ १०८) २ एह्रस्वात्सम्बुद्ध (६ १. ६९)

३ प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् (६ १ १२४)

(निरनुयन्धकरच पूर्वपदेन मंयुन्य प्रदर्शित । यथा—अथो इति—ऋम्पद० १ । ८२ । ६) यतो हि नहि क्वचिदपि पदपाठे 'उ इति' 'विति' च प्रयोग उपलभ्यते । इति युधिष्ठिरमीमांसकानां मतं, तद् युक्तियुक्तम् । ॐ

(यहा यह ज्ञातव्य है—सभी आष्टाध्यायी परम्परा के व्याकरण के विद्वान् शाकल्य का ग्रहण विकल्प के लिये मानकर पाणिनि के मत में प्रगृह्य राजा के अभाव में 'वायविति' आदि में अवादेश का उदाहरण देते हैं । जो ठीक नहीं क्योंकि वेदों के संहितापाठ का पदपाठ करते समय पदकार लोग जहा विशेष अभिप्रायो को प्रकट करने के लिये वैदिक पद के पदचात् इति शब्द का प्रयोग करते हैं, उसी इति शब्द को यहा पर अनार्यपद से कहा गया है, लौकिक इति शब्द का यही पर अनार्य शब्द ने ग्रहण नहीं होना है । इसी पदपाठ सम्बन्धी अनार्य इति शब्द का प्रातिशाख्यो में 'उपस्थित' पद से कथन किया गया है । भगवान् पाणिनि ने भी अप्पुनश्चदुपस्थिते (६. १. १०६) सूत्र में उपस्थित पद का प्रयोग किया है । कोई भी पदकार ओकारान्त सन्बुद्धि के पदचात् इति शब्द का प्रयोग करने 'वायविति' इस प्रकार का रूप नहीं लिखते ।

इस कारण 'वायविति' इत्यादि लक्ष्य के विरुद्ध उदाहरण ठीक नहीं हैं । वास्तव में शाकल्य का ग्रहण पूजा के लिये है, विकल्प के लिये नहीं । शाकल्य ने ऋग्वेद का पदपाठ करते समय ओकारान्त सन्बुद्धि के पदचान् इति शब्द का प्रयोग करके पद के स्वरूप को दिखलाने के लिए प्रकृतिभाव का नियम बनाया । उसके पदचान् दूसरे सभी पदकारों ने उसी नियम को स्वीकृत कर लिया । पाणिनि भगवान् ने भी उसी पदपाठ के नियम का आश्रय करने के लिये इस सूत्र का निर्माण किया ।

इसी प्रकार म 'उज ऊँ' इस एक सूत्र का भी विभाग करके 'उ इति, विति, ऊँ इति' इस प्रकार स तीन रूपों का वैयाकरण लोग मिश्र करते हैं । यहाँ पर 'उ इति' और 'विति' ये दोनों रूप भी पूर्वोक्त कारणों से ठीक नहीं हैं । वेद में 'उ' यह पद बहुवचन दक्षा जाता है । ब्रह्म अर्थ के भेद के लिये व्याकरणशास्त्र के ज्ञाता लोग 'उ' और 'उज्' ये दो निपात स्वीकार करते हैं । पदकार शाकल्याचार्य ने वेद का यह उकार उज् निपात के अर्थ में लिया है केवल 'उ' के अर्थ में नहीं, इस भेद का ज्ञान कराने के लिये उज् अर्थ वाले उ के स्थान में 'ऊँ' आदेश का विधान और उससे परे 'इति' शब्द का निर्देश किया है । यह शाकल्य का नियम अन्य पदकारों ने भी स्वीकार कर लिया है । इस

कारण यहा भी केवल 'ऊँ इति' यही उदाहरण ठीक है 'उ इति, विति' में उदाहरण पदपाठ में कही नहीं मिलते, अतः अगुद है ।)

उच ऊँ १।१।१७

प० वि०—उच ६।१ ऊँ अ० ।

अर्थ—[प्रगृह्यम् शाकल्यस्येतावनार्षे] उच स्थाने ऊँ इत्ययमादेशो भवति प्रगृह्यसन्नकश्च शाकल्यस्याचार्यस्य मतेन अनार्षे इति शब्दे परत । (उच के स्थान में ऊँ यह आदेश होता है और उसकी प्रगृह्यसज्ञा भी होती है, शाकल्याचार्य के मत से अनार्ष इति शब्द के परे रहने पर) ।

उदा०—ऊँ इति ॥ ॐ अत्र यद्वत्तव्यं तत्र पूर्वसूत्र सक्तम् ॥ ॐ

दाधा घवदाप् १।१।१६

प० वि०—दाधा १।३ घु १।१ (सुपा सुलुक् इति सोलुक्) अदाप् १।१। स०—दाश्च दाश्च दाश्च दाश्च इति दा । दाश्च दाश्च इति दौ । दाश्च औ चेति दाधा (इतरे० द्वन्द्व) । दाप् च देप् (दाप्) च इति दाप् । न दाप् इति अदाप् (नञ्० तत्पु०) ।

अर्थ—हुदाञ् जाने, दाण् जाने, दो अग्रस्वरवने, देङ् रक्षणे इति दारुपाश्चत्वारो धातवः । हुदान् भारणपोषणयोः, धेद् पाने इति धारूपौ द्वौ धातू । दाप् लयने, दैप शोधने, इति दापरूपौ द्वौ धातू ॥

दारुपाश्चत्वारो धातवो धारूपौ च द्वौ दाव्दैपौ वर्जयित्वा घुसन्नका भवन्ति ।

(दा रूप चार धातु और धारूप दो धातु इनकी घुसज्ञा होती है दाप् और दैप को छोड़कर)

उदा०—प्रणिददाति, प्रणिदाता, प्रणिद्यति, प्रणिदयते । प्रणिदधाति, प्रणिधयति वत्सो मातरम् ॥

सि०—हुदाञ्^१ । हुदा । दा । दा लट् । दा ल । दा लृ । दा तिप् । दा ति । दा शप् ति । दा^२ ति । दा ना^३ ति । दा^४ दा ति । ददाति । प्र नि ददाति । प्रणिददाति^५ । दाण् ॥ दा वृच् । दा वृ । दा वृ सु । दात् अनङ् सु । दातनङ् सु । दातन सु । दानन् मु । दातन् स् । दातान् स् । दातान् । दातो । दातारी । दातार । दानारम् । दातारी । दातृन् । प्र नि

१. प्रादिजिदुडव (१. ३ ५) तस्य लोप (१ ३. ६) अदर्शन लोप. (१ १. ५६) २ जुहोत्यादिभ्य ङु (२ ४ ७५) अदर्शन लोप (१. १. ५६) ३. ङो (६ १ १०) ४ पूर्वोऽभ्यास (६ १ ४) अत्र लोपोऽभ्यासस्य (७.

दाता । प्रणिदाता ॥ दो । दो लट् । दो ल । दो ल् । दो तिप् । दो ति ।
 दो शप् ति । दो श्यन्^३ ति । दो श्य ति । दो य ति । द्^२ य ति । द्यति ।
 प्र नि द्यति । प्रणिद्यति । ॐ अशिद्विषये दास्पोऽयं भवतीत्यत्र घुमंजा
 प्रवर्तते एव ॐ ॥ देङ् । दे । दे लट् । दे ल । दे ल् । दे त । दे शप् त ।
 दे श न । दे अ त । दय् अ त । दयत । दयते । प्र नि दयते । प्रणि-
 दयने । डुधाञ् । डुगा । धा लट् । धा ल । धा ल् । धा
 तिप् । धा धा ति । घ घा ति । ङ^३ धा ति । प्रनि दधाति । प्रणिदधाति ॥
 धेट् । धे । धे लट् । धे ल । धे ल् । धे तिप् । धे शप् ति । धे श ति ।
 धे अ ति । धय् अ ति । धयति । प्र नि धयति । प्रणिधयति ॥

आद्यन्तवदेकस्मिन् १।१।२०

प० नि०—आद्यन्तयन् अ० । एकस्मिन् ७ । १ ॥ स०—आदिश्च
 अन्तश्चेति आद्यन्तो । आद्यन्तयोरित् इति आद्यन्तवद् ।

अर्थ—आद्याविष्य अन्त इत् एकस्मिन्नपि कार्यं भवति । (आदि धोर
 अन्त को जो विधान किया गया कार्यं वह एक में भी होता है) ।

उदा०—यथा कर्त्तव्यम् इत्यत्र प्रत्ययाद्युदात्तत्वं भवति एवमौपगवम्
 इत्यत्रापि यथा स्यान् । यथा वृत्ताभ्याम् इत्यत्र अतो दीर्घो यञि, सुपि च
 इति अङ्गस्य दीर्घत्वं भवति ण्यम् आभ्याम् इत्यत्रापि यथा स्यान् ।

सि०—कर्त्तव्यम् । औपगवम् ॥ इदम् । इदम् भ्याम् । इद अ^४
 भ्याम् । इद^५ भ्याम् । अ^६ भ्याम् । आभ्याम्^{*} ।

तरप्तमपौ घ १।१।२१

प० वि०—तरप्तमपौ १।२ घ १ । १ स०—तरप् च तमप् चेति
 तरप्तमपौ (इतरे० द्वन्द्वः)

अर्थ—तरप् तमप् इत्येते प्रत्ययौ घसङ्गौ भवतः । (तरप् ओर तमप्
 को घ सङ्ग होती है) ।

उदा०—कुमारितरा, कुमारितमा । ब्राह्मणितरा, ब्राह्मणितमा ।

४, ५८) ह्रस्व (७, ४, ५९) नेपदनद० (८, ४, ७७)

१—दिवादिभ्यः श्यन् (३, १, ६९) २—ओत् श्यनि (७, ३, ७१)

३—अभ्यासे चर्च (८, ४, ५४) । ४—अष्टन आ [विमर्को] (७, २, ८४)

त्यदादीनाम् (७, २, १०२) ५—अतो गुणे (६, १, ९७) ६—हलि लोप

(७, २, ११३) ७—अतो दीर्घो यञि (७, ३, १०१) सुपि च (७, ३, १०२)

सि०—कुमारी तरप्^१ । कुमारी तर^२ । कुमारी तर टाप्^३ । कुमारी तर आ^४ । कुमारी तरा^५ । कुमारि तरा^६ । कुमारितरा मु । कुमारितरा ।

बहुगणवतुडति सरया १।१।२२

प० वि०—बहुगणवतुडति १।१ सख्या १।१ ॥ स०—बहुश्च गणश्च वतुश्च डतिश्चेति बहुगणवतुडति (समा० द्वन्द्व) ।

अर्थ—बहुगणौ वतुप्प्रत्ययान्त डतिप्रत्ययान्तौ च शब्दा सख्या सज्ञा भवन्ति । (बहु गण वतुपप्रत्ययात् और डतिप्रत्ययात् शब्दों की सख्यासना होती है) ।

उदा०—बहुकृत्व^{*} । बहुधा^१ । बहुक^२ । बहुश^३ । गणकृत्व । गणधा । गणक । गणश ॥ तावकृत्व । तावद्धा । तावत्क । तावच्छ । कतिकृत्व । कतिधा । कतिक । कतिश ॥

सि०—तद्धितप्रकरणे साधन द्रष्टव्यम् ॥

पणान्ता पट १।१।२३

प० वि०—पणा ता १।१ पट् १।१ स०—परश्च इति पणौ । अन्तश्च अन्तश्च इति अन्तौ । पणौ अन्तौ यस्या सख्याया सा पणान्ता ।

अर्थ—[सरया] पकारान्ता नकारान्ता सख्या पट् सज्ञा भवति । (पकारात् और नकारात् सख्या की पट सज्ञा होती है)

उदा०—पकाराता पट् तिष्ठन्ति, पट् परश्च । नकारान्ता पञ्च, सप्त, नव, दश ।

१—द्विवचनविभक्त्योपपदे तत्तवीयमुनी (५ ३ ५७) २—हलन्त्यम् (१ ३ ३) ३—कृतद्धितसमासाश्च (१ २ ४६) डयाप्रातिपदिकात् (४ १ १) स्त्रियाम् (४ १ ३) अजाद्यतष्टाप् (४ १ ४) प्रथम (३ १ १) परश्च (३ १ २) ४—चुट् (१ ३ ७) तस्य लोप (१ ३ ६) भदशन लोप (१ १ ५६) ५—यक सवर्णे दीघ (६ १ १०१) ६—अनुयुत्तरपद (६ ३ १) परूपकल्पचेतड० (६ ३ ४३) ७—सख्याया क्रियाभ्यवृत्तिगणन कृत्वमुच (५ ४ १७) ८—सख्याया विधायै घा (५ ३ ४२) ९—सख्याया प्रतिश दताया वन् (५ १ २२) १०—बह्वल्पाथान्द्विस्कारकादयतरस्याम् (५ ४ ४२)

सि०—पप् । पप् जस् । पप्^१ । पङ्^२ । पट्^३ । पप् शस् । पप । पङ् । पट् । पञ्चन जस् । पञ्चनू^४ । पञ्च । पञ्चन् शम् । पञ्चन् । पञ्च ॥

डति च १।१।२४

प० वि०—डति १।१ च अ० ।

अर्थ—[संज्ञा] डतिप्रत्ययान्ता सख्या पट् संज्ञा भवति । (इति प्रत्ययान्त सख्या वाचो दण्ड की पट् मज्ञा होनी है)

उदा०—कति तिष्ठन्ति । कति परय ।

सि०—अन्यन् सर्व साधनं तद्धितप्रकरणे, विशेषस्तु कति जस् । कति । कति शम् । कति ॥

क्तक्तवत् निष्ठा १।१।२५

प० वि०—क्तक्तवत् १।२। निष्ठा १।१ ॥ स०—क्तरच क्तवत्तु-श्चेति क्तक्तवत् (इतरे० द्वन्द्वः)

अर्थ—क्तक्तवत् प्रत्ययो निष्ठासंज्ञी भवतः । (क्तर और क्तवत्तु प्रत्यय की निष्ठा संज्ञा होनी है)

उदा०—चितः, चितयान् । साधन निष्ठा (३।२।१०२) सूत्रे दृष्टव्यम् ॥

सर्वादीनि सर्वनामानि १।१।२६

प० वि०—सर्वादीनि १।३ सर्वनामानि १।३ ॥ स०—सर्व आदिव्ये-पां तानि इमानि सर्वादीनि (तद्गुणसंविज्ञानयद्गु०) सर्वेषां नामानि सर्वनामानि (प० तत्पु०) ।

अर्थ—सर्वादीनि सर्वनामसंज्ञानि भवन्ति । (सर्व इत्यादि शब्दों की सर्वनाममज्ञा होनी है)

उदा०—सर्वे । सर्वस्मै । सर्वस्मात् । सर्वस्मिन् ।

सि०—सर्व जम् । सर्व शी^१ । सर्व ई^२ । सर्वे^३ । सर्व डे । सर्व

१—पहम्पो मुक् (७. १. २२) २—ऊना जसोन्ते (८. २. ३६), ३—वावसाने (८. ४. ५६) ४—ननोपः प्रातिपदिकान्तस्य (८. २. ७) ५—जमः ङी (७. १. १७) ६—लगावतद्धिते (१. ३. ८) तस्य लोपः (१. ३. ६) भद्रगंन लोपः (१. १. ५६) ७. एकः पूर्वपरयोः (६. १. ८४), भादृगुणः (६. १. ८७) भदेद्गुणः (१. १. २) स्थानेऽन्तरतमः (१. १. ४६)

स्मै^१ । सर्वस्मै । सर्व ङसि । सर्वस्मात्^२ । सर्व डि । सर्व स्मिन्^३ ।
सर्वस्मिन् ॥

स्वरादिनिपातमव्ययम् १।१।३६

प० वि०—स्वरादिनिपातम् १।१ अव्ययम् १।१ स०—स्वर आदि-
येषां ते स्वरादयः । स्वरादयश्च निपाताश्च इति स्वरादिनिपातम्
(समा० द्वन्द्वः) ।

अर्थ—स्वरादीनि शब्दरूपाणि निपाताश्च अव्ययसंज्ञानि भवन्ति ।
(स्वर इत्यादि शब्द तथा निपातो की अव्ययसंज्ञा होती है)

उदा०—स्वर । प्रतर । उच्चैस् । नीचैस् ।

सि०—स्वर सु । स्वर^४ । स्वः ॥ उच्चैस् सु । उच्चैस् । उच्चैः ।

तद्धितश्चासर्वविभक्तिः १।१।३७

प० वि०—तद्धितः १।१ च अ० । असर्वविभक्तिः १।१ स०—न
उत्पद्यन्ते सर्वाः विभक्तयो यस्मात् सोऽसर्वविभक्तिः तद्धितः ।

अर्थ—[अव्ययम्] यस्मात् सर्वाः विभक्तयो नोत्पद्यन्ते सः तद्धित-
प्रत्ययान्तशब्दोऽव्ययसंज्ञो भवति ॥ (जिससे सारी विभक्तियाँ उत्पन्न नहीं
होती है ऐसे तद्धित प्रत्ययान्त शब्दों की अव्यय संज्ञा होती है)

उदा०—तत्र, ततः । साधनं प्राग्दिशो विभक्तिः (५. ३. १) इत्यत्र
प्रकरणे द्रष्टव्यम् ॥

कृन्मेजन्तः १।१।३८

प० वि०—कृन्मेजन्तः १।१ स०—मश्च एच्चेति मेचौ । अन्तश्च
अन्तश्चेति अन्तौ । मेचौ अन्तौ यस्य इति मेजन्तः (बहु० स०) कृच्चासौ
मेजन्तश्च इति कृन्मेजन्तः (कर्म० तत्पु०)

अर्थ—[अव्ययम्] कृद् यो मकारान्त एजन्तश्च तदन्तं शब्दरूपम्
अव्ययसंज्ञं भवति । (कृद् जो मकारान्त और एजन्त, तदन्त शब्दों की अव्यय
संज्ञा होती है)

उदा०—भोक्तुम् । वच्चे रायः ।

१—सर्वताम्रः स्मै (७. १. १४) २—ङसिङ्योः स्मात्स्मिनी (७. १. १५)

३—ङसिङ्यो स्मात्स्मिनी (७. १. १५) ४—अव्ययादाप्सुपः (२. ४. ८२) ।

सि०—भोक्तुम्^१ सु । भोक्तुम्^२ । वच्^३ से । वक्^४ से । वक्^५ पे ।
वक्षे सु । वक्षे^६ ॥

क्त्वातोमुन्कसुन १।१।३६

प० वि०—क्त्वातोमुन्कसुनः १।३ ॥ स०—क्त्वा च तोमुन् च कसुन्
च इति क्त्वातोमुन्कसुनः (इतरे० द्वन्द्वः)

अर्थ—[अव्ययम्] क्त्वा तोमुन् कसुन् इत्येवमन्तं शब्दरूपम्
अव्ययमन्तं भवति ॥ (क्त्वा, तोमुन् और कसुन् प्रत्ययान्न शब्दों की अव्यय-
संज्ञा होती है)

उदा०—क्त्वा—कृत्वा । तोमुन्—पुरा सूर्यस्योदयेताराधेयः । कसुन्—
पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्तिन् ॥

सि०—उदेतोः । उत् इण् तोमुन्^१ । इ तोमुन् । इतोसु । इ तोम् ।
ए^२ तोस् । एतोस्^३ सु । एतोरु । एतोरु^४ । एतो । उत् एतोः । उद्^५
एतां । उदेतो । सप् कसुन् । सप् असुन् । सप् अमु । सप्^६ अस् ।
सप्स् सु । विसृप्स्^७ विरप्तिन् । विसृप्स् विरप्तिन् । विसृप् उ^८
विरप्तिन् । विसृपो^९ विरप्तिन् ।

अव्ययीभावश्च १।१।४०

प० वि०—अव्ययीभावः १।१ च अ० ।

अर्थ—[अव्ययम्] अव्ययीभावसमासोऽव्ययसंज्ञो भवति ।
(अव्ययीभाव समास की अव्ययसंज्ञा होती है)

उदा०—उपकृष्णम् । अधिति ।

सि०—अव्ययीभावसमासे (०. १. ६) साधनं द्रष्टव्यम् ।

१—तुमुन्कुलो क्रियाया क्रियार्थायाम् (३. ३. १०) २—वृन्मेजन्तः (१.
१. ३८), अव्ययादाप्पुपः (२. ४. ८२) ३—तुमर्थे से० (३. ४. ६) ४—चोः
क्रु (८. २. ३०) ५—आदेशप्रत्यययो (८. ३. ५६) ६—वृन्मेजन्तः (१. १.
३८), अव्ययादाप्पुपः (२. ४. ८२) ७—भावलक्षणो (३. ४. १६) ८—साधनं-
धातुकार्धधातुकयो (७. ३. ८४) ९—कृत्वा जशोऽन्ते (८. ३. ३६) १०—पुण-
न्तलघूपधस्य च (७. ३. ८६) विडति च (१. १. ५) ११—क्त्वातोमुन्कसुनः
(१. १. ३६) अव्ययादाप्पुपः (२. ४. ८२) १२—हति च (६. १. ११२)
१३—सहितायाम् (६. १. ७२), एक पूर्वपरयोः (६. १. ८४) घाद् घृणः
(६. १. ८७)

शि सर्वनामस्थानम् १।१।४१

प० वि०—शि १।१ सर्वनामस्थानम् १।१ ॥

अर्थ—शि इत्येतत् सर्वनामस्थानसंज्ञं भवति । (शि इमकी सर्वनाम-
स्थान सज्ञा होती है)

उदा०—कुण्डानि तिष्ठन्ति । कुण्डानि पश्य । दधीनि । मधूनि ।

सि०—कुण्ड जस् । कुण्ड शि^१ । कुण्ड इ^२ । कुण्ड तुम्^३ इ ।
कुण्डन् इ । कुण्डान्^४ इ । कुण्डानि ।

सुडनपु सकस्य १।१।४२

प० वि०—सुट् १।१ अनपुंसकस्य ६।१ स०—न नपुंसकम् इति
अनपुंसकम् (नञ्० तत्पु०) तस्य

अर्थ—[सर्वनामस्थानम्] नपुंसकभिन्नस्य सुट् सर्वनामस्थानसंज्ञो
भवति । (नपु सञ्भिन्न जो सुट् उसकी सर्वनामस्थान सज्ञा होती है)

उदा०—राजा । राजानो । राजानः । राजानम् । राजानौ ।

सि०—राजन् मु । राजान्^१ सु । राजान् स् । राजान^२ । राजा^३ ।
राजन औ । राजान् औ । राजानो । राजानः ॥

न वेति विभाषा १।१।४३

प० वि०—न अ० । वा अ० । इति अ० ।

अर्थ—नेति प्रतिषेधार्थो वेति विकल्पार्थस्तयोः प्रतिषेधविकल्पार्थयो-
र्विभाषा इति संज्ञा भवति । (निषेध और विकल्प अर्थ की विभाषा सज्ञा
होती है)

उदा०—शुशाव । शिश्वाय ॥ शुशुवतुः । शिश्वितुः ॥

साधनं तु विभाषा श्वेः (६. १. ३०) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

१—जडशतोः शि. (७. १. २०) २—सञ्जवतद्धिते (१. ३. ८), तस्य लोपः
(१. १. ६), अदशनं लोप. (१. १. ५६) ३—इदितो [नुम्] घातोः (७. १. ५८),
नपुंसकस्य भक्तचः (७. १. ७२) मिदचोऽन्यात्परः (१. १. ४६) ४—शि
सर्वनामस्थानम् (१. १. ४१), सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ (६. ४. ८)
५—शि सर्वनामस्थानम् (१. १. ४१), सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ (६. ४. ८)
६—हल्द्वयाभ्यां दीर्घात् सुतिस्पष्टकृत् हल् (६. १. ६८) अदशनं लोपः (१. १. ५६)
७—नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य (८. २. ७) अदशनं लोपः (१. १. ५८)

इग्यण सम्प्रसारणम् १।१।४४

प० वि०—इक् १।१ यण ६।१ सम्प्रसारणम् १।१ ॥

अर्थ—यण स्थाने य इक् भूतो भावी वा तस्य सम्प्रसारणम् इत्येषा संज्ञा भवति । (यण के स्थान में जो हुया हुया या होने वाला इक् उसको सम्प्रसारण संज्ञा होती है)

उदा०—उस्तम् । उत्तमान् ।

सि०—यच् क्त^१ । यच् त^२ । उ अ^३ च् त । उच्^४ त । उस्त^५ सु । उस्त अम्^६ । उस्तम्^७ ।

आद्यन्तौ टकितौ १।१।४५

प० वि०—आद्यन्तौ १।२ टकितौ १।२ स०—आदिश्च अन्तश्चेति आद्यन्तौ । टश्च कश्चेति टकौ । इश्च इच्चेति इतौ । टकौ इतौ ययोरिति टकितौ ।

अर्थ—पष्ठीनिर्दिष्टस्य टित्कितौ आगमौ आद्यन्तौ अन्यवौ भवत । (पष्ठी विभक्ति स निर्देश किया गया टकार इत् वाला और ककार इत् वाला जो आगम वह क्रमशः प्रादि और धन्तिम अवयव होता है)

उदा०—टित्-भविता, भवितुम्, भवितुम्यम् । कित्-प्रहृत्य, प्रहृत्य ।

सि०—भविता एवत्तृचो इति (२. १. १३३) सूत्रे द्रष्टव्यम् । कित्-हृत्यस्य पिति वृत्ति तुक् (६. १. ७१) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

मिदचोऽन्यात्पर १।१।४६

प० वि०—मित् १।१ अच ६।१ अन्यात् ५।१ पर १।१ ॥

१—भूवादयो घातव (१. ३. १), कर्तरि कृत् (३. ४. ६७) ॥ कमणि च भाव चावर्भवेभ्यः (३. ४. ६६) तयोरेव वृत्त्यस्यलर्पा (३. ४. ७०) कृद-तिङ् (३. १. ६३), भूते (३. २. ८४), निष्ठा (३. २. १०२) कनकनवत् निष्ठा (१. १. २५), प्रत्यय (३. १. १) परस्मै (३. १. २) २—सप्तवचनहिते (१. ३. ८), तस्य लोप (१. ३. ६), अदशानं लोप (१. १. ३६) ३—वचिस्त्वपिय-जादीनां विति (६. १. १५), इग्यण सम्प्रसारणम् (१. १. ४४), स्थानेऽन्तर-तमः (१. १. ४६) ४—परः सन्निकर्षे सहिता (१. ४. १०६), सहितायाश्च (६. १. ७२) एक पूर्वपरयो (६. १. ८४), ग्रामि [पूर्वः] (६. १. १०) सम्प्रसारणाच्च (६. १. १०८) ५—बो कुः (८. २. ३०) ६—प्रतोऽम् (७. २४) ७—ग्रामि पूर्व (६. १. १०७)

अमुष्मै । अदस् डे । अद अ^१ डे । अद^२ डे । अद स्मै^३ ।
 अमुष्मै । इत्यत्र अदसोऽसेर्दादुदो मः इत्यनेन सूत्रेण प्रमाणकृतान्तर्याद्
 अकारस्य ह्रस्वस्य ह्रस्व उकार आदेशो भवति । अमूभ्याम् । अदस् भ्याम् ।
 अद अ भ्याम् । अद भ्याम् । अदा^४ भ्याम् इत्यत्र दीर्घस्य आकारस्य
 ऊकारो भवति । अमूभ्याम् ।

उरण् रपरः । १।१।५०

प० वि०—उः ६।१ अण् १।१ रपरः १।१ स० । रः परो यस्मात् स
 रपरः (बहु०) ।

अर्थ—[स्थानेयोगा इत्यतः स्थाने, स्थानेऽन्तरतम इत्यतः स्थाने] उः
 स्थाने अण् प्रसज्यमान एव रपरो भवति । (ऋ के स्थान में प्राप्त होता
 हुआ अण् रपर हो जाता है) ऊँअत्रेदं बोध्यम्—एतेन लक्षणान्तरेण विधीय-
 मानस्य अणो विधानकाल एवेय परिभाषा व्याप्रियते । अतस्तेन सह
 सहस्य रपरत्वविशष्टो विधीयते । एतच्च स्थानद्वयग्रहणस्यात्रानुवृत्तेर्लभ्यते ।
 पूर्वमेण हि स्थानग्रहणेनेहानुवृत्तावुः स्थाने इत्येतद् अर्थरूपं लभ्यते ।
 द्वितीयेन तु प्रसज्यमान इत्येतत् । तथाहि यदिह स्थानग्रहणं सप्तम्यन्तं
 प्रकृतमनुवर्त्तमानं तत् सामर्थ्यात् प्रथमान्तं सम्पद्यते । स्थानशब्दश्चायं
 प्रसङ्गवाची ततश्च यदा स्थानेनाण् विशिष्यतेऽण् स्थानम् इति तदा
 अण् प्रसज्यमान एव इत्यर्थो जायते, प्रसज्यमानशब्दस्य प्रसङ्गेनाभि-
 सम्बन्ध्यमान इत्यर्थो भवति॥

(यहा पर यह जानना चाहिये—यह सूत्र क्या काम करता है—किसी
 दूसरे लक्षण या सूत्र से विधान किया जाता हुआ जो अण् है वह अण् विधान
 काल में ही रपर होकर प्रयुक्त हो इस कार्य के लिए यह परिभाषा सूत्र है ।
 इस प्रकार का अर्थ इसलिए प्राप्त होता है क्योंकि ऊपर से 'स्थाने-स्थाने' इन
 दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है । पष्ठो स्थानेयोगा स ओस्थाने की अनुवृत्ति आती
 है उससे तो 'ऋ के स्थान में' ऐसा अर्थ प्राप्त होता है । और स्थानेऽन्तरतमः
 से जो स्थाने की अनुवृत्ति आती है, उसका अर्थ 'प्राप्त होता हुआ' होता है ।
 अब यहाँ प्रश्न उठता है कि वहाँ तो स्थाने सप्तम्यन्त है यहाँ प्रथमान्त कैसे
 हो जाता है तो इसका यह उत्तर है कि सामर्थ्य से । यहाँ पर प्रथमा विभक्ति

१-त्यदादीनाम् (७ २ १०२) २-अतो गुणे (६ १ ६७) ३-सर्वनाम्नः
 स्मै (७. १ १४) ४-अतो दीर्घो यजि (७ ३ १०१) सुणि च (७ ३ १०२)

(पष्ठी विभक्ति से निर्देश किया गया जो आदेश वह अन्तिम भल् के स्थान में होता है)

उदा०—सः, तौ, ते। यः, यौः, ये। तम्, तौ, तान्। यम्, यौ, यान्।

सि०—तद् सु। त अ^१ सु। त^२ सु। स^३ सु। स स्। स रु। स र्। सः। तद् औ। त अ^१ औ। त^२ औ। तौ^४। तद् जस्। त अ जस्। त जस्। त शी^५। त ई^६। ते^७। यद् सु। य अ मु। य स्। य रु। य र्। यः। यद् औ। य अ औ। य औ। यौ। यद् जस्। य अ जस्। य जस्। य शी। य ई। ये। तम्। तद् अम्। त अ अम्। त अम्। तम्। तान्। तद् शस्। त अ शस्। त अस्। तास्। तान्^८। यद् अम्। य अ अम्। य अम्। यम्। यान्। यद् शस्। य अ अस्। य अस्। यास्। यान्॥

डिच्च १।१।५२

प० वि०—डिन् १।१ च अ०। स०—ङ् इत् यस्य सोऽयं डिन्।

अर्थ—[अलोऽन्त्यस्य] डिच्च य आदेशः सोऽन्त्यस्य अलः स्थाने भवति। (ङकार इत् वाला जो आदेश वह अन्तिम भल् के स्थान में होता है)

उदा०—कर्ता, हर्ता।

आदे परस्य १।१।५३

प० वि०—आदेः ६।१ परस्य ६।१

अर्थ—[अलः] परस्य कार्यमुच्यमानमादेरलः स्थाने भवति। (पर का कहा हुआ कार्य आदि भल् के स्थान में होता है)

उदा०—आसीनो यजते, द्वीपम्, अन्तरीपम्, प्रनीपम्, समीपम्।

१—त्यदादीनाम्। (७ २ १०२) भलाज्त्वस्य (१ १. ५१) २—भतो गुणे (६ १ ६७) ३—तदोः सः सावनन्त्ययो (७ २ १०६) ४—वृद्धिरेचि (१ १ ८८) प्रथमयो पूर्वसवर्णं (६ १ १०२) नादिचि (६. १ १०४) वृद्धिरेचि (६ १ ८८) वृद्धिरादेच् (१ १. १) स्थानेऽन्तरतमः (१ १ ४६) ५—जलः शो (७ १ १७) ६—भाद् गुणः (६ १ ८७) षदेद् गुणः (१. १. २) स्थानेऽन्तरतमः (१ १ ४९) ७—प्रथमयो पूर्वसवर्णः (६ १ १०२) ८—तस्माच्छ्रमो न पुमि (६ १. १०३)

सि०—आम् लट्^१ । आस् शानच्^२ । आस् शान । आस आन ।
आम् ईन^३ । आसीन मु । आसीन स् । आसीन रु । आसीन र् ।
आमीनर् यजते । आमोन उ^४ यजते । आसीनो^५ यजते ॥ द्वीपम्
इत्यादीना सायन (५ ४ ७२) तद्धितसमासान्ते द्रष्टव्यम् ।

अनेकालिशत्वम्य १।१।५६

प० वि०—अनेकालिगन् १।१ सर्वस्य ६।१ ॥ स०—न ण्क अनेक ।
अनेक चासौ अल् च इति अनेकाल् । ग् इन् यम्येति शिन् । अनेकाल्
च शिन्च इति अनेकालिशन् (समा० द्वन्द्व)

अर्थ—[पट्टी स्थाने] अनेकाल् शिन्च य आदेश स सर्वस्य पट्टी-
निर्दिष्टस्य स्थाने भजति । (अनक अल् वाचा (अनर वाग) तथा अकार इत्
वात्ता आदेश पट्टी विभक्ति ये निर्देन किया गया सभी व स्थान में होता है)

उदा०—तै , के , तस्मै , कस्मै , ते , के , ये ।

सि०—तद् भिस् । त अ भिस् । त भिस् । त ऐस्^६ । तैस्^७ ।
तै । त्रिम् भिम् । त्रि^८ मिम् । क ऐम् । कैस् । कैह । कैर् । कै । तद्
हे । त अ हे । त व । त र्म् । तस्मै । त्रिम्^९ । क हे । क र्म् । कस्मै ॥

स्थानिवत्प्रकरणम् —

स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ १।१।५५

प० वि०—स्थानिवन् अ० । आदेश १।१ अनल्विधौ ७।१ ॥ स०—
अल्ल विधि अल्विधि । अल परस्य विधि अल्विधि । अल्ल स्थाने
विधि अल्विधि । अलि परतो विधि अल्विधि । अल्विधिरच अल्वि-
धिरच अल्विधिरच अनल्विधिरचेति अल्विधि । (सर्वविभक्त्यन्त समास)
न अल्विधि अनल्विधि (तच् तत्पु०) तस्मिन् ।

१—भूवादया घातव (१ ३ १) घाता (३ १ ६१) धनमान लट्
(३ २ १२३) प्रत्यय. (३ १ १) परस्व (३ १ २) २—नट शनृशानचा
वप्रयमासमानाधिकरण (३ २ १२४) क्तरि शप् (३ १ ६८) अदिप्रभृतिभ्य
शप् (२ ४ ७२) ३—ईदास (७ २ ८२) आद परस्य (१ १ ५३) ४—
हृदि च (६ १ ११४) ५—आदशुण (६ १ ८७) ६—अतो मिम एम् (७
१ ६), अनकालित्सवस्य (१ १ ५४) ७—वृद्धिरेचि (६ १ ८८) वृद्धि-
रादौ च (१ १ १) स्थानंतरतमः (१ १ ४६) ८—विम व (७ २
१०३) अनकालित्सवस्य (१ १ ५४)

अर्थ—आदेशः स्थानिवद् भवति न तु अल्विधौ (आदेश स्थानी के समान होता है परन्तु अल्विधि में नहीं, अर्थात् एक वर्ण के द्वारा, एक वर्ण के पश्चात्, एक वर्ण के स्थान में या एक वर्ण के परे रहने पर जो अल् के आश्रित विधि है, उस में नहीं)

उदा०—ॐ धातु-अङ्ग-कृत्-तद्धित-अव्यय-सुप्-तिङ्-पदादेशाः स्था-
निवद् भवन्ति ॐ धात्वादेशाः धातुवद् भवन्ति । भविता,
भवितुम्, भवितव्यम् । चक्ता, चक्तुम्, चक्तव्यम् । अङ्ग-केन,
फाभ्याम्, कैः । कृत्-प्रकृत्य, प्रहृत्य । तद्धित-शालीयः, ऐतिकायनः,
औपगवः । अव्यय-प्रकृत्य, प्रहृत्य । सुप्-वृत्ताय, प्लत्ताय । तिङ्-
अपठतम्, अपठत । पद-ग्रामो बः स्वम्, जनपदो नः स्वम् । अला
विधौ-व्यूढोरस्केन । अलः परस्य विधौ-घौः, पन्थाः, सः । अलः विधौ-
द्युक्तामः । अलि परतो विधौ-क इष्टः ।

सि०—अस् भुवि । अस् । भू ॐ अत्रेदं बोध्यम्-भूवादयो धातव
इत्यनेन सूत्रेण अस्धातोर्धातुसंज्ञा भवति परञ्च भू इत्यस्य धातुसंज्ञा
नास्ति । नायं भू सत्तायाम् धातुर् इति शङ्कनीयम् अस्य अस्धातोः
स्थाने अस्तेभूः इत्यनेन आदेशत्वात् । अतः आदेशे कृते गणस्थत्वा-
दसधातोर्धातुसंज्ञा सिद्धा न तु भू इत्यस्य इत्येवमर्थम् इदं सूत्रं प्रवीति
भगवान् पाणिनिः । आदेशस्य स्थानिवत्त्वाद् भवति भू इत्यादेशस्यापि
धातुसंज्ञा । आदेशस्तु आर्धधातुके विषये एव भवति आर्धधातुके इति
सूत्रे विषयसप्तमीत्वात् ।

(महा यह ज्ञातव्य है—‘भूवादयो धातवः’ इस सूत्र से ‘अस् भुवि’ इस की
धातु संज्ञा होती है लेकिन अस् के स्थान में भू के आदेश हो जाने पर भू की
धातुसंज्ञा प्राप्त नहीं होती क्योंकि धातु संज्ञा अस् की की थी भू की नहीं ।
यह भू भू सत्तायाम् धातु है, इस प्रकार की धातु नहीं करनी चाहिये, क्योंकि
यह तो आदेश हुआ हुआ भू है, इसका उस भू धातु से कोई सम्बन्ध
नहीं । जब अस् के स्थान में भू आदेश हो जाता है तब भू की धातु संज्ञा है ही
नहीं, फिर ‘धातोः’ अधिकार करके तृच् इत्यादि प्रत्यय कैसे आ सक्ता है ।
इसलिये भगवान् पाणिनि सूत्र बोलते हैं । ‘स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ’ इससे
जिस प्रकार अस् की धातुसंज्ञा होती है उसी प्रकार भू की भी उसी स्थान में
आदेश होने के कारण धातु संज्ञा हो जाती है । और यह आदेश ‘आर्धधातुके’

प्रत्यय वे विषय में ही होता है। क्योंकि 'आर्धघातुवे' यह विषय सप्तमी है।
 भू वृच्^१। भू इट्^२ वृ। भो^३ इट् वृ। भवित्। भवित् सु। भवित्
 अनङ् सु। भवितन् सु। भवितान् स्। भवितान्। भविता। भूतुमुन्^४।
 भवितुम्। भू तव्य। भवितव्य। भवितव्य सु। भवितव्यम्। वृव्।
 यचि^५। यच् वृच्। यक्त्^६। यक्त् सु। यक्त अनङ् सु। यक्तन्
 स्। यक्तान् स्। यक्तान्। यक्ता।

किम् टा। क छेअत्रेदं योध्यम्-किम् इति अस्मात् प्रातिपदिकात्
 टाप्रत्ययो विहितः अत एव यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् इत्यनेन
 सूत्रेण किम्शब्दस्य अङ्गसंज्ञा सिद्धा न पुनः क इत्येतस्य शब्दस्य।
 अस्माद् यचनात् क इत्येतस्य किम् इत्येतस्य स्थाने आदेशत्वात् अङ्गसंज्ञा
 सिध्यति। ततः 'टाडसिडसामिनात्स्या' इत्यनेन सूत्रेण टा इत्येतस्य स्थाने
 अदन्तादङ्गादिन इत्ययमादेशो भवति। क इन्^७। केन्^८। किम् भ्याम्।
 क भ्याम्। काभ्याम्^९। किम् भिस्। क ऐम्। कैस्। कै।

(यहा यह ज्ञातव्य है—किम् प्रातिपदिक से टा प्रत्यय का विधान किया
 गया है इसलिये 'यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्' इस सूत्र से 'किम्' शब्द
 की भङ्ग संज्ञा होती है 'क' शब्द की नहीं। इस स्थानिवत् सूत्र से किम् शब्द के
 स्थान में 'क' के आदेश होने के कारण इसकी भी भङ्ग संज्ञा हो जाती है।
 उससे पश्चात् 'टाडसिडसाम्' इस सूत्र से अकारान्त भङ्ग के पदवान् टा के
 स्थान में इन यह आदेश हो जाता है)

१—भूवादयो घातय (१ ३. १), घातो (१ १ ६१), कृदतिङ् (३ १
 ६३), कर्त्तरि कृत् (३ ४ ६७) ण्वुत्तुचो (३ १ १३३), प्रत्यय (३ १ १)
 परद्व (३. १ २) २—आर्धघातुक शेषः (२ ४ ११४), आर्धघातुकस्येद्
 वलादे (७ २ ३५), आद्यन्तो टक्ती (१ १ ४४) ३—यस्मात्प्रत्ययविधि-
 स्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् (१ ४ १३) अङ्गस्य (६ ४ १), सार्वघातुकाधधातुकयो
 (७ ३ ८५) इको गुणवृद्धी (१ १ ३), स्थानेऽन्तरत्तम (१ १ ४६) ४—
 तुमुण्वुलो० (३ ३ १०) ५—वृवो वचि (२ ४ ५३) ६—चो कु (८ २ ३०)
 ७—किम् कः (७ २ १०३) स्थानिवदादेशोऽजत्वघो (१ १. ५५)
 टाडसिडसामिनात्स्या (७. १ १०२) यथासख्यमनुदेश समानाम् (१. ३. १०)
 ८—आद् गुण (६. १. ८७) ९—सुपि च (७ ३. १०२)

डुकृञ् । कृ क्त्वा^१ । प्र कृ ल्यप्^२ । प्र कृ य ऋ अत्रेद बोध्यम्
 वृदतिङ् इत्यनेन सूत्रेण क्त्वा इत्येतस्य कृत्सज्ञा अस्ति । परञ्च क्त्वो
 स्थाने ल्यपि आदेशे कृते तस्य ल्यप कृत्सज्ञा नास्ति । अत एव ह्रस्वस्य
 पिति कृति तुगिति कृत्सज्ञाया अभावात् ल्यपि तुगागमो न प्राप्नोति ।
 अस्माद् वचनात् ल्यप क्त्वा स्थाने आदेशत्वात् कृत्सज्ञा भवत्येव । तत्
 तुगागमो भवतिः प्र कृ तुक्^३ य । प्रकृत्य सु । प्रकृत्य^४ स् । प्रकृत्य ।
 प्रहृत्य ।

(यहा पर ज्ञातव्य है— वृदतिङ् इस सूत्र ॥ क्त्वा की कृत्सज्ञा है परन्तु
 क्त्वा क स्थान म ल्यप् आदेश कर लेन पर उस ल्यप की कृत् सज्ञा नहीं है ।
 इसलिये 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' इस सूत्र से ल्यप् के कृत् सज्ञा न होने
 से उसके परे रहन पर तुक् का भागम नहीं होता है । इस वचन से (स्थानि-
 वदादेशोऽनल्विधौ) ल्यप् की भी कृत् सज्ञा हो जाती है, क्योंकि वह क्त्वा के
 स्थान में आदेश है)

शालीय । शाला छ । शाला ईय । शाल् ईय । शालीय इत्यत्र छ
 इत्येतस्य तद्धितसज्ञा न ईय इत्येतस्य । अत एव ईय इत्येयमन्तस्य कृत्त-
 द्धितसमासाश्चेति प्रातिपदिकसज्ञा न सिध्यति । स्थानिन्द् इति वचनात्
 सिध्यति अस्यापि ईयान्तस्य प्रातिपदिकसज्ञा । तत् स्यादिरूपसि ।

(छ की तद्धिता हम अधिकार सूत्र से तद्धितसज्ञा है ईय की नहीं ।
 हमलिये ईय है अन्त में जिसके एस शालीय शब्द की 'कृत्तद्धितसमासाश्च' इस
 सूत्र से प्रातिपदिकसज्ञा नहीं हो सकती है परन्तु स्थानिन्द् इस सूत्र के कारण
 म आदेश जो ईय है उसकी भी तद्धित सज्ञा हो जाती है क्योंकि तद्धित का
 आदेश तद्धित के समान होता है)

प्रकृत्य । इत्यत्र क्वातोमुन्कसुन इत्यनेन सूत्रेण करान्तस्य
 अव्ययसज्ञा भवति न तु ल्यवन्तस्य । तथा च सति अनव्ययत्वात्

१—समानवर्तुं क्यो पूर्वाने (३. ४. २१) २—यस्मात्प्रत्ययः (१. ४. १३)
 प्रत्यय (६. ८. १) समासज्जम्बुवै क्यो ल्यप् (७. १. ३७) ३—ह्रस्वस्य
 पिति कृति तुक् (६. १. ७१) आद्यतोऽवितो (१. १. ४५) ४—कृत्तद्धित-
 समासाश्च (१. २. ४६) व्याप्रातिपदिकान् (४. १. १) स्वो० (४. १. २)
 गुप (१. ४. १०३) विभक्तिश्च (१. ४. १०४) द्व्यक्योद्विवचनैकवचन (१. ४.
 २२) एवम् विवक्षिते गु. प्रत्यय (३. १. १) परद्वच (३. १. २) क्वातोमुन्क-
 सुन (१. १. ३६) अग्न्यादापुप (०. ४. ८२)

अव्ययादाप्सुः इत्यनेन सु इत्येतस्म्य लुङ् न प्राप्नोति । स्थानिवदिति सूत्रेण ल्यप् इत्येतस्य आदेशस्यापि अव्ययमज्ञा भवत्येव अव्ययस्य आदेशः अव्ययवद् भवति इति वचनान् । ततः अव्ययादाप्सुः इत्यनेन सोलुक् ।

(यहां पर ब्रवातीमुक्तमुन इम सूत्र म ब्रवाप्रत्ययान्त शब्द की प्रकृति सज्ञा होनी है ल्यप् प्रत्ययान्त की नहीं । और इस स्थिति में ल्यप् व घटाय न होने से अव्ययादाप्सु इम सूत्र में मुप् का लुक् नहीं प्राप्त है । स्थानिवत् इस सूत्र में ल्यप् आदेश की भी अव्ययमज्ञा हो जाती है)

वृत्त हे । वृत्त य^१ॐ अत्रेदं बोध्यम् हे इत्येतस्य मुप्प्रत्याहारे निर्देश न तु य इत्येतस्य । अत एव अमुप्प्रान् अतो दीर्घो यञि, मुपि च इति न प्रवर्तते । स्थानिवद् वचनान् य इत्येतस्यापि हे स्थाने आदेशत्वात् मुप्प्रम् उपपद्यते ततो दीर्घो भवत्येव वृत्ताय^२, प्लत्ताय इति ।

(हे मुप् प्रत्याहार में है व नहीं, इमन्ति 'मुपि च' सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती है । स्थानिवद् इम सूत्र म हे के स्थान में य के आदेश होने से हे को मुप माना गया । अतः अब दीर्घ हा जायगा) ।

पठ । पठ् लङ्^३ । पठ, ल् । पठ् थस्^४ । पठ् शप्^५ थम् । पठ तम्^६ । अट्^७ पठतम् । अपठतम्^८ । ॐ इत्यत्र थस् इत्येतस्य तिङ् प्रत्याहारे निर्देशः । न तु तम् इत्येतस्य । अत एव अपठतम् इत्येतस्य^९ 'मुप्तिङन्त पदम्' इत्यनेन पदसज्ञा न सिध्यति । परन्तु स्थानिवद् वचनान् तम् इत्येतस्य थस् इत्येतस्य स्थाने आदेशवात् सिध्यति पदसज्ञा । तथा च सति मुप्तिङन्त पदमित्यनेन सिध्यति तमन्तस्य पदसज्ञा ।

(पस् तिङ् प्रत्याहार में निर्दिष्ट है तम् नहीं । इसलिए अपठतम् की पदसज्ञा नहीं सिद्ध होती । परन्तु स्थानिवत् इम वचन से तम् का थस् के स्थान

१—हेयं (७ १. १३) २—स्थानिवदादेशाऽन्विषी (१ १ ५५) मुपि च (७ ३ १०२) ३—भूते (३ २ ८४) अनन्तन लङ् (३ २ ११२) प्रत्यय (३. १ १) परस्व (३ १ २) ४—तस्य (३. ४. ७७) तिप्तिस्मि० (३ ४. ७८) ५—तिङ्शित्तावधानुक्तम् (३ ४ ११३) सावधानुक्ते यक् (३ १ ६७) कर्त्तरि शप् (३ १ ६८) ६—तस्यस्यमिषा तान्त्रन्ताम (३ ४ १०१) यथामस्यमनुदेश समानाम् (१ ३ १०) ७—लुङ्लङ् लुङ्स्वहुदात्त. (६ ४ ७१) आद्यन्तो टङितो (१ १ ४५) ८—स्थानिवदादेशोऽन्विषी (१. १ ५५) मुप्तिङन्त पदम् (१ ४ १४)

में आदेश होने के कारण से पद सज्ञा सिद्ध होती है । इस कारण 'मुप्तिङन्त पदम्' इस सूत्र से अपठतम की भी पद सज्ञा हो जाती है ।)

ग्राम. युष्माकम् स्वम् । ग्रामो वः स्वम्^१ ॥ इत्यत्र युष्माकम् इत्ये-
तस्य स्थाने वस् इत्ययमादेशो भवति । किन्तु 'मुप्तिङन्त पदम्' इत्यनेन
सूत्रेण युष्माकम् इत्यनेस्य पदसज्ञा न तु वस् इत्येतस्य । अस्माद् वचनात्
पदस्य पदात् युष्मदस्मदोरित्यनेन सूत्रेण युष्माकम् स्थाने वस् आदेश-
त्वात् भवत्येव तस्यापि पदसज्ञा, पदादेशः पदवद् भवतीति वचनात्
तेन पदवत्त्वात् सूयादीनि भवन्ति ॥

(युष्माकम् के स्थान में 'वस्' यह आदेश होता है । अतएव युष्माकम् की
'मुप्तिङन्त पदम्' इस सूत्र से पद सज्ञा है न कि वस् की । परन्तु स्थानिवत् सूत्र
के कारण से वस् की भी पद सज्ञा हो जाती है क्योंकि यह पद के स्थान पर
आदेश है और पद का आदेश पद के समान होता है, ऐसा यह सूत्र विधान
करता है इसलिये पद सज्ञा होने से इत्व आदि कार्य हो जाते हैं)

व्यूढमुर. यस्य स व्यूढोरम्भ^२ तेन व्यूढोरस्केन ॥ इत्यत्र सकारस्य
स्थानिवद्भाववाद् विसर्जनीयत्वाद् अयोगवाहानामट्सु एत्वम् अट्कृष्णा-
डनुन्वयत्रायेऽपि इत्यनेन सूत्रेण नकारस्य स्थाने एकारादेशः प्राप्नोति ।
तृतीयान्तेन समासेन अला विधौ न, स्थानिवद्भाव इति निषेधात्
सकारस्य न भवति विसर्जनीयवद्भावः, तस्मान्न प्रवर्तते एत्वादेशविधायकं
सूत्रमिति ॥

(सकार के स्थानिवद् भाव होने से सकार को विसर्जनीय माना गया
जिससे 'अयोगवाहानामट्सु एत्वम्' इस वातिक से नकार के स्थान में एकार प्राप्त
होता है परन्तु एक वर्ण के द्वारा विहित विधि में स्थानिवद् भाव नहीं होता
इस निषेध में स को विसर्जनीय नहीं माना गया । और सकार से व्यवधान
रहने पर एत्व का विधान नहीं । इसलिये एकार नहीं हो सकता)

द्विप् सु । द्वि श्री^३ स् । द्वयोस्^४ । श्रीः । पथिन् सु । पथि आ^५
स् । पथ् आ^६ आ स् । पथा^७ स् । पन्था^८ स् । पन्थारु । पन्थार् । पन्थाः ।

१—मुप्तिङन्त पदम् (१ ४ १४) पदस्य (८ १ १६) पदात् (८ १ १७)
युष्मदस्मदो ० (८ १ २०) अनेकाल्पित्तवस्य (१ १ ५४) २—द्वि श्रीत्
(७ १. ८४) अतोऽन्त्यस्य (१ १. ५१) ३—इको यणचि (६ १. ७७) ४—
पथिमप्यमुशामात् (७ १. ८५) अतोऽन्त्यस्य (१ १ ५१) ५—इतोऽन्त्यस्य नाम-
स्थाने (७ १ ८६) ६—अथ.० (६ १. १०१) ७—घो न्यः (७. १. ८७) ।

सः । तद् सु । त अस् । त स् । सस् । सरु । सर् । सः । इत्यत्र अलः विधौ न स्थानिवद् भवतीति निषेधात् एतेषूदाहरणेषु हल्ङ्प्रत्याहारलोपो न भवति । यत अत्र हल्प्रत्याहारान्तर्गतागतैकं वर्णम् आश्रित्य सोर्लोपो विधीयते । अत एव पञ्चम्यन्तेन सह विग्रहेण इदं स्थानिवत्त्वस्याभावरूपफलम् ।

(यहाँ पर अल् विधि में स्थानिवद् नहीं होता है इस निषेध से हल्ङ्प्रत्ययों इस सूत्र से इन उदाहरणों में स् प्रत्यय का लोप नहीं होता है । यहाँ हल् प्रत्याहार के अन्तर्गत आने वाले एक वर्ण को आश्रय करके सुलोप का विधान किया जाता है । पञ्चमी के माय समास करने का यह निषेध रूप फल है)

दिवि कामो यस्य स युक्तामः । दिव कामः । दि उ^१ कामः । उकारस्य स्थानिवत्त्वात् वकारवद्भावात् लोपो व्योर्वलि इति घकारस्य लोपः प्राप्नोति । अलः विधौ न, इति निषेधान् स्थानिवद्भावो न भवति ॥

यहाँ पर उकार का स्थानिवद्भाव हो जाय तो वह वकार माना जाय और 'लोपो व्योर्वलि' इस सूत्र में उस का लोप हो जाय । लङ्गिन अल् की विधि में स्थानिवद् नहीं होता है इससे उकार ही माना गया अत लोप नहीं होता ।

ॐक इष्टः । यज^२ क्त । यज त^३ । इ^४ अज् त । इज्^५ त । इप्^६ त । इष्ट^७ सु । इष्ट^८ । क इष्टः ॥ इत्यत्र उकारस्य स्थानिवत्त्वात् यकारस्यान्वृत्तिश्च इत्युत्वं प्राप्नोति । अलि विधौ न, इति निषेधात् स्थानिवद्भावो न भवति । इत्येतत्सर्वं रटनमन्तेरेणैव अवगन्तव्यम् ॥

(यहाँ पर इकार का स्थानिवद्भाव से यकार हो जाय तो 'यजि च' इस सूत्र से कर् के रेफ का उकार आदेश हो जाय जिससे यो इष्ट. इष्ट प्रयोग बनता)

- १—दिव उ^१ (६. १. १३१) अलोऽन्यस्य (१. १. २१) २—इको यणचि (६. १. ७७) ३—भूवादयो धातव (१. ३. १) धातोः (३. १. ६१) वृद्धमिद् (३. १. ६३) कर्तरि कृत् (३. ४. ५७) यः कर्मणि च भवि चाकर्मकेभ्य (३. ४. ६६) नयोरेव कृत्यक्तलर्था. (३. ४. ७०) भूने (३. २. ८८) निष्ठा (३. २. १००) क्तक्तवत् निष्ठा (१. १. २५) अण्यः (३. १. १) परस्व (३. १. २) ४—सप्तमवतद्धिते (१. ३. ८) नम्य मातः (१. ३. ६) अल्लोपो (१. १. ५६) ५—वचिस्वपिग्राहीना द्वित्रि (६. १. १५) सम्प्रसारणम् (१. १. ४४) ६—अभि [पूर्व] (६. १. १०३) सम्प्रसारणम् (१. १. ४४) ७—यश्च अस्त्वगृहमृत्रयवग्राह्याश्च ॥ (८. २. ३१) सहितायाम् (८. २. १०८) पृता पृ (८. ४. ४१) ।

परन्तु अल् के परे रहने पर जो विधि उसमें स्थानिवद् भाव का निषेध है अतः स्थानिवद् भाव नहीं होता जिससे इकार का यकार न माना जाकर इकार ही माना जाता है, अब 'हसि च' की प्रवृत्ति हो नहीं होती अतः एव क इष्टः यही प्रयोग माधु है)

अच परस्मिन् पूर्वविधौ १।१।५६

प० वि०—अच ६।१ परस्मिन् ७।१। (निमित्तसप्तम्या एकवचनम् ।) पूर्वविधौ ७।१॥ स०—पूर्वस्य विधि पूर्वविधि तस्मिन् पूर्वविधौ ।

अर्थ—[स्थानियदादेश] परनिमित्तक अजादेश पूर्वविधौ कर्तव्ये स्थानियद् भवति ।

(पर की निमित्त या कारण मानकर अच् के स्थान में आ आदेश वह स्थानी के समान माना जाता है पूर्व की विधि करने में)

उदा०—पटयति ।

सि०—पटुभाचष्टे करोतीति पटयति पटुम्णिच्^१। पटु अस्^२ णिच् । पटु णिच् । पटु इ^३ । पट्^४ इ । ऋअत्रेव बोध्यम्—पट् इ इति स्थिते 'अत उपधाया' इति वृद्धि प्राप्नोति । स्थानियदादेशो भवति इति वचनात् स्थानियत्वात् वृद्धिर्न भवति । पुन अल [स्थाने] विधौ न स्थानियद् इति वचनात् स्थानियत्त्वभावात् वृद्धि प्राप्नोति । पुनश्च अच परस्मिन्निति स्थानियद्भावो भवतीति न प्रवर्तते वृद्धिविधायक सूत्रमिति ऋ पट् इ । पटि^५ लट् । पटि ल् । पटि तिप् । पटि राप्^६ ति । पटे^७ अ ति । पटयति^८ ।

१—तत्त्वरोति तदाचष्टे (३ १. २६ वा०) प्रत्यय (३. १. १) परश्च (३ १ २) २—*अलोविभे विग्रहे* सनाद्यन्ता घातव (३ १ ३२) सुपो धानुप्रातिपदिक्या (२ ४. ७१) अदर्शन सोऽ (१ १ ५६) ३—पट् (१ १. ७) तस्य लापः (१ ३ ६) अदर्शन सोऽ (१ १ ५६) ४—णाविष्टवत्-प्रातिपदिकस्य (६ ४ १२५ वा०) ५—सनाद्यन्ता घातव (३ १ ३२) घातो (३ १ ६१) यत्तमान सट् (३ २ १२३) प्रत्यय (३ १ १) परश्च (३. १. २) ६—निटश्चिन्सावंपानुक्त्वं (३ ४. ११३) सावंपानुक्त्वे यक् (३ १ ६७) यत्तरि राप् (३ १ ६८) ७—सावंपानुक्तापंपानुक्त्वयो (७ ३ ८५) इको गुणवृद्धी (१ १ ३) स्थानाज्जतरतम (१. १ ५६) ८—एचोऽभ्यधायाव (६ १ ७८) यथास्यमनुदञ्च समानाम् (१ ३ १०)

(यहां पर 'पट् इ' इस स्थिति में 'अन उपधाया' इस मूल में वृद्धि प्राप्त होती है। लेकिन 'स्थानिवदादेश' इस मूल में आदेश स्थानी के समान हो जाता है, इस कारण उकार पुनः यहाँ आ गया जिसमें उपधा में अकार नहीं मिला और जब उपधा में अकार ही नहीं तो वृद्धि किसको हो। उपधा सज्ञा अन्विधि है, अल् विधि में स्थानिवद् का निषेध है। अतः उकार का स्थानिवद् भाव नहीं माना जायेगा जिससे फिर वृद्धि प्राप्त हो गई। इस प्रकार से वृद्धि प्राप्त होने पर 'अचः परिस्मिन् पूर्वविधौ' इस मूल का आरम्भ किया गया है। जिससे स्थानिवद् भाव हो गया और वृद्धि नहीं हुई। अल् विधि में स्थानिवत् कराना हो इस मूल का प्रयोजन है।

न पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णानुस्वारदीर्घजश्चविधिषु ।

१।१।५७

प० वि०—न अ०। पदान्त-द्विर्वचन-वरे-यलोप-स्वर-सवर्ण-अनुस्वार-दीर्घ-जश्-चविधिषु ७।३॥ स०—पदे अन्तः पदान्तः। पदान्तश्च द्विर्वचनं च वरे च यलोपश्च स्वरश्च सवर्णं च अनुस्वारश्च दीर्घश्च जश्च चर्च इति पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णानुस्वारदीर्घजश्चः। त्रिविधश्च त्रिविधश्च विधिरचविधिरच विधिरच विधिरच त्रिविधश्च त्रिविधश्च त्रिविधश्च त्रिविधश्चेति विधयः। पदान्त-द्विर्वचन-वरे-यलोप-स्वर-सवर्ण-अनुस्वार-दीर्घ-जश्-चराम् विधयः इति पदान्त-द्विर्वचन-वरे-यलोप-स्वर-सवर्ण-अनुस्वार-दीर्घ-जश्-चर-विधयः तेषु (प० तत्पु०)।

अर्थ—[स्थानिवद् अच. परिस्मिन्] पदान्तादिषु विधिषु परनिमित्त-कोऽजादेशो न स्थानिवद् भवति। (पदान्तादि विधियों के करने में पर को निमित्त मानकर जो अच् का आदेश है, वह स्थानिवत् नहीं होता है)

उदा०—१. पदान्तविधौ—को स्तः, यो गतः, कानि सन्ति, यानि सन्ति। २. द्विर्वचनविधौ—ददध्वत्, मदध्वत्। ३. वरेविधौ—याया-वरः। ४. यलोपविधौ—कण्डूतिः। ५. स्वरविधौ—चिरीरुः। ६. सवर्णविधौ—रुवः। ७. अनुस्वारविधौ—रुवः। ८. दीर्घविधौ—प्रति-दीप्ते। ९. जश्विधौ—मग्निः। १०. चर्चविधौ—जक्षतुः, जक्षुः।

सि०—अम् लट्। अम् तम्। अम् शप् तम्। अम् तम्।

१—वर्तुर्लट् (१. १. ६८) २—वर्तुर्लट् (२. ४. ७०)

स्तस्^१ । स्तः । अस्^२ मि । अस्^३ अन्ति । अस्^४ शप् अन्ति । अस्^५ अन्ति । स्^६ अन्ति । सन्ति । कौ स्त^७, कानि सन्ति इत्यत्र अस्^८ धातोरकारो लुप्यते । तस्य स्थानिवद्भावाद्वादेशो यणादेशश्च प्राप्नोति । अनेना-जादेशस्य स्थानिवत्त्वाभावाद्वादेशो यणादेशश्च न प्रवर्तते ।

(यम् धातु का अकार लोप होता है । उस अकार के स्थानिवत् हो जाने से एचोऽयवायाव' से भाव् ओर 'कानि सन्ति' में 'इको यणचि' से यण् प्राप्त होता है । परन्तु इस सूत्र से स्थानिवत्त्व का निषेध हो जाने से आवादेश और यणादेश नहीं होता।)

दधि अत्र । दध्^९ य्^{१०} अत्र । दध्^{११} ध्^{१२} य्^{१३} अत्र । दध्^{१४} ध्यत्र । क्लृयणादेशः परनिमित्तकः । तस्य स्थानिवद्भावात् 'अनिच च' इति धकारस्य द्विवचनं न प्राप्नोति; अस्माद् वचनात् स्थानिवत्त्वभावस्य निषेधे द्विवचनम् भवति॥

(यहा पर 'इको यणचि' में जो यण का आदेश है वह पर को कारण मान कर हुमा, इसलिये 'अच परस्मिन् पूर्वविधौ' इस सूत्र से स्थानिवद् भाव हो जाता है । ऐसा करने से पुनः य् को इ माना गया जिससे 'अनिच च' इस सूत्र से 'अच्' परे न हो ऐसा नहीं हुमा' जिससे द्विवचन प्राप्त हो नहीं हो रहा है, इसलिये इस सूत्र के द्वारा उस स्थानिवद् भाव का द्विवचन विधि में प्रतिषेध कर दिया गया जिम कारण द्विवचन हो गया)

या यङ्^{१५} । या या य^{१६} । य या^{१७} य । यायाय^{१८} । यायाय वरच्^{१९} । यायाय वर । यायाय^{२०} वर । याया वर^{२१} । इत्यत्र यङोऽकारस्य स्थानिवत्त्वात् आतो लोप उटि च इत्यनेन आकारलोपः प्राप्नोति परन्तु स न भवति स्थानिवत्त्वस्य प्रतिषेधात् ।

कण्डून् गात्रविघर्षणे । कण्डू कित्च्^{२२} । कण्डू ति । कण्डू यक्^{२३}

- १—इमोरल्लोपः (६. ४. १११) २—इको यणचि (६. १. ७७) ३—अनिच च (८. ४. ४७) ४—मला जदमसि (८. ४. ५३) ५—धातोरकारो हलादेः क्रियासममिहारे यङ् (३. १. २२) प्रत्यय (३. १. १) परस्व (३. १. २) ६—सन्त्यङो. (६. १. ६) ७—पूर्वोऽभ्यास (६. १. ४) अत्र लोपोऽभ्यासस्य (७. ४. ५८) ह्रस्वः (७. ४. ५६) ८—दीर्घोऽङित (७. ४. ८३) ९—यङ्च यङ् (३. २. १७६) १०—घाघधातुके (६. ४. ४६) अतो लोप (६. ४. ४८) ११—लोपो व्योर्वलि (६. १. ७६) १२—किञ्चनो च सजायाम् (३. ३. १७४) १३—कण्डूवादिभ्यो यक् (३. १. २७)

ति । कण्ठ् य ति । कण्ठ् य् ति । क्ण्ठ्यत्र अकारलोपः परनिमित्तकः । यदि अयमकारः स्थानिवन्त्यान् तदा 'लोपो व्योर्ध्वलि' (६. १. ६६) इत्यनेन मूत्रेण यकारस्य लोपो न भवेन् ; परन्तु यनोपविधिं प्रति अजादेशो न स्थानिवद् भवति । अत एव अत्र स्थानिवत्त्वस्याभावाद् अकारभावान् यकारस्य लोपो भवत्येव तथा च कृते क्कण्ठ् ति । कण्ठ्ति मु । कण्ठ्तिः । ;

(यहा पर बिन्ध् धार्ययानुक् के कारण मे घकार का सौर होता है । यदि इस घकार का स्थानिवद् भाव हो जाय तो 'लोपो व्योर्ध्वलि' इस सूत्र मे घकार का सौर न हो । लेकिन दकार (व्) श्लेष के प्रति षच् के घादेन वो स्थानिवद् भाव नहीं होता है । इसलिये ही स्थानिवद् भाव के न होने मे घकार के समाव के कारण घकार का सौर हो ही जाता है)

डुरुभ्^१ । कृ मन्^२ । कृ^३ म । किर^४ स । कीर्^५ म । कीर कीर म^६ । की^७ कीर् स । कि^८ कीर् म । चि^९ कीर् स । चिकीर्ष^{१०} । चिकीर्ष धु । चिकीर्ष अक^{११} । चिकीर्ष^{१२} अक^{१३} इत्यत्र लित्प्रत्ययान् पूर्वमुदात्ते कर्त्तव्ये परनिमित्तकोऽकारलोपो न स्थानिवद् भवति ॥

(यहाँ पर निम्नप्रत्यय के परे रहने पर पूर्व को उदात्त होता है । जो उदात्त करने में पर को घर्षान् 'मक' को मानकर जो घकार का सौर हुआ है वह पर को निमित्त मानकर सौररूप घादादेश है, इसलिये यदि स्थानिवद्भाव हो जाय तो वह घकार ही उदात्त हो जाय, लेकिन स्वर की विधि करने में स्थानिवद्भाव नहीं होता है, अतः स्थानिवद्भाव नहीं हुआ । त्रिमते 'की' का ई उदात्त हुआ ।)

- १-घटो मोरः (६. ४. ४८) २-हृत्तन्मय (१. ३. ३) घादित्रिदुद्वः (१. ३. १) तस्य मोरः (१. ३. ६) ३-घातोः बर्मणुः समानरतुं वादिप्रदाया वा (३. १. ७) प्रत्ययः (३. १. १) परद्वय (३. १. २) ४-धार्ययानुक् मोरः (३. ४. ११४) धार्ययानुक्पदेष्ट वनादेः (७. २. ३२) एवाव उरदेमेनुदात्तात् (७. २. १०) दातो मन् (१. ७. ६) विदति च (१. १. २) घर्मन्तगमा गति (६. ४. १६) ५-कृत् ६६ घातोः (७. १. १००) ६-हृति च (८. २. ७७) ७-गन्धतोः (६. १. ९) ८-पूर्वोऽन्त्यायः (६. १. ४) घट मोरोऽन्त्याय (७. ४. ९८) हनादिः शेषः (७. ४. ६०) ९-हृत्तः (७. ४. २६) १०-मुहोत्पुः (७. ४. ६२) ११-घादेनप्रत्यययोः (८. ३. २६) १२-दुवोर-नारी (७. १. १) १३-धार्ययानुक् (६. ४. ४६) घटो मोरः (६. ४. ४८)

रुन्धः । रुधिर् आवरणे । रुध् लट् । रुध् लृ । रुध् तस । रुश्नम्ध्^१ तस् । रुन्ध् तस् । रुन्ध्^२ तस् । ऋइत्यत्र अनुस्वारे कर्त्तव्येऽकारलोपो न स्थानिवद् भवतिः

(यहा पर पर को निमित्त मानकर 'न' के प्रकार का लोप हुआ, उसका पूर्व की विधि अर्थात् अनुस्वार के करने में स्थानिवद्भाव होता प्राप्त है । यदि स्थानिवद्भाव हो जाय तो 'नश्चापदान्तस्य भलि' इस सूत्र से अनुस्वार करने में भलादि नहीं मिलता जिससे अनुस्वार नहीं हो सकता है । इसलिए इस सूत्र से अनुस्वार की विधि करने में जो - पर को निमित्त मानकर अच का लोपहप आदेश है, उसको स्थानिवद्भाव नहीं होता । इससे भलादि मिल गया और अनुस्वार हा गया ।)

तत रुन्ध् तस् इति स्थिते रुन्ध् तस् ऋइत्यत्र परसवर्णादेशे कर्त्तव्ये अकारलोपो न स्थानिवद् भवतिः

(यहा पर 'अनुस्वारस्य ययि परमवर्णं' (८-४ ५७) इस सूत्र से अनुस्वार का परसवर्ण आदेश के करने में स्थानिवद्भाव नहीं होता है । यदि स्थानिवद्भाव हो जाय तो प्रकार का स्थानिवद् भाव हो जायेगा । जिससे यय् प्रत्याहार मिलेगा नहीं । और पूर्वसवर्ण हो ही नहीं सकता । इसलिये 'न पदान्त'० इस सूत्र का निर्माण किया गया जिससे परसवर्ण की विधि में स्थानिवद्भाव नहीं होता है ।)

प्रतिदीप्ने । प्रतिदिवन् डे । प्रतिदिवन् ण । प्रतिदीप्नेः इत्यत्र अलोपोऽन (६. ४. १३४) इत्यनेन परनिमित्तेऽकारलोपे कृते 'हलि च' इति दीर्घे कर्त्तव्ये अलोपो न स्थानिवद् भवतिः

अद् । घस्त्व^३ । घस्त्व कितन्^४ । घस्त्व ति । घस्^५ ति । घ्^६ स ति । घ्^७ ति । घ् धि^८ । ऋ इत्यत्र उपधायां स्थितस्य अकारस्य स्थानिवद् भावात् 'भलां जश् भशि' इति जश्त्वं न प्राप्नोति, तदनेन

- १—रुधादिभ्यः णाम् (३ १ ७८) मिदचोऽन्त्यात्तरः (१. १. ४६)
 २—रुन्मोर्लोप (६ ४ १११) ३—बहुल छन्दसि (२. ४. ३६) ४—स्थानिवदादेशोऽन्त्विवी (१. १. ५५) भूवादयो घातव (१ ३. १) घातो (३. १. ९१) स्त्रियां कितन् (३ ३. ६४) ५—उपदेशेऽननुनासिक इत् (१. ३. २)
 ६—घसिमसोर्हन्ति च (६ ४. १००) ७—भरो भलि (८ २. २ ६) ८—भयन्तपोर्दोऽय (८. २. ४०)

स्थानिवद्भावस्य प्रतिषेधः क्रियतेऽतः ग्वि^१ मु। ग्विः। समाना^२
ग्विः। सग्विः।

(यहा पर पर को निमित्त मानकर घकार का लोप होता है। घौर लोप के हो जाने पर 'हलि च' इस मूत्र से दीर्घ की प्राप्ति है लेकिन परनिमित्तक अजादेश पूर्व विधि के करने में स्थानिवद् हो जाता है। तो यदि स्थानिवद् हो जाय, तो यहा पर हल् के परे न मिलने से दीर्घ हो ही नहीं सकता। लेकिन 'न पदान्त'० इस मूत्र से दीर्घविधि में स्थानिवद्भाव का निषेध कर दिया गया जिससे यही स्थानिवद्भाव के न होने से दीर्घ हो जाता है)

अद्। घम्^३। घम्^३ लिट्^४। घस्^५ अतुस्^६। घस्^५ अतुम्^७।
घस्^५ घस्^५ अतम्^८। घ^९ न्स्^{१०} अतुम्^{११}। क^{१२} घस्^{१३} अतुस्^{१४}। ज^{१५} घम्^{१६}
अतुस्^{१७} इत्यत्र अकारलोपस्य स्थानिवद्भावात् 'स्वरि च' इत्यनेन
मूत्रेण घकारस्य चत्वं न प्राप्नोति तदनेन स्थानिवद्भावास्य अभावाद्
भवति। ज कम्^{१८} अतुम्^{१९}। जक्प्^{२०} अतुस्^{२१}। जजनुः।

द्विवचनेऽचि १।१।५८

प० वि०—द्विवचने ७१ अचि ७१॥ स०—द्विवचनं च द्विवचनं
चेति द्विवचनम्, तस्मिन् द्विवचने।

अर्थ—[स्थानिवद्भावादेशः अचः] द्विवचननिमित्तेऽचि अजादेशः
स्थानिवद् भवति द्विवचने एष कर्तव्ये।

(द्विवचन का कारण जो अजादेश प्रत्यय है उसके परे रहने पर जो घच्
का भादेश वह स्थानिवद् हो जाता है द्विवचन विधि के ही करने में)

उदा०—पपतुः, पपुः।

सि०—पा लिट्। पा अतुम्। प^{२२} अतुम्^{२३} इत्यत्रेदं बोध्यम् अत्रिदेशो

१—मन्वा जग् भवि (८. ४. ५३) २—समानस्य चन्द्रम्व० (६. ३. ८८)।

३—लिट्यन्यतरस्याम् (२. ४. ४०) ४—परोक्षे लिट् (३. ०. ११४)

५—तस्य (३. ४. ७७) लिट्स्मिन् (३. ४. ७८) परस्मैपदानाम् (३. ४. ८०)

६—असयोगाल्लिट् कित् (१. २. १) गमहनजनसपनणाम् (६. ४. ६८)

७—द्विवचनेऽचि (१. १. ५८) लिटि घाशोरनम्याम्य (६. १. ८) ८—

पूर्वोऽन्मात्रः (६. १. ४) अत्र लोपोऽप्यास्य (३. ४. १८) अजादेशः घञ्.

(७. ४. ६०) ९—बृहोदनुः (७. ४. ६२) १०—अस्यस्य कर्त्तुं (८. ८. ५४)

११—स्वरि च (८. ४. ५५) १२—आविर्भावः (८. ३. ६०) १३—

१३—मातो लोप इटि च (६. ४. ६४)

द्विविधो भवति-कार्यातिदेशः, रूपातिदेशश्च । तत्र कार्यातिदेशे कार्य-
सिद्ध्यर्थमादेशं स्थानितुल्य मत्वाऽऽदेशेनैव कार्याणि क्रियन्ते । तेन
स्थान्यादेशोभयाश्रयाणि कार्याण्यादेशे भवन्ति । रूपातिदेशे तु स्थानिनो
यद् रूपं तदेव तत्रागच्छति, स्थान्याश्रयाण्येव कार्याणि भवन्ति, नैवा-
देशाश्रयाणि । अस्मिन् सूत्रे तु रूपातिदेशोऽस्तिक्लृप् अतुस् । पा पू
अतुस् । प पतुस् । पपतुः ।

(प्रतिदेश दो प्रकार का होता है—एक को तो कार्यातिदेश और दूसरे को
रूपातिदेश कहते हैं । कार्यातिदेश में कार्य को सिद्ध करने के लिये आदेश को
स्थानी के समान मानकर आदेश से ही कार्य किये जाते हैं । इस प्रकार आदेश
में स्थानी और आदेश इन दोनों का आश्रय कर कार्य किये जाते हैं । परन्तु
रूपातिदेश में स्थानी का जो रूप है वह ही वहाँ आ जाता है और केवल स्थानी
के आश्रय से ही कार्य होते हैं आदेश के आश्रय से नहीं । इस सूत्र में रूपाति-
देश है । प अतुम् यहाँ पर आकार का जो लोप हुआ है उसका रूप ही प्रकार
बड़ा हो जायेगा, जिससे 'पा' बन गया और अब इसका द्विवचन होता है ।)

अदर्शन लोप १।१।५६

प० वि०—अदर्शनम् १।१ लोप १।१॥ स०—न दर्शनम् अदर्शनम् ।
(नञ्० तत्पु०)

अर्थ—[नवेति विभाषा इत्यत इति शब्दो मण्डकप्लुत्या अतुवर्तते]
(विद्यमान वस्तु के अदर्शन की लोप सज्ञा होती है)

क्लृप् अत्रेर्द्धं योच्यम्—इति करणोऽर्थनिर्देशार्थ इति भाष्ये प्रसिद्धम् ।
अत एव अत्र अदर्शनरूपस्य अर्थस्य लोपसज्ञा न तु अदर्शन-शब्दस्य ।
अपि चेद ज्ञातव्यम् इन्द्रियैर्ग्राह्यो भूत्वाऽप्राप्तो भवति तद् अदर्शनम् ।
यदस्ति एव नहि तस्य अदर्शनस्य लोप सज्ञा कत्र भविष्यति किन्तु यद्
भूत्वा न भवति तद् अदर्शनम् क्लृप् (इति शब्द सूत्रा में इस लिये रखा गया
कि वह अर्थ का लोप कराये, यह बात महामाष्य में प्रसिद्ध है । इस
लिये यहाँ पर इति की प्रयुक्ति आ जाने से अदर्शन अर्थात् नहीं होने रूप अर्थ
की प्रतीति होती है, अदर्शन शब्द की नहीं । यहाँ यह भी जानने योग्य बात है
कि इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण योग्य होकर जो ग्रहण नहीं होता उसको अदर्शन
कहते हैं । जो है ही नहीं मला उस अदर्शन की लोप सज्ञा बँम हो सकती है ।
किन्तु जो पत्थने होकर पदचान् नहीं होता उसका अदर्शन कहते हैं)

उदा०—पचति ।

उदा०—मेत्ता, छेत्ता । साधनं तु एबुल्लृचौ (३ १. १३३) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य १।१।६५

प० वि०—तस्मिन् ७।१ इति अ० । निर्दिष्टे ७।१ पूर्वस्य ६।१

अर्थ—ः इतिकरणोऽर्थनिर्देशार्थः । सप्तम्या निर्दिष्टे पूर्वस्य कार्यं भवति । (सूत्रों में सप्तमी विभक्ति मे निर्देश करने पर पूर्व का ही का होता है) ।

उदा०—दध्यत्र । मध्वत्र । ः इति व्ययधानरहितस्य इमारस्य उमारस्य च यणादेशो भवति ः

तस्मादित्युत्तरस्य १।१।६६

प० वि०—तस्मात् ५।१ इति अ० । उत्तरस्य ६।१

अर्थ—[निर्दिष्टे] पञ्चम्या निर्दिष्टे परस्य कार्यं भवति । (सूत्रों में पञ्चमी विभक्ति से निर्देश करने पर उत्तर का ही कार्य होता है)

उदा०—आसीनः साधनं तु ईदास (७ २. ८३) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

स्व रूप शब्दस्याशब्दसज्ञा १।१।६७

प० वि०—स्वम् १।१। रूपम् १।१ शब्दस्य ६।१ अशब्दसज्ञा १।१

स०—शब्दस्य सज्ञा शब्दसज्ञा (प० तत्पु०) न शब्दसज्ञा अशब्दसज्ञा ।

अर्थ—शब्दस्य स्वं रूपं ग्राह्यं शब्दसज्ञां वर्जयित्वा (शब्द का प्रपञ्च रूप ग्रहण करना चाहिये शब्दसज्ञा को छोड़कर)

उदा०—आग्नेयम्, अष्टकपालम् । ः अग्निशब्दोऽअग्निशब्दस्यैव ग्राह्यो भवति न ज्वलनः पावको धूमकेतुरित्यादीनाम् ः अशब्दसज्ञेति किम् वाधा ध्वदाप् । तरप्तमपौ घ. । धुप्रहणेपुं घप्रहणेपु च सक्षिनां ग्रहणं न सज्ञायाः ।

सि०—साधनं तु अग्नेर्दक् (४. २. ३३) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः १।१।६८

प० वि०—अणुदिन् १।१ सवर्णस्य ६।१ च अ० । अप्रत्ययः १।१॥

स०—उन् इन् यस्य सः उदिन् (बहु०) । अण् च उदिच्चेति अनयोः समाहारः अणुदिन् (समा० द्वन्द्वः) । न प्रत्ययः अप्रत्ययः ।

अर्थ—[स्वं रूपम्] अण् उदिच्च सवर्णस्य ग्राह्यो भवति

स्वस्य च रूपस्य प्रत्यय वर्जयित्वा । (अण् और उदित् अपन सवर्णों का ग्राहक होता है और अपन रूप का भी प्रत्यय को छोड़कर)

उदा०—अण् इति परेण णकारेण प्रत्याहारग्रहणम् आद्गुण (६ १ ८७) । अस्य न्वौ (७ ४ ३०) । यस्येति च (६ ४ १४८) । देव इन्द्र देवेन्द्र । इत्यपि सिध्यति खट्वा इन्द्र खट्वेन्द्र इति । उदित् । चुट् (१ ३ ७) । लशस्वतद्धिते (१ ३ ८) । कुचुटुतुप् इत्येते उदित्

तपरस्तत्कालस्य १।१।६६

प० वि०—तपर १।१ तत्कालस्य ६।१॥ स०—त परो यस्मात् नोऽय तपर । तादपि परस्तपर । तस्य काल तत्काल तस्य तत्कालस्य । अर्थ—[सगर्णस्य स्व रूपम्] तपरो वर्ण तत्कालस्य सगर्णस्य ग्राहको भवति स्वस्य रूपस्य च । (तपर किया हुआ वर्ण अपन काल वाले सवर्ण का ग्रहण कराता है और अपन रूप का भी)

गुणान्तरयुक्तस्य ग्राहको भवतीत्यर्थ अत एव 'अतो गुणे' इत्यत्र दीर्घत्पुतयोर्ग्रहण न भवति । किन्तु उदात्तानुदात्तस्वरितविशिष्टस्य अकारस्य ग्रहण तु भवत्येव

उदा०—रामै । पचन्ति ।

सि०—राम भिस् । राम ऐस् । रामेस् । रामैरु । रामैर् । रामे ।

आदिरन्त्यन सहता १।१।७०

प० वि०—आदि १।१ अन्येन ३।१ सह अ० । इता ३।१॥

अर्थ—[स्व रूपम्] अन्येन इता सह आदि मध्यपतिताना वर्णाना स्वस्य च रूपस्य ग्राहको भवति । (प्रतिम इत्मन् वण क साथ आदि अपना ग्रहण कराता है और अपन बीच में आने वाले वर्ण का भी)

उदा०—अण् इत्यनेन अ इ उ, अक् इत्यनेन अ इ उ ऋ लृ इत्येतेषां ग्रहण भवति ।

येन विविस्तदन्तस्य १।१।७१

प० वि०—येन ३।१ विधि १।१ तन्तस्य ६।१॥ स०—सोऽन्तो यस्य तत् तन्तस्य तन्तस्य (यहु०)

अर्थ—[स्व रूपम्] येन विशेषणेन विविर्विधीयते स तन्तस्य

आत्मान्तस्य समुदायस्य ग्राहको भवति स्वस्य च रूपस्य । (जिस विशेषण मे विधान किया जाता है वह तदन का तथा अपने स्वरूप का ग्राहक होता है)

उदा०—जयः, चयः, अयः ।

सि०—जि जये । चिच् चयने । इग् गती । जि अच् । जे अ । जय मु । जयः । चि अच् । चे अ । चय् य । चयमु । चय । इ अच् । ए अ । अय् अ । अय मु । अयः ङ् अत्रेङ् बोध्यम्-धातोरित्यविभक्त्य एरच् इति चिधीयते । नस्यायमर्थः एः धातोरच् प्रत्ययो भवति । इत्यत्र धातुविशेष्यं णरिति विशेषणम् । तत्कथं भवति । इवर्णान्ताद् धातोरच् प्रत्ययो भवति इत्येतादृशोऽर्थो भवति । येन विधिस्तदन्तम्येति (१. १. ७१) सूत्रेण ।

(धातो. का अधिकार करने 'एरच्' इस मूल का विधान किया गया है । इस मूल का यह अर्थ है इवर्ण धातु में अच् प्रत्यय होता है । इवर्ण का क्या अर्थ है । यहाँ पर इवर्ण विशेषण है और धातु विशेष्य है । ऐसे स्थान के लिए 'येन विधि' यह मूल बनाया गया है । अर्थात् विशेषण अपने तदन्त का ग्राहक होता है इसमें इवर्ण अर्थात् इवर्णान्ता धातु में अच् प्रत्यय होता है, ऐसा अर्थ हुआ) ।

वृद्धिर्यम्याचामादिस्तद्वृद्धम् १।१।७२

प० वि०—वृद्धिः १।१ यस्य ६।१ अचाम् ६।३ आदिः १।१ तन् १।१ वृद्धम् १।१

अर्थ—यस्य समुदायस्य अर्थां मध्ये आद्यञ् वृद्धिः, तद्वृद्धमनं भवति । (जिस समुदाय के अर्थों के बीच में आरम्भिक अच् वृद्धि है उसकी वृद्ध सजा होती है ।

उदा०—शालीयः, मालीयः ।

त्यदादीनि च १।१।७३

प० वि०—त्यदादीनि १।३ च अ० ॥ स०—त्यद् आदिर्येनाम् तानि त्मानि त्यदादीनि ।

अर्थ—[वृद्धम्] त्यदादीनि प्रातिपदिकानि वृद्धमज्ञानि भवन्ति । (त्यद् इत्यादि प्रातिपदिकों की वृद्धमज्ञा होता है ।

उदा०—त्यदीयम्, भवदीयम् ।

सि०—त्यद् छ । त्यद् ड्य । त्यदीय मु । ग्यदीय अम् । ग्यदीयम् ।

इत्यष्टाध्यायीप्रकाशिकाया प्रथमाध्यायं प्रथमः पाठः

डित्कितप्रकरणम्—

गाड् कूटादिभ्योऽङ्गिण [ङित्] १।२।१

सार्वधातुकमपित् १।२।४

प० वि०—सार्वधातुकम् १।१। अपित् १।१। स०—न पित् इति अपित् (नञ् तत्पु०)

अर्थ—[ङित्] अपित् सार्वधातुक द्विद्वद्भवति । (पित् भिन्न सार्वधातुक प्रत्यय ङित् के समान होता है)

उदा०—कुरुत, कुर्यन्ति ॥ चिनुत, चिन्वन्ति ।

सि०—डुकृञ् । कृ । कृ लट् । कृ लृ । कृ तस् । कृ उ^१ तस् । क उ^२ तस् । कु^३ उ तस् । कुर^४ उ तस् । कुरुतस् । कुरुत । कृ उ मि । कुर्यन्ति^५ । चिञ् । चि तस् । चि श्नु^६ तस् । चि नु तस् । चिनुतस् । चिनुत^७ । चि नु अन्ति । चिन्वन्ति ।

असयोगाल्लिट् कित् १।२।५

प० रि०—असयोगात् ५।१ लिट् १।१ कित् १।१। स०—न संयोग इति असयोग तस्मान् असयोगान् (नञ् तत्पु०)

अर्थ—[अपित्] असयोगान्ताद्वातो पश्चादपिल्लिट् द्विद्वद्भवति ॥ (असयोगान्त धातु क पश्चात् पित् भिन्न लिट् कित् क समान होता है)

उदा०—निमिदतु, निमिदु ।

सि०—मिडिर् । मिद् । मिद् लिट् । मिद् लृ । मिद् तिप्तसू० । मिद् अतुस्^१ । मिद् मिद् अतुस्^२ । मि^३० मिद् अतुस् । मि^४० मिद् अतुस् । निमिदतु । मिद् उस् । निमिदु ॥

१—तनादिङ्गुम्य उ (३ १ ७६) २—सावधानुकारधधातुकयो (७. ३. ८४) ३—अत उत सावधानुक (६ ४. ११०) ४—उरण् रपर (१ १. ५०) ५—इवा यणचि (६. १. ७३) ६—स्वादिभ्य श्नु (३ १ ७३) ७—सार्वधातुकारधधातुकयो (७ ३. ८४) सावधानुकमपित् (१ २. ४) विडति च (१. १. ५) ८—पुनन्ततपुषस्य च (७ ३. ८६) अमयोगाल्लिट् कित् (१. २. ५) विडति च (१. १. ५) ९—लिटि धातोरनभ्यामस्य (६. १ ८) १०—पूर्वोऽभ्याम् (६. १. ४) अत्र लापोऽभ्यामस्य (७. ४. ५८) ह्लादि घोष. (७. ४. ६०) ११—अभ्यामे चचं (८ ४. ५४)

अर्थ—[अच्] उच्चैस्सुरेण उच्चार्यमाणो अच् उदात्तसङ्गो भवति । (ऊँचे स्वर से उच्चारण किये जाने वाले अच् की उदात्त सङ्गा होती है)

नीचैरनुदात्त १।२।३०

प० वि०—नीचैः अ० । अनुदात्त १।१

अर्थ—[अच्] नीचैस्सुरेण उच्चार्यमाणोऽच् अनुदात्तसङ्गो भवति । (नीचे स्वर से उच्चारण किये जाने वाले अच् की अनुदात्त सङ्गा होती है)

समाहार स्वरित १।२।३१

प० वि०—समाहार १।१ स्वरित १।१

अर्थ—[उदात्त अनुदात्त अच्] उदात्तानुदात्तयोस्समाहारो योऽञ् स्वरितसङ्गो भवति (बराबर ऊँचे और नीचे स्वर से उच्चारण किये जाने वाले अच् की स्वरितसङ्गा होती है)

[एकश्रुति] दूरात्सम्बुद्धौ १।२।३३

स्वरितात्सहितायामनुदात्तानाम् १।१।३२

प० वि०—स्वरितात् १।१ सहितायाम् ७।१ अनुदात्तानाम् ६।३

अर्थ—[एकश्रुति] सहितायां विषये स्वरितात्परेषामनुदात्तानामेकश्रुतिर्भवति । (सहिता के विषय में स्वरित के पश्चात् अनुदात्तों की एकश्रुति होती है)

उदाहरणं साधनं च उदात्तानुदात्तस्य स्वरितः (पृ ४. ६५) इति सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतर १।२।४०

प० वि०—उदात्तस्वरितपरस्य ६।१ सन्नतरः १।१ ॥ स०—उदात्तः परो यस्मात्स उदात्तपरः (बहु०) स्वरितः परो यस्मात्स स्वरितपरः (बहु०)

उदात्तपरश्च स्वरितपरश्चेति उदात्तस्वरितपरः (उत्तरपदलोपी समासः) तस्य ।

अर्थ—[अनुदात्तानाम्—सामर्थ्यादेकवचनेन विपरिणम्यते] उदात्तपरस्य स्वरितपरस्य चानुदात्तस्य सन्नतरः आदेशो भवति । अनुदात्ततर इत्यर्थः । (उदात्त और अनुदात्त परे है जिससे ऐसे अनुदात्त को अनुदात्ततर आदेश होजा है)

न क्त्वा सेट १।१।१८

प० वि०—न अ० । क्त्वा ११ या (अव्ययपदम्) । सेट ११ ॥

स०—इटा सह इति सेट् (तृतीया तत्प०)

अर्थ—सेट् क्त्वाप्रत्यय किन् भवति । (इट के साथ क्त्वाप्रत्यय कित् नहीं होता है)

सदा०—देवित्वा, वर्त्तित्वा ॥

सि०—दिष् । दिव् क्त्वा^१ । दिष् त्वा । दिव् इट् त्वा । दिव्
इत्या । देवित्वा^२ । देवित्वा सु । देवित्वा स । देवित्वा ॥ घृत्तु । घृत्
त्वा । घृत्तित्वा ॥

ऊकालोऽह्रस्वदीर्घप्लुत १।२।२७

प० वि०—उकाल ११ अच ११ ह्रस्वदीर्घप्लुत ११ ॥ स०—उ ऊ
उश्चाल इति उकाल । ऊ इयेतेपा काल इय कालो यस्य अचः स
उकाल (अह०) ॥ ह्रस्वश्च दीर्घश्च प्लुतश्च इति ह्रस्वदीर्घप्लुत ॥

अर्थ—ऊकालोऽज् यथासंख्य ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञको भवति (ऊकाल के समान काल है जिसके ऐसे भव की क्रमशः ह्रस्व दीर्घ और प्लुत संज्ञा होती है)

उदा०—उकालो हस्य—दधि, मधु ॥ उकालो दीर्घ—कुमारी,
गौरी ॥ उदकाल प्लुत—देवदत्त ३ अन्नसि ॥

ॐ स्वस्ति ॥ हरणानि ॥

अचश्च १।२।२८

प० वि—अच ६।१ च अ० ।

अर्थ—[ह्रस्वदीर्घप्लुत] ह्रस्वदीर्घप्लुता अच एर स्थाने भवन्ति ॥
(ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत अच ही वे स्थान में होते हैं)

उदा०—अतिरि, अतिनु, चपगु ।

सि०—हस्तो नपु सके प्रातिपदिकस्य । रै, अतिरि ॥ नौ, अतिनु ।
गो, अतिगु ॥ साधन तु कुगतिप्रादय (२. २. १८) इति सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

उच्चैरुदात्त १।२।२६

प० वि०—उच्चैः अ० । दत्तात् १११

१—समानवर्तुणयो पूर्वकाले (३. ४ २१) २—पुनस्तत्प्रपद्यस्य च
(७ ३. ८६)

उदा०—कष्टश्रितः, गट्कुलात्वरडः, यूदाकः, वृकभयम्, राजपुम्पः, अन्नशौण्डः ।

सि०—कष्ट^१ श्रितः इति कष्टश्रितः । गट् अम् श्रितः सु । कष्ट^२ अम् श्रितः सु । उपसर्जनसंज्ञायां कष्टगट्स्य पूर्वप्रयोगः । कष्टश्रितः । कष्टश्रित^३ सु । कष्टश्रितः स् । कष्टश्रितः । गट्कुलात्वरडः इति गट्कुलात्वरडः । गट्कुलात्वरडः सु । गट्कुलात्वरडः । यूदाकः इति यूदाकः । यूद हे शकः सु । यूदाकः । वृकभयम्^४ भयम् इति वृकभयम् । वृक भयम् भयः सु । राजः^५ पुम्प इति राजपुम्पः । राजन् इम् पुम्पः सु । राजन् पुम्पः । राजन्पुम्पः । राजपुम्पः । अन्नेपु^६ शौण्डः इति अन्नशौण्डः । अन्नः सुप् शौण्डः सु ।

एकविंशति चापूर्वनिपाते १।२।४४

प० वि०—एकविंशति १।१ च अ० । अपूर्वनिपाते ७।१॥ सः—एका विभक्तिर्यस्य तद्विभक्तिविभक्तिपदम् । पूर्वस्यासीति निपातः । पूर्वनिपातः (स्मृ० तपु०) न पूर्वनिपातोऽपूर्वनिपातः तस्मिन् (नञ् तपु०)

अर्थ—[उपसर्जनम्] (नियतवाची एकगटः) नियतविभक्तिपदम् उपसर्जनमत्र भवति पूर्वनिपातोपसर्जनकार्यं वर्जयित्वा ॥ (नियत विभक्तिवाले पद की उपसर्जनसंज्ञा हाती है पूर्व निपात होने वाले उपसर्जन कार्य को छोड़कर)

उदा०—निष्कौशान्ति, निनांशान्तिः ।

सि०—निष्कान्तः कौशान्त्याः इति निष्कौशान्तिः ॥ निष्कान्तं निष्कान्तेन निष्कान्ताय निष्कान्तान् निष्कान्तस्य निष्कान्ते वा कौशान्त्याः इति निष्कौशान्तिः ॥ पूर्वपदे नानाविभक्तिरेऽप्युत्तरपदं पञ्च-

- १—समर्थ पदविधिः (२. १. १) प्राक्कादापद् समास (२. १. १.) सह युगा (२. १. ४) तन्पुण्य. (२. १. २०) द्वितीया धित्वातीतपतिगतात्यस्त-प्राप्तापत्तं (२. १. २४) २—प्रथमानिदिष्ट समास उपसर्जनम् (१. २. ४३) उपसर्जनं पूर्वम् (२. २. ३०) वृत्तद्वितयमासादच (१. २. ४६) मुक्तो (२. ४. ७१) ३—वृत्तद्वितयमासादच (१. २. ४६) ह्याप्रातिपदिकात् (४. १. १) स्वोन्नम् (४. १. २) ४—वृत्तीया वत्त्रायणे गुणवचनेन (२. १. ३०) ५—चतुर्थी तदार्थायंललितमुषरक्षितः (२. १. ३६) ६—पञ्चमी मयेन (२. १. ३७) ७—षष्ठी (२. २. ८) ८—सप्तमी शोभ्ये (२. १. ४०)

उदाहरण साधन च उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित (८ ४ ६५) इति सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

अपृक्त एकाल्प्रत्यय १।२।४१

प० वि०—अपृक्त १।१ एकाल्प्रत्यय १।१॥ स०—एकश्चासौ अल च इति एकाल् । (कर्म० तत्पु०) एकाल् चासौ प्रत्ययश्च इति एकाल्प्रत्यय (कर्म० तत्पु०)

अर्थ—(असहायवाची एकशब्द) एकाल्प्रत्यय अपृक्तसज्ञको भवति । (असहाय अल वाले प्रत्यय की अपृक्त सज्ञा होती है ।

उदा०—याक्, लता, कुमारी, घृतस्पृक् ।

सि०—वाच् सु । वाच् म् । वाच् । वाक् । वाग् । वाक् । घृतस्पृश् क्विन् । घृतस्पृश् व् । घृतस्पृश् । घृतस्पृक् ।

तत्पुरुष समानाधिकरण कर्मधारय १।२।४२

प० वि०—तत्पुरुष १।१ समानाधिकरण १।१ कर्मधारय १।१॥ स०—समानाधिकरण ययोरिति समानाधिकरण (बहु०)

अर्थ—समानाधिकरण तत्पुरुष कर्मधारयसज्ञो भवति (समानाधिकरण वाले तत्पुरुष की कर्मधारय सज्ञा होती है)

उदा—परमराज्यम्, उत्तमराज्यम्, नीलात्पलम् । साधन विशेषण विशेष्येण बहुलम् (२ १ ५६) इति सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

प्रथमानिर्दिष्ट समास उपसर्जनम् १।२।४३

प० वि०—प्रथमानिर्दिष्टम् १।१ समासे ७।१ उपसर्जनम् १।१ ॥ स०—प्रथमया निर्दिष्टमिति प्रथमानिर्दिष्टम् (तृतीया तत्पुरुष) ।

अर्थ—समासविधायकसूत्रेषु प्रथमया निर्दिष्ट पदम् उपसर्जनसज्ञो भवति । (समास विधान करने वाले सूत्रों में प्रथमा विभक्ति से निर्दिष्ट पदों की उपसर्जन सज्ञा होती है)

१—अपृक्त एकाल्प्रत्यय (१ २ ४१) ह्रस्वाभ्यां दीर्घात् सुतिस्मपृक्त हल् (६ १ ६८) २—मुक्तिश्च पदम् (१ ४. १४) पा० कु (८ २ ३०) ३—भना जगोऽन्त (८ २ ३९) ४—विरामोऽवसानम् (१ ४ ११०) वाज्य-सान (८ ४ ५६) ५—सुगोऽनुदने क्विन् (३ २ ५८) ६—वेरपृक्तस्य (६ १ ६७) ७—क्विन्प्रत्ययस्य कु (८ २ ६२)

अर्थ—[प्रातिपदिकम्] उपसर्जनगोशब्दान्तस्य उपसर्जनस्त्रीप्रत्ययान्तस्य च प्रातिपदिकम् द्वयो भवति ॥ (उपसर्जन शब्दत्वं तन् तथा उपसर्जन स्त्रीप्रत्ययान्त प्रातिपदिक वा ह्रस्व हाता है)

उदा०—गोशब्दान्तस्य उपसर्जनस्य—चित्रा, अत्रलग्नु । स्त्री-प्रत्ययान्तस्य उपसर्जनस्य—निर्मलाशाम्बि ॥

सत्पाणामेकशेष एकविभक्तौ १।२।६४

प० वि०—सत्पाणाम् ६।३ एकशेष १।१ एकविभक्तौ ७।१ स०—समानं रूपं यो येषां वा इति सत्पा (गुह्य) तेषाम् सत्पाणाम् । एषस्य शेष इति एकशेष । एका चासौ विभक्तिश्च इति एकविभक्ति तस्यामेकविभक्तौ ।

उदा०—वृक्षौ, वृक्षा, फले, फलानि, लते, लता ।

मि०—वृक्षश्च वृक्षश्च इति वृक्षौ । वृक्षश्च वृक्षश्च वृक्षश्च इति वृक्षा । वृक्ष श्री । वृक्षौ । वृक्ष जम् । वृक्ष अम् । वृक्षाम् । वृक्षा । फलञ्च फलञ्च इति फले । फल श्री । फलं । फले । फलञ्च फलञ्च इति फलानि ॥ फल जम् । फलं । फलं तुम् । फलं । फलानि । लता च लता च इति लतं । लता श्री । लता शी । लतां । लते ॥ लता च लता च लता चेति लता । लता जम् । लता । ॥

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया प्रथमाध्याये द्वितीय पाद

भूवादयो धातव १।३।१

प० वि०—भूवाद्य १।३ धातव १।३ स०—भूञ्च वाश्च इति भूवौ (इतरेऽद्वन्द्व) भूवौ आदौ येषान्ते भूवाद्य । एष आदिशब्द प्रसारवाची अर्थ—भू इत्याग्नीना वा इत्येव प्रसारणा धातुसन्ना भवति । (भू जितवे आदि मे, तथा वा वे समान क्रियावाची शब्दों की धातु मत्ता होती है)

उदा०—भवति, पचति, याति ।

१—वृद्धिरिति (६ १ ८८) २—प्रथमया पूर्वस्रवण (६ १ १०२)

३—नपु सकान्व (७ १ १६) ४—घादृष्टुण (६ १. ८३) ५—जदभसो

णि (७ १. २०) ६—नपु सकस्य मज्जच (७ १ ७२) ७—शि सवनाम-

स्थानम् (१. १ ४१) सवनामस्थान० (६ ४ ८) ८—घौघ घ्राप (७ १ १८)

म्यन्तमेव भवति ॥ निर् सु कौशाम्बी डसि ॥ निर कौशाम्बी^१ । निप्^२
कौशाम्बी । निप्कौशाम्बि^३ । निप्कौशाम्बिः ।

अर्थवदधातुरप्रत्यय. प्रातिपदिकम् १।२।४५

प० वि०—अर्थवत् १।१ अधातुः १।१ अप्रत्ययः १।१ प्रातिपदिकम्
१।१ ॥ स०—न धातुः इति अधातुः । न प्रत्ययः इति अप्रत्ययः ॥

अर्थ—धातुप्रत्ययौ वर्जयित्वा अर्थवच्छब्दरूप प्रातिपदिकसंज्ञं
भवति ॥ (धातु धीर प्रत्यय को छोड़कर अर्थ वाले शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा
होती है)

उदा०—डित्थः, षपित्थः, कुण्डम्, पीठम् ।

सि०—डित्थ । डित्थ सु । डित्थ स । डित्थः ॥ कुण्ड सु । कुण्ड
अम् । कुण्डम् ॥

कृत्तद्धितसमासाश्च १।२।४६

प० वि०—कृत्तद्धितसमासाः १।३ च अ० । स०—कृच्च तद्धि-
तश्च समासश्चेति कृत्तद्धितसमासाः ।

अर्थ—[प्रातिपदिकम्] कृदन्तस्य तद्धितान्तस्य समासस्य च प्रातिप-
दिकसंज्ञा भवति । (कृदन्त तद्धितान्त धीर समास की प्रातिपदिक संज्ञा होती है)

उदा०—कृन्—कारकः, हारकः, कर्त्ता, हर्त्ता । तद्धितः—शालीयः,
मालीयः, ऐतिकायनः, औपगवः । समासः—कष्टश्रितः, शङ्कुलाखण्डः,
यूपदारुः, धृकभयम्, राजपुरुषः, अक्षशोण्डः ।

ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य १।२।४७

प० वि०—ह्रस्वः १।१ नपुंसके ७।१ प्रातिपदिकस्य ६।१

अर्थ—नपुंसकलिङ्गे वर्तमान यत् प्रातिपदिक तस्य ह्रस्वो भवति ।
(नपुंसक लिङ्ग में वर्तमान प्रातिपदिक का ह्रस्व होता है)

उदा०—अतिरि । कुगतिप्रादय (२.२. १८) इत्यत्र साधनं द्रष्टव्यम् ।

गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य १।२।४८

प० वि०—गोस्त्रियोः ६।२ उपसर्जनस्य ६।१ स०—गौरश्च स्त्रीश्च
इति गोस्त्रियौ (इतरे० द्वन्द्वः) तयोः गोस्त्रियोः ।

१—निरादयः त्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या (२. २. १८ वा०) प्रथमानिदिष्टं
समाग० (१. २. ४३) उपसर्जनं पूर्वम् (२. २. ३०) २—इदुपपत्य चाप्रत्यय-
स्य (८. ३. ४१) ३—गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य (१. २. ४८)

न विभक्ती तुस्मा १।३।४

प० वि०—न अ० । विभक्ती ७१ तुस्मा १।३।४ ॥ स०—तुश्च सश्च मश्च इति तुस्मा ॥

अर्थ—[इत्] विभक्ती तवर्गसकारमकारा इत्सङ्गका न भवन्ति (विभक्ति में तवर्ग सवार और मकार की इत्सङ्ग नही होती है)

उदा०—रामात्, रामा, रामम् ॥

सि०—राम डसि । राम आत् । रामात् । राम जस् । रामा । राम अम् । रामम् ॥

आदिजिटुडव १।३।५

प० वि०—आदि १।१ मिटुडव १।३ स०—मिश्च दुश्च डुश्च इति बिटुडव (इतरे० द्वन्द्व)

अर्थ—[उपदेशे, इत्] उपदेशे आदि बिटुडव इत्सङ्गका भवन्ति । (उपदेश न प्रारम्भिक जि टु डु की इत्सङ्ग हाती है)

उदा०—भिन्न, धृष्ट, घेपथु, श्वयथु, पक्त्रिमम्, उत्त्रिमम् ॥

सि०—विमिन् । विमिद् । मिद् क्त । मिद् त । मिन् न । मिन्त ॥ विधृपा । विधृप् । धृप् । धृप् क्त । धृप् त । धृप् ट । धृष्ट ॥ डुवेष्ट । डुनेष्ट । वेप् अथुच् । वेप् अथु । वेपथु ॥ डुओशिन । ओशिन । गिन् । शिव अथुच् । श्वे अथु । श्वय् अथु । श्वयथु ॥ डुपचप् । डुपच् । पच् । पच् क्त्रि । पच् त्रि । पक् । त्रि । पक् त्रि मप् । पक्त्रिम सु । पक्त्रिम अम् । पक्त्रिमम् । डुवप् । डुवप । वप् क्त्रि । वप् अप् त्रि । उप । त्रि । उप त्रि मप् । उपत्रिम सु । उपत्रिम अम् । उपत्रिमम् ॥

प प्रत्ययस्य १।३।६

प० वि०—प १।१ प्रत्ययस्य ६।१

अर्थ—[आदि] प्रत्ययस्य आदि पकार इत्सङ्गको भवति । (प्रत्यय

१—आदिजिटुडव (१ ३ ५) २—गीत क्त (३ २ १८७) ३—रदाम्या निष्ठातो न पूवस्य च द (८ २ ४२) ४—पुना प्तु (८ ४ ४१) ५—द्वितीयापुच (३ ३ ८६) ६—द्विजि वित्र (३ ३ ८८) ७—चो कु (८ २ ३०) ८—वचमप नित्यम (४ ४ २०) ९—वचिस्त्वपियजादीना किति (६ १ १५) इत्यण सम्प्रसारणम् (१ १ ४४) १०—सम्प्रसारणाच्च (६ १ १०८)

सि०—भू लट्^१ । भू लृ^२ । भू तिप्^३ । भू शप्^४ तिप् । भू अ^५ ति । भो^६ अ ति । भव्^७ अ ति । भवति । डुपचप् । डुपच । डुपच् । पच् । पच लट् । पच् अ ति । पचति । वा ति । वा ति । वाति ।

इत्सज्ञाप्रकरणम्—

उपदेशोऽनुनासिक इत् १।३।२

प० वि०—उपदेशो ७।१ अच् १।१ अनुनासिक १।१ इत् १।१

अर्थ—उपदेशावस्थायामनुनासिको योऽज् तस्य इत्सज्ञा भवति (उपदेश अवस्था में अनुनासिक अच् की इत्सज्ञा होती है)

उदा०—एधते, पचति ।

सि०—एध । एध्^१ । एध शप् त । एध् अ ते^२ । एधते । डुपचप् । पचप् । पच । पच् । पच् शप् तिप् । पच् अ ति । पचति ॥

हलन्त्यम् १।३।३

प० वि०—हल् १।१ अन्त्यम् १।१

अर्थ—[उपदेशो इत्] उपदेशो अन्त्य हल् इत्संज्ञको भवति । (उपदेश में अन्तिम हल् की इत्सज्ञा होती है)

उदा०—अड्डण । ऋलृक् ।

१—भूवादयो घातव (१. ३. १) घातो (३. १. ६१) वर्तमाने लट् (३. २. १२३) प्रत्यय (३. १. १) परश्च (३. १. २) २—हलन्त्यम् (१. ३. ३) उपदेशोऽनुनासिक इत् (१. ३. २) तस्य लोपः (१. ३. ६) अदर्शन लोप (१. १. ५६) ३—तस्य (३. ४. ७७) तिप्तस्झि० (३. ४. ७८) ४—तिङ्-शित्सार्धधातुकम् (३. ४. ११३) सार्धधातुके यक् (३. १. ६७) कर्त्तरि शप् (३. १. ६८) ५—हलन्त्यम् (१. ३. ३) सशक्वतद्धिते (१. ३. ८) तस्य लोप (१. ३. ६) अदर्शन लोप (१. १. ५६) ६—तिङ्शित्सार्धधातुकम् (३. ४. ११३) यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् (१. ४. १३) अङ्गस्य (६. ४. १) मिदे [गुण] (७. ३. ८२) सार्धधातुवार्धधातुकयो (७. ३. ८४) इको गुण-वृद्धी (१. १. ३) स्थानेऽस्तत्तमः (१. १. ४९) ७—परः सन्निर्गन्धः सहिता (१. ४. १०६) सहितायाम् (६. १. ७२) एषोऽप्रवायाव (६. १. ७८) ८—उपदेशोऽनुनासिक इत् (१. ३. २) तस्य लोपः (१. ३. ६) अदर्शन लोप (१. १. ५६) ९—द्वित आत्मनेपदानां टेरे (३. ४. ७६)

न विभक्तौ तुस्मा १।३।४

प० वि०—न अ० । विभक्तौ ङा१ तुस्मा १।३१ ॥ स—तुश्च
सश्च मश्च इति तुस्मा ॥

अर्थ—[इत्] विभक्तौ त्वर्गसकारमकारा इत्सज्ञा न भवन्ति
(विभक्ति में त्वग सकार और मकार की इत्सना नहीं होती है)

उदा०—रामात्, रामा, रामम् ॥

सि०—राम ङसि । राम आत् । रामात् । राम जस् । रामा । राम
अम् । रामम् ॥

आदिभिदुडव १।३।५

प० वि०—आदि १।१ भिदुडव १।३ स०—भिरश्च दुश्च डुश्च
इति भिदुडव (इतरे० द्वन्द्व)

अर्थ—[उपदेशे, इत्] उपदेशे आदि भिदुडव इत्सज्ञा भवन्ति ।
(उपदान म प्रारम्भिक जि दु डु की इत्सना होती है)

उदा०—भिन, धृप्, वेपथु, श्वयथु, पक्त्रिमम्, उप्त्रिमम् ॥

सि०—विमिन् । विमिद्* । मिद् क्त* । मिद् त । मिन् न* ।
मिन्न ॥ विवृषा । विवृप् । धृप् । धृप् क्त । धृप् त । धृप् ट* ।
धृप् ॥ दुनेष्ट । दुनेप् । वेप् अथुच्* । वेप् अथु । वेपथु ॥ दुओरिन् ।
ओरिन् । रिन् । शिप् अथुच् । शे अथु । श्वय् अथु । श्वयथु ॥ डुपचप् ।
डुपच् । पच् । पच् क्त्रि* । पच् त्रि । पक्* त्रि । पक्* त्रि मप् । पक्त्रिम
सु । पक्त्रिम अम् । पक्त्रिमम् । डुवप् । डुवप । वप् क्त्रि । उ* अप्
त्रि । उप* त्रि । उप त्रि मप् । उप्त्रिम सु । उप्त्रिम अम् । उप्त्रिमम् ॥

प प्रत्ययस्य १।३।६

प० वि —प १।१ प्रत्ययस्य ६।१

अर्थ—[आदि] प्रत्ययस्य आदि पकार इत्सज्ञाको भवति । (प्रत्यय

१—आदिभिदुडव (१ ३ ५) २—जीत क्त (३ २ १८७) ३—
रदाम्या निष्ठाता न पूर्वस्य च द (८ २ ४२) ४—पुना प्तु (८ ४ ४१)
५—टिपताऽथुच (३ ३ ८६) ६—डिवत् वित्र (३ ३ ८८) ७—ओ कु
(८ २ ३०) ८—क्त्रमप नियम (४ ४ २०) ९—वचिस्वपियजादीना
किति (६ १ १५) इत्यण मन्प्रसारणम् (१ १ ४४) १०—सम्प्रसारणाच्च
(६ १ १०८)

ने आदि पकार की इत्सज्ञा होती है)

उदा०—नर्त्तकी, रजकी ।

सि०—नृती । नृत् । नृत् प्वुन्^१ । नृत् पुन्^२ । नृत् यु । नृत्
अक^३ । नर्त्^४ अक । नर्त्तक डीप्^५ । नर्त्तक ई । नर्त्तक^६ ई । नर्त्तकी सु ।
नर्त्तकी ॥ रज्ज । रज्ज् । रज् प्वुन्^१ । रज् यु । रज् अक । रजक ।
रजक डीप् । रजक ई । रजक् ई । रजकी । रजकी सु । रजकी स् ।
रजकी ॥

चुटू १।३।७

प० वि०—चुटू १।२ स०—चुश्च टुश्चेति चुटू (इतरे० द्वन्द्वः) ।

अर्थ—[प्रत्ययस्य आदिः] प्रत्ययस्य आदी चवर्ग-टवर्गो^१ इत्संज्ञकौ
भवतः (प्रत्यय के आदि चवर्ग और टवर्ग की इत्सज्ञा होती है)

उदा०—ब्राह्मणः, कुरुचरी ।

सि०—ब्राह्मण जस् । ब्राह्मण अस् । ब्राह्मणास् । ब्राह्मणाः । कुरुचर
ट^२ । कुरुचर् अ । कुरुचर । कुरुचर डीप्^३ । कुरुचर ई । कुरुचर^४ ई ।
कुरुचरी सु । कुरुचरी स् । कुरुचरी^५ ॥

लशक्वतद्धिते १।३।८

प० वि०—लशक् १।१ अतद्धिते ७।१ स०—लश्च शश्च कुरुचेति
लशक् (समाहार, द्वन्द्वः) न तद्धितः इति अतद्धितः तस्मिन् अतद्धिते ।
(नञ् तत्पु०)

अर्थ—[आदिः प्रत्ययस्य] तद्धितवर्जितस्य प्रत्ययस्य आदयः लकार-
शस्तर-कयर्गोः इत्संज्ञाः भवन्ति ॥ (प्रत्यय के आदि ल् श् और कयर्ग की
इत्सज्ञा होती है तद्धित को छोड़कर)

उदा०—चयनम्, भवति, पचति, भिन्नः ॥

१—शिल्पिणि प्वुन् (३. १. १४५) २—यः प्रत्ययस्य (१. ३. ६) ३—
पुंवोरनावी (७. १. १) ४—पुगन्तत्तधूपघस्य च (७. ३. ८६) उरगन् रपरः
(१. १. ५०) ५—वृत्तद्धितममामादञ् (१. २. ४६) इत्याग्रानिपदिनात् (४.
१. १) मित्रमाम् (४. १. ३) पिद्वीरादिभ्यश्च (४. १. ४१) ६—यचि भम्
(१. ४. १८) भग्य (६. ४. १२६) यस्वेति च (६. ४. १४८) ७—रजवर-
जनरजःपूपमस्यान् वत्तंध्यम् (६. ४. २४ वा०) ८—चरेट् (३. २. १६)
९—टिड्ढा०—(४. १. १५) १०—यस्मिन् च (६. ४. १४८)

सि०—चिच् । चि ल्युट् । चि युट् । चि यु । चि अन । चे अन ।
च् अय् अन । चयन । चयन मु । चयन अम् । चयनम् ॥

तस्य लोप १।३।९

प० वि०—तस्य ६।१ लोप १।१

अर्थ—तस्य इत्सङ्घस्य लोपो भवति । (जिसकी इत्सङ्घा होती है उसका लोप होता है)

यथासरयमनुदेश समानाम् १।३।१०

प० रि०—यथासरयम् १।१ अनुदेश १।१ समानाम् ६।३ स०—
सरयाम् अनतिक्तात् इति यथासरयम् (अव्ययीभाव समास)

अर्थ—(पश्चात्कथनयाची अनुशेषशब्द) समाना पश्चात्कथन यथा
क्रम भवति ।

उत्प०—नाडायन । सौपर्ण्य । आढ्यकुलीन । शालीय । क्षत्रिय ।

सि०—नड । नड फक्^१ । नड फ । नड आयन^२ । नाड^३ आयन ।
नाड^४ आयन । नाडायन मु । नाडायन स् । नाडायन । सुपर्णा ढक्^५ ।
सुपर्णा ढ । सुपर्णा एय । सौपर्णा एय । सौपर्ण्य एय । सौपर्ण्य । सौप
र्ण्य मु । सौपर्ण्य स् । सौपर्ण्य ॥ शाला छ । शाला ईय । शालीय ।
शालीय ॥ क्षत्र घ । क्षत्र इय । क्षत्र् इय । क्षत्रिय । क्षत्रिय ॥

स्वरितेनाधिकार १।३।११

प० वि०—स्वरितेन ३।१ अधिकार १।१

अर्थ—स्वरितेन चिह्नेन अधिकारो येन्तिव्य । (स्वरित चिह्न से
अधिकार ममभूता चाहिये)

उत्प०—प्रयय । धातो । इयाप्रातिपत्तिनात् । अङ्गस्य । भस्य
पदस्य ।

आत्मनपदप्रकरणम्—

अनुदात्तङित आत्मनेपदम् १।३।१२

प० रि०—अनुदात्तङित ५।१ आत्मनेपदम् १।१ ॥ स०—अनुदात्तरच

१—नडादिभ्य फक् (४ १ ९९) २—आयन० (७ १ २) ३—किति
च (७ २ ११८) ४—यस्येति च (६ ४ १४८) ५—स्त्रिभ्यो ढक्
(४ १ १२०)

इश्चेति अनुदात्तडौ । इच्च इच्चेति इतो । अनुदात्तडौ इतो यस्य सः अनुदात्तडित् (बहु०) तस्मात् ।

अर्थ—अनुदात्तेतः डितश्च धातोरात्मनेपदं भवति । (अनुदात्त तथा इकार इत् वाले धातु से आत्मनेपद होता है)

उदा०—एवते, शेते ।

सि०—एध । एध् ॥ शीङ् । शी त । शी^१ त । शे ते । शेते ।

भावकर्मणो १।३।१३

प० वि०—भावकर्मणोः ७।२ स०—भावश्च कर्म च इति भावकर्मणी तयोः भावकर्मणोः

अर्थ—[आत्मनेपदम्] भावे कर्मणि च आत्मनेपदं भवति । (भाव और कर्म में आत्मनेपद होता है)

उदा०—भावे-ग्लायते भवता, सुप्यते भवता । कर्मणि-क्रियते फटः, द्वियते भारः । कर्मकर्त्तरि-लूयते केदारः स्वयमेव ।

सि०—ग्लायते । ग्लै । ग्ला^१ । ग्ला लट् । ग्ला लृ । ग्ला त । ग्ला यक्^२ त । ग्लायत । ग्लायते^३ । विप्यप् । प्यप् । स्वप्^४ । स्वप् त । स्वप् यक्^५ त । स्वप् य त । सू उ अ^६ प य त । सुप्^७ य त । सुप्यते ॥ कृ त । कृ य त । कृ य ते । क्रियते^८ । द्वियते । लृप् । लृ त । लृ यक्^९ त । लृ य त । लृयते ।

कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे १।३।१४

प० वि०—कर्त्तरि ७।१ कर्मव्यतिहारे ७।१ ॥ स०—कर्मणः व्यतिहारः कर्मव्यतिहारः (प० तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—(क्रियायाची कर्मशब्दः) (परस्परव्यवहारवाची विनिमय-वाची वा व्यतिहारशब्दः) क्रियायाः विनिमये कर्त्तरि धातोरात्मनेपदं भवति । (क्रिया वे आदान प्रदान में वर्तमान धातु से कर्त्ता में आत्मनेपद होता है)

१-गोट् भावंधातुके शुण (७.४.२१) २-आदच्च उपदत्तेऽशिति (६.१.४५)

३-ल कर्मणि च भावे चाकर्मवेभ्य (३.४.६६) भावकर्मणो (१.३.१३) भावंधातुके यर् (३.१.६७) ४-टित आत्मनेपदानां टेरे (३.४.७६)

५-पात्वादे ए म (६.१.६४) ६-वचिन्वयिष्यद्वादीनां विति (६.१.१५)

७-सम्प्रसारणाच्च (६.१.१०८) ८-रिङ्गयग्लिट्शु (७.४.२८)

उदा०—व्यतिभवते, व्यतिलुनते ।

सि०—व्यतिभू शप् त । व्यतिभवते । व्यति लृच् । व्यतिलू र्ना
म् । व्यतिलु^१ ना म् । व्यतिलु ना म् । व्यतिलुन^२ म् । व्यतिलुन
अत^३ । व्यतिलुनते^४ । व्यतिपुनते ॥

न गतिर्हिसार्येभ्यः १।३।१५

प० वि०—न अ० । गतिर्हिसार्येभ्यः १।३ स०—गतिर्यो येषां
धातूनाम् ते गत्ययोः (बहु०) हिंसा अर्यो येषां धातूनाम् ते हिंसार्योः ।
गत्यर्थारच हिंसार्यारच इति गतिर्हिसार्योः (पूर्वपदलोपी समासः) तेभ्यः
अर्थ—गत्यर्थेभ्यः हिंसार्येभ्यश्च धातुभ्यः कर्मव्यतिहारे आत्मने-
पदं न भवति । (गति शीघ्र हिंसा अर्थवाले धातुषो से कर्मव्यतिहार में
आत्मनेपद नहीं होता है)

उदा०—व्यतिगच्छति, व्यतिर्हिसन्ति ।

सि०—व्यतिगच्छ् । व्यतिगम् । व्यतिगम् तिप् । व्यतिगम् शप्
तिप् । व्यतिगम् अ ति । व्यतिगच्छ^१ अ ति । व्यतिग तुक्^२ छ् अ
ति । व्यतिगच्छ^३ अ ति । व्यतिगच्छति । व्यतिर्हिसि । व्यतिर्हिस् ।
व्यतिर्हि नुम्^४ स् । व्यतिर्हिन्स् । व्यतिर्हिन्स् शप् ति । व्यतिर्हिसति^५ ।

नेविश १।३।१७

प० वि०—नेः १।१ विशः १।१ ॥

अर्थ—[आत्मनेपदम्] निपूर्वाद् विशः आत्मनेपदं भवति ॥ (निहू-
वंक विष् धतु से आत्मनेपद होता है)

उदा०—निविशते ।

परिव्यवेभ्यः क्रियः १।३।१८

प० वि०—परिव्यवेभ्यः १।३ क्रियः १।१ म०—परि च वि च अय
च इति परिव्ययाः (इतरे० द्वन्द्वः) तेभ्यः ।

१—प्रादीना ह्रस्वः (७. ३. ८०) २—स्नाम्यस्तयोरात् (६. ४. ११२)

३—आत्मनेपदेष्वनतः (७. १. ५) ४—द्वित आत्मनेपदानां टेरे (३. ४. ७६)

५—इपुणमिषमा छः (७. ३. ७७) ६—छे च (६. १. ७३) ७—स्तो

दधुना दधुः (८. ४. ४०) ८—इदितो नुम् धातोः (७. १. ५८) ९—मोजु-

स्वारः (८. ३. २३) नश्चापदान्तस्य भञि (८. ३. २४)

अर्थ—परि-वि-अवपूर्वेभ्यः क्रीधातोरात्मनेपदं भवति । (परि, वि और अव उपसर्गपूर्वक क्रीधातु से आत्मनेपद होता है)

उदा०—परिक्रीणीते, विक्रीणीते, अवक्रीणीते ।

सि०—परिक्री लट् । परिक्री लृ । परिक्री त । परिक्री श्ना त । परिक्री ना त । परिक्रीनीत^१ । परिक्रीणीत^२ । परिक्रीणीते ।

विपराभ्या जेः १।३।१६

प० वि०—विपराभ्याम् ५।२ जेः ५।१ स०—वि च परा च इति विपरो (इतरे० द्वन्द्वः) ताभ्याम् ।

अर्थ—विपरापूर्वाभ्यां जिधातोरात्मनेपदं भवति ॥ (वि तथा परा उपसर्गपूर्वक जि धातु से आत्मनेपद होता है)

उदा०—विजयते, पराजयते ।

सि०—विजि । विजि त । विजि शप् त । विजि अ त । विजि अ ते । विजे अ ते । विज् अय् अ ते । विजयते । पराजयते ॥

क्रीडोऽनुसपरिभ्यश्च १।३।२१

प० वि०—क्रीडः ५।१ अनुसपरिभ्यः ५।३ च अ० । स०—अनु च सञ्च परि च इति अनुसंपरयः (इतरे० द्वन्द्वः) तेभ्यः ।

अर्थ—[आङ्] अनुसंपरिपूर्वात् आङ्पूर्वाच्च क्रीडधातोरात्मनेपदं भवति । (अनु, स, परि तथा आङ् उपसर्गपूर्वक क्रीड धातु से आत्मनेपद होता है)

उदा०—अनुक्रीडते, संक्रीडते, परि क्रीडते, आक्रीडते ।

सि०—अनुक्रीड् । अनुक्रीड । अनुक्रीड त । अनुक्रीड् ते । अनुक्रीड् शप् ते । अनुक्रीडते ॥

समवप्रविभ्य स्थः १।३।२२

प० वि०—समवप्रविभ्यः ५।३ स्थः ५।१ ॥

अर्थ—सम् अव प्र विपूर्वात् म्याधातोरात्मनेपदं भवति । (गम्, अव, प्र और विपूर्वक म्याधातु से आत्मनेपद होता है)

उदा०—मंतिष्ठते, अवतिष्ठते, प्रतिष्ठते, चितिष्ठते ।

सि०—समस्था । मंस्था लट् । मंस्था लृ । मंस्था त । मंस्था त ।

सस्था शप् त । सस्था अ त । संतिष्ठ^१ अ त । सतिष्ठत । सतिष्ठते^२ ॥

उद्विभ्या तप १।३।२७

प० वि०—उद्विभ्याम् १।३ तप १।१ ॥

अर्थ—[अकर्मकात्] उद्भिपूर्वान् अकर्मकतपधातोरात्मनेपद भवति । (उत् और वि उपसगपूर्वक अकर्मक तपधातु स आत्मनपद होता है)

उदा०—उत्तपते, चितपते, (क्षीयते इत्यर्थ)

आडो यमहन १।३।२८

प० वि०—आड १।१ यमहन १।१ स०—यमश्च हन् च इति यम हन् (समा० द्वन्द्व) तस्मान्

अर्थ—[अकर्मकात्] आङ्पूर्वान् अकर्मकयमहन्धातोरात्मनेपद भवति ॥ (आड उपसगपूर्वक अकर्मक यम और हन् धातु स आत्मनपद होता है)

उदा०—आयच्छते, आहते ॥

सि०—आयम् । आयम् त । आयम् शप् त । आयम् अ त । आयम् अ ते । आयच्छ^३ अ ते । आय तुक्^४ छ अ ते । आयच्छ अ ते । आयच्छ^५ अ ते । आयच्छते ॥ आहते । आहन् । आहन् त । आहन् शप् त । आहन् त । आहत्^६ । आहते ॥

समो गम्यृच्छिभ्याम् १।३।२९

प० वि०—सम १।१ गम्यृच्छिभ्याम् १।३ स०—गमिश्च ऋच्छिश्च इति गम्यृच्छी (उतरे० द्वन्द्व) ताभ्याम् ॥

अर्थ—[अकर्मकात्] ऋपूर्वाद् अकर्मकगमिच्छिच्छिधातुभ्यामात्मनेपद भवति । (मपूर्वक अकर्मक गम् और ऋच्छ धातु स आत्मनपद होता है)

उदा०—सगच्छते, समृच्छते ।

सि०—सगम् । सगम् त । सगम् लट् । सगम् त । सगम् शप् त । सगम् अ त । स ग छ अ त । स ग तुक् छ अ त । सग त् छ अ त । सगच्छत । सगच्छते । सगृच्छते ॥

१—पाश्चात्त्या० (७ ३ ७८) २—टित आत्मनपगना टरे (३ ४ ७६)

३—इषुगमिषमा छ (७ ३ ७७) ४—छ च (६ १ ७३) ५—स्तो इषुना

इषु (८ ४ ४०) ६—सावधानुक्रमित (१ २ ४) अनुगन्तोपदगवननितनो-

त्पादीनामनुनामिकसोभो भवि विव्रति (६ ४ ३७)

निसमुपविभ्यो ह्र- १।३।३०

प० वि०—निसमुपविभ्योः ५।३ ह्रः ५।१ ॥

अर्थ—नि-सम्-उप-विपूर्वात् ह्राघातोरात्मनेपदं भवति । (नि, सम्, उप घोर वि पूर्वक ह्रैच् घातु से आत्मनेपद होता है)

उदा०—निह्वयते, संह्वयते, उपह्वयते, विह्वयते ।

सि०—निह्वेन् । निह्वे त । निह्वे शप् त । निह्वे अ त । निह्वय अ त । निह्वयते ।

स्पृष्टायामाडः १।३।३१

प० वि०—स्पृष्टायाम् ७।१ आडः ५।१ ॥

अर्थ—[ह्रः] स्पृष्टायां विषये आड्पूर्वात् ह्राघातोरात्मनेपदं भवति । (सर्प के विषय में आड् उपमगंपूर्वक ह्रैच् घातु से आत्मनेपद होता है)

उदा०—मत्तो मलम् आह्वयते, छात्रश्छात्रमाह्वयते ।

आड उद्गमने १।३।४०

प० वि०—आडः ५।१ उद्गमने ७।१ ॥

अर्थ—[क्रमः] (उर्ध्वगमनवाची उद्गमनशब्दः) उर्ध्वगमने वर्तमानात् आड्पूर्वात् क्रमघातोरात्मनेपदं भवति । (ऊपर जाने अर्थ में वर्तमान आडपूर्वक क्रमघातु से आत्मनेपद होता है)

उदा०—आक्रमते आद्रित्य, आक्रमते चन्द्रमाः ।

वे पादविहरणे १।३।४१

प० वि०—वेः ५।१ पादविहरणे ७।१ स०—पादानां विहरणम् पादविहरणम् (प० तत्पु) तस्मिन् ॥

अर्थ—[क्रमः] (अश्वादीनां गतिविशेषे पादविहरणमुच्यते) पादविहरणे वर्तमानाद् विपूर्वान् क्रमघातोरात्मनेपदं भवति । (घोड़े आदि की गति विशेष में वर्तमान विपूर्वक क्रमघातु से आत्मनेपद होता है)

उदा०—मुष्टु विक्रमते, साधु विक्रमते ।

पूर्ववत्सन- १।३।६२

प० वि०—पूर्ववत् ५।१ सनः ५।१ ॥

अर्थ—रानि पूर्वो यो घातुः तद्वत् सनन्नादपि आत्मनेपदं भवति । (गन् के पूर्व जो घातु उसके समान् मन्प्रत्ययान्तघातु से भी आत्मनेपद होता है)

उदा०—आमिमिपते, शिशयिपते ।

मि०—आम । आम् सन्^१ । आम् इट्^२ सन् । आमि स । आ सि मि^३ स । आ सि मि प^४ लट् । आसिमिपे त । आमिसिपत । आसि सिपते ॥ शीङ् । शी मन् । शी स । शी शी म । शि शी म । शि शे स । शि शे इट् म । शि शय् ट स । शि शयि प । शि शयि प शप् त । शिशयिप अ ते । शिशयिपते ॥

आम्प्रत्ययवन्कृत्रोऽनुप्रयोगस्य १।३।६३

प० वि०—आम्प्रत्यययत् १।१ कृत्रः १।१ अनुप्रयोगस्य ६।१ स०—आम् प्रत्ययो यस्मान् सोऽयमाम्प्रत्ययः (बहु०) आम्प्रत्ययस्य इय इति आम्प्रत्यययन् ।

अर्थ—आम्प्रत्ययस्य अनुप्रयोगस्य कृत्रः धातोरात्मनेपद भवति । (जिमेन आम् प्रत्यय द्वया १, उभय समान पदान् प्रयोगं किये गये कृ धातु से आत्मनेपद होता है)

उदा०—ईचांचक्रे, ईहाञ्चक्रे ।

मि०—ईच् । ईच् लिट्^१ । ईच् लि । ईच् आम्^२ लि । ईच् आम्^३ । ईच् आम् कृ^४ लिट् । ईचाम् कृ कृ^५ लिट । क^६ कृ लि । च^७ कृ त । च कृ गृ^८ । च कृ प । चक्रे^९ । ईचाञ्चक्रे^{१०} । ईह् आम् । ईहाञ्चक्रे ॥

१—धातो. कर्मण समानान्तृकादिभ्या वा (३. १. ७) २—आर्षधानुक दोषः (३. ४. ११४) आर्षधानुकस्वेद् वलादे (७. २. ३५) आद्यन्तो ट्किन्तो (१. १. ४५) ३—एवाचो ई प्रथमस्य (६. १. १) अवादेद्वितीयस्य (६. १. २) स्य्यटोः (६. १. ६) ४—ट्णो (८. ३. ५७) आदेशप्रत्यययोः (८. ३. ५९) ५—परोक्षे लिट् (३. २. ११५) ६—इवादेशश्च शुद्धयतांजुष्ट (३. १. ३६) उपदेशेऽजनुनासिक इत् (१. ३. २) ७—आम. (२. ४. ८१) ८—कृत्रानुप्रयुज्यते लिटि (३. १. ८०) ९—लिटि धातोर्लभ्यामस्य (६. १. ८) १०—पूर्वाभ्यासः (६. १. ४) अत्रज्जोषोभ्यामस्य (७. ४. ५८) उरत् (७. ४. ६६) उरण् रपरः (१. १. ५०) हलादिः घोषः (७. ४. ६०) ११—बुहोद्वुः (७. ४. ६२) १२—लिट्प्रत्यययोरेनिरेच् (३. ४. ८१) अनेवाल्ङिन् सर्वस्य (१. १. ५४) १३—द्वो यणचि (६. १. ७७) १४—नदवापदानस्य मनि (८. ३. २४) अनुस्वारस्य ययि परसवर्णं (८. ४. ५८)

स्वरितञित कर्त्रभिप्राये क्रियाफले १।३।७२

प० वि०—स्वरितञित ५।१ कर्त्रभिप्राये ७।१ क्रियाफले ७।१ स०—
स्वरितश्च वञ्चेति स्वरितञौ । इच्च इच्चेति इतौ । स्वरितञो इतौ यस्येति
स्वरितञित् तस्मात् स्वरितञित । कर्तु अभिप्राय तस्मिन् । क्रियाया
फलं क्रियाफल तस्मिन् ।

अर्थ—[आत्मनेपदम्] क्रियाया फल यदि कर्तु रभिप्राये भवेत् तदा
स्वरितेत् ञितश्च धातोरात्मनेपद भवति । (क्रिया का फल यदि कर्ता के
अभिप्राय में हो तो स्वरित इत वाल तथा अकार इत वाल धातु स आत्मनेपद
होता है)

उदा०—यजते, पचते । ञित—सुनुते, कुरुते । कर्त्रभिप्राय इति किम्—
यजन्ति याजका, पचन्ति पाचका, कुर्वन्ति कर्मकरा, ऋथद्यपि दक्षिणा
भृतिश्च कर्तु फलमिहास्ति तथापि न याजकार्थं नापि कर्मकारार्थं
क्रियारम्भ ॐ

परस्मैपदप्रकरणम्—

शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदम् १।३।७३

प० वि०—शेषात् ५।१ कर्त्तरि ७।१ परस्मैपदम् १।१ ॥

अर्थ—उक्तादन्य शेष तस्मात् धातो कर्त्तरि परस्मैपद भवति ।
(पहल कहे हुए स क्षय धातु स कर्ता में परस्मैपद होता है)

उदा०—याति, गति, प्रविशति ।

सि०—या तिप् । या शप् तिप् । या तिप् । या ति । या ति
याति ॥ प्र विश् शप् ति । प्रविशति ॥

अनुपराभ्या कृञ् १।३।७६

प० वि०—अनुपराभ्याम् १।१ कृञ् ५।१ स०—अनु च परा च
इति अनुपरो (इतरे० द्वन्द्व) ताभ्याम्

अर्थ—[परस्मैपदम्] अनुपरापूर्वात् कृञ् धातो परस्मैपद भवति ।
(अनु धोर परा उपसगपूर्वक कृ धातु से परस्मैपद होता है)

उदा०—अनुकृञ् । अनुकृ । अनुकृ लट् । अनुकृ लृ । अनुकृ तिप् ।
अनुकृ ति । अनुकृ उ ति । अनुकृ च ति । अनुकृ उ ति । अनुकृ ओ
ति । अनुकरोति । पराकरोति ॥

१—कर्त्तरि शप् (३ १ ६८) २—अदिप्रभृतिभ्य णप् (२ ४ ७२)

अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः १।३।८०

प० वि०—अभिप्रत्यतिभ्यः १।३ क्षिपः १।३

अर्थ—अभि प्रति अतिपूर्वाद् क्षिपधातोः परस्मैपदं भवति ।

(अभि, प्रति और प्रति उपसर्गपूर्वक क्षिप् धातु से परस्मैपद होता है)

उदा०—अभिक्षिपति, प्रतिक्षिपति, अनिक्षिपति ।

प्राद्वह १।३।८१

प० वि०—प्राप् १।३ वह १।३

अर्थ—प्रपूर्वाद् वहधातोः परस्मैपदं भवति ।

प्र उपसर्ग पूर्वक वह धातु से परस्मैपद होता है)

उदा०—प्रवहति ।

परैर्मुप १।३।८२

प० वि०—परैः १।३ मृषः १।३

अर्थ—परिपूर्वाद् मृषधातोः परस्मैपदं भवति । (परि उपसर्ग पूर्वक

मृषधातु से परस्मैपद होता है)

उदा०—परिमृष्यति ।

व्याट्परिभ्यो रम १।३।८३

प० वि०—व्याट् परिभ्यः १।३ रमः १।३

अर्थ—विआट्परिपूर्वाद् रमधातोः परस्मैपदं भवति । (वि० व्याट्

और परि उपसर्गपूर्वक रमधातु से परस्मैपद होता है)

उदा०—विरमति । आरमति । परिरमति ।

उपाच्च १।३।८४

प० वि०—उपान् १।३ च अ० ।

अर्थ—[रमः] उपपूर्वाच्च रमधातोः परस्मैपदं भवति । (उप उपसर्ग

पूर्वक रम धातु से परस्मैपद होता है)

उदा०—उरमति ।

विभाषाऽकर्मकात् १।३।८५

प० वि०—विभाषा १।३ अकर्मकान् १।३

अर्थ—उपपूर्वाच्च अकर्मकात् रमधातोः विभाषा परस्मैपदं भवति ।

(उप उपसर्गपूर्वक अकर्मक रम धातु से विभाषा से परस्मैपद होता है) ।

उदा०—यावद् मुक्तमुपरमति । यावद् मुक्तम् उपरमते ।

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया प्रथमाध्याये तृतीयः पादः

आकङ्कारादेका संज्ञा १।४।१

प० वि०—आ अ० । कङ्कारात् ५।१ एका १।१ संज्ञा १।१

अर्थ—‘कङ्काराः कर्मधारये’ इति एतस्मात्पूर्वम् एका संज्ञा भवति इत्यधिकारो चेदित्यर्थः । (‘कङ्कारा कर्मधारये’ इस मूत्र से पहले पहले एक ही संज्ञा होती है, इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

उदा०—अततक्षत् । अररक्षत् ॥

सि०—तक्ष् शिच् । तक्ष् ३ लुङ् । तक्ष् ३ चङ् तिप् । तक्ष् अ ति । तक्ष् तक्ष् अ ति । त तक्ष् अ ति । ततक्षति । ततक्षत् । अततक्षत् ।

विप्रतिपेधे पर कार्यम् १।४।२

प० वि०—विप्रतिपेधे ७।१ परम् १।१ कार्यम् १।१

अर्थ—तुल्यबलविरोधे परं कार्यं भवति ।

(तुल्य बल के विरोध होने पर पश्चात् वाले मूत्र का काम होता है)

उदा०—पुरुपेभ्यः ।

सि०—पुरुपे भ्यस् । पुरुपे भ्यस् । पुरुपेभ्यः ॥

नद्यादिसंज्ञाप्रकरणम्

यू स्यात्प्यौ नदी १।४।३

प० वि०—यू (अविभक्तिको निर्देशः) स्यात्प्यौ १।२ नदी १।१

स०—स्त्रियमाचक्षते इति स्त्रियाप्यौ (उपपदसमासः) ई च ऊ चेति यू ॥

१—हेतुमति च (३. १. २३) २—सनाद्यन्ता घातवः (३. १. ३२) घातोः (३. १. ६१) मूते (३. २. ८४) सुङ् (३. २. ११०), प्रत्ययः (३. १. १.) परदच (३. १. २), ३—तस्य (३. ४. ७७) तिप्तस्झि० (३. ४. ७८) लिप्ति-द्रुथ्भ्यः कर्तरि षड् (३. १. ४८) ४—घापंघातुक दोषः (३. ४. ११४), घापंघातुके (६. ४. ४६) शौरिनिटि (६. ४. ११) ५—चटि (६. १. ११) ६—पुरस्सजवत्वादकारस्य सन्वत्सपुनि षड्परंजम्तोपे (७. ४. ६३) इत्येव विधिर्न भवति ७—इतदच (३. ४. १००) ८—पुद्गलद्रुथ्भ्यः कर्तरि षड् (६. ४. ७१) घापन्तो टवितो (१. १. ४५) ९—षड्वचने भस्येद् (७. ३. १०३)

अर्थ—ईकारान्तमूकारान्तञ्च स्यात्स्यं शब्दरूपं नदीमंत्रं भवति ।
(स्त्रीलिङ्ग को कहने वाले ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दों की नदी मन्त्र होती है)

उदा०—कुमारी, गौरी, शार्ङ्गरवी, लक्ष्मी, वज्रमन्द, यवामूः ॥

तेयद्वुवड्स्थानावस्त्री १।४।४

प० वि०—न अ० । इयद्वुवडो १।२ अस्त्री १।१ स०—इयद्वुवडो
स्थानमनयोरिति इयद्वुवड्स्थान (यद्वु०) तौ । न स्त्री इति अस्त्री
(नञ् तन्पु०)

अर्थ [यू]—इयद्वुवड्स्थानी यू नदीमन्त्रो न भवतः स्त्रीशब्दं
वर्जयित्वा । (इयद्, उवड्, है स्थान त्रिवका धर्मात् बहो पर ईकार और ऊकार
के स्थान पर इयद्, वा उवड्, धारण होता है, ऐसे ईकारान्त और
ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों की नदी मन्त्र नहीं होती है स्त्री शब्द को छोड़कर)

उदा०—हे श्रीः । हे भूः । सि०—धी० सु । श्रीः । भू० सु । भूः ।

वामि १।४।५

प० वि०—वा अ० । वामि ७।१

अर्थ—[यू स्यात्स्यो नदी, इयद्वुवड्स्थानावस्त्री] इयद्वुवड्स्थानी
स्यात्स्यो यू स्त्रीशब्दं वर्जयित्वा वामि परतः वा नदीमन्त्रो भवतः ।

(इयद् उवड् है स्थान त्रिवका ऐसे ईकारान्त और ऊकारान्त, स्त्रीलिङ्ग
को कहने वाले शब्दों की विस्तार में नदी मन्त्र होती है वाम् के पर रहने पर
स्त्री शब्द को छोड़कर)

उदा०—धियाम्, श्रीणाम् । भूयाम्, भूणाम् ।

सि०—श्री आम् । भू० आम् । भू० इयद् आम् । धिय् आम् ।
धियाम् । भूयाम् । श्री आम् । श्री नुद् आम् । श्री न् आम् । श्री
शू० आम् । श्रीणाम् । भूणाम् ।

जिनि ह्रस्वञ्च १।४।६

प० वि०—जिति ७।२ द्वयः १।१ च अ० ।

१—धम्यापंतोह्रस्वः (७. १. १०७) इत्येव विधिर्भवति २—धनि
स्त्वानुधवा म्योरिवड्बडो (६. ४. ७७) इत्यनेन धानुवाद् इच्छादेशः
टिप्प (१. १. १०) ३—हमनपातो वृद्ध (७. १. १६) ४—धद्वुवड्-
मुष्म्यावेति (६. ४. २)

अर्थ—[यू स्त्र्याख्यौ नदी, इयड्वड्स्थानावस्त्री, वा] ह्रस्व-
मिकारान्तमुकारान्तं च स्त्र्याख्यम्, इयड्वड्स्थानौ च यू डिति प्रत्यये
परतः वा नदीसङ्गौ भवतः स्त्रीशब्दः वर्जयित्वा । (ह्रस्व इकारान्त और
उकारान्त जो स्त्रीवाचक शब्द तथा इयड् उवड् स्थान है, जिसका, ऐसे जो
ईकारान्त और उकारान्त स्त्रीवाचक शब्द, इन दोनों की डित् प्रत्यय के
परे रहन पर विषय से नदी सङ्ग होती है स्त्री शब्द को छोड़कर)

उदा०—कृत्यै, कृतये, धेनवै, धेनवे, श्रियै, श्रिये, भ्रुवै, भ्रुवे ।
सि०—कृति डे । कृति आट् ए । कृति आ ए । कृति ऐ । कृत्यै ।
कृति ड । कृति ए । कृते ए । कृत् अय् ए । कृतये । धेनु आट् डे ।
धेनो आ ए । धेनवे । श्री डे । श्रि इयड् डे । श्रिय आट् डे । श्रिय्
आ ए । श्रियै । श्रियड् डे । श्रियड् ए । श्रिय् ए । श्रिये । भ्रुवै । भ्रुवे ।

शेषो घ्यसखि १।४।७

प० वि०—शेषः १।१ चि १।१ असखि १।१ स०—न सखि इति
असखि ॥

अर्थ—[डिति] शेषो घिसङ्गो भवति डिति प्रत्यये परतः सखिशब्दः
वर्जयित्वा । कश्च शेष ? ह्रस्वमिवर्णवर्णान्तं यन्न स्त्र्याख्य, स्त्र्याख्यं
च यन्न नदीसङ्गकं स शेष । (शेष की घिसङ्ग होती है डित् प्रत्यय के
परे रहने पर, सखिशब्द को छोड़कर) शेष कौन है ? ह्रस्व इकारान्त उकारान्त
जो स्त्रीवाचक नहीं और स्त्री वाचक जो नदीसङ्गक नहीं, उसे शेष कहते हैं)

उदा०—अग्नये, वायवे, कृतये, धेनवे ।

सि०—अग्नि डे । अग्नि ए । अग्ने ए । अग्नये । वायु डे ।
वायो ए । वायवे । कृति डे । कृते ए । कृतये । धेनु डे । धेनो ए ।
धेनवे ।

पति समास एव १।४।८

प० वि०—पतिः १।१ समासे ७।१ एव अ० ।

अर्थ—[पि] पतिशब्दः समास एव घिसङ्गो भवति । (पति शब्द की
पि सङ्ग होती है केवल समास ही में)

१—डिति ह्रस्वश्च (१. ४. ६) घाञ्जटाः (७. ३. ११२) २—घाटश्च
(६. १. ६०) ३—इतो यण्वि (६. १. ७६) ४—शेषो घ्यसखि (१. ४. ७)
वेडिति (७. ३. १११) अदेड् गुण (१. १. २) स्थानेऽन्तरतम. (१. १. ४६)
५—एचाऽप्यवायाव (६. १. ७८)

उदा०—प्रजायतिना, प्रजायते ।

मि०—प्रजायति टा । प्रजायतिना । प्रजायति डे । प्रजायति ण ।
प्रजायते ण । प्रजायन् अय् ण । प्रजायते ॥

ह्रस्व लघु १।८।१०

प० मि०—ह्रस्व १।१ लघु १।१

अर्थ—ह्रस्वमन्तरं लघुमन्त्रं भवति । (ह्रस्व धनर की लघु मन्त्र
होती है)

उदा०—मेना, अचाकरम् ।

मि०—भित्तिर । भिद् कृच् । भिद् कृ । मेद् कृ । मेच् । मेच् सु ।
मेच् अन्त् सु । मेच् अन्त् सु । मेच् अन्त् सु । मेत्तन् म् । मेत्तन् म् ।
मेत्तन् । मेत्तन् ॥ अर्चाकरम् । कृ मिच् । कृ ट । कर् ट । कर्
लुङ् । कर् चट् । कर् अत् । कर् अत् । कर् अत् । कर् अत् । कर् अत् ।
कर् अत् । कर् अत् । कर् अत् । कर् अत् । कर् अत् । कर् अत् ।
कर् अत् । कर् अत् । कर् अत् । कर् अत् । कर् अत् । कर् अत् ।

मयागे गुरु १।८।११

प० मि०—मयागे ७।१ गुरु १।१

अर्थ—मयागे परतो ह्रस्वमन्तरं गुरुमन्त्रं भवति ।

(मयागे के पर रहने पर ह्रस्व धनर की गुरु मन्त्र होती है)

उदा०—गुरुडा, ह्रस्वडा ।

मि०—गुरुडा । गुरु । गुरु लुम् अ । गुरु । गुरु । गुरु ।

१—ह्रस्वमिति च (३. १. २६) २—प्रजायति (३. २. ११५) ३—
सनायन्ता पाठकः (३. १. ३०) पाठो (३. १. ६०) नूने (३. २. ८४) मुद्
(३. २. ११०) प्रत्ययः (३. १. १) पादक (३. १. २) ४—मिथिदुष्टम्नः
कृत्तरि चट् (३. १. ४८) ५—गौ चट्पुष्पायाः ह्रस्व (७. ४. १) ६—
मार्धपातुक संयः (३. ४. ११८) मार्धपातुकं (६. ४. ४६) रार्धपातु (६. ४.
५१) ७—चटि (६. १. ११) ८—गुरुमन्त्राण (६. १. ४) गुरु मन्त्रोऽन्याकम्
(७. ४. ५८) ह्रस्वमिति संयः (७. ४. ६०) ९—गुरुमन्त्रः (७. ४.
६२) १०—मन्त्रपुत्रि चट्पुष्पायाः (७. ४. ६३) ११—दीपो मपो (७.
४. ६४) १२—इतिगो नृपाता (७. १. ३८) मिथोऽन्याकम् (१. १. ४६)
१३—नद्यायशालम् कति (८. १. २४)

कुण्ड् अ^१ । कुण्ड टाप्^२ । कुण्डा ॥ हुडि । हुड । हु नुम ड । हुन्ड ।
हुड । हण्ड अ । हुण्ड टाप् । हुण्डा ॥

दीर्घ च १।४।१०

प० वि०—दीर्घ १।१ च अ० ।

अर्थ—[गुरु] दीर्घ चाक्षर गुरुसञ्ज्ञ भवति ।

(घोर दीर्घ अक्षर को गुरु सञ्ज्ञा होती है)

उदा०—ईत्तांचक्रे, ईहांचक्रे, आम्प्रत्ययवद् (१. ३. ६३) इत्यत्र
साधन द्रष्टव्यम्

यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् १।४।१३

प० वि०—यस्मात् ५।१ प्रत्ययविधि १।१ तदादि १।१ प्रत्यये ७।१

अङ्गम् १।१ स०—प्रत्ययस्य विधि प्रत्ययविधि (प० तत्पु०) तस्य आदि
तदादि (प० तत्पु०)

अर्थ—यस्मात् प्रत्ययो विधीयते धातोर्वा प्रातिपदिकाद् वा तदादि
शब्दरूप प्रत्यये परत अङ्गसञ्ज्ञ भवति । (जिससे प्रत्यय का विधान किया
जाये उसकी तथा वह धातु और प्रातिपदिक जिसके आदि में हो उसकी
भी अङ्ग सञ्ज्ञा होती है प्रत्यय के परे रहन पर)

उदा०—केन, रामाय, करिष्यति, हरिष्यति, औपगव, ऐतिकायन ॥

सि०—किम् टा । क टा । क इन । केन । राम डे । राम य । रामाय ।
हुङ्क् । हुङ् । कृ लृ^३ । कृ लृ । कृ तिप् । कृ स्य^४ ति । कृ इट^५ स्य ति ।
कर् इट स्य ति । करि स्य ति । करिष्यति^६ । हरिष्यति ॥

मुप्तिङन्त पदम् १।४।१४

प० वि०—मुप्तिङन्तम् १।१ पदम् १।१ स०—मुप् च तिङ् च इति
मुप्तिङो । अन्तश्च अन्तश्च इति अन्तो । मुप्तिङो अन्तो यस्य इति
मुप्तिङन्तम् ।

१—अनुस्वारस्य ययि परसवण (८. ४ ५८) शुरोश्च हल (३ ३
१०३) २—स्थियाम् (४ १. ३) अजाक्षतप्याप् (४ १ ४) प्रत्ययः (३
१ १) परदच (३ १ २) ३—ट् णप् च (३. ३ १३) ४—स्यतासी
वृत्तुटा (३ १ ३३) ५—एकाच उपदेशश्रुदात्तात् (७. २. १०) ऋद्धना स्वे
(७ २ ७०) ६—आदेशप्रत्यया (८ ३ ५६)

अर्थ—सुवन्तं तिहन्तञ्च शब्दरूपं पदसंज्ञं भवति । (मुप् है अन्त में जिसके ओर तिह् है अन्त में जिसके ऐसे शब्दरूप की पदमज्ञा होती है)

उदा०—जवाहरलालः लोकसभायां भाषणं ददाति ।

सि०—जवाहरलाल सु । जवाहरलाल ण । जवाहरलाल रु । जवा-
हरलाल र । जवाहरलालः ॥ लोकसभा ङि । लोकसभा चाट् ङि । लोक-
सभा या आम् । लोकसभा याम् ॥ भाषणं थ्रम् । भाषणम् ।
ददाति । डुदाब् । दा लट् । दा ल् । दा तिप् । दा दा तिप् । द् ।
दा ति । ददाति ॥

स्वादित्वसर्वनामस्थाने १।४।१७

प० वि०—स्वाद्विपु ७।३ असर्वनामस्थाने ७।१ स०—सु आत्रिये-
पान्ते स्वादयः तेषुः स्वाद्विपु । न सर्वनामस्थानम् इति अमर्षनामस्थानम्
(नञ् तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—[पदम्] सर्वनामस्थानमिन्नेषु स्वाद्विपु प्रत्ययेषु परतः पूर्वं
पदसंज्ञं भवति । (सर्वनामस्थान मित्र सु इत्यादि प्रत्ययो के परे रहने पर पूर्व
की पदमज्ञा होती है)

उदा०—राजभ्याम्, राजभिः, राजत्वम्, राजता, राजतरः, राजतमः ।

सि०—राजभ्याम् । राजन् भ्याम् । राजभ्याम् । राजन् भिस् ।
राज भिस् । राजभिः ॥ राजन् त्व । राजत्व सु । राजत्व अम् ।
राजत्वम् ॥ राजन् तल् । राजन् त । राजत । राजत टाप् । राजता ।
राजन् तरप् । राजन् तर । राजतर । राजतर सु । राजतरः ॥ राजन्
तमप् । राजन् तम । राज तम । राजतम । राजतम सु । राजतमः ।

१—याडापः (७ ३. ११३) २—हेराम्नताम्नीम् (७ ३. ११६) ३—
मक्कः मक्कणं दीर्घ (६. १. १०१) ४—तिट्मिन्त्यावधानुबन्ध (३ ४. ११३)
[सावंधानुबन्ध] मक् (३. १. ६७) कर्त्तरि कप् (३. १. ६८) चुहोत्यादिभ्यः स्तुः
(२. ४. ७५) प्रत्ययस्य सुबन्धुसुपः (१. १. ६०) ५—दली (६ १. १०) ६—पूर्वो-
ऽभ्यास. (६. १. ४) मत्र लोपोऽभ्यासस्य (७. ४. ५८) ह्रस्वः (७. ४. ५६)
अभ्यासे चर्च (८. ४. ५४) ७—स्वादित्वसर्वनामस्थाने (१. ४. १७) पदस्य
(८. १. १६) नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य (८. २. ७) ८—तस्य भावस्त्वतलो
(५. १. ११६) ९—मतोऽम् (७. १. २०) १०—अजातपट्टाप् (४. १. ४)
प्रत्ययः (३. १. १) परस्व (३. १. २) ११—द्विवचनविभक्त्योपादे तर्ग्यपगुनो
(५. ३. ५७) १२—अतिज्ञापने तमविष्टनी (५. ३. ५५)

यचि भम् ॥

प० वि०—यचि ७।१ भम् १।१॥ स०—यश्च अच्च इति यच्
(समा० द्वन्द्व.) तस्मिन् यचि ।

अर्थ—[स्वादिष्पसर्वनामस्थाने] सर्वनामस्थानभिन्ने स्वादी,
यकारादी अजादी च प्रत्यये परतः पूर्वं भसञ्च भवति ॥ (सर्वनामस्थान-
भिन्न सु इत्यादि प्रत्ययो में यकारादि और अजादि प्रत्ययो के परे रहने पर पूर्व
की भसञ्च होती है)

उदा०—गार्ग्यः वात्स्य, दाक्षि, प्लाक्षिः, सोमपः ।

सि०—गर्ग यञ्^१ । गर्ग य । गर्ग^२ य । गर्ग^३ य^३ । गार्ग्य सु ।
गार्ग्यः । वत्स यञ् । वत्स य । वत्स् य । वात्स् य । वात्स्य सु ।
वात्स्यः । दक्ष^४ इञ् । दक्ष इ । दाक्ष इ । दक्ष^५ इ । दाक्षि सु । दाक्षिः ।
प्लक्ष इञ् । प्लाक्षि ॥ सोमपा डस् । सोमपा अस् । सोमप^६ अस् ।
सोमपस् । सोमपः ॥

बहुषु बहुवचनम् १।४।२१

प० वि०—बहुषु ७।३ बहुवचनम् १।१

अर्थ—बहुत्वे विधत्तिते बहुवचनं भवति । (बहुत्व के कहने की
इच्छा में बहुवचन होता है)

उदा०—पुरुषाः पठन्ति ॥

द्व्येकयोद्विवचनैकवचने १।४।२२

प० वि०—द्व्येकयोः ७।२ द्विवचनैकवचने १।२॥ स०—द्वौ च एकश्च
इति द्व्येषौ (इतरे० द्वन्द्वः) तयोः द्व्येकयोः । द्विवचन च एकवचन
चेति द्विवचनैकवचने (इतरे० द्वन्द्वः)

अर्थ—द्वित्वे विधत्तिते द्विवचनमेकत्वे विधत्तिते एकवचनं च भवति
(दो के कहने की इच्छा हो तो द्विवचन और एक के कहने की इच्छा हो तो
एक वचन होता है) ।

१—गर्गादिभ्यो यञ् (४. १. १०५) २ यचि भम् (१. ४. १८) यस्मात्
प्रत्ययविधीयन्तर्नादि प्रत्ययेऽङ्गम् (१. ४. १३) अङ्गस्य (६. ४. १) भत्य (६. ४. १२६) यस्वेति च (६. ४. १४८) ३—तद्धितेष्वाभादेः (७. २. ११७)
४—नस्यापत्यम् (४. १. ९२) भत इत् (४. १. ६५) ५—यचि भम् (१. ४. १८) *विन्त घातुव न जहानि* घातो घाता. (६. ४. १४०)

उदा०—रामो गच्छतः । रामः गच्छति ॥

कारकप्रकरणम्

कारक १।८।२३

प० वि०—कारके ७१

अर्थ—(क्रियायां सिद्धौ साधकत्वं कारकत्वम्) अत्र वक्ष्यमाणानि कार्याणि कारके भवन्ति इति अविमारो वेदितव्यः । (क्रिया की सिद्धि में जो सहायक हो उसे कारक कहते हैं) आगे बड़े जाने वाले कार्य कारक के विषय में होंगे, इस बात का अधिकार समझना चाहिये) ।

ध्रुवमपायेऽपादानम् १।८।२४

प० वि०—ध्रुवम् १।१ अपाये ७१ अपादानम् १।१

अर्थ—[कारक] (पृथग्भवननाची अपायशब्द) अपाये सति ध्रुवं यत्कारकं तदपादानसंज्ञं भवति । (अपाय अर्थात् अलग हान में ध्रुव या निश्चित या अचल जो कारक उसकी अपादान सत्ता होती है) ।

उदा०—वृक्षात् पत्र पतति । ग्रामादागच्छति । रथात्पतितः ॥

भीत्रार्थानां भयहेतु १।८।२५

प० वि०—भीत्रार्थानां ७३ भयहेतुः १।१॥ स०—भीश्च त्राश्च इति भीत्री । अर्थश्च अर्थश्च इति अर्थी । भीत्री अर्थी येषां धातूनान्ते भीत्रार्थाः (बहु०) तेषाम् । भयस्य हेतुः भयहेतुः (प० तत्पु०) ।

अर्थ—विभेत्यर्थानां त्रायत्यर्थानां च धातूनां प्रयोगे भयस्य हेतुर्यस्तत्कारकमपादानसंज्ञं भवति । (भयायक और रक्षायक धातुआ के प्रयोग में भय का कारण जो कारक उसकी अपादानसत्ता होती है) ।

उदा०—चोरेभ्यो विभेति । चोरेभ्य उद्विजते । त्रायत्यर्थानाम्-चोरेभ्यस्त्रायते । चोरेभ्यो रक्षति ॥

पराजेरसोढः १।८।२६

प० वि०—पराजे. ६१ असोढः १।१ स०—सोढुं शक्यते इति सोढं न सोढ इति असोढः ।

अर्थ—परापूर्वकजिगतोः प्रयोगे असोढो यस्तत्कारकम् अपादानसंज्ञं भवति । (परा उपमर्गपूर्वक जिगतु के प्रयोग में न सहने योग्य जो कारक उसकी अपादान सत्ता होती है)

उदा०—अध्ययनान् पराजयते ॥

वारणार्थानामीप्सित १।४।२७

प० वि०—वारणार्थानाम् ६।३ ईप्सितः १।१॥ स०—वारणम् अर्थो येषां धातूनाम् ते वारणार्थाः (बहु) तेषाम् ।

अर्थ—(प्रवृत्तिविधातो वारणम्) वारणार्थानां धातूनां प्रयोगे ईप्सितो योऽर्थस्तत्कारकमपादानसङ्गं भवति । (प्रवृत्ति के रोकने को वारण कहते हैं) रोकना अर्थात् बाले धातुओं के प्रयोग में अत्यन्त ईप्सित जो कारक उसकी अपादान सङ्गा होती है)

उदा०—यवेभ्यो गां वारयति । यवेभ्यो गां निवर्त्तयति ।

अन्तर्द्धौ येनादर्शनमिच्छति १।४।२८

प० वि०—अन्तर्द्धौ ७।१ येन ३।१ अदर्शनम् १।१ इच्छति (क्रिया०) ।

स०—न दर्शनम् अदर्शनम् ।

अर्थ—(व्यवधानवाची अन्तर्द्धिशब्दः) अन्तर्द्धिनिमित्त येन अदर्शनम् इच्छति तत्कारकमपादानसङ्गं भवति । (छिपने के कारण से अपना जो अदर्शन चाहता है ऐसा जो कारक उसकी अपादान सङ्गा होती है)

उदा०—उपाध्यायादन्तर्द्धते । उपाध्यायाभिलीयते ।

आख्यातोपयोगे १।४।२९

प० वि०—आख्याता १।१ उपयोगे ७।१

अर्थ—(आख्याता प्रतिपादयिता पाठयिता वा । नियमपूर्वकं विद्या-ग्रहणमुपयोगः) नियमपूर्वकविद्याग्रहणे यः प्रतिपादयिता तत्कारकमपादानसङ्गं भवति । (नियमपूर्वक विद्या क ग्रहण करने में पढ़ाने वाला जो कारक उसकी अपादान सङ्गा होती है)

उदा०—उपाध्यायादधीते । उपाध्यायागमयति ।

जनिकर्त्तुं प्रकृतिः १।४।३०

प० वि०—जनिकर्त्तुः ६।१ प्रकृतिः १।१॥ स०—जने. कर्त्ता जनि-कर्त्ता (प० तत्पु०) तस्य ।

अर्थ—जन्धातोर्यः कर्त्ता तस्य या प्रकृति कारणं हेतुर्वा तत् कारक-मपादानसङ्गं भवति । (जन् धातु का जो कर्त्ता उसकी प्रकृति या कारण या कारक उसकी अपादान सङ्गा होती है)

उदा०—शृङ्गाच्छरो जायते । गोमयाद् वृश्चिको जायते ।

भुव प्रभव १।४।३०

प० वि०—भुव. ६।१ प्रभव १।१॥

अर्थ—भूवानोर्य कर्ता तस्य य प्रभव. उत्पत्तिस्थानम् तत्कारकम-
पादनसज्ञ भवति ।

(भूवानु का जा कर्ता और उसका जा उत्पत्ति स्थान, वह जा कारक उसकी
प्रपादान सज्ञा होती है)

उदा०—हिममतो गङ्गा प्रभवति । काश्मीरेभ्यो वितस्ता प्रभवति ।

सि०—हिमवत् इमि । हिमवत् असि । हिमवत् अस् । हिमवत्. ।

कर्मणा यमभिप्रैति न सम्प्रदानम् १।४।३२

प० वि०—कर्मणा ३।१ यम् २।१ अभिप्रैति (क्रिया०) सम्प्रदान
१।१॥

अर्थ—(अभित प्रकर्षण एति गच्छति प्राप्नोति इति अभिप्रैति)
कर्मणा क्रियया यस्य अभिप्राय आश्रयति स यकारक तन् सम्प्रदानसज्ञ
भवति । (क्रिया क द्वारा निमक अभिप्राय का प्रच्छी तरह न सिद्ध किया
जाय, वह जो कारक उसकी सम्प्रदानमज्ञा हाती है)

उदा०—उपाध्यायाय गां ददाति

रुच्यर्थाना प्रीयमाण १।४।३३

प० वि०—रुच्यर्थानाम् ६।२ प्रीयमाण १।१॥ स०—अचि अर्थो तेषां
धातूनाम् ते रुच्यर्था (पद०) तेषाम् ।

अर्थ—रुच्यर्थाना गानूना प्रयोगे प्रीयमाणो योऽर्थग्नय शार्क
सम्प्रदानसज्ञ भवति ।

(रावता प्रच्छा लगता है अथ जिन धातुमा का निम क प्रयोग में क्रियकों
प्रच्छा लगता है वह जो कारक उसकी सम्प्रदान मज्ञा गर्ता है)

उदा०—देवदत्ताय रोचते मोदक । यज्ञदत्ताय न्यस्ये अन्नम् ।

श्लाघहनुट् म्याशपा जीप्सुमान १।४।३४

प० वि०—श्लाघहनुट् म्याशपाम् ६।२ जीप्सुमान. १।१॥ स०—
श्लाघश्च हनुड च स्वाश्व शप् चानि श्लाघहनुट् म्याशपाम् तेषाम् । (न्यसे
इन्द्र)

अर्थ—श्लाघहनुडस्थाशपा धानूनां प्रयोगे श्लोप्यमानो योऽर्थस्तत्कारक सम्प्रदानसज्ञ भवति ।

(श्लाघ हनुड स्था और शप धातु के प्रयोग में जनाये जान की इच्छा रखन वाना जो कारक उसकी सम्प्रदान सज्ञा होती है)

उदा०—देवदत्ताय श्लाघते । देवदत्ताय हनुते । देवदत्ताय तिष्ठते । देवदत्ताय शपते । श्लाघते ज्ञापयति चेत्यर्थ ।

धारेरुत्तमर्ण १।४।३५

प० वि०—धारे ६।१ उत्तमर्ण १।१॥ स०—उत्तममृण यस्य स उत्तमर्ण ।

अर्थ—धारयते प्रयोगे उत्तमर्णो योऽर्थ तत्कारक सम्प्रदासज्ञ भवति । (धारि धातु के प्रयोग में जो ऋण देन वाला है वह जो कारक उसकी सम्प्रदान सज्ञा होती है)

उ.१०—देवदत्ताय शत धारयति । देवदत्ताय सहस्र धारयति ।

स्पृहेरीप्सित १।४।३६

प० वि०—स्पृहं ६।१ ईप्सित १।१

अर्थ—स्पृहिधातो प्रयोगे ईप्सितो योऽर्थस्तत् कारक सम्प्रदानसज्ञ भवति । (स्पृह धातु के प्रयोग में इष्ट जो कारक उसकी सम्प्रदानसज्ञा होती है)

उदा०—पुष्पेभ्य स्पृहयति । फलेभ्य प्रहयति ।

ऋधद्रुहर्ष्यासूयार्थानां य प्रति कोप १।४।३७

प० वि०—ऋधद्रुहर्ष्यासूयार्थानाम् ६।३ यम् २।१ प्रति अ० । कोप १।१॥ स०—ऋधश्च द्रुहश्च र्ष्यश्च असूयश्च इति ऋधद्रुहर्ष्यासूया अर्थश्च अर्थश्च अर्थश्च अर्थश्च इति अर्था । ऋधद्रुहर्ष्यासूया अर्था. येषा धानूनाम् ते ऋधद्रुहर्ष्यासूयार्था (बहु०) तेषाम् ॥

अर्थ—(अमर्षे क्रोध । अपकारो द्रोह । अक्षमा ईर्ष्या । गुणेषु दोषाविष्करणमसूया) ऋधार्थानां द्रुहार्थानां ईर्ष्यार्थानां अमूयार्थानां च धानूना प्रयोगे य प्रति कोपमन्तत् कारक सम्प्रदानसज्ञ भवति ।

(ऋध द्रुह ईर्ष्य और अमूय इन चार धातुओं में प्रयोग में जिसके प्रति कोप किया जाता है वह जो कारक उसकी सम्प्रदान मन्ता होता है)

उदा०—देवदत्ताय ऋध्यति । देवदत्ताय द्रुहति । देवदत्ताय ईर्ष्यति । देवदत्ताय अमूयति ।

क्वद्वद्रहोऽपमृष्ट्या कर्म १।४।३८

प० नि०—क्वद्वद्रहो षा१ उपमृष्ट्यो. षा०॥ स०—क्वद्वश्च द्रुहश्च इति क्वद्वद्रहो (इतरे० द्वन्द्व) तयो ।

अर्थ—[य प्रति कोप] उपसर्गपूर्वक्यो क्वद्वद्रहो वात्वा प्रयोगे य प्रति कोपस्तत्कारक स्ममज्ञ भवति ।

(उपसर्ग है पूव में जिस क एम क्वद्व और द्रुह धातु क प्रयोग में जिसके प्रति कोप किया जाय वह जो कारक उसकी समझना होता है)

उदा०—देवदत्तमभिक्रुध्यति । देवदत्तमभिद्रुहति ।

राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्न १।४।३९

प० वि०—राधीक्ष्यो षा० यस्य षा१ विप्रश्न १।१॥ स०—राधिरश्च ईक्षिरश्च इति राधीक्ष्यो (इतरे० द्वन्द्व) तयो । विविधः प्रश्न विप्रश्न ।

अर्थ—राध्यते ईक्षते च धातवो प्रयोगे यस्य विप्रश्न तत्कारक सम्प्रदानसज्ञ भवति । (राध और ईक्ष धातु क प्रयोग में जिसकी गुमागुम समाचार पूछा जाय ऐसा जा कारक उसकी सम्प्रदान सज्ञा होती है)

उदा०—देवदत्ताय राध्यति । देवदत्ताय ईक्षते ।

प्रत्याङ्भ्या श्रुव पूवस्य कर्ता १।४।४०

प० वि०—प्रत्याङ्भ्या १।० श्रुव षा१ पूर्वस्य षा१ कर्ता १।१॥ स०—प्रति च आङ् च इति प्रत्याङ्गी ताभ्याम् ।

अर्थ—प्रति आङ्पूर्वस्य श्रुव गतो प्रयोगे पूर्वस्य कर्ता तत्कारक तत्सम्प्रदानसज्ञ भवति । (प्रति आङ् पूवक श्रुव धातु क प्रयोग में पहले का जा कर्ता वह जा कारक उसकी सम्प्रदान सज्ञा होती है)

उदा०—देवदत्तं गृह्णाति । यज्ञदत्तं देवदत्ताय गा प्रतिशृणाति । यज्ञदत्तं देवदत्ताय गामाशृणाति ।

अनुप्रतिगृणश्च १।४।४१

प० नि०—अनुप्रतिगृण षा१ च अ०।

अर्थ—[पूर्वस्य कर्ता] अनुपूर्वस्य प्रतिपूर्वस्य च गृणाते धातो प्रयोगे पूर्वस्य कर्ता तत्कारक तत्सम्प्रदानसज्ञ भवति ।

(अनु और प्रति पूवक य धातु क प्रयोग में पहले का कर्ता जा कारक उस की सम्प्रदान सज्ञा होती है) ।

उदा०—होता प्रथमं शंसति, तम् अन्यः प्रोत्साहयति इति अनुगृणा-
तेरर्थः । होत्रे अनुगृणाति । होत्रे प्रतिगृणाति ।

सि०—होत् डे । होत् ए । होत् ए । होत् र् ए । होत्रे ।

साधकतम करणम् १।४।४२

प० वि०—साधकतमम् १।१ करणम् १।१

अर्थ—क्रियायां सिद्धौ सहायकतमं यत् कारक तत्करणसंज्ञं भवति ।
(क्रिया की सिद्धि में अत्यन्त सहायक जो कारक उसकी करण सज्ञा
होती है) ।

उदा०—दात्रेण लुनाति । परशुना छिनसि ।

सि०—दात्र । दात्र टा । दात्र इन । दात्रेन । दात्रेण^१ । परशु दा ।
परशु ना^२ । परशुना ।

दिव. कर्म च १।४।४३

प० वि०—दिवः ६।१ कर्म १।१ च अ०।

अर्थ—[करणम्] दिवधानोः प्रयोगे साधकतमं यत्कारकं तत्करण-
संज्ञं भवति, चकारात् करणसंज्ञञ्च । (दिव धातु के प्रयोग में अत्यन्त
सहायक जो कारक उसकी कर्म सज्ञा होती है और चकार से करणसज्ञा भी ।

उदा०—अक्षान् दीव्यति । अक्षैर्दीव्यति ।

परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम् १।४।४४

प० वि०—परिक्रयणे ७।१ सम्प्रदानम् १।१ अन्यतरस्याम् अ०।

अर्थ—(परिक्रयणं नियतकालं वेतनादिना स्वीकरणं, नात्यन्तिक-
क्रय एव) परिक्रयणे साधकतमं यत्कारकं तन् सम्प्रदानसंज्ञं भवति
यिक्तपेन । (परिक्रयण उसे कहते हैं जिसको वेतन इत्यादि देकर किसी
नियत समय तक के लिए काम में लगाया जाता है, उसको अत्यन्त मरौ
ही नहीं लिया जाता है)

(परिक्रयण में अत्यन्त सहायक जो कारक उसकी विकल्प में सम्प्रदान-
सज्ञा होती है, परा में करण सज्ञा भी ।

उदा०—शनाय परिक्रीतः । शनेन परिक्रीतः । सहस्राय परिक्रीतः ।
सहस्रेण परिक्रीतः ।

आधारोऽधिकरणम् १।४।४५

प० वि०—आधारः १।१ अधिकरणम् १।१

अर्थ—(आधियन्ते अस्मिन् क्रिया इति आधारः) क्रियायां सिद्धौ आधारो यत्कारकतदधिकरणसंज्ञं भवति । (क्रिया के करने या होने पर आधार जो कारक उसकी अधिकरण सज्ञा होती है)

उदा०—कटे आस्ते, कटे शेते, स्थाल्यां पचति ।

सि०—कट डि । कट इ । कटे ॥ स्थाली डि । स्थाली आम् । स्थाल्याम् ॥

अधिशीङ्स्थासा कर्म १।४।४६

प० वि०—अधिशीङ्स्थासाम् ६।३ कर्म १।१

अर्थ—अधिपूर्वकशीङ्स्थास्वातूनां प्रयोगे आधारो यत्कारक तत्कर्म-संज्ञं भवति । (अधि उपसर्गपूर्वकं शीङ् स्था और आस् धातुओं के प्रयोग में आधार जो कारक उसकी कर्म सज्ञा होती है)

उदा०—ग्रामम् अधिशेते, ग्रामम् अधितिष्ठति, पर्वतम् अध्यास्ते ।

अभिनिविशश्च १।४।४७

प० वि०—अभिनिविशः ६।१ च अ० ।

अर्थ—अभिनिपूर्वस्थ विश् धातोः प्रयोगे आधारो यत्कारकं तत्कर्म-संज्ञं भवति । (अभि और नि पूर्वक विद्धातु के प्रयोग में आधार जो कारक उसकी कर्मसज्ञा होती है)

उदा०—ग्रामम् अभिनिविशते ।

उपान्वध्याङ्वसः १।४।४८

प० वि०—उपान्वध्याङ्वसः ६।१

अर्थ—उप अनु अवि आङ्पूर्वस्थ वस्धातोः प्रयोगे आधारो यत्कारकं तत्कर्मसंज्ञं भवति । (उप अनु अवि और आङ् उपसर्गपूर्वकं वस्धातु के प्रयोग में आधार जो कारक उसकी कर्मसज्ञा होती है)

उदा०—ग्रामम् उपगच्छति सेना, पर्वतमुपगच्छति, ग्राममनुवसति, ग्राममधिवसति, ग्राममावसति ।

कर्तुंरीप्सिततम कर्म १।४।४९

प० वि०—कर्तुः ६।१ ईप्सिततमम् १।१ कर्म १।१

अर्थ—कर्तु ईप्सिततम यत्कारक तत्कर्मसङ्ग भवति । (कर्त्ता का अत्यन्त इष्ट अर्थात् अत्यन्त चाहा हुआ जो कारक उसकी कर्मसङ्गा होती है)
उदा०—पुस्तक पठति । वेदान् पठन्ति छात्राः । ग्राम गच्छति ।

तथायुक्त चानीप्सितम् १।४।५०

प० वि०—तथायुक्तम् १।१ च अ० । अनीप्सितम् १।१ स०—तेने प्रकोरणेति तथा । तथा युक्तम् इति तथायुक्तम् । न ईप्सितम् इति अनीप्सितम् ।

अर्थ—[कर्म] येन प्रकारेण कर्तुरीप्सितं तेनैव प्रकोरण कर्तुरनीप्सितमपि यत्कारक तत्कर्मसङ्ग भवति ।

(जिस प्रकार से कर्त्ता का अत्यन्त चाहा हुआ उसी प्रकार से कर्त्ता का अत्यन्त न चाहा हुआ जो कारक उसकी भी कर्मसङ्गा होती है)

उदा०—विप भक्षयति, चौरान् पश्यति, ग्राम गच्छन् वृक्षमूलानि उपसर्पति ।

सि०—चौरान् । चौर शस् । चौर अस् । चौरास्^१ । चौरान्^२ ॥ वृक्षमूलानि । वृक्षमूल शस् । वृक्षमूल शि^३ । वृक्षमूल इ । वृक्षमूल तुम्^४ इ । वृक्षमूल नु इ । वृक्षमूलान्^५ इ । वृक्षमूलानि ॥

अकथित च १।४।५१

प० वि०—अकथितम् १।१ च अ० । स०—न कथितम् अकथितम् (नन्व तत्पु०)

अर्थ—अपादानादिविशेषकथाभिः अकथित यत्कारक तत्कर्मसङ्ग भवति । (अपादान, सम्प्रदान, करण, अधिकरण इत्यादि से न कहा गया जो कारक उसकी कर्मसङ्गा होती है)

उदा०—दुहियाचिरुधिप्रच्छिभिच्चिचिबामुपयोगनिमित्तमपूर्वविधौ । अविशासिगुणेन च यत्सचते तदकीर्तितमाचरितं कविना ॥ दुहि—गां दोग्धि पय । याचि—पौरव गां याचते । रुधि—गामवरुणद्वि व्रजम् । प्रच्छि—माण्यक पन्थानं पृच्छति । भिच्चि—पौरव गां भिच्छते । चिच्चि—

१—प्रथमयो पूर्वसवर्ण (६ १ १०२) २—तस्माच्छसो न पु सि (६ १. १०३) भलोऽन्त्यस्य (१. १. ५१) ३—जश्चसोः सि (७. १ २०) घन-वात्तिशरसर्वस्य (१ १. ५४) ४—सि सर्वनामस्थानम् (१. १. ४१) नपु सकस्य भनचः (७. १. ७२) मिदचोऽन्त्यात्पर (१. १ ४६) ५—सर्वनामस्थाने चाठ-

वृक्षम् अग्रचिनोति फलानि । न वि—माणवक धर्मं त्रुते । शासि—माण-
वक धर्मम् अनुशास्ति ॥

सि०—गो । गा अम् । गा अम्^१ । गाम्^२ ॥ पौरव अम् । पौरवम् ॥

गतिबुद्धिप्रत्ययसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणाम्-

अणिकर्ता स णी १।८।२०

प० नि०—गतिबुद्धिप्रत्ययसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणाम् ६।३ अणि
कर्ता १।१ स १।१ णी ७।१ म०—गतिश्च बुद्धिश्च प्रत्यय-
सान चेति गतिबुद्धिप्रत्ययसानानि । अर्थश्च अर्गश्च अर्थश्च इति
अर्था । गतिबुद्धिप्रत्ययसानानि अर्गा यथा धानूना ते गतिबुद्धिप्रत्य-
यसानार्था (गृह०) ॥ शब्द कर्म यस्य इति शब्दकर्म (गृह०) न कर्म
निगते यस्य स अकर्मक । शब्दकर्म च अकर्मकश्च इति शब्दकर्मा-
कर्मका ॥ गतिबुद्धिप्रत्ययसानार्थाश्च शब्दकर्माकर्मकाश्च इति गति-
बुद्धिप्रत्ययसानार्थशब्दकर्माकर्मका तेषाम् । अणोरुक्ता अणिकर्ता ॥

अर्थ—गत्यर्थानां बुद्ध्यर्थानां प्रत्ययसानार्थानां शब्दकर्मकाणाम्
अकर्मकाणां च धानूनां प्रयोगे अत्यन्तावस्थायां यः कर्ता कारकः तत्
अत्यन्तावस्थायां कर्मसङ्गः भवति ॥

(गति, बुद्धि, भक्षण धर्म बाने तथा धर्म कर्म है जिसका एम धोर अक-
मक धानुमा क प्रयोग में अण्यत अवस्था में जो कर्ता कारक उसकी प्पन्त
अवस्था में कर्मसङ्ग हा जानी है)

उदा०—गति । अणी—गच्छति माणवको ग्रामम् । णी—गमयति
माणवकं ग्रामम् । अणी—याति माणवको ग्रामम् । णी—यापयति माणवकं
ग्रामम् । बुद्धि । अणी—बुध्यते माणवको धर्मम् । णी—बोधयति माण-
वकं धर्मम् । अणी—वेत्ति माणवको धर्मम् । णी—वेदयति माणवकं
धर्मम् ॥ प्रत्ययमान । अणी—भुङ्क्ते माणवकः ओदनम् । णी—भोजयति
माणवकम् ओदनम् ॥ शब्दकर्म । अणी—अधीते माणवको वेदम् । णी—
अयापयति माणवकं वेदम् । अणी—पठति माणवको वेदम् । णी—पाठ-
यति माणवकं वेदम् । अकर्मक । अणी—आस्ते देवदत्तः । णी—आस-
यति देवदत्तम् । अणी—शेते देवदत्तः । णी—शाययति देवदत्तम् ॥

हृक्रोरन्यतरस्याम् १।४।५३

प० वि०—हृको ६।० अन्यतरस्याम् अ० । स०—हृ च कृ च इति हृकृ (समा० द्वन्द्व) तयो

अर्थ—[अणि कर्त्ता स णो] हृकृधात्वो प्रयोगे अयन्तावस्थायां य कर्त्ता यत्कारक तत् अयन्तावस्थाया विकल्पेन कर्मसज्ञ भवति ।

(हृ और कृ ध तु के प्रयोग म अण्यत अवस्था म जो कर्त्ता वह जो कारक उसकी ण्यत अवस्था में विकल्प से कर्मसज्ञा हो जाती है)

उदा०—अणौ—हरति भार माणवक । णौ—हारयति भार माणवक माणवकेन वा । अणौ—करोति कट देवदत्त । णौ—कारयति कट देवदत्त देवदत्तेन वा ॥

स्वतन्त्र कर्त्ता १।४।५४

प० वि० स्वतन्त्र १।१ कर्त्ता १।१

अर्थ—क्रियाया सिद्धौ स्वतन्त्रो यत्कारक तत् कर्त्तृसज्ञ भवति ।

(क्रिया की सिद्धि में स्वतन्त्र जो कारक उसकी कर्त्ता सज्ञा होती है)

उदा०—देवदत्त पचति । राम गच्छति ।

तत्प्रयोजको हेतुश्च १।४।५५

प० वि०—तत्प्रयोजक १।१ हेतु १।१ च अ० ।

स०—तस्य प्रयोजक तत्प्रयोजक (प० तत्पु०)

अर्थ—[कर्त्ता] स्वतन्त्रस्य प्रयोजको यत्कारकं तद् हेतुसज्ञ भवति चकारात्कर्त्तृसज्ञञ्च ।

(स्वतन्त्र का जो प्रेरणा करने वाला उसकी हेतु सज्ञा होती है और चकार से कर्त्ता सज्ञा भी)

उदा०—देवदत्त करोति । यज्ञदत्त कुर्वाण देवदत्त प्रयुङ्गते इति यज्ञदत्त देवदत्त वारयति ।

साधनं हेतुमति च (३ ' ०६) इति सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

प्राग्भीश्वरात्निपाता १।४।५६

प० वि०—प्राक् १।१ रीश्वरात् ५।१ निपाता १।३।

अर्थ—‘अधिरीश्वरे’ इति ण्यतस्मान् प्राक् निपातसंज्ञा भवन्ति इति अधिकारो वेदितव्य । (अधिरीश्वरे इस सूत्र से पहले निपातसंज्ञा होती है, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

चादयोऽसत्त्वे १।८।५७

प० वि०—चादय १।३ असत्त्वे ७।१॥ स०—च आदिर्येषामिति चादय । न सत्त्वम् असत्त्वम् तस्मिन् असत्त्वे ।

अर्थ—(द्रव्यवाची सत्त्वशब्द) चादयो निपातसज्ञा भवन्ति न चेत् सत्त्वे भवन्ति ।

(च इत्यादि की निपात सज्ञा होती है यदि वे द्रव्य के बोधक न हो तो)

उदा०—च, वा, इ, अह, एव, एवम्, शाश्वत्,

सि०—च सु । च^१ । एव सु । एव । नूनम् सु । नूनम् ।

प्रादय १।४।५८

प० वि०—प्रादय १।३ स०—प्र आदिर्येषान्ते प्रादय ।

अर्थ—[निपाता. असत्त्वे] प्रादयोऽसत्त्वे निपातसज्ञा भवन्ति । (प्र इत्यादि प्रद्रव्यवाची की निपात सज्ञा होती है)

उदा०—प्र, परा, अप, सम्, अनु, अब, निस्, दुस्, वि, आह, नि, अधि, अपि, अति, सु, उन्, अभि, प्रति, परि, उप ।

उपसर्गा क्रियायोगे १।८।५९

प० वि०—उपसर्गा १।३ क्रियायोगे ७।१॥ स०—क्रियाया योग क्रियायोग (प० तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—क्रियायोगे प्रादय उपसर्गसज्ञा भवन्ति ।

(क्रिया के साथ सम्बन्ध होन पर प्र इत्यादि की उपसर्ग सज्ञा होती है)

उदा०—प्रणयति, परिणयति, प्रणायक, परिणायक ।

सि०—प्र णीप् । प्र णी । प्र नी । प्र नी शप् तिप् । प्र ने अ ति । प्र नयति । प्रणयति^१ । परिणयति । प्रणीन् । प्र णी । प्र नी एबुल् । प्र नी वु । प्र नी अक । प्र नै अक । प्र नाय् अक । प्रणायक । प्रणायक । परिणायक ।

गतिश्च १।४।६०

प० वि०—गति १।१ च अ० ।

अर्थ—[क्रियायोगे, प्रादय] प्रादय क्रियायोगे गतिसज्ञाकारक भवन्ति । (प्र इत्यादि की क्रिया के योग में गतिसज्ञा भी होती है)

उदा०—प्रकृत्य, प्रहृत्य, प्रकृतम्, प्रहृतम् ।

सि०—डुकृञ् । डुकृ । कृ । कृ क्त्वा । कृत्वा । प्र कृत्वा । प्रकृ३
त्यप् । प्रकृ त्य । प्रकृ य । प्रकृ तुक् य । प्र कृ तु य । प्रकृत्य । प्रहृत्य
सु । प्रहृत्य । प्रहृत्य । प्रहृतम् । कृ क्त । कृ त । प्रकृत । प्रकृत सुं ।
प्रकृत अम् । प्रकृतम् । प्रहृतम् ।

ते प्राग् धातोः १।४।८०

प० वि०—ते १।३ प्राक् १।१ धातोः ५।१।।

अर्थ—[गतिः उपसर्गः] ते गति-उपसर्ग सङ्गताः धातोः प्राक् भवन्ति ।
(उन गति और उपसर्ग सङ्गा वाले शब्दों का प्रयोग धातु के पहले होता है)

छन्दसि परेऽपि १।४।८१

प० वि०—छन्दसि ७।१ परे ७।१ अपि १।१

अर्थ—[ते धातोः] छन्दसि विषये से गति-उपसर्गः धातोः परेऽपि
भवन्ति । (छन्द के विषय में गति और उपसर्ग सङ्गा वाले शब्दों का प्रयोग
धातु के पश्चात् भी होता है)

उदा०—याति नि हस्तिना । हन्ति नि मुष्टिना । नियाति । निहन्ति ।

व्यवहिताश्च १।४।८२

प० वि०—व्यवहिताः १।३ च १।१

अर्थ—[ते धातोः] ते गति-उपसर्गसंज्ञकारश्छन्दसि व्यवहिताश्च
भवन्ति । (उन गति और उपसर्ग संज्ञा वाले शब्दों का प्रयोग छन्द में व्यवधान
युक्त भी होता है)

उदा०—आ मन्त्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूरोमभिः । आयाहि ।

कर्मप्रवचनीयाः १।४।८३

प० वि०—कर्मप्रवचनीयाः १।३

अर्थ—इतः ऊर्ध्वं कर्मप्रवचनीयसङ्गाः भवन्ति इति अधिकारो
येदित्तव्यः । (इससे पश्चात् कर्मप्रवचनीय सङ्गा का अधिकार समझना चाहिये)

अपपरी वर्जने १।४।८८

प० वि०—अपपरी १।२ वर्जने ७।१ स०—अपश्य परिरष इति
अपपरी ।

अर्थ—वर्जने अर्थे अपपरी कर्मप्रवचनीयसंज्ञौ भवतः ।

(वर्गेन धर्मं मे अप श्रीर परि वा वमप्रवचनीय संज्ञा होती है)

उदा०—अप त्रिगर्त्तभ्यो वृष्टो देव । परि त्रिगर्त्तभ्यो* वृष्टो देव ।

आङ् मर्यादावचने १।४।८६

प० वि०—आङ् १।१ मर्यादावचने ७।१॥ स०—मर्यादाया वचनम् मर्यादावचन (प० तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—मर्यादावचने अर्थ आङ् कर्मप्रवचनीयसङ्गो भवति ।

उदा०—आ पाटलिपुत्राद् वृष्टो देव । आकुमार यश पाणिने ।

सि०—पाटलिपुत्रात्* । पाटलिपुत्र इति । पाटलिपुत्र आत् । पाटलिपुत्रात् । आकुमारम् । आ कुमारात् । आ सु कुमार इति* । आकुमार सु । आकुमार अम् । आकुमारम् ।

अधिरीद्वरे १।४।९०

प० वि०—अधि १।१ ईश्वरे ७।१॥

अर्थ—ईश्वरे अर्थे अधि कर्मप्रवचनीयसङ्गो भवति ।

(अधिक कहने धर्म में अधि की वमं प्रवचनीय संज्ञा होती है)

उदा०—अधि ब्रह्मदत्ते पञ्चाला । अधि पञ्चालेषु ब्रह्मदत्त ।

ल परस्मैपदम् १।४।९६

प० वि०—ल ६।१ परस्मैपदम् १।१॥

अर्थ—लादेशा परस्मैपदसङ्गा भवन्ति । (लू के स्थान में जो आदेश होते हैं उनकी परस्मैपदसङ्गा होती है)

उदा०—भवति, भवत, भवन्ति । भवसि, भवय, भवय । भवामि, भवाप, भवाम ।

सि०—भू लट् । भू तिप् । भू ति । भू शप् ति । भू अ ति । भो अ ति । भव् अति । भवति । भू मिप् । भू मि । भू शप् मि । भू अ मि । भो अ मि । भव् अ मि । भव् आ* मि । भव् आमि । भवामि ।

तडानावात्मनेपदम् १।४।१००

प० वि०—तडानो १।२ आत्मनेपदम् १।१॥ स०—तड् च आनरच इति तडानो (इतरे० द्वन्द्वः)

१—पञ्चम्यपादपरिमि (२ ३ १०) इति पञ्चमी २—पाङ् मर्यादामि विध्यो (२ १. १२) ३—मव्ययीयावच्च (१ १ ४०) नाव्ययीयावा० (२ ४ ८३) मयि वृत् (६ १ १०७) ४—मती० (७. ३. १०१) ।

अर्थ—तडानौ आत्मनेपदसंज्ञौ भवत ।

(तड् और आन की आत्मनेपदसंज्ञा होती है)

उदा०—एघते, एघेते, एघन्ते । एघसे, एघेथे, एघध्वे । एघे, एधावहे, एधामहे । एधमानः ।

सि०—एध । एध् लट् । एध् ल । एध् ल् । एध् त । एध् शप् त । एध् अ त । एध् अ ते^१ । एघते । एध् आताम् । एध् शप् आताम् । एध् अ आताम् । एध् अ इय्^२ ताम् । एध् अ इ^३ ताम् । एध् एताम्^४ । एध् एत् आम् । एध् एत् ए^५ । एघेते । एघन्ते । एध् ऋ । एध् अन्त । एध् शप् अन्त । एध् अ अन्त । एध् अन्त । एघन्ते ॥ एध् लट् । एध् ल् । एध् थास् । एध् से^६ । एध् शप् से । एध् अ से । एघसे । एध् शप् आथाम् । एध् अ आथाम् । एध् अ इय्^७ थाम् । एध् अ इ^८ थाम् । एध् ए थाम् । एघे थाम् । एघेथे । एध् शप् ध्वम् । एध् अ ध्वे^९ । एघध्वे । एध् शप् इट् । एध् अइ । एध ए । एघे । एघ शप् वहि । एध् अ वहि । एघ वहि । एघ वहे^{१०} । एधावहे^{११} । एध् महिङ् । एध् शप् महि । एघ अ महे । एघ महे । एधामहे । एध् लट् । एध् शानच्^{१२} । एध् आन । एध् शप् आन । एध् अ आन । एध् अ मुक्^{१३} आन । एध् अ मु आन । एध् अम् आन । एधमान सु । एधमान^{१४} ।

तिङ्स्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमा १।४।१०।१

प० वि०—तिङ्. ६।१ त्रीणि १।३ त्रीणि १।३ प्रथममध्यमोत्तमा. १।३

स०—प्रथमश्च मध्यमश्च उत्तमश्चेति प्रथममध्यमोत्तमाः (इतरे० द्वन्द्वः) प्रथममध्यमोत्तमाश्च प्रथममध्यमोत्तमाश्चेति प्रथममध्यमोत्तमाः ।

अर्थ—तिङ्स्त्रीणि त्रीण्यथा संख्य प्रथममध्यमोत्तमसंज्ञाः भवन्ति ।

(तिङ् के तीन तीन की क्रमशः प्रथम, मध्यम और उत्तम संज्ञा होती है)

उदा०—तिप्, तस्, मि, इति प्रथमः । सिप्, थस्, थ, इति

१—टित आत्मनेपदानां टेरे (३. ४. ७९) २—घातो डित (७. २. ८१)

३—सोपो व्योर्वलि (६. १. ६६) ४—घाद गुण (६. १. ८७) ५—घास. से (३. ४. ८०) घनेकात्स्निकत्वस्य (१. १. ५४) ६—घतो दीर्घो यजि (७. ३. १०१) ७—लटः सतुशाननावप्रममासमानाधिकरणे (३. २. १२४) ८—कर्तरि णप् (१. १. ६८) ९—मानं मुक् (७. २. ८२) घातन्ती टन्ति (१. १. ४५)

मध्यम । मिप्, वस्, मस्, इति उत्तम । त आताम्, भू, इति प्रथम । थास्, आथाम्, धम् इति मध्यम । इट्, बहि, महिट् इति उत्तम ।

तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकश १।४।१०२

प० वि०—तानि १।३ एकवचनद्विवचनबहुवचनानि १।३ एका १।१ स०—एकवचनं च द्विवचनं च बहुवचनं चेति एकवचनद्विवचनबहुवचनानि (इतरे० द्वन्द्वः)

अर्थ—[तिङ्श्रीणिश्रीणि] तानि तिङ् श्रीणि श्रीणि एकाश एकवचनद्विवचनबहुवचनसंज्ञानि भवन्ति । (एन तिङ् के तीन तीन की एक एक करके एकवचन, द्विवचन और बहुवचन संज्ञा होती है)

उदा०—तिमित्येकवचनम्, तस् इति द्विवचनम्, मि इति बहुवचनम् ।

सुप १।४।१०३

प० वि०—सुप ६।१

अर्थ—[श्रीणि श्रीणि, एकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकश] सुप श्रीणि श्रीणि एकाश एकवचनद्विवचनबहुवचनसंज्ञानि भवन्ति ।

(सुप् क तीन तीन पद एक एक करके एकवचन, द्विवचन और बहुवचन संज्ञावाले होते हैं)

उदा०—सु इति एकवचनम्, ओ इति द्विवचनम्, जस् इति बहुवचनम्, एय सर्वत्र ।

विभक्तश्च १।४।१०४

प० वि०—विभक्ति १।१ च अ० ।

अर्थ—[तिङ्, सुप, श्रीणि श्रीणि] सुप तिङश्च श्रीणि श्रीणि विभक्तिसंज्ञानि भवन्ति ।

(सुप और तिङ् के तीन तीन की विभक्ति संज्ञा होती है)

उदा०—पठत । रामान् ।

सि०—पठ् शप् तस् । पठ् अ तस्^१ । पठतस् । पठव । राम शस् । राम अस्^१ । रामास् । रामान्^२ ॥

१—न विभक्तौ तुस्मा (१ ३ ४) २—तस्मान्त्वमो न पुंसि (६ १ ६६)

अलोऽन्त्यस्य (१. १ ५१) हलन्त्यम् (१ ३ ३) न विभक्तौ० (१ ३ ४)

युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यम १।४।१०५

प० वि०—युष्मदि ७।१ उपपदे । ७।१ समानाधिकरणे ७।१ स्थानिनि ७।१ अपि अ० । म यम १।१

अर्थ—युष्मदि उपपदे सति समानाभिधेये तुल्यकारके प्रयुज्यमाने अप्रयुज्यमाने अपि मध्यमपुरुषो भवति ।

(युष्मद् शब्द के उपपद रहन पर और समान अधिकरण में युष्मद् शब्द के प्रयोग होन या न होन पर भी मध्यम पुरुष होता है)

उदा०—स्व पचसि, युवाम् पचथ, यूयम् पचथ । पचसि, पचथ पचथ ।

अस्मद्युत्तम १।४।१०७

प० वि०—अस्मदि ७।१ उत्तम १।१

अर्थ—[उपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि] अस्मदि उपपदे सति समानाभिधेये तुल्यकारके प्रयुज्यमाने अप्रयुज्यमाने अपि उत्तमपुरुषो भवति । (अस्मद् शब्द के उपपद रहन पर और समान अधिकरण म अस्मद् शब्द के प्रयोग होन या न होन पर भी उत्तम पुरुष होता है)

उदा०—अह पचामि, पचामि । आवा पचाव, पचाव । वय पच म, पचाम ।

शेषे प्रथम १।४।१०८

प० वि०—शेषे ७।१ प्रथम १।१

अर्थ—(उक्तादन्य शेष) यत्र युष्मदस्मदी समानाधिकरणे उपपदे न स्त तत्र शेषे प्रथमपुरुषो भवति । (जहा युष्मद् और अस्मद् समान अधिकरण में उपपद नहीं है वहा शेष म प्रथम पुरुष होता है)

उदा०—स पचति, पचति । तौ पचत, पचत । ते पचन्ति, पचन्ति ।

पर सन्निकर्षे सहिता १।४।१०९

प० वि०—पर १।१ सन्निकर्षे १।१ सहिता १।१

अर्थ—(अतिशयवाची परशब्द) अतिशय सन्निकर्षे सहिता संज्ञा भवति । (प्रत्यत्त निवृत्त की सहिता सना होती है)

सि०—अधिअत्र । दध्युअत्र । दध्यत्र ॥

विरामोऽवसानम् १।४।११०

प० वि०—विराम १।१ अवसानम् १।१

अर्थ—विराम अत्रसानसन्नो भवति ।

(विराम की अवमान सज्ञा हाती है)

उदा०—राम , रामा , रामै , रामेभ्य ।

सि०—राम । राम सु । रामस् । रामर् । रामर् । राम

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणज्ञमहाविद्याकरणपण्डितब्रह्मदत्ताचा-

र्याणामन्तेवासिना देवप्रकाशपातञ्जलेन विरचि-

तायामष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया प्रथमाध्याये

चतुर्थं पाद

इति प्रथमोऽध्याय

समर्थं पदविधिः २।१।१

प० वि०—समर्थं १।१। पदविधि १।१ स०—समर्थान् विधि समर्थ-
विधि । समर्थस्य समर्थयोर्नां विधि समर्थविधि । समर्थानां विधि
समर्थविधि । समर्थे विधि समर्थविधि । समर्थविधिश्च समर्थविधिश्च
समर्थविधिश्च समर्थविधिश्च समर्थविधिश्च इति समर्थविधयः । (सर्व-
विभक्त्यन्तसमास) पदान् विधिः पदविधि । पदस्य विधि पदविधि
पदयोर्विधि पदविधि । पदानां विधि पदविधि । पदे विधि पदविधि ।
पदविधिश्च पदविधिश्च पदविधिश्च पदविधिश्च पदविधिश्च इति पद-
विधयः । (सर्वविभक्त्यन्त समास) समर्थविधयश्च पदविधयश्च इति
समर्थं पदविधि (पूर्व समास उत्तरपदलोपी, यादृच्छिकी विभक्तिश्च)

अर्थ—(परिभाषेयम्) समर्थानां सम्बद्धार्थानां पदानाम् अस्मिन्
शास्त्रे विधिर्भवति (यह परिभाषा सूत्र है । समर्थ = सम्बद्ध अर्थ वाले पदों का
हस व्याकरण शास्त्र में विधान होता है)

उदा०—ऋयेन सह यस्य योगो भवति, तेन सह स समर्थो भवति ।
वक्ष्यति, द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापनै (२ १ २३) ।
कष्ट श्रित कष्टश्रित । इत्यत्र कष्ट-शब्दस्य श्रित-शब्देन सह योगोऽस्ति ।
अत एव समासो भवति । परन्तु मुहुर्ह्ये त्व कष्ट, श्रित शिष्यो गुरुम्
इत्यत्र कष्ट-शब्दस्य श्रितेन सह समर्थता सम्बन्धो वा नास्ति, अत
असमर्थत्वात् समासो न भवति । एव सर्वत्र समर्थस्य कार्यं भवति
इति योजनीयम् ।

(जिसके साथ जिसका सम्बन्ध होता है उसके साथ वह समर्थ होता है ।
 कहेंगे, द्वितीया इत्यादि सूत्र । 'कष्ट ध्रितः' यहाँ पर कष्ट शब्द का ध्रित शब्द के
 साथ सम्बन्ध है । क्योंकि कष्ट को प्राप्त होना यहाँ अर्थ है । अतः दोनों शब्दों
 में समर्थता है, इसलिए यहाँ समास होता है परन्तु मुद्गसे त्व कष्ट, ध्रितः शिष्यो
 गुरुम्, यहाँ पर भोग रहा है तू कष्ट को, प्राप्त हुआ शिष्य गुरु को, यहाँ पर
 कष्ट शब्द का ध्रित के साथ कोई सम्बन्ध नहीं, अतः समास नहीं होता है ।

[सुप्] आमन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे २।१।२

प्राक्कडारात्समासः २।१।३

५० वि०—प्राक् १।१ कडारात् ५।१

अर्थ—'कडाराः कर्मधारये' इति एतस्मात् प्राक् समासो भवति
 इति अधिकारो वेदितव्यः । ('कडाराः कर्मधारये' इस सूत्र से पहले पहले
 समास का अधिकार समझना चाहिये)

सह सुपा २।१।४

५० वि०—सह अ० । सुपा ३।१

अर्थ—[सुप्] सुपा सह सुप् समस्यते इति अधिकारो वेदितव्यः ।
 (सुबत ने माग सुबन्त का समास होता है, इस बात का अधिकार है)

समासप्रकरणम्

अव्ययीभाव १।१।५

५० वि०—अव्ययीभावः १।१

अर्थ—अव्ययीभावः इति अधिकारो वेदितव्यः (इसके पदवात्
 अव्ययीभाव का अधिकार समझना चाहिये)

अव्यय विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्युद्धि-अर्थाभाव-
 अत्यय-असंप्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्-यथा-आनुपूर्व्य-
 योगपक्ष-सादृश्य-संपत्ति-साकल्य-अन्तवचनेषु २।१।६

५० वि०—अव्ययम् । १।१ विभक्ति-अन्तवचनेषु ७।३ स०—विभि-
 त्तिश्च समीपञ्च समृद्धिश्च व्युद्धिश्च अर्थाभावश्च अत्ययश्च अ-
 संप्रतिश्च शब्दप्रादुर्भावश्च पश्चाच्च यथा च आनुपूर्व्यञ्च योगप-
 क्षञ्च सादृश्यञ्च संपत्तिश्च साकल्यञ्च अन्तश्च इति विभक्ति-
 समीपसमृद्धिव्युद्धिअर्थाभावात्ययासंप्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्य-
 योगपक्षसादृश्यसंपत्तिसाकल्यान्ताः ।

वचनञ्च वचनञ्च वचनञ्च वचनञ्च वचनञ्च वचनञ्च
वचनञ्च वचनञ्च वचनञ्च वचनञ्च वचनञ्च वचनञ्च वचनञ्च
वचनञ्च वचनञ्च वचनञ्च इति वचनानि । विभक्ति-समीप-
समृद्धि-व्यूद्धि-अर्थाभाव अत्यय-असम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्-
यथा-आनुपूर्व्य-योग्यपक्ष-सान्श्य-सपत्ति-साकल्यन्तानां वचनानि इति
विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यूद्धि अर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भापश्चाद्-
यथानुपूर्व्ययोग्यपक्षसान्श्यसपत्तिसाकल्यान्तवचनानि (५० तत्पु०) तेषु ॥

अर्थ—विभक्त्यादिषु अर्थेषु यद्व्यय तत् समर्थेन सुयन्तेन सह
समस्यते अव्ययीभावश्च समासो भवति ।

(विभक्ति इत्यादि अर्थो मे जो अव्यय वह समय धर्मात् सम्बन्धित सुयन्त
के साथ समास को प्राप्त होते हैं और उनकी अव्ययीभाव सज्ञा होती है)

उदा०—विभक्तिप्रचने—अधिसिद्धि, अधिकुमारि । समीपप्रचने—
उपकुम्भम्, उपहृष्टम् । समृद्धिप्रचने—सुमद्रम्, सुमगवम् । व्यूद्धि-
प्रचने—दुर्गयदिवम्, दुर्यवनम् । अर्थाभाप्रचने—निर्मलिकम्,
निर्मलकम् । अत्ययप्रचने—निर्हिमम्, नि शीतम् । असम्प्रतिप्रचने—
अतितैत्तिकम् । शब्दप्रादुर्भावप्रचने—इतिपाणिनि, तत्पाणिनि । पश्चाद्-
प्रचने—अनुरथम् । यथा—योग्यता, वीप्सा, पदार्थानतिवृत्ति सादृश्य
चेति यथार्थाः योग्यताप्रचने—अनुरूपम् । वीप्साप्रचने—प्रत्ययम् ।
पदार्थानति वृत्तिप्रचने—यथाशक्ति । आनुपूर्व्यप्रचने—अनुज्येष्ठम् ।
योग्यपक्षप्रचने—सचक्र धेहि । सादृश्यप्रचने—ससखि । सम्प्रतिप्रचने—
सन्ततः प्राञ्जलाणाम्, सन्ततः शलङ्कायनानाम् । साकल्यप्रचने—सन्तुष्टम-
भ्यवहरति, सन्तुष्टमभ्यवहरति । अन्तप्रचने—सान्ध्यधीते ।

सि०—स्त्रीषु अधिहृत्य कथा प्रवर्तते इति अधिसिद्धि इति लौकिको
विग्रहः । अलीकिकविग्रहस्तु—स्त्री सुप् अधि सु । अधि सु स्त्री सुप् ।
अधिस्त्री* । अधिसिद्धि^३ । अधिसिद्धि सु^४ । अधिसिद्धि^५ । अधिकुमारि ।

१—प्रथमानिदिष्ट समास उपसजनन् (१. १ ४३) उपसजन पूर्वम्
(२. २ ३०) २—प्राक्कडारात्मनाम् (२. १ ३) कृतद्वितसमासाश्च (१. २
४६) सुपो (२. ४ ७१) प्रत्ययस्य (१. १ ६०) ३—अव्ययीभावश्च (२. ४
१८) ह्रस्वो नपु सवे प्रातिपदिकस्य (१. ० ४७) ४—इत्याप्रातिपदिकात् (४
१. १) स्वी (४. १. २) सुप् (१. ४ १०२) विभक्तिश्च (१. ४ १०२)
द्व्येकयोद्विवचनैववचन (१. ४ २२) इति एकत्वे विवक्षिते सु प्रत्यय (३. १
१) परश्च (३. १. २) ५—अव्ययीभावश्च (१. १ ४०) अव्ययादाप्नुप (२

कुम्भस्य समीपम् इति लौकिको विग्रहः । अलौकिकविग्रहस्तु कुम्भ
इस् उप सु । उप सु कुम्भ इस् । उपकुम्भ । उपकुम्भ सु । उपकुम्भ
अम् । उपकुम्भम् । उपरूपम् ।

मगधानां समृद्धिः इति सुमगधम् । मगध आम् सु सु । सु सु मगध
आम् । सुमगध । सुमगध सु । सुमगध अम् । सुमगधम् । सुमद्रम् ।

गवदिकानामृद्धेरभावो दुर्गवदिकम् । गवदिक आम् दुर् सु । दुर्
सु गवदिक आम् । दुर्गवदिक । दुर्गवदिक सु । दुर्गवदिक अम् । दुर्ग-
वदिकम् ।

मत्तिनाशाभावः इति निर्मत्तिकम् । मत्तिक आम् निर् सु । निर् सु
मत्तिक आम् । निर्मत्तिक । निर्मत्तिक सु । निर्मत्तिक अम् । निर्मत्तिकम् ।

अतीतानि हिमानि इति निर्हिमम् । निर् सु हिम जस् । निर् सु
हिम जस् । निर्हिम सु । निर्हिम अम् । निर्हिमम् ।

तैत्सरस्य असम्प्रति इति अतितैत्स्रम् । तैत्स्र इस् अति सु । अति
सु तैत्स्र इस् । अतितैत्स्र सु । अतितैत्स्र अम् । अतितैत्स्रम् ।

पाणिनिः शब्दस्य प्रकाशता । पाणिनि सु इति सु । इति सु पाणि-
नि सु । इतिपाणिनि । इतिपाणिनि सु । इतिपाणिनि ।

रथस्य पश्चात् इति अनुरथम् । रथ इस् अनु सु । अनु सु रथ
इस् । अनुरथ । अनुरथ सु । अनुरथ अम् । अनुरथम् ।

रूपस्य योग्यम् इति अनुरूपम् । रूप इस् अनु सु । अनु सु रूप
इस् । अनुरूप । अनुरूप सु । अनुरूप अम् । अनुरूपम् ।

अर्थमर्थं प्रति इति प्रत्यर्थम् । अर्थ अम् प्रति सु । प्रति सु अर्थ
अम् । प्रतिअर्थ । प्रत्यर्थ सु । प्रत्यर्थ अम् । प्रत्यर्थम् ।

शक्तिमनतिप्रम्य इति यथाशक्ति । शक्ति अम् यथा सु । यथा सु
शक्ति अम् । यथाशक्ति । यथाशक्ति सु । यथाशक्ति ।

ज्येष्ठमानुष्यम् इति अनुज्येष्ठम् । ज्येष्ठ अम् अनु सु । अनु सु
ज्येष्ठ अम् । अनुज्येष्ठ । अनुज्येष्ठ सु । अनुज्येष्ठ अम् । अनु-
ज्येष्ठम् ।

युगपच्चक्रं धेहि इति मचक्रं धेहि । मद् सु चक्र टा । सट सु

चक्र टा । सहचक्र । सचक्र^१ । सचक्र सु । सचक्र अम् । सचक्रम् ।

सदृश सख्या इति ससरि । समान सु सरि टा । समान मु सरि टा । स^२ सखि । ससरि मु । ससिर । ब्रह्मण सम्पत्ति इति सन्नह । ब्रह्मन् टा सह मु । मह मु न्हान् टा । स^३ न्हान् । सन्नहन् सु । सन्नहन् । सन्नह ।

वृणाना साकल्यम् इति सवृणम् । वृण भिस् सह सु । सह स वृण भिस् । स^४ वृण । सवृण मु । सवृण अम् । सवृणम् ।

अग्नेरन्त इति साग्नि । अग्नि टा सह सु । सह सु अग्नि टा । स^५ अग्नि । साग्नि मु । साग्नि ।

यथाऽभादृश्ये २।१।७

प० वि०—यथा अ० । असादृश्ये ७।१॥ स०—न सादृश्यम् इति असादृश्यम् (नञ् तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—असादृश्ये वर्तमान यथा इति अव्यय 'सुगन्तेन सह समस्यते' अत्र्ययीभाष्यस्य समासो भवति । (सादृश्य स भिन्न अर्थ में यथा यह अव्यय समर्थ सुबन्त के साथ समास को प्राप्त होता है और उसकी अव्ययी भाव सना जाती है ।

उदा०—यथावृद्धम् ब्राह्मणानामामन्त्रयन् । यगध्यापकम् ।

सि०—यथावृद्धम् । ये ये वृद्धा । यथा मु वृद्ध जम् । यथावृद्ध । यथावृद्ध मु । यथावृद्ध अम् । यथावृद्धम् ।

[विभाषा] अपपरिवहिरञ्चव [पञ्चम्या] २।१।११

आङ् मर्यादाभिविध्यो २।१।१२

प० वि०—आङ् १।१ मर्यादाभिविध्यो ७।१॥ स०—मर्यादा च अभिविधिविधेति मर्यादाभिविधी (इतरे० द्वन्द्व) तयो ।

अर्थ—[पञ्चम्या] आङ् इति प्तद् अव्ययं मर्यादायाम् अभिविधौ च वर्तमान पञ्चम्यन्तेन सुगन्तेन सह विभाषा समस्यते अत्र्ययीभाष्यस्य समासो भवति । (मर्यादा और अभिविधि में वर्तमान पञ्चम्यत् अव्यय समर्थ सुबन्त के साथ विलय स समास को प्राप्त होता है)

४ १०८) संहितायाम् (६ १ १०) एक पूर्वपरयो (६ १ ८१) अमि पूर्व (६ १ १०३) १—अव्ययीभाव चाकाने (६ ३ ८१) । २—समानस्य (६ ३ ८४) योगविभागान् समाव

उदा०—मर्यादायाम्—आपाटलिपुत्र वृष्टो देवः । आपाटलिपुत्रात् ।
अभिविधौ—आकुमारं यशः पाणिनेः । आ कुमारेभ्यः ।

सि०—आपाटलिपुत्रम् । आ पाटलिपुत्रात् । आङ् सु पाटलिपुत्र
ङसि । आ पाटलिपुत्र । आपाटलिपुत्र सु । आपाटलिपुत्र अम् । आपा-
टलिपुत्रम् । आकुमारम् । आ कुमारेभ्यः । आङ् सु कुमार, भ्यस् ।
आकुमार । आकुमार सु । आकुमार अम् । आकुमारम् ।

तत्पुरुषः २।१।२१

प० वि०—तत्पुरुषः १।१

अर्थ—प्राग्वहुव्रीहेः तत्पुरुषः इति अधिकारो वेदितव्यः ।

(‘सोपो बहुव्रीहिः’ से पहले-पहले तत्पुरुष का अधिकार समझना चाहिये)

द्विगुश्च २।१।२२

प० वि०—द्विगुः १।१ च अ० ।

अर्थ—द्विगुश्च समासस्तत्पुरुषसंज्ञो भवति । (द्विगु समास की
तत्पुरुष सज्ञा होती है) । उदा०—पञ्चराजी । पञ्चगयम् ।

सि०—पञ्चनां राज्ञां समाहारः । पञ्चन् आम् राजन् आम् ।
पञ्चन् राजन्^१ । पञ्चराजन् टच्^२ पञ्चराजन् अ । पञ्च-
राज्^३ अ । पञ्चराज डीप्^४ । पञ्चराज ई । पञ्चराज् ई^५ । पञ्चराजी ।
पञ्चराजी सु । पञ्चराजी स् । पञ्चराजी ।
पञ्चगयम् । पञ्चानां गवाम् समाहारः । पञ्चन् आम् गो आम् । पञ्च
गो । पञ्चगो टच्^१ । पञ्चगो अ । पञ्चगव् अ । पञ्चगव सु ।
पञ्चगव अम् । पञ्चगवम् ।

द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नेः २।१।२३

प० वि०—द्वितीया १।१ श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नेः ३।३

स०—श्रितश्च अतीतश्च पतितश्च गतश्च अत्यस्तश्च प्राप्तश्च आप-
न्नश्च इति श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नाः (इतरे० द्वन्द्वः) तैः

१—तद्विभाषोत्तरपदसमाहारे च (२. १. ५०) २—रात्राहः सतिम्यष्टप्
(५. ४. ६१) ३—अस्तद्विते (६. ४. १४४) ४—तस्यापूर्वो द्विगु (२. १.
(५१) अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः सित्रया भाष्यते (२. ४. ३० या०) द्विगोः (४.
१. २१) ५—यच्च नम् (१. ४. १८) अस्त्य (६. ४. १२६) । यत्वेति च (६.
४. १४८) ६—गोस्तद्वितमुनि (५. ४. ६२)

अर्थ—(द्वितीयान्त मुबन्त त्रितानिभि समयै मुबन्ते सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति) (द्वितीयात् सुबन्त थित इत्यादि समय मुबन्ता के साथ समास को प्राप्त होता है और उसकी तत्पुरुषसत्ता होती है)

उदा०—कष्टश्रित, नरकश्रित, कान्तारातीत, नरकपतित, ग्रामगत, तरङ्गात्यस्त, सुखप्राप्त, सुखापन्न ।

सि०—कष्टश्रित । कष्ट श्रित । कष्ट अम् श्रित सु । कष्ट श्रित । कष्टश्रित सु । कष्टश्रित । कान्तारम् अतीत । कान्तार अम् अतीत सु । कान्तारातीत । नरक पतित । नरक अम् पतित सु । नरकपतित ॥ तरङ्गान् अत्यस्त । तरङ्ग शस् अत्यस्त सु । तरङ्गात्यस्त । सुखम् प्राप्त । सुख अम् प्राप्त सु । सुखप्राप्त ॥ सुखम् आपन्न । सुख अम् आपन्न सु । सुखापन्न ।

तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन २।१।२६

प० वि०—तृतीया १।१ तत्कृतार्थेन ३।१ गुणवचनेन ३।१ तेन हृतम् । तत्कृतम् (तृ० तत्पु०) तत्कृतञ्च अर्थश्च इति तत्कृतार्थम् तेन । गुणस्य वचनम् गुणवचनम् (प० तत्पु०) तेन ।

अर्थ—तृतीयान्त मुबन्त तत्कृतेन गुणवचनेन अर्थशब्देन च समस्यते तत्पुरुषश्च समासो भवति । (तृतीयात् सुबन्त उसके द्वारा किया जाय एस गुणवाची शब्द तथा अथ शब्द के साथ समास का प्राप्त होता है, और उसकी तत्पुरुष सत्ता होती है)

उदा०—शङ्कुलाखण्ड, किरिकाण, अर्थ शब्देन—धान्यार्थ ।

सि०—शङ्कुलाया खण्ड । शङ्कु ला टा खण्ड मु । शङ्कुलाखण्ड । किरिकाण । किरि टा काण मु । किरिकाण । धान्येन अर्थ । धान्य टा अर्थ मु । धान्यार्थ ।

चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षित २।१।३५

प० वि०—चतुर्थी १।१ तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितै ३।३ स०—तस्मै अर्थम् तदर्थम् । तदर्थञ्च अर्थश्च बलिश्च हितञ्च सुखञ्च रक्षितश्च इति तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षिता (इतरे० द्वन्द्व०) तै

अर्थ—चतुर्थ्यन्त मुबन्त तदर्थ अर्थ बलि हित सुख रक्षित इति एते मुबन्तै सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ (चतुर्थ्यन्त मुबन्त तदर्थ, अथ बलि, हित, सुख और रक्षित इन मुबन्ता के साथ समास

० प्राप्त होता है और उसकी तत्पुरुष सज्ञा होती है)

उदा०—तदर्थ—यूपदारुः, कुण्डलहिरण्यम् । अर्थ—X अर्थेन नित्य-समासवचनं सर्वलिङ्गता च वक्तव्या X ब्राह्मणार्थं पयः । ब्राह्मणार्था यवागूः ॥ कुचेरयलिः, महाराजयलिः । गोहितम् । गोसुखम् । गोरक्षितम्, अश्वरक्षितम् ॥

सि०—यूपाय दारुः । यूप डे । दारु सु । यूपदारुः । कुण्डलाय हिरण्यम् । कुण्डल डे हिरण्य सु । कुण्डलहिरण्यम् । ब्राह्मणाय अर्थम् । ब्राह्मण डे अर्थ सु । ब्राह्मणार्थम् । कुचेराय यलिः । कुचेर डे यलि सु । कुचेरयलिः । महाराजाय यलिः । महाराज डे यलि सु । महाराजयलिः । गवे हितम् । गो डे हित सु । गोहितम् । गवे सुखम् । गो डे सुख सु । गोसुखम् । गवे रक्षितम् । गो डे रक्षित सु । गोरक्षितम् ।

पञ्चमी भयेन २।१।३६

प० वि०—पञ्चमी १।१ भयेन ३।१

अर्था—पञ्चम्यन्तं सुबन्तं भयशब्देन सुबन्तेन सह समस्यते । तत्पुरुषश्च समासो भवति । (पञ्चम्यन्त सुबन्त भय शब्द के साथ समास को प्राप्त होता है और उसकी तत्पुरुष सज्ञा होती है)

उदा०—घृकभयम्, चौरभयम् ।

सि०—घृकेभ्यो भयम् । घृक भ्यस् भय सु । घृकभय । घृकभय सु । घृकभय अम् । घृकभयम् ।

सप्तमी शीण्डैः २।१।३६

प० वि०—सप्तमी १।१ शीण्डैः ३।३

अर्था—सप्तम्यन्त सुबन्त शीण्डादिभिः सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ (सप्तम्यन्त सुबन्त शीण्ड इत्यादि सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त होता है और उसकी तत्पुरुष सज्ञा होती है)

उदा०—अक्षशीण्डः, अक्षधूर्तः, अक्षकितवः ।

सि०—अक्षेपु शीण्डः । अक्ष सुप् शीण्ड सु । अक्षशीण्डः । अक्षेपु कितवः । अक्ष सुप् कितव सु । अक्षकितवः ।

दिक्संख्ये, संज्ञायाम् २।१।४६

प० वि०—दिक्संख्ये १।१ संज्ञायाम् ७।१ स०—दिक्च संख्या च इति दिक्संख्ये (इतरं द्वन्द्वः)

अर्थ—[समानाधिकरणेन] दिग्नाचिन शब्दा सरया च सहायां गम्यमानाया ममानाधिकरणेन सुबन्तेन सह समस्यन्ते तत्पुरुषश्च समासो भवति । (दिशावाची शब्द और सख्यावाची शब्द समान अधिकरण जाने समय सुबन्त के साथ सज्ञा गम्यमान हो तो समास को प्राप्त होत है, और उसकी तत्पुरुष सज्ञा हाती है)

उदा०—पूर्वपुत्रामशमी । अपरेपुत्रामशमी । सख्या—सप्तर्षय ।

सि०—पूर्वा च इपुत्रामशमी च । पूर्वा सु इपुत्रामशमी सु । पूर्वपुत्रामशमी । सप्तन् जस ऋपि जस् । सप्तर्षि । सप्तर्षि जस् । सप्तर्षय ।

ॐ इत्यत्र ग्रामाणां सज्ञा ज्ञातव्या । पूर्वाचासाविपुत्रामशमी चेति पूर्वपुत्रामशमी । मन्त्रधियां पूर्वोत्तरपदविभागमात्रप्रदर्शनाय वाक्य कृतम् । नह्यत्र वाक्येन भवितव्यम् । नहि वाक्येन संज्ञा गम्यते ॐ

तद्वितार्थोत्तरपदसमाहारे च २।१।५०

प० नि०—तद्वितार्थोत्तरपदसमाहारे ७।१ च अ० । स०—तद्वितस्य अर्थः तद्वितार्थ (प० तत्पु०) उत्तरपद तत्पद च इति उत्तरपद (कर्म० तत्पु०) तद्वितार्थश्च उत्तरपद च समाहारश्च इति तद्वितार्थोत्तरपदसमाहारम् (ममा० द्वन्द्व) तस्मिन् ।

अर्थ—[द्विक्सख्ये, समानाधिकरणे] तद्वितार्थे विषये, उत्तरपदे च परत, समाहारे च अभिधेये द्विक्सख्ये समानाधिकरणेन सुबन्तेन सह समस्येते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । (तद्वित के अर्थ के विषय में, उत्तरपद के परे रहन पर और समाहार अभिधेय हो तो दिशावाची और सख्यावाची शब्द समानाधिकरण सुबन्त के साथ समास को प्राप्त होते हैं और उसकी तत्पुरुष सज्ञा होती है)

उदा०—दिक् । तद्वितार्थे-पौरवशाल, आपरशाल । उत्तरपदे-पूर्वशालाप्रियः, अपरशालाप्रिय । समाहारे दिक्शब्दो न सम्भवति । संख्या । तद्वितार्थे-पाञ्चनापिति, पञ्चकपाल । उत्तरपदे-पञ्चगवधन, दशगवधन, समाहारे-पञ्चपुली, दशपुली, पञ्चकुमारि, दशकुमारि ।

सि०—पूर्वस्यां शालायां भव । पूर्वा दि शाला दि भव । पूर्वा शाला

१—धर्मीयिको विग्रह । २—समर्थ पदविधि (२. १. १) प्राक्कडा-रात्समासः (२. १. २) तत्पुरुषः (२. १. २१) तद्वितार्थोत्तरपदसमाहारे च (२.

भवः । पूर्वशाला^१ भवः । पूर्वाशाला अण्^२ । पौर्वशाला^३ अ । पौर्वशाल^४
अ । पौर्वशाल सु पौर्वशालः । अपरस्यां शालायां भवः इति आपर-
शालः । पूर्वा शाला प्रिया यस्य । पूर्वा सु शाला सु प्रिया सु^५ । पूर्वा
शाला प्रिया^६ । पूर्वाशालाप्रिया । पूर्वशालाप्रिया^७ । पूर्वशालाप्रिय^८ ।
पूर्वशालाप्रियः । अपरा शाला प्रिया यस्य इति अपरशालाप्रियः । पञ्चानां
नापितानाम् अपत्यम्^९ । पञ्चन् आम् नापित आम् अपत्यम् ।
पञ्चनापित अपत्यम् । पञ्चनापित इञ्^{१०} । पाञ्चनापितिः । पञ्च गावः
धनं यस्य । पञ्चन् जस् गो जस् धन सु । पञ्च गो धन^{११} । पञ्च
गो टच्^{१२} धन । पञ्च गो अ धन । पञ्चगव्^{१३} अ धन । पञ्चगव-
धन सु । पञ्चगवधनः । दशगवधनः । पञ्चानां फलानां समाहारः ।
पञ्चन् आम् फल आम् । पञ्चफल्^{१४} ङीप् । पञ्चफल् ई । पञ्चफल्
ई । पञ्चफली सु । पञ्चफली स् । पञ्चफली । पञ्चकुमारि । पञ्चानां
कुमारीणां समाहारः । पञ्चकुमारी । पञ्चकुमारि^{१५} सु । पञ्चकुमारि ।

संख्यापूर्वो द्विगुः २।१।५१

प० वि०—संख्यापूर्वः १।१ द्विगुः १।१ स० संख्यापूर्वा यस्य सः
संख्यापूर्वः (ग्रहु०)

अर्थ—[तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च] तद्धितार्थे उत्तरपदे समा-
हारे च यः संख्यापूर्वः समासः स द्विगुसंज्ञो भवति । (तद्धित के प्रथं के

१. ५०) वृत्तद्धितसमासादय (१. २. ४६) सुपो धातुप्रातिपदिकयोः (२. ४. ७१) १—स्त्रियाः पुवद् (६. ३. ३२) २—प्राग्दीव्यतोऽण् (४. १. ८३)
तत्र भवः (४. ३. ५३) प्रत्ययः (३. १. १) परश्च (३. १. १)
३—तद्धितेष्वचामादेः (७. २. ११७) वृद्धिरादेच् (१. १. १) स्थाने-
ऽन्तरतमः (१. १. ४६) ४—यस्येति च (६. ४. १४८) ५—इत्यत्र पूर्वं
त्रयाणां पदानां बहुव्रीहिः । अनेकमन्य पदार्थे (२. २. २४) परचात् प्रियशब्दे
परतः पूर्वंपो पदभेदस्तत्पुरुषः ६—सुपो धातुप्रातिपदिकयोः (२. ४. ७१)
७—तद्धितार्थोत्तरपद समाहारे च ८—गोस्त्रियोऽपमर्जनस्य (१. २. ४८)
९—इत्यत्र तद्धितार्थेविषयभूते प्राक् समासः । १०—घट इञ् (४. १. ६५) ११—तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च (२. १. ५०) १२—गोस्तद्धितवृद्धि
(५. ४. ६१) १३—घवह्स्पोटनस्य (६. १. १२३) द्विज (१. १. ५२)
१४—द्विगुरेववचनम् (२. ४. १) घञात्ततोत्तरपदे द्विगु स्त्रिया माप्यते (२. ४. ३० पा०) द्विगोः (४. १. २१) १५—गोस्त्रियोऽपमर्जनस्य (१. २. ४८)

विषय में, उत्तरपद के परे रहने पर और समाहार के अभिधेय में सख्या है पूर्वपद में जिसके ऐसे समास की द्विगु गज्ञा होती है)

उदा०—तद्विदार्ये-पञ्चरूपालः । उत्तरपदे-पञ्चनावप्रियः । समाहारे-पञ्चपूली ।

सि०—पञ्चमु. कपालेपु^१ संस्कृतः । पञ्चरूपाल^२ अण् । पञ्च-कपाल^३ । पञ्चरूपाल मु । । पञ्चरूपालः ॥

पञ्चनावप्रियः । पञ्च नावः प्रियाः यस्य । पञ्चन् जस् नौ जस प्रिया जस् । पञ्चन् नौ प्रिया । पञ्च नौ दच्^४ प्रिया । पञ्चनाव अ प्रिया पञ्चनाव प्रिया । पञ्चनावप्रिय सु । पञ्चनावप्रियः ।

विशेषण विशेष्येण बहुलम् २।१।५६

प० वि०—विशेषणं १।१ विशेष्येण ३।१ बहुलम् १।१॥

अर्थ—[समानाधिकरणेन] (भेदक विशेषणं भेद्यं विज्ञेयम्) विशेषणवाचि सुबन्त विशेष्यवाचिना समानाधिकरणेन सुबन्तेन सह समस्यते तत्पुरुषश्च समासो भवति । (विशेषणवाची सुबन्त विशेष्यवाची समान अधिकरण वाले समर्थ सुबन्त के साथ समास को प्राप्त होता है और उसकी तत्पुरुष सज्ञा होती है)

उदा०—नीलोत्पलम्, रक्तोत्पलम् ।

सि०—नीलञ्च तदुत्पलञ्च इति नीलोत्पलम् । नील मु उत्पल मु । नील उत्पल । नीलउत्पल । नीलोत्पल स । नीलोत्पल अम् । नीलोत्पलम् ।

युवा खलतिपलितवलिनजरतीभिः २।१।६६

प० वि०—युवा १।१ खलतिपलितवलिनजरतीभिः ३।३॥ स०—खलतिश्च पलितश्च वलिनश्च जरती च इति खलतिपलितवलिनजरत्यः (इतरे० द्वन्द्वः) ताभिः ।

अर्थ—युवशब्दः खलत्यादिभिः समानाधिकरणैः सुबन्तैः सह समस्यते तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ (युवन् शब्द खलति इत्यादि समान अधिकरण वाले समर्थ सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त होता है और उसकी तत्पुरुष सज्ञा होती है) ।

उदा०—युवखलतिः, युवखलती । युवपलितः, युवपलिता । युववलिनः,

१—तद्विदार्ये विषयभूते पूर्वं समामः २—संस्कृतम् (४. ४. ३) ३—द्विगुं मनस्ये (४. १. ८८) ४—नावो द्विगोः (४. ४. ६६)

युववलिना । युवजरन्, युवजरती ।

सि०—युवा चासौ खलतिश्च इति युवखलति । युवन् सु खलति सु । युवन् खलति । युवखलति । युवखलति सु । युवखलति स् । युवखलति । युवखलती । युवति चासौ खलती च इति । युवति सु खलती सु । युवति खलती । युवन्^१ खलती । युवखलती । युवखलती सु । युवखलती । युवा चासौ पलितश्च इति । युवन् सु पलित सु । युवपलित । युवतिश्चासौ पलिता च इति । युवति सु पलिता सु । युवति पलिता । युवन् पलिता । युवपलिता । युवपलिता सु । युवपलिता स् । युवपलिता । युवा चासौ वलिनश्च इति । युवन् सु वलिन^१ सु । युवन् वलिन । युव वलिन । युव वलिन सु । युववलिन । युवतिश्चासौ वलिना च इति । युवति स वलिना सु । युवति वलिना । युवन्^१ वलिना । युव वलिना । युववलिना, सु । युववलिन स् । युववलिना । युवा चासौ जरन् च इति । युवन् सु जरन् सु । युवन् जरन् । युवजरन् । युवजरन् सु । युवजरन् मु त् स् । युव जर न त् स् । युवजरन् न । युवजरन् । युवतिश्चासौ जरती च इति । युवति सु जरती सु । युवति जरती । युवन्^१ जरती । युवजरती । युवजरती सु । युवजरती स् । युवजरती ।

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया द्वितीयाध्याये प्रथम पाद

नञ् २।२।६

प० वि०—नञ् १।१

अर्थ—नञ् समर्थेन सुगन्तेन सह समस्यते ।

(नञ् यह समय सुबत् के साथ समास को प्राप्त होता है)

उदा०—अत्राक्षण, अनीश्वरवाद । × नञो नलोपस्तिङि क्षेपे (६ ३ ७३ वा०) × अनेन वार्तिकेन ज्ञाप्यते नञो तिङन्तेन सह समासो भवति । अपचसि त्व जाल्म ।

सि०—न ब्राह्मण इति । नञ् सु ब्राह्मण स् । न ब्राह्मण । नब्राह्मण । अ^१ ब्राह्मण । अत्राक्षण सु । अत्राक्षण । न ईश्वरवाद इति । नञ् सु ईश्वरवाद सु । न ईश्वरवाद । अईश्वरवाद । अनु^२ ईश्वरवाद । अनु ईश्वरवाद । अनईश्वरवाद । अनीश्वरवाद स् । अनीश्वरवाद ।

१—तत्पुरुष समानाधिकरण कर्मधारय (१ । २. ४२) पुक्त्वमधारय० (६ ३) । २—ननोऽन नञ् (६ ३ ७१) ३—उत्मानुद्वि (६ ३ ७२) ।

ईपदकृता २।१।७

प० वि०—ईपन् १।१ अह्ता ३।१॥

स०—न कृन् इति अह्न् (नब् तत्पु०) तेन

अर्थ—ईपद् इत्ययं शब्दोऽहन्तेन मुबन्तेन सह समस्यते तत्पुरुषश्च समासो भवति । (ईपन् यह जो मन्त्र वह अहन्त मुबन्त के साथ समास को प्राप्त होता है और उसकी तत्पुरुष सज्ञा होती है)

उदा०—ईपत्कडारः, ईपत्पिङ्गलः ।

सि०—ईपच्चासौ कडारश्च इति । ईपन् मु कडार मु । ईपन् मु कडार मु । ईपन्कडार । ईपत्कडार मु । ईपन्कडारः ।

पष्ठी २।१।८

प० वि०—पष्ठी १।१

अर्थ—पष्थ्यन्तं मुबन्तं समर्थेन मुबन्तेन सह समस्यते तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ (पष्थ्यन्त मुबन्त समर्थ मुबन्त के साथ समास को प्राप्त होता है और उसकी तत्पुरुष सज्ञा होती है)

उदा०—राजपुरुषः, ब्राह्मणकन्यस्तः ।

सि०—राजः पुरुषः । राजन् इस् पुरुष मु । राजन् पुरुष । राज-पुरुष । राजपुन्य मु । राजपुरुष स् । राजपुरुष र् । राजपुरुष र् । राज-पुरुषः ।

याजकादिभिश्च २।२।६

प० वि०—याजकादिभिः ३।३ च अ० । स०—याजकः आदिवेषां ते याजकादयः (षड्०) वै ।

अर्थ—[पष्ठी] पष्थ्यन्तं मुबन्तं याजकादिभिः मुबन्तैः सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । (पष्थ्यन्त मुबन्त याजक आदि समर्थ मुबन्ता के साथ समास को प्राप्त होता है और उसकी तत्पुरुष सज्ञा होती है)

उदा०—ब्राह्मणयाजकः, क्षत्रिययाजकः ।

न निर्दोरणे २।२।१०

प० वि०—न अ० । निर्दोरणे ७।१

अर्थ—[पष्ठी] निर्दोरणे या पष्ठी सा न समस्यते । (निर्दोरण में जो पष्ठी वह समास को नहीं प्राप्त होती है)

उदा०—(जातिगुणक्रियाभिः समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्द्धारणम्) तत्रियः मनुष्याणां शूरतमः । कुष्णाः गवां संपन्नहीरतमाः ।
 ❀ इत्यत्र मनुष्यशब्दस्य शूरतमशब्देन सह समासो न भवति ।❀

पूरणगुणसुहितार्थसद्व्ययतव्यसमानाधिकरणेन २।१।१७

प० वि०—पूरणगुणमुहितार्थसद्व्ययतव्यसमानाधिकरणेन ३।१
 स०—पूरणं च गुणश्च सुहितं च इति पूरणगुणसुहितानि ॥ अर्थश्च
 अर्थश्च अर्थश्च इति अर्थाः ॥ पूरणगुणसुहितानि अर्थाः येषां ते पूरण-
 गुणसुहितार्थाः ॥ पूरणगुणसुहितार्थाश्च सच्च अव्ययञ्च तव्यञ्च समा-
 नाधिकरणञ्चेति पूरणगुणमुहितार्थसद्व्ययतव्यसमानाधिकरणम्
 (समा० द्वन्द्वः) तेन ॥

अर्थ—[पष्ठी, न] पूरणार्थ-गुणार्थ-सुहितार्थ-सद्-अव्यय-तव्य-
 समानाधिकरण इत्येतैः सुबन्तैः सह पष्ठी न समस्यते । (पूरण अर्थं वात्ते,
 गुणवाचक, तृप्ति अर्थं वात्ते, सत् (सत्, दानच्) प्रत्ययान्त, अव्यय संज्ञक,
 तव्यप्रत्ययान्त और समानाधिकरण सुबन्त के साथ पष्ठी समास को नहीं
 प्राप्त होती है)

उदा०—पूरणार्थ-आत्राणां पञ्चमः, आत्राणां दशमः ॥ गुणार्थ-
 मलाकायाः शौक्ल्यम्, काकस्य काप्पर्यम् ॥ सुहितार्थ-फलानां सुहितः,
 फलानां तृप्तः ॥ सत्-ब्राह्मणस्य कुर्वन्, ब्राह्मणस्य कुर्वाणः ॥ अव्यय-
 ब्राह्मणस्य कृत्वा, ब्राह्मणस्य हृत्वा । तव्य-ब्राह्मणस्य कर्त्तव्यम् ॥ समा-
 नाधिकरण—उद्गः पाटलिपुत्रस्य, पाणिनेः सूत्रकारस्य ॥

कुगतिप्रादयः १।१।१८

प० वि०—कुगतिप्रादयः १।३ स०—कुरश्च गतिश्च प्रादयश्च इति
 कुगतिप्रादयः । प्र आदिर्येषां ते प्रादयः ॥

अर्थ—[नित्यम्] कुः गतिः प्रादयश्च समर्थेन शब्दान्तरेण सह
 नित्यं समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । (कु यह शब्द, गति संज्ञा वात्ते
 तथा प्र इत्यादि दूसरे समर्थ-शब्दों के साथ समास को प्राप्त होते हैं और
 उसकी तत्पुरुष संज्ञा होती है)

उदा०—कुपुरुषः । गतिः । उररीहृतम् । Xप्रादयः दुर्निन्दायाम्
 Xदुष्पुरुषः । Xस्वतीपूजायाम् Xसुपुरुषः अतिपुरुषः । Xप्रादयो
 गताद्यर्थे प्रथमया Xप्रगतः आचार्यः प्राचार्यः ॥ Xअत्यादयः क्रान्ता-

द्यर्थे द्वितीयया X अतिक्रान्तः खट्वाम्, अतिसद्वचः ॥ X अवादयः
 कुप्राद्यर्थे तृतीयया X अवक्रुष्टः कोकिलया अवकोकिलः ॥ X पर्यादयो
 ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या X परिग्लानो अध्वयनाय, पर्यव्ययनः X निरादयः
 क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या X निष्क्रान्तः कौशाम्याः, निष्कौशाम्बि ॥
 X उपेत सह समासो विभक्त्यलोप पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं न वक्तव्यम्
 X वाससीद्व ॥ X यागर्याविव ॥ प्रादिप्रसङ्गे कर्मप्रवचनीयानां प्रतिषेधो
 वक्तव्यः X वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत् । साधुर्देवदत्तो मातर प्रति ॥
 सि०—कुपुरपः ॥ कु. पापार्थे । कुत्सितः पुरूपः । कु सु पुरूप सु ।
 कुपुरप । कुपुरूपः ॥

उपपदमतिङ् २।२।१६

प० वि०—उपपदम् १।१ अतिङ् १।१ स०—न तिङ् अतिङ्
 (नञ् तत्पु०)

अर्थ—[नित्यम्] अतिङन्तम् उपपदम् समर्थेन शब्दान्तरेण सह
 नित्य समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । (तिङ् निमित्तके अन्त में न हो
 ऐसा उपपद, समर्थ शब्दान्तर के साथ नित्य समास को प्राप्त होता है और
 उसकी तत्पुरुष सत्ता होती है)

उदा०—कुम्भकार, नगरकार ।

सि०—कुम्भकार । कुम्भ करोति इति । कुम्भ अम् कृ अण्^१ ।
 कुम्भ अम् कार^२ । कुम्भ कार । कुम्भकार सु । कुम्भकारः ।

शेषो बहुव्रीहि २।२।२३

प० वि०—शेष १।१ बहुव्रीहिः १।१

अर्थ—शेषः समासो बहुव्रीहिसङ्गो भवति । (कहे हुए से शेष समास
 की बहुव्रीहि सत्ता हाती है इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

अनेकमन्यपदार्थे २।२।२४

प० वि०—अनेकम् १।१ अन्यपदार्थे ७।१ ॥ स०—न एकम् इति
 अनेकम् ॥ अन्यत्वात्सो पदार्थश्च इति अन्यपदार्थः (कर्म० तत्पु०) तस्मिन्

अर्थ—अन्यपदार्थे अन्यमन्त्रे, अनेकं, सुखं, परस्परं, समस्यते, बहु-
 व्रीहिश्च समासो भवति । (अन्य पदार्थ के ज्ञान होने में अनेक सुबन्त पर-

१—कर्मण्यण् (३. २. १) प्रत्यय. (३. १. १) परस्च (३. १. २) २—

उपपदमतिङ् (२. २. १६)

स्पर समास को प्राप्त होते हैं और उसकी बहुव्रीहि सज्ञा होती है)

उदा०—चित्रगुः । शवलगुः । प्राप्तोदको ग्रामः ॥

सि०—चित्राः गावः यस्य । चित्रा जस् गो जस् । चित्रा गो । चित्रगु^१ । चित्रगु सु । चित्रगुः । शवलाः गावः यस्य । शवला जस् गो जस् । शवलगुः ॥ प्राप्तम् उदक य ग्राम सः । प्राप्त सु उदक सु । प्राप्त उदक । प्राप्तोदक सु । प्राप्तोदकः ॥

दिङ् नामान्यन्तराले २।२।२६

प० वि०—दिङ् नामानि १।३ अन्तराले ७।१ स०—दिशां नामानि इति दिङ् नामानि ।

अर्थ—दिङ् नामानि सुबन्तानि अन्तराले वाच्ये समस्यन्ते, बहुव्रीहिश्च समासो भवति । (दिशा नाम वाले सुबन्त अन्तराल (दो दिशाओं की मध्यवर्ती उपदिशा) के ज्ञान होने में समास को प्राप्त होते हैं और उसकी बहुव्रीहि सज्ञा होती है)

उदा०—दक्षिणपूर्वा दिक्, पूर्वोत्तरा, उत्तरपश्चिमा, पश्चिमदक्षिणा ।

सि०—दक्षिणस्याश्च पूर्वस्याश्च दिशोर्बद्ध अन्तरालं, दक्षिणपूर्वा । दक्षिणपूर्वा सु । दक्षिणपूर्वा ॥

तेन सहेति तुल्ययोगे २।२।२८

प० वि०—तेन ३।१ सह अ० । तुल्ययोगे ७।१ स०—तुल्यश्चासौ योगश्च इति तुल्ययोग (कर्म० तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—सह इति एतत् सुबन्तं तुल्ययोगे वर्तमानं तृतीयान्तेन सुबन्तेन सह समस्यते, बहुव्रीहिश्च समासो भवति । (सह यह सुबन्त तुल्ययोग में वर्तमान होने पर तृतीयान्त सुबन्त के साथ समास को प्राप्त होता है और उसकी बहुव्रीहि सज्ञा होती है)

उदा०—सपुत्रः, सच्छात्रः ।

सि०—सह पुत्रेण^१ आगतः पिता इति । सह पुत्रेण । सह पुत्र टा । स^२ पुत्र । सपुत्र सु । सपुत्रः ॥ सह छात्रेण आगतः अध्यापकः इति ।

१—सप्तमीविशेषणे बहुव्रीही (२. २. ३५) २—गास्त्रिगोरपसजंनस्य (१. २. ४८) स्त्रिया पुबद्ध० (६. ३. ३२) इयनेन चित्राशब्दस्य पुस्तम् । ३—गर्धनाम्न. वृत्तिमात्रे पुबद्धभावः ४—सहयुक्तेऽप्राप्ते (२. ३. १९) इति तृतीया विभक्तिः ५—बोपमजंनस्य (६. ३. ८२) इति सहस्य मभावः

सह छात्रेण । सह छात्र टा । सह छात्र । स छात्र । स तुक्^१ छात्र ।
सत्छात्र । सच्छात्र^२ सु । सच्छात्र ॥

चार्थे द्वन्द्व २।२।२६

प० वि०—चार्थे ७।१ द्वन्द्व १।१ स०—चस्य अर्थ चार्थे. (प०
तत्पु०) तस्मिन्

अर्थ—[अनेकम्] अनेकं सुप्रसन्नं चार्थे वर्तमानं परस्पर समस्यते,
द्वन्द्वश्च समासो भवति । (अनेक सुप्रसन्न च के अर्थ में वर्तमान परस्पर
समास को प्राप्त होते हैं और उसकी द्वन्द्व सज्ञा होती है)

अर्थ—रामलक्ष्मणौ । पल्लवप्रोद्यौ । धवस्वदिरपलाशा ।

सि०—रामश्च लक्ष्मणश्च इति । राम सु लक्ष्मण सु । रामलक्ष्मण ।
रामलक्ष्मण^३ औ । रामलक्ष्मणौ^४ । धवश्च स्वदिरश्च पलाशश्च इति ।
धव सु स्वदिर सु पलाश सु । धवस्वदिरपलाश । धवस्वदिरपलाश जस् ।
धवस्वदिरपलाश अस् । धवस्वदिरपलाशास्^५ । धवस्वदिरपलाशा ।

उपसर्जन पूर्वम् २।२।३०

प० वि०—उपसर्जनम् १।१ पूर्वम् १।१।

अर्थ—उपसर्जनसंज्ञक पूर्व प्रयोक्तव्यम् । (उपसर्जन सज्ञा वाले
का पूर्व में प्रयोग करना चाहिए)

द्वन्द्वे वि २।२।३२

द्वन्द्वे ७।१ वि १।१

अर्थ—[पूर्वम्] द्वन्द्वे समासे ध्यन्तं पूर्व प्रयोक्तव्यम् । (द्वन्द्व समास
में वि है अन्त में जिसके ऐसे शब्द का पूर्व में प्रयोग करना चाहिए)

उदा०—पटुगुप्ती, मृदुगुप्ती ।

सि०—पटुगुप्ती । पटुश्च गुप्तश्च । पटु सु गुप्त सु । पटुगुप्त । पटु-
गुप्त^६ औ । पटुगुप्ती । मृदुश्च गुप्तश्च इति । मृदु स गुप्त सु । मृदु-
गुप्त । मृदुगुप्त औ । मृदुगुप्ती ।

१—छे च (६ १ ७१) २—स्तो वचना इह (८ ४ ३६) ३—अल्पाक्षरम्
(२ २. ३४) ४—वृद्धिरेचि (६ १ ८५) प्रथमयो पूर्वसवर्णं (६ १. ६८)
नादिचि (६ १ १००) वृद्धिरेचि (६ १ ७५) ५—प्रथमयो पूर्वसवर्णं (६
१ ६८) ६—शेषो ध्यसति (१ ४ ७) द्वन्द्वे वि (२ २ ३२)

अजाद्यदन्तम् २।२।३३

प० वि०—अजाद्यदन्तम् १।१ स०—अच् आदिर्यस्य तत् अजादि (बहु०) अत् अन्ते यस्य इति अदन्तम् (बहु०) अजादि चादः अदन्तं च इति अजाद्यदन्तम् । (कर्म० तत्पु०)

अर्थ—[द्वन्द्वे] अजाद्यदन्तं शब्दरूपं द्वन्द्वे समासे पूर्वं प्रयोक्तव्यम् । (अच् हे यादि में जिस के और अकार जिस के अन्त में है उसका द्वन्द्व समास में पूर्वं प्रयोग होता है) ।

उदा०—उग्रस्वरम्, उग्रशशकम् × बहुष्वनियमः × अश्वरथेन्द्राः, इन्द्ररथाश्वाः ।

अल्पाचत्तरम् २।२।३४

प० वि०—अल्पाचत्तरम् १।१ स०—अल्पः अच् यस्मिन् इति अल्पाच् (बहु०) द्वौ इमौ अल्पाचौ, अयम् अनयोरतिशयेन अल्पाच् इति अल्पाचत्तरः ।

अर्थ—[द्वन्द्वे] अल्पाचत्तर शब्दरूपं द्वन्द्वे समासे पूर्वं प्रयोक्तव्यम् ।

(अल्प अच् वाले शब्द का द्वन्द्व समास में पूर्वं प्रयोग करना चाहिए) ।

उदा०—रामलक्ष्मणौ । प्लक्ष्मप्रोधौ । धवस्वदिरपलाशाः × बहुष्वनियमः × शङ्खदुन्दुभिर्वीणाः । वीणाशङ्खदुन्दुभिः । × लघ्वत्तरं पूर्वं निपततीति वक्तव्यम् × कुशकाशम् । शरशादम् ॥ × अभ्यर्हितं च पूर्वं निपततीति वक्तव्यम् × मातापितरौ, सीतारामौ, रुक्मणीकृष्णौ, गौरीशङ्करी, कमलाजवाहरी । × भ्रातुश्च ज्यायसः पूर्वनिपातो वक्तव्यः × युधिष्ठिरार्जुनौ ॥ × सख्यायाः अल्पीयस्याः पूर्वनिपातो वक्तव्यः × द्वित्राः, त्रिचतुराः, नयतिशतम् ।

सप्तमीविशेषणो बहुव्रीहौ २।२।३५

प० वि०—सप्तमीविशेषणो १।२ बहुव्रीहौ ५।१॥

स०—सप्तमी च विशेषणञ्च इति सप्तमीविशेषणो (इतरे० द्वन्द्वः)

अर्थ—सप्तम्यन्तं विशेषणं [च बहुव्रीहिममासे पूर्वं प्रयोक्तव्यम् ।

(सप्तम्यन्त और विशेषण का बहुव्रीहि समास में पूर्वं प्रयोग करना चाहिए) ।

उदा०—सप्तमी—कण्ठेनालः^१ दरसिनोमा^१ ॥ विशेषण-चित्रगुः, शमलगुः ।

निष्ठा २।२।३६

५० वि०—निष्ठा १।१

अर्थ—[बहुव्रीहौ] निष्ठान्त शब्दरूपं बहुव्रीहिसमासे पूर्वं प्रयोक्तव्यम् (बहुव्रीहि समास में निष्ठान्त का पूर्व प्रयोग करना चाहिये) ।

उदा०—कृतकटः, भित्तितभित्तिः ।

सि०—कृतकटः । कृतः कटः येन सः । कृतं सु कटं सु । कृतकटः ।

कडाराः कर्मधारये २।२।३७

५० वि०—कडाराः १।३ कर्मधारये ७।१

अर्थ—कर्मधारये समासे कडारादयः शब्दाः पूर्वं वा प्रयोक्तव्याः । (कर्मधारय समास में कडार इत्यादि शब्दों का विकल्प से पूर्व प्रयोग करना चाहिये)

उदा०—कडारजैमिनिः, जैमिनिकडारः ।

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया द्वितीयाध्याये द्वितीयः पादः



विभक्तिप्रकरणम्

अनभिहिते २।३।१

५० वि०—अनभिहिते ७।१ म०—न अभिहितम् अनभिहितम् ।

अर्थ—अनभिहिते अनुक्ते अनिर्दिष्टे अकथिते कर्मादौ विभक्तिर्भवति इति अधिकारो वेदितव्यः । (नहीं बहे गये कर्ता, कर्म इत्यादि में विभक्ति होती है, इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

कर्मणि द्वितीया २।३।२

५० वि०—कर्मणि ७।१ द्वितीया १।१

अर्थ—अकथिते कर्मणि द्वितीया विभक्तिर्भवति ।

(अकथित कर्म में द्वितीया विभक्ति होगी है)

उदा०—कृतं करोति । ग्रामं गच्छति ।

उभयवर्तसोः कार्या विगुण्यादिषु त्रिषु ।

द्वितीयाऽऽन्तेऽन्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ॥

उभयवो ग्रामम् । सर्वतो ग्रामम् । धिग् देवदत्तम् । उपरिपरि ग्रामम् । अध्यधि ग्रामम् । अधोऽधो ग्रामम् । X अभितः परितः समय

निकषा हा-प्रतियोगेषु च दृश्यते X अभितो ग्रामम् । परितो ग्रामम् । समया ग्रामम् । निकषा ग्रामम् । हा देउदत्तम् । बुमुच्चित न प्रतिभाति किंचित् ।

अन्तरान्तरेणयुक्ते २।३।४

प० वि०—अन्तरान्तरेणयुक्ते ७।१ स०—अन्तरा च अन्तरेण च इति अन्तरान्तरेणौ । अन्तरान्तरेणाभ्याम् युक्तम् इति अन्तरान्तरेण-युक्तम् (तृ० तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—[द्वितीया] अन्तरा अन्तरेण इत्येताभ्यां युक्ते द्वितीया विभक्तिर्भवति । (अन्तरा और अन्तरेण इन दोनों निपातों से सम्बद्ध शब्दों में द्वितीया विभक्ति होती है)

उदा०—अन्तरा त्वां च मा च कमण्डलु । अन्तरेण त्वां च मां च कमण्डलु ।

कालाध्वनोरत्यन्तसयोगे २।३।५

प० वि०—कालाध्वनो ६।० अत्यन्तसयोगे ७।१ स०—कालश्च अध्वा च इति कालाध्वनौ (इतरे० द्वन्द्व) तयो । अत्यन्तश्चासौ सयोगश्च इति अत्यन्तसयोग (कर्म० तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—अत्यन्तसयोगे गम्यमाने कालशब्देभ्य अध्वाशब्देभ्यश्च द्वितीया विभक्तिर्भवति । (अत्यन्त सयोग जान जान पर कालवाची तथा मागवाची शब्दों से द्वितीया विभक्ति होती है)

उदा०—क्रियागुणद्रव्यै साकन्येन कालाध्वनो सम्बन्ध अत्यन्त-सयोगः । मासमधीते, सवत्सरमधीते । मास कल्याणी, सवत्सरं फल्याणी । मास गुडधाना, सवत्सर गडधाना । अध्वन-क्रोशमधीते, योजनमधीते । क्रोश कटिला नदी, योजन कुटिला नदी । क्रोश पर्वत, योजन पर्वत ॥

अपवर्गे तृतीया २।३।६

प० वि०—अपवर्गे ७।१ तृतीया १।१

अर्थ—[कालाध्वनोरत्यन्तसयोगे] अपवर्गं फलप्राप्ती सत्या क्रियापरिममप्ति । अपवर्गे गम्यमाने कालाध्वनोरत्यन्तसयोगे तृतीया विभक्तिर्भवति । (फल प्राप्त हा जान पर क्रिया की जो समाप्ति हो जाती है उसे अपवग कहन है) (अपवग जाने जाने पर कालवाची और मागवाची शब्दों से अत्यन्त सयोग में तृतीया विभक्ति होती है)

उदा०—मासेन वेदोऽधीतः । संवत्सरेण वेदोऽधीतः । अध्यनः—
क्रोशेन अध्यायोऽधीतः । योजनेन अध्यायोऽधीतः ।

कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया २।३।८

प० वि०—कर्मप्रवचनीययुक्ते ७।१ द्वितीया १।२ स०—कर्मप्रवचनीयेन युक्तं कर्मप्रवचनीययुक्तम् (तृतीया तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—कर्मप्रवचनीयेन युक्ते द्वितीया विभक्तिर्भवति (कर्मप्रवचनीय संज्ञा वाले शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है)

उदा०—युक्तं प्रति विद्योतते विद्युत्, वृक्षम् अनु ।

चतुर्थी सम्प्रदाने २।३।१३

प० वि०—चतुर्थी १।१ सम्प्रदाने ७।१

अर्थ—[अनभिहिते] अनुक्ते सम्प्रदाने चतुर्थी विभक्तिर्भवति । (नहीं कहे गये सम्प्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति होती है)

उदा०—भिक्षुकाय धनं ददाति । उपाध्यायाय गां ददाति । देय-
दत्ताय रोचते । पुष्पेभ्यः स्पृहयति ।

नमः स्वस्तिस्वाहास्वधालवपङ्गयोगाच्च २।३।१६

प० नि०—नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालवपङ्गयोगात् ५।१ च अ० ।
स०—नमश्च स्वस्तिश्च स्वाहाश्च स्वधाश्च अलं च वपट् च इति नमः-
स्वस्तिस्वाहास्वधालवपङ्गः । (इतरे० द्वन्द्वः) तैर्योगः (तृतीया तत्पु०)
तस्मिन् ॥

अर्थ—[चतुर्थी] नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधा अलं वपट् इत्येतैर्योगे
चतुर्थी विभक्तिर्भवति । (नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलं और वपट्
इन शब्दों के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है)

नमो देवेभ्यः । स्वस्ति प्रजाभ्यः । स्वाहाऽनये । स्वधा पितृभ्यः ।
अलं मत्तो मत्ताय । अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम् । प्रभुर्मल्लो मल्लाय ।
शक्तो मल्लो मल्लाय । वपङ् अग्नये ।

कर्तृकरणयोस्तृतीया २।३।१८

प० वि०—कर्तृकरणयोः ७।२ तृतीया १।१ स०—कर्ता च करणं
च इति कर्तृकरणे (इतरे० द्वन्द्वः) तयोः ।

अर्थ—अनुक्ते कर्त्तरि करणे च तृतीया विभक्तिर्भवति ।

(अनुक्त कर्त्ता और करण कारक में तृतीया विभक्ति होती है)

उदा०—कर्त्ता-देवदत्तेन कृतम् । यज्ञदत्तेन कृतम् । करण-दात्रेण
लुनाति । परशुना छिनत्ति ।

सहयुक्तेऽप्रधाने २।३।१६

प० वि—सहयुक्ते ७।१ अप्रधाने ७।१ स०—सह्येन युक्तम् सह-
युक्तम् (तृतीया तत्पु०) तेन । न प्रधानम् अप्रधानम् तस्मिन् अप्रधाने ।

अर्थ—[तृतीया] सहशब्देन युक्ते अप्रधाने तृतीया विभक्ति-
र्भवति । (सह शब्द के योग में अप्रधान में तृतीया विभक्ति होती है)

उदा०—पुत्रेण सह आगतः पिता ।

येनाङ्गविकार २।३।२०

प० वि०—येन ३।१ अङ्गविकार. १।१ स०—अङ्गस्य विकारः ।

अर्थ—[तृतीया] येन अङ्गस्य विकार लक्ष्यते तस्मात् तृतीया
विभक्तिर्भवति । (जिस शब्द से अङ्ग का विकृत होना जाना जाता है उससे
तृतीया विभक्ति होती है)

उदा०—लोचनेन काण. । पादेन स्वञ्ज. । पाणिना कुण्ठः ।

सि०—पाणिना । पाणि टा । पाणि ना । पाणिना ॥

हेतौ २।३।२३

प० वि—हेतौ ७।१

अर्थ—[तृतीया] फलसाधनयोग्य पदार्थों लोके हेतुरुच्यते । हेतुवा-
चिनस्तृतीया विभक्तिर्भवति । (फल को सिद्ध करने योग्य वस्तु को ससार
में हेतु कहते हैं) (हेतुवाची शब्दों से तृतीया विभक्ति होती है)

उदा०—धनेन कुलम् । विद्यया यशः ।

सि०—विद्या टा । विद्ये आ । विद्यय् आ । विद्यया ।

पृष्ठी हेतुप्रयोगे २।३।२६

प० वि०—पृष्ठी १।१ हेतुप्रयोगे ७।१ स०—हेतोः प्रयोगः हेतुप्रयोगः
(प० तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—हेतुशब्दस्य प्रयोगे पृष्ठी विभक्तिर्भवति । (हेतु शब्द के

प्रयोग में पड़ी विभक्ति होती है)

उदा०—अन्नस्य हेतोवर्सति ।

सि०—अन्न डस् । अन्न स्य^१ । अन्नस्य ॥

सर्वनाम्नस्तृतीया च २।३।२७

प० वि०—सर्वनाम्नः ५।१ तृतीया १।१ च अ० ।

अर्थ—[पष्ठी हेतुप्रयोगे] सर्वनामशब्देभ्यः तृतीया विभक्तिर्भवति चकारात् पष्ठी अपि हेतु शब्दस्य प्रयोगे (सर्वनाम सज्ञा वाले शब्दों से तृतीय और पष्ठी विभक्ति होती है हेतु शब्द के प्रयोग में)

उदा०—कस्य हेतोर्यसति । केन हेतुना वसति ॥

अपादाने पञ्चमी २।३।२८

प० वि०—अपादाने ७।१ पञ्चमी १।१

अर्थ—अनुक्ते अपादाने कारके पञ्चमी विभक्तिर्भवति । (नहीं कहे गये अपादानकारक में पञ्चमी विभक्ति होती है)

उदा०—वृक्षात् पत्रं पतति ॥ × पञ्चमीविधाने ल्यब्लोपे कर्मण्युपसंख्यानम् × प्रासादमारुह्य प्रेक्षते, प्रासादात्प्रेक्षते ॥ × अधिकरणे चोपसंख्यानम् × आसने उपविश्य प्रेक्षते, आसनात् प्रेक्षते ॥

अन्यारादितरर्त्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते २।३।२९

प० वि०—अन्यारादितरर्त्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते ७।१

सं०—अन्यश्च आराध इतरश्च ऋते च दिक्छन्दश्च अञ्चूत्तरपदश्च । आश्च आहिश्च इति अन्यारादितरर्त्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहयः तैर्युक्तम् इति अन्यारादितरर्त्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्तम्, तस्मिन्

अर्थ—अन्य आरात् इतर ऋते दिक्छन्द अञ्चूत्तरपद आच् आहि इत्येतैः योगे पञ्चमी विभक्तिर्भवति । (अन्य, आरात्, इतर, ऋते, दिशावाची शब्द, अञ्चुषातु है उत्तरपद में जिसके ऐसे, आच् और आहि के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है)

उदा०—अन्य इत्यर्थग्रहणम्, तेन पर्यायप्रयोगेऽपि भवति । अन्यो देवदत्तात् । मित्रो देवदत्तात् । अर्थान्तरं देवदत्तात् । विलक्षणो देवदत्तात् । आराद् देवदत्तात् । आराद् यज्ञदत्तात् । इतरो देवदत्तात् । ऋते

१—ठाडसिद्धतामिनात्त्वाः (७.१. १२) यथासक्यमनुदेशः समानाम् (१. ३. १०)

इति अव्ययं वर्जनार्थं वर्तते । ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः । दिक्शब्द—पूर्वो
 ग्रामात् । उत्तरो ग्रामात् । अञ्चूत्तरपद—प्राग् ग्रामात् । प्रत्यग् ग्रामात् ।
 आच्—दक्षिणा^१ ग्रामात् । उत्तरा ग्रामात् । आहि—दक्षिणाहि^२ ग्रामात् ।
 उत्तराहि ग्रामात् ।

पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् २।३।३२

प० वि०—पृथग्विनानानाभिः ३।३ तृतीया १।१ अन्यतरस्याम् अ० ।

स०—पृथक् च विनारच नानारच इति पृथग्विनानानाः तैः
 पृथग्विनानानाभिः

अर्थ—[पञ्चमी] पृथग् विना नाना इत्येतैः योगे तृतीया विभक्ति-
 र्भवति अन्यतरस्याम् पञ्चमी च । (पृथक् विना और नाना के योग में
 विकल्प से तृतीया विभक्ति होती है, और पक्ष में पञ्चमी भी)

उदा०—पृथग् देवदत्तेन देवदत्ताद् वा । विना देवदत्तेन देवदत्ताद्
 वा । नाना देवदत्तेन देवदत्ताद् वा ।

दूरान्तिकार्थः पठ्यन्यतरस्याम् २।३।३४

प० वि०—दूरान्तिकार्थैः ३।३ पठ्ठी १।१ अन्यतरस्याम् । अ० ।

स०—दूरश्च अन्तिकश्चेति दूरान्तिकौ । दूरान्तिकौ अर्थो येषां ते दूरान्ति
 कार्याः तैः ।

अर्थ—[पञ्चमी] दूरार्थैरन्तिकार्थैश्च शब्दैर्योगे पठ्ठी विभक्तिर्भ-
 वति अन्यतरस्याम् पञ्चमी च । (दूर तथा अन्तिक (पास) है अर्थात् जिन
 शब्दों का उनके योग में पठ्ठी विभक्ति होती है पक्ष में पञ्चमी भी)

उदा०—दूरं ग्रामात् ग्रामस्य वा । विप्रकृष्टं ग्रामात् ग्रामस्य वा ।
 अन्तिकं ग्रामात् ग्रामस्य वा । अभ्याशं ग्रामात् ग्रामस्य वा । संसीपं
 ग्रामात् ग्रामस्य वा ।

दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च २।३।३५

प० वि०—दूरान्तिकार्थेभ्यः ३।३ द्वितीया १।१ च अ० ।

अर्थ—[पठ्यन्यतरस्याम्] दूरान्तिकार्थेभ्यः शब्देभ्यः द्वितीया
 विभक्तिर्भवति, विकल्पेन पठ्ठी पक्षे पञ्चमी च । (दूरार्थ और अन्तिकार्थ
 शब्दों से द्वितीया विभक्ति होती है, विकल्प से पठ्ठी और पक्ष में पञ्चमी भी)

१—दक्षिणादाच् (५. ३. ३६) २—आहि च दूरे (५. ३. ३७)

बहु जस् । बहु^१ जस् । बहु अस् । बहु^२ अस् । बहु^३ अस् । बहु^४ अस् । बहु^५ अस् । बहु^६ अस् । बहु^७ अस् । बहु^८ अस् । बहु^९ अस् । बहु^{१०} अस् ।

सम्बोधने च २।३।४७

प० वि०—सम्बोधने ७।१। च अ० ।

अर्थ—[प्रथमा] सम्बोधने च प्रथमा विभक्तिर्भवति (और सम्बोधने में प्रथमा विभक्ति होता है)

उदा०—राम, रमे, कुमारि, साधो ।

सि०—राम सु । राम म् । राम^२ । रमे । रमा मु । रमे^३ सु । रमे^४ सु । रमे^५ सु । कुमारि । कुमारी सु । कुमारि^६ स । कुमारि । साधो । साधु सु । साधु म् । साधो^७ म् । साधो ।

साऽऽमन्त्रितम् २।३।४८

प० वि०—सा १।१ आमन्त्रितम् १।१

अर्थ—[सम्बोधने प्रथमा] सम्बोधने वा प्रथमा सा आमन्त्रित-संज्ञा भवति । (सम्बोधन में जो प्रथमा उसकी आमन्त्रित संज्ञा होती है)

एकवचन सम्बुद्धि २।३।४९

प० वि०—एकवचनम् १।१ सम्बुद्धिः १।१। स०—एक वचन च इति एकवचनम् (कर्म० तत्पु०)

अर्थ—[प्रथमा आमन्त्रितम्] आमन्त्रितप्रथमाया एकवचन सम्बुद्धिसंज्ञा भवति । (आमन्त्रित प्रथमा के एकवचन की सम्बुद्धि संज्ञा होती है)

उदा०—राम । रमे । कुमारि । साधो ।

पण्ठी शेषे २।३।५०

प० वि०—पण्ठी १।१ शेषे ७।१

अर्थ—कर्मादीनाम् अविवक्षा शेषः । कर्मादीनि कारकाणि यत्र न विनश्यन्ते, स शेषः । शेषे पण्ठी विभक्तिर्भवति । (कर्मादि कारका की जहाँ बहने की इच्छा न हो उसे शेष कहते हैं । ऐसे शेष में पण्ठी

१—जमि च (७ ३ १०९) २—एटहस्वात्मबुद्धि (६ १ ६७)

३—सम्बुद्धी च (७ ३ १०६) ४—अन्वयार्थनवोद्भव (७ ३ १०३) ५—

वस्य गुण (७ ३ १०८) अद्वैत ग (१ १ ७) स्थानेऽन्तरतमः (१.१ ४६)

यतश्च निर्धारणम् २।३।४१

प० वि०—यत अ० । च अ० । निर्धारणम् १।१

अर्थ—[पष्ठी, सप्तमी] (जातिगुणक्रियाभिः समुदायाद् एकदेशस्य पृथक्करणम् निर्धारणम्) यस्मात् जाति-गुण क्रियाशब्दात् एकदेशस्य पृथक्करणम् भवति तस्मात् पष्ठीसप्तम्यौ विभक्ती भवतः ।

(जाति गुण और क्रिया के द्वारा समुदाय से एक देश या एक विभाग का भलग करना निर्धारण कहलाता है) (जिस जातिवाचक गुणवाचक तथा क्रियावाचक शब्द से जाति गुण या क्रिया के एक भाग का भलग होना पाया जाय उससे पष्ठी और सप्तमी विभक्ति होती है) ।

उदा०—जाति—मनुष्याणां क्षत्रिय शूरतम । मनुष्येषु क्षत्रिय शूरतम । गुण—गवा कृष्णा सपन्नक्षीरतमा । गोषु कृष्णा सपन्नक्षीरतमा । क्रिया—अध्वगानां धावन्त शीघ्रतमा । अध्वगेषु धावन्त शीघ्रतमा ।

प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्र प्रथमा २।३।४६

प० वि०—प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे ७।१ प्रथमा १।१॥

स०—प्रातिपदिकस्य अर्थ प्रातिपदिकार्थः । प्रातिपदिकार्थश्च लिङ्ग च परिमाण च वचन च इति प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनम् । द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणे पद प्रत्येकम् अभिसम्प्रध्यते इति नियमात् मात्रशब्द प्रत्येकम् अभिसम्प्रध्यते ।

अर्थ—प्रातिपदिकार्थः—प्रातिपदिकस्य सत्ता । लिङ्ग—स्त्री पुं-नपुंसकानि । परिमाण—तोलनम् । वचनम्—एकत्वं द्वित्वं बहुत्वानि । प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्रे परिमाणमात्रे वचनमात्रे प्रथमा विभक्तिर्भवति । (प्रातिपदिक की सत्ता में, लिङ्गमात्र में, परिमाणमात्र में और वचनमात्र में प्रथमा विभक्ति हाती है)

उदा०—प्रातिपदिकार्थः—उच्चैः, नीचैः, । लिङ्ग—कुमारी, वृक्ष, कुण्डम् । परिमाण—द्रोण, खारी, आढकम् । वचन—एक, द्वौ, बहवः ।

सि०—उच्चैस्सु । उच्चैः । कुमारी सु । कुमारी । वृक्ष सु । वृक्ष स् । वृक्ष । द्रोण सु । द्रोण । आढक सु । आढक अम् । आढकम् । एक । द्वौ । बहवः ।

१—हृत्स्वाम्यो दीर्घात् सुतिस्वपृक्त हन् (६ १ ६६) २—प्रताम (७ १ २४) ३—अत्रि पूर्वं (६ १ ११३)

बहु जस् । बहो^१ जस् । बहो अस् । बहव् अस् । बहव
स् । बहव रु । बहव र् । बहव

सम्बोधने च २।३।४७

प० वि०—सम्बोधने अ१। च अ० ।

अर्थ—[प्रथमा] सम्बोधने च प्रथमा विभक्तिर्भवति (और सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति होती है)

उदा०—राम, रमे, कुमारि, साधो ।

सि०—राम सु । राम स् । राम^२ । रमे । रमा मु । रमे^३ सु । रमे
स् । रमे^२ । कुमारि । कुमारी सु । कुमारि^४ स । कुमारि । साधो ।
साधु सु । साधु स् । साधो^५ म् । साधो ।

साऽऽमन्त्रितम् २।३।४८

प० वि०—सा १।१ आमन्त्रितम् १।१

अर्थ—[सम्बोधने प्रथमा] सम्बोधने या प्रथमा सा आमन्त्रित-
सज्ञा भवति । (सम्बोधन में जो प्रथमा उसकी आमन्त्रित सज्ञा होती है)

एकवचन सम्बुद्धि २।३।४९

प० वि०—एकवचनम् १।१ सम्बुद्धि १।१। स०—एक चाट वचन
च इति एकवचनम् (कर्म० तत्पु०)

अर्थ—[प्रथमा आमन्त्रितम्] आमन्त्रितप्रथमाया एकवचन
सम्बुद्धिसज्ञा भवति । (आमन्त्रित प्रथमा क एकवचन की सम्बुद्धि सज्ञा
होती है)

उदा०—राम । रमे । कुमारि । साधो ।

पठ्ठी शेषे २।३।५०

प० वि०—पठ्ठी १।१ शेषे अ१

अर्थ—कर्मादीनाम् अविचक्षा शेष । कर्मादीनि कारकाणि यत्र न
विचक्षन्ते, स शेष । शेषे पठ्ठी विभक्तिर्भवति । (कर्मादि कारको की
जहाँ कहन की उच्छा न हो उसे शेष कहते हैं । ऐसे शेष में पठ्ठी

१—जति च (७ ३ १०९) २—एङ्हस्वात्सम्बुद्धि (६ १ ६७)

३—सम्बुद्धौ च (७ ३ १०६) ४—अम्बोधनस्य ह्रस्व (७ ३ १०७) ५—

ह्रस्वस्य गुण (७ ३ १०८) अवेङ्गण (१ १ २) स्थानेऽन्तरतम (१ १ ४६)

विभक्ति होती है) ।

उदा०—राज्ञ पुरुष । पशो पाद । पितु पुत्र ।

सि०—राजन् डस् । राजन् अस् । राजन्^१ अस् । राज् ब्^२ अस् ।
राज्ञस् । राज्ञ । पशु डस् । पशु अस् । पशो^३ अस् । पशोस्^४ ।
पशोरु । पशोर । पशो । पितृ डस् । पितृ अस् । पितुर^५ स् ।
पितुर^६ । पितु ।

ज्ञोऽविदर्थस्य करणे २।३।५१

प० वि०—ज्ञ ६।१ अविदर्थस्य ६।१ करणे ७।१॥ स०—विद अर्थ
विदर्थ (प० तत्पु०) न विदर्थ अविदर्थ (नबत्तत्पु०) तस्य ।

अर्थ—(पठ्ठी) अविदर्थस्य अज्ञानार्थस्य ज्ञाधातो ऋण कारके
पठ्ठी विभक्तिर्भवति ।

(ज्ञान प्रथ से भिन्न प्रथ वाला ज्ञा धातु क करण कारक में पठ्ठी
विभक्ति होती है) ।

उदा०—सर्पिषो जानीते । मधुनो जानीते ।

सि०—सर्पिप् डस् । सर्पिप । मधु डस् । मधु^० नुट् डस । मधु न्
अस । मधुन ।

अधीगर्थदयेशा कर्मणि २।३।५१

प० वि०—अधीगर्थदयेशाम् ६।३ कर्मणि ७।१॥ स०—अधीग्
अर्थो येषा धातूनाम् इति अभीगर्था (बहु०) अधीगर्थाश्च दयश्च
ईट् च इति अधीगर्थदयेश तेषाम् ।

अर्थ—[पठ्ठी शेषे] अधीगर्थदयेशां धातूनां कर्मणि कारके
शेषत्वेन विवक्षिते पठ्ठी विभक्तिर्भवति । (अधि उपसर्ग पूर्वक इट् धातु
के प्रथ वाले धातुओं के तथा दय और ईश धातुओं के कम कारक में पठ्ठी
विभक्ति होती है)

उदा०—मातुरध्येति । मातु स्मरति । सर्पिषो दयते । सर्पिप ईष्टे ।
मधुन ईष्टे ।

१—अल्लोपोज (६ ४ १३४) २—स्तो ष्युना ष्यु (८ ४, ३६) ३—
घेडिति (७ ३ १११) ४—डसिडसोद्व (६ १ १०६) ५—ऋत उत् (६
१ १०७) उरण् रपर (१ १ ५०) ६—रास्तस्य (८ २ २४) ७—इकोऽवि
विभक्तौ (७ १ ७३) मिदचोऽन्त्यात्पर (१ १ ४६)

कर्तृकर्मणोः कृति २।३।६५

प० वि०—कर्तृकर्मणोः ७२ कृति ७१ सः—कर्ता च कर्म च इति कर्तृकर्मणी (इतरेऽङ्गुलि) तयोः ।

अर्थ—(पष्ठी) कृत्रयोगे कर्तरि कर्मणि च कारके पष्ठी विभक्ति-भवति ।

(इदन्त के प्रयोग में कर्ता और कर्म कारक में पष्ठी विभक्ति होती है)

उदा०—भवतः गायिका । भवनः आमिक्ष । कर्मणि—अपां मष्टा । पुरां भेत्ता ।

सि०—शायिका । गीह् एबुल् । गी वृ । गं अरु । शाय् अरु । शायक टाप् । शायिका । आसिका । आम् एबुल् । आम् अरु । आसक । आमक टाप् । आमक आ । आमिक्ष । मष्टा । मृज् तृच् । मृप् तृ । मृ अम् पृत् । मृ पृत् । मृष्ट । मृष्ट नु । मृष्ट अनङ् मु । मृष्टन् मु । मृष्टान् म् । मृष्टान् । मृष्टा । भेत्ता । भिदिर । भिद् तृच् । भिद् तृ । भेद् तृ । भेन् तृ । भेत् । भेत् मु । भेत् अनङ् मु । भेत्तन् म् । भेत्तान् स् । भेत्तान् । भेत्ता ।

न लोकाव्ययनिष्ठास्त्वर्थतृणाम् २।३।६६

प० वि०—न अ० । लोकाव्ययनिष्ठास्त्वर्थतृणाम् ६३ सः—लरय उरय उरय अव्ययं च निष्ठा च स्वार्थं च तृन् च इति लोकाव्ययनिष्ठास्त्वर्थतृणः तेषाम् ।

अर्थ—[पष्ठी] ल उ उर अव्यय निष्ठा स्वार्थ तृन् इत्येवमन्तानां प्रयोगे पष्ठी विभक्तिर्न भवति ।

तु के स्थान में कृदादेश, उ, उर, अव्यय, निष्ठा, तृन् अर्थ बाने और तृन् इन प्रत्ययान्तों के प्रयोग में पष्ठी विभक्ति नहीं होती है)

१—पुनृचो (३. १. १३३) २—युवोरनाचो (७. १. १) ययामस्य-मनुदेनः समानाम् (१. ३. १०) यचोर्जिगुति (७. २. ११५) वृद्धिरादेव (१. १. १) स्थानेऽन्तरतम. (१. १. ४६) ३—कृत्तद्वितसमागाम् (१. २. ४६) ह्याप्प्रातिपदिकान् (४. १. १) स्त्रियाम् (४. १. ३) अत्राद्वतृष्टाप् (४. १. ४) प्रत्ययः (३. १. १) परदच (३. १. २) ४—प्रत्ययस्यात्कान्पूर्वस्थान इदप्यमुः (७. ३. ४३) ५—यदचप्रत्ययः (८. २. ३६) ६—मृजिद्विगोर्नन्ममिति (६. १. २७) ७—इतो मृजि (६. १. ७४) ८—पुना पृः (८. ४. ४०) ।

उदा०—ल इति शतृशानचौ कानन्स्वसू फिकिनौ च गृह्यन्ते । शतृ—
आदेन पचन् । शानच्-ओदन पचमान । कानच्-ओदन पेचान ।
क्वसु-ओदन पेचिवान् । किकिनौ-पपि सोमम् । ददिर्गा । उ-कट
चिकीर्षु । आदेन बुभुक्ष । उरु-आगामुक वाराणसौ रक्ष आहु ।
अव्यय-कृ कृत्वा । निष्ठा-ओदन खादितवान् । ढेयदत्तेन कृतम् ।
खलर्थ-ईपरकर कटो भवता । नन्-कर्ता कटान् । Xद्विप शतुर्ग
वचनम् X चोर द्विपन् । चौरस्य द्विपन् ॥

सि -पचन् । डुपचप् । पच् लट् । पच् शतृ । पच् अतृ । पच् अत् ।
पच शप् अन् । पच् अ अन् । पच् अ त् । पचत् । पचत् सु । पच
नुम् त सु । पचन्त् सु । पचन्त् स् । पचन् । पचन् ॥ पचमान । डुप
चप् । पच् शानच् । पच् आन । पच् शप् आन । पच् अ आन । पच्
अ मुक् आन । पच् अ म् आन । पचमान सु । पचमान । पेचान ।
पच् कानच् । पच् आन । पच् पच् अ आन । पेच् आन । पेचान
सु । पेचान । पेचिवान् । पच् क्वसु । पच् वस् । पच पच् वस् ।
पेच् वम् । पेच इद् वस् । पेच् इ वस् । पेचिवस् । पेचिवस् सु ।
पेचिवास सु । पेचिवा नुम् स सु । पेचिवान्स् सु । पेचिवान्स् न् ।
पेचिवान्स् । पेचिवान् ॥

पपि । पा कि । पा इ । प् ड । पा प् इ । प । पि । पपि

१—वतमान लट (३ २ १२३) २—लट शतृशानचावप्रथमासमानाधि
करण (३ २ १२४) ३—लिटिगित्सावधातुकम् (३ ४ ११३) सावधातुके
यक (३ १ ६७) कत्तरि शप (३ १ ६८) ४—घनो पुण (६ १ ८४)
५—उगिदचा सवनामस्थानऽघातो (७ १ ७०) मिदचाऽत्यात्पर (१ १
४६) ६—हल्दयाम्यो दीधान् मुतिस्वपुन हल (६ १ ६६) ७—हलोऽन्तरा
सयोग (१ १ ७) सयोगान्तस्य लोप (८ २ २३) ८—धान मुक (७ २
८२) घाद्यतो टकितो (१ १ ४५) ९—लिट कानच्वा (३ २ १०६)
१०—लिटि घातोऽरन्म्यासस्य (६ १ ८) ११—पूर्वोऽभ्यास (६ १ ४)
अत एकहलमध्येऽनादगादेर्लिटि (६ ४ १२०) १२—क्वसुश्च (३ २ १०७)
१३—वस्यकाजादघसाम् (७ २ ६७) घाद्यतो टकितो (१ १ ४५) १४—
उगिदचा सवनामस्थानऽघातो (७ १ ७०) मिदचाऽत्यात्पर (१ १ ४६)
१५—आहगम० (३ २ १७१) १६—घानो लोप इटि च (६ ४ ६४)
१७—द्विवचनऽचि (१ १ ५८) १८—ह्रस्व (७ ४ ३६)

सु। पपिः। दा किन्^१। दा इ। द्द इ। दा द्द इ। द्रि। द्रि सु।
द्रिः। स्वरे विशेषः।

चिकीर्षुः। हुहृन्। कृ सन्। कृ स। कृ स। क स। किर् स। कीर्
स। कीर् कीर् स। की कीर् म। चिकीर् स। चिकीर्ष^१। चिकीर्ष
उ^२। चिकीर्ष उ^३। चिकीर्षु। चिकीर्षु सु। चिकीर्षुः॥

बुभुक्षुः। भुज् सन्। भुज् स। भुज् स। भुज् भुज् स। भु भुज्
स। भु भुज् स। बुभुक्षु^१ म। बुभुक्षु^२। बुभुक्षु^३। बुभुक्षु उ^४।
बुभुक्षु^५ उ। बुभुक्षु सु। बुभुक्षुः। आगामुकम्। आ गमलु। आगम्
उकम्^१। आगामुक। आगामुक अम्। आगामुकम्। अन्यय—कृत्या।
हुहृन्। कृ कृत्या। कृ त्वा। कृ त्वा^१। कृत्या सु। कृत्या^२। निष्ठा—
खादितवान्। खाद्। खाद् क्तश्चतु। खाद् तयत्। खाद् इद् तयत्।
खादितयत्। खादितयत् सु। खादितवान् सु। खादितवा नुम् त^१ सु।
खादितवान् सु। खादितवान् म्। खादितवान्। खादितवान्। कृतम्।
हुहृम्। कृ क्त। कृ त। कृत। कृत सु। कृत अम्। कृतम्। ईपत्कर।
ईपत्कृ। ईपत्कृ^१ खन्। ईपत्कर् अ। ईपत्कर सु। ईपत्करः। कृन्।
कर्त्ता।

कृत्याना, कर्त्तरि वा २।३।७।१

प० वि०—कृत्यानाम् ६।३ कर्त्तरि ७।१ वा अ०।

अर्थ—[पठ्यो] कृत्यानां प्रयोगे कर्त्तरि वा पठ्यो विभक्तिर्भवति।

- १—आदुगम० (३. २. १७१) २—सनागमभिज्ञ उ (३. २. १६८)
३—आर्षघातुक शेषः (३. ४. ११४) अतो शेषः (६. ४. ४८)
४—पूर्वोऽभ्यासः (६. १. ४) अभ्यासे चर्षं (८. ४. ५३) ५—षोः कृः
(८. ७. ३०) ६—अरि च (८. ४. ५४) ७—आदेशप्रत्यययो (८. ३. ५८)
८—सनागमभिज्ञ उ (३. २. १६७) ९—आर्षघातुक शेषः (३. ४. ११४)
आर्षघातुके (६. ४. ४६) अतो शेषः (६. ४. ४७) १०—तत्पत्रप्रत्ययभूत
हन्तमगमगुण्य उक्त (३. २. १५४) ११—आर्षघातुक शेषः (३. ४. ११४)
गर्षघातुगर्षघातुकयो (७. ३. ८४) विटति च (१. १. ५) १२—नवातो गु-
न्गुन (१. १. ३१) घ्ययादाप्पुण. (२. ४. ८२) १३—उपिदषां गर्षनाम-
स्थानेधातो (७. १. ७०) मिदषोऽभ्यासः (१. १. ४६) १४—ईपत्कृ गुण-
इत्पत्कृत्पत्कृत्पु सन् (३. ३. १०६)

(कृत्य प्रत्ययों के प्रयोग में कर्ता में विकल्प से पष्ठी विभक्ति होती है)

उदा०—भवता कट कर्तव्य । भवत कट कर्तव्य ।

चतुर्थी चाशुप्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितै २।३।७३

प० वि०—चतुर्थी १।१ च अ० । आशिपि ७।१ आयुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितै २।३। स०—आयुष्य च मद्र च भद्र च कुशल च सुख च अर्थश्च हित च इति आयुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितानि, तै

अर्थ—आशिपि गम्यमानायाम् आयुष्य-मद्र भद्र कुशल-सुख अर्थ-हित इत्येतैर्योगे चतुर्थी विभक्तिर्भवति चकारात् पष्ठी । (आशीर्वाद भय जाना जाय तो आयुष्य मद्र भद्र कुशल सुख अर्थ और हित के योग में चतुर्थी और चकार ग्रहण में पष्ठी विभक्ति होती है)

उदा०—× अत्र आयुष्यादीना पर्यायग्रहणम् कर्तव्यम् × आयुष्य देवदत्ताय भूयात् । आयुष्य देवदत्तस्य भूयात् । चिर जीवित देवदत्ताय देवदत्तस्य वा भूयात् । भद्र देवदत्ताय देवदत्तस्य वा । कुशल देवदत्ताय देवदत्तस्य वा । सुख देवदत्ताय देवदत्तस्य वा । श देवदत्ताय देवदत्तस्य वा । अर्थो देवदत्ताय देवदत्तस्य वा । प्रयोजन देवदत्ताय देवदत्तस्य वा । हित देवदत्ताय देवदत्तस्य वा । प० देवदत्ताय देवदत्तस्य वा ।

इत्यष्टाध्यायी प्रकाशिकाया द्वितीयाध्याये तृतीय पाद

—०—

एकवद्भावप्रकरणम्

द्विगुक्कवचनम् २।४।१

प० वि०—द्विगु १।८ एकवचनम् १।१ स०—एकस्य वचनम् । एकवचनम् । (प० तत्प०) ।

अर्थ—द्विगु समास एकस्य अर्थस्य वाचको भवति ।

ॐ अत्र समाहारद्विगोरेव ग्रहणम् ॐ

(द्विगु समास एक अर्थ का वाचक होता है) यहा द्विगु से समाहार अर्थ में विहित द्विगु लिया जाता है ।

उदा०—पञ्चपूली । दशपूली ।

द्वन्द्वश्च प्राणिनृत्यसेनाज्ञानाम् २।४।२

प० वि०—द्वन्द्व १।१ च अ० । प्राणिनृत्यसेनाज्ञानाम् ६।३ स०—प्राणिश्च नृत्यश्च सेना च इति प्राणिनृत्यसेना तासामज्ञानि इति

प्राणितूर्यसेनाज्ञानि (प० तत्पु) तेषाम् । अन्नशब्दः प्रत्येकम् अभि-
सम्बन्धते ।

अर्थ—प्राण्यज्ञानां तूर्याज्ञानां सेनाज्ञानां च द्वन्द्वः एकवद् भवति ।
(प्राणी, वाजा घोरा सेना के अङ्गों का द्वन्द्व एकवद् हा जाता है)

उदा०—प्राणि-पाणिपादम् कण्ठपृष्ठग्रीवाजङ्घम् । तूर्य-वशी-
वीणम् । मृदङ्गशङ्खपणम् । सेना-हस्त्यङ्गोष्ठम् । रथशकटम् ।

सि०—पाणो च पादौ च इति पाणिपादम् । पाणि औ पाद औ ।
कण्ठश्च पृष्ठं च ग्रीवा च जङ्घा च इति । वंशी च वीणा च इति ।
मृदङ्गश्च शङ्खश्च पणश्च इति । हस्तिनश्च अस्वाश्च उष्ट्राश्च इति ।

येषां च विरोधः शाश्वतिकः २।४।१६

प० वि०—येषां ६।३ च अ० । विरोधः १।१ शाश्वतिकः १।१

अर्थ—[एकवचनम्] येषां जीवानां शाश्वतिकः सनातनो विरोधः
तेषां द्वन्द्वः एकवद् भवति ।

(जिन प्राणियों का सनातन विरोध है, उनका द्वन्द्व एकवद् हा जाता है)

उदा०—अहिर्नकुलम् । मार्जारमूपम् ।

सि०—अहिश्च नकुलश्च इति । मार्जारश्च मूपश्च इति ।

स नपुंसकम् २।४।१७

प० वि०—स १।१ नपुंसकम् १।१

अर्थ—अस्मिन् एकवचनप्रकरणे यस्य एकवद्भावो विहितः, स
नपुंसकलिङ्गो भवति ।

उदा०—पाणिपादम् ।

अव्ययीभावश्च २।४।१८

प० वि०—अव्ययीभावः १।१ च अ० ।

अर्थ—[नपुंसकम्] अव्ययीभावः समासो नपुंसकलिङ्गो भवति ।
(अव्ययी भाव समास नपुंसक लिङ्ग होता है)

उदा०—उपकृष्णम् । उपगु । अविच्छिन्नम् ।

परवल्लिङ्ग द्वन्द्वतत्पुरुषयोः २।४।१९

प० वि०—परत् अ० । लिङ्गम् १।१ द्वन्द्वतत्पुरुषयोः ७।२

स०—द्वन्द्वश्च तत्पुरुषश्च इति द्वन्द्वतत्पुरुषौ (इनमें द्वन्द्वः तथाः ।

अर्थ—द्वन्द्वसमासे तत्पुरुषसमासे च परस्य इव लिङ्गं भवति ।
(द्वन्द्व धोर तत्पुरुष समास म पर के लिङ्ग के समान लिङ्ग होता है)

उदा०—गुणवृद्धी । अर्द्धपिप्पली ।

सि०—गुणश्च घृद्धिश्च इति । पिप्पल्या अर्द्धम् । अर्द्धपिप्पली
सु । अर्द्धपिप्पली ।

धात्वादेशप्रकरणम्

आर्धधातुके २।४।३५

प० वि०—आर्धधातुके ७।१

अर्थ—इतोऽग्रे घट्यमाणानि कार्याणि आर्धधातुके निपये भवन्ति
इत्यधिकारो वेदितव्यः ॥ (आगे कहे जाने वाले कार्य आर्धधातुक के विषय में
होते हैं, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

अस्तेभू २।४।५२

प० वि०—अस्ते ६।१ भू १।१

अर्थ—[आर्धधातुके] आर्धधातुके विषये अस्तेभूरादेशो भवति ।
(आर्धधातुक के विषय में अस् धातु के स्थान में भू यह आदेश होता है)

उदा०—भविता, भवितुम्, भवितव्यम् ।

वुवो वचि २।४।५३

प० वि०—व्र व ६।१ वचि १।१

अर्थ—व्रू इत्येतस्य स्थाने वचिरादेशो भवति आर्धधातुके विषये ।

उदा०—वक्ता, वक्तुम्, वक्तव्यम् ।

सुधतुप्रकरणम्

सुपो धातुप्रातिपदिकयो २।४।७१

प० वि०—सुप ६।१ धातुप्रातिपदिकयो ७।२ स०—धातुरच प्राति-
पदिक च इति धातुप्रातिपदिके तयो

अर्थ—[लुक्] धातौ प्रातिपदिके च स्थितस्य सुप लुग्भवति ।
(धातु धोर प्रातिपदिक में स्थित सुप का लुक् होता है)

उदा०—पुत्रीयति, राजपुत्र ।

सि०—पुत्रीयति । आत्मन पुत्रम् इच्छति इति ॥ पुत्र अम् क्यच् ।

१—सुप आत्मन क्यच् (३ १ ८)

उदा०—लोलुव, पोपुव, बहुलप्रहणादनचि अपि भवति, शाकु
निको लालपीति, दुन्दुभिर्वावदीति ।

सि०—लालपीति । लप् । लप् य^१ । लप् लप् य^२ । ल लप् य^३ ।
ला^४ लप् य । ला लप्^५ । लालप् लट् । लालप् ल् । लालप् तिप् ।
लालप् ईट्^६ ति । लालपीति ॥ वावदीति । वद् यङ् । वद् य । वद्
वद् य । य वद् य । या वद् य । या वद् । या वद् लट् । यावद् ल् ।
या वद् तिप् । यावद् ईट्^७ ति । वावदीति । वावदीति

जुहोत्यादिभ्यः श्लु २।४।७४

प० वि०—जुहोत्यादिभ्यः ५।३ श्लु १।१ स०—जुहोति, आदिर्ये-
पान्ते जुहोत्यादयः (वहु०) तेभ्यः

अर्थ—जुहोत्यादिभ्यः शप् श्लुर्भवति । (जुहोत्यादि धातुभो के पश्चात्
शप् का श्लु हो जाता है)

उदा०—जुहोति, जुहुत, जुहति । जुहोपि, जुहुथ, जुहुथ । जुहोमि,
जुहुय, जुहुम ।

सि०—जुहोति । हु । हु लट् । हु ल् । हु तिप् । हु शप्^१ तिप् । हु^२
ति । हु हु^३ ति । मु^४ हु ति । जु^५ हु ति । जुहोति^६ । जुहति । जुहु
म्नि । जुहु अति^७ । जुहति^८ ॥

गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिच परस्मैपदेषु २।४।७७

प० वि०—गाति-स्था-घु-पा-भूभ्यः ५।३ सिच ६।१ परस्मैपदेषु ७।३
स०—गातिश्च स्थाश्च घु च पाश्च भूश्च इति गातिस्थाघुपाभव (इतरे०
द्वन्द्व) तेभ्यः

अर्थ—गाति-स्था-घु-पा-भूभ्यः सिच लुग्भवति परस्मैपदेषु परत ॥

१—घातोरकाचा हलाद् क्रियासमभिहार यङ (३ १ २२) २—
सन्पडो (६ १ ६) ३—पूर्वोभ्यास (६ १ ४) अत्र लोपोभ्यासस्य (७. ४
५८) हलादि शप् (७ ४ ६०) ४—दीर्घोऽङ्कित (७ ४ ८३) ५—यङोऽङ्कित
च (२ ४ ७३) सनाद्यन्ता घातव (३ १ ३२) ६—यङो वा (७ ३. ९४)
आद्यन्तो टङ्कितो (१ १ ४५) ७—कस्तरि शप् (३ १ ६८) ८—जुहोत्या-
दिभ्यः श्लु (२ ४ ७५) ९—श्लो (६ १ १०) १०—कुहोश्चु (७ ४ ६२)
११—अभ्यासे चच (८ ४ ५३) १२—सावघातुक० (७ ३ ८४) १३—उभय-
स्तम् (६ १. ५) अदभ्यस्तात् (७ १ ४) १४—हुन्नुचो सावघातुके (६ ४ ८७)

(गा स्या धु (दा धा) वा धीर भू धातुभ्यो के पश्चात् सिच का युक् होता है परस्मैपद के परे रहन पर)

उदा०—अगान्, अस्यात्, अदात्, अधान्, अपान्, अभून् ।

सि०—अगात् । इण् । इ । गा^१ । गा लुङ्^२ । गा ल् । गा तिप् । गा च्लि^३ ति । गा सिच^४ ति । गा^५ ति । गा त्^६ । अट्^७ गात् । अगात् । अभूत् । भू लुङ् । भू तिप् । भू सिच तिप् । भूति । भूत । भूत् । अट् भूत् । अभूत् ।

विभाषा घ्राघेट्शाच्छास २।४।७८

प० वि०—विभाषा १।१ घ्राघेट्शाच्छास १।१॥ स०—ग्राच धेट च शाग्च छारच सारच इति घ्राघेट्शाच्छासा तस्मान् । छसयचरन्द् भावे नपु सन्ता न भवति, अन्यथा 'छासान्' प्राप्नोति । छे

अर्थ—[सिच परस्मैपदेषु लुक्] ग्रा घेट् शा-च्छा-सा इत्येतेभ्य उत्तरम्य सिच परस्मैपदेषु विभाषा लुग्भवति । (घ्रा, घट, घा, छा धीर गा धातुभा न पश्चात् सिच का युक् होता है विषय स परस्मैपद के पर रहन पर)

उदा०—अगात्, अघासीन् । अघात्, अघासात् । अशान् । अघासीन् । अन्धात्, अन्धासीन् । असान्, असामीन् ।

सि०—अगान् । ग्रा । ग्रा लुङ् । ग्रा च्लि लुङ् । ग्रा मिच् लुङ् । ग्रा सिच् ल् । ग्रा मिच् तिप् । ग्रा तिप् । ग्रा त् । अट् ग्रा त् । अगान् । अट् ग्रा सक् इट् मिच् इट् ति । अगानीन् । अघात् । घट् । घे । घा^१ । अट् घा मिच् तिप् । अघात् । अट् घा सक् इट् सिच् इट् तिप् । अघासीन् । अशान् । शो । शा । अट् शा मिच् तिप् । अशान् । अन्धात् । अन्धासात् । अन्धान् । छा । छा^२ । अट् छा मिच् तिप् । अछात् । अतुप् छा त् । असान् । मो । मा^३ । अट् सा मिच् तिप् । असात् । असासीन् ।

तनादिभ्यस्तथामाः २।४।८६

प० वि०—तनादिभ्य १।३ तथासो ७८

१—इण् गा मुटि (२ ४ ४५) २—भूत् (३ ३ ८६) घुत् (१ ३ ११०) ३—अणि मुटि (३ १ ८३) ४—एच मिच् (३ १ ४६) ५—गणिम्या० (२ ४ ७३) ६—इण्च (३ ४ १००) ७—मुटि ग्रा सक् इट् तिप् (६ ४ ७१) ८—अमरमन्तो नच च (३ ३ ७३) ९—अणिमिणात् (७ ३ ६६) घात्तो टात्तो (१ १ ८५) १०—घात्च उा० (६ १ ८८)

स०—इन् आदिर्येपान्ते तनादयः (बहु०) तयोः

अर्थ—[विभाषा लुक्] तनादिभ्यः धातुभ्यः सिचः विभाषा लुग्भवति तप्रत्यये यासि च परतः । (तन् इत्यादि धातुभ्यो के पश्चात् सिच् का विकल्प से लुक् होता है त और यास् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—अतत. अतनिष्ट । अतथा, अतनिष्ठा. । असात्, अस-
निष्ट । असाथा, असनिष्ठा ।

सि०—अतत । तनु । तन् । तन् लुङ् । तन् लृ । तन् त । तन् श्लि
त । तन् सिच् त । तन् त । त^१ त । अट् तत । अतत । अट् तन् सिच्
इट् त । अ तन् इस् त । अ त निस् त । अ त नि प्^२ त । अतनिष्ट^३ ।
असात् । सन् सिच् त । सन् त । स आ^४ त । सात । असात ।

मन्त्रे घसह्वरगशबृदहाद्वृक्कृगमिजनिभ्यो]लेः] २।४।८०

आम २।४।८१

प० वि०—आम ५।१

अर्थ—[ले] आम. परस्य लेलुग्भवति ।

उदा०—उहाञ्चक्रे । ईहाञ्चक्रे । ईहाञ्चक्रे ।

अव्ययादाप्सुप २।४।८२

प० वि०—अव्ययात् ५।१ आप्सुप ६।१ स०—आप् च सुप् च
इति आप्सुप् तस्य आप्सुप ।

अर्थ—[लुक्] अव्ययात्परस्य आप सुपरच लुग्भवति (अव्यय के पश्चात् आप और सुप् का लुक् होता है)

उदा०—तत्र शालायाम् । यत्र शालायाम् । सुपः—कृत्वाः, हृत्वा ।

सि०—तत्र । तद् डि प्रल्^१ । तद्^२ त्र । त अ^३ त्र । तत्र^४ टाप्^५ ।

तत्र सु । तत्र^६ । कृत्वा । डुकृब् । कृत्वा । कृत्वा । कृत्वा सु । कृत्वा ।

१—अनुदासापदेशवत्तितनोत्यादीना० (६. ४. ३७) २—आदेश-
प्रत्यययो (८. ३. ५९) ३—पुना ष्टु (८. ४. ४०) । ४—जनसमसना० (६
४४२) ५—प्राग्दिशो विभक्ति (५. ३. १.) सप्तम्यास्त्रल् (५. ३. १०) प्रत्यय
(३. १. १) परस्व (३. १. २) ६—कृतद्वितसमासाश्च (१. २. ४६) सुपो
धातुप्रातिपदिकयो (२. ४. ७१) ७—मष्टन आ विभक्तो (७. २. ८४)
त्यदादीनाम (७. २. १०२) अलोऽन्त्यस्य (१. १. ५१) ८—प्रतो गुणे (६.
१. ६४) ९—अत्राद्यस्य (४. १. ४) १०—नद्वितश्चासवविभक्ति (१. १
३७) अव्ययादाप्सुप (२. ४. ८२) ।

नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्या २।४।८३

प० वि०—न १।१ अययीभावात् ५।१ अत ५।१ अम् १।१ तु १।१ अपञ्चम्या ५।१

स०—न पञ्चमी इति अपञ्चमी तस्या ।

अर्थ—[मुप लुक्] अन्तादययीभावादुत्तरस्य मुपो लुक् न भवति किन्तु पञ्चमी निहाय तस्य मुप स्थाने अम् आदेशा भवति ।

(धकारान्त मध्यमीमात्र व पश्चात् मुप का लुक् नहीं हाता है परन्तु पञ्चमी को छोड़कर उम मुप के स्थान में अम् आदेश हाता ह)

उदा०—उपकुम्भम् ।

तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् २।४।८४

प० वि०—तृतीयासप्तम्यो ६।० बहुलम् १।१॥ स०—तृतीया च सप्तमी च इति तृतीयासप्तम्यौ तयो

अर्थ—[अत अययीभावात् अम्] अन्तादययीभावान् तृतीया-सप्तम्यो निमक्त्योर्बहुलमन्मात्रो भवति । (मकारान्त मध्यमीभाव के पश्चात् तृतीया और सप्तमी का बहुल करके अम् आदेश होता है)

उदा०—उपकुम्भेन कृतम् । उपकुम्भे कृतम् । उपकुम्भ कृतम् ।

सि०—उपकुम्भेन । उपकुम्भ टा । उपकुम्भ इन । उपकुम्भेन । उपकुम्भ हि । उपकुम्भ इ । उपकुम्भे ।

लुट् प्रथमस्य डारौरस २।४।८५

प० वि०—लुट् ६।१ प्रथमस्य ६।१ डारौरस १।३ म०—डारश्च रीश्च रश्च इति डारौरस । डारौरसश्च डारौरमश्च डारौरस (एकरोप)

अर्थ—लुट्लभारस्य प्रथमपुरुषस्य स्थाने डारौरस आदेशा यग-सम्यम् आत्मनेपदे परस्मैपदे च भवन्ति । (लूट् लकार के प्रथमपुरुष के स्थान में डा, री और रम् आदेश ययाकृम आत्मनेपद और परस्मैपद में होने हैं)

उदा०—अविता । अघितारी । अघितार । परस्मैपदे—अविता । अघि-तारी । अघितार ।

सि०—अघिता । अघ । एल् लुट्^१ । अल् लुट् । अघ्त् । अघ्त् तामि^२

१—अनद्यतन लुट् (३ ३ १५) प्रत्यय (३ १ १) परश्च (३ १ २)

२—स्यतामा वृत्ता (३ १ ३३)

त । एध् तास् डा । एध् इट्^१ तास् डा । एध् इ तास् डा । एध् इ त्^२
आ । एविता । एवितास् रौ । एधितारौ^३ । एधितास् रस् । एधितारस् ।
एधितार ।

भविता । भूलुट् । भूल् । भूति । भू तासि ति । भू तास् डा । भू
तास् आ । भू त् आ । भू इट् त् आ । भो^४ इ त् आ । भव्^५ इ त्
आ । भविता । भवितारौ । भवितार ।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणजमहावैयाकरणापण्डितब्रह्मदत्ता-

चार्याणामन्तेवासिना देवप्रकाशपातञ्जलेन विर-

चितायामष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया

द्वितीयाध्याये चतुर्थं पाद ।

इति द्वितीयोऽध्याय

प्रत्ययाधिकारप्रकरणम्

प्रत्यय ३।१।१

प० वि०—प्रत्यय १।१

अर्थ—इतोऽग्रे आ पञ्चमाध्यायपरिसमाप्ते प्रत्यय इत्यधिकारो
वेदितव्य । (इसके पश्चात् पञ्चमाध्याय पर्यन्त प्रत्यय का अधिकार समझना
चाहिये)

परश्च ३।१।२

प० वि०—पर १।१ च अ० ।

अर्थ—[प्रत्यय] प्रत्यय परो भवति इति , अधिकारो वेदितव्य ।
(प्रत्यय परे होते हैं, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

आद्युदात्तश्च ३।१।३

प० वि० आद्युदात्त १।१ च अ० । स०—आदिश्चासौ उदात्तश्चेति
आद्युदात्त (कर्म० तत्पु०)

१—आवधातुक शेष (३. ३ ११४) आवधातुकस्येड वलादे (७. २. ३५)
आद्यन्तो टकितौ (१ १ ४५) २—द्वित्करणसामर्थ्यादिभ्याम्पि टैत्तौपो
भवति (इष्टि) ३—रि च (७ ४ ५१) ४—सार्वधातुकारं धातुकयो
(७ ३. ८४) ५—एचोऽयवामाव. (६ १ ७५) ।

अर्थ—आ पञ्चमाध्यायपरिसमाप्ते सामान्येन सर्वे प्रत्यया आद्यु-
दात्ताः भवन्ति इत्यधिकारो वेदितव्यः । (१चम अध्याय पर्यन्त सामान्यतया
समी प्रत्यय आद्युदात्त होने हैं, इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

उदाहरणं साधनं च 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (न. ४. ६५) इत्यत्र
द्रष्टव्यम् ।

अनुदात्तो मुष्पितौ ३।१।४

प० वि०—अनुदात्तो १।२ मुष्पितौ १।२ स०—मुप् च पिच्चेति
मुष्पितौ (इतरे० द्वन्द्वः)

अर्थ—आ पञ्चमाध्यायपरिममाप्तेः मुप्-पितौ प्रत्ययावनुदात्तो भवतः
इत्यधिकारो वेदितव्यः । (१चम अध्याय पर्यन्त मुप् और पकार इत वाले
प्रत्यय अनुदात्त होने हैं, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

उदाहरणं साधनं च 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (न. ४. ६५) इत्यत्र
द्रष्टव्यम् ।

सनादिप्रकरणम्

मुष्पिजिद्भ्य [सन्] ३।१।५

धातो. कर्मण समानकर्तृकादिच्छाया वा ३।१।६

प० वि०—धानोः ५।१ कर्मण. ५।१ समानकर्तृकात् ५।१ इच्छायाम्
७।१ धा अ० । स०—समानः कर्त्ता यस्य सः समानकर्तृकः तस्मात् ।

अर्थ—[सन्] समानकर्तृकात् कर्मण धातोर्विकल्पेन सन् प्रत्ययो
भवति इच्छायां गम्यमानायाम् ।

(समान कर्ता है जिसका ऐसा जो कर्म रूप धातु उससे इच्छा पोतन होने
पर विकल्प से सन् प्रत्यय होता है)

उदा०—चिकीर्षति । चिकीर्षतः । चिकीर्षन्ति । जिहीर्षति । जिही-
र्षतः । जिहीर्षन्ति ।

सि०—साधनं तु न पदान्त० (१. १. ५७) इति सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

कारिका—शैपिकान्मतुर्थीयाच्छैपिको मतुर्थिकः ।

सरूपः प्रत्ययो नेष्टः सनन्तात्र सनिष्यते ॥

(‘शैपे’ अधिकार करने तथा मतुप् प्रत्यय के धर्म में, जिन तदित प्रत्ययों
का विधान किया गया है, उन प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से पुनः समान रूप वाले
शैपिक तथा मतुप् धर्म वाले प्रत्यय नहीं होने । एवं सनन्त से सन् प्रत्यय की
उत्पत्ति नहीं होगी है)

सुप आत्मन क्यच् ३।१।८

प० वि०—सुप ५।१ आत्मन ६।१ क्यच् १।१

अर्थ—[कर्मण इच्छायाम् वा] आत्मसंबन्धिन सुवतात् कर्मण इच्छाया विकल्पेन क्यच् प्रत्ययो भवति । (स्वसम्बन्धी सुवन्त कर्म से इच्छा में विकल्प करके क्यच् प्रत्यय होता है)

उदा०—पुत्रीयति ।

सि०—आत्मन पुत्रम् इच्छति इति । पुत्र अम् स्वच् । पुत्र अम् य । पुत्रीय । पुत्रीय लट् । पुत्रीय तिप् । पुत्रीय शप् तिप् । पुत्रीय अ ति । पुत्रीयति । साधनसूत्राणि तु सुपो धातुप्रातिपदिकयोरित्यत्र द्रष्टव्यानि ।

काम्यच्च ३।१।९

प० वि०—काम्यच्च १।१ च अ० ।

अर्थ—[कर्मण इच्छाया वा, सुप आत्मन] आत्मन सुवन्तात् कर्मण इच्छाया वा काम्यच् प्रत्ययो भवति । (स्वसम्बन्धी सुवन्त कर्म से इच्छा में विकल्प से काम्यच्च प्रत्यय होता है)

उदा०—पुत्रकाम्यति । वस्त्रकाम्यति ।

सि०—आत्मन पुत्रम् इच्छति । पुत्रम् काम्यच् । पुत्र अम्^१ काम्य । पुत्रकाम्य लट्^२ । आत्मन वस्त्र काम्यति इति । वस्त्र अम्^१ काम्यच् ।

उपमानादाचारे ३।१।१०

प० वि० उपमानात् ५।१ आचारे ७।१

अर्थ—[कर्मण वा, सुप] उपमानवाचिकर्मण सुवतादाचारार्थे वा क्यच् प्रत्ययो भवति । (उपमानवाची कर्म सुवन्त से आनार प्रथम विकल्प से क्यच् प्रत्यय होता है)

उदा०—पुत्रीयति छात्रम् । प्राचारीयति कम्बलम् ।

सि०—पुत्रीयति । पुत्रम् इव आचरति छात्र गुरु इति । पुत्र अम् य । पुत्र क्य । पुत्री^३ य । पुत्रीय लट् । प्राचारम् इव आचरति कम्बल नर इति ।

१—अनाद्यता धातव (३ १ ३२) सुपो धातुप्रातिपदिकयो (२ ४ ७१)

२—धातो (३ १ ६१) वतमान लट् (३ २ १२३) प्रत्यय (३ १ १)

परदच (३ १ २) ३—क्यचि च (७ ४ ३३)

कत्तुं क्यङ् सलापश्च ३।१।११

प० वि०—कत्तुं ५।१ क्यङ् १।१ सलाप १।१ च अ० । स—
सस्य लोप सलोप (प० तत्पु०)

अर्थ—[सुप उपमानादाचारे] उपमानवाचिनं कत्तुं मुनस्ताद्
आचारार्थं वा क्यङ् प्रत्ययो भवति, सकारस्य च लोपो भवति ।

(उपमानवाची कर्ता सुबन्त म आचार के अर्थ में विकल्प से क्यङ् प्रत्यय
होता है और सकार का लोप होता है)

उदा०—श्येनायते । ओजायते । अप्सरायते । पयायते । पयस्यते ।

ओजसोऽप्सरसो नित्य पयसस्तु विमापया ।

सि०—श्येनायते । श्येन इव आचरति कार इति । श्येन सु
क्यङ् । श्येन सु य । श्येन^१ य । श्येना^२ य । श्येनाय लट् । श्येनाय
लृ । श्येनायत्^३ । श्येनाय ते^४ । श्येनाय शप् ते । श्येनाय अ ते ।
श्येनायते । ओजस् सु क्यङ् । ओजस् य । ओज य । ओजाय लट् ।
ओजायते । अप्सरसम् । अप्सरस् सु क्यङ् । अप्सरायते । पयायते
पयस्यते ॥

धातारेकाच्चा हलादे क्रियासमभिहारे यट् ३।१।२२

प० वि०—धातो ५।१ एकाच् ५।१ हलादे ५।१ क्रियासमभिहारे
७।१ यट् १।१ स०—एकोऽच् यस्मिन् इति एकाच् (बहु०) तस्मात् । हल्
आदिर्यस्य इति हलादि (बहु०) तस्मात् । क्रियाया समभिहार क्रिया
समभिहार तस्मिन् ।

अर्थ—[या] पौनपुन्य भृशार्थो वा क्रियासमभिहार । एकाज् जो
धातुर्हलादि तस्मात् क्रियाया समभिहारे या यट् प्रत्ययो भवति ।

(एक अक्ष वाला धातु जो हलादि उससे क्रिया के बारम्बार या अधिक
होन में यट् प्रत्यय विकल्प से होता है)

उदा०—पापच्यते । यायज्यते । जाज्वल्यते । देदीप्यते ।

सि०—पुन पुन भृश वा पचति इति पापच्यते । लुपचप् पाके ।
पच् । पच् य । पच् पच् य । प पच् य । पा पच् य । पापच्य । पापच्य

१—सनाद्यन्ता धातव (३ १. ३२) मुपा धातुप्रातिपदिकयो (२ ४
७१) २—अनुत्सारधधातुकया दीघ (७ ४ २५) ३—अनुत्सारितवित् आत्मनपदम्
(१. ३ १२) ४—टित् आत्मनपदानां टरे (३ ४. ७६)

लट् । पापच्य ल् । पापच्य त । पापच्य ते । पापच्य शप्ते । पापच्य
अ ते । पापच्यते ॥

जाज्वल्यते । ज्जल् यङ् । जाज्वल्यते । दीप् यङ् । दीप् य । दीप्
दीप् य । दी दीप् य । दि दीप् य । देदीप्य । देदीप्य लट् । देदीप्यते ।
सावनसूत्राणि तु 'न धातुलोप आर्धधातुक' इत्यत्र द्रष्टव्यानि ।

सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्म-

वर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् ३।१।५५

प० वि०—सत्याप-पाश रूप-वीणा तूल-श्लोक सेना-लोम त्वच-वर्म
वर्ण चूर्ण-चुरादिभ्य ५३ णिच् १।१ स०—सत्यापश्च पाशश्च रूप च
वीणा च तूलश्च श्लोकश्च सेना च लोम च त्वच च वर्म च वर्ण च
चूर्ण च चुरादयश्च इति सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वच-
वर्मवर्णचूर्णचुरादय, तेभ्य ।

अर्थ—सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म
वर्ण-चूर्ण-चुरादिभ्यो णिच् प्रत्ययो भवति ।

(सत्याप इत्यादि से णिच् प्रत्यय हाता है)

उदा०—सत्यापयति । × अर्थवेदसत्यानामापुग्वक्तव्य । × अर्था
पयति । वेदापयति । × आपुग्वचनसामर्थ्यादिलोपो न भवति × पाशाद्-
विमोचने । निपाशयति । रूपादर्शने । रूपयति । वीणया उपगायति ।
उपवीणयति । तूलेन अनुकुप्णाति । अनुतूलयति । श्लोकैरुपस्तौति ।
उपश्लोकयति । सेनयाऽभियाति । अभिपेणयति त्वचं गृह्णाति ।
त्वचयति । अकारान्तस्त्वचशब्द । वर्मणा सनहति । सवर्मयति ।
चूर्णैर्वध्यसयति । अवचूर्णयति । चुरादिभ्यो स्यार्थे । चोरयति, चिन्तयति ।

सि०—सत्यापयति । सत्यम् आचष्टे इति । सत्याप् णिच् । सत्याप्
इ । सत्यापि^१ । सत्यापि लट्^२ । सत्यापि ल् । सत्यापि तिप् । सत्यापि
शप्^३ तिप् । सत्यापि अ ति । सत्यापे^४ अ ति । सत्याप् अय्^५ अ ति ।
सत्यापयति । वेदापयति । अर्थापयति । निपाशयति । रूपयति ।

१—मनाद्यन्ता धातव (३ १. ३२) २—धातो (३ १. ६१) वर्तमान
लट् (३ २. १२३) ३—कर्तरि शप् (३ १. ६८) ४—सावंधातुकार्धधातु-
कयो (७ ६. ८४) भेदेङ्मुखः (१. १. २) स्थानेऽन्तरतम (१. १. ४९)
५—एचोऽपवायाव (६. १. ७५)

विपाश् रिच् । विपाशि । विपाश् अय् अ निप् । विपाशयति ।
 अभिपेरयति । अभिमेता रिच् । अभिमेन् रिच् । अभिमेन् ट ।
 अभिमेनि । अभिपेनि^१ शप् निप् । अभिपेरयति । वर्मयति । वर्मन्
 रिच् । वर्म् रिच् । वर्मि । वर्मि शप् निप् । वर्मयति । चोरयति । चुर ।
 चूर् । चूर् रिच् । चोर् इ । चोरि । चोरि लट् । चोरि ल् । चोरि निप् ।
 चोरि नि । चोरि शप् नि । चोर् अय् अ ति । चोरयति ।

हेतुमति च ३।१।२६

प० वि०—हेतुमति ७।१ च अ० ।

अर्थ—हेतुर्गन्ति अन्य इति हेतुमन् तस्मिन् हेतुमति । न्यूनान्य
 कर्तुः प्रयोजकः तदीयो व्यापारः प्रेरणादिलक्ष्यो हेतुमान् तस्मिन्नाभि-
 धेये धातोः रिच् प्रत्ययो भवति ।

(स्वतन्त्र कर्ता के प्रेरक को हेतु कहते हैं । तथा प्रेरक का नेत्रना इत्यादि
 मक्षण वाया जो व्यापार उत्पन्न हेतुमान् कहते हैं ऐसे प्रेरणा करने प्रयं में धातु
 से रिच् प्रत्यय होता है)

उदा०—ज्योतिःस्वरूपः निरुक्त पठति । युधिष्ठिरो मीमांसको ज्योतिः-
 स्वरूपं निरुक्तं पाठयति । ष्टागुरुकुले वीरेन्द्रः महाभाष्यम् असीत् ।
 आचार्यः ज्योतिःस्वरूपः वीरेन्द्रं महाभाष्यमभ्यापयति । युधिष्ठिरो वेदं
 अगमयति । महाशय्याकरणाः ब्रह्मदत्ताचार्याः युधिष्ठिरं वेदमगम-
 यन्ति । त्रिरत्नमहाविद्यालये रघुनीरसिंहः वेदमपठन् । परिहर्ता जगदेय-
 सिंहः सिद्धान्ती रघुनीरसिंहं वेदमपाठयन् । क्षेममित्रः कर्पटिकां
 पचति । प्रकाशवती क्षेममित्रं कर्पटिकां पाचयति । X तत्परोति तदाचष्टे
 द्युग्मन्यान् X पठ् कर्तानि आचष्टे वा इति पठयति ।

सि०—पाठयति । पठ व्यन्तायां वाचि । पठ् । पठ् रिच् । पठ्
 इ । पाठि^२ । पाठि लट् । पाठि ल् । पाठि तिप् । पाठि शप् निप् । पाठि
 अ ति । पाठे अ ति । पाठ् अय् अ ति । पाठयति । अभ्यासयति । अधि
 इह् अभ्यसने । इ रिच् । आ^३ ट । आ पुक्^४ ट । आपि । अधि आपि ।
 अभ्यापि लट् । अभ्यापि तिप् । अभ्यापि शप् नि । अभ्यापि अ ति ।
 अभ्यापे अ ति । अभ्यास्य अ ति । अभ्यासयति ।

१—उपमगान्० (८. ३. ६१) । २—पठ् उपमायाः (७. २.) वृद्धिरादेच
 (१. १. १) स्थानेऽत्ररतमः (१. १. ४६) ३—वीरेन्द्रोवा लो (६. १. ४८)
 ४—पतिहोप्ली० (७. ३. ३६)

अवगमयति । गम्ल् सृष्ट् गतो । गम् । गम् णिच् । गम् इ ।
गामि^१ । गमि^२ । गमि लट् । गमि तिप् । गमि शप् ति । गमे अ ति ।
गमय् अ ति । गमयति । अवगयति ।

पाचयति । पच् णिच् । पाच् इ । पाचि तिप् । पाचि शप् तिप् ।
पाचय् अ ति । पाचयति ।

पटयति^३ । पटुं णिच् । पटु अम् णिच् । पटु णिच् । पटु इ । पट्
इ । पट् इ । पटि । पटि तिप् । पटि शप् तिप् । पटं अ ति । पट् अच् अ
ति । पटयति ।

कण्ड्वादिभ्यो यक् ३।१।२७

५० वि०—कण्डूरादिर्यपान्ते कण्ड्वादयः तेभ्यः (बहु०)

अर्थ—कण्ड्वादिभ्यो यक् प्रत्ययो भवति ।

(कण्डू इत्यादि से यक् प्रत्यय होता है)

उदा०—कण्डूयति । कण्डूयते ।

सि०—कण्डूयति । कण्डूय् । कण्डू यक् । कण्डूय । कण्डूय
लट् । कण्डूय तिप् । कण्डूय शप् ति । कण्डूय अ ति । कण्डूयति ।
कण्डूय लट् । कण्डूय त । कण्डूय शप् त । कण्डूय त । कण्डूय ते ।
कण्डूयते ।

सनाद्यन्ता धातवः ३।१।३२

५० वि०—सनाद्यन्ताः १।३ धातवः १।३ स०—सन् आग्निर्येषां ते
सनादयः । सनादयः प्रत्ययाः अन्ते येषान्ते सनाद्यन्ताः ।

अर्थ—सनाद्यन्ताः धातुसंज्ञाः भवन्ति ।

(सनादि हैं अन्त में जिस के ऐसे समुदाय की धातु संज्ञा होती है)

उदा०—चिकीर्षति । पुत्रीयति । पुत्रकाम्यति । पुत्रीयति छात्रम् ।
श्येनायते । पयायते । पयस्यते । पापच्यते । सत्यापयति । चोरयति ।
पाठयति । अध्यापयति । कण्डूयति । कण्डूयते ।

विकरणप्रकरणम्

स्यतासी लृलुटो. ३।१।३३

५० वि० स्यतासी १।२ लृलुटोः ७।२ स०—स्यश्च तासिश्च इति
स्यतासी । लृ च लुट् च इति लृलुटो (इतरे० द्वन्द्वः) तयोः ।

१—उत उपधायाः (७. २. ११६) २—जनीज्ज्वनसुरज्जो धमन्तादय (धातु-
पाठे) मिता ह्रस्वः ६. ४. ६२) ३—समुत्रा साधनिका (१. १. ५६ द०)

अर्थ—लुटुतोः परतः धातोः स्यनासी प्रत्ययौ भवतः ।

(लृ मे लृट् और लृङ् दोनों का ग्रहण होता है । लृट् तथा लृङ् के परे रहने पर धातुमात्र के पश्चात् क्रमशः स्य और तासि प्रत्यय (विकरण) होते हैं)

उदा०—लृट्—भू । भविष्यति, भविष्यतः, भविष्यन्ति । भविष्यसि, भविष्यथः, भविष्यथ । भविष्यामि, भविष्यावः, भविष्यामः । एव वृद्धौ । एधिष्यते, एधिष्येते, एधिष्यन्ते । एधिष्यमे, एधिष्येथे, एधिष्यथ्वे । एधिष्ये, एधिष्यावहे, एधिष्यामहे । लृङ्—भू । अभविष्यन्, अभविष्यताम्, अभविष्यन् । अभविष्यः, अभविष्यतम्, अभविष्यत । अभविष्यम्, अभविष्याव, अभविष्याम । एव—ऐधिष्यन्, ऐधिष्येताम् । ऐधिष्यन्त । ऐधिष्यथाः, ऐधिष्येथाम्, ऐधिष्यथ्वम् । ऐधिष्ये, ऐधिष्यावहि, ऐधिष्यामहि । लृट्—भू । भविता, भवितारो, भवितारः । भवितासि, भवितास्यः, भवितास्य । भवितास्मि, भवितास्वः, भवितास्मः । एव । एविता, एविनारो, एवितारः । एवितासे, एवितासाये, एविताथ्वे । एविताहे, एविताम्यहे, एवितास्महे ॥

सि०—भविष्यति ॥ भू । भू लृट्^१ । भू लृ । भू तिप् । भू स्य^२ तिप् । भू लृट्^३ स्य तिप् । भू इ स्य नि । भो^४ इ स्य ति । भव^५ इ स्य ति । भवि स्य ति । भविष्यति^६ ॥ भविष्य मि । भविष्य अन्^७ इ । भविष्य अन्ति । भविष्यन्ति^८ । भविष्य मिप् । भविष्यसि । भविष्यथः । भविष्यथ । भविष्यामि । भविष्य मिप् । भविष्य मि । भविष्या^९ मि । भविष्यामि । भविष्यावः । भविष्याम^{१०} । एधिष्य न । एधिष्य ते^{११} । एधिष्यते । एधिष्य आताम् । एधिष्य आते^{१२} । एधिष्य इयते^{१३} । एधिष्य इते^{१४} । एधिष्येते । एधिष्य क । एधिष्य अन् । एधिष्य अन्ते । एधिष्यन्ते । एधिष्य धास् । एधिष्य मे^{१५} । एधिष्यमे ॥ एधिष्य आधाम् । एधिष्य आये । एधिष्य इयथे । एधिष्य इये । एधिष्येथे ।

१—लृट् गोपे च (३. ३. १३) २—स्यनासी लृनुतोः (३. १. ३३) ३—धावंधानुबस्वेद्वलादेः (७. २. ३४) ४—आद्यन्तो टङितौ (१. १. ४४) ५—मावंधानुकार्पधानुबयोः (७. ३. ८४) ६—एचोऽथवाधावः (६. १. ७८) ७—अन्तो. (८. ३. ४६) ८—आदेशप्रत्यययोः (८. ३. ४६) ९—अन्तो. (८. ३. ४६) १०—अन्तो दीर्घो यत्रि (७. ३. १०१) ११—टित् धात्मनेपदानां टरे (३. ४. ७६) १२—घातो टितः (७. ३. ८१) १३—लोतो व्योवन्ति (६. १. ६४) १४—याम्मे (३. ४. ८०) १५—यनेवाग्निन् सर्वस्य (१. १. ५४)

एधिप्य ध्वम् । एधिप्य ध्वे । एधिप्यध्वे । एधिप्ये । एधिप्य इट् ।
 एधिप्य ए । एधिप्ये । एधिप्य वहि । एधिप्य वहे । एधिप्या वहे
 एधिप्यावहे ॥ एधिप्य महिङ् । एधिप्य महि । एधिप्य महे । एधिप्या
 महे । एधिप्यामहे । भू लुङ्^१ । भविप्य ति । भविप्य त्^२ । भविप्यत् ।
 अट् भविप्यत् । अ भविप्यत् । अभविप्यत् । अभविप्य तस् । अभ-
 विप्य ताम् । अभविप्यताम् ॥ अभविप्य ऋ । अभविप्य अन्ति ।
 अभविप्य अन्त् । अभविप्य अन्^३ । अभविप्यन् ॥ अभविप्य
 सिप् । अभविप्य सि । अभविप्य स् । अभविप्यः । अभविप्य थस् ।
 अभविप्य तम् । अभविप्यताम् । अभविप्य थ । अभविप्य त । अभ-
 विप्यत । अभविप्य मिप् । अभविप्य मि । अभविप्य अम् । अभ-
 विप्य वस् । अभविप्य व । अभविप्याव । एधिप्य । एधिप्य त ।
 एधिप्य ते । एधिप्यते । आट्^४ एधिप्यते । आ एविप्यते । ऐ^५ धिप्यते ।
 ऐधिप्य आताम् । ऐधिप्य इयताम् । ऐधिप्य इताम् । ऐधिप्येताम् ।
 ऐधिप्य ऋ । ऐधिप्य अन्त । ऐधिप्यन्त । ऐधिप्यथाः । ऐधिप्य आथाम् ।
 ऐधिप्य इयथाम् । ऐधिप्य इथाम् । ऐधिप्येथाम् । ऐधिप्यध्वम् । ऐधिप्य
 इट् । ऐधिप्ये ।

भविता । भू लुट् । भू ल् । भू तिप् । भू तासि तिप् । भू तास् ति ।
 भू इट् तास् ति । भू इ तास् ति । भो इ तास् ति । भग् इ तास्
 ति । भवितास् ति । भवितास् डा । भवित् आ । भविता । भवितारौ ।
 भवितारः । भवितास् सिप् । भवितास सि । भविता^६ सि । भवितासि ।
 भवितास् थस् । भवितास्थः । भवितास्थ । भवितास् मिप् । भविता-
 स्मि, भवितारस्वः । भवितास्मः ॥

एधिता । एधितारौ । एधितारः । एधितास् थास् । एधितास् से । एधिता
 से । एधितासे । एधितास् आथाम् । एधितास् आथे । एधितासाथे ।
 एधितास् ध्वम् । एधितास् ध्वे । एधिताध्वे^७ । एधितास् इ । एधितास ए ।
 एधिताह्^८ ए । एधिताहे । एधितास् वहि । एधितास् वहे । एधितास्वहे ।

१—लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ (३. ३. १३६) २—इतश्च (३. ४. १००) ३—सयोगान्तस्य सोप (८. २. २३) ४—आट्जादीनाम् (६. ४. ७२)
 आट्जन्तौ टङ्कितौ (१. १. ४५) ५—आटश्च (६. १. ८७) ६—नायस्त्योलोपः
 (७. ४. ५०) ७—धि च (८. २. २५) ८—ह एति (७. ३. ५२)

सिञ्चदुल लेटि ३।१।३४

प० वि०—मिन् १।१ बहुलम् १।१ लेटि ७।१

अर्थ—लेटि परतः घात्रोः बहुलं सिप् प्रत्ययो भवति ।

(लेट् के परे रहने पर घातुमात्र में बहुल करके सिप् प्रत्यय (विकरण) होता है)

उदा०—भाविपति । भाविपाति । भाविपत् । भाविपान् । भाविपद् ।
भाविपाद् । भविपति । भविपाति । भविपत् । भविपान् । भविपद् ।
भविपाद् । भयति । भयाति । भवत् । भवान् । भवद् । भवादू ॥१८॥

भाविपतः । भाविपातः । भविपतः । भविपातः । भयतः ॥ भयातः ॥१९॥

भाविपान्ति । भाविपान्ति । भाविपन् । भाविपान् । भविपन्ति । भवि-
पान्ति । भविपन् । भविपान् । भयन्ति । भवान्ति । भवन् । भवान् ॥१२॥भाविपसि । भाविपासि । भाविपः । भाविपाः । भविपसि । भवि-
पासि । भविपः । भविपाः । भयसि । भवासि । भवः । भवाः ॥१२॥

भाविपथः । भाविपाथः । भविपथः । भविपाथः । भयथः ।

भवाथः ॥१॥

भाविपथ । भाविपाथ । भविपथ । भविपाथ । भयथ । भवाथ ॥१॥

भाविपमि । भाविपामि । भाविपम् । भाविपाम् । भविपमि । भवि-
पामि । भविपम् । भविपाम् । भयमि । भवामि । भयम् । भवाम् ॥१२॥भाविपयः । भाविपायः । भाविपय । भाविपाय । भविपयः । भवि-
पायः । भविपय । भविपाय । भययः । भवायः । भवय । भवाय ॥१३॥भाविपमः । भाविपामः । भाविपम । भाविपाम । भविपमः । भवि-
पामः । भविपम । भविपाम । भयमः । भवामः । भयम । भवाम ॥१२॥सि०—X मिञ्चदुलं गिट् वक्तव्यः X भाविपति । भू लेट्^१ । भू
तिप् । भू सिप्^२ ति । भू स्^३ ति । भू ट्^४ स्^५ ति । भू ङ स्^६ ति । भू ञ स्^७ ति ।
भाविम्^८ ति । भाविप्^९ ति । भाविप् अट्^{१०} ति । भाविप् अ नि ।
भाविपति । भाविप् आट्^{११} ति । भाविपाति । भाविप अट् न्^{१२} । भाविपन ।१—लिट्पे लेट् (३. ४. ७) २—मिञ्चदुल लेटि (.. १ ३४) ३—
घाघंभागुवरयेद्वलादेः (७. २. ३४) ४—मिञ्चदुल गिट् वक्तव्यः (१०)
स्योर्ग्रन्थति (७ २. ११५) वृद्धिरादेष् (१. १. १) स्थानेऽन्तरामः (१. १. ४६)
५—इणो (८. ३. ५७) घादेनप्रत्यययोः (८. ३. ५६) ६—पेटोःराटो (१. ४.
६४) घाघन्तो टङितो (१. १. ४५) ७—इटस्य सोऽ. वार्ष्णेयदेणु (१. ४. ६७)

भाविप् आट् ति । भाविप् आ त् । भाविपात् । भाविपद्* । भाविपाद् ।
 भविपति । भू इट् सिप् तिप् । भो^२ इ स् ति । भव् इ स् ति । भविप्
 ति । भविप् अट् ति । भविपति । भू इट् सिप् आट् ति । भविपाति ॥
 भवति । भू शप् अट्^३ तिप् । भू अ अ ति । भो अ अ ति । भव् अ
 अ ति । भवति । भू शप् आट् तिप् । भव् अ आ ति । भवाति ॥ भावि-
 पयः । भू इट् सिप् अट् यस् । भाविप् अ वस् । भाविपयः । भू इट्
 सिप् आट् यस् । भाविपावः । भाविपव* । भाविपाव ॥ एवं सर्वत्र
 सूत्रपूर्वकं साधनीयम् ॥

कासप्रत्ययादाममन्त्रे लिटि ३।१३५

प० वि०—कासप्रत्ययात् ५।१ आम् १।१ अमन्त्रे ७।१ लिटि ७।१
 स०—काश्च प्रत्ययश्च इति कासप्रत्ययम् (समा० द्वन्द्वः) तस्मात् । न
 मन्त्रः अमन्त्रः (नञ् तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—कासधातोः प्रत्ययान्ताच्च धातोराप् प्रत्ययो भवति लिटि
 प्रत्यये परतः । (काश्च इत्युक्त्वा कुत्सायाम तथा प्रत्यय है अन्त में जिसके ऐसे
 धातुप्रो से अम् प्रत्यय होता है लिट् के परे रहने पर)

उदा०—कासाञ्चक्रे, कासाञ्चक्राते, कासाञ्चकिरे । कासाञ्चकृपे,
 कासाञ्चक्राथे, कासाञ्चकृद्वे । कासाञ्चक्रे, कासाञ्चकृवहे, कासाञ्च-
 क्रमहे । प्रत्ययान्तात्—लोलूयाञ्चक्रे, लोलूयाञ्चक्राते, लोलूयाञ्चकिरे ।
 लोलूयाञ्चकृपे, लोलूयाञ्चक्राथे, लोलूयाञ्चकृद्वे । लोलूयाञ्चक्र, लोलू-
 याञ्चकृवहे, लोलूयाञ्चक्रमहे ॥

सि०—कासाञ्चक्रे । कास् । कास् लिट् । कास् आम् लिट् । कास्
 आम् लि । कास् आम् । कासाम् कृब् लिट् । कासाम् कृ एल् । कासाम्
 कृ कृ त । कासाम् क कृ त । कासाञ्च कृ त । कासाम् च कृ एश् ।
 कासाम् च कृ ए । कासाम् चक्रे । कासां^४ चक्रे । कासाञ्चक्रे^५ । कासा-
 ञ्चकृ आताम् । कासाञ्चकृ आते । कासाञ्चक्राते^६ । कासाञ्चकृ

- १—मला जशोज्जे (८. २. ३६) २—एदमावपदो सावंधातुकार्धधातुकयो
 (७. ३. ८६) ३—कर्त्तरि शप् (३. १. ६८) ४—स उत्तमस्य (३. ४. ६८)
 ५—एतेषां साधकानि सूत्राणि आम्प्रत्ययवदिति सूत्रे द्रष्टव्यानि विशेषस्तु
 नश्चापदान्तस्य भक्ति (८. ३. २४) ६—लेखुं किं प्रातिपदिकज्ञा तत् सु,
 मन्तत्वादव्ययमज्ञा, सोलुंक्, पदसज्ञा, वा पदान्तस्य (८. ४. ५८) ७—इको
 यणचि (६. १. ३४)

झ। कासाञ्चकृ इरेच्^१। कासाञ्चकृ इरे। कासाञ्चकिरे ॥
कासाञ्चकृ थास्। कासाञ्चकृ से। कासाञ्चकृ पे। कासाञ्चकृरे।
कासाञ्चकृ ध्वे। कासाञ्चकृ ट्वे^२। कासाञ्चकृट्वे।

लोलूयाञ्चके। लूय। लू। लू यङ्। लू लू यङ्। लो लू य।
लोलूय। लोलूय लिट्। लोलूय आम् लि। लोलूय आम्। लोलूयाम्
चक्रे। लोलूया चके। लोलूयाञ्चके ॥

इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छ ३।१।३६

प० वि०—इजादे ५।१ च अ०। गुरुमत ५।१ अनृच्छ ५।१ स०—
इच् आदिष्यस्य स इजादि (बहु०) तस्मान्। गुरुर्गो विद्यते अस्मिन्
स गुरुमान् तस्मिन्। न ऋट् अनृट् तस्मात् (नबृत् तत्पु०)

अर्थ—[अमन्त्रे लिटि] इजादियों धातुगुरुमान् ऋच्छतियर्जित-
स्तस्मान्च लिटि परत आम्प्रत्ययो भवति अमन्त्रे।

(इच्च प्रत्याहार में घाने वाला कोई वरुण आदि में है जिसके ऐसे गुरु वरुण
वाले धातु से लिट् क परे रहन पर आम् प्रत्यय होता है, ऋच्छ धातु को छोड़
कर अमन्त्र में)

उदा०—एधाञ्चके। इन्धाञ्चकार।

एधाञ्चके। एध। एध लिट्। एध आम् लिट्। एध् आम्। एधाम्
कृ लिट्। एधाम् चक्रे। एधा चक्रे। एधाञ्चके।

इन्धाञ्चकार। इडि परमेश्वर्ये। इडि। इ नुम् इ। इन्द् लिट्। इन्द्
आम् लिट्। इन्द् आम्। इन्दाम् कृ लिट्। इन्दाम् कृ एल्। इन्दाम्
कृ इ अ। इन्दाम् क कृ अ। इन्दाम् च कृ अ। इन्दाम् च कार अ।
इन्दाम् चनार। इन्दा चकार, इन्धाञ्चकार।

वृञ्चानुषयुज्यते लिटि ३।१।४०

प० वि०—वृञ् १।१ च अ०। अनुप्रयुज्यते। क्रिया०। लिटि ७।१

अर्थ—पश्चादर्थे अनु। आम्प्रत्ययस्य पश्चात् वृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि
परत। (आम् प्रत्यय व पश्चात् वृञ् का अनुप्रयोग होना है लिट् के परे
रहन पर)

उदा०—कुरुञ् इति प्रत्याहारप्रहर, तेन कृ-भू-अस्तथो पृथग्ने,
तस्मात्पश्चादस्ते भू-भोगो न भवति ॥३॥

१—लिट्प्रत्ययारशिरप् (३ ४ ८१) अनकल्पितमवस्य (१. १ ५४)

२—इण पोष्वलुङ्लिट् (८ ३ ७८) ३—इन्ति नुम् धानोः (७. १. ५८)

एवाञ्चक्रे, एवाञ्चकृते, एवाञ्चकृरे। एवाञ्चकृपे, एवाञ्चकृथे, एवाञ्चकृद्वे। एवाञ्चक्रे, एवाञ्चकृनहे, एवाञ्चकृमहे। एवाम्बभूव, एवाम्बभूवतु, एवाम्बभूवु। एवाम्बभूविथ, एवाम्बभूवथु, एवाम्बभूव। एवाम्बभूविथ। एवाम्बभूविम।

एवामास। एवामासतु। एवामासु। एवामासिथ। एवामासथु। एवामास। एवामास। एवामासिव। एवामासिम। इन्दाञ्चकार। इन्दाञ्चकृतु। इन्दाञ्चकृ। इन्दाञ्चकथ। इन्दाञ्चकथु। इन्दाञ्चक। इन्दाञ्चकार, इन्दाञ्चकर। इन्दाञ्चकृव। इन्दाञ्चकृम। इन्दाञ्चभूव। इन्दामास।

सि०—एवाम्बभूव। एवाम् भू लिट्। एवाम् भू तिप्। एवाम् भू णल्। एवाम् भू ण। एवाम् भू युक्^१ अ। एवाम् भूव् अ। एवाम् भून् भूय् अ। एवाम् भू भूव् अ। एवाम् भु भूव् अ। एवाम् भ भूय् अ। एवाम्बभूव। एवाम्बभूवतु। एवाम्बभूव् तस्। एवाम्बभूव् अतुस्॥ एवाम्बभूविथ। एवाम्बभूव् इट् थल्। एवाम्बभूविथ॥ एवामास। एवाम् अस् लिट्। एवाम् अस् तिप्। एवाम् अस णल्। एवाम् अस् अस णल्। एवाम् अ अस् णल्। एवाम् आ^२ अस् अ। एवाम् आ आस् अ। एवाम् आस्^३ अ। एवामास। एवामासिथ। एवाम् आस् इट् थल्। एवामासिथ॥

इन्दाञ्चकार। इन्दाञ्चकृतु। इन्दाम् च कृ अतुस्। इन्दाञ्चकृतु। इन्दाञ्चकार। इन्दाञ्चकर। इन्दाम् च कृ णल्। इन्दाञ्चकर^४ अ। इन्दाञ्चकर॥

चिल लुङि ३।१।४३

प० वि०—चिल। १।१ नपु सकनिर्देश। लुङि ७।१

अर्थ—लुङि परत घातोश्चित् प्रत्ययो भवति।

(सुट के परे रहन पर घातु से चिल प्रत्यय हाता है)

उदा०—अभूत्। ऐधिष्ट॥

१—भुवा युक् लुङिलिटो (६ ४ ८८) आद्यतो टक्त्वो (१ १ ४२)

२—अत आद (७ ४ ७०) ३—अक सवर्णे दीघ (६ १ ६७) ४—

एलुत्तमो वा (७ १ ६१) इति एिदभावपक्षे—साधधातुकाधधातुययो

७ ३ ८४)

च्ले सिच् ३।१।४४

प० वि०—च्ले ६।१ सिच् १।१

अर्थ—च्ले स्थाने सिजादेशो भवति । (च्लि के स्थान में सिच् प्रादेश होता है)

उदा०—अभूत् । अभूताम् । अभूयन् । अभू । अभूतम् । अभूत । अभूयम् । अभूय । अभूयम् ।

ऐधिष्ट । ऐधिषताम् । ऐधिषत । ऐधिष्टा । ऐधिषाताम् । ऐधिषम् । ऐधिषि । ऐधिष्यहि ऐधिष्यहि ॥

सि०—अभूत् । भू लुङ् । भू ल् । भू तिप् । भू सिच् ति । भू ति । भू न् । अद् भू त् । अभूत् । अभू तस् । अभू ताम् । अभूताम् । अभू मि । अभू अन्ति । अभू वुन् अन्ति । अभूव् अन् । अभूयन् । अभूयन् । अभूवम् । अभूय ॥

साधकानि सूत्राणि गतिर्याचुषामभ्य (२ । ४ । ७७) इत्यत्र द्रष्टव्यानि ।

शल इगुपधादनिट क्स ३।१।४५

प० वि०—शल ५।१ इगुपधान् ५।१ अनिट ५।१ क्स १।१ स०—इक् उपधाया यस्य स इगुपध (वह्) तस्मान् । न विधते इट् यस्मान् सोऽनिट (वहु०) तस्मान् ।

अर्थ—[च्ले] शलन्तो यो धातुरिगुपध अनिट्च तस्मात् परस्य च्ले स्थाने क्स आदेशो भवति । (एन प्रत्याहार में धान वाला बाद वण है धत में जिसके ऐसा जो इक् उपधावाला अनिट धातु उसने पश्चान च्लि के स्थान में क्स आदेश होता है)

उदा०—अधुत्तन्, अधुत्तताम्, अधुत्तन् । अधुत्त, अधुत्तनम्, अधुत्तत । अधुत्तम्, अधुत्ताव, अधुत्ताम् ।

सि०—अधुत्तत् । दुह प्रपूरणे । दुह लुङ् । दुह् तिप् । दुह् ति । दुह् च्लि ति । दुह् क्स ति । दुह् म ति । दुघ् स ति । धुक् स ति । धुक् प ति । धुक् प त् । अद् धुक्पत् । अधुक्पत् । अधुत्तत् ॥ अधुत्त

१—दादपानाथ (८ २ ३२) २—सरिच (८ ४ ५४) एकाचो गणा भप् भपतस्य स्वा (८ २ ३७) ३—प्रादेशप्रत्यया (८ ३ ४६)

तस्। अधुक्त ताम्। अधुक्तताम्। अधुक्ताव। अधुक्तवस्। अधुक्त
व। अधुक्ता व। अधुक्ताव।

णिथिद्रुसुभ्य कत्तरि चङ् ३।१।४६

प० वि०—णिथिद्रुसुभ्य १।३ कत्तरि ७।१ चङ् १।१ स०—णिश्च
शिश्च द्रश्च स्रश्च इति णिथिद्रुसुव (इतरे० इन्द्र) वेभ्यः ।

अर्थ—[स्ते] एय-तेभ्यो धातुभ्य शिद्रुसु इत्येतेभ्यश्च परस्य
स्तेरश्चङादेशो भवति कर्त्तृवाचिनि लुङि परत ॥ (णिश्च है प्रत नै
जित्तव एने पातु से तथा थि द्रु स्र इत धातुर्धो क परचात कर्तावाची लुङ क
पर रहत पर च्लि क स्थान में चङ् आदेश होता है)

उदा०—कारयति। अचीकरत्, अचीकरताम्, अचीकरन्। अची
कर। अचीकरतम्, अचीकरत। अचीकरम्, अचीकराव, अचीकराम।

अशिथियत्, अशिथियताम्, अशिथियन्। अशिथिय, अशि-
थियतम्, अशिथियत। अशिथियम्, अशिथियाव, अशिथियाम।

अदुद्रवत्, अदुद्रवताम्, अदुद्रवन् अदुद्रव, अदुद्रवतम्, अदु-
द्रवत। अदुद्रवम्, अदुद्रवाव, अदुद्रवाम।

असुस्रुवत्। असुस्रुवताम्। असुस्रुवन्। असुस्रुव। असुस्रु-
वतम्। असुस्रुवत। असुस्रुवम्। असुस्रुवाव। असुस्रुवाम।

सि०—अचीकरत्। डुरुन्। कृ णिच्^२। कृ इ। कार्^३ इ। कारि।
कारि लुङ। कारि ल्। कारि तिप्। कारि चङ्^४ तिप्। कारि च तिप्।
कारि अ ति। करि अ^५ ति। कर् अ^६ ति। कर् कर् अ^७ ति।

क कर् अ ति। च कर् अ ति। चि कर् अ ति। ची^८ कर् अ ति।
ची कर् अ त्। चीकरत्। अट् चीकरत्। अचीकर तस्। अचीकर
ताम्। अचीकरताम्। अचीकर भि। अचीकर यन्ति। अचीकर अन्त।

१—तस्यस्यमिषा तान्तताम् (३ ४ १०१) यथासंख्यमनुदेश समानाम् (१
३ १०) २—हेतुमति च (३ १ २६) ३—अचो ज्ञिति (७ २ १०५)
वृद्धिरादेच (१ १ १) स्थानन्तरतम (१ १ ४६) उत्तरात्पर (१ १ ५०)
४—णिथिद्रुसुभ्य कत्तरि चङ (३ १ ४६) ५—णो चङ्युपधाया ह्रस्व
(७ ४ १) ६—आधधातुक शय (३ ४ ११३) सार्वनाटि (६ ४ ५१)
७—वङि (६ १ ११) ८—सबल्लघुनि० (७ ४ ६३) ९—दीर्घो लघो

अचीकर अन् । अचीकरन् । अचीकर सिप् । अचीकर सि । अचीकर
स् । अचीकरः ।

अशिथियत् । शिञ् । शि । शि लुङ् । शि ल् । शि तिप् । शि चङ्
तिप् । शि अ ति । शियङ् अ ति । शिय अ ति । शिय अ ति ।
शिय् शिय् अ ति । शि शिय् अति । शि शिय् अत् । शिशियत् ।
अट् शिशियत् । अशिथियत् । अशिथियताम् । अशिथिय तस् । अशि-
थिय ताम् । अशिथियताम् । अदुद्रवत् । द्र लुङ् । द्रु ल् । द्र तिप् । द्रु
चङ् तिप् । द्रु अ ति । द्रु षङ् अ ति । द्रु अ ति । द्रु य् द्रु य् अ ति । द्रु
द्रु य् अ ति । द्रु द्रु य् अ त् । द्रु द्रवत् । अट् द्रु द्रवत् । अदुद्रु वत् । अमु-
स्रु वत् । स्रु । स्रु लुङ् । स्रु ल् । स्रु तिप् । स्रु चङ् ति । स्रु अ ति ।
स्रु वङ् अ ति । स्रु य् अ ति । स्रु य् स्रु य् अ ति । मु स्रु य् अ ति ।
मुस्रु वत् । अट् मुस्रु वत् । अमुस्रु वत् ।

अस्यतिवक्तित्यातिभ्योऽङ् ३।१।५२

प० वि०—अस्यतिवक्तित्यातिभ्यः ५।३ अङ् १।१

स०—अस्यतिश्च वक्तिश्च ख्यातिश्च इति अस्यतिवक्तित्यातय,
तेभ्यः ।

अर्थ—[च्लेः कर्त्तरि लुङि] असु क्षेपणे, वच परिभाषणे, ब्रूवादेशो
वा, ख्या प्रकथने चक्षिडादेशो वा इत्येतेभ्यो धातुभ्यः क्लेरडादेशो भवति
कर्त्तृवाचिनि लुङि परतः । (असु, वच और ख्या धातुओं के पश्चात् कर्त्ता-
वाची लुङ् के परे रहने पर च्लि के स्थान में अङ् आदेश होता है)

उदा०—अस्यतेः पुपादिपाठादेवाङि सिद्धे पुनर्ग्रहणमात्मनेपदार्थम् ।
× उपसर्गादिस्वत्यृहोर्वा वचनम् × (१. ३. ४६) पर्यास्थत्, पर्यास्थेताम्,
पर्यास्थन्त । पर्यास्थ्याः, पर्यास्थेयाम्, पर्यास्थ्वम् । पर्यास्थे, पर्यास्थावहि,
पर्यास्थामहि । वक्ति ॥ अवोचत्, अवोचताम्, अवोचन् । अवोचः,
अवोचतम्, अवोचत । अवोचम्, अवोचाव, अवोचाम । ख्याति ।
आख्यत्, आख्यताम्, आख्यन् । आख्यः, आख्यतम्, आख्यत ।
आख्यम्, आख्याव, आख्याम ॥

सि०—परि असु । परि अस् लुङ् । परि अस् ल् । परि अस् त ।

परि अस् च्लि त । परि अस् अङ् त । परि अस् थुक्^१ अङ् त । परि अस् थ् अ त । परि अस्थत । परि आट् अस्थव । परि आ अस्थत । पर्यास्थत । अवोचत् । वच् लुङ् । वच् ल् । वच् तिप् । वच् अङ् ति । व उम् च्^२ अ ति । वउच् अ ति । वोच ति । वोचत् । अट् वोचत् । अवोचत् । आरयत् । आङ् रया । आरया लुङ् । आरया ल् । आख्या तिप् । आख्या अङ् तिप् । आख्या अ तिप् । आरय^३ अ ति । आख्य अ त् । आरयत् । आ आट् ख्यत् । आ आ ख्यत् । आरयत् । आरय-तम् । आख्य तस् । आख्यतम् ॥

पुपादिद्युताद्यलृदित परस्मैपदेषु ३।१।५५

प० वि०—पुपादिद्युताद्यलृदित ५।१ परस्मैपदेषु ७।३ स०—पुप आदि येषान्ते पुपादय ॥ द्युत आदि येषां ते द्युतादय ॥ लृत् इत् यस्य सोऽयम् लृदित् । पुपादयश्च द्युतादयश्च लृदिच्च इति पुपादिद्युताद्यलृदित् (सर्मा० द्वन्द्व) तस्मात् ॥

अर्थ—[च्ले अङ् कर्त्तरि लुङि] पुपादिभ्यो द्युतादिभ्य लृदिद्भ्यश्च धातुभ्य परस्य च्लेरडादेशो भवति लुङि कर्त्तृवाचिपरस्मैपदेषु परत ॥ पुप आदि में है जिनके ऐसे द्युत आदि में है जिनके ऐसे तथा लृकार इत् वाले धातुओं के पश्चात् कर्त्तृवाची लुङ परस्मैपद के परे रहने पर 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश होता है)

उदा०—पुपादयो दिवादिस्था गृह्यन्ते न भ्वादिस्था । पुपादि—अपु पत्, अपुपताम्, अपुपन् । अपुप, अपुपतम्, अपुपत । अपुपम्, अपुपाव, अपुपाम ॥ द्युतादि—अद्युतत्, अद्युतताम्, अद्युतन् । अद्युत, अद्युततम्, अद्यतन् । अद्युतम्, अद्युताव, अद्यताम् । लृदित्—अगमत् अगमताम्, अगमन् । अगम, अगमतम्, अगमत । अगमम्, अगमाव, अगमाम ॥

सि०—पुप । पुप् । पुप् लुङ् । पुप् ल् । पुप् तिप् । पुप् च्लि तिप् । पुप् अङ् ति । पुप् अ ति । पुप्^४ अत् । पुपत् । अट् पुपत् । अपुपत् । (एव सर्वत्र)

१—अस्यतेऽथुक् (७. ४. १७) आद्यन्तो टकितो (१. १. ४५) २—वव उम् (७. ४. २०) ३—आतो लोप इति च (६. ४. ६४) ४—पुगन्तलधूपधस्य च (७. ३. ८६) क्ति च (१. १. ५)

‘डरितो वा ३।१।५७

प० वि०—डरितः ५।१ वा अ० । म०—इच्च रच्च इति डरी । इच्च
रच्च इति डती । डरी डती यस्य मोऽयम् डरिन् (बहु०) तस्मात्

अर्थ—[च्लेः लुङि परस्मैपदेषु] डरितो वातोः परस्य वा च्त्वेरडा-
देशो भवति लुङि कर्तृवाचिपरस्मैपदेषु परतः ॥ (इह है इन् जिमका ऐसे
धानुग्रो के परवान् कर्तावाचो गुट् परस्मैपद के पदे रहने पर चि के स्थान में
विकल्प में अट् आदेश होना है)

उदा०—अटि । भिदिर्—अभिदत्, अभिदताम्, अभिदन् ।
अभिदः, अभिदतम्, अभिदत । अभिदम्, अभिदान, अभिदाम ॥
मिचि । अभैत्सीन्, अभैत्ताम्, अभैत्सुः । अभैत्सीः, अभैत्तम्,
अभैत्त । अभैत्तम्, अभैत्त्व, अभैत्सम् । छिदिर्—अट् अछिदत्,
अछिदताम्, अछिदन् । अछिदः, अछिदतम्, अछिदत ।
अछिदम् । अछिदान, अछिदाम ॥ चट्—अच्छैत्सीन्, अच्छै-
त्ताम्, अच्छैत्सुः । अच्छैत्सीः, अच्छैत्तम्, अच्छैत्त । अच्छैत्सम्,
अच्छैत्त्व, अच्छैत्सम् ॥

सि०—भिदिर् । भिद् । भिद् लुङ् । भिद् तिप् । भिद् न्ति तिप् ।
भिद् अट् ति । भिद् अ ति । भिद् अ ति । भिद् अ त । भिदत् अट्
भिदत् । अभिदत् । भिद् लुङ् । भिद् तिप् । भिद् च्ति तिप् । भिद्
सिच् तिप् । भैद् स् तिप् । भैद् स् न् । भैद् स् ईट्^१ न् । भैन्^२ स्
ई न् । भैःमोन् । अट् भैःसीन् । अभैःसीन् । अभैत्ताम् । अभैन् स्
तम् । अभैन् स् ताम् । अभैन्^४ ताम् । अभैत्ताम् । अभैस् मि ।
अभैम् जुम् । अभैत् उम् । अभैत्सुः ॥

चिण् ते पदः ३।१।६०

प० वि०—चिण् १।१ ते ७।१ पदः ५।१

अर्थ—[च्लेः लुङि कर्त्तरि] पद गतो इत्यस्माद् घातोः परस्य कर्त्तृ-
वाचिनि लुङि लङ्गदे परतः च्त्वेरिन्नादेशो भवति । (इह धानु के परवान्
कर्तावाचो गुट् घातनेपद त प्रत्यय के पर रहने पर चि के स्थान चिण्

१—मिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु (उ. ३. १) २—अट् एकात्म्यपदः (१.
३. ४१) अस्तिगिबोगुणो (उ. ३. १६) ३—गति च (उ. ४. ४४)
४—अतो न्ति (उ. २. २६)

आदेश होता है)

उदा०—उदपादि सस्यम् । प्रापादि विद्या ब्राह्मण । उदपादि, उद-
पत्साताम्, उदपत्सत ।

सि०—उदपादि । उद् पद् । उप् पद् । उद् पद् लुङ् । उद् पद् ल् ।
उद् पद् त । उद् पद् चित्त त । उद् पद् चिण् त । उद् पद् चिण् ।
उद् पद् इ । उपाद् इ । उद् पादि । उद् अट् पादि । उद् अ पादि ।
उदपादि ॥

अच कर्मकर्त्तरि ३।१।६२

प० वि०—अच १।१ कर्मकर्त्तरि ७।१

अर्थ—[चिण् ते अन्यतरस्याम्] अजन्ताद् धातो परस्य च्ले स्थाने
कर्मकर्त्तरि तप्रत्यये परत विकल्पेन चिण् आदेशो भवति । (अजन्त धातु
के पश्चात् च्लि क स्थान में कर्मकर्त्ता त प्रत्यय क परे रहन पर विकल्प से
चिण् आदेश होता है)

उदा०—कर्त्तरि—देवदत्त कट करोति । कर्मकर्त्तरि—अकृत वा
अकारि कट स्वयमेव । कर्त्तरि—देवदत्त केदार लुनाति । कर्मकर्त्तरि—
अलावि केदार स्वयमेव । अलविष्ट केदार स्वयमेव ॥

सि०—अकारि । कृ लुङ् । कृ ल् । कृ चिण् त । कृ इ त । कार् इ
त । कारि । अट् कारि । अकारि । अकृत । कृ लुङ् । कृ त । कृ सिच्
त । कृ^३ सिच् त । कृ स् त । कृ^४ त । अट् कृत । अकृत ॥ अलावि ।
लूङ् । लू लुङ् । लू ल् । लू त । लू चिण् त । लौ इ त । लावि त ।
लावि । अट् लावि । अलावि । अलविष्ट । लू लुङ् । लू ल् । लू त । लू
सिच् त । लू इट् स त । लो इ स त । लविप् त । लविष्ट । अट्
लविष्ट । अलविष्ट ॥

चिण् भावकर्मणो ३।१।६६

प० वि०—चिण् १।१ भावकर्मणो ७।२ स०—भावश्च कर्म च
इति भावकर्मणी तयो ।

अर्थ—[च्ले लुङि] धातो परस्य च्लेश्चिणादेशो भवति भावे

१—चिणो लुक् (६. ४ १०४) २—अत उपधाया (७ २ ११६)

३—सावधातुकाधधातुवयो (७ ३ ८४) उश्च (१ २ १२) विडिति च (१. १.

१. ५) ४—ह्रस्वावज्ञात् (८ २ २७)

कर्मणि च लुङि तप्रत्यये परतः ॥ (घातु के पदवान् चिन् के स्थान में चिण् प्रादेश होता है भाव और कर्म विषयक लुट् में आत्मनेपद त प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—भावे लुङि—अशायि देवदत्तेन । कर्मणि लुङि—अपाठि वेदः देवदत्तेन ॥ × कर्मापदिष्टाः विधयः कर्मकर्त्तर्यपि भवन्ति × कर्मणि लटि—देवदत्तेन काष्ठं मिश्रते । कर्मकर्त्तरि लुङि—अभेदि काष्ठं म्रियमेव ॥

सि०—अशायि । शीङ् । शी लुट् । शी त । शी चिण् त । शी इ त । शाय् इ त । शायि । अट् शायि । अशायि । अपाठि । पठ । पठ् लुङ् । पठ् ल् । पठ् त । पठ् चिण् त । पाठ् इ त । पाठ् इ । पाठि । अट् पाठि । अपाठि ॥ अभेदि ॥ मिद्रि । मिद् । मिद् लुङ् । मिद् ल् । मिद् त । मिद् चिण् त । मिद् इ त । भेद् इ त । भेदि । अट् भेदि । अभेदि ॥

सार्वधानुके यक् ३।१।६७

प० वि०—सार्वधानुके ७।१ यक् १।१

अर्थ—[भाक्कर्मणोः] भाक्कर्मवाचिनि सार्वधानुके प्रत्यये परतः घातोर्यक् प्रत्ययो भवति । (भाव और कर्मवाची सार्वधानुक प्रत्यय के परे रहने पर घातु से यक् प्रत्यय होता है)

उदा०—कर्त्तरि लटि—देवदत्तः आस्ते । भावे लटि—आम्यने देवदत्तेन । कर्त्तरि लटि—देवदत्तः ओदनं पचति । कर्मणि लटि—पच्यते ओदनः देवदत्तेन । × कर्मकर्त्तर्यपि कर्मापदिष्टो यक् भवति × कर्त्तरि लटि—देवदत्तः काष्ठं लुनाति । कर्मणि लटि—काष्ठं लूयते देवदत्तेन । कर्मकर्त्तरि लटि—लूयते काष्ठं म्रियमेव ॥

सि०—आस्यते । आम् लट् । आम् ल् । आम् त । आस् यक् त । आस्यत । आस्यते ॥ पच्यते । रुपचप् । पच् लट् । पच् ल् । पच् त । पच् यक् त । पच्यत । पच्यते ॥ लूयते । लून् लट् । लू ल् । लू त । लू यक् त । लूयत । लूयते ॥

कर्त्तरि ङप् ३।१।६८

प० वि०—कर्त्तरि ७।१ ङप् १।१

अर्थ—[सार्वधानुके] कर्त्तृवाचिनि सार्वधानुके प्रत्यये परतः घातोः शप् प्रत्ययो (विकरणः) भवति ॥ (कर्त्तावाची सार्वधानुक प्रत्यय के परे रहने पर घातु से शप् प्रत्यय होता है)

उदा०—भवति । पचते । चोरयति । चिकीर्षति । पादच्यते ।

सि०—भवति । भू लट् । भू ल् । भू तिप् । भू शप् तिप् । भू अ ति । भो अ ति । भवति । एधते । एध् । एध् लट् । एध ल् । एध त । एध् शप् त । एध् अ त । एध् अ ते । एवते ॥

चोरयति । चुर् । चुर् णिच् । चुर् इ । चोरि । चोरि लट् । चोरि ल् । चोरि ति । चोरि शप् ति । चोरि अ ति । चोरे अ ति । चोरय् अ ति । चोरयति ।

पापच्यते । पच् यङ् । पच् य । पच् पच् य । प पच् य । पा पच् य । पापच्य शप् त । पापच्य अ त । पापच्यत । पापच्यते ॥

दिवादिभ्यः श्यन् ३।१।६६

प० वि०—दिवः आदिर्येपान्ते दिवादयः तेभ्यः ।

अर्थ—[सार्वधातुके कर्त्तरि शप्] दिवादिभ्यो धातुभ्यः शपः स्थाने श्यन् प्रत्ययो भवति कर्त्तृवाचिसार्वधातुके प्रत्यये परतः ।

(कर्त्तावाची सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहने पर दिव है आदि में जिसके ऐसे धातुओं से शप् के स्थान में श्यन् प्रत्यय होता है)

उदा०—दीव्यति, दीव्यतः, दीव्यन्ति । दीव्यसि, दीव्यथः, दीव्यथ । दीव्यामि, दीव्यावः, दीव्यामः ।

सि०—दिव् । दिव् लट् । दिव् तिप् । दिव् ति । दिव् श्यन् ति । दिव् ये ति । दीव् य ति । दीव्यति ॥

स्वादिभ्यः श्नुः ३।१।७३

प० वि०—स्वादिभ्यः ५।३ श्नुः १।१ स०—सुः आदिर्येपां ते स्वादयः तेभ्यः ।

अर्थ—[सार्वधातुके कर्त्तरि शप्] कर्त्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः स्वादिभ्यो धातुभ्यः शपः स्थाने श्नुप्रत्ययो भवति ।

(कर्त्तावाची सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहने पर सु इत्यादि धातुओं के पश्चात् शप् स्थान में श्नु प्रत्यय होता है)

उदा०—सुनोति, सुनुतः, सुन्वन्ति । सुनोपि, सुनुथ, सुनुथ । सुनोमि, सुनुवः, सुन्वः, सुनुमः, सुन्म ॥

सि०—सुञ् । पु । सु लट् । सु ल् । सु ति । सु श्नु ति । सु तु

१—दीर्घोऽङ्कितः (७. ४. ८३) २—हलि च (८. २ ७७) ३—पात्वानिः पः सः (६. १. ६२) ४—स्वादिभ्यः श्नु (३. १. ७३)

ति । मु नो^१ नि । मु^२ नोति । मुनुत । मु मु^३ तम् । मुनु अन्ति ।
मुन्नन्ति^४ । मुनुतः । मुन्नः^५ । मु नु वस् । मु न् वम । मुन्वः ॥

श्रुव शृ च ३।१।७८

प० वि०—श्रुवः ६।१ शृ । १ । १ नमु^१ सकृन्निर्देश । च अ० ।

अर्थ—[सार्वधातुके कर्त्तरि शप्] श्रु श्रवणे इत्यस्माद् धातो परम्य
शान् स्थाने कर्त्तृधाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः श्रुविस्करणो
भवति, तत्संनियोगेन ध्रुवः शृ इत्ययमादेशो भवति । (ध्रु धातु के
पश्चात् कर्त्तावाचो सार्वधातुक् प्रत्यय के परे रहने पर शप् के स्थान
में श्रु विस्रण होता है और इसके समीप में ध्रु धातु के स्थान में शृ आदेश
होता है)

उदा०—शृणोति । शृणुतः । शृण्वन्ति ।

तुदादिभ्यः श ३।१।७७

प० वि०—तुदादिभ्यः ५।३ श. १ । १ सि०—तुदः आदिर्येषां ते
तुदादयः तेभ्यः ।

अर्थ—[सार्वधातुके कर्त्तरि शप्] कर्त्तृधाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये
परतः तुदादिभ्यो धातुभ्यः शप् स्थाने शविस्रणो भवति ।

(कर्त्तावाचो सार्वधातुक् प्रत्यय के परे रहने तुद इत्यादि धातुओं के पश्चात्
शप् के स्थान में श विस्रण होता है)

उदा०—तुदति, तुदतः, तुदन्ति । तुदसि, तुदथः । तुदथ । तुदामि,
तुदाथः, तुदामः ।

सि०—तुदति । तुद् लट् । तुद् तिप् । तुद् शप् ति । तुद् अं
ति । तुद्^१ अ त । तुदति । तुद् अ अन्ति । तुदन्ति ।

रधादिभ्यः ङनम् ३।१।७८

प० वि०—रधादिभ्यः ५।३ ङनम् १।१ स०—रुः आदिर्येषान्ते
रधादयः तेभ्यः ।

अर्थ—[सार्वधातुके कर्त्तरि शप्] कर्त्तृधाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये

१—सार्वधातुसार्वधातुवयो (७.३.८४) २—सार्वधातुसार्वधातुवयोः इति
प्राप्ते—सार्वधातुवमपित् (१.२.४) विडति च (१.१.५) इति वृणस्य
निषेध ३—दृन्वो० (६.१.८०) ४—तोषत्वात्पान्यवरस्या ष्वोः (६.४.
१०७) ५—पुगन्तसपूषस्य (१.२.२४) विडति च ।

परत रुगान्भ्यो घातुभ्य शप् स्थाने श्नम् विकरणो भवति ।

(कर्त्तावाची सावधातुक प्रत्यय के पर रहन पर रुघ इत्यादि घातुप्रो से शप् के स्थान में श्नम् विकरण होता है)

उदा०—रुणद्धि, रुघ रुद्ध, रुवन्ति । रुणत्सि, रुव, रुव । रुणभि, रुव, रुवम् । रुवे, रुघाते, रुवते । रुत्से, रुगाथे, रुने । रुवे, रुव्वहे, रुव्वहे ॥

सि०—रुधिर । रुध् । रुध् लट् । रुध् लृ । रुध् तिप् । रुध् ति । रु श्नम् ध् ति । रुनध् ति । रुणध् ति । रुणव् धि । रुणद्धि । रुव । रुध् । रुध् लट् । रुध् तस् । रु श्नम् ध् तस् । रुन ध् तस् । रुन् ध् तस् । रुव धस् । रुन् धस्, रुव । रुव धस् । रुव धस् । रुव ध । रुव । रुवन्ति । रुध् मि । रु श्नम् ध अन्ति । रुनध् अन्ति । रुवन्ति । रुणत्सि । रुणध् सिप् । रुणत् सि । रुणत्सि ॥ रुवे । रुध् । रुव लट् । रुध त । रु श्नम् ध् त । रुन ध् त । रुन् ध् त । रुव् ते । रुध् धे । रुवे ॥

तनादिकृञ्म्य उ ३।१।७१

प० वि०—तनादिकृञ्म्य ५।३ उ १।१ स०—तन् आदिर्येपाते तनादय । तनादयश्च कृञ्च इति तनादिकृञः तेभ्य ॥

अर्थ—[सार्धधातुके कर्त्तरि शप्] तनु विस्तारे, इत्येवमादिभ्यो घातुभ्य कृञश्च उपत्ययो भवति, कर्त्तावाचिनि सार्वधातुकप्रत्यये परत । (तनु विस्तारे घातु है आदि म जिनके ऐसे घातुप्रो के पश्चात् तथा कृञ घातु के पश्चात् कर्तावाची सावधातुक प्रत्यय के परे रहन पर शप् के स्थान में उ विकरण होता है)

अत्रेदं बोध्यम्—कृञ् तनादौ पठ्यते, स चानार्प पाठ, अन्यथा तनादित्वादेव उपत्यये सिद्धे कृञ् पृथग्ग्रहणमनर्थक स्यात् । सायणव प्राचीना पाणिनीया (मैत्रेय वर्जयित्वा), अन्ये च हैमादय, सर्व एव दैयाकरणा कृञ् ग्वादावप्यपाठिषु (सायणेनैव कृञ् ग्वादे निष्कापित ८० माधवीया घातुवृत्ति पृ० १६३ अम्भाप्य १।८२१) तथा सति कृञो ग्वादिपाठात् शक्यमवति, तनादिकृञ्म्य उ इत्यत्र कृञ्ग्रहणाच्च उ ।

१—मिदचोऽन्यात्पर (१ १ ४६) २—अटकुप्वाङ्नुम्वयवेऽपि (६ ४ २) ३—अपस्तपोर्धोऽप (८ ४. ४०) ४—कला जग कशि (८ ४ ५२) ५—इतहोरत्त्वोप (६ ४ १११) ६—करो करि सवर्णे (८ ४. ६४)

एतदेवाभिप्रेयाचार्यंदयानन्देनाप्युक्तम्—“हुञ्च करणे इत्यभ्य
भ्वादिगणान्तर्गतपाठान् शब्धिकरणोऽत्र गृह्यते, तनादिभि मद्
पाठादधिकरणोऽपि” (यजमांष्य ३।१८) ।

उदा०—तनोति, तनुत, तन्यन्ति । तनोषि, तनुथ, तनुय । तनोमि, तनुय तय । तनुम तन्म ॥ करोति, कुरुत, कुर्यन्ति । करोषि, कुरुथ, कुर्यथ । करोमि, कुरु । कर्म ॥

सि०—तनोति । तनु । तन् लट् । तन् लृ । तन् तिप् । तन् इति ।
तनुति । तनोति । तनुत । तनुष, तन्व^१ । कुन् । इ इतम् । कर्^२
उतस । कुर^३ उतस् । कुन्व^४ । कुर^५ उमस् । कुर^६ मम् । कुर्म ॥

कथादिभ्यश्ना ३।१।८१

प० नि०—त्र्यादिभ्यः शर र्ना १।१ स०—त्री आदिर्येपां ते
क्रयादय तेभ्यः ।

अर्थ—[सार्वधातुके कर्त्तरि शप्] कर्त्तृयाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परत कृत्यान्म्यो घान्म्य शप् म्याने ज्ञानिस्त्वहो भवति ॥

(कर्तावाची सावधान्य प्रत्यय न पड़े रहने पर दुर्भाग्य इत्यादि धातुओं में सप्त के स्थान में इनाबिकरण होता है)

उदा०—क्रीणाति क्रीणीन, क्रीणन्ति । क्रीणामि, क्रीणीय, क्रीणीय । क्रीणामि, क्रीणीन, क्रीणीम ।

मि०—क्रीणाति । डुक््रीञ् । क्री लट् । क्री लृ । क्री निप् । क्री ति ।
क्री ग्ना ति । क्री ना ति । क्री ना ति । क्री ग्ना^२ ति । क्रीणाति । क्रीणा
तम् । क्रीणीत^३ । क्रीणा अति । क्री ण्^४ अग्नि । क्रीणन्ति ।

हम इन शानजन्मी ३११/८३

प० पि०—दल ५१२ न्न ६१२ शानच् ११० दौ ७१२

अर्थ—[फलन्तात् धातोरुत्तरस्य ज्ञाप्रत्ययस्य स्थाने शानञ् आदेशो भवति हो परत ॥ (फलन्तात् धातु व पदस्थान इत्ता प्रत्यय के स्थान में शानञ् आदेश होता है मात्र मध्यम पुरय एङ्प्रत्ययन हि प्रत्यय क पर रहन पर)

[illegible]

उदा०—मुपाण रत्नानि, पुपाण ।

सि०—मुप् । मुप् लोट् । मुप् भिप् । मुप् सि । मुप् श्ना सि । मुप् श्ना सि । मुप् श्ना हि^१ । मुप् शानच् हि । मुप् आन हि । मुपान^२ । मुपाण^३ । पुपाण ॥

कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रिय ३।१।८७

प० वि०—कर्मवत् अ० । कर्मणा ३।१ तुल्यक्रियः १।१ स०—तुल्या क्रिया यस्य कर्तुरिति तुल्यक्रियः कर्ता ।

अर्थ—[कर्तरि (इत्यत्र प्रथमया विपरिणम्यते)] कर्मणा तुल्यक्रियः कर्ता कर्मवद् भवति । कर्मस्मिन् कर्मणि कर्तृ भूतेऽपि सद्व्यक्रिया लक्ष्यते यथा कर्मणि, स कर्ता कर्मवद् भवति ॥ यावन्तो धातवः सन्ति ते सर्वे चतुर्विधाः—कर्मस्थभावकाः, कर्मस्थक्रियाः, कर्तृस्थभावकाः, कर्तृस्थक्रिया । अस्मिन् सूत्रे कर्मस्थभावकानां कर्मस्थक्रियाणां च कर्ता कर्मवद् भवति, न कर्तृस्थभावकानां न कर्तृस्थक्रियाणाम् ॥ कोऽयं कर्मस्थभावकः कर्मस्थक्रियश्च इति उच्यते । कर्मणि तिष्ठति इति कर्मस्थः, कर्मस्थां भावो यस्य धातोः सः कर्मस्थभावकः । कर्मस्था क्रिया यस्य धातोः सः कर्मस्थक्रियः । पुनश्च कोऽयं भावः केयं क्रिया च इति ? उच्यते—अपरिस्पन्दनसाधनसाध्यो धात्वर्थो भावः, अपरिस्पन्दनसाधनसाध्यो धात्वर्थः क्रिया ॥३॥

(कर्तरि ण्य से कर्तरि की अनुवृत्ति आती है जिसका प्रथमा विभक्ति में विपरिणाम ग्रहण वदल कर कर्तृ हो जाता है । (कर्म से तुल्य क्रिया वाला कर्ता कर्म के समान होता है) । जिस कर्म के कर्ता हो जाने पर भी कर्म के समान ही क्रिया सक्षित होती है, वह कर्ता कर्मवत् हाता है । जितने धातु हैं वे सभी चार प्रकार के होते हैं—कर्मस्थभावक, कर्मस्थक्रिय, कर्तृस्थभावक, कर्तृस्थक्रिय । इस सूत्र में कर्मस्थभावक और कर्मस्थक्रिय धातुओं का कर्ता कर्मवद् होता है कर्तृस्थभावक और कर्तृस्थक्रिय धातुओं का नहीं हाता ॥

कर्मस्थभावक और कर्मस्थक्रिय शब्द का क्या अर्थ है, इसका अर्थ बतलाया जाता है । कर्म में जो स्थित है उसको कर्मस्थ कहते हैं और कर्मस्थ भाव है जिस धातु का उस धातु का कर्मस्थभावक कहते हैं । उसी प्रकार कर्मस्थ क्रिया है जिस धातु की उस धातु का कर्मस्थक्रिय कहते हैं ।

१—नेह्यं पिच्च (३. ४. ८७) २—अतो ह (६. ४. १०५) ३—प्रदु-
प्यान्नुभ्यदायेऽपि (८. ४. १)

भाव और क्रिया शब्द का क्या अर्थ है वह बतलाया जाता है—अपरि-
स्पन्दन अर्थात् हिलना डोलनादि चेष्टा से रहित साधन अर्थात् कर्ता आदि
कारक द्वारा सिद्ध होने वाला धातु का अर्थ भाव कहा जाता है। सपरिस्पन्दन
अर्थात् हिलना डोलना आदि चेष्टा से युक्त साधन के द्वारा सिद्ध होने वाला
धातु का अर्थ क्रिया कही जाती है।

कर्मस्थः पचतेर्भावः कर्मस्था च भिदे. क्रिया।

मासासिभावः कर्तृस्त्व कर्तृस्था च गमे. क्रिया ॥

कारिका का अर्थ—‘पचति’ का धात्वर्थ भाव कर्म में रहता है जैसे
‘प्रोदन पचति देवदत्त’। गलना रूपी भाव ओदन कर्म में होता है न कि कर्ता
देवदत्त में। ‘भिनत्ति’ की धात्वर्थ क्रिया कर्म में रहती है। जैसे ‘देवदत्त काष्ठ
भिनत्ति’ फटना रूपी क्रिया काष्ठ में होती है न कि कर्ता देवदत्त में। ‘मास्ते’
(ठहरता है) का धात्वर्थ भाव कर्ता में रहता है। जैसे भाममास्ते देवदत्त।
ठहरना रूपी भाव कर्ता देवदत्त में रहता है न कि कर्म मास में। ‘गच्छति’
की धात्वर्थ क्रिया कर्ता में होती है। जैसे ‘देवदत्तो ग्राम गच्छति’। जाना
रूपी क्रिया देवदत्त में होती है न कि कर्म ग्राम में।

उदा०—यगात्मनेचिण्चिण्यद्भावा प्रयोजनम्। कर्त्तरि—देवदत्त.
काष्ठ भिनत्ति। कर्मणि—काष्ठं भिद्यते देवदत्तेन। कर्मकर्त्तरि—काष्ठं
भिद्यते स्वयमेव। कर्त्तरि—देवदत्त काष्ठम् अभिद्यत्। कर्मणि—अभेदि
काष्ठं देवदत्तेन। कर्मकर्त्तरि—अभेदि काष्ठं स्वयमेव।

सि०—भिद्यते। भिदिर्। भिद् लट्। भिद् लृ। भिद् त। भिद्
यक् त। भिद् य ते। भिद् य ते। भिद्यते। अभेदि। भिद्। भिद्
लुङ्। भिद् लृ। भिद् त। भिद् निलि त। भिद् चिण् त। भिद् इ त।
भेद् इ। भेदि। अट् भेदि। अभेदि।

धातो ३।१।६१

प० वि०—धातो इति पञ्चमीपठ्योरेकचनयो तन्त्रेण निर्देशः।

तेन यत्र सूत्रेषु पञ्चमीनिर्देशस्तत्र पञ्चम्यन्तं यत्र च ऋह्लोर्ण्यन्
इत्यादिषु पठोनिर्देशस्तत्र पठ्यन्तं धातो पठ समुद्भूयते। प्राधुनिका
पैशाकरणा ऋह्लोर्ण्यत् आदिषु सूत्रेषु पञ्चम्यर्थे पठ्यिमाहुः तत्र परशक्त-
योगे पठ्या अन्यत्रापि दर्शनात्। यथा कात्यायन—‘एकादशिनो.
परः पठ्यन्तनुशिरा’ (धर्मशास्त्र ० उपो ० १।५)। पाणिनिना पञ्चम्येध

१—सावर्धातुन यत् (३ १ ६७) २—पुगततधूपपम्य च (७. ३ ८९)

विति च (१. १ ५)

विहिता इति चेत् तदीयसूत्रेषु बहुत्र पठ्या प्रयोगदर्शनात् पठ्ठी प्रयोगोऽपि ज्ञापनीय । न तु पञ्चम्यर्थे पठ्ठी वक्तव्या । हिन्दीभाषायामपि परयोगे, 'ग्राम से परे, ग्राम के परे', इत्युभयथा प्रयुज्यते ।

अर्थ—इतोऽग्रे वक्ष्यमाणानि कार्याणि आ तृतीयाध्यायपरिसमाप्ते धोतोरय भवन्ति इत्ययमधिकारो वेदितव्य ।

(इसके पश्चात् आगे कहे जाने वाले कार्य तृतीय अध्याय के अन्त तक धातु से ही होते हैं इस बात का अधिकार समझना चाहिये ।)

तत्रोपपद सप्तमीस्थम् ३।१।६२

प० वि०—तत्र अ० । उपपदम् १।१ स०—समीपोच्चारित पदम् उपपदम् (अव्ययीभाव) सप्तम्यां विभक्तौ तिष्ठति इति सप्तमीस्थम् (उपपदसमास) ।

अर्थ—एतस्मिन् धात्वधिकारे सप्तमीस्थम् = सप्तमीनिर्दिष्ट पदमुपपदसज्ञ भवति । (इस धातु के अधिकार में सप्तमी विभक्तित्व अर्थात् सप्तमी विभक्ति स निर्दिष्ट पद की उपपद सज्ञा होती है)

उदा०—कर्मण्यण्—कुम्भकार नगरकार ।

सि०—कुम्भ करोति इति । कुम्भ अम् कृ अण् । कुम्भ अम् कृ अ । कुम्भ अम् कार् अ । कुम्भ अम् कार् । कुम्भ^२ कार । कुम्भकार सु । कुम्भकार स् । कुम्भकार ।

कृतप्रत्ययप्रकरणम्

कृदतिङ् ३।१।६३

प० वि०—कृत् १।१ अतिङ् १।१ स०—न तिङ् इति अतिङ् ।

अर्थ—एतस्मिन् धात्वधिकारे तिङ्भिन्न प्रत्यय कृतसज्ञको भवति । (इस धातु अधिकार में तिङ् भिन्न प्रत्यय की कृतसज्ञा होती है)

उदा०—कर्त्तव्यम्, हर्त्तव्यम्, कृतम्, हृतम्, कारक, हारक, पाक, चिकीर्षक, जिहीर्षक ।

वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ३।१।६४

प० वि०—वा अ० । असरूप १।१ अस्त्रियाम् ७।१ स०—समान

१—समय पदविधि (२ १ १) प्राक्कृष्टात्समास (२ १. ३) उपपदमतिङ् (२ २ १९) २—कृतद्वितसमासाश्च (१. २ ४६) सुपो धातुप्रातिपदिकयो (२. ४ १७) प्रथमानिर्दिष्ट समास उपसर्जनम् (१ २ ४३) उपसर्जन पूर्वम् (२ २ ३०) ।

इति तव्यत्तव्यानीयर ।

अर्थ—[धातोः] धातोस्तव्यन् तव्य अनीयर् इत्येते प्रत्ययाः भवन्ति ।

(धातु से तव्यत् तव्य और अनीयर् प्रत्यय होते हैं)

उदा०—कर्त्तव्यम्, कर्त्तव्यम् । करणीयम् X केलिम् उपसंख्यानम् X पचेलिमाः मापाः, पक्तव्याः इत्यर्थः ।

सि०—डुम्ब । कृञ् । कृ तव्यन् । कृ तव्य । कर् तव्य* । कर्त्तव्य सु । कर्त्तव्य अम् । कर्त्तव्यम् । कृ तव्य । कर्त्तव्य सु । कर्त्तव्य अम् । कर्त्तव्यम् । करणीयम् । कृ अनीयर् । कृ अनीय । कर् अनीय । करणीय । करणीय सु । करणीय अम् । करणीयम् । डुपचप केलिम् । पच् गलिम् । पचेलिम् अस् । पचेलिम् अस् । पचेलिमास् । पचेलिमाः ॥

अचो यत् ३।१।६७

प० वि०—अच* ५।१ यन् १।१

अर्थ—अजान्ताद् धातोर्यत् प्रत्ययो भवति ।

(अजन्त धातु से यत् प्रत्यय होता है)

उदा०—गेयम् । पेयम् । चेयम् । ज्ञेयम् । X तकिशसिचतियतिजनी-
नामुपसंख्यानम् X तक्ष्यम् । शस्यम् । चत्यम् । यत्यम् । जग्यम् । X हनो
वा वध च X वध्यम्, घात्यम् ।

सि०—गेयम् । गै । गा* । गा यन् । गृ ई* य । गे य* । गेय सु ।
गेय अम् । गेयम् । पा यन् । पेयम् । जि यन् । ज्ञेयम् । हन् यत् । वध
यत् । वध् य । वध्यम् । हन् एयत् । हन् य । हन्* य । घात* य ।
घात्यम् ।

पोरदुपधात् ३।१।६८

प० वि०—पो* ५।१ अदुपधान् ५।१ स०—अद् उपधायां यस्य स
अदुपध. तस्मात् ।

अर्थ—अदुपधान् पदगान्ताद् धातोर्यत् प्रत्ययो भवति ।

१—चत्तरि कृत् (३. ४. ६७) ॥ कर्मणि च भाव चाकर्मकेभ्यः (३. ४. ६६) तयोरेव कृत्यस्तत्त्वार्था (३. ४. ७०) तव्यत्तव्यानीयर (३. १. ६६) प्रथमपः (३. १. १) परस्मै (३. १. २) २—आदेच उपदेशेऽसिति (६. १. ४४) ३—ईदं यति (६. ४. ६५) यतोऽन्त्यस्य (१. १. ५१) ४—सावंधातुकार्ध-
धातुभ्यो (७. ३. ६४) ५—प्रत उपधाया (७. ३. ११६) ६—हो
हृतेऽिण्निष्ठे (८. ३. १४)

(अकार है उपधा में जिस के ऐसे पवर्गान्त धातु से यन् प्रत्यय होता है)

उदा०—शप्यम्, लभ्यम् ।

सि०—शप् । शप् यत् । शप्यम् । लभ । लभ् यत् । लभ्यम् ।

शक्तिसहोच्च ३।१।६६

प० वि०—शक्तिसहोः धा२ च अ० । स०—शक्तिश्च सहश्च इति शक्तिसहो तयोः ।

अर्थ—शक्तिसहोः धातुत्वोः परः यन्प्रत्ययो भवति ।

(शक् धोर मह धातु के परे यत् प्रत्यय होता है)

उदा०—शक्यम्, सह्यम् ।

गदमदचरयमदचानुपसर्गो ३।१।१००

प० वि०—गदमदचरयमः ५।१ च अ० । अनुपसर्गो ७।१ स०—गदश्च मदश्च चरश्च यं च इति गदमदचरयम्, तस्मात् । न उपमर्गः अनुपसर्गः, तस्मिन् ।

अर्थ—उपसर्गरहितेभ्यो गदादिभ्यो धातुभ्यो यत् प्रत्ययो भवति ।

(उपसर्गरहित गद व्यक्ताया वाचि, मदी हर्षे, चर गतिमक्षणयो, यम उपरमे इन धातुओं से यत् प्रत्यय होता है)

उदा०—गद्यम् । मद्यम् । चर्यम् । यम्यम् । × चरेराडि चागुरी × आचर्यो देशः ।

एतिस्तुशास्वृदृजुपः क्यप् ३।१।१०६

प० वि०—एतिस्तुशास्वृदृजुपः ५।१ क्यप् १।१ स०—एतिश्च स्तुश्च शाश्च वा च दा च जुट् च इति एतिस्तुशास्वृदृजुट् तस्मान् ।

अर्थ—एत्यादिभ्यो धातुभ्यः क्यप् प्रत्ययो भवति ।

(इण् गतो, पृज् स्तुती, शाप् अनुनिष्टी, वृज् वरणे, हृज् मादरे, जुपी प्रीतिमेवनयोः इन धातुओं से क्यप् प्रत्यय हाता है)

उदा०—इत्य् । स्तुत्य् । शिप्यः । धृत्यः । आदृत्यः । जुप्यः । × अञ्जेश्चोपसरयानं संज्ञायाम् × आञ्य घृनम् ।

सि०—इण् । इ क्यप् । इ य । इ य । इ तुक् य । इत्य् । इत्य् । शास् क्यप् । शिम् क्यप् । शिप् य । शिप्यः । जुपी । जुप् क्यप् ।

१—आप्यधातुः शेषः (३. ८. ११४) तावधातुः आप्यधातुयोः (७. ३. ८४) विटति च (१. १. १) २—हृत्प्रत्यय विनि इति तुक् (६. १. ६६) ३—शास् इदृशोः (६. ४. ३४) ४—शामिर्दिधनीना य (८. ३. ६०)

आङ् अञ्ज् य । आ अज् य । आज्य । आज्य सु । आज्य अम्^१ ।
आज्यम् ।

ऋहलोर्ण्यत् ३।१।१२४

प० वि०—ऋहलो ङार एयत् १।१ स०—आ च हल् च इति
ऋहलो तयो ।

अर्थ—ऋवर्णान्तस्य हलन्तस्य च वातो परो यत् प्रत्ययो भवति ।

(ऋवर्णान्त और हलन्त धातु के परे ण्यत् प्रत्यय होता है)

उदा०—कार्यम् । हार्यम् । पाठ्यम् । पाक्यम् ।

सि०—डुकृञ् करणे । कृ एयत् । चार् य । कार्य सु । कार्य
अम् । कार्यम् । पठ एयत् । पठ् य । पाठ् य । पाठ्य सु । पाठ्य अम् ।
पाठ्यम् ।

एवुल्लृचौ ३।१।१३३

प० वि०—एवुल्लृचौ १।२ स०—एवुल्च् लृच्च इति एवुल्लृचौ ।

अर्थ—धातो एवुल्लृच्चा प्रत्ययौ भवतः । (धातु से ण्डुल और लृच्
प्रत्यय होते हैं)

उदा०—पाचक, पठक । कर्ता, हर्ता, जेता ।

सि०—डुपचप् । पच् एवुल् । पच् वु । पच् अक । पाच् अक ।
पाचक सु । पाचक । पठ् एवुल् । पाठक । डुकृञ् लृच् । कृ लृ । कर् लृ ।
कर्त्तु सु । कर्त्तु अनङ् सु । कर्त्तनङ् सु । कर्त्तन् स् । कर्त्तान् स् । कर्त्तान् ।
कर्त्ता । हर्ता ॥

नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यच्च ३।१।१३४

प० वि०—नन्दिग्रहिपचादिभ्यः ५।३ ल्युणिन्यच्च १।३ स०—
नन्दिश्च ग्रहिश्च पचश्च इति नन्दिग्रहिपचा (इतरे० द्वन्द्वः) आदिश्च
आदिश्च आदिश्च इति आदयः । नन्दिग्रहिपचा आदयो येषान्ते
नन्दिग्रहिपचादयः (बहु०) तेभ्यः । ल्युश्च णिनिश्च अच्च इति
ल्युणिन्यच्च ।

अर्थ—नन्दादिभ्यो ग्रहादिभ्यः पचान्भिभ्यश्च धातुभ्यः ल्यु णिनि
अच्च प्रत्यया यथासंख्य भवन्ति ।

(नद् इत्यादि ग्रह इत्यादि और पच इत्यादि धातुआ से ल्यु णिनि और

१—मनिदिता हल उपधाया विडति (६ ४ २४) २—अतोऽम् (७ १ २४)

अच् प्रत्यय क्रमशः होने हैं)

उदा०—नन्दन । ग्राही । पच । Xअजपि सर्वधातुभ्य X भव ।

सि०—टुनदि । नद् नुम्^१ द् । नद्^२ । नन्द्^३ । नन्द ल्यु । नन्द्
अन^४ । नन्दन मु । नन्दन । ग्राही । ग्रह् णिनि । ग्रह इन् । ग्राहिन
मु । ग्राहीन्^५ स् । ग्राहीन्^६ । ग्राही^७ । पच । पच् अच् । पच । भू । भू
अच् । भो अ । भय मु । भव ॥

इगुपवजाप्रीकिर क ३।१।१३५

प० वि०—इगुपवजाप्रीकिर ५।१ क १।१ स०—इग् उपधायां यस्य
स इगुपव । इगुपवश्च ज्ञाश्च प्रीश्च कीश्च इति इगुपवजाप्रीकिर
वस्मात् ।

अर्थ—इगुपवेभ्यो जनाते प्रीणाते किरितेश्च धातुभ्य कप्रत्ययो
भवति । (इद् हे उपधा में जिसके एम और जा भववाचन, प्रीञ् तर्पणे नाती
व, इ विशेष इन धातुआ स क प्रत्यय होता है)

उदा०—इगुपव-युय^१ । वृश । ज्ञा-जानाति ॥ । प्रीणातीति
प्रिय । किरतीति किर ।

सि०—युध । युध् क । युध्^२ अ । युय । ज्ञ । ज्ञा क । ज्ञा अ ।
ज्ञ^३ अ । ज्ञ मु । ज्ञ । प्रीच् । प्री क । प्री अ । प्रू इयद्^४ अ । प्रियद्
अ । प्रिय अ । प्रिय मु । प्रिय । क क । क अ । किर^५ अ । किर
मु । किर ॥

आतश्चोपसर्गे २।१।१३६

प० वि०—आत ५।१ च अ० । उपसर्गे ७।१।

अर्थ—[क] उपसर्गे उपपदे आनारान्नेभ्यो धातुभ्य कप्रत्ययो

- १—शदिता नुम्पातो (७ १ ५८) २—नस्वापदान्तस्य भति (८ ३. २४)
३—अनुस्वारस्य यपि परमवर्ण (८ ४) ४—युवास्वाता (७ १ १) यथा-
सस्यमनुदा समानाम् (१. ३ १०) ५—मुह्यपु मवस्य (१. १ ४०) सव-
नामस्याने चामम्बुदो (६ ४ ८) ६—हृद्वाभ्यो दोषां गुणिभ्यश्च हृन्
(६ १ ६६) ७—नसाग आतिगदिवान्तस्य (८. २ ७) ८—घाघयानुव दोर
(३. ४ ११४) पुणन्तलप्रापस्य च (७ ३. ८६) किरति च (१ १. ५)
९—घातो साग इति च (६ ४ ६४) १०—घञिन्धुपानुधुवा योत्येदुगो
(६. ४ ७३) दिष्च (१. १ ५२) ११—हृन् ददाता (७ १०. १०)

भवति । (उपपद के उपपद रहन पर आकारा त धातु से क प्रत्यय होता है)

उ० — प्ररातीति प्रर । प्रलातीति प्रल ।

सि०—प्रला क । प्रला अ । प्रल्^१ अ । प्रल सु । प्रल । प्ररा क । प्रर^२ अ । प्रर ।

शिल्पिनि प्वुन् ३।१।१४५

प० वि०—शिल्पिनि ७।१ प्वुन् १।१

अर्थ—शिल्पिनि वर्त्तरि वातो प्वुन् प्रत्ययो भवति (शिल्पी वर्त्ता अभिषय हो तो धातु से प्वुन् प्रत्यय होता है)

उ०—नृत्तिखनिरञ्जिभ्य परिगणन कर्त्तव्यम् × नर्त्तक । खनक । रजक । नर्त्तकी । खनकी । रजकी ॥

सि०—नृत् प्वुन् । नृत् शु । नृत् अक । नर्त् अक । नर्त्तक सु । नर्त्तक । नर्त्तकी । नर्त्तक डीप्^२ । नर्त्तक ई^३ । नर्त्तकी सु । नर्त्तकी । रजक, रजकी । रञ्ज प्वुन् । रज्^४ अक । रजक । रजकी । सर्गासु विभक्तिषु रूपाणि कुमारोवत् अभ्यसितव्यानि ।

इत्यष्टाध्यायी प्रकाशिकाया तृतीयाध्याये प्रथम पाद

कर्मण्यण ३।२।१

प० वि०—कर्मणि ७।१ अण् १।१

अर्थ—[धातो] कर्मण्युपपदे वातोऽण प्रत्ययो भवति । 'कर्मणि' इत्यधिक्रियते । (कर्म के उपपद रहन पर धातु से अण प्रत्यय होता है)

उ०—अत्र त्रिविधि कर्म गृह्यते—निर्वर्त्यमान विक्रियमाण प्राप्यञ्च । निर्वर्त्यमान—कुम्भकार । नगरकार । विक्रियमाण—वेदार लाय । काण्डलाय । प्राप्य—वेदाध्याय । शास्त्राध्याय ।

सि०—कुम्भकार । कुम्भ करोति डति । कुम्भ अम् कृ अण् । कुम्भ अम् कृ अ । कुम्भ अम् कार अ । कुम्भ अम् कार^२ ।

उ० ए० रपर (१ १ ५०) १—धातो० (६४ ६४) २—पिद् गौरादिभ्यश्च (४ १ ४१) ३—यचि भम् (१ ४ १८) भस्य (६ ४ १२९) यस्यति च (६ ४ १४८) ४—रजकरजनरज भूपसस्थान कत्तव्यम् (६ ४ २४ वा०) ५—समथ पदविधि (२ १ १) प्राक्कङ्कारात् समास (२ १ ३) उपपदमतिङ् (२ २ १९) प्रथमानिदिष्ट समास उपसजनम् (१ २ ४२) उपसजन पूर्वम् (२ २ ३०)

कुम्भकार^१ सु । कुम्भकार स् । कुम्भकार । वेदारलाय । वेदारं लुनाति
इति । वेदार अम् लृञ् । वेदार अम् लृ अण । वेदार अम् ली^२ अ ।
वेदार अम् लाय् अ । वेदार अम् लाय । वेदारलाय । वेदाध्याय । वेदान्
अधाते इति । वेद शम् अघि इङ् अण् । वेद शस् अघि इ अ । वेद
शम् अघि ऐ^३ अ । वेद शस् अघि आय । वेद शम् अघि आय । वेद
अध्याय । वेदाध्याय ।

आतोऽनुपसर्गो क ३।२।३

प० वि०—आत ५१ अनुपसर्गो ७१ क ११ स०—न उपसर्ग अनु
पसर्ग तस्मिन् ।

अर्थ—[कर्मणि] अनुपसर्ग कर्मण्युपपदे आकारान्तधातुभ्य
कप्रत्ययो भवति । (उदा० रहन् कम क उपपद रहन् पर आकारान्त धातु
स कप्रत्यय हाता है)

उदा०—गोद । कम्पलट ।

सि०—गोद । गां उदाति ङिति । गो अम् दा र । गो अम् द्^३ अ ।
गो अम् र । गोद । गोद मु । गोद । कम्पलट

सुपि म्थ ३।२।४

प० वि०—सुपि ७१ च अ० ।

अर्थ—[क] सुपन्त उपपदे तिष्ठतेर्धातो कप्रत्ययो भवति । इतोऽप्ये
'सुपि' इत्यधिकार तेन उत्तरत्र कर्मणि सुपि इत्युभावुपतिष्ठेते । तत्र
सन्मर्मकादातो कर्मणि इति मग्न्यते अन्मर्मज्ञान् सुपीति ।

(सुपन्त क उपपद रहन् पर स्था धातु स कप्रत्यय हाता है ।

उदा०—गृहस्थ । विपमस्थ । समस्थ ।

सि०—गृहे तिष्ठतीति गृहस्थ । गृह कि स्था क । गृह डि स्थ^३ अ ।
गृह डि स्थ । गृहस्थ । गृहस्थ मु । गृहस्थ ।

शमि धातो मज्ञायाम् ३।२।५

प० वि०—शमि ७१ धातो ५१ मज्ञायाम् ७१

१—वृत्तद्वितसमासात्त्व (१ २ ४६) सुपो० (२ ४ ५) इयाप्रातिगदिकात्
(४. १ १) स्वी० (४ १ २) सुप (१. ४ १०२) विभक्तिद्व (१ ४ १०३)
द्वेवयोद्विवचनैवचन (१ ४ २२) एकत्वे विवक्षिते सु प्रत्यय (३ १ १)
०—भवो ङिति (७. २ ११५) ३—धातो लोप इटि च (६ ४. ६४) ।

अर्थ—[हस्तेरनुद्यमनेऽच् इत्यस्मात् सूत्राद् अजनुवर्तते] शम्भु-
पपदे संज्ञायां विषये धातोरच् प्रत्ययो भवति ।

(शम् के उपपद रहने पर सज्ञा के विषय में धातु से अच् प्रत्यय होता है)

उदा०—शङ्करः । शम्भवः ।

सि०—शं करोतीति शङ्करः । शम् अम् कृ अच् । शम् कर । श
कर । शङ्कर सु । शङ्करः ।

अधिकरणे शते ३।२।१५

प० वि०—अधिकरणे ७।१ शेते । क्रिया० ।

अर्थ—[सुपि] अधिकरणे सुबन्त उपपदे शेतेर्धातोरच् प्रत्ययो
भवति । (अधिकरण कारक में सुबन्त के उपपद रहने पर शीह् धातु से अच्
प्रत्यय होता है)

उदा०—स्वशयः । गर्तशयः ।

सि०—स्वे शेते इति स्वशयः । स्व ङि शी अच् । स्व ङि शे अ ।
स्व ङि शय । स्वशय^१ । स्वशय सु । स्वशयः ।

चरेष्ट ३।२।१६

प० वि०—चरेः ५।१ टः १।१

अर्थ—[अधिकरणे] अधिकरणे सुबन्त उपपदे चरतेर्धातोश्चप्रत्ययो
भवति । (अधिकरण सुबन्त के उपपदरहने पर चर् धातु से टप्रत्यय होता है)

उदा०—कुरुचरी । मद्रुचरी । कुरुचरः । मद्रुचरः । स्वचरः ।
व्योमचरः ।

सि०—कुरुचरः । कुरुपु चरतीति । कुरु सुप् चर् ट । कुरु सुप् चर्
अ । कुरु सुप् चर । कुरुचर ङीप्^२ । कुरुचर ई । कुरुचर् ई । कुरुचरी ।
कुरुचरी सु । कुरुचरी । व्योमचरः । व्योमिन् चरतीति ।

भिक्षासेनादायेषु च ३।२।१७

प० वि०—भिक्षासेनादायेषु ७।३ च अ० ॥ स०—भिक्षा च सेना
च आदायश्च इति भिक्षासेनादायाः तेषु ।

अर्थ—[चरेष्टः] भिक्षा सेना आदाय इत्येतेषूपपदेषु चरतेर्धातोश्च-
प्रत्ययो भवति । (भिक्षा, सेना और आदाय सुबन्त के उपपद रहने पर चर्
धातु से ट प्रत्यय होता है)

उदा०—भिक्षाचरः । सेनाचरः । आदायचरः ॥

१—सुपो धातुप्रातिपदिकयोः (२. ४. ७१) २—टिड्ढाण० (४. १. १५)

सि०—मिच्चा चरतीति मिच्चाचर । मिच्चा अम् चर् ट । मिच्चा
अम् चर । मिच्चा चर । मिच्चाचर मु । मिच्चाचर ।

कृजो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ३।२।२०

प० वि०—कृञ् ५।१ हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ७।३ स०—हेतुश्च
ताच्छील्याञ्च आनुलोम्यञ्च इति हेतुताच्छील्यानुलोम्यानि तेषु ।

अर्थ—[ट] कर्मण्युपपदे करोतेर्धातोष्टप्रत्ययो भवति हेतौ
ताच्छील्यान्ते आनुलोम्ये च गम्यमाने । (कम क उपपद रहन पर इ धातु स
टप्रत्यय हाता है हेतु ताच्छील्यान्ते आनुलोम्य गम्यमान हात पर ।

उदा०—हेतु आवश्यक कारणम् । ताच्छील्यान्ते तत्समायता ।
आनुलोम्यमनुकूलता । हेतौ—यशस्करी यिच्चा । ताच्छील्यान्ते—श्राद्धकर ।
अर्थकर । आनुलोम्ये—यचनकर । प्रैषकर ।

सि०—यशस्करी । यश करोतीति । यशम् अम् ट ट । यशस् अम्
फर् अ । यशस्कर ङीप् । यशस्कर् ई । यशस्करी ।

एजे खश् ३।२।२०

प० वि०—एजे ५।१ खश् १।१

अर्थ—एज् कम्पने इत्यस्मान् खयन्तान् कर्मण्युपपदे खश् प्रत्ययो
भवति । (एज् कम्पन इस ध्यन धातु स कम क उपपद रहन पर ख प्रत्यय
हाता है)

एजा०—वृक्षमेजय । जनमेजय ।

सि०—वृक्षमेजय । वृक्षान् एजयति इति । वृक्ष शस् एज् णिच् ।
वृक्ष शम् एजि । वृक्ष शस् एजि खश् । वृक्ष शस् एजि शप् अ । वृक्ष
शस् एजे अ अ । वृक्ष शम् ए वृक्ष शस् एजय । वृक्ष एजय ।
वृक्ष मुम् एजय । वृक्षमेजय । वृक्षमेजय मु । वृक्षमेजय । जनमेजय ।

प्रियवशो वद खच् ३।२।३८

प० वि०—प्रियवशो ७।१ वद ५।१ खच् १।१ स०—प्रियश्च वशश्च
इति प्रियवश तस्मिन् ।

अर्थ—प्रिय वश दत्येतयो कर्मणोऽपपत्त्योर्वर्द्धेर्धातो खच् प्रत्ययो
भवति । (प्रिय और वश कम क उपपद रहन पर वद धातु म खच्

१—हेतुमति च (३ १ २६) २—तिङ्गित्त्ववधानुक्रम (३ ४ ११३)
[सावधानुके] यक (३ १ ६७) क्त्वरि शप् (३ १, ६८) ३—धरद्विषद

प्रत्यय होता है ।

उदा०—प्रियंवदः । वशंवदः ।

सि०—प्रियंवदः । प्रियं वदतीति । प्रिय अम् वद् खच् । प्रिय अम् वद् अ । प्रिय अम् वद । प्रिय वद । प्रिय मुम् वद । प्रियम् वद । प्रियं-वद । प्रियंवद सु । प्रियवदः । वशंवदः । वशं वदतीति ।

द्विपत्परयोस्तापेः ३।२।३६

प० वि०—द्विपत्परयोः ७।२ तापेः ५।१ स०—द्विपच्च परश्च इति द्विपत्परी तयोः ।

अर्थ—[खच्] द्विपत्परयोः कर्मणोरुपपदयोस्तापेर्धातोः खच् प्रत्ययो भवति । (द्विपत् ओर पर कर्म के उपपद रहने पर ण्यन्त तत्पातु से खच् प्रत्यय होता है)

उदा०—द्विपन्तपः । परन्तपः ।

सि०—द्विपन्तपः । द्विपन्तं तापयतीति । द्विपत् अम् तापि । द्विपत् अम् तापि खच् । द्विपत् अम् तापि अ । द्विपत् अम् तपि^१ अ । द्विपत् अम् तप्^२ अ । द्विपत् अम् तप । द्विपत् तप । द्विप मुम् त तप । द्विपम् तप । द्विपम्^३ तप । द्विपं तप । द्विपन्तपः । परन्तापयतीति परन्तपः ।

स्पृशोऽनुदके क्विन् ३।२।५८

प० वि०—स्पृश. ५।१ अनुदके ७।१ क्विन् १।१ स०—न उदकमिति अनुदकम् तस्मिन् ।

अर्थ—उदकमिन्ने सुबन्ते उपपदे स्पृशधातोः क्विन् प्रत्ययो भवति । (उदकमिन् सुबन्त के उपपद रहने पर स्पृश् धातु से क्विन् प्रत्यय होता है)

उदा०—घृतं स्पृशति इति घृतस्पृक् । मन्त्रेण स्पृशति मन्त्रस्पृक् । जलेन स्पृशति जलस्पृक् ।

सि०—घृतं स्पृशति इति । घृत अम् स्पृश्^१ । घृत अम् स्पृक्^२ । घृत-स्पृक् सु । घृतस्पृक् । घृतस्पृग् । घृतस्पृशौ । घृतस्पृशः । घृतस्पृशाम् । घृत-

जन्तस्य मुम् (६. ३. ६७)

१—खचि ह्रस्वः (६-४-९४) २—खेरनिटि (६।४।५१) ३—तयोगान्तस्य लोपः (८. २. २३) ४—अपृक्त एकात्प्रत्ययः (१. २. ४१) वेरपृक्तस्य (६. १. ६४) अदर्शनं लोपः (१. १. ५६) ५—क्विन्प्रत्ययस्य क्वः (८. २. ६२)

स्पृशो । धृतस्पृश । धृतस्पृशा । धृतस्पृड्भ्याम् । धृतस्पृड्भिः । धृतस्पृशि ।
धृतस्पृशो । धृतस्पृक्^१ सु । धृतस्पृक्षु

त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च ३।२।६०

प० नि०—त्यदादिषु ७।३ ऋग १।२ अनालोचने ७।१ कञ् १।१ च
अ० । स०—त्यद् आदिर्यपान्ते त्यदादय तेपु । न लोचनम् अनालो
चनम् तस्मिन् ।

अर्थ—[निम्न्] त्यदादिषूपपदेषु अनानोचनेऽर्थे वर्तमानाद् दृशे-
धातो कञ् प्रत्ययो भवति चकारान् क्तिञ्च ॥

(त्यद् इत्यादि के उपपद रङ्गन पर न देखने अर्थ में वर्तमान दृश् धातु से
कञ् प्रत्यय होता है और चकार स किञ् भी)

उदा०—कञ्-त्यादृश । त्यादृशी । तादृश । तादृशी । यादृश ।
यान्शी । एतादृश । एतान्शी । क्तिञ्-त्यान्क् । तादृक्^१ । यादृक् ।
एतादृक् । ×समाना ययोश्चेति वञ्चन्यम्× सदृश । सदृशा । अन्या-
दृश । अन्यादृशी । सन्क् । अन्यादृक् । ×दृशे क्सदृच वक्तव्य×
तादृन् , यान्क्ष , अन्यादृक्ष , कीदृक्ष ॥

सि०—त्यद् अम् दृश् कञ् । त्यद् अम् दृश् अ । त्यद् अम् दृश ।
त्य आ^१ ऋ । त्यान्श । त्यादृश सु । त्यादृश । त्यादृश डीप्^२ ।
त्यादृश ई । त्यादृश् ई । त्यादृशी सु । त्यादृशी । त्यादृक् । त्यान्श
निम्न् । त्यान्क् । समान ऋग । स दृश । सदृश । तादृक्ष । तादृश् क्स ।
तादृश् स । तादृप् स । तादृक् स । तादृक्प् । तादृक्ष । तादृक्ष सु ।
तादृक्ष । कीदृश । किम् दृश । कीदृश^३ । कीदृशी ॥

क्विप् च ३।२।७६

अर्थ—[सुपि उपसर्गेऽपि] सोपसर्गे निरूपसर्गे च सुप्युपपदे धातो
क्विप् प्रत्ययो भवति । (उपसर्ग वा निरूपसर्ग सुबन्त के उपपद रहने पर
धातु स क्विप् प्रत्यय होता है)

उदा०—उत्सामन् । पर्ण वन् । बाहाभ्रट् ।

सि०—उत्सास्र । उत्साया स्र सते इति । उत्सा ङसि स्र सु । उत्सा-
ङसि स्र स् स्विप् । उत्सा ङसि स्र स् स् । उत्सा ङसि स्र स्^१ । उत्सा-

१—प्रद्वचनम् (८ २ ३६) पदो न सि (८. २. ४१) २—मा सर्वनाम्न
(६ ३ ४१) ३—टिड्डा० (४ १ १५) ४—इद्विभोरीश्वरी (६ ३ ९०)
५—मनिदिता हल० (६ ४ २४)

सद्^१ । उखास्रत्^२ । वाहाभ्रट् । वाहाद् भ्रश्यति इति । वाह डसि भ्रंशु ।
वाह डसि भ्रंश् क्विप् । वाह डसि भ्रश् । वाहभ्रश् । वाहभ्रप्^३ ।
वाहभ्रड् । वाहभ्रट्^४ । वाहा^५ भ्रट्

सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ३।२।७८

प० वि०—सुपि ७।१ अजातौ ७।१ णिनिः १।१ ताच्छील्ये ७।१

स०—न जातिरिति अजाति तस्याम् । तस्य शीलं तच्छीलम् । तच्छी-
लस्य भाव ताच्छील्यम्, तस्मिन् ।

अर्थ—अजातियाचिनि सुबन्ते उपपदे ताच्छील्ये गम्यमाने धातो-
र्णिनि प्रत्ययो भवति । (अजातिवाची सुबन्त के उपपद रहने पर तत्त्वभावता
ज्ञान होने पर धातु से णिनि प्रत्यय होता है)

उदा०—उष्णभोजी । शीतभोजी । प्रियवादी । धर्मोपदेशी ॥

सि०—उष्णभोजी । उष्णं भोक्तुं शीलमस्य इति । उष्ण अम् भुज्
णिनि । उष्ण अम् भुज् इम् । उष्ण अम् भोज् इन् । उष्णभोजिन् ।
उष्णभोजिन् सु । उष्णभोजीन्^१ स् । उष्णभोजीन् । उष्णभोजी ।
उष्णभोजिनौ । उष्णभोजिनः । उष्णभोजिनम् । उष्णभोजिनौ । उष्ण-
भोजिन ॥ शीतभोजी । शीतं भोक्तुं शीलं यस्य । प्रियवादी । प्रियं
वदितुं शीलं यस्य । धर्मोपदेशी । धर्मम् उपदेष्टुं शीलं यस्य ॥

कर्तयुपमाने ३।२।७९

प० वि०—कर्त्तरि ७।१ उपमाने ७।१

अर्थ—[णिनि] कर्त्तृवाचिनि उपमान उपपदे धातोर्णिनिप्रत्ययो
भवति । (कर्त्तावाची उपमान के उपपद रहने पर धातु से णिनि प्रत्यय होता है)

उदा०—उष्ट्रकोशी । काकवादी ॥

सि०—उष्ट्र इव क्रोशतीति उष्ट्रकोशी । उष्ट्र सु क्रुश् णिनि । उष्ट्र सु
क्रोश् इन् । उष्ट्र क्रोशिन् । उष्ट्रकोशिन् सु । उष्ट्रकोशी । काक इव
वदतीति । काकवादी ॥

मन ३।२।८२

प० वि०—मनः १।१

१—वसुय सु० (द. २. ७२) २—वावसाने (द. ४. ११) ३—अश्चभ्रस्ज०
(द. २. ३६) ४—अन्येषामपि दृश्यते (द. ३. १३७) ५—तौ च (द. ४. १३)

अर्थ—[सुप्णि] सुयन्त उपपदे मयतेर्णिनिप्रत्ययो भवति ।
(सुयन्त के उपपद रहन पर दिवादिगणस्थ मन् धातु से णिनि प्रत्यय होता है)

उदा०—दर्शनीयमानी । सरूपमानी ।

सि०—दर्शनीयमानी । दर्शनीय मन्यते इति । दर्शनीय अम् मन
णिनि । दर्शनीय अम् मानिन् । दर्शनीयमानिन् । दर्शनीयमानिन् सु ।
दर्शनीयमानीन् स् । दर्शनीयमानीन् । दर्शनीयमानी । सरूपमानी ।
सरूप मन्यते इति सरूपमानी । सरूपमानिनी । सरूपमानिन । सरूप
मानिनम् । सरूपमानिनौ । सरूपमानिन । सरूपमानिना । सरूपमानि
भ्याम् । सरूपमानिभि ।

आत्ममाने खश्च ३।२।८३

प० वि०—आत्ममाने ७।१ खश् १।१ च अ० । स०—आत्मन
स्वस्य मननम् आत्ममान तस्मिन् ।

अर्थ—[णिनि] आत्ममाने वर्तमानान्मन्यतेर्धातो सुयन्त उपपदे
खश्प्रत्ययो भवति णिनिश्च ।

(अपन आपको मानना इस अर्थ में वर्तमान मन् धातु से सुयन्त के उपपद
रहन पर खश् प्रत्यय होता है चकार से णिनि)

उदा०—परिङ्गतमन्य । शोभनमन्य ।

सि०—परिङ्गतमन्य । आत्मान परिङ्गत मयत इति । परिङ्गत
अम् मन् खश् । परिङ्गत अम् मन् श्यन् अ । परिङ्गत अम् मन्य । परिङ्गत
अम् मन्य । परिङ्गत मन्य । परिङ्गत मुम् मन्य । परिङ्गत म् मन्य ।
परिङ्गतमन्य सु । परिङ्गतमन्य । शोभनमन्य ।

भूते ३।२।८४

प० वि०—भूते ७।१

अर्थ—इतोऽप्ये वक्ष्यमाणा प्र यथा वर्तमाने लङिति यावद् भूते
भवन्ति इत्यधिकारो वेदितव्य ।

(यहा से वर्तमान लट इस सूत्र तक कहे जान जान बाध प्रत्यय भूतकाल
में होते हैं इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

करणे यजः ३।२।८५

प० वि०—करणे ७।१ यज १।१

अर्थ—[णिनि] करण उपपदे यजतेर्धातो णिनिप्रत्ययो भवति

भूते । (करण क उपपद रहन पर बजघातु से णिनि प्रत्यय होता है)

उदा०—अग्निष्टोमयाजी । राजसूययाजी । अश्वमेधयाजी ।

सि०—अग्निष्टोमयाजी । अग्निष्टोमेन इष्टवान् । अग्निष्टोम
टा यज् णिनि । अग्निष्टाम टा याजिन् । अग्निष्टोमयाजिन् । अग्निष्टो-
मयाजी । अग्निष्टोमयाजिनौ । अग्निष्टोमयाजिन । राजसूययाजी ।

कर्मणि हन् ३।२।८६

प० वि०—कर्मणि ७।१ हन् ५।१

अर्थ—[णिनि] कर्मण्युपपदे हन्तेर्धातोर्णिनि प्रत्ययो भवति भूते ।
(कर्म क उपपद रहन पर हन् घातु से णिनि प्रत्यय होता है भूतकाल में)

उदा०—पितृघाती । पितृव्यघाती । मातुलघाती ।

सि०—पितर हतवान् इति पितृघाती । पितृ अम् हन् णिनि ।

पितृ अम् हान् इन् । पितृ अम् घान्^१ इन् । पितृ अम् घान्^२ इन् ।
पितृ अम् घातिन् । पितृघातिन् सु । पितृघातीन्^३ सु । पितृघाती । पितृ-
घातिनौ । पितृघातिन ॥

सोमे सुञ् ३।२।९०

प० वि०—सोमे ७।१ सुञ् ५।१

अर्थ—[ब्रह्मभ्रूणट्रेषु क्विप् इत्यत क्विविति अनुवर्तते] सोमे
कर्मण्युपपदे सुञ् धातो क्विप्प्रत्ययो भवति । (सोम कर्म के उपपद रहन
पर पुञ् धनिपदे घातु से क्विप् प्रत्यय होता है भूतकाल में)

उदा०—सोमसुत् ।

सि०—सोमसुत् । सोम मुतवान् इति । सोम अम् पुञ् क्विप् ।
सोम अम् पु क्विप् । सोम अम् सु क्विप् । सोम अम् सु व । सोम अम्
सु । सोम अम् सु तुक्^४ । सोम अम् सुत् । सोमसुत् । सोमसुत् सु
सोमसुत् । सोमसुतो । सोमसुत । सोमसुतम् । सोमसुतो । सोमसुत ।
सोमसुता । सोमसुद्^५ भ्याम् । सोमसुति । सोमसुतो । सोमसुत्सु^६ ॥

१—हो हत्तजिणि नपु (७ ३ ५४) २—हनस्तोऽचिण्णसो (७ ३ ३२)

३—सो च (६ ४ १३) ४—ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् (६ १ ७१) ५—
स्वादिप्वसवनामस्थान (१. ४ १७) क्त्वा जशान्त (८ २ ३६) ६—खरि
च (८ ४ ५४)

अग्नी चे ३।२।६१

प० वि०—अग्नी ७।१ चे १।१

अर्थ—[क्विप्] अग्नी कर्मणि उपपदे चिनोतेर्धातोर्भूते क्विप् प्रत्ययो भवति । (अग्नि कर्म के उपपद रहन पर चिन् चयने धातो से क्विप् प्रत्यय होता है भूतकाल में)

उत्पा०—अग्निचित् ।

सप्तम्या जनेडं ३।२।६७

प० वि०—सप्तम्याम् ७।१ जने १।१ ड १।१

अर्थ—सप्तम्यन्त उपपदे जनेर्धातोर्डं प्रत्ययो भवति भूते । (सप्तम्यन्त के उपपद रहन पर जन् धातु स ड प्रत्यय होता है भूतकाल में)

उदा०—कटज, उपसरज, पङ्कज, वारिज ।

सि०—कटज । कटे जात इति । कट डि जन् ङ । कट डि जन् अ । कट डि ज् अ । कट डि ज । कट ज । कटज मु । कटज ॥ पङ्के जात, पङ्कज । वारिणि जात, वारिज । उपसरे जात, उपसरज

पञ्चम्यामजाती ३।२।६८

प० वि०—पञ्चम्याम् ७।१ अजाती ७।१ स०—न जातिरिति अजाति तस्याम् अजाती ॥

अर्थ—[ङ] अजातिवार्चिनि पञ्चम्यन्त उपपदे जनेर्धातोर्डं प्रत्ययो भवति भूते । (अजातिवाची पञ्चम्यन्त सुबन्त के उपपद रहन पर जन् धातु से 'ड' प्रत्यय होता है भूतकाल में)

उत्पा०—सस्कारज, गोमयज, दुग्धज ।

सि०—सस्काराज्जात इति सस्कारज । सस्कार डसि जन् ङ । सस्कारज । गोमयज । गोमयाज् जायते वृश्चिक इति ॥

निष्ठा ३।२।१०३

प० वि०—निष्ठा १।१

अर्थ—गतोर्भूते निष्ठाप्रत्ययो भवति । (धातु स भूतकाल में निष्ठा प्रत्यय होता है)

उत्पा०—कृत्कृतवत् निष्ठा (१ १ ०५) क्त—कृत । कृतौ । कृता । कृतम् । कृतौ । कृतान् । कृतेन । कृताभ्याम् । कृतै । कृता । कृते । कृता ।

१—हित्वकरणसामर्थ्यादिभस्यापि टलोपो भवति (भाष्येष्टि)

कृताम् । कृते । कृता । कृतया । कृताभ्याम् । कृताभि । कृतम् । कृते ।
 कृतानि । कृतम् । कृतं । कृतानि । भिन्न । छिन्न । द्राण । म्लान ।
 लून । जीन । उक्लून । शुष्क । पक्व । क्षाम । भावित । हितम् ।
 दत्त । कृतवतु—कृतवान् । कृतवन्तौ । कृतवन्त । कृतवन्तम् । कृतवन्तौ ।
 कृतवत । कृतवता । कृतवद्भ्याम् । कृतवद्भि । कृतवती । कृतवत्यौ ।
 कृतवत्य । कृतयतीम् । कृतवत्यौ । कृतवती । कृतवत्या । कृतयतीभ्याम् ।
 कृतयतीभि । कृतवत् । कृतवती । कृतवन्ति । कृतवत् । कृतवती
 कृतवन्ति ॥ भिन्नवान् । छिन्नवान् । द्राणवान् । म्लानवान् । लूनवान् ।
 जीनवान् । उक्लूनवान् । शुष्कवान् । पक्ववान् । क्षामवान् ।
 भावितवान् । हितवान् । दत्तवान् ॥

सि०—कृत । डुकृब् । कृक्त् । कृत् । कृत् । कृत^१ । कृत^२ । कृत सु ।
 कृत ॥ कृतौ । कृत औ^३ । कृत^४ औ । कृतौ^५ । कृत जस् । कृता^६ ।
 कृत अम् । कृतम्^७ । कृतौ । कृतान् । कृत शस् । कृत अस् । कृतास्^८ ।
 कृतान्^९ । कृतेन । कृत टा । कृत इन^{१०} । कृतेन^{११} । कृताभ्याम् । कृत
 भ्याम् । कृता^{१२} भ्याम् । कृत भिस् । कृत पेस्^{१३} । कृतैस् । कृतै ॥
 कृत टाप्^{१४} । कृत आ । कृता^{१५} सु । कृता स् । कृता^{१६} । कृते । कृता
 औ । कृता शी^{१७} । कृता इ । कृते^{१८} । कृता जस् । कृता^{१९} । कृता अम् ।
 कृताम् । कृते । कृता शस् । कृता अस् । कृतास् । कृता ॥ कृता टा ।
 कृते^{२०} आ । कृतया । कृताभ्याम् । कृताभि ।

१—माघधातुक सप्त (३ ४ ११४) माघधातुकस्य ङ वलादे (७ २ ३५) एकाच उपदेशाद्गुदात्तात् (७ २ १०) २—सावधातुकाघधातुकयो (७ ३ ८४) क्तिन्ति च (१ १ ५) ३—वृद्धिरचि (६ १ ८५) प्रथमयो पूव सवण (६ १ ९८) ४—नादिचि (६ १ १००) ५—वृद्धिरचि (६ १ ८५) वृद्धिरादच् (१ १ १) स्थानांतरतम (१ १ ४९) ६—प्रथमयो पूव सवण (६ १ ९८) ७—मयि पूव (६ १ १०३) ८—तस्मान्छो न पुसि (६ १ ९६) ९—टाडसिडसामिनास्या (७ १ १२) १०—मादगुण (६ १ ८४) ११—मुपि च (७ ३ १०२) १२—घनो मिस एम (७ १ ९) घनवात्तिस्त्ववस्य (१ १ ५४) १३—घजाघतष्टाप् (४ १ ४) १४—मक सवण दोष (६ १ ९७) १५—हल्ङ्याभ्यां दीर्घान् मुत्तिस्त्वपुक्त्न हत् (६ १ ९६) १६—घोर् माघ (७ १ १८) घनवात्तिस्त्ववस्य (१ १ ५४) १७—मादगुण (६ १ ८४) १८—मादि षाप (७ ३ १०५)

कृतम् । कृत सु । कृत अम् । कृतम् । कृते । कृत औ । कृत शी^१ ।
कृत ई । कृते । कृतानि । कृत जस् । कृत शि^२ । कृत नुम्^३ इ । कृतन्
इ । कृतान्^४ इ । कृतानि । कृतम् । कृते । कृतानि । कृतेन । कृताभ्याम् ।
कृतै ॥

भिन्नः ॥ भिदिर् क्त । भिद् त । भिन्^५ सु । भिन्न । छिदिर् ।
छिद् क्त । छिन्न ॥ द्राण । द्रा क्त । द्रा त । द्रा न^६ । द्राण^७ ।
द्राण सु । द्राण ॥ स्नान । स्नै स्नै हर्षये । स्नै क्त । स्ना त ।
स्नान^८ । स्नान सु । स्नान ॥ लून । लून् । लू क्त । लू त । लू
न^९ । लून सु । लून ॥ जीन । ज्या ययोहानी । ज्या क्त । ज्या त । जू
इ^{१०} आ त । जि आ त । जि^{११} त । जी^{१२} त । जी न^{१३} । जीन सु ।
जीन ॥ उच्छून । दुष्प्रोशी गतिवृद्धयो । श्नी क्त । श्वी^{१४} त । श्^{१५} उ^{१६}
ई त । शु ई त । शु^{१७} त । शु^{१८} त । शून^{१९} । शून सु । शून । उन्
शून । उच् शून^{२०} । उच् छून^{२१} । उच्छून ॥ शुष्क । शुप् क्त ।
शुष्क^{२२} सु । शुष्क । पक्व । पक् क्त । पक् त । पक् र^{२३} । पक् व ।
पक्व सु । पक्व ॥ क्षै क्त । क्षा^{२४} त । क्षा म^{२५} । क्षाम सु । क्षाम ॥
भाषित । भ् णिच् क्त । भौ उ त । भाव् इट् त । भाव् उ त । भावित
सु । भावित ॥ हितम् । हुधाव् । घा क्त । वा त । हित^{२६} । हित
सु । हित अम् । हितम् ॥ दत्त । द्त् क्त । द्रा त । दद्^{२७} त । दत्^{२८}
त । दत्त सु । दत्त ॥

१—नपुंसकाच्च (७ १ १६) २—अस्सतो सि (७ १ २०)
अनकास्सित सवस्य (१ १ ५४) ३—णि सवनामस्थानम् (१ १ ४२)
नपुंसकस्य भलच (७ १ ७२) मिदचोऽत्यात्पर (१ १ ४६) ४—सव-
नामस्थाने चासम्बुद्धौ (६ ४ ८) ५—रदाभ्या निष्ठातो न पूर्वस्य च द
(८ २ ४२) ६—सयोगादरातो धातोयण्वत (८ २ ४३) अटकु-
ष्वाङ्नुम् (८ ४ २) ७—त्वादिभ्यश्च (८ २ ४४) ८—प्रहिज्यावयि०
(६ १ १६) इयण सम्प्रसारणम् (१ १ ४४) ९—सम्प्रसारणाच्च (६
१ १०४) १०—हल (६ ४ २) ११—वचिस्वयियजादीना क्त (६ १
१५) इयण सम्प्रसारणम् (१ १ ४४) १२—भोदितश्च (८ २ ४५)
१३—स्तो दङ्गता दङ्ग (८ ४ ३८) १४—गद्योपटि (८ ४ ६२) १५—
शुप व (८ २ ५१) १६—पचो व (८ २ ५२) १७—प्रादेव उपदेश०
(६ १ ४४) १८—क्षायो म (८ २ ५३) १९—दघातेहि (७ ४ ४२)
२०—दो ददघो (८ ४ ४६) २१—सरि च (८ ४ ५४)

कृतवान् । कृतवत् । कृतवत् सु । कृतवान् स् । कृतवा
 नुम् त् स् । कृतवान् स् । कृतवान् । कृतवत् डीप् । कृतवती सु ।
 कृतवती । कृतवती । कृतवती जस् । कृतवती । कृतवन्ति । कृतवत्
 जस् । कृतव नुम् त् शि । कृतवन्त् इ । कृतवन्ति ॥

लुङ् ३।२।११०

प० वि०—लुङ् १।१

अर्थ—[भूते] घातोर्भूते लुङ् प्रत्ययो भवति । (घातु से भूतकाल में
 लुङ् प्रत्यय होता है)

उदा०—अचैपीन्, अचैष्टाम्, अचैषु । अचैपी, अचैष्टम्,
 अचैष्ट । अचैषम्, अचैष्य, अचैष्यम् । अचैषीन् । अचैष्टीम् । अचैषु ।
 अचैषी । अचैष्टम् । अचैष्ट । अचैष्यम् । अचैष्टम् । अचैष्टम् । अचैष्टम् ।

सि०—अचैपीत् । चिब । चि लुङ् । चि ल । चि तिप् । चि च्लि
 तिप् । चि सिच् ति । चै स् ति । चै प् ति । चै प् ति । चै प् ति । चैप् ईट्
 त् । चैप् ईत् । अट् चैपीन् । अ चैपीन् । अचैपीत् । अचैप् तस् ।
 अचैप ताम् । अचैष्टाम् । अचैप् मि । अचैप् जुस् । अचैषु ।
 अचैषु ॥

अनद्यतने लङ् ३।२।१११

प० वि०—अनद्यतने ७।१ लङ् १।१ स०—न निद्यतेऽद्यतनोऽस्मिन्
 सोऽनद्यतनस्तस्मिन् (श्रु०) ।

अर्थ—अनद्यतनभूतेऽर्धे वर्तमानाद् घातोर्लङ् प्रत्ययो भवति ।

१—प्रत्ययस्य चाधानो (६ ४ १४) २—उगित्वा मवनामस्थानेऽप्यता (७
 १ ७०) मिदवाऽप्यतापर (१ १ ४६) ३—उगित्वा (४ १ ६) ४—
 ननु सप्तम्य भनव (७ १ ७२) ५—आर्षघानुवस्यडवतादे (७ २ ३५)
 गवाच उपदेशानुदात्तान् (३ २ १०) मिचि वृद्धि पारम्परेषु (७ २ १)
 इका गुणवृद्धी (१ १ ३) स्थानात्तरतम (१ १ ४६) ६—इषा ।
 (८ ३ ५७) आद्यप्रत्यययो (८ ३ ५६) ७—इत्स्व (३ ४ १००)
 अष्टक एवाप्तप्रत्यय (१ २ ८१) अस्तिमिवाऽष्टके (७ ३ ६६) आर्षा
 टकित्ती (१ १ ४५) ८—तत्स्थस्यमिवा तात्तताम् (३ ४ १०१) ९—पुता
 पु (८ ८ ४०) १०—मिजम्स्तविदिग्यश्च (३ ४ १०६) घनवाङ्मिग-
 वंत् (१ १ ४४)

(जिसमें धाज का सम्बन्ध न हो ऐसे भूत धर्म में वर्तमान धातु से लट् प्रत्यय होता है)

उदा०—अभवत् । अभवताम् । अभवन् । अभवः । अभवतम् । अभवत । अभवम् । अभवाव । अभवाम । ऐवत् । ऐवेताम् । ऐवन्त । ऐवथाः । ऐवेथाम् । ऐवध्वम् । ऐवे । ऐवावहि । ऐवामहि ।

सि०—अभवत् । भू लङ् । भूल् । भू तिप् । भू ति । भू शप् ति । भू अ ति । भो अ ति । भव् अ ति । भवति । भवन्^१ । अट्^२ भवत् । अभवत् । अभवताम् । अभव तस् । अभव ताम् । अभवताम् ॥ अभवन् । अभव कि । अभव अन्ति । अभव अन्त्^३ । अभव अन्^४ । अभवन् । अभवाव । अभव वस । अभवा^५ वस् । अभवा^६ । अभवाम ॥

ऐवत् । एव । एव् । एव् लङ् । एव् ल् । एव् त । एव् शप् त । एवत् । आट् एवत् । आ एवत् । ऐवत्^७ । ऐव आताम् । ऐव इयताम्^८ । ऐव इनाम्^९ । ऐवेताम् । ऐव क् । ऐव अन्त । ऐवन्त । एव थास् । ऐवथाः । ऐवेथाम् । ऐवध्वम् । ऐवे । ऐव इट् । ऐव ड । ऐवे । ऐव वहि । ऐवावहि । ऐवामहि ।

परोक्षे लिट् ३।२।११५

प० वि०—परोक्षे ७।१ लिट् १।१ स०—अट्। परम् इति परोक्षम् । इन्द्रियेभ्यः परम् इत्यर्थः । (मयूरक्यंसनादित्वात्समासः)

अर्थ—[अनद्यतने भूते] अनद्यतनभूतपरोक्षेऽर्थे वर्तमानाद् धातोर्लिट् प्रत्ययो भवति । (धाज न होने जाने परोक्षभूत में वर्तमान धातु से लिट् प्रत्यय होता है)

उदा०—वभूव । वभूवतु । वभूवु । वभूविथ । वभूवधु । वभूव । वभूय । वभूविथ । वभूविम ।

एधाञ्चक्रे । एधाञ्चक्राते । एधाञ्चकिरे । एधाञ्चकृपे । एधाञ्चक्राथे । एधाञ्चकृद्वे । एधाञ्चक्रे । एधाञ्चकृवहे । एधाञ्चकृमहे ।

१—इतश्च (३ ४. १००) २—नुडलङ्लुङ्द्वदुदात्त (६. ४. ७१) धाद्यन्तो टकितो (१. १. ४५) ३—ह्रस्वोऽनन्तरा सयोग (१ १. ८) सयोगात्तस्य लोप (८. २ २३) ४—मतो दीपो यजि (७. ३ १०१) ५—नित्य डितः (३. ४ ६६) ६—आटश्च (६ १ ८७) ७—प्रातो डित (७ २ ८१) ८—लोपो व्योर्वलि (६ १. ६४)

सि०—भू लिट् । भू णल् । भू अ । भू लुक् अ । भू भू अ ।
भ भू अ । भ भू अ । ब भू अ । बभू । एधाञ्चक्रे-इत्यस्य
साधनं इजादेश्च० (३. १. १३६) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

लट् स्मे ३।२।११८

प० वि०—लट् १।१ स्मे ७।१

अर्थ—[भूतानद्यतनपरोक्षे भूतानद्यतनपरोक्षे स्मशब्द उपपदे
धातोर्लट् प्रत्ययो भवति । (अनद्यतन परोक्ष भूत में स्म शब्द के उपपद
रहने पर लट् प्रत्यय होता है) ।

उदा०—धर्मेण स्म कुरवो युध्यन्ते । युधिष्ठिरो यजते स्म ।

सि०—युध्यन्ते । युध । युध् लट् । युध् त । युध् श्यन् त । युध्
य त । युध् य त । युध् य ते । युध्यते । युध्येते । युध्यन्ते ।

अपरोक्षे च ३।२।११९

प० वि०—अपरोक्षे ७।१ च अ० ।

स०—न परोक्षम् इति अपरोक्षम् तस्मिन् (नञ् तत्पु०)

अर्थ—[स्मे, भूते, अनद्यतने] स्मोपपदे भूतानद्यतनापरोक्षेऽर्थे
वर्तमानाद् धातोर्लट् प्रत्ययो भवति । (अनद्यतन अपरोक्ष भूत में वर्तमान
धातु से स्म शब्द के उपपद रहने पर लट् प्रत्यय होता है) ।

उदा०—देहलीविश्वविद्यालये भाषाविज्ञानविद् आचार्यो गङ्गारामो
मामध्यापयति स्म । उर्मिला अष्टाध्यायी पठनाय वदति स्म ।

सि०—अध्यापयति । इङ् । इ णिच् । इ इ । आ इ । आ पुक् इ ।
आपि लट् । आपि ल् । आपि तिप् । आपि शप् ति । आपि अ ति । आपे
अ ति । आप्य् अ ति । आपयति । अधि आपयति । अध्यापयति ।

वर्तमाने लट् ३।२।१२६

प० वि०—वर्तमाने ७।१ लट् १।१

अर्थ—वर्तमानेऽर्थे वर्तमानाद् धातोर्लट् प्रत्ययो भवति ।

(वर्तमान धर्म में वर्तमान धातु से लट् प्रत्यय होता है) ।

वर्तमाने इत्यधिकारः उणादयो बहुलं (३।३।१) इतियायत ।

उदा०—परिहृत्प्रवरः केदारनाथशर्मा सारस्वताऽखिलभारतीयसंस्कृत-
माहित्यसम्मेलनस्य प्रधानमन्त्रिपदमलङ्करोति । लीलाधरशर्मा तत्र
धार्मिकमन्त्रिरूपेण विराजते ।

प्रथमगण — भवति, भवत, भवन्ति । भवसि, भवथ, भवथ । भवामि, भवाव, भवाम ।

द्वितीयगण — अत्ति, अत्त, अत्तिन्ति । अत्ति, अत्थ, अत्थ । अत्तिम्, अत्थ, अत्थम् ।

तृतीयगण — जुहोति, जुहुत, जुह्वन्ति । जुहोपि, जुहुय, जुहुय । जुहोमि, जुहुव, जुहुम ।

चतुर्थगण — दीव्यति, दीव्यत, दीव्यन्ति । दीव्यमि, दीव्यथ, दीव्यथ । दीव्यामि, दीव्याव, दीव्याम ।

पञ्चमगण — मुनोति, मुनुत, मुन्यन्ति । मुनोपि, मुनुथ, मुनुथ । मुनोमि, मुनुव, मुन्य, मुन्यम्, मुन्यम् ।

षष्ठगण — तुङ्गति, तुङ्गत, तुङ्गन्ति । तुङ्गसि, तुङ्गथ, तुङ्गथ । तुङ्गामि, तुङ्गाव, तुङ्गाम ।

सप्तमगण — रुणद्धि, रुण्य, रुण्यन्ति । रुण्ति, रुण्य, रुण्य । रुण्ति, रुण्य, रुण्यम् । रुण्ये, रुण्यते, रुण्यते । रुण्ये, रुण्यते, रुण्यते ।

अष्टमगण — तनोति, तनुत, तन्यन्ति । तनोपि, तनुथ, तनथ । तनोमि, तनुव, तन्य । तनुम तन्म ।

नवमगण — क्रीणाति, क्रीणान, क्रीणन्ति । क्रीणासि, क्रीणीय, क्रीणीय । क्रीणामि, क्रीणीय, क्रीणीयम् ।

दशमगण — चोरयति, चोरयत, चोरयन्ति । चोरयसि, चोरयथ, चोरयथ । चोरयामि, चोरयाव, चोरयाम ।

सन् बुभूषति, बुभूषत, बुभूषन्ति । बुभूषसि, बुभूषथ, बुभूषथ । बुभूषामि, बुभूषाव, बुभूषाम ।

बभूवोभूयते, बोभूयते, बोभूयन्ते । बोभूयमे, बोभूयेथे, बोभूयेथे । बोभूय, बोभूयाव, बोभूयामहे ।

यद्बुक् — बोभूयति, बोभूति, बोभूत, बोभूयति । बोभूयपि, बोभूयपि, बोभूय, बोभूय । बोभूयामि, बोभूयामि, बोभूय, बोभूय ।

सि० — बुभूषति । भू सन्^१ । भू सन्^२ । भू सन्^३ । भू भू सन् । बु

१ — घाता वमण समानकर्तृकादिच्छाया वा (३ १ ७) २ — घाघघानुक्
घप (३ ४ ११४) घाघघानुक्तस्यङ्कनाम् (७. २ ३५) सनि ग्रहपुटादिव (७
२ १२) ३ — सावघानुक्घाघघानुक्तयो (७ ३ ८४) इतो मन (१ १ ६)

भू सन् । वुभूपन् । वुभूप लट् । वुभूप तिप् । वुभूप शप् ति । वुभूपति ।
 वोभवीति । भू । भू यङ् । भू । भू भू । वू भू । वो भू ।
 वोभू लट् । वोभू तिप् । वोभू ति । वोभू ईट्^२ ति । वोभू इ ति । वोभा
 ईति । वोभवीति । वोभोति । वोभुजति । वो भू मि । वोभू अति । वोभ
 उवङ्^३ अति । वोभुवति ।

लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ३।२।११४

प० वि०—लट ६।१ शतृशानचो १।२ अप्रथमासमानाधिकरणे ७।१
 स०—शता च शानच इति शतृशानचो । प्रथमया समानाधिकरणम्
 इति प्रथमासमानाधिकरणम् (तु० तत्पु०) । न प्रथमासमानाधिकरणम्
 इति अप्रथमासमानाधिकरणम् (नव् तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—[नन्वोर्विभाषा इति सूत्रान्मण्डूकप्लुतिन्यायेन विभाषा
 ग्रहणमिहानुवर्तते, अतोऽत्रेय व्यवस्था ज्ञातव्या—प्रथमासमानाधिकरणे
 विभाषा अन्यत्र नित्यमिति] अप्रथमासमानाधिकरणे प्रत्ययार्थे लट
 स्थाने शतृशानचो प्रत्ययो नित्य भवति, प्रथमासमानाधिकरणे तु विक-
 ल्पेन भवति ।

(नन्वाविभाषा इस मूल से विभाषा की अनुवृत्ति मण्डूकप्लुति न्याय से
 आती है । और वह विभाषा व्यवस्थित विभाषा है । इसलिए यहाँ वह व्यवस्था
 समझनी चाहिए कि जब प्रथमाविभक्ति से समान अधिकरण है तब विकल्प से
 शतृ और शानच प्रत्यय हात है और जब प्रथमासमानाधिकरण नहीं है तब
 नित्य ही ये दोनों प्रत्यय होते हैं)

उदा०—शतृ-पचन्त देवदत्त पश्य । पचता देवदत्तेन कृतम् ।
 पचन्तो देवदत्ता पश्य । पचन्त्या देवदत्तया कृतम् । पचति पचन् या
 देवदत्त । अस्ति सन् वा ब्राह्मण । करोति कुर्वन् वा ब्राह्मण ।

शानच—पचमान देवदत्त पश्य । पचमानेन देवदत्तेन कृतम् ।
 कुर्वाणेन देवदत्तेन दृष्टम् । कुरुते कुर्वाणो वा देवदत्त । आस्ते आसीनो
 वा आचार्य ।

सि०—पचन्तम् । हुपचप् । पच् लट् । पच् शट् । पच् अन् । पच्
 शप् अत् । पच् अ अन् । पचत अम् । पच् नुम्^४ त अम् । पचन्त

विटति च (१. १. ५)

१—गुणो गडनुको (७. ४. ८२) २—गडो वा (७. ३. ६४) ३—प्रचिदनु०
 (६४. ७७) टिप्प (१. १. ५२) ४—ठगिदवा सवनामस्थानेऽप्यातो (७. १.

अम् । पचन्तम् । पचन् टा । पचता । पचन्तोम् । पचन्^१ ङीप् । पचत्
 डे । पच नुम्^२ त् डे । पचन्ती अम् । पचन्ताम् । पचन्ती टा । पचन्त्या ।
 पचन् । पचन सु । पचनुमन्^३ म् । पचन्^४ म् । पचन् । पचन् । सन् ।
 अम् लट् । अस् गृह् । अम् अन् । स् अन् । सन् सु । स नुम् त् स् ।
 मन्^५ म् । सन् । मन् । कुर्वन् । ऋ शत् । कृ^६ अन् । कृ^७ अन् । कृ^८ उ अन् । कृ^९ उ
 अन् । कृ^{१०} यन्^{११} । कुर्वन् । कुर्वन्तु । कुर्वन् नुम् त् सु । कुर्वन्^{१२} म् ।
 कुर्वन् । कुर्वन् ॥ पचमानम् । पच् जानच् । पच गप् आन । पच अ
 आन । पच आन । पच मुक्^{१३} आन । पचमान अम् । पचमानम् ।
 पचमान टा । पचमानेन । कुर्वाणेन । कृ जानच् । कृ आन । कृ उ
 आन । कृ^{१४} अन् । कृ^{१५} आन । कुर्वान् । कुर्वाण । कुर्वाण टा ।
 कुर्वाण टन । कुर्वाणेन । आमीन । आम् शानच् । आन आन । आस्
 टन^{१६} । आमीन सु । आमीन ॥

सम्वाधन च ३।२।१०५

प० नि०—सम्वाधन ७। (च अ ।

अर्थ—[लट् गृह् जानच्] सम्वाधन च प्रिय लट् स्थाने शतृ-
 जानच् प्रत्यया भवत ॥ (सम्वाधन च विषय म शतृ प्रीर जानच् प्रत्यय हात है)

उत्त०—इ पचन । द्वे पचमान ।

ती नत् ३।२।१०७

प० नि०—ती १। सन् ॥१

अर्थ—[शतृशानच्] ती शतृशानच् नमस्तौ भवत ।

(उम गृह् प्रीर जानच् प्रत्ययों का ममता हाती है)

उत्त०—आत्मगम्य करिष्यन् । आत्मगम्य करिष्यमाण ।

सि०—करिष्यन् । कृ लुट् । ऋ ल् । कृ गृह् । कृ अन् । कृ स्य अन् ।

कृ ट्^{१७} स्य अन् । कृ उ स्य अन् । कृ^{१८} ङ स्य अन् । करि स्य अन् ।

७०) मिदवाग्न्यात्पर (१ १ ८६)

१—स्त्रियाम् (४ १ ३) उक्तिरस्व (४ १ ४६) २—शब्दयनानित्यम् (७ १

८१) ३—प्रन उवाक्यानुक (६ ६ ११०) उरण रपर (१ १ १०) ४—इका

पण्डि (६ १ ७५) ५—माः मुक् (७ २ ८०) ६—ईदास (७ २ ८३)

माद परस्य (१ १ १३) ७—ऋदयता स्वे (७ २ ७०) ८—साव

करिष्य अत् । करिष्यत् । करिष्य नुम् त् सु । करिष्यन्त् स् । करिष्यत् ।
करिष्यन् । करिष्यमाण । करिष्य मुक्^१ आन । करिष्यमाण ॥

आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ३।२।१३४

प० वि०—आ अ० । स्वे १।१ तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ७।२
स०—तस्मिन् शीलम्, तच्छीलम्, धात्वर्थे स्वभावतः प्रवृत्त इत्यर्थः ।
तस्मिन् धर्मा इति तद्धर्मः, तस्मिन् स्वभावेन विनापि प्रवृत्त इत्यर्थः
तत्साधुकारी । तस्मिन् कार्यकरणे शिल्पी इत्यर्थः ।

अर्थ—आ 'भ्राजभासधुर्विद्य तोर्जिपजुप्राक्भुव विवप्' इत्येतस्माद्
ये प्रत्यया विहिता ते सर्वे तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु कर्तृषु भवन्ति
इत्यधिकारो चेदित्यर्थः ॥

(भ्राजभासधुर्विद्यनाजिपजुगावस्तुव विवप् इस सूत्र को लेकर, यहाँ से जो
प्रत्यय विधान किये जात हैं वे सभी तच्छील अर्थात् धात्वर्थ में स्वभाव से
प्रवृत्ति तद्धर्म अर्थात् विना भी स्वभाव क किसी कार्य में प्रवृत्ति, तत्साधुकारी
अर्थात् किसी काम को मुदरता से करना इन अर्थों में होते हैं ऐसा अधिकार है)

तून् ३।२।१३५

प० वि०—तून् १।१

अर्थ—वर्तमानकाले धातुभ्यस्तून् प्रत्ययो भवति तच्छीलानिषु
कर्तृषु । (तच्छीलानि कर्ता अथ में धातु स वर्तमानकाल में तून् प्रत्यय होता है)

उदा०—तच्छीले—परुष वदित्वा । कठोर वदित्वा । तद्धर्मणि—वेदा
नुपदेशा । धर्ममुपदेशा । तत्साधुकारिणि—कट कर्त्ता । ओदन पक्ता ।

सि०—यट व्यक्ताया वाचि । यट् तून् । यट् तू । यट् इट् तू ।
यदित् । यदित् सु । यदित् अनङ् सु । यदितन् स । यदितान स् । यदि-
तान । यदित्वा ।

ग्लाजिस्थश्च क्स्नु ३।२।१३६

प० वि०—ग्लाजिस्थ । १।१ च अ० । क्स्नु १।१ स०—ग्लाश्च
जिश्च स्थाश्च इति ग्लाजिस्था, समाहारद्वन्द्वेऽपि नतु सकृत्
न २० २।४।३८ तस्मान् ।

अर्थ—[भुवश्च] ग्ला जि म्या इत्येतेभ्यो धातुभ्यो भवतेरश्च तच्छी-
लानिषु कर्तृषु वर्तमाने क्स्नु प्रत्ययो भवति ।

धातुकापधानुबयो (७ ३ ८४) १—भान मुक् (७ २. ८२)

(ग्ला जि स्या घोर भू धातुप्राप्त तच्छीलादि कर्ता प्रथम वर्तमान काल म वस्तु प्रत्यय होता है)

उदा०—ग्लास्नु । जिप्पु । ग्लास्नु । भूप्पु ।

मि०—ग्ले । ग्ला^१ वस्तु ग्लाम्नु । जि स्नु^२ । जिप्पु । ग्ला-
स्नु । भू स्नु । भूप्पु । भूप्पु ।

क्षिपि चाय प्रत्ययो न विन् । तेन स्या इत्यत्र घुमास्था० (६।४।६६)
इति ईशारा न भवति ॥

जागुरुकः ३।२।१६५

प० वि०—जागु ५।१ उक १।१

अर्थ—जागर्त्तुरुक प्रत्यया भवति तच्छीलादिषु कर्तृषु वर्तमानकाल ।
(वर्तमान काल में जागृ वातु से ऊर्ध्व प्रत्यय होता है तच्छीलादि कर्ता प्रथम में)

उदा०—जागरुक ।

सि०—जागृ उक । जागर् उक । जागरुक ।

सनाशसभिक्ष उः ३।२।१६६

प० वि०—सनाशसभिक्ष ५।१ उ १।१ स०—सरच्च आशसरच्च
भिट् च इति सनाशसभिट् तस्मान् ।

अर्थ—सन्नन्तेभ्य आशस-भिक्षिभ्याञ्च धातुभ्या तच्छीलादिषु
कर्तृषु उ प्रत्ययो भवति वर्तमानकाले ।

(मनन्त घाट शक्ति इच्छाया घोर भिक्ष धातु से तच्छीलादि कर्ता प्रथम में वर्तमान काल म उ प्रत्यय होता है)

उदा०—कच्चिक्कीर्षु । व्याकरण पिपठिषु । आशसु । भिक्षु ॥

सि०—चिकीर्षतीति चिकीर्षु । कृ सन् । कृ सन् । कृ सन् । कृ
सन् । किर सन् । कीर् सन् । कीर् कीर् स । की कीर् स । कि कीर्
स । चिकीर्ष । चिकीर्ष उ । चिकीर्ष^२ उ । चिकीर्षु । चिकीर्षु सु ।
चिकीर्षु ॥ पिपठिषु ॥ आशसु । शसि । शस् । श नुम् स् । शम्स् ।
शस् उ । शम्स् ॥

१—प्रादेच उपदेशप्रसिति (६ १ ४४) २—सावधातुकाधधातुवयो (७
३. ८४) इति सूत्रेण युगे प्राप्ते विडति च (१ १ ५) इत्यनन कित्वादशुण ।
३—प्रतो लोप (६ ४ ४८)

स्थेशभासपिसकसो वरच् ३।२।१७५

प० वि०—स्थेराभासपिसकसः ५।१ वरच् १।१ स०—स्थारच ईशरच भासश्च पिसरच करच इति स्थेशभासपिसकः, तस्मात् ।

अर्थ—स्था, ईश, भास, पिस कस् इत्येतेभ्यो धातुभ्यस् तच्ची-लादिप् कर्तृषु वर्तमानकाले वरच् प्रत्ययो भवति । (स्था, ईश, भास, पिस कम् धातुयो से तच्चीलादि कर्ता अर्थ में वर्तमान काल में वरच् प्रत्यय होता है)

उदा०—स्थारः । ईश्वरः । भास्वरः । पेम्वरः । विकस्वरः ।

भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपजुग्रावस्तुवः क्विप् ३।२।१७६

प० वि०—भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपजुग्रावस्तुवः ५।१ क्विप् १।१ स०—भ्राजश्च भासश्च धुर्विश्च द्युतश्च ऊर्जिश्च पृ च जुश्च गावस्तुश्च इति भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपजुग्रावस्तु, तस्मान् ऊर्ध्वञ्च स्तुधातु-ध्रुवामिति उवडादेशः

अर्थ—भ्राज-भास धुर्वि-द्यु त-ऊर्जि-प-जु-गावस्तु इत्येतेभ्यो धातुभ्यः क्विप् प्रत्ययो भवति तच्चीलादिप् कर्तृष्वेवेषु । (भ्राज, भास, धुर्वं, द्या, ऊर्ध्वं, प, जु घोर गाव उपपद पूर्वक स्तु इन धातुयो से तच्चीलादि कर्ता अर्थ में क्विप् प्रत्यय होता है)

उदा०—भ्राज्-विभ्राट् । विभ्राट् । विभ्राजी । विभ्राजः । विभ्राजम् । विभ्राजी । विभ्राजः । विभ्राजा । विभ्राड्भ्याम् । विभ्राड्भिः ॥

भास्—भाः । भासो । भासः । भासन् । भासो । भासः । भासा । भाभ्याम् । भाभिः ।

धुर्वं—धूः । धुरी । धुरः । धुस् । धुरी । धुरः । धुरा । धूर्भ्याम् । धूर्भिः ।

द्युत्—द्युन् । द्युती । द्युतः । द्युतम् । द्युतो । द्युतः । द्युता । द्युभ्याम् । द्युभिः ॥

ऊर्जं—ऊर्कं । ऊर्ग । ऊर्जा । ऊर्जः । ऊर्जम् । ऊर्जा । ऊर्जः । ऊर्जा । ऊर्भ्याम् । ऊर्भिः ।

पृ—पूः । पूरा । पूरः । पूरम् । पूरे । पूरः । पूरा । पूभ्याम् । पूभिः ॥

जु—जूः । जुवाः । जुवः । जुवम् । जुवो । जुवः । जुवा । जुभ्याम् । जुभिः । वचिरच्छयायतस्तुष्टप्रजुश्रीणां दीर्घश्चेति वक्तव्यम् इत्यनेन जूरित्यत्र दीर्घत्वम् ॥

प्रावन्तु-प्रावन्तुन् । प्रावन्तुती । प्रावन्तुतः । प्रावन्तुदभ्यान् ।

प्रावस्तुदिभः ॥

सि०—विघ्राट् । भ्राज् क्विप् । भ्राज सु । भ्राप् सु । विघ्राट् । विघ्राट् ।

भाभ्याम् । भास् भ्याम् । भार् भ्याम् । भाभ्याम् । धूः । धुर्व् क्विप् । धुर्व् । धुर् । धुर् सु । धूर् म् । धूर् । धूः । ऊर्ज् । ऊर्ज् । ऊर्ज् । पूः । पू क्विप् । पुर् । पुर् सु । पूः ॥

जूः । जुवा । जूदा । जुवद् आ । जुव् जा । जुवा । प्रावस्तुन् । प्रावस्तु क्विप् । प्रावस्तु तुक् । प्रावस्तुन् । प्रावस्तुन् सु । प्रावस्तुन् ॥

अन्येभ्योऽपि दृश्यते ३।२।१७८

प० वि०—अन्येभ्यः १।३ अपि अ० । दृश्यते । क्रिया० ।

अर्थ—[क्विप्] अन्येभ्योऽपि घातुभ्यः क्विप् प्रत्ययो दृश्यते तच्छ्रीलादिषु कर्तृषु वर्तमानकाले । (अन्य घातुभ्यो से भी तच्छ्रीलादि कर्ता के अर्थ में क्विप् प्रत्यय देखे जाते हैं)

उदा०—छिन् । भित् ।

सि०—छिन्निर् । छिद् क्विप् । छिद् । छिद् सु । छिद् । छित् । छिद् । छिदी । छिदः । भिद् । भित् । भिदी । भिदः ॥

भुवः सज्ञान्तरयोः ३।२।१७९

प० वि०—भुवः १।१ सज्ञान्तरयोः ७।२ स०—सज्ञा च अन्तररच इति संज्ञान्तरो तयोः ।

अर्थ—[क्विप्] भवतेषांताः सज्ञायाम् अन्तरे च गम्यमाने क्विप् प्रत्ययो भजति तच्छ्रीलादिषु कर्तृषु । (भू धातु से सज्ञा या अन्तर गम्यमान हो तो क्विप् प्रत्यय होता है तच्छ्रीलादि कर्ता अर्थ में)

उदा०—संज्ञायाम्—विमूर्ताम कश्चित् । अन्तरे—प्रतिभू छिन्धनिका-धमर्णयोरन्तरे यस्तिष्ठति स प्रतिभू गृह्यते ३

१—प्रवचनस्य गृह्यते ० (८. २. ३६) २—कना जसोऽन्ते (८. २. ३६) ३—वागमाने (८. ४. ५५) ४—स्वादिष्वगमं नामस्याने (१. ४. १७) सग-जुयोः ५ (८. २. ६६) ५—राज्ञोः (६. ४. २३) ६—हति ष (८. २. ७७) ७—चोः कृः (८. २. ३०) ८—उद्योऽयं पूर्वस्य (७. १. १०२) उरात् रपरः (१. १. ५०) ९—विबन्त धातुश्च न जहाति इति धातुत्वान् अविन्तु धातुध्रुवा म्पोरिपटवटो (६. ४. ७७)

अत्तिलूधूसूखनसहचर इत् ३।२।१८४

प० वि०—अत्तिलूधूसूखनसहचर ५।१ इत् १।१ स०—अत्तिश्च लूश्च धृश्च सूश्च खनश्च सहश्च चर्च इति अत्तिलूधूसूखनसहचर तस्मात् ।

अर्थ—[करणे] ऋ गतौ । लूज छेदने । धू विधनने । पू प्रेरणे । खनु अवनारणे । पह मर्पणे । चर गतिभक्षणयो एतेभ्यो धातुभ्य करणे कारके इत् प्रत्ययो भवति । (ऋ लू धू पू खनु पह और चर इन धातुओं से करण कारक म इत् प्रत्यय हाता है)

उ०—अरित्रम् । लवित्रम् । धवित्रम् । सवित्रम् । खनित्रम् । सहित्रम् । चरित्रम् ।

वीत क्त ३।२।१८७

प० वि०—वीत ५।१ क्त १।१ ॥ स०—वि इत् यस्य सो वीत् तस्मात् ।

अर्थ—[पतमाने] वीतो धातोर्वतमानऽर्थे क्तप्रत्ययो भवति । (वि है इत् जिसका ऐसे धातु से वतमान काल के अर्थ म क्त प्रत्यय होता है)

उ०—मिन् । विमिन् । धृष्ट ।

सि०—मिन् । विमिन् स्नेहने । मिद् क्त । मिद् त । मिन् न । मिन्न । मिन्न सु । मिन्न ॥ विक्षिन् । विक्षिद् क्त । विक्षिन् त । विक्षिन् न । विक्षिन् न । विक्षिन् । विक्षिन् सु । विक्षिन् ॥

धृष्ट । विधृष्ट । धृष्ट क्त । धृष्ट त । धृष्ट त । धृष्ट । धृष्ट ॥

मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च ३।२।१८८

प० वि०—मतिबुद्धिपूजार्थेभ्य ५।३ च अ० । स०—मतिश्च बुद्धिश्च पूजान्च इति मतिबुद्धिपूजा । अर्थश्च अर्थश्च अर्थश्च इति अर्था । मतिबुद्धिपूजा अर्था यथा धातूनामिति मतिबुद्धिपूजार्था तेभ्य ।

अर्थ—[क्त] मत्यर्थेभ्यो बुद्ध्यर्थेभ्य पूजार्थेभ्यश्च धातुभ्यो वर्तमाने अर्थे क्तप्रत्ययो भवति । (मत्यर्थक बुद्ध्यर्थक और पूजाधक धातुओं से वतमानकाल के अर्थ म क्त प्रत्यय होता है)

उ०—मतिरिच्छा । राज्ञा मत । राज्ञामिष्ट । बुद्धिज्ञानम् । राज्ञा बुद्धि । राज्ञा ज्ञान । पूजा सत्कार । राज्ञा पूजित । राज्ञामर्चित ।

सि०—मत । मन् क्त । मन् त । मन् त । मत सु । मत । इष्ट । इष्ट क्त । इष्ट त । इष्ट । इष्ट सु । इष्ट । बुद्धि । बुद् क्त । बुद् त ।

१—धनुःतापदे० (६ ४ ३७) धुसनासिवापचनोऽनुनासिक
(१. १ ८) २—पुना पु (८ ४ ४१)

पुष् ध' । बुद् घ । बुद्ध सु । बुद्ध । ज्ञात । ज्ञा न । ज्ञान ।

पूजित । पूज् क्त । पूज् त । पूज् इट् त । पूजित । अर्चित
अर्च् इट् त । अर्चित ।

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया तृतीयाध्याये द्वितीय पाद

उणादयो बहुलम् ३।३।१

प० वि०—उणादय १।३ बहुलम् १।१

स०—उण् आदिर्यपा ते उणादय । बहून् अपांन लाताति बहुलम् ।

अर्थ—[वर्तमाने] उणादय प्रत्यया वर्तमानशब्दे वातुभ्यो बहुल
भवन्ति । (धातुभा म उण् इत्यादि प्रत्यय वर्तमानकाल में बहुत करक हात हैं)

बहुलशब्दस्य कोऽर्थं तदुच्यते—

कचचित्प्रवृत्ति कचचिदप्रवृत्ति कचचिद्विभाषा कचचिदन्यन्त्रेव ।

विधेर्निधान बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुल्यं वदन्ति ॥

(कही काम की प्रवृत्ति जाना, कही न जाना, कहा निश्चय न काम जाना
कही पर मन्द क स्थान पर म द काम का हा जाना यह चार प्रकार का काम
बाहुल्य कहाता है ।

उदा०—पृत्रापाजिमित्रान्सिन्धुशून्त्य उण् (उणा० १।१।) कार ।
पायु । पायु । जायु । मायु । ग्रादु । सायु । आयु । निन्नचि
प्रच्छिन्नित्प्रुप्रुत्रा दीर्घोऽमप्रसारण च (उणा० २।७) दान् । प्राट्
शब्दप्राट् । श्री । म् । इ । षट् । जू ।

साधु । साध्नेति वम्ये कर्म प्रति मायु मञ्जन । सायु । मायु ।
साधन । मायुम् । मायु । साधून् । साधुना । मायुभ्याम् । मायुभि ।
सायये । साधुभ्याम् । माधुभ्य । साय । साधुभ्याम् । साधुभ्य ।
साधो । साय । साधूनाम् । सायौ । साधो । माधुयु । साय ।
साधू । हे साधय ।

याक्, याग् । यायौ । याच । याचम् । यायौ । याप । यापा ।
याभ्याम् । याभि । याचे । याभ्याम् । याभ्य । याप । यापया
याभ्य । याच । यायौ । याचाम् । याचि । याचो । याभू ।

शब्दप्राट्, शब्दप्राड् । शब्दप्राशौ । शब्दप्राशः । शब्दप्राशम् ।
शब्दप्राशौ । शब्दप्राशः । शब्दप्राशा । शब्दप्राड्भ्याम् । शब्दप्राडिभ ।

ॐ अत्रायं विवेक — क्विपि छवोः शूडनुनासिके च (६।४।१८) इति
शकारे 'शब्दप्राश्' प्रातिपदकम्, विचि (३।२।७५) तु शब्दप्राच्छ् ।
तस्य शब्दप्राट् शब्दप्राच्छौ, शब्दप्राच्छः इति रूपाणि भवन्ति ।

श्रीः । श्रियौ । श्रियः । श्रियम् । श्रियौ । श्रियः । श्रिया ।
श्रीभ्याम् । श्रीभिः । श्रिये, श्रियै । श्रीभ्याम् । श्रीभ्यः । श्रियः, श्रियाः ।
श्रीभ्याम् । श्रीभ्यः । श्रियः, श्रियाः । श्रियोः । श्रियाम्, श्रीणाम् । श्रियि,
श्रियाम् । श्रीयोः । श्रीषु । हे श्रीः । हे श्रियौ । हे श्रियः । एवं स्तू, प्रू,
कटप्रू, जू इत्यादयः बोधनीयाः ।

सि०—करोतीति कारुः शिल्पी वा । कारुः । डुकुब् । कृ ढण् । कृ
उ । कार् उ । कारु सु । कारुः । वायुः । वाति गच्छति जानातीति वायुः
पवनः परमेश्वरो वा । वा च्त् । वा उ । वा युक् ट । वाय् उ । वायु सु ।
वायुः । वायु । वायवः ।

पाक् । धक्ति शब्दानुच्चारयति यया सा वाक् । यच् क्विप् । वाच् ।
वाक् । वाग् । वाक् ॥

प्राट्, शब्दप्राट् । पृच्छतीति प्राट् । शब्दं पृच्छतीति शब्दप्राट्
शिष्यो वा । श्रीः । श्रयति श्रीयते वा सा श्रीः, ईश्वररचना शोभा वा । द्रू ।
द्रूयते प्राप्यते दुःखमनया इति द्रूः हिरण्य वा । कटप्रूः । कटेन कटिभागेन
प्रपते गच्छतीति कटप्रूः, कामुको जनः कीटो वा । जूः । जवति शीघ्रं
गच्छतीति जूः । शशोऽश्वो वृषभ आकाशं विद्या वा ।

साधुः । साधु सु । साधु श्री । साधू^१ । साधु जस् । साधो^२ अस् ।
साधच्^३ अस् । साधवः । साधु अम् । साधुम्^४ । साधू । साधु शम् ।
साधु अस् । साधून्^५ । साधून्^६ । साधु टा । साधु ना^७ । साधुना ।
साधु हं । साधो^८ ए । साधव् ए । साधवे । साधु ङसि । साधु अस् ।
साधोस्^९ । माधोः । साधु ओम् । साध्वोस् । साध्वोः । साधु आम् ।

१—प्रथमयोः पूर्वसदृशः (६. १. ६८) २—जति च (७. ३. १०१)

३—एचोऽनवायावः (६. १. ७८) ४—अभि पूर्व. (६. १. १०७) ५—

प्रथमयोः पूर्वगवर्णः (६. १. ६८) ६—तस्माच्छतो नः पुंसि (६. १. ६६)

७—प्राटो नाऽस्त्रियाम् (७. ३. १२०) ८—संपो घ्यसिष्ठ (१. ४. ७) वेङ्गिति

(७. ३. १११) ९—ङनिङमोश्च (६. १. ११०)

साधु नुट्^१ आम् । साधु नाम् । साधूनाम्^२ । साधु हि । साय^३
श्री । सायौ^४ । साधु सुप् । साधु सु । साधु पु । साधुपु । साधु सु ।
सायो^५ स् । सायौ^६ ॥

यच् स्त्रिप् । वाच् । वाक्^७ । वाग्^८ । वाक्^९ । वाच् श्री । वाची
गज्ज अम् प्रच्छ् स्त्रिप् । शज्ज प्राच्छ् । शज्ज प्राश्^{१०} शज्ज प्राप्^{११} ।
शज्ज प्राह्^{१२} । गज्ज प्राह् सु । शज्ज प्राह् न् । शज्ज प्राह् । शज्ज प्राह्^{१३} ।
शज्ज प्राग् यौ । शज्ज प्राशी । शज्ज प्राश्^{१४} व्याम् । शज्ज प्राप्^{१५} व्याम् ।
शज्ज प्राह् व्याम् ।

श्री । श्री श्री । श्र् ड्यश्^{१६} श्री । श्रिप् श्री । श्रियो । श्रिये,
श्रियै । श्री डे । श्रिय् ण । श्रिय् आद^{१७} ण । श्रिया ण । श्रियै^{१८} ।
श्रियाम् । श्री आम् । श्री नुट्^{१९} आम् । श्रियि, श्री हि । श्रियाम् । श्री
हि । श्री आम् । श्रिप् आम् । श्रियाम् ॥

भूतेऽपि दृश्यन्ते ३।३।०

प० त्रि०—भूते ७।१ अपि अ० । दृश्यन्ते क्रिया० ।

अर्थ—[उणादय] उणादयो भूते कालेऽपि दृश्यन्ते । (उण् आदि प्रत्यय
भूतकाल में भी दृश्य जात हैं)

उदा०—वर्म । चर्म । भस्म । सर्गधातुभ्यो मनिन् (उणा० ४।१४५)

सि०—वृत्तम् इदं वर्त्म । वृत्तु मनिन् । वृत् मन् । वर्त् मन् । वर्त्
मन् । वर्त्मन् सु । वर्त्म^{२०} । चर्म । चरित तदिनि चर्म । चर गतिमह-
णयो । चर् मनिन् । चर्मन् । चर्म । भस्म । भसित दीपितम् इति । भस
भक्षणादीत्यो^{२१} । भस्मन् । भस्म ।

१—ह्रस्वनद्याधो नुट (७ १ ५४) प्राचन्ती टक्षितौ (१ १. ४६)

२—नामि (६ ४ ३) ३—प्रच वे (७ ३ ११६) ४—वृद्धिरेषि

(६ १ ८८) ५—ह्रस्वस्य गुण (७ ३ १८८) ६—गृहह्रस्वात्मबुद्धे

(६ १ ६७) ७—चो कु (८ २) ८—कृता जशोऽन्त (८ २ ३१)

९—वावमान (८ ४ ५६) १०—च्यवो गृह्णुनासिक् च (६ ४ १६) ११—

वदयप्रत्यय (८, ० ३६) १२—म्वादिजमरनामस्थान (१. ४ १७) १३—

विश्वन् धातुत्व न जहाति अत एव धातुत्वात् अचि धनुषानुध्रुवा व्याख्येय-
वहो (६ ४. ७०) १४—इति ह्रस्वश्च (१ ४ ६) प्राण्यया (७ ३ ११२)

१५—प्राटश्च (६ १ ६०) १६—नामि (१ ४ ५) १७—ननात् (८ २ ७)

१ प्रादादृताचार्या—भमषाना भस्मन इत्यर्थो नवीन भक्षण इति तु प्राची-

भविष्यति गम्यादयः ३।३।३

प० वि०—भविष्यति ७।१ गम्यादयः १।३ स०—गमी आदि-
र्येपान्ते गम्यादयः ।

अर्थ—गम्यादयः शब्दाः भविष्यति काले साधवो भवन्ति ।

(गमी इत्यादि शब्द भविष्यन् काल में साधु हाते हैं)

उदा०—गमी । आगामी । भावी ।

सि०—गमेरिनि. (उणा ४।६) गमिष्यतीति गमी पथिको या । गम्
इन् । गमिन् । गगिन् सु । गमीन् स् । गमी । आडि णित् (उणा०
४।७) आ गमिष्यतीति आगामी ॥ भुवश्च (उणा० ४।८) भविष्यतीति
भावी ।

यावत्पुरानिपातयोर्लट् ३।३।४

प० वि०—यावत्पुरानिपातयोः ७।२ लट् १।१ स०—यावच्च पुरा
च इति यावत्पुरी । यावत्पुरी च अमू निपातौ इति यावत्पुरानिपातौ ।
तयोः ।

अर्थ—[भविष्यति] यावत्पुराशब्दयोर्निपातयोरुपपदयोः भविष्यति
काले धातोर्लट् प्रत्ययो भवति । (यावत् ओर पुरा इन दोनों निपातों के उपपद
रहने पर भविष्यत् काल में धातु से लट् प्रत्यय होता है)

उदा०—यावद् भुङ्क्ते । पुरा भुङ्क्ते ।

सि०—भुङ्क्ते । भुज् । भुज् लट् । भुज् ल् । भुज् त । भुज् ते ।
भु शनम् ज् ते । भुनज् ते । भुञ्ज् ते । भुन्ज् ते । भुङ्क्ते ॥

विभाषा कदाकह्यो ३।३।५

प० वि०—विभाषा १।१ कदाकह्यो ७।२ स०—कदाश्च कर्हिश्च
इति कदाकह्यौ तयोः ।

अर्थ—[भविष्यति] कदा कर्हि इत्येनयोरुपपदयोर्विभाषा भविष्यति

नोऽर्थः (दया० ऋ० भाष्य १।२८।७) सायणोऽयमर्थवर्गभाष्ये 'मस भक्षणदीप्तयोः'
इत्येवाह । यत्र 'वपसता-मुञ्जाने' इति निष्कृतम् (६।३६) अनुसन्धेयम् ।

१—शनसोरल्लोपः (६. ४ १११) २—चो. कु. (८. २. ३०) खरिच
(८. ४. ५५) ३—नश्चापदान्तस्य झलि (८. ३ २४) ४—अनुस्वारस्य ययि
परसवर्णः (८. ४. ५८) खरिच (८. ४. ५४)

काले गानोर्लट् प्रत्ययो भवति । (कदा घोर कहि इत गदा क उपपद रहन पर भविष्यन् काल में धातु म विवक्ष्य न नट् प्रत्यय हाना ह)

उदा०—कदा मुहस्ते भोक्षते भोक्ता वा । र्हि मुहस्ते भोक्षते भोक्ता वा ।

तुमुन्प्बुलां क्रियाया क्रियार्थायाम् ३।३।१०

प० वि०—तुमुन्प्बुलां १।२ क्रियाया ७।१ क्रियार्थायाम् ७।१ म०—
तुमुन् च एतुल च इति तुमुन्-एतुली । क्रियायै इदमिति क्रियार्ता तन्म्याम् ।

अर्थ—[भविष्यति] क्रियाया क्रियायामुपपदे भविष्यति काले धातोस्तुमुन्-एतुली प्रत्ययो भवति । (क्रिया क लिय क्रिया क उपपद रहन पर भविष्यन् काल में धातु म तुमुन् घोर प्लुन प्रत्यय हाना है)

उदा०—भास्तु नजति । भोजनं नजति ।

मि०—भोजतुम् । भुज् तुमुन् । भोज् तुम् । भोक् तुम् । भोजतुम्
सु । भास्तुन ॥ भातस् । भुज् एतुन । भुज् तु । भुज् अस् । भोजस् ॥

भाववचनाश्च ३।३।११

प० वि०—भाववचना १।२ च अ० । म०—उच्यन्ते येन ते
वचनाः, भावस्य वचना (प० नत्पु०)

अर्थ—[क्रियाया क्रियार्थायाम् भविष्यति] क्रियायां क्रियायामु-
पपदे भविष्यति काले गानोर्भाववचना प्रत्ययो भवन्ति । (क्रिया क लिय
क्रिया के उपपद रहन पर भविष्यन् काल म धातु म नाव अथ में विप्ति
प्रत्यय हान ह)

उदा०—पाकाय नजति । भूतये नजति । पुष्टये नजति ।

सि०—पासाय । पक्ष्मनाति नजति इति पासाय नजति । हुतयप्
पाके । पच् पञ् । पच् अ । पाच् अ । पास् अ । पाक । पास् डे । पास्
य । पासाय ॥ भूतये । भविष्यतीति नजतीति भूतये नजति । भू स्तिन् ।
भू ति । भूति २ । भूते ण । भूतये ॥ पुष्टये । पुष् स्तिन् । पुष् ति । पुष्
टि । पुष्टि । पुष्टि डे । पुष्टये ॥

लृट् शेषे च ३।३।१२

प० वि०—लृट् १।१ शेषे ७।१ च अ० ॥

अर्थ—[भविष्यति क्रियाया क्रियार्थायाम्] शब्दे भविष्यति काले

१—तृन्मज्जन् (१ १ २६) घञ्पादाप्युता (२ ४. ८०)

क्रियार्थायां क्रियायाञ्चोपपदे धातोर्लृट् प्रत्ययो भवति । (शुद्ध भविष्यत् काल में और जहा क्रिया के लिये क्रिया उपपद हो, वहा धातु से लृट् प्रत्यय होता है)

उदा०—पठिष्यामि । करिष्यामि । पठिष्यामीति व्रजति । करिष्यामीति व्रजति ।

सि०—पठिष्यामि । पठ् लृट् । पठ् लृ । पठ् तिप् । पठ् स्य ति । पठ् इट् स्य ति । पठि स्य ति । पठिष्यति । करिष्यति । इट् । कृ लृट् । कृ तिप् । कृ स्य तिप् । कृ इट् स्य ति । कर् इट् स्य ति । करिष्यति ॥

लृट् सद्व्वा ३।३।१४

प० वि०—लृट्. ६।१ सन् १।१ वा अ० ।

अर्थ—[भविष्यति, क्रियायां क्रियार्थायाम्] शुद्धे भविष्यति काले क्रियार्थायां क्रियायाञ्चोपपदे धातोर्लृट् प्रत्ययः तस्यस्थाने सत् (शतृशानच्) प्रत्ययो भवतः॥ ×सद्विधिर्नित्यमप्रथमासमानाधिकरणे × अन्त्यम्विकल्पेन वाक्

(शुद्ध भविष्यत् काल में और क्रिया के लिये क्रिया के उपपद रहने पर धातु से जो विहित लृट् प्रत्यय उसका स्थान में विकल्प से मत् अर्थात् मत् और शानच् प्रत्यय होते हैं । इस सत् प्रत्यय का विधान हम प्रकार समझना चाहिये—प्रथमान्त के साथ जब लृट् की समान अधिकरणता न हो तब तो नित्य करके लृट् के स्थान में सत् प्रत्यय होते हैं और जब प्रथमान्त के साथ समान अधिकरणता हो तब अनित्य या विलम्ब सत् प्रत्यय हा जान है)

उदा०—अप्रथमासमानाधिकरणे—ब्राह्मणस्य करिष्यन् । ब्राह्मणस्य करिष्यमाणः । ब्राह्मणस्य पश्यन् । ब्राह्मणस्य पश्यमाणः । प्रथमासमानाधिकरणे—ब्राह्मणः पश्यति पश्यते वा । ब्राह्मणः पश्यन् पश्यमाणो वा ।

अनद्यतने लृट् ३।३।१५

प० वि०—अनद्यतने ७।१ लृट् १।१ स०—न विद्यते अद्यतनम् तत् अनद्यतनम् तस्मिन् ।

अर्थ—[भविष्यति] अनद्यतने भविष्यत्काले धातोर्लृट् प्रत्ययो भवति । (जिसमें आज का सबन्ध न हो उस भविष्यत् काल में धातु से लृट् प्रत्यय होते हैं)

उदा०—इवो भविता । श्वः गन्ता । श्व पृथिता ।

पदरुजविशस्पृशो घञ् ३।३।१६

प० वि०—पदरुजविशस्पृश ५।१ घञ् १।१ स०—पदश्च रुजश्च
विशश्च स्पृष्ट् चेति पदरुजविशस्पृष्ट् तस्मात् ।

अर्थ—पद रुज विश स्पृश् इत्येतेभ्यो धातुभ्यो घञ् प्रत्ययो
भवति । (पद रुज् विद् और स्पृश् धातु स घञ् प्रत्यय होता है)

उदा०—पाद । रोग । वेश ×स्पृश उपताप इति वक्तव्यम् × स्पृश ।

सि०—पाद । पद्यतेऽमी पाद । पद गती । पद् घञ् । पद् अ ।
पाद् अ । पाद सु । पाद ॥ रोग । रुजति असी रोग । रुज् घञ् ।
रुज् अ । रोज् अ । रोग^१ अ । रोग । रोग सु । रोग ॥ वेश । निश-
त्यसौ विश । विश् घञ् । विश् अ । वेश् अ । वेश । वेश सु । वेश ।
स्पृश् घञ् । स्पृश ॥

भावे ३।३।१८

प० वि०—भावे ७।१

अर्थ—[घञ्] भावे धात्वर्थे धाच्ये धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति ।
भावे इत्यधिक्रियते । (केवल धात्वर्थ अर्थात् धातु का अर्थ कहा जाय वहा
धातु स घञ् प्रत्यय होता है) यहा स भागे भाव का अधिकार है ।

उदा०—पाक । पाकी । पाका । राग । त्याग । पक्ति । पचनम् ॥

सि०—पच् घञ् । पाक^१ ॥ रज्ज् घञ् । रज्ज् अ । राज् अ ।
राज् अ । राग ॥ पक्ति । पच् क्तिन् । पक्^२ ति । पक्ति सु । पक्ति ॥
पचनम् । पच् ल्युट् । पच् अन । पचन सु । पचन अम् । पचनम् ॥

अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम् ३।३।१९

प० वि०—अकर्त्तरि ७।१ च अ० । कारके ७।१ संज्ञायाम् ७।१ स०—
न कर्ता इति अकर्त्ता तस्मिन् अकर्त्तरि ।

अर्थ—[घञ्] कर्त्तृभिन्नकारके संज्ञायां गम्यमानाया धातोर्घञ्
प्रत्ययो भवति । अधिकारोऽयम् (कर्ता भिन्न कारक म संज्ञा जाना जाय तो
धातु से घञ् प्रत्यय होता है) भागे भाव क साथ इस सूत्र का भी अधिकार
जानना चाहिये ।

उदा०—प्रास । प्रसेय । आहार ।

सि०—प्रास । प्रात्यन्ति तमिति । प्र अस् घञ् । प्र आस । प्रास

१—चजा कु घिण्यता (७ ३ ५२) २—चजि च भावरक्षणया (६
४ २७) ३—चो कु (८ २ ३०)

सु । प्रास. ॥ प्रसीव्यन्ति त प्रसेवः । प्रसिव् घञ । प्रसिव अ । प्रसेव
अ । प्रसेव सु । प्रसेवः ॥

एरच् ३।३।५६

प० वि०—एः ५।१ अच् १।१

अर्थ—[भावे, अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्] भावे कर्तृभिन्नकारके
संज्ञायां च इवर्णान्ताद्घातोश्च प्रत्ययो भवति ।

(भाव मे और कर्ताभिन्नकारक सज्ञा में इवर्णान्त धातु से एच् प्रत्यय
होता है) ।

उदा०—चयः । जयः । अयः चयः । ॐ निवासवाची चयशब्द
आद्युदात्त (द्र० ६ । १ । १६५) नाशार्थकस्त्वन्तोदात्तः ॐ ।

सि०—चय । चिञ् अच् । चि अ । वे अ । चय । चय सु ।
चयः । जि अच् । जयः । इ अच् । अयः । ति अच् । चयः ।

ऋदोरप् ३।३।५७

प० वि०—ऋदोः ५।१ अप् १।१ स०—ऋञ्च उश्च इति ऋदु
तस्माद् ऋदोः ।

अर्थ—[भावे अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्] भावे कर्तृभिन्नकारके
संज्ञायाच्च ऋकारान्तस्य उवर्णान्तस्य च धातोः परः अप् प्रत्ययो भवति ।

(भाव और कर्ताभिन्नकारक और सज्ञा में ऋकारान्त और उवर्णान्त धातु
से अप् प्रत्यय होता है)

उदा०—करः । गरः । शरः । उवर्णान्तेभ्यः—यवः । लवः । पवः ।
दकारो मुखमुखार्थः ।

सि०—कृ अप् । कृ अ । कर सु । करः । गृ अप् । गरः ।
शृ अप् । शरः । यु अप् । यो अ । यवः । लृ अप् । लो अ । लवः । पू
अप् । पो अ । पवः ।

ड्वितः क्तिन् ३।३।८८

प० वि०—ड्वितः ५।१ क्तिन् १।१ स०—हु इद् यस्येति ड्वित
तस्मात् । ड्वितः ।

अर्थ—[भावे अकर्तरि च कारके] भावे कर्तृभिन्नकारके च ड्वितः
क्तिन् प्रत्ययो भवति । (नात्र में और कर्ताभिन्नकारक में हु इद् वाते धातु
से क्तिन् प्रत्यय होता है) ।

उदा०—पक्त्रिमम् । उप्त्रिमम् ।

सि०—पक्त्रिमम् । दुपच्प् । पच् क्त्रि । पच् त्रि । पक् त्रि । पक्त्रिमप् । पक्त्रिम सु । पक्त्रिम अम् । पक्त्रिमम् । उप्त्रिमम् । दुवप् । वप् क्त्रि । वप् त्रि । उ अ^२ प् त्रि । उप् त्रि । उप्त्रिमप् । उप्त्रिम । उप्त्रिम सु । उप्त्रिम सु । उप्त्रिम अम् । उप्त्रिमम् ।

टिवतोऽथुच् ३।३।८६

प० वि०—टिवतः ५।१ अथुच् १।१

स०—टु ट्ठ यस्येति टिवन् तस्मान् ।

अर्थ—[भावे अकर्तरि च कारके] भावे कर्तृभिन्ने कारके टिवतो घातोऽथुच् प्रत्ययो भवति । (भाव और कर्ताभिन्न कारक में टु इत् वाले धातु से अथुच् प्रत्यय होता है)

उदा०—वेपथुः । श्वयथुः ।

सि०—वेपथुः । दुवेष्ट । वेप् अथुच् । वेपथु सु । वेपथुः । दुओरिषि । रिषि अथुच् । श्वे अथु । श्वयथु सु । श्वयथुः ॥

यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् ३।३।९०

प० वि०—यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षः ५।१ नङ् । स०—यजश्च याचश्च यतश्च विच्छश्च प्रच्छश्च रट् च इति यजयाचयतविच्छप्रच्छरट् तस्मान् ।

अर्थ—[भावे अकर्तरि च कारके] भावे कर्तृभिन्ने कारके एभ्यो धातुभ्यो नङ् प्रत्ययो भवति । (भाव और कर्ताभिन्न कारक में यज याच यत विच्छ प्रच्छ और रक्ष धातु से नङ् प्रत्यय होता है ।

उदा०—यज्ञः । याच्या । यन्नः । विरनः । प्ररनः । रक्षः ।

सि०—यज्ञः । यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु । यज् नङ् । यज् न यज् ष^२ । यज्ञ सु । यज्ञः । याच्या । दुयाच् याच्यायाम् । याच् नङ् । याच् न । याच् ष^२ । याच्या । याच्या टाप्^३ । याच्या आ । याच्या सु । याच्या ।

यत्नः । यती प्रयत्ने । यन् नङ् । यन् न । यत्नः । विरनः । विच्छ गती । विच्छ नङ् । विच्छन् । विश्^४ न । विरन सु । विरनः । प्ररनः ।

१—नेर्मपुनित्यम् (४. ४. २०) २—वचिस्त्वपिमादीना किति (६. १. १५) । ३—स्तोः णुना णुः (६. ४. ४१) ४—अजायतष्टाप् (४. १. ४) ५—च्छ्वोः शूढनुनासिके च (६. ४. १६)

प्रच्छ ज्रीप्सायाम् । प्रच्छ् नङ् । प्रच्छ् न । प्रश् न । प्रश्न मु । प्रश्न ।
 ॐ प्रच्छेरसम्प्रसारणं ज्ञापकात् प्रश्ने चासन्नकाल इति ॐ । रक्ष्ण । रक्ष
 रक्षणे । रक्ष् नङ् । रक्ष् न । रक्ष् ण^१ । रक्ष्ण मु । रक्ष्ण ।

स्वपो नन् ३।३।६१

प० वि०—स्वप्ः ५।१ नन् १।१

अर्थ—[भावे अर्कत्तरि च कारके] स्वपेर्वातोर्नन् प्रत्ययो भवति ।
 (स्वप् धातु स नन् प्रत्यय होता है)

उदा०—स्वप्न ।

उपसर्गे घो कि ३।३।६२

प० वि०—उपसर्गे ७।१ घो ५।१ कि. १।१

अर्थ—[भावे अर्कत्तरि च कारके] उपसर्गे उपपदे घुसंज्ञकेभ्यो
 धातुभ्यः कि. प्रत्ययो भवति ।

(उपसर्ग के उपपद रहन पर घु सज्ञा वात धातु से कि प्रत्यय होता है)

उदा०—प्रदि । प्रधि । अन्तर्द्धिः ॥

सि०—प्रदि । प्र दा । प्र दा कि । प्र दा ङ । प्र द्^२ इ । प्रदि । प्रदि
 मु । प्रदि^३ । प्रधि । अन्तर्द्धिः । अन्तर् धिः । अन्तर् ध् ध्^४ इः ।
 अन्तर्द्धिः^५ ।

कर्मण्यधिकरणे च ३।३।६३

प० वि०—कर्मणि ७।१ अधिकरणे ७।१ च अ० ।

अर्थ—[घो] कर्मण्युपपदे अधिकरणे कारके घुसंज्ञकेभ्यो धातुभ्यः
 कि. प्रत्ययो भवति । (कर्म के उपपद रहने पर अधिकरण कारक में घु
 सज्ञक धातु से कि प्रत्यय होता है)

उदा०—जलधिः । उदधिः । वारिधिः । तोयधिः । पयोधिः । यशोधिः ।

सि०—जलधिः । जलं धीयतेऽस्मिन् इति । जल अम् धा कि । जल
 अम् धा इ । जल अम् ध् इ । जल अम् धि । जलधि मु । जलधिः ॥
 उदधिः । उदकानि धीयन्तेऽस्मिन्निति । उदक शस् धा कि । उदक धा
 इ । उदक ध् इ । उदक धि । उद^२ धि । उदधि मु । उदधिः ।

१—रपाभ्या नो णः समानपदे (८. ४ १) । २—आतो लोप इटि च
 (६. ४. ६४) ३—अचो रहाभ्या द्वे (८. ४. ४७) ४—कृता जश् कश्चि (८
 ४. ४३) ५—उदकस्योद सज्ञायाम् (६. ३.)

स्त्रिया वितन् ३।३।६८

प० वि०—न्त्रियाम् ७।१ कितन् १।१

अर्थ—[भावे अकर्तरि च कारके] स्त्रीलिङ्गे भावादी धातो. कितन् प्रत्ययो भवति । (स्त्रीलिङ्गं मे भावः शीघ्रं वर्तमानस्वरूपं मे धातु मे कितन् प्रत्यय होता है) ।

उदा०—चितिः । कृति । मतिः । × संपदादिभ्यः स्त्रिप् × सपन् । विपन् । प्रतिपन् । कितन्नपि दृश्यते । संपत्तिः । विपत्तिः ॥ × क्षिन्नाया दिभ्यश्च यक्तव्य. × आप्तिः । स्वप्तिः ।

उदा०—मति । मती । मतय । मतिम् । मती । मतीः । मत्या । मतिभ्याम् । मतिभिः । मत्यै, मतये । मतिभ्याम् । मतिभ्यः । मत्याः मतेः । मतिभ्याम् । मतिभ्यः । मया. मतेः । मत्योः । मतीनाम् । मत्याम् । मती । मत्योः । मतिषु । हे मते । हे मती । हे मतयः ।

संपद् । सपन् । संपदौ । संपदः । संपदम् । सपदौ । संपदः । सपदा । सपदभ्याम् । संपद्भिः । सपदे । संपदभ्याम् । संपद्भ्यः । संपदः । संपदभ्याम् । संपद्भ्यः । संपदः । संपदोः । सपदाम् । संपदि । संपदोः । संपत्तु ।

सि०—चितिः । चिष् । चि कितन् । चि ति । चिनिः । मतिः । मन् कितन् । मन् ति । मति^१ सु । मतिः ।

मति सु । मतिः । मति श्री । मती^२ । मति जम् । मते^३ जस् । मतय् अस् । मतयः । मति अम् । मतिम् । मति श्री । मती^२ । मत्या । मतिभ्याम् । मतिभिः । मति डे । मति आट्^४ ए । मति आ ए । मति ऐ । मत्यै । मति डे । मते^३ ए । मतये । मति डसि । मति आट् डसि । मति आ अस् । मति आः । मत्याः । मति डमि । मति अस् । मतेः । मति ओस् । मत्योः । मति नुट्^५ आम् । मति नाम् । मतीनाम् ।

१—अनुदात्तोपदेशवर्जितउज्ज्वलादीनाम्० (६. ४. २७) २—प्रथमयो पूर्वसवर्णः (६. १. ६८) ३—अति च (७. ३. १०६) ४—ङिति ह्रस्वश्च (१. ४. ६) धावन्धाः (७. ३. ११२) ५—क्षेपो घ्यसि (१. ४. ७) घेडिति (७. ३. १११) ६—ह्रस्वनघाणे नुट् (७. १. ५४)

मति ङि । मति आत् आम् । मत्याम् । मति ङि । मत^१ औ । मतौ ।
मति मुप् । मतिप् । हे मति मु । मते स् । मते । मती । मतय ।

अ प्रत्ययात् ३।३।१०२

प० वि०—अ अतिभक्तिर्को निर्देश । प्रत्ययान् ५।१

अर्थ—[भावे अर्कत्तरि च कारके स्त्रियाम्] प्रत्ययान्ताद् धातो.
अ प्रत्ययो भवति स्त्रीलिङ्गे ।

(प्रत्यय है अ त में जिसके ऐसे धातु में अ प्रत्यय होता है स्त्रीलिङ्ग में)

उदा०—चिकीर्षा । पुत्रीया । पुत्रकाम्या । लोलया । कण्ठ्या ।

सि०—सर्व सनादिप्रकरणे द्रष्टव्यम्

गुरोश्च हल ३।३।१०३

प० वि०—गुरो ५।१ च अ० । हल ५।१

अर्थ—[अर्कत्तरि च कारके] हलन्तो यो धातुर्गुरुमान तस्मादकार
प्रत्ययो भवति स्त्रियाम् । (हल त जो धातु गुरु अक्षर वाला उससे अप्रत्यय
होता है स्त्रीलिङ्ग में)

उदा०—कुरण्डा । हुण्डा । ईहा । ऊहा ॥

सि०—कुरण्डा । कुडि । कुड् । कु नुम्^२ ड् । कुण्ड् । कु ड् । कुरण्ड् अ ।
कुरण्ड टाप्^३ । कुरण्डा मु । कुरण्डा ।

पिद्भिदादिभ्योऽङ् ३।३।१०४

प० वि०—पिद्भिदादिभ्य ५।३ प्रङ् ५।१ स०—भिद् आदिर्घेपान्ते
भिदादय । प् इत् यस्य इति पित् । पिच्च भिदादयश्च इति पिद्भिदा-
दय तेभ्य ।

अर्थ—[स्त्रियाम्, भावे अर्कत्तरि च कारके] पकारेद्भ्यो भिदा-
दिभ्यश्च धातुभ्य स्त्रियामङ् प्रत्ययो भवति । (पकार इत् वाले तथा भिद्
आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में अङ् प्रत्यय होता है)

उदा०—जरा । त्रपा । भिदादिभ्य—भिदा । छिदा । विदा ।

सि०—जप् वयोहानौ । ज् अङ् । जर् अ । जर टाप् । जरा ।
त्रप् लज्जायाम् । त्रप् अङ् । त्रप् टाप् । त्रपा ।

१—अच्च घे. (७. ३. ३६) २—इदितो नुम्धातो (७. १. १८)
निदचोऽज्यात्पर. (१. १. ४७) ३—अजाद्यतष्टाप् (४. १. ४)

मिडा । मिद् अङ् । मिद् अ । मिद् टाप् । मिडा सु । मिडा म् ।
मिडा । द्विडा ॥

चितिपूजिकथिकुम्बिचर्चट्च ३।६।१०५

प० त्रि०—चितिपूजिकथिकुम्बिचर्चः ५।१ च अ० ॥ स०—चितिश्च
पूजिश्च कथिश्च कुम्बिश्च चर्क् च टति चितिपूजिकथिकुम्बिचर्क्
तस्मान् ।

अर्थ—[अङ्] चिति स्मृत्यां, पूज पूजायां, कथ वाक्यप्रत्यये, कुत्रि
आच्छादने, चर्च अप्ययने इत्येतेभ्यां धातुभ्यो स्त्रियामङ् प्रत्ययो
भवति । (चिति, पूज्, कथ, कुम्ब चर्च, टन धातुभ्यो मे स्त्रीलिङ्ग मे षङ् प्रत्यय
होते है)

उदा०—चिन्ता । पूजा । कथा । कुम्बा । चर्चा ।

आतदचोपसर्गो ३।३।१०६

प० वि०—आतः ५।१ च अ० । उपसर्गो ७।१

अर्थ—[अङ्] उपसर्गे उपपदे आकारान्तभ्यो धातुभ्यो स्त्रियामङ्
प्रत्ययो भवति । (उपसर्ग के उपपद रहने पर आकारान्त धातुभ्यो मे स्त्रीलिङ्ग
मे षङ् प्रत्यय होता है)

उदा०—उदा । उदा । प्रदा । उपदा । Xअन्तरापसर्गवद्भूतिःX
अदा । अन्तदो ।

सि०—प्र दा । प्र दा अङ् । प्रद् अ । प्रद् टाप् । प्रदा सु । प्रदा ॥

एयामग्रन्थो युच् ३।३।१०७

प० वि०—एयामग्रन्थः ५।१ युच् १।१ स०—गिश्च आसर्च
अन् च इति एयासअन् तस्मान्

अर्थ—[म्प्रियाम्] एयान्तेभ्यो धातुभ्य आम् अन्थ् इत्येताभ्याम्ब
म्प्रियाम् प्रत्ययो भवति । (गिच् है अन्त मे त्रिने ऐसे धातुभ्यो मे तथा
घाम् घोर धन्य धातुभ्यो मे स्त्रीलिङ्ग मे युच् प्रत्यय होता है)

उदा०—गि—कारणा । हारणा । आमना । अन्यना ।

सि०—कारणा । कृ णिच् । कारि युच् । कारि यु । कारि अन ।
कार अन । कारण टाप् । कारणा सु । कारणा ॥

१—पाठो साध इति च (६. ४. १४) २—युक्तेनागो (७. १. १) ३—
खेरनिटि (६. ४. ५१)

रोगाख्यायां ण्वुत्वहुलम् ३।३।१०८

प० वि०—रोगाख्यायाम् ७।१ एबुल् १।१ बहुलम् १।१ स०—रोगस्य आख्या रोगाख्या तस्याम् ।

अर्थ—[भावे अकर्त्तरि च कारके इति सर्वत्र अनुवर्त्तते, स्त्रियाम्] रोगस्य आख्यायां गम्यमानायां धातोर्वहुलं एबुल् प्रत्ययो भवति । (रोग विशेष की सजा प्रतीत हो तो धातु से स्त्रीलिङ्ग, भाव तथा कर्तृभिन्न कारक में बहुल करने ण्वुल् प्रत्यय होता है)

उदा०—प्रच्छदिदेका । प्रवाहिका । विचर्चिका । × इक्षितपौ धातु-निर्देशो इति वक्तव्यम् × भिदिः । छिदिः । पचतिः । पठतिः । × वर्णा-त्कारः × अकारः । इकारः । पकारः । × रादिफः × रेफः ।

सि०—प्रच्छर्दिका । छर्दं वमने चुरादिः । प्रवाहिका । वह प्रापणे । प्रचर्चिका । चर्च अभ्ययने चुरादिः ॥ प्र छर्द एबुल् । छर्दं बु । छर्दं अक । छर्दक । प्र छर्दक । प्र तुक् छर्दक । प्रच्छर्दक । प्रच्छर्दक । प्रच्छर्दक । प्रच्छर्दक टाप् । प्रच्छर्दिका^१ सु । प्रच्छर्दिका ।

कृत्यल्युटो बहुलम् ३।३।११३

प० वि०—कृत्यल्युटः १।३ बहुलम् १।१ स०—कृत्याश्च लुट् च इति कृत्यलुटः ।

अर्थ—[भावेऽकर्त्तरि च कारक इति निवृत्तम्] कृत्यसङ्गताः प्रत्ययाः ल्युट् च बहुलमर्थेषु भवन्ति । कृत्यत्र विहितास्ततोऽन्यत्रापि भवन्ति । भावकर्मणोः कृत्याः विहिताः कारकान्तरेऽपि भवन्ति । कृत्यसङ्गक प्रत्यय और ल्युट् बहुल करके होते हैं। जहा विधान है उससे अन्यत्र भी हो जाते हैं । कृत्य प्रत्यय भाव और कर्म में होते हैं लेकिन अन्य कारको में भी हो जाते हैं ।

उदा०—स्नानीय चूर्णम् । दानीयो ब्राह्मणः । अपसेचनम् । अवस्त्रा-चणम् । राजभोजनाः शालयः । राजाच्छादनानि वासांसि । प्रस्कन्दनम् । प्रपतनम् ॥

सि०—स्नाति अनेनेति स्नानीयं चूर्णम् । करणे कृत्यः ॥ दानीयः । दीयते तस्मै इति सम्प्रदाने । अपसेचनम् । अपस्तिच्छते तदिति कर्मणि ल्युट् । अवस्त्राचणम् । अवस्त्राच्यते तदिति सू गतावित्यस्म त् एयन्तात् कर्मणि ल्युट् । मुज्यन्ते इति भोजनाः, आच्छाद्यन्ते इति आच्छादनानि ।

कर्मण्येव ल्युट् । राज्ञो भोजनाः राज्ञ आच्छादनानि इति पष्ठीसमासः ।
प्रस्कन्दनम् । प्रपतनम् । प्रस्कन्दति प्रपतति अस्मादिति अपादाने ल्युट् ॥

नपुंसके भावे क्तः ३।३।११४

प० वि०—नपुंसके ७।१ भावे ७।१ क्तः १।१

अर्थ—नपुंसकलिङ्गे भावे धातोः क्तः प्रत्ययो भवति । (नपुंसक
लिङ्ग में भाव में धातु में क्त प्रत्यय होता है)

उदा०—हसितम् । महितम् । जल्पितम् । सुप्तम् । शयितम् ।

सि०—सुप्तम् । निष्यप् । स्वप् क्त । स्वप् त । स् उ^१ अ प् त ।
सुप् त । सुप्त सु । सुप्त अम् । सुप्तम् । शीङ् । शी क्त । शी त । शी
इत् त । शी^२ इत । शय् इन । शयिन सु । शयित अम् । शयिनम् ॥

ल्युट् च ३।३।११५

प० वि०—ल्युट् १।१ च अ० ॥

अर्थ—[नपुंसके भावे] नपुंसके भावे धातोल्युट् प्रत्ययो भवति ।
(नपुंसकलिङ्ग में भाव में धातु में ल्युट् प्रत्यय होता है)

उदा०—हसनं छात्रस्य । शोभनम् ॥

कारणाधिकरणयोश्च ३।३।११७

प० वि०—कारणाधिकरणयोः ७।२। च अ० । सि०—करणञ्च
अधिकरणञ्च इति कारणाधिकरणे तयोः ।

अर्थ—[ल्युट्] धातोः करणे अधिकरणे च कारके ल्युट् प्रत्ययो
भवति । (धातु से करण और अधिकरण कारक में ल्युट् प्रत्यय होता है)

उदा०—इध्मप्रग्रचनः । पलाशशातनः । अधिकरणे—गोमोहनी ।
सक्तुधानी ॥

सि०—इध्मप्रग्रचनः । ओग्रञ्च छेदेन । इध्मानां प्रग्रचन इति
पष्ठीसमासः । पलाशशातनः । शट्छ शातने । शट्छ णिच् । शट् ३ ।
शट् ३ । शान्^३ इ । शान् ३ ल्युट् । शान् ३ अन । शातन सु ।
शातनः ॥ पलाशस्य शाननः । पलाशशातनः ॥

१—वज्रिभयवज्रादीनां किति (६. १. १५) २—निष्ठा लोटश्चिदिभि-
दिदिदिपूप. (१. २. १९) इति मेनिष्ठा रिप् षड् एव, सावंपातुसां.पातुनयोः
(७. ३. ८४) इति गुणः । उदरेगञो तः (७. ३. ४२)

गावो दुहन्त अस्यामिति गोदोहनी । गो जस् दुह् ल्युट् । गो
जस् दुह् अन । गोदोहन डीप । गोदोहन् ई । गोदोहनी सु ।
गोदोहनी ॥

पु सि सज्ञाया घ प्रायेण ३।३।११८

प० वि०—पु सि ७।१ सज्ञायाम् ७।१ घ १।१ प्रायेण ३।१

अर्थ—[करणाधिकरणयो] करणे अधिकरणे च कारके धातो
प्रायेण घ प्रत्ययो भवति पु सि सज्ञाया गम्यमानायाम् । (करण और
अधिकरण कारक म धातु स प्राय करके घ प्रत्यय होता है पु स्तिङ्ग में सज्ञा
गम्यमान होन पर)

उदा०—दन्तच्छद । उरच्छद । अधिकरणे—आकर । आलय ।

सि०—दन्ताश्छाद्यन्त अनेनेति दन्तच्छद । छद अपवारणे । छद्
णिच् । छादि घ । छाद् अ । छद् अ । छद । छन ।

एत्य तस्मिन् कुर्वन्ति इत्याकर ॥

अवेतृस्नोर्घञ् ३।३।१२०

प० वि०—अने ७।१ तृस्त्रो ६।२ घञ् १।१ स०—तृश्च स्तृश्च इति
तृस्त्रो तयो ।

अर्थ—[करणाधिकरणयो पु सि सज्ञाया प्रायेण] अव उपपदे तरते-
स्तृणातेश्च धातो करणेऽधिकरणे च कारके सज्ञायां गम्यमानाया प्रायेण
घञ् प्रत्ययो भवति । (अव के उपपद रहन पर तृ और स्त धातु से करण
और अधिकरण कारक में सज्ञा के गम्यमान होन पर प्राय घर्ज प्रत्यय होता है)

उदा०—अवतार । अवस्तार । प्रायग्रहणादवतर, अवस्तर
इत्यपि भवति ।

सि०—अवत घञ् । अवतार् अ । अवतार सु । अवतार ॥ अवतृ
अप् । अवतर ॥

हलश्च ३।३।१२१

प० वि०—हल ५।१ च अ० ।

अर्थ—[करणाधिकरणयो, पु सि सज्ञाया प्रायेण] हलन्ताद् धातो
करणे अधिकरणे च कारके सज्ञायां गम्यमानायां प्रायेण घञ् प्रत्ययो

मयति पु सि । (हलन्त धातु स करण और अधिकरण वाचक में मन्त्र गम्यमान होने पर प्रायः पुलिङ्ग में घञ् प्रत्यय होता है)

उदा०—लेख । जेद । माग । वेप । जन् । असमार्गः ।

इपद्दु मुपु कृच्छाकृच्छार्थेषु खल् ३।३।१०६

प० वि०—इपद्दु मुपु ७३ कृच्छाकृच्छार्थेषु ७३ खल् १।१ स०—
इपच्च दुरच मुञ्च दान इपद्दुस्य तेपु । कृच्छच्च अकृच्छच्च इति
कृच्छाकृच्छ । कृच्छाकृच्छं अर्थो यपामिनि कृच्छाकृच्छार्था नपु ।

अर्थ—इपत् दुम् मु इत्येतेषूपपदेषु कृच्छाकृच्छार्थेषु धाता खल् प्रत्ययो भवति । (इपत् दुम् मु इनक उपपद रहन पर कृच्छ घोर अकृच्छ मय में धातु मे घञ् प्रत्यय होता है)

उदा०—कृच्छम् दुरम् । अकृच्छम् सुखम् इति । दुःखद कृच्छार्थं वर्तते । इपत्सुराग्नी अकृच्छार्थं वर्तते । इपत्करो भवता खट् । अकृच्छेण यत्नेन क्रियते भवता कट इत्यर्थः । इपद्गमा ग्रामा भवता । दुष्पटा विद्या भवता । दुष्कर पाका भवता । सुकर पाका भवता । सुपठा निगा भवता ॥ सर्वे नष्टमेव ॥

कर्तृकर्मणाञ्च भूङ्गो ३।३।१०७

प० वि०—कर्तृकर्मणो ७३ च अ० । भूङ्गो ६३ म०—कर्ता च कर्म चेति कर्तृकर्मणी तयो ॥ भूञ्च कृञ्चेति भूङ्गी तयो ॥

अर्थ—[इपद्दु मुपु कृच्छाकृच्छार्थेषु खल्] भवते । परात्तेष्व धातार्थग्रामस्य कर्त्तरि कर्मणि चोपपदे चरारादापदादिषु च खल् प्रत्ययो भवति । (कर्ता घोर कर्म उपपद हा, कृच्छ घोर अकृच्छा म में बनमान इपद्दु मु पूव हा ता भू घोर कृ धातु म यन् प्रत्यय होता है)

उदा०—X खल् कर्तृकर्मणोऽप्यर्थयो X अनाद्यन भवता इपदाद्व्येन शस्यं भवितुः—इपदाद्व्यभव भवता । दुराद्व्यभव भवता । ग्राद्व्यभव भवता । अनाद्य इपदाद्व्य क्रियते इति इपदाद्व्यकरो देवदत्त । दुराद्व्यकरो देवदत्त । म्याद्व्यकरो देवदत्त ।

सि०—इपद् मु भू ग्यल् । इपदाद्व्य मु भव् अ । इपद् आद्व्य मय । इपदाद्व्य नुम् भय । इपदाद्व्यमय । इपदाद्व्यमय मु । इपदाद्व्यमयम् ।

आतो युच् ३।३।१२८

प० वि०—आत् ५१ युच् १।१

अर्थ—[ईषद्दु सुपु कृच्छाकृच्छार्थेषु] ईषद्दु सुपूपपटेप कृच्छाकृच्छार्थेषु आकारान्तेभ्यो धातुभ्यो युच् प्रत्ययो भवति । (ईषद् दु सु के उपपद रहन पर कृच्छ और अकृच्छ अर्थ में आकारान्त धातुओं से युच् प्रत्यय होता है)

उदा०—ईपत्पान सोमो भवता । दुप्पान सोमो भवता । सुपान सोमो भवता । ईषद्दानो गौर्भवता । दुर्दानो गौर्भवता । सुदानो गौर्भवता ॥

लकाराद्यनिरायप्रकरणम्

वर्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद् वा ३।३।१३१

प० वि०—वर्त्तमानसामीप्ये ७।१ वर्त्तमानवत् अ० । वा अ० । स०—समीपस्य भाव सामीप्यम् । वर्त्तमानस्य सामीप्यम्, वर्त्तमानसामीप्यम् । वर्त्तमाने इव वर्त्तमानयन् 'तत्र तस्ये' इति वतिप्रत्ययः ।

अर्थ—वर्त्तमानसमीपे भूते भविष्यति च वर्त्तमानाद् धातोर्वर्त्तमानवत् प्रत्यया वा भवन्ति ।

(वर्त्तमान के समीप में भूत और भविष्यत् में वर्त्तमान धातु से वर्त्तमान के समान प्रत्यय विकल्प से होते हैं)

ॐ अत्रेद् बोध्यम्—वर्त्तमानाधिकारो 'वर्त्तमाने लट् इत्यारभ्य उणादयो बहुलम्' इति पर्यन्त—तत्र याभ्य प्रकृतिभ्यो येन विशेषणेन ये प्रत्यया विहितास्ताभ्य प्रकृतिभ्यस्तेनैव विशेषणेन ते प्रत्यया वर्त्तमानसामीप्ये भूते भविष्यति च काले विकल्पेन भवन्ति इति अनेन सूत्रेण विधीयते, पक्षे यथाविहिता ॐ

(वर्त्तमान लट से उणादयो बहुलम्' तक वर्त्तमान का अधिकार है । उसमें जिन धातुओं से जिस विशेषण के साथ जो प्रत्यय कहा है वह उन ही विशेषण युक्त प्रकृतियों से वर्त्तमानकाल के समीप जो भूत और भविष्यत् काल हैं उसमें वर्त्तमान काल की भांति विकल्पकरके प्रत्यय होते हैं । पक्ष में जैसा विधान किया गया है वे भी होते हैं)

उदा०—देवदत्त कदाऽप्याही ? एष पचामि । एष पचन् । एष पचमान । देवदत्त कदाऽलङ्कृतम् ? एषोऽलङ्करोमि । एषोऽलङ्कुर्वन् । देवदत्त कदा पक्ष्यसि ? एष पचामि ।

लिङ् निमित्ते लृट् क्रियातिपत्तौ ३।३।१३६

प० वि०—लिङ् निमित्ते ७।१ लृट् १।१ क्रियातिपत्तौ ७।१ स०—

लिङो निमित्तमिति लिङ्निमित्तं तस्मिन् । क्रियायाः अतिपत्तिरनिष्पन्नता
इति क्रियातिपत्तिः तस्याम् ।

अर्थ—[भविष्यति] लिङ्निमित्ते भविष्यति काले क्रियायाः अति-
पत्तिं सत्यां धातोर्लृट् प्रत्यया भवति । किमिदं लिङ्निमित्तम् लिङो नि-
मित्तम् इति लिङ्निमित्तम् तच्च लिङ् । हेतुहेतुमद्भावादयः ॥

(लिङ् के निमित्त हान पर क्रिया की अतिपत्ति अर्थात् असिद्धि गम्यमान
हो तो धातु से लृट् प्रत्यय होता है भविष्यत् काल में) लिङ्निमित्त शब्द का अर्थ
है लिङ् का कारण । कारण शब्द से यहां पर लिङ् का अर्थ लेना चाहिये ।
लिङ् का अर्थ हेतुहेतुमद् भाव है अर्थात् जिसमें कार्यकारण का सम्बन्ध हो ।

उदा०—दक्षिणेन चेद्याम्यन्नं शक्यं पर्यामविष्यत् । (यदि दक्षिण
के मार्ग से आते तो गाड़ी नहीं उलटती अर्थात् टूटती) यदि कमलकम् आह्वा-
स्यन्नं शक्यं पर्यामविष्यत् ॥ (यदि कमलक को बुला लेंगे तो गाड़ी न
उलटती) अभोदयत भवान् ओदनं दुग्धेन यदि मत्समीपे आसिष्यत ।
(भाप दूध से भात खाने यदि मेरे समीप बैठते तो)

हेतुहेतुमतोलिङ् ३।३।१५६

प० धि०—हेतुहेतुमतोः ७।२ लिङ् १।१ स०—हेतुरच हेतुमच्चेति
हेतुहेतुमतौ तयोः ।

अर्थ—[भविष्यति विभाषा] हेतुः कारणम्, हेतुमन् फलं कार्यं
यो । हेतुहेतुमतोऽर्थयोः धातोर्भविष्यत्काले विभाषा लिङ् प्रत्ययो भवति
पक्षे लृट् च । (हेतु और हेतुमान् अर्थ में धातु से भविष्यत् काल में दिक्त्व से
लिङ् प्रत्यय होता है और पक्ष में लृट् ।

उदा०—दक्षिणेन चेद्याम्यन्नं शक्यं पर्यामवेत् । यदि कमलकमा-
ह्वयेन्न शक्यं पर्यामवेत् । भविष्यति—दक्षिणेन चेद्यास्यति न शक्यं
पर्यामविष्यति । दक्षिणेन यानं हेतुः । अपर्यामवनम् हेतुमदिति ॥

सि०—आयान् । या लिङ् । या लृ । या तिप् । या ति । या गप्
ति । या ति । या यामुट्^१ ति । या यास्^२ न् । या याम् मुट्^३ न् । या
यान्^४ । पर्यामवेत् । भू लिङ् । भू लृ । भू निप् । भू शर्त् तिप् । भू अ
ति । भो अ ति । भव ति । भव यामुट् मुट् ति । भव या ति । भव इय् ति ।

१—यामुट् परस्मैपदेषु सप्तो द्विज (३. ४. १०३) २—मुट् द्विषा (३. ४.
१०७) ३—लिङ्: धातोर्न्यस्य (७. २. ७६)

भव इय् त् । भवेत् । भवे तस् । भवेताम् । भवेयुः । भवेय् ऋ । भवेय
जुस् । भवेयुः । भवेः । भवेतम् । भवेत् । भवेयम् । भवेय । भवेम ।

इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ ३।३।१५७

प० वि०—इच्छार्थेषु ७।३ लिङ्लोटौ १।२ स०—इच्छा अर्यां येषां
धातूनामिति इच्छार्थाः तेषु । लिङ् च लोट् चेति लिङ्लोटौ ।

अर्थ—इच्छार्थेषु धातुपूपपदेषु धातोरिङ्लोटौ प्रत्ययो भवतः ।

(इच्छार्थक धातुषो के उपपद रहने पर धातु से लिङ् और लोट् प्रत्यय
होते हैं)

उदा०—इच्छामि भुञ्जीत भवान् । इच्छामि भुङ्क्ताम् भवान् ।

× कामप्रवेदनं चेत् ×

कामस्य स्वेच्छायाः प्रवेदन प्रकाशन यदि स्यात्तदास्य सूत्रस्य
प्रवृत्तिः स्यात् , तथैवोदाहृतम् ॥ भुङ्क्ताम् । भुज् लोट् । भुज् त ।
भु रनम् ज् त । भुनज् त । भुनग् त । भुनक् त । भुनक्त् । भुक्त् । भुक्त् ।
भुङ्क्त् । भुङ्क्ते । भुङ्क्ताम् । भुञ्जीत । भुज् लिङ् । भुज् त । भु
रनम् ज् त । भुनज् सीयुट् त । भुनज् ईय् सुट् त । भुञ्जीत । भुञ्जीत ॥

समानकर्तृकेषु तुमुन् ३।३।१५८

प० वि०—समानकर्तृकेषु ७।३ तुमुन् १।१ स०—समानः कर्ता येषां
धातूनाम् इति समानकर्तृकाः तेषु ।

अर्थ—[इच्छार्थेषु] समानकर्तृकेषु इच्छार्थेषु धातुपूपपदेषु धातो-
स्तुमुन् प्रत्ययो भवति । (समानकर्ता वाले इच्छार्थक धातुषो के उपपद रहने
पर धातु से तुमुन् प्रत्यय होता है)

उदा०—इच्छति भोक्तुम् । वष्टि भोक्तुम् । वाञ्छति भोक्तुम् ।

सि०—भुज् तुमुन् । भुज् तुम् । भोज् तुम् । भोग् तुम् । भोक्तुम् ।
भोक्तुम् सु । भोक्तुम् स् । भोक्तुम् ॥

विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ३।३।१६१

प० वि०—विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु ७।३ लिङ्
१।१ स०—विधिश्च निमन्त्रणश्च आमन्त्रणश्च अधीष्टश्च संप्रश्नश्च
प्रार्थनश्च इति विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनानि तेषु ।

अर्थ—विधिः प्रेरणम् । निमन्त्रणम् नियोगकरणम् , निषट्ग्यान्

जनानाह्य तेषां शास्त्रानुसारेण मत्कार इत्यर्थः तत्र क आहूतस्य आग-
मनमावश्यकमस्ति इति तत्त्वम् ॥ आमन्त्रणम् कामचारकरणम् ॥ आहू-
तस्यागमनं तदधीनमस्ति इति तत्त्वम् ॥ अधीष्टः स्मारपूर्वको व्यापारः ।
सप्रश्नः संदिग्धस्य निश्चयार्थं प्रश्ननम् । प्रार्थने याञ्छा । [इन्द्रार्थेभ्यो
विभाषा वर्तमाने इत्यतः वर्तमान इत्यनुवर्तते] त्रियादिषु अर्थेषु
वर्तमानकाले धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति ।

(विधि इत्यादि श्रवणे मं वर्तमान काम मं धातु मे लिङ् प्रत्यय हाता है)

उदा०—विधी—कटं कुर्यात् । निमन्त्रणे—इह भवान् भुञ्जीत ।
इह भवतामोह । आमन्त्रणे—इह भवतामोह । इह भवान् भुञ्जीत ।
अधीष्टे—अधीष्टास्य मयन् माणुनक भवानुपनयेत् । सप्रश्ने—किं
नु त्वत्तु भो व्याकरणमधीयीत । प्रार्थने—भवति मे प्रार्थना व्याकरण-
मधीयीत ।

सि०—कुर्यात् । कुरुष्व । कृ लिङ् । कृ ल् । कृ तिप् । कृ उ ति । कर्त्तु
यामुट् सुट् ति । कर्त्तु या ति । कर्त्तु यान् । कुर्यात् । कुर्याताम् । कुर्युः ।
कुर्याः । कुर्यान् । कुर्यान् । कुर्याम् । कुर्याथ । कुर्याम । आसीत् । आम्
सीयुट् सुट् त । आम् ईत् । आसीत् । उपनयेत् । उप नीत् लिङ् । उप
नी तिप् । उप नी शप् यामुट् सुट् ति । उपनयेत् । उपनयेताम् ।
उपनयेयुः । उपनयेः । उपनयेताम् । उपनयेत् । उपनयेयम् । उपनयेत् । उप-
येत् ।

अधि इह अभ्ययने । इह लिङ् । इ ल् । इ न । इ मीयुट् सुट् त । इयद्
ईयत् । इय् ईयत् । इयीत् । अधि इयीत् अधीयीत् । अधीयीयानाम् ।
अधीयीत् । अधीयीथाः । अधीयीथायाम् । अधीयीष्यम् । अधीयीष्य ।
अधीयीरहि । अधीयीमहि । अधीयीष्व । अधि इ मीयुट् सुट् । अधि इ
ईयद् । अधि इयद् ईयद् । अधीय ईय् अ० । अधीयीष्व ।

लोट् च ३।८।१६०

५० रि०—लोट् १।१० च अ० ।

उदा०—विधौ—कटं तावद् भवान् करोतु । ग्रामं भवान् आगच्छतु ।
निमन्त्रणे—अमुत्र भवानास्ताम् । अमुत्र भवान् भुङ्क्ताम् । आमन्त्रणे—
इह भवान् भुङ्क्ताम् । अधीष्टे—अधीच्छामो भवन्तं माणवक भवान-
ध्यापयतु । माणवकं भवान् उपनयताम् । संप्रश्ने—किं तु खलु भो
व्याकरणमध्ययै । प्रार्थने—भवति मे प्रार्थना व्याकरणमध्ययै ।

सि०—करोतु । डुकृञ् । कृ लोट् । कृ ल् । कृ तिप् । कृ ति । कृ च
ति । फर् उ ति । कर् ओ ति । कर् ओ तु । करोतु । कुरुताम् । कुर्वन्तु ।
कुरु । कृ उ सिप् । कुरु हि । कुरु^१ । कुरुन् । कुरुन् । करवाणि । करवाव ।
भवतु । भवताम् । भवन्तु । भव । भू शप् सिप् । भू अ हि । भो अ हि ।
भव हि । भव^२ । भवतम् । भवत । भवानि । भव आट्^३ मिप् । भव
आ नि^४ । भवानि । भवाव । भव आवस् । भवाव^५ । भयाम । एध-
ताम् । एध् शप् त । एधते । एधताम्^६ । एधेताम् । एधन्ताम्^७ । एधस्य^८ ।
एधेथाम् । एवध्यम् । एवै । एवावहि । एवामहि ।

अध्यापयतु । अधि इङ् णिच् शप् तिप् । अवि आ^९ इ शप् तिप् ।
अधि आ पुरु^{१०} इ अ ति । अध्यापि अ ति । अध्यापे अ ति । अध्यापय-
ति । अध्यापयतु । अध्यापयताम् । अध्यापयन्तु । अध्यापय । अध्यापय-
तम् । अ-पययत । अध्यापयानि । अध्यापयाय । अध्यापयाम ।

आशिपि लिङ्लोटौ ३।३।२७३

प० वि०—आशिपि ७।१ लिङ्लोटौ १।२ स०—लिङ् च लोट् च
इति लिङ्लोटौ ।

अर्थ—आशंसनमाशीः । अप्राप्तस्येष्टस्यार्थस्य प्राप्तुमिच्छा ।
आशिपि लिङ्लोटौ प्रत्ययौ भवतः । (अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति की इच्छा की
प्राप्तिः कहते हैं) (प्राप्ति अर्थ में पानु से लिङ् और लोट् प्रत्यय होते हैं)

उदा०—चिरं जीव्यान् भवान् । चिर जीवतु भवान् । भूयान् । भूया-
स्ताम् । भूयासुः । भूयाः । भूयास्तम् । भूयास्त । भूयासम् । भूयास्य ।

१—उत्तरव प्रत्ययादमयोगपूर्वार्त्त (६. ४. १०६) २—अतो हेः (६. ४.
१०५) ३—घाटुतमस्य पिच्च (३. ४. ६२) ४—येति (३. ४. ८६) ५—
लोटो लङ् वन् (३. ४. ८४) नित्य डितः (३. ४. ६६) ६—घायेत्. (३. ४.
६०) ७—यामः से (३. ४. ८०) गयाम्या वामो (३. ४. ६१) ८—त्रोट्-
जीना णो (६. १. ४८) ९—अतिहोन्वो० (७. ३. ३६)

भूयास्म । एषिपीष्ट । ण्विपीयान्नाम । ण्विपीस्त् । ण्विपीष्ठा । ण्वि-
पीयास्वाम् । ण्विपीयम् । ण्विपीय । ण्विपीवृद्धि । ण्विपीमहि ।

सि०—जीय्यान् । जीव् लिङ् । जीव् लृ । जीव् तिप् । जीव् ति ।
जीव् यामुट् सुट् ति । जीव् या स् ति । जीव् याम् म् न् । जीव् या
म् त् । जीव् या न् । जीय्यान् । जीय्यास्ताम् । जीय्यासु । जीय्या ।
जीय्यान्तम् । जीय्यान्त । जीय्यामम् । जीय्यास्व । जीय्यास्म ।

ण्विपीष्ट । ण्व् सीयुट् सुट् त । ण्व् इट् सीय् स् त । ण्विपीय् स्त ।
ण्विपी ष्ट । ण्विपीष्ट ।

माटि लुट् ३।३।१७५

प० वि०—माटि ७।१ लुङ् १।१

अर्थ—माह्वुपपदे घातोर्लुङ् प्रत्ययो भवति ।

(माह्व् न उपपद रहन पर घातु मे लुङ् प्रत्यय हाता है)

उदा०—मा कार्पात् । मा हार्पात् ।

इमा ते मंगोऽन्यकर्मणि (गीता ३।७) इत्यादिशिष्टप्रयोगमिद्व्य-
र्थमत्र लिङ्लोटो मण्डुकानुयानुवर्तनीयो इत्याचार्यद्वयानन्दा आह ।
विशेषन्मत्र तृतीयाष्टाध्यायीभाष्ये टिप्पण्या द्रष्टव्य ॥

स्मोत्तरे लङ् च ३।३।१७६

प० वि०—स्मोत्तरे ७।१ लङ् १।१ च अ०। स०—स्मशब्द उत्तरो
यस्मात् तस्मिन्, स्मोत्तरे ।

अर्थ—[माडि] स्मोत्तरे माह्वुपपदे घातोर्लुङ् प्रत्ययो भवति चा-
ल्लुङ् च । (स्म शब्द पर हा एम माह्व् न उपपद रहन पर घातु मे लुङ् प्रत्यय
होता है और बनार में लुङ् भी)

उदा०—मा स्म करोन् । मा स्म कार्पात् । मा स्म पचन् । मा स्म
पात्नीन् ।

इत्याष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया तृतीयाध्याये तृतीय पाद

धातुसम्बन्धे प्रत्यया ३।४।१

५० वि०—धातुसम्बन्धे ७।१ प्रत्यया १।३ स०—वातोरर्थो धात्वर्थः । धात्वर्थस्य सम्बन्ध इति धातुसम्बन्ध (उत्तरपदलोपी) तस्मिन् ।

अर्थ—धात्वर्थसम्बन्धे अथवाकालोक्ता अपि प्रत्यया साधवो भवन्ति ।
(धातु क घञ् वा सम्बन्ध द्वान् पर भिन्नकाल म विधान किये गये प्रत्यय भी साधु प्रयान् ठाक मान जात ह)

उदा०—अग्निष्टोमयाजी पुत्राऽस्य जनिता । ॐ अत्रेदं ज्ञातव्यम्—अग्निष्टोमयाजीति भूतकाल जनिताति भविष्यत्काल । तत्र भूतकालो भविष्यत्कालेन आभसम्बन्धमान साधुर्भवति ।

(अग्निष्टोमन इष्टवान् इति अग्निष्टोमयाजी यहाँ पर भूतकाल में एनि प्रत्यय दृष्टा । अब अग्निष्टोम यज्ञ जिस म किया है ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा । इस वाक्य म भूतकाल का भविष्यत् काल के साथ सम्बन्ध होना असम्भव है पर यह सूत्र बनाया गया जिसम यह प्रयोग साधु हो जाये)

छन्दसि लुङ्लिट् ३।४।५

५० वि०—छन्दसि ७।१ लुङ्लिट् १।३ स०—लुङ् च लट् च लिट् च इति लुङ्लिट् ॥

अर्थ—[धातुसम्बन्धे अन्यतरस्याम्] छन्दसि वैदिकप्रयोगविषये धात्वर्थसम्बन्धे धाता सामान्ये काल अन्यतरस्याम् लुङ्लिट् प्रत्यया भवन्ति । (धातु के घञ् के सम्बन्ध में धातु स सामान्य काल में विवक्ष्य स लुङ लट और लिट् प्रत्यय होते है)

उदा०—लुङ्—शकलद्गुष्ठकोऽस्मिन् । अहं तेभ्योऽस्मिन् नमः । लट्—अग्निमन्वा होतारमवृणीताय यजमान । लिट्—अद्या ममारः ।

ह्रस्वपदाहरणेत्यस्य धातो सम्बन्धो मृग्य इति वाशिकाकारादय आहु यन्तुतन्तु “धातुसम्बन्धे प्रत्यया” इत्यस्यायमर्थः—केचन प्रत्यया करिन् केवल धात्वर्थसम्बन्ध एव भवन्ति न तु भूतान्कालार्थविशेषेषु । तेनाग्निष्टोमयाजी इत्यस्य अग्निष्टोमयाजश्च इत्येवार्थोऽभिप्रेत न तु अग्निष्टोममिष्टवानितिभूतकालविशिष्टः । तेन ‘जनिता’ इति भविष्यत्कालार्थन मह मन्व्यो भवति । एव च सति एतस्मिन्नाहरणेष्वपि धात्वन्तरसम्बन्धो न मृग्य भवति । धात्वर्थमात्र एव घेदे लुङ्लिट् प्रत्यया भवन्ति । इत्येवास्मिन्प्रत्ययार्थः, न तु तत्कालविशेषेषु । मन्वे

“म दाधार पृथिवीम्” इत्यम्य म द्विरस्यगर्मां नामा परमेश्वरः पृथिवी दाधार, धरति, धरिष्यति च इति मामान्येन कालत्रयेऽपि अर्थो लभ्यते इति युधिष्ठिरमीमांसकाः ।

लिटर्थे लेट् ३।४।७

प० वि०—लिट् ७।१ लेट् १।१ स०—लिटोऽर्थं लिटर्थः तस्मिन् ।

अर्थ—[छन्दसि अन्यतरस्याम्] लिटर्थं छन्दसि विषये अन्यतरस्याम् धातोर्लेट् प्रत्ययो भवति । (लिट् के अर्थ में छन्द के विषय में विक्रम से धातु से लेट् प्रत्यय होता है)

उदा०—जोषिषन् । तारिषन् । भाविषति । भाविषाति । भाविषन् । भाविषात् । भाविषद् । भाविषाद् ।

मि०—जुप् लेट् । जुप् तिप् । जुप् सिप्ति । जुप् टट् म्ति । जोषिप् अट्ति । जोषिषन् ॥

अलंरत्नयोः प्रतिषेधयोः प्राचा क्त्वा ३।४।१८

प० वि०—अलंरत्नयोः ७।२ प्रतिषेधयोः ७।२ प्राचाम् ६।३ क्त्वा १।१

म०—अलञ्च रत्नञ्च इति अलंरत्नू तयोः ।

अर्थ—प्रतिषेधयोरलत्नयोः पदयोर्धातोः क्त्वा प्रत्ययो भवति प्राचामाचार्याणां मतेन । (प्रतिषेधवाची घञ घोर वन्तु शब्द के उदाहरण पर पूर्व देश में रहने वाले आचार्य के मत में क्त्वा प्रत्यय होता है)

उदा०—अलं कृत्वा । रत्नं कृत्वा । अलं भस्त्वा । रत्नं भुक्त्वा । न कर्त्तव्यम्, न भोक्तव्यम् इत्यर्थः ।

समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ३।४।२१

प० वि०—समानकर्तृकयोः ७।२ पूर्वकाले ७।१ म०—समानः एतः कर्त्ता ययोर्धातोरिति समानकर्तृकौ तयोः । पूर्वकालो काल इति पूर्वकाल तस्मिन् ।

अर्थ—[क्त्वा] समानकर्तृकयोः धातोरर्थे पूर्वकाले धातुर्धर्ममानाद् धातोः क्त्वा प्रत्ययो भवति । (समान कर्त्ता होने धातुओं में पूर्वकाल के धातुर्धर्म में वर्तमान धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है)

उदा०—भुक्त्वा प्रजति । पीत्वा प्रजति । ग्रह्य गन्धर्वि । ममार ह्त्वा । अहत्वा ममार ॥ स्नान्वा भुक्त्वा पीत्वा ह्त्वा प्रजति इत्यादि सूत्रेषु लिङ्गवचनमन्वयम् इति परिभाषया द्विवचनस्यानन्वयान् क्त्वा भवति ।

सि०—भुज् क्त्वा । भुग् त्वा । भुक्त्वा सु । भुक्त्वा सु । भुक्त्वा ॥
 हन् त्वा । ह त्वा । हत्वा सु । हत्वा ॥ अहत्वा । न हत्वा । अ हत्वा ।
 अहत्वा । प्रहृत्य । कृ त्वा । कृत्वा । प्र कृ ल्यप् । प्रकृ य । प्रकृ तुक् य ।
 प्रहृत्य सु । प्रहृत्य ॥

शकधृपज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन् ३।४।६५

प० वि०—शकधृपज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु ७।३ तुमुन्
 १।१ स०—अस्ति अर्थो येषां ते अस्त्यर्था । शकश्च धृपश्च ज्ञाश्च
 ग्लाश्च घटश्च रभश्च लभश्च क्रमश्च अर्हश्च अस्त्यर्थाश्च इति शक-
 धृपग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थां तेषु ।

अर्थ—शक-धृप-ज्ञा-ग्ला-घट-रभ-लभ-क्रम-सह-अर्ह- अस्त्यर्थेषूपपदेषु
 धातोस्तुमुन् प्रत्ययो भवति । (शक, धृप्, ज्ञा, ग्लै, घट, रभ, लभ, क्रम,
 सह, अर्ह, और अस्ति अर्थ वाले धातुओं के उपपद रहने पर धातु में तुमुन्
 प्रत्यय होता है)

उदा०—शक्नोति भोक्तुम् । धृष्णोति भोक्तुम् । जानाति
 भोक्तुम् । ग्लायति भोक्तुम् । घटते भोक्तुम् । आरभते भोक्तुम् । लभते
 भोक्तुम् । प्रक्रमते भोक्तुम् । सहते भोक्तुम् । अर्हति भोक्तुम् ।
 अस्त्यर्थेषु—अस्ति भोक्तुम् । भवति भोक्तुम् । विद्यते भोक्तुम् ॥

पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु ३।४।६६

प० वि०—पर्याप्तिवचनेषु ७।३ अलमर्थेषु ७।३ स०—पर्याप्तिरुच्यते
 यैस्ते पर्याप्तिवचना अलम् आद्यः शब्दाः । अलम् अर्थो येषान्ते
 अलमर्था तेषु ।

अर्थ—पर्याप्तिरन्यूनता परिपूर्णतेत्यनर्थान्तरम् । [तुमुन्] पर्याप्ति-
 वचनेष्वलमर्थेषूपपदेषु धातोस्तुमुन् प्रत्ययो भवति । (पर्याप्ति अथवा परिपू-
 र्णता अर्थ कहने वाले अलम् अर्थ वाले शब्दों के उपपद रहने पर धातु में तुमुन्
 प्रत्यय होते हैं)

उदा०—पर्याप्तो भोक्तुम् । अल भोक्तुम् ॥

कर्त्तरि कृत् ३।४।६७

प० वि०—कर्त्तरि ७।१ कृत् १।१

अर्थ—कृत्सङ्गना. प्रत्ययाः कर्त्तरि कारके भवन्ति । (कृत् सज्ञा वाले
 प्रत्यय वर्त्ता कारक में होते हैं)

उदा०—कर्ता । कर्तारो । कर्तार । कर्तारम् । कर्तारो । कर्त्तुम् ।
कर्त्रा । कर्त्तृभ्याम् । कर्त्तृभिः । कर्त्रे । कर्त्तृभ्याम् । कर्त्तृभ्यः । कर्त्तुः ।
कर्त्तृभ्याम् । कर्त्तृभ्यः । कर्त्तुः । कर्त्रा । कर्त्तृणाम् । कर्त्तरि । कर्त्रो ।
कर्त्तुः । हे कर्त्त । हे कर्त्तारो । हे कर्त्तार ।

सि०—कर्त्ता । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः ।
कर्त्तुः । कर्त्ता । कर्त्तारो । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः ।
कर्त्तारो । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः ।
कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः ।
कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः ।
कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः ।
कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः । कर्त्तुः ।

लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्य २।३।६६

प० वि०—ल १।३ कर्मणि ७।१ च अ० । भावे ७।१ च अ० । अकर्मकेभ्य ५।३

अर्थ—[कर्त्तरि] लकारा कर्मणि नारके भवन्ति चकारान् कर्त्तरि च, अकर्मकेभ्यो घातुभ्यां भावे भवन्ति चकारान् कर्त्तरि च ।

(लकार प्रादात् सकर्मक घातुभ्यां स कर्म और कर्त्ता में तथा अकर्मक घातुभ्यां स भाव और कर्त्ता में हाडा है)

उदा०—देवदत्तेन वेदं पठ्यते । देवदत्त वेदं पठति । देवदत्तेन आस्यते । देवदत्त आस्ते ॥

तयोरेव कृत्यक्तखलर्था ३।४।७०

प० वि०—तयो ७।० एव अ० । कृत्यक्तखलर्था १।३ स०—
कृत्याश्च क्तश्च खलर्थाश्च इति कृत्यस्तखलर्था ।

१—ऋङ्गानस्पृष्टसोऽप्रहसा च (७ १ ६४) डित्त्व (१ १ ५२) २—
सवनामस्थान चासम्बुद्धौ (६ ४ ८) ३—ऋतो डित्सवनामस्थानया (७ ३.
११०) ४—अष्टन्तुच् (६ ४. ११) ५—प्रथमया पूर्वसवण (६ १ ९८)
६—ऋत उव (६ १ १०७) उरण रपर (१. १ ५०) ७—रास्यस्य (८
२. २४) ८—नामि (६ ४ ३)

अर्थ—तयोरेव भाषकमणो कृत्यसज्ञका स्तखलर्थाश्च प्रत्ययाः भवन्ति ।

(उन्ही दोनो भाव और कम म कृत्य क्त और खल् अर्थवाले प्रत्यय हाते हैं)

उदा०—कृत्या कर्मणि-कर्त्तव्य कटो भवता । पठितव्यो वेदो भवता । भावे—आमितव्य भवता । शयितव्य भवता ॥ क्त कर्मणि-कृत कटो भवता । पठितो वेदो भवता । भावे—आसित भवता । शयित भवता । खलर्था- कर्मणि—ईप्त्वर कटो भवता । भावे—ईप-दाढ्यंभव भवता । स्वाढ्यभव भवता ॥

ॐ भावे चाकर्मकेभ्य इत्यनुवृत्तेस्सकर्मकेभ्यो भावे न भवन्ति ॐ
(यहाँ भावे चाकर्मकेभ्य इसकी अनुवृत्ति आती है इसलिए सकर्मक धातुप्र-
से भाव में ये प्रत्यय नहीं हाते हैं)

लादेशप्रकरणम् —

लस्य ३।४।७७

प० वि०—लस्य ६।१

अर्थ—ॐ अकार उच्चारणार्थ ॐ इतोऽपे आ तृतीयाध्यायपरिस-
माप्ते. पद्यमाणानि कार्याणि लकारस्थैव स्थाने भवन्ति इत्यधिकारो वेदि-
तव्य । (ल यहा पर अकार उच्चारणके लिये है । यहा से तृतीय अध्याय पर्यन्त
तक जो भी कार्य कहे जायेंगे व सभी लकार के स्थान में होंगे, इस बात का
अधिकार समझना चाहिए)

तिप्तस्मिन्स्थिस्थमिब्वस्मस्ताताम्भथासाथा-

ध्वमिड्वहिमहिङ् ३।४।७८

प० वि०—तिप्-तस्-भि-सिप्-थस्-थ-मिप्-वस्-मस्-त-आताम्-
भ-थास-आथाम्-ध्वम्-इट्-वहि-महिङ् । १।१

अर्थ—[लस्य] लस्य स्थाने तिगादय आदेशाः भवन्ति ।

(ल के स्थान में तिप् तस् भि सिप् थस् थ मिप् वस् मस् त धाताम् भ
थास् आथाम् ध्वम् इट् वहि महिङ् ये अठारह आदेश होते हैं)

उदा०—पचति, पचत, पचन्ति । पचसि, पचथ, पचथ । पचामि,
पचाय, पचाम् । पचते, पचेते, पचन्ते । पचसे, पचेथे, पचध्वे । पचे,
पचागहे, पचामहे ॥

टित् आत्मनेपदानां टेरे ३।४।७६

प० वि०—टित् ६।१ आत्मनेपदानाम् ६।३ टेः ६।१ ए अविभ० ।

अर्थ—[लम्ब] टितो लकारस्य स्थाने आत्मनेपदानां टेरेकारादेशो भवति । (टित् लकार के स्थान में वा आत्मनेपद आदेश उत्पत्ती टि का एकार आदेश हो जाता है)

उदा०—पचते । पचंते । पचन्ते ।

सि०—पच् शप् त । पच् अ त् अ । पच् अ त् ए । पचते । पच् शप् आताम् । पच् आत् आम् । पच् आन् ए । पचंत । पचन्ते ।

थासस्ते ३।४।८०

प० वि०—थासः ६।१ मे अविभ० ।

अर्थ—[टितः] टितो लकारस्य सम्बन्धिनः थासस्थाने मे इत्ययमादेशो भवति । (टित् लकार सम्बन्धी थास् के स्थानमें 'मे' यह आदेश होता है)

उदा०—पचसे । पचितासे । पचिष्यसे । जगाधिपे । पच् शप् थास् । पचसे । पचितास् थास् । पचितास् से । पचितासे । पचिष्य थास् । पचिष्यसे । गाव् । गाव् लिट् । गा गाव् लिट् । गगाव् लिट् । जगाव् ल् । जगाव् थास् । जगाव् इट् थास् । जगावि से । जगाधिपे ।

लिट्स्तम्भयोरेशिरेच् २।४।८१

प० वि०—लिट् ६।१ तम्भयोः ६।२ एशिरेच् १।१ स०—तश्च कश्चेति तम्भो तयोः । एश्च इरेच्चेति एशिरेच् ।

अर्थ—लिङादेशयोस्तम्भयोस्स्थाने यथासरयमंश्च इरेच् इत्येतामादेशो भवतः । (लिट् के स्थान में जो आदेश त और क उसके स्थान में क्रमशः एश्च और इरेच् ये दो आदेश होते हैं)

उदा०—पेचे । पेचाते । पेचिरे । लेभे । लेभाते लेभिरे ।

सि०—पच् लिट् । पच् ल् । पच् त । पच् पच् त । प पच् त ।

पेच्^१ त । पेच् एश् । पच् ए । पेचे । लेभे । पेचिरे । पच् लिट् । पच् ल् । पच् क् । पच् पच् क् । पपच् क् । पेच् क् । पेच् इरेच् । पेच् इरे । पेचिरे । लेभिरे ।

परस्मैपदानां एलतुसुस्थलथुसणत्वमाः ३।४।८२

प० वि०—परस्मैपदानाम् ६।३ एलतुमुस्थलथुसणत्वमाः ६।३

स०—एल् च अतुश्च तश्च थल् च अथुश्च अश्च एल् च वश्च
मश्चेति एलतुसुस्थलथुसएलत्वमाः ।

अर्थ—[लिटः] लिङादेशानां परस्मैपदानां तिङादीनां स्थाने यथा-
संख्य एलादयः आदेशा भवन्ति ।

(लिट् के स्थान में जो परस्मैपद तिवादि आदेश उनके स्थान में क्रमशः
एल् इत्यादि आदेश होते हैं)

उदा०—पपाच । पेचतु । पेचुः । पेचिथः । पपक्थ । पेचथुः । पेच ।
पपाच, पपच । पेचिच । पेचिम ।

सि०—पच् लिट् । पच् तिप् । पच् एल् । पाच् अ । पाच् पाच्
अ^१ । पा^२ पाच् अ । प^३ पाच् अ । पपाच । पच् अतुस् । पच् पच्
अतुस् । पेच्^४ अतुस् । पेचतुः । पेचुः । पच् पच् थल् । पच् पच् ईट्
थल् । पेच्^५ ईट् थ । पेचिथ । पपक्थ^६ । पच् अ । पेच अ ।
पेच । पच् एल् । पाच् एल् । पपाच । पपच^७ । पेचिच । पेचिम ।

विदो लटो वा ३।४।८३

प० वि०—विदः ५।१ लटः ६।१ वा अ० ।

अर्थ—[परस्मैपदानाम्] विद् ज्ञाने इत्यस्माद्धातोः परेषां लिङा-
देशानां परस्मैपदानां एलादयः नव आदेशाः विकल्पेन भवन्ति ।

(विद् ज्ञाने इस धातु के पश्चात् लट् के स्थान में जो तिवादि परस्मैपद
आदेश उसने स्थान में एल् इत्यादि आदेश विकल्प से होते हैं)

उदा०—वेद । विदतुः । विदुः । वेत्थ । विदथुः । विद । वेद ।
विद्व । विद्वम । न च भवति । वेत्ति । वित्तः । विदन्ति । वेत्ति ।
वित्थः । वित्थ । वैदिम । विद्वः । विद्वमः ।

सि०—विद् लट् । विद् तिप् । विद् एल् । वेद् अ । वेद । विद्
अतुम् । विद्^१ अतुस् । विदतुः । वेत्ति । विद् तिप् । वेद् ति । वेद्

१—अत उपधाया. (७. २. ११६) २—लिटि धातोरेनभ्यासस्य (६. १. ८)

३—पूर्वोभ्यास (६. १. ४) अत्र लोपोभ्यासस्य (७. ४. ५८) हलादि शेषः

(७. ४. ६०) ४—ह्रस्व. (७. ४. ५६) ५—अत एकह्रस्वमध्योऽनादेशादेर्लिटि

(६. ४. १२०) ६—यञि च तटि (६. ४. १२१) ७—कृयादिनियमाद् इडा-

गमो भवति परन्तु तस्यापि ऋनो मागद्वाजस्यति निष्मादिङ् विकल्पः ८—
एलुत्तमा वा (७. १. ६१) ९—असयोगात्लिट् कित् (१. २. ५) विदति च
(१. १. ५)

ति । वेति ।

ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ३।४।८४

प० वि०—ब्रुवः ५।१ पञ्चानाम् ६।३ आदितः । अ० । आहः १।१
ब्रुवः ६।१

अर्थ—[परस्मैपदानां लोटो वा] ब्रुवः परस्य लटः परस्मैपदानां पञ्चानामादिभूतानां पञ्चैव शुलादय आदेशा भवन्ति, तत्सन्नियोगेन च ब्रुवः आह इत्यादेशो भवति ।

(ब्रू पातु के पदवात् जो लट् उसके स्थान में होने वाले परस्मैपद सत्तक आदि के पाच तिवादि आदेशों के स्थान में शुलादि पाच आदेश क्रमशः विरल्प से होते हैं और उस आदेश के मयोग से ब्रू पातु के स्थान में आह आदेश हो जाता है)

उदा०—आह । आहथुः । आहुः । आत्थ । आहथुः । ब्रूथ । ब्रवीमि
ब्रूयः । ब्रूमः ॥ न च भवति । ब्रवीति । ब्रूतः । ब्रुवन्ति । ब्रवीषि ।
ब्रूथः । ब्रूथ । ब्रवीमि । ब्रूयः । ब्रूमः ।

सि०—ब्रू निप् । आह शुल् । आह । आद् थल् । आत्थ थ ।
आत्थ । ब्रवीमि । ब्रू मिप् । ब्रू मि । ब्रू ईट्^१ मि । ब्रू ई मि । ब्रू ई
मि । ब्रू ई मि । ब्रवीमि । ब्रुवन्ति । ब्रू फि । ब्रू अन्ति । ॥ उवङ्
अन्ति । ब्रुव् अन्ति । ब्रुवन्ति । ब्रूथः । ब्रू थस् । ब्रूथः ।

लोटो लङ् वत् ३।४।८५

प० वि०—लोटः ६।१ लङ् वत् १.१

अर्थ—लोट लृटस्य लङ् वत् कार्यं भवति, अर्थात् डित् कार्यं लोटो-
पि भवति । (लोट लृट का लङ् के समान कार्य होता है अर्थात् डित् कार्य
लोट का भी होता है) ।

उदा०—पचताम् । पचत । पचान । पचाम ।

सि०—पचपप् । पच् लोट् । पच् ल् । पच् तस् । पच् शप् तस् ।
पच तस् । पचताम्^१ । पच थस् । पचतम् । पच् शप् वस् । पच् अ वस् ।
पच आट्^२ वस् । पच आ वस् । पचावस् । पचाव^३ । पचाम ।

१—खरि च (८. ४. ५४) २—ब्रुव ईट् (७. ३. ६३) आद्यन्तो टकितौ
(१. १. ४५) ३—तस्यस्यमिषा तान्तन्ताम. (३. ४. १०१) ४—आहुतमस्य
पिच्च (३. ४. ६२) ५—नित्य दितः (३. ४. ९९)

एरु ३।४।८६

प० वि०—एः ६।१ उ १।१

अर्थ—[लोटः] लोडादेशानामिकारस्य उकारादेशो भवति । (लोट् के स्थान में जो होने वाले आदेश उसके इकार के स्थान में उकार आदेश होता है)

उदा०—पचतु । पचन्तु ।

सि०—पच् शप् तिप् । पचति । पचतु । पच् अ भि । पच अन्ति । पचन्ति । पचन्तु ।

सेहिपिच्च ३।४।८७

प० वि०—सेः ६।१ हि १।१ अपित् १।१ च अ० । स०—न पिद् इति अपित् ।

अर्थ—[लोटः] लोडादेशस्य सेहि इत्ययमादेशो भवति अपिच्च भवति । (लोट् सकार के सिप् के स्थान में हि यह आदेश होता है और वह अपित् होता है)

उदा०—पच । लुनीहि । पुनीहि ।

सि०—पच् शप् सिप् । पचहि । पच^१ । लून । लू । लू लोट् । लू लू । लू सिप् । लू र्ना सिप् । लू ना सि । लु ना हि । लुनीहि^१ ।

वा छन्दसि ३।४।८८

प० वि०—वा अ० । छन्दसि ७।१

अर्थ—आदेशरछन्दसि विषये द्विशब्दो वाऽपिद्भवति ।

(लोट् के स्थान में जो आदेश द्विशब्द वह छन्द में विकल्प से अपित् होता है)

उदा०—युयोध्यस्मज्जहुराणमेनः । जुहुधि । जुहोधि ।

सि०—यु । यु लोट् । यु लू । यु सिप्^२ । यु यु^३ सि । यु यु हि । यु यो हि । यु यो वि^४ ।

जहुधि । हु लोट् । हु लू । हु सिप् । हु हु सिप् । ऊ हु सि । जु हु सि । जु हु हि । जु हु धि । जुहोधि^५ ।

मेनिः ३।४।८९

प० वि०—मेः ६।१ निः १।१

१—अतो हे. (६. ४. १०५) २—ई हत्यघो (६. ४. ११३) ३—बहुल छन्दसि (२. ४. ७६) ४—रनी (६. १. १०) ५—अडितश्च (६. ४. १०३) ६—हुभ्रम्यो हेधिः (६. ४. १०१)

अर्थ—[लोटः] लोढादेशस्य मेर्निरादेशो भवति ।

(लोट् सम्बन्धी मिप् के स्थान में नि आदेश होता है)

उदा०—पचानि । पठानि । भवानि । अतानि ।

सि०—पच् शप् मिप् । पच मि । पच आट् मि । पचामि । पचानि ।

ग्रामेत ३।४।६०

प० वि०—आम् १।१ गतः ६।१

अर्थ—[लोटः] लोट् लकारसम्बन्धिन एकारस्य स्थाने आम् इत्ययमादेशो भवति । (लोट् लकार सम्बन्धी एकार के स्थान में आम् यह आदेश होता है)

उदा०—पचताम् । पचेताम् । पचन्ताम् । पचेयाम् ।

सि०—पच् लोट् । पच् ल् । पच् त् । पच् शप् त् । पचन । पचते । पचन् ए । पचन् आम् । पचताम् । पचेताम् । पच् शप् आताम् ।

पच् अ आताम् । पच आताम् । पच इयताम् । पच उताम् । पचेताम् । पचेते । पचेताम् ॥ पचन्ताम् । पचन्ते । पचन्ताम् ॥

सवाभ्या वामी ३।४।६१

प० वि०—सवाभ्याम् १।२ वामी १।२ स०—सश्च वश्चेति सवीताभ्याम् । वश्च अश्चेति वामी ।

अर्थ—[लोटः गतः] सकारवकाराभ्यामुत्तरस्य लोट् सम्बन्धिन एकारस्य यथासंख्य व अम् इत्येतावादेशो भवतः । (सकार और वकार के पश्चात् लोट् लकार सम्बन्धी एकार के स्थान में वमयः व और अम् ये दोनों आदेश होते हैं)

उदा०—पचस्व । पचध्वम् ।

सि०—पच् लोट् । पच् ल् । पच् थास् । पच् मे । पच् शप् से । पचसे । पचस ए । पचस व । पचस्व । पच् शप् ध्वम् । पचध्वे । पचध्वम् ॥

आढुत्तमस्य पिच्च ३।४।६२

प० वि०—आट् ११ उत्तमस्य ६।१ पिन् १।१ च अ० ॥

अर्थ—[लोटः] लोट्सम्बन्धिन उत्तमपुरुषस्य आट् आगमो भवति स च पिन् ॥ (लोट् लकार सम्बन्धी उत्तम पुरुष की आट् का आगम होता और वह पिन् होता है)

उदा०—पचानि । पचात्र । पचाम् । पचै । पचावहे । पचामहे ।

सि०—पच् लोट् । पच् लृ । पच् मिप् । पच् शप् मिप् । पच मि । पच आट् मि । पच आमि । पच आनि^१ । पचानि । पचावस् । पचाव^२ । पचाम् । पचै । पच् शप् आट् इट् । पच आ इ । पच आ ए^३ । पच आ ऐ^४ । पचै । पचावहि । पचावहे । पचात्रहे । पचामहे ।

एत ऐ ३।४।६३

प० वि०—एतः ६।१ ऐ अविभ० ॥

अर्थ—[लोट् उत्तमस्य] लोट्सम्बन्धिन उत्तमपुरुषस्य एकारस्य स्थाने ऐ इत्ययमादेशो भवति । (लाट् लकार सम्बन्धी उत्तम पुरुष के एकार के स्थान में ऐकार आदेश होता है)

उदा०—पचै । पचावहे । पचामहे । करवै । करयावहे । करवामहे ॥

लेटोऽडाटी ३।४।६४

प० वि०—लेट् ६।१ अडाटी १।२ स०—अट् च आट् च इवि अडाटी

अर्थ—लेटोऽडाटावागमौ भवत पर्यायेण । (लेट् लकार को अट् और आट् का आगम पर्याय से होता है)

सि०—प्र ख आयु पि तारिपत् (यजु० २३।३२) । चिपुरुपा भवाति (अथर्व० १८।१।०)

सि०—त लोट् । त लृ । त सिप् लृ । त इट् स् ति । तार इ स् ति । तारिप् ति । तारिप् अट् ति । तारिपति । तारिपत्^१ । भवाति । भू लोट् । भू लृ । भू ति । भू शप् ति । भो अ ति । भव ति । भव आट् ति । भव आ ति । भवाति ॥

आत ऐ ३।४।६५

प० वि०—आत ६।१ ऐ अविभ० ॥

अर्थ—[लेट्] लेट्सम्बन्धिन आकारस्य स्थाने ऐ इत्यादेशो भवति । (लेट लकार सम्बन्धी आकार के स्थान में ऐ यह आदेश होता है)

१—भेति (३. ४. ८६) २—लोटा लङ्घत (३. ४. ८५) नित्य ङित (३. ४. ६६) ३—टित आत्मनेपदानां णि (३. ४. ७६) ४—एत ऐ (३. ४. ६३) ५—इतश्च लोप परस्मैपदेषु (३. ४. ६७)

उदा०—एधिपैते । एधिपैते । एधैते । एधैते । एधिपैथे । एधिपैथे ।
एधैथे । एधैथे ।

सि —एधिपैते । एध् । एध् लोट् । एध् लृ । एध् आताम् । एध्
सिप् आताम् । एध् इट् स् आताम् । एधिस् आताम् । एधिप् आताम् ।
एधिप् अट् आताम् । एधिप् ऐ ताम् । एधिप् ऐते । एधिपैते । एधिप्
आट् ऐते । एधिपा ऐते । एधिपैते ॥

एधैते । एध् शप् अट् आताम् । एध् अ आताम् । एध आताम् ।
एध ऐनाम् । एध् ऐते । एधैते । एध् शप् आट् आताम् । एध आ
ऐते । एध् ऐते । एधैते ॥

वैतोऽन्यत्र ३।४।६६

५० वि०—वा अ० । एत ६।१ अन्यत्र अ० ॥

अर्थ—[लोट्] लोट्सम्बन्धिन एकारस्य स्थाने वा ऐकारान्देशो भवति
अन्यत्र (आत ऐ इत्येतद् विषय वर्णयित्वा) ।

(एत लकार सम्बन्धी एकार के स्थान में विकल्प से एकार आदेश होना
है और स्थानों पर धर्मात् जिस प्रयोग में आठ ए इस सूत्र की प्रवृत्ति हो जाए,
उस प्रयोग को छोड़कर)

उदा०—एधते । एधाते । एधतै । एधातै । एधिपते । एधिपाते ।
एधिपतै । एधिपातै । एधिपन्ते । एधिपान्ते । एधिपन्तै । एधिपान्तै
एधिपसे । एधिपासे । एधिपसै । एधिपासै । एधसे । एधासे । एधसै ।
एधासै ।

एधिपध्वे । एधिपाध्वे । एधिपध्वै । एधिपाध्वै । एधध्वे । एधाध्वे ।
एधध्वै । एधाध्वै । एधिपे । एधिपै । एधिपै । एधिपै ॥ एधिपवहे ।
एधिपावहे । एधिपवहै । एधिपावहै । एधवहे । एधावहे । एधवहै ।
एधावहै ॥ एधिपमहे । एधिपामहे । एधिपमहै । एधिपामहै । एधमहे ।
एधामहे । एधमहै । एधामहै ॥

सि०—एध् इट् सिप् त । एधिप् अट् त । एधिपन । एधिपते ।
एधिप् आट् त । एधिपाते । एधिपतै । एधिपातै ॥ एध सर्ज ॥

इतद्वत् लाप परस्मैपदेषु ३।८।६७

५० वि०—इत ६।१ च अ० । लोप १।१ परस्मैपदेषु ७ । ३

अर्थ—[लोप वा] परस्मैपदेषु लोटलकारसम्बन्धिन इकारस्य विकल्पेन

लोपो भवति ॥ (परस्मैपद प्रत्ययो मे लेट् लकार सम्बन्धी इकार का विकल्प से लोप होता है)

उदा०—भाविपति । भाविपाति । भाविपत् । भाविपात् । भविपति । भविपाति । भविपत् । भविपान् (अन्यत्सर्वं सिञ्चहुल लेटि इत्यत्र द्रष्टव्यम्)

स उत्तमस्य ३।४।६८

प० वि०—सः ६।१ उत्तमस्य ६।१

अर्थ—[लेटः वा] लेट् सम्बन्धिन उत्तमपुरुषस्य सकारस्य वा लोपो भवति । (लेट् लकार सम्बन्धी उत्तम पुरुष के सकार का विकल्प से लोप होता है)

उदा०—भाविषवः । भाविषावः । भाविषव । भाविषाव । भविषवः । भविषावः । भविषव । भविषाव । भववः । भवावः । भवव । भवाव ॥
भाविषमः । भाविषामः । भाविषम । भाविषाम । भविषमः । भविषामः । भविषम । भविषाम । भवमः । भवामः । भवम । भवाम ॥

सि०—सर्वं स्पष्टम् ॥

नित्य डित. ३।४।६९

प० वि०—नित्यम् १।१ डितः ६।१ स०—इ इद् यस्येति डित् तस्य ।

अर्थ—[स उत्तमस्य परस्मैपदेषु] डिल्लकारसम्बन्धिन उत्तमपुरुषस्य सकारस्य लोपो भवति । (डित लकार सम्बन्धी उत्तम पुरुष के सकार का परस्मैपद में नित्य करके लोप होता है)

उदा०—अपचाव । अपचाम ।

सि०—पच् लङ् । पच् लृ । पच् वस् । पच् शप् वस् । पचवस् पचाव । सञ्जट् पचावस् । अपचावस् । अपचाव । अपचाम ॥

इतश्च ३।४।१००

प० वि०—इतः ६।१ च अ० ।

अर्थ—[डितो लोपः परस्मैपदेषु] डिल्लकारसम्बन्धिनः परस्मैपदेषु इकारस्य नित्य लोपो भवति । (डित् लकार सम्बन्धी परस्मैपद में इकार का नित्य करके लोप होता है)

उदा०—अपचत् । अपचन् । अपचः ।

सि०—पच् लिङ् । पच् लृ । पच् तिप् । पच् शप् तिप् । पचति ।
पचन् । अट् पचन् । अपचन् । अचचन् । अच अन्ति । अपचन्ति ।
अपचन् । अपचन् ।

तस्थस्थमिपा तान्तताम. ३।४।१०१

प० वि०—तस्थस्थमिपाम् ६।३ तान्ततामः १।३ स०—तश्च थश्च
थश्च मिप् च इति तस्थस्थमिपः तेषाम् । ताम् च तम् च तश्च अम् च
इति तान्ततामः ॥

अर्थ—[हितः] डिल्लकारसम्बन्धिनः तस्थस्थमिपां तान्ततामो
यथासंख्यमादशा भवन्ति ।

(डित्त लकार सम्बन्धी तम् थम् य और मिप् के स्थान में क्रमशः ताम्,
तम्, त और अम् आदेश होते हैं)

अपचताम् । अपचतम् । अपचत । अपचम् ।

सि०—अपच् मिप् । अपच अम् । अपचम् ।

लिङः सीयुट्, ३।४।१०२

प० वि०—लिङः ६।१ मीयुट् १।१

अर्थ—लिङादेशानां सीयुडागमो भवति ।

(लिङ् के स्थान में जो हान जाने आत्मनपद आदेश उनकी सीयुट् का
आगम होता है)

उदा०—पचेत् । पचेयाताम् । पचेरन् । पचेथा । पचेयाथाम् । पचे-
ध्यम् । पचेय । पचेयहि । पचेमहि ।

सि०—पच् लिङ् । पच् लृ । पच् त । पच् शप् त । पचत । पच
सीयुट् त । पच सीयुट् मुट् त । पच सीय् स् त । पच ईय्* त । पचेयूत* ।
पचेत* । पचेयाताम् । पच् शप् सीयुट् आताम् । पच ईय् आताम् । पचेयू
आताम् । पचेयाताम् । पचेरन् । पच शप् सीयुट् क् । पचेयू रन्* ।
पचेरन् । पचेय । पच् शप् सीयुट् इट् । पच् अ ईय् इ । पचेयू अ* ।
पचेय ।

१—लिङ् मलोपोऽन्त्यस्य (७. २. ७६) २—यादृगुण* (६. १. ८४)

३—लोपो व्योर्बलि (६. १. ६४) ४—अय्य रत् (३. ४. १०५) ५—इटोऽङ्
(३. ४. १०६)

यासुट् परस्मैपदेपूदात्तो ङिच्च ३।४।१०३

प० वि०—यासुट् १।१ परस्मैपदेपु ७।३ उदात्त १।१ ङित् १।१ च अ० ।

अर्थ—[लिङ्] परस्मैपदेपु लिङो यासुडागमो भवति स चोदात्तो भवति ङिच्च ।

(परस्मैपद में लिङ को यासुट् का आगम होता है और वह उदात्त होता है, और वह ङित् होता है)

उदा०—पचेत् । पचेताम् । पचेयु । पचे । पचेतम् । पचेत । पचेयम् । पचेव । पचेम ।

सि०—पच् लिङ् । पच् ल् । पच् तिप् । पच् त्ति । पच् शप्ति । पच् अ यासुट् ति । पच् यास् त् । पच् आस् सुट् त् । पच् या त् । पच् इय् त् । पचेय् त् । पचेत् ॥ पचेताम् । पचेयु । पचेय् भि । पचेय् जुस् । पचेय् उस् । पचेयुस् । पचेयु । पचेय् मिप् । पचेय् अम् । पचेयम् १ ।

किदाशिपि ३।४।१०४

प० वि०—कित् १।१ आशिपि ७।१

अर्थ—[लिङ् यासुट् परस्मैपदेपूदात्त] परस्मैपदेपु आशिपि लिङो यासुडागमो भवति, स चोदात्तो भवति किच्च ।

(परस्मैपद में आशीर्वाद में वतमान जो लिङ् उसको यासुट् का आगम होता है और वह उदात्त होता है और वह कित् होता है)

उदा०—उच्यात् । उच्चास्ताम् । उच्यासु । उच्या । उच्यास्तम् । उच्यास्त । उच्यासम् । उच्यास्व । उच्यास्म । इज्यात् । इज्यास्ताम् । इज्यासु । इज्या । इज्यास्तम् । इज्यास्त । इज्यासम् । इज्यास्व । इज्यास्म । जागर्यात् । जागर्यास्ताम् । जागर्यासु । जागर्या । जागर्यास्तम् । जागर्यास्त । जागर्यासम् । जागर्यास्व । जागर्यास्म ॥

सि०—ऋगुणवृद्धिप्रतिषेधस्तुल्य ङिति किति वा उभयत्रापि भवि तुमर्हति परञ्च सम्प्रसारण जागर्तेर्गुणे च विशेष तच्च कित्येन समवति न ङितिः । उच्यात् । वच् लिङ् । वच् तिप् । वच् यासुट् सुट् ति । वच् याम् स् त् । उ अ च् यास् स् त् । उच् या' स् त् ।

इज्यान् । इज्यान् । यज् लिङ् । यज् तिप् । यज् यामुट् तिप् । यज् यामुट् मुट् तिप् । इ^३ अ ज् याम् स् ति । इज् यास् स् त् । इज् याम् त् । इज्यान् । जागृ लिङ् । जागृ तिप् । जागृ ति । जागृ यामुट् ति । जागर् यास् स् ति । जागर् यास् त् । जागर् यान् । जागर्यान् ।

• ऋस्य रन् ३।४।१०५

प० वि०—ऋस्य ६।१ रन् १।१

अर्थ—[लिङ्] लिङादेशस्य ऋस्य म्याने रन् इत्ययमादेशो भवति ।
(लिङ् के स्थान में जो घ्रादेश ऋ उसके स्थान में रन् यह घ्रादेश होता है)
उदा०—पचेरन् । पचरेन् ॥

इटोज् ३।४।१०६

प० वि०—इटः ६।१ अन् १।१

अर्थ—[लिङ्] लिङादेशस्य इटः स्थाने अन् इत्ययमादेशो भवति ।
(लिङ् के स्थान में जो घ्रादेश इट् उसके स्थान में अन् यह घ्रादेश होता है)
उदा०—पचेय । पच्येय । पक्षीय । पक्षिपीय ।

सुट् तिथोः ३।४।१०७

प० वि०—मुट् १।१ तिथोः ६।२ म०—तिश्च थश्चेति तिथौ तयोः ।

अर्थ—[लिङ्] लिङ् लकार सम्बन्धिनस्तकारथकारयोः मुडागमो भवति । (लिङ् लकार सम्बन्धी लकार और लकार को मुट् का घागम होता है)
उदा०—पक्षिपीष्ट । पक्षिपीयाम्नाम् । पक्षिपीष्टाः । पक्षिपीयाम्नाम् ।

भूयान् । भूयाम्नाम् । भूयाम्नम् । भूयाम्न । विभ्यादिषु लिङि मकार-
द्वयस्यापि निवृत्तिः । मुटः अगुं त्वाशीर्लिङि, मुट्त्वरन्तु त्वात्मनेपदे ।
कथ्यत्रेष्टं योष्यम् । भू याम् भू त् इत्यत्र भ्यनि तनारे परतो यामुटः
सकारस्य स्तो संयोगाद्योरन्ते चेति लोपः, पुनरत्र पदान्ते मुटः सकार-
धारयोः संयोगादेः मकारस्यापि स्तोः संयोगाद्योरित्यनेर्नय लोपः ।
निमित्तभेदान् अस्य मूर्तस्य पुनः प्रवृत्तिर्वै यावै

भेजुंम् ३।४।११८

प० वि०—भेजुः ६।१ जुम् १।१

अर्थ—[लिङ्] लिङादेशस्य भेजुः म्याने जुम् इत्ययमादेशो भवति ।

(लिङ् के स्थान में जो आदेश कि उसके स्थान में जुस् यह आदेश हो जाता है)

उदा०—पचैयु । पच्यासु । भवेयु । भूयासु ।

सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ३।४।१०६

प० वि०—सिजभ्यस्तविदिभ्य ५।३ च अ० । स०—सिच
अभ्यस्तश्च विदिश्च इति सिचभ्यस्तविदय सेभ्य ।

अर्थ—[डित केर्जुस] सिच परम्य अभ्यस्तसङ्गकेभ्यो वेत्तेरचो
परस्य डितलकारसम्बन्धिनो केर्जुस् आदेशो भवति । (सिच् के पश्चात्
अभ्यस्तसङ्ग के पश्चात् तथा विद् धातु के पश्चात् डित लकार सम्बन्धी
कि के स्थान जुस् आदेश होता है)

उदा०—सिच-अकार्पु । अभ्यस्तात्-अविभयु । अजिह्वयु ।
अजागरु । विदे-अविदु ।

सि०—अवापु । डक् । कृ लुङ् । कृ लु । कृ कि । कृ सिच्
कि । कार् लु कि । कार् लु जुम् । कार्पुस् । अद् कार्पु । अकार्पु ।
अनिभयु । विभी । भी लङ् । भी ल् । भी ल् । भी कि । भी भी कि ।
विभी कि । वि भी उस् । विभे उस् । विभय् उस् । विभयु । अद् विभयु ।
अविभयु । अजिह्वयु । ह्री लृजायाम् । ह्री लङ् । ह्री ल् । ह्री कि । ह्री
ह्री कि । ह्री ह्री कि । हि ह्री कि । कि ह्री कि । जि ह्री कि । जि ह्री
जुस् । जि ह्री उस् । जिह्वयु । अद् जिह्वयु । अजिह्वयु ।

आत ३।४।११०

प० वि०—आत ५।१

अर्थ—[सिच डित] डितलकारसम्बन्धिन सिच आकारान्ताच्च
परस्य केर्जुस् आदेशो भवति ।

ऋषेणैव सिद्धे नियमार्थे वचनमिदम् । आत एर सिजलुगन्तात्
नान्यस्मादितिक् ।

(डित लकार सम्बन्धी जो सिच् और अकारान्त उसके पश्चात् कि के
स्थान में जुम आदेश होता है)

उदा०—अदु । अपु ।

सि०—न लुङ् । न ल् । न कि । दा सिच् कि । दा' जुस् ।

१—मातिर्याधुपाभूम्य सिच परस्मैपदेषु (२ ४ ७७)

दुः । अट् दुः । अदुः ।

लट्, शाकटायनस्यैव ३।४।१११

प० वि०—लट्: ६।१ शाकटायनस्य ६।१ एव अ० ।

अर्थ—[आन० केर्तुम्] आमारान्नादुनस्य लडादेशस्य केर्तुम् आदेशा भवति शाकटायनाचार्यस्य मतेन । (आकारान्न धातु क पश्चात् लट् के स्थान में जो आदेश कि उसके स्थानमें जुम आदेश होता है शाकटायनाचार्य के मत में ।)

उदा०—अयुः । अयुः । अन्येषां मते अयान् । अयान् ।

क्षिप्रं इत्यनुषर्त्तते तेन लडेशमारान्नादनन्तरं विन् संभवति नान्यस्मान् । तत्किं लङ्प्रहरणेन । एवं तर्हि लङेन यो ग्रहितमन्स्य यथा स्यात् । लङ्प्रहारेण यन्तस्य भा मून् । लोढो लङ्प्रह इति यान्त्तु, यान्तुः

द्विपश्च ३।४।११२

प० वि०—द्विपः ५।१ च अ० ।

अर्थ—[लट्: शाकटायनाचार्यस्यैव] द्विप परस्य लडादेशस्य केर्तुम् आदेशा भवति शाकटायनाचार्यस्य मतेन ।

(द्विप् धातु के पश्चात् लट् क स्थान में जो आदेश कि उसके स्थान में जुम् आदेश होता है शाकटायनाचार्य के ही मत में)

उदा०—अद्विपुः । अद्विपन् ।

तिट्, शित्मादेवानुकम् ३।४।११३

प० वि०—तिट् शित् १।१ सार्वधानुकम् १।१ स०—तिट् च शिथ इति तिट् शित् ।

अर्थ—तिट्: शित्प्रत्ययाः सार्वधानुकमन्ता भवन्ति ।

(तिट् धोर शकार इव बाने प्रत्यय की सार्वधानुक मन्ता होती है)

उदा०—पचति । पचतः । पचन्ति ।

आर्चधानुक शेष ३।४।११४

प० वि०—आर्चधानुकम् १।१ शेषः १।१॥

अर्थ—शेषः प्रत्यय आर्चधानुकमन्ता भवन्ति । (तिट् धोर शकार इव बाने प्रत्यय की शोडश शेष प्रत्यय की आर्चधानुक मन्ता होती है)

उदा०—भवति । भवितुम् । भवितव्यम् ।

लिट् च ३।४।११५

प० वि०—लिट् १।१ च अ० ।

अर्थ—[आर्धधातुकम्] लिटः स्थाने तिवादयः आर्धधातुकसंज्ञा भवन्ति । (लिट् भी आर्धधातुक सञ्ज्ञा होता है)

उदा०—ददे । दधे ।

सि०—ददे । दा लिट् । दा लृ । दा त । दा दा त । द दा त । ददा एश् । ददा ए । ददृ ए । ददे । दधे ॥

लिङाशिपि ३।४।११६

प० वि०—लिङ् १।१ आशिपि ७।१

अर्थ—आशिपि यो लिङ् स आर्धधातुकसंज्ञो भवति ।

(आशिर्वादि अर्थ में जो लिङ् उसकी आर्धधातुक सञ्ज्ञा होती है)

उदा०—लविपीष्ट । लविपीयास्ताम् । लविपीरन् ।

छन्दस्युभयथा ३।४।११७

प० वि०—छन्दसि ७।१ उभयथा अ० ॥

अर्थ—छन्दसि विषये उभयथा भवति, सार्वधातुकम् आर्धधातुकं च ॥ (छन्द के विषय में दोनों प्रकार में होता है है अर्थात् सारे प्रत्ययों की सार्वधातुक और आर्धधातुक सञ्ज्ञा भी होती है)

उदा०—वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयः ।

सि०—वृधु । वृध् णिच् । वृध् इ । वर्धि लोट् । वर्धि लृ । वर्धि क्ति । वर्धि अन्ति । वर्धि अन्तु । आर्धधातुकत्वान्णोरनिटि इति येल्लोपो भवति ॥ वर्धन्तु । वर्धयन्तु ज्ञान प्राप्ते ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणज्ञमहावैयाकरणपण्डितब्रह्मदत्ता-

चार्याणामन्तेवासिना देवप्रकाशपातञ्जलेन विर-

चितायामष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया

तृतीयाध्याये चतुर्थं पादः

इति तृतीयोऽध्यायः

ट्याप्रातिपदिकात् ४।१।१

प० नि०—ट्याप्रातिपदिकान् ५।१।१

छोटी-गज्जेने डम्प्रान्त्यानुग्या डीप्-डीप्-डीन्-प्रयोग सामान्येन गृह्यन्ते एवम् आप् शब्देन टाप्-टाप्-चाप्-प्रयोग डम्प्रान्त्यानुग्या छोटी च आप् च प्रातिपदिकञ्चेति ट्याप्रातिपदिकम् तन्मान् ।

(यहा डी शब्द से टाप् टीप् टोन् इन तीन प्रयोगों के अन्तर्प प् प् न् अनु-बन्धा—इतिजका का लोप करके मामान्य 'डो' रूप न ग्रहण होता है। इसी प्रकार आप्-शब्द से टाप् टाप् चाप् इन प्रत्ययों के आदि के ट् ट् ड् का लोप करके मामान्य 'आप्' रूप से ग्रहण होता है)

अर्थ—[प्रत्यय, परस्मै] ट्यन्ताद् आगन्तान् प्रातिपदिकाच्च टोऽप्ये आ पञ्चमात्यापरिममाणे वक्ष्यमाणा प्रयोग भवन्ति इत्यधि-कारो वेदितव्यः । (यहा म आ पञ्चम अन्त्या पर्यन्त जा भी प्रयोग बहु जायगे के सभी डी और आप् प्रत्यय जिस क शब्द में है उन से तथा प्रातिप-दिक से होंगे इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

स्वौजममोट् छष्टाभ्याभिन्देभ्याभ्यम्ट्सिभ्याभ्यम्ट्सो-
नाम्ह्योम्मुप् ४।१।२

प० नि०—सु-ओ-जस् अम्-ओट्-गम्-टा भ्याम्-भिम्-हे-भ्याम्-भ्यम्-ट्सि भ्याम्-भ्यन्-इस्-ओस्-आम्-टि-ओम्-मुप् १।१ स०—
मुग्ध ओश्च जश्च अं च ओट् च शश्च टाश्च भ्यांश्च भिरश्च हेश्च
भ्यांश्च भ्यश्च ट्सिश्च भ्यांश्च भ्यश्च टग्च ओश्च आञ्च टिग्च ओश्च
मुप् च इति सु ओ जम्-अम् ओट् गस टा-भ्याम् भिम् हे-भ्याम्-भ्यम्-
ट्सि भ्याम्-भ्यम्-इस्-ओम्-आम् टि-ओन्-मुप् (समाहारो द्वन्द्वे)

अर्थ—[ट्याप्रातिपदिकान् प्रत्ययः परस्मै] ट्याप्रातिपदिकान् स्वादय प्रयोगा भवन्ति । (इत्यन्त आगन्त और प्रातिपदिक के परस्मै स्वादि प्रयोग होते हैं)

उदा०—डोप्—कुमारी । कुमार्यौ । कुमार्यः । कुमारीन् । कुमार्यौ ।
कुमारी । कुमार्यौ । कुमारीभ्याम् । कुमारीभिः । कुमार्यै । कुमारीभ्याम् ।
कुमारीभ्यः । कुमार्यौ । कुमारीभ्याम् । कुमारीभ्यः । कुमार्याः । कुमार्यौ ।
कुमारीणाम् । कुमार्याम् । कुमार्यौ । कुमारीषु । हे कुमारि । हे कुमार्यौ ।
हे कुमार्यः ॥

डीप्—गौरी । डीन—शाङ्गरनी ॥

टाप् सट्वा । सट् वे । सट्वा । सट्वाम् । सट्वे । खट्वा ।
सट्वाया । खट्वाभ्याम् । खट्वाभि । खट्वाये । खट्वाभ्याम्
सट्वाभ्य । खट्वाया । खट्वाभ्याम् । खट्वाभ्य । खट्वाया । सट्वा
खट्वानाम् । खट्वायाम् । सट्वाया । सट्वायाम् । हे सट्वा । सट्वा । इ
खट्वा ॥ डाप्—बहुराजा । चाप्—कारोपगन्था ॥ प्रातिपदिक—
दृपद् । दृपत् । दृपन् । दृपत् । दृपन्म् । दृपन् । दृपन् । दृपन् ।
दृपद्भ्याम् । दृपद्भि । दृपदे । दृपद्भ्याम् । दृपद्भ्य । दृपत् ।
दृपद्भ्याम् । दृपद्भ्य । दृपत् । दृपन् । दृपन् । दृपदाम् । दृपन् । दृपन् ।
दृप सु । हे दृपद् । इ दृपन् । हे दृपन् ॥

सि०—कुमारी सु । कुमारी स् । कुमारी^१ ॥ कुमारी औ^२ ।
कुमार्यौ^३ । कुमारी जम् । कुमारी अस् । कुमार्य^४ । कुमारी अम् ।
कुमारीम्^५ । कुमारी आट् । कुमारी ओ । कुमार्या^६ । कुमारी शस् ।
कुमारी अस् । कुमारीस्^७ । कुमारी । कुमारो टा । कुमार्यौ^८ । कुमारी
भ्याम् । कुमारीभि । कुमारी डे । कुमारी आट्^९ डे । कुमारी आ ए ।
कुमारी ऐ^{१०} । कुमार्ये । कुमार्या । कुमारी डसि । कुमारी अस् । कुमारी
आट्^{११} अस । कुमारी आ । कुमार्या । कुमार्यौ । कुमारी आस् ।
कुमाया । कुमारी आम् । कुमारी नुट्^{१२} आम् । कुमारी नाम । कुमारी
णाम् । कुमारी डि । कुमारी आट्^{१३} इ । कुमारी आ आम्^{१४} । कुमारी
आम् । कुमायाम् । कुमारी सुप् । कुमारी सु । कुमारीपु । हे कुमारि ।
कुमारी सु । कुमारि^{१५} स् । कुमारि ॥

एव गौरी शाङ्गरनी इति ।

खट्वा । खट्वा सु । खट्वा स् । खट्वा । खट्वा औ । खट्वा
शौ^{१६} । खट्वा ई । खट्वे । खट्वा जस् । खट्वा । खट्वा टा । खट्वे

- १—हलङ्याभ्या दीर्घा सुतिस्मृपृक्त हल (६ १ ६६) अपृक्त एका
प्रत्यय (१ २ ४१) २—प्रथमयो पूव सवण (६ १ ९८) दीर्घजिति
च (६ १ १०१) ३—इको यणचि (६ १ ७४) ४—अभि पूव (६ १ १०३)
५—प्रथमयो पूवसवण (६ १ ६८) ६—यु स्याद्वो नदी (१ ४ ३)
आणद्या (७ ३ ११२) आद्य तो टकितो (१ १ ४५) ७—आटश्च (६ १
८७) ८—ह्रस्वनद्यापो नुट् (७ १ ५४) ९—हराम्नद्याम्नाभ्य (७ १ ११६)
१०—अम्वायनद्योह्रस्व (७ ३ १०७) ११—ओङ आप (७ १ १८)

आ^१ । सट्वायै । सट्वायै । सट्वा डे । सट्वा याट्^२ म् ।
सट्वा यै^३ । सट्वायै । सट्वा डमि । सट्वा अम् । सट्वायाः ।
सट्वायाम् । सट्वा डि । सट्वा आम् । सट्वा याट् आम् ।
सट्वायाम् । हे सट्वे । सट्वा नु । सट्वे^४ म् । सट्वे^५ ॥

एवं बहुराजा कारीपगन्त्या इति ।

दृपद् । दृपन्^६ । अन्यस्मिन् स्पष्टम् ॥

स्त्रियाम् ४।१।३

प० वि०—स्त्रियाम् ७।१

अर्थ—[प्रातिपदिकान्, प्रत्ययः, परस्म्य] इतोऽप्ये वक्ष्यमाणः
प्रत्ययाः समर्थानां प्रथमाद्वेति यायन् प्रातिपदिकान् स्त्रियां भवन्ति
इत्यधिसारो वेदितव्यः (स्त्रीनिङ्ग मे वर्तमान जो प्रातिपदिक उद्यते परस्मै
भागे कहे जाने वाले प्रत्यय होते हैं, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

अजाद्यतष्टाप् ४।१।४

प० वि०—अजाद्यतः ४।१ टाप् १।१ स०—अज आदिर्येपान्ते
अजाद्यः । अजाद्यश्च अच्चेति अजाद्यन् तस्मान् ।

अर्थ—अजादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽकारान्नाच्च प्रातिपदिकान्
स्त्रियां टाप् प्रत्ययो भवति । (अज इत्यादि तथा अकारान् प्रातिपदिके
स्त्रीनिङ्ग में टाप् प्रत्यय होते हैं)

उदा०—अजा । मृदका । कोकिला । चटका । अरया । मृदवा ।
देयदत्ता ॥

मि०—अज टाप् । अज आ । अजा^१ । अजा मु । अजा म् ।
अजा ।

शृन्नेभ्यो ङीप् ४।१।५

प० वि०—शृन्नेभ्यः ४।३ ङीप् १।१ स०—शृन्त्य नश्च इति
शृन्ताः तेभ्यः । नकारेऽकार उच्चारणार्थः ।

अर्थ—[स्त्रियाम्] शृन्ताशृन्नेभ्यो नकारान्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः

१—पाठि पाठः (७. ३. १०५) २—यादायः (७. ३. १११) ३—
कुट्टिरेवि (६. १. ८५) ४—ममुदो व (७. ३. १०६) ५—एङ्गुत्वाङ्गुदः
(६. १. ६७) ६—वायमाने (८. ४. ५२) ७—द्वयः मयौ ङीप्. (६. १. १०)

स्त्रिया ङीप् प्रत्ययो भवति । (ऋकारात् और नकारात् प्रातिपदिक स स्त्रीलिङ्ग म ङीप् प्रत्यय होता है)

उदा०—कर्त्री । हर्त्री । नकारान्तेभ्य —दण्डिनी । छत्रिणी ।

सि०—कर्त् ङीप् । कर्त् ई । कर्त् र् ई । कर्त्री सु । कर्त्री स् ।
कर्त्री ॥ दण्डिन् । दण्डिन् ङीप् । दण्डिनी सु । दण्डिनी ।

उगितश्च ४।१।६

प० वि०—उगित ५।१ च अ० ॥ स०—उक् इत् यस्य सोऽयम्
उगित् तस्मात् ।

अर्थ—[ङीप्] उगिदन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रिया ङीप् प्रत्ययो
भवति । (उक् है इत् जिसका ऐसे तदत् प्रातिपदिक स स्त्रीलिङ्ग म ङीप् प्रत्यय
होता है)

उदा०—भवती । अतिभवती । भवन्ती । पचन्ती । ×धातोरुगित
प्रतिषेधो वक्तव्य × उस्मात् । पर्णोऽत् ब्राह्मणी । × अञ्चतेश्चोप
सख्यानम् × प्राची । प्रतीची । उदीची ।

सि०—भवती । भा डवतुप्^१ । भा अबत् । भू^२ अबत् । भवत् ।
भवत् ङीप् । भवती सु । भवती । भवत्यौ^३ । भवत्य । भवत्यम् । भव
त्यौ । भवती^४ । उस्मात् । उस्मात् स सते, पर्णानि ध्वसत इति । प्राची ।
प्र अञ्चु । प्र अञ्च् । प्र अञ्च् क्विन्^५ । प्र अच् । प्र च्^६ । प्रा^७ च् ।
प्राच् ङीप् । प्राची ।

न पटस्वस्त्रादिभ्य ४।१।१०

प० वि०—न अ० । पटस्वस्त्रादिभ्य ५।३ स०—पट् च स्वसा
दयश्चेति पट्स्वस्त्रादय तेभ्य । स्वसा आदिर्येपान्ते स्वस्त्रादय ।

अर्थ—पट्सङ्गकेभ्य स्वस्त्रादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्य स्त्रीप्रत्ययो न
भवति । (पट् सङ्ग और स्वस्त्र इत्यादि शब्दों से स्त्री प्रत्यय नहीं होते हैं)

उदा०—पञ्च ब्राह्मण्य । सप्त । नव । दश । स्वस्त्रादिभ्य —स्वसा ।
दुहिता । ननान्दा । याता । माता । तिस्र । चतस्र ॥

१—इको यणचि (६ १ ७४) २—भातेडवतुप् (उणा० १ ६३)
३—द्वित्पकरणसामर्थ्यादिभस्यापि टलोपो भवति (भाष्येष्टि) ४—इको यणचि
(६ १ ७४) ५—प्रथमयो पूर्वसवण (६ १ ६८) ६—ऋतिसदृशस्यदि
शुभ्रिणगञ्ठमुजिह्वञ्च च (३ २ ५६) ७—अच (६ ४ १३८) ८—चौ
(६ ३. १३८)

मन. ४।१।११

प० वि०—मनः ४।१

अर्थ—[ङीप् न] मन्तन्तान् प्रातिपदिकान् ङीप् प्रत्ययो न भवति ।
(मन्तन्त प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय नहीं होता है)

उदा०—दामा । दामानी । दामानः ।

दा मनिन्^१ । दा मन् । दामन्^२ । दामन् सु । दामान् सु । दामा ।

अनो बहुव्रीहेः ४।१।१२

प० वि०—अनः ४।१ बहुव्रीहेः ४।१

अर्थ—[ङीप् न] अग्रन्ताद् बहुव्रीहेः स्त्रिषां ङीप् प्रत्ययो न भवति ।
(मन् है अन्त में जिसके ऐसे बहुव्रीहि से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय नहीं होगा है)उदा०—सुपर्वा सुपर्वाणी । सुपर्वाणः । सुशर्मा । सुशर्माणी ।
सुशर्माणः ।सि०—सुपर्वा । शोभन पर अस्याः इति । सुशर्मा । शोभन शर्म
अस्याः इति । उभयत्र बहुव्रीहिसमासः । सुपर्मन् सु । सुपर्मान् स ।
सुपर्मान् । सुपर्वा । सुपर्मन् शी । सुपर्मान् शी । सुपर्वाणी ।

टावुभाभ्यामन्यतरस्याम् ४।१।१३

प० वि०—टार् १।१ उभाभ्याम् ४।२ अन्यतरस्याम् अ० ।

अर्थ—[अनो बहुव्रीहेः ङीप्] उभाभ्यां मन्तन्तात् प्रातिपदिनाद्
अनन्ताच्च बहुव्रीहेरन्यतरस्याम् ङाप् प्रत्ययो भवति स्त्रियाम् ।(मन्त और मन्त बहुव्रीहि इन दोनों प्रातिपदिकों से विचलन करके
स्त्रीलिङ्ग में ङाप् प्रत्यय होता है)उदा०—पामा । पामे । पामाः । सीमा । सीमे । सीमाः । न च
भवति । पामा । पामानी । पामानः । सीमा । सीमानी । सीमानः ।
अनन्तान् बहुव्रीहि—बहुराजा । बहुराजे । बहुराजाः । बहुतक्षा । बहुतक्षे ।
बहुतक्षाः । न च भवति । बहुराजा । बहुराजानी । बहुराजानः ।
बहुतक्षा । बहुतक्षाणी । बहुतक्षाणः ।

सि०—पामा । पामन् ङाप् । पामन् आ । पाम् अन् आ ।

१—पानो मनिन्ब्रजनिब्रज (३. ७ ७४) २—अनेम्यो ङीप् (४.

१. ५) मन. (४. १. ११)

पाम्^१ आ । पामा सु । पामा । पामा । पामन् सु । पामान् स् । पामा ।
बहुराजा । बहवो राजानो अस्यां नगर्याम् इति बहुराजा नगरी ।
बहवः तक्षानोऽभ्यां नगर्यामिति बहुतत्ता नगरी ।

बहु जस् राजन् जस । बहुराजन् डाप् । बहुराज्^२ आ । बहुराज
सु । बहुराजा । बहुराजा औ । बहुराजा ई । बहुराजे ।

अनुपसर्जनात् ४।१।१०

प० वि०—न उपसर्जनमिति अनुपसर्जनम् दस्मात् ।

अर्थ—इतोऽप्रे समर्थानां प्रथमाद्वेति यावत् वक्ष्यमाणा प्रत्ययाः
अनुपसर्जनाद् भवन्ति इत्यधिकारो वेदितव्यः ।

(समर्थानां प्रथमाद् वा इस सूत्र तक आगे कहे जाने वाले प्रत्यय अनुप-
सर्जन से होते हैं, इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

अत्र 'अप्रधानमुपसर्जनम्' इति पूर्वाचार्यवचनानुसारम् उपसर्जन-
शब्देन अप्रधानम् अर्थात् गौणम् इत्यर्थो गृह्यते, न तु प्रथमानिर्दिष्ट-
समास उपसर्जनम् । तेन कुरुचर-आदिषु टित्प्रत्ययान्तस्यार्थस्य
प्राधान्यात् 'टिट्ढाणञ्' इति ङीप् भवति 'बहुकुरुचरा' इत्यादिषु
बहवः कुरुचरा अस्यां नगर्याम् इति बहुव्रीहिसमास अन्यपदार्थस्य प्रा-
धान्यात् टिटन्तस्य कुरुचरपदस्यार्थोऽप्रधानो भवति अतो ङीप् न भवति,
अजाद्यतष्टाप् इति टाप् भवति ।

इस सूत्र में उपसर्जन शब्द से 'अप्रधान' अर्थात् 'गौण' यह प्रथं समझना
चाहिए । 'प्रथमानिर्दिष्ट' (१. २. ४३) सूत्र विहित उपसर्जन सज्ञा नहीं लेनी
चाहिए । कुरुषु चरतीति कुरुचर' (कुरु देश में विचरने वाला) में टित् प्रत्ययान्त
शब्द के अर्थ की प्रधानता है इसलिए 'टिट्ढाणञ्' (४. १. १५) सूत्र से
ङीप् हो जाता है । परन्तु 'बहवः कुरुचराः सन्ति अस्यां नगर्याम् सा बहुकुरु-
चरा' (बहुत से कुरु देश में विचरने वाले मनुष्य हैं जिस नगरी में) इस
बहुव्रीहि समास में अन्य पदार्थ 'नगरी' की प्रधानता है 'कुरुचर' की
नहीं । अतः यहाँ टिटन्त कुरुचर के गौण होने से ङीप् प्रत्यय नहीं होता ।

टिट्ढाणञ्द्वयसज्दध्नञ्मात्रचतयपठक्ठञ्क्ववरपः ४।१।१५

प० वि०—टिट्ढाणञ्द्वयसज्दध्नञ्मात्रचतयपठक्ठञ्क्ववरपः
५। १ स०—टिच्च ठश्च थश्च च अञ्च द्वयसञ्च दध्नञ्च मात्रञ्च

१—यचि भम् (१. ४. १८) टे: (६. ४. १४३)

तयप् च ठक् च ठञ्च कञ्च क्वरप् च इति टिड्ढाण्यद्वयसङ्घट्टन-
मात्रचतुष्टयपठन्ठञ्कञ्क्वरप् तन्मान् ।

अर्थ—[अनुपसर्जनात् स्त्रियां ङीप् प्रातिपदिकान्] टिड्ढादिभ्योऽ-
नुपसर्जनेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति । (टिड्ढादि
अनुपसर्जनञ्जो प्रातिपदिके उभये स्त्रीलिङ्गे मे ङीप् प्रत्यय इति ३)

उदा०—टिन्—कुरुचरी । मद्रचरी । ढ—सौपर्णेयी । वनतेयी ।
अण्—कुम्भकारी । अन्—औत्सी । औत्पानी । इयमच्—उम्द्वयमी ।
जानुद्वयसी । दणञ्—उरद्वयमी । जानुद्वयमी । मात्रच्—उम्मात्री ।
जानुमात्री । तयप्—पञ्चतयी । दणययी । ठक्—आजिनी । शाला-
फिकी । ठञ्—लागणिकी । कञ्—यादृणी । तादृशी । क्वरप्—
इवरी । नयरी । X नञ्जनञ्जीञ्कुरुयुन्तरुणतलुनानामुपसर्ग्यानम् X
नञ्—मैरणी । स्तञ्—पौम्नी । डंञ्—शान्तीनी । याष्टीनी । रयुन्-
आद्वयद्वरणी । मुभगद्वरणी । तरुण । नरुणी । तलुन । तलुनी ॥

सि०—कुरुचरी । कुरुचरतीति । कुरु सुप् चर ट । कुरुचर । कुरुचर
ङीप् । कुरुचर् ई । कुरुचरी सु । कुरुचरी स् । कुरुचरी ॥ सौपर्णेयी ।
सुपर्ण्याः अपत्यं स्त्री चेत् सौपर्णेयी । सुपर्णी इम् ठक् । सुपर्णी ट ।
सुपर्णी ण्य । सुपर्णी ण्य अ । सुपर्णी ण्य । सौपर्णी ण्य । सौपर्णेय ङीप् ।
सौपर्णेय ई । सौपर्णेयी । सौपर्णेयी सु । सौपर्णेयी ॥ वनिताया अपत्य
स्त्री चेदिति येनतेयी । कुम्भकारी । कुम्भं करोतीति । कुम्भ अम् कृ
अण् । कुम्भकार । कुम्भकार ङीप् । कुम्भनार् ई । कुम्भकारी सु ।
कुम्भकारी ॥ नगरकारी ॥ औत्सी । उभय उदपानम्य वा अयं स्त्री
चेत् ॥ उम् इम् अञ् । दम् अ । औत्स । औत्स ङीप् । औत्स ई ।
औत्सी सु । औत्सी । उम्द्वयसी । उर प्रमाणमन्या, जानुः
प्रमाणमन्या इति । उरनु द्वयमच् । उम्द्वयम् ङीप् । उम्द्वयमी -
उरद्वयमी सु । उरद्वयसी ॥ पञ्चनयी । पञ्च अवयवा अस्या इति ।
पञ्चन् जस् तयप् । पञ्चन् तय । पञ्चतय ङीप् । पञ्चतयी ।

प्राजिनी । अक्षैर्दिव्यति गलासामिर्दिव्यतीति ॥ अक्ष मिम् ढक् ।
अक्ष ठ । अक्ष ढक् । अक्ष् ढक् । आक्ष् ढक् । आक्षिनी ङीप् । आक्षिणी

१—स्त्रीयां ढक् (४. १. १२०) २—उत्पादिभ्योऽङ् (४. १. ८६) ३—
प्रमाणे द्वयमच्द्वयमात्रच (४. २. १७) ४—सम्याया अयमेव तयप् (४. २.
४२) ५—तेन दीव्यति वनति जयति जितम् (४. ४. २)

सु । आक्षिकी ॥ लावणिकी । लवण पण्यमस्या इति । लवण सु ।
ठञ् । लवण इक । लवण इक । लावणिक डीप् । लावणिकी ॥
यादृशी । यद् दृश् कञ् । यादृश । यादृश डीप् । यादृश् ई । यादृशी ॥
इत्वरी । इण् गती । इ क्वरप् । इ वर । इ तुक् वर । इत्वर डीप् ।
इत्वरी ॥ नश्वरी ॥ स्त्रीणी । स्त्रिया इयम् । पुंस इयम् इति विग्रहः ॥
स्त्री डस् नञ् । स्त्रै न । स्त्रैण डीप् । स्त्रैणी सु । स्त्रैणी । पुंस डस्
न । पौस्न डीप् । पौस्नी ॥ शाक्तीकी । शक्तिः प्रहरणमस्या इति
विग्रहः । शक्ति सु ईकक् । शक्ति ईक । शम्त् ईक । शाक्त् ईक ।
शाक्तीक डीप् । शाक्तीकी सु । शाक्तीकी । यष्टिः प्रहरणमस्या इति
विग्रहः । कृतस्त्री तलुनी अत्र मुरादौ विषये अभिनयमात्रेऽर्थे तरुणतलुन-
शब्दाभ्यां ङोव् घेदितव्यः । यदा तु वयो विवक्ष्यते तदा गौरादिपाठान्
ङीपा भवितव्यम् ॥॥

यञश्च ४।१।१६

प० वि०—यञ् ५।१ च अ० ॥

अर्थ—[ङीप्] यञन्ताच्च प्रातिपदिकान् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो
भवति । (यञ प्रत्यय है अन्त में जिसके ऐसे प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीप्
प्रत्यय होता है)

उदा०—गार्गी । वात्सी ।

सि०—गर्गस्य गोत्रापत्य स्त्री चेदिति विग्रहः । गर्ग डस् यञ् ।
गर्ग य । गर्ग् य । गर्ग् य । गार्ग्य । गार्ग्य डीप् । गार्ग्य ई । गार्ग्य
ई । गार्ग् ई । गार्गी सु । गार्गी ॥ वात्सी ॥

प्राचा ण्फ तद्धित ४।१।१७

प० वि०—प्राचाम् ६।३ ण्फः १।१ तद्धित १।१

अर्थ—[यञ.] प्राचामाचार्याणां मतेन यञन्तात् स्त्रियां ण्फ प्रत्ययो
भवति, स च तद्धितसंज्ञः ॥ कृतद्धितसंज्ञकत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञा भवति
ततश्च पित्वात् ङीप् भवति ॥॥

१—सवणादुठ्ठ (४. ४ ५०) २—त्यदादिषु दृशोऽन्तात्वात् कञ् (३
२ ६०) ३—इणनशुजिसत्तिभ्य क्वरप् (३ २. १६३) ४—म्नीपुसाभ्या
नञ्स्नजी भवनात् (४ १ ८७) ५—शवितयष्टयारीकक् (४ ४ १६)
६—गर्गादिभ्यो यञ् (४. १ १०५) ७—यस्यति च (६ ४ १४८) ८—
हन्तस्तद्धितस्य च (६ ४ १४०)

(पूर्वं देश में रहने वाले आचार्यों के मत में यजुन्त प्रातिपदिक में स्त्रीनिङ्ग में एक प्रत्यय होता है और उसकी तद्धित सज्ञा होती है) तद्धित सज्ञा होने से प्रातिपदिक सज्ञा होती है और उसमें पुनः पिङ्गीरादिभ्यश्च में ङीप् होता है

उदा०—गार्ग्यायणी । वात्स्यायनी । अन्येषां मते, गार्गी । वात्सी ।

सि०—गर्गस्य गोत्रापत्य स्त्री चेदिति विग्रहः । गार्ग्यं ङस् एक । गार्ग्यं फ । गार्ग्यं आयन । गार्ग्यं आयन । गार्ग्यायण ङीप् । गार्ग्यायणी । वात्स्यायनी ॥

वयमि प्रथमे ४।१।२०

प० वि०—वयसि ७।१ प्रथमे ७।१

अर्थ—[ङीप् अतः] क्लृप्तालकृतशरीरावस्थायीयनानिर्व्ययः प्रथमे वयसि यत्प्रातिपदिकं वर्तते तस्मान् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति । (प्रथम वय में वर्तमान जो प्रातिपदिक उसमें स्त्रीनिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है)

उदा०—कुमारी । किशोरी । व्रज्वरी ।

द्विगो. ४।१।२१

प० वि०—द्विगोः ५।१

अर्थ—[ङीप् अतः] द्विगुमञ्जकान् अदन्तप्रातिपदिकान् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति । (द्विगुमञ्जकाले अदन्त प्रातिपदिक में स्त्रीनिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है)

उदा०—पञ्चपूली । दशपूली । त्रिलोकी ।

सि०—त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिनाकी । त्रिभोरु^१ ङीप् । त्रिलोकी ॥

पत्युर्नो यज्ञमयोगे ४।१।२३

प० वि०—पत्यु. ६।१ नः १।१ यज्ञमयोगे ७।१ सः—यज्ञेन मयोगः यज्ञमयोगः तस्मिन् ।

अर्थ—पतिशब्दस्य नकारादेशो भवति यज्ञमयोगे ॥ अज्ञोऽन्यम्येति नियमाद् डकारस्य स्थाने 'पन् न', ततः ङीप् प्रत्ययस्तु नकारान्न्यादेव सिद्धः ॥ (पत शब्द का नकार आदेश हो जाता है यज्ञमयोग वयं गम्यमान होने पर) अतोऽन्यम्य के नियम में पति के ड का न होकर 'पन्' रूप होता है इसीसे ङीप् प्रत्यय तो उसके नकारान्त होने में हो हो आदेश ।

१—पिङ्गीरादिभ्यश्च (४. १. ४१) २—तद्धितार्थोत्तरपदाहारः च (२. १. ५१) भकारान्तोत्तरपदो द्विगु स्त्रिया भाष्ये इति (२. ४. ३० वा०) स्त्रीनिङ्गता ।

उदा०—वशिष्ठस्य पत्नी । ऋयजमानस्य भार्या यज्ञस्य कर्मणे
साधनत्वाद् विना तथा तदनिष्पत्तेः यज्ञस्य स्वर्गाख्यप्रधानफलप्रहीतृ-
त्वाद् वा यजमानस्य पत्नी ॥६६

सि०—पति । पत्न् ङीप् । पत्नी सु । पत्नी ।

अन्यतो [ङीप्] ४।१।४०

पिद्गौरादिभ्यश्च ४।१।४१

प० वि०—पिद्गौरादिभ्यः ५।३ च अ० । स०—पिच्च गौरादय-
श्चेति पिद्गौरादयः तेभ्यः । गौर आदिर्येपान्ते गौरादयः (बहु०)

अर्थ—[ङीप्] पिद्भ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गौरादिभ्यश्च स्त्रियां ङीप
प्रत्ययो भवति । (पकार इत् बाले तथा गौर इत्यादि प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग
में ङीप् प्रत्यय होता है)

उदा०—नर्त्तकी । खनकी । गार्ग्यायणी । वात्स्यायनी । गौरा-
दिभ्य --गौरी । मत्सी ।

सि०—मत्स्य । मत्स्य ङीप् । मत्स्य ई । मत्सी सु । मत्सी स् ।
मत्सी ।

वोतो गुणवचनात् ४।१।४४

प० वि०—वा अ० । उतः ५।१ गुणवचनात् ५।१ स०—गणम
चक्षवान् गुणवचनः (भूते काले ल्युट्)

अर्थ—[ङीप्] गुणवचनादुकारान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां वा ङीप
प्रत्ययो भवति । (गुणवाची उकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से
ङीप् प्रत्यय होता है)

उदा०—पटुः । पट्वी । मृदुः । मृद्वी ।

सि०—पटु ङीप् । पट्वी सु । पट्वी ॥

बह्नादिभ्यश्च ४।१।४५

प० वि०—बह्नादिभ्यः ५।३ च अ० । स०—बहुः आदिर्येपान्ते
बह्नादयः तेभ्यः ।

अर्थ—बह्नादिभ्य प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां वा ङीप् प्रत्ययो भवति ।
(बह् इत्यादि प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से ङीप् प्रत्यय होता है)

उदा०—बहु । बह्वी ।

सि०—बहु ङीप् । बह्व ई । बह्व ई । बह्वी ।

पुंयोगादाख्यायाम् ४।१।४८

प० वि०—पुंयोगात् ५।१ आख्यायाम् ७।१ स०—पुंसा योः पुंयोग तस्मान् ॥

अर्थ—[डीप्] पुंयोगादेवेतोर्थप्रातिपदिक स्त्रियां आख्यायां वर्तते तस्मात् डीप् प्रत्यया भवति । (पुरुष म मन्त्र्य क कारण स जा प्रातिपदिक स्त्रीलिङ्ग कौ कर्त्तृ म ममर्त्त होता है नम प्रातिपदिक से डीप् प्रत्यय होता है)

उदा०—गणस्य स्त्री गणकी । महामात्री । गोपी ।

× गोपालरादीनां प्रतिषेध × गोपालकस्य स्त्री गोपालिका, अग्नपालिका । × सूर्यादेवतायां चाद्व्यस्तव्य × सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या ।

सि०—गणस्य (ज्योतिषी की) स्त्री गणका, या तु स्य गणयति सा गणका । महामात्रस्य (प्रधानस्य) स्त्री या तु स्वयं प्राधान्यं स्थिता सा महामात्रा (प्रधाना) । गोपस्य स्त्री इति ।

इन्द्रवरुणभगवन्मृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामा-

नुक् ४।१।४९

प० वि०—इन्द्रवरुणभगवन्मृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणाम् ६।३ आनुक् १।१ स०—इन्द्रश्च वरुणश्च भगवश्च शर्वश्च रुद्रश्च मृडश्च हिमन्श्च अरण्यन्श्च यवश्च यवनश्च मातुलश्च आचार्यश्च इति इन्द्रवरुणभगवन्मृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्या तेषाम् ।

अर्थ—[डीप्] इन्द्रादीनां प्रातिपदिकानां पर स्त्रिया डीप् प्रत्ययो भवति आनुक्चागम । (इन्द्र इत्यादि प्रातिपदिका क पर स्त्रीलङ्गे में डीप् प्रत्यय होता है और आनुक् का आगम जाना है)

उदा०—इन्द्राणी । वरुणानी । भवानी । शर्वाणी । रुद्राणी । मृडानी । × हिमारण्ययोर्महत्त्वे × महद्धिमम हिमान्नी । महद्वरण्यमरण्यानी । × यवाद्दोषे × दुष्टो यवा यवानो । × यवनान्लिप्याम् × यवनानां लिपिरिति यवनानी । × उपाध्यायमानुलान्यां वा × उपाध्यायस्य स्त्री उपाध्यायी उपाध्यायानी । या तु स्य उपाध्यायति उपाध्याया सा भवति । मातुली । मातुलानी । × आचार्याद्व्यस्तव्य × आचार्याणी । आचार्या । स्वयमप्यापि स तु आचार्या एव । × अर्थज्ञत्रियाभ्यां वा × अर्थ्याणी । अर्थ्या । क्षत्रियाणी । क्षत्रिया ।

मि०—सर्वं स्पष्टम् ।

क्रीतात्करणपूर्वात् ४।१।५०

प० वि०—क्रीतात् ५।१ करणपूर्वात् ५।१

स०—करणं पूर्वमस्मिन्निति करणपूर्वम् तस्मात् ।

अर्थ—[ङीप्] करणपूर्वात् क्रीतशब्दान्ताद् अदन्तात् प्रातिपदिकान् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति । (करण है पूर्व में जिसके ऐसे क्रीतशब्दान्त अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है)

उदा०—वस्त्रक्रीती । वसनक्रीती । क्वचिन्न । धनक्रीता ।

सि०—वस्त्रेण क्रियते सा वस्त्रक्रीती । वस्त्रं टा क्रीत । वस्त्रक्रीत^१ ङीप् । वस्त्रक्रीती सु । वस्त्रक्रीती ।

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसयोगोपधात् ४।१।५४

प० वि०—स्वाङ्गान् ५।१ च अ० । उपसर्जनात् ५।१ असंयोगोपधान् ५।१ स०—स्वमेवाङ्गम् इति स्वाङ्गम् । संयोग उपधायां यस्येति संयोगोपधः, न संयोगोपध इति असंयोगोपधः तस्मात् ।

अर्थ—[अतः, वा इत्येतद् अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वेत्यतः [स्वाङ्गं यदुपसर्जनमसंयोगोपधं तदन्ताददन्तान् प्रातिपदिकान् स्त्रियां वा ङीप् प्रत्ययो भवति । (स्वाङ्गवाचो जो उपसर्जन संयोग है उपधा में नहीं जिसके ऐसे प्रकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से ङीप् प्रत्यय होता है)

उदा०—चन्द्रमुखी । चन्द्रमुखा । अतिकेशी । अतिकेशा ।

सि०—चन्द्रमुखी । चन्द्र इव मुखमस्या इति । अतिकेशी । अतिक्रान्ता केशान् ।

जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ४।१।६३

प० वि०—जातेः ५।१ अस्त्रीविषयात् ५।१ अयोपधात् ५।१

स०—स्त्रीविषयो यस्य स स्त्रीविषयः, न स्त्रीविषयोऽस्त्रीविषयः तस्मात् । यकार उपधायां यस्येति यकारोपधः । न यकारोपध इति अयकारोपधः तस्मात् ।

अर्थ—[ङीप्] जातिवाचि यत्प्रातिपदिक न च स्त्रियामेव नियतमयोपधञ्च तस्मान् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति ।

१—अत्र गतिकारकोपदानां कृद्भि सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेरिति वस्त्रवसनयो वरणयो क्रीतशब्देन कर्त्तृकरणे कृता बहुलम् इति (२. १. ३२) प्रागेव मुदत्पत्तेः समासः ।

(जिम का केवल स्त्रीलिङ्ग ही विषय नहीं है, और जिम में यकार उपधा में नहीं है ऐसे जातिवाची प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में डीप् प्रत्यय होता है)

उदा०—कुक्कुटी । सूकरी । ब्राह्मणी । वृषली । नाडायनी ।

आकृतिग्रहणा जातिलिङ्गानां च न सर्वभाक् ।

सकृदास्यातनिर्ग्राह्या गोत्र च चरणैः सह ॥

× घोषप्रतिषेधे ह्यगवयमुक्यमत्स्यमनुप्याणामप्रतिषेधः × ह्यी । गवयी । मत्सी । मनुपी ।

इतो मनुप्यजाते ४।१।६५

प० वि०—इतः ५।१ मनुप्यजाते. ५।१ स०—मनुप्यस्य जातिरिति मनुप्यजातिः तस्या ।

अर्थ—[डीप्] इकारान्तान् प्रातिपदिकान् मनुप्यजातिवाचिनः स्त्रियां डीप् प्रत्ययो भवति । (इकारान्त जो मनुप्य की जाति का कहने वाला प्रातिपदिक उसमें स्त्रीलिङ्ग में डीप् प्रत्यय होता है)

उदा०—अवन्ती । कुन्ती । दाक्षी । प्लाक्षी ।

सि०—अवन्ती । अन्तेरपत्य स्त्री चेन् । अवन्ति ज्यङ् । अवन्ति स्त्रीप् । अयन् इ । अवन्ती । कुन्ती । दक्षन् अपत्य स्त्री चेद् इति दाक्षी । दक्ष इङ् । दाक्षि डीप् । दाक्षी मु । दाक्षी । प्लाक्षी ।

ऊटुत ४।१।६६

प० वि०—ऊट् १।१ इतः ५।१

अर्थ—[मनुप्यजाते.] इकारान्तान्मनुप्यजातिवाचिनः प्रातिपदिकात् स्त्रियामूङ् प्रत्ययो भवति । (मनुप्य जाति को कहने वाले इकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ऊट् प्रत्यय होता है)

उदा०—कुरुः । ब्रह्मन्नुः । वीरन्नुः ।

सि०—कुरोरपत्यं स्त्री इति कुरुः । कुरु यङ् । कुरु ऊट् । कुरु ऊ । कुरु मु । कुरुः ।

ब्रह्म वन्धुरस्या वीरो कन्धुरस्या इति विग्रहः । कृत्रह्मन्धूवीरवन्धूशब्दो कस्याञ्चिदेवजातो वर्ततेकृ

१—वृद्धेत्ताशलाबादात् ज्यङ् (४. १. १७१) २—स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुम्यश्च (४. १. १७६) ३—अत इङ् (४. १. ६५) ४—कुरुनादिभ्यो ष्यः (४. १. ७२) ५—स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुम्यश्च (४. १. १७६) ।

उग्रा०—व्यङ्; व्यङ्श्च सामान्यग्रहणमेतत् । आम्बष्ठ्या ।
सौवीर्या । कौसल्या । व्यङ्—कारीपगन्ध्या । कामुदगन्ध्या । वाराह्या ।
वालाक्या ।

सि०—आम्बष्ठस्य सौवीरस्य कौसलस्य वा अंपत्यम् स्त्री इति
आम्बष्ठ्या^१ । सौवीर्या^१ । कौसल्या^१ । आम्बष्ठ डस् व्यङ्^१ ।
आम्बष्ठ^२ य । आम्बष्ठ्य चाप् आम्बष्ठ्या^३ । कारीपगन्ध्या । करी-
पस्य गन्ध इव गन्धो यस्येति विग्रहः । करीपगन्ध डस् ड । करीपगन्ध
इ । करीपगन्धि टस् अण्^४ । कारीपगन्ध अण् । कारीपगन्ध् अ ।
कारीपगन्ध । कारीपगन्ध् व्यङ्^५ । कारीपगन्ध् य । कारापगन्ध्य चाप् ।
कारीपगन्ध्या । कारीपगन्ध्या सु । कारीपगन्ध्या स् । कारापगन्ध्या ।

वराहस्य अपत्यं पुमान् । वराह डस् टञ् । वाराहि । वाराह व्यङ्
वाराह्य चाप् । वाराह्या सु । वाराह्या । वालाक्या ।

तद्धितप्रत्ययप्रकरणम्

तद्धिता. ४।१।७६

प० वि०—तद्धिताः १।३ स०—तस्मै हितम् इति तद्धितम्ते तद्धिताः ।

अर्थ—इतोऽप्ये आ पञ्चमाध्यायपरिसमाप्ते. वक्ष्यमाणाः प्रत्ययाः
तद्धितसङ्गताः भवन्त इत्यधिकारो वेदितव्यः । (इसके प्रागे पञ्चम अध्याय
पर्यन्त कहे जाने वाले प्रत्ययो की तद्धित सज्ञा हाती है, इस बात का अधिकार
समझना चाहिए)

यूनस्ति. ४।१।७७

प० वि०—यूनः ५।१ तिः १।१

अर्थ—युवन् शब्दात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां तिप्रत्ययो भवति ।
(युवन् प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ति प्रत्यय होता है)

उदा०—युवतिः ।

सि०—युवन् ति । युवति ॥ युवति ।

१—वृद्धताशलाजादाञ् व्यङ् (४. १. १७१) २—यचि भम् (१. ४.
१८) यस्येति च (६. ४. १४८) ३—प्रकः सवर्णं दीर्घः (६. १. ६७) ४—
अनेकमन्यपदार्थे (२. २. २४) उपमानाच्च (५. ४. १३७) ५—तस्यापत्यम्
(४. १. ६२) ६—अणिजोरनार्ययोर्बु लोत्तमयोः व्यङ् गात्रे (४. १. ७८)

अणिजोरनार्पयो गुरुपोत्तमयो प्यङ् गोत्रे ४।१।७८

प० वि०—अणिबो. ६।२ अनार्पयो. ६।२ गुरुपोत्तमयो ६।२ प्यङ् १।१ गोत्रे ७।१ स०—अण् च इञ्च इति अणिबौ तथाः अणिबोः । न आपो तयो । त्रिप्रभृतीनामन्त्यमत्तरमुत्तमम् । उत्तमस्य समीपम् उपोत्तमम् । गुरु उपोत्तम यस्य प्रादिपठिकस्ति ति गुरुपोत्तमम् तयो. ।

अर्थ—गोत्रे यावणिबौ त्रिहितायनार्पो तदन्तयो प्रातिपठिक्यो-
गुरुपोत्तमयो. स्त्रियां प्यङादेशो भवति ।

(गोत्रापत्य में जो विधान किये गए अण् और इञ्, प्रत्यय ऋषिवाची नहीं तदन्त उत्तम के समीप गुरु अक्षर वाल प्रातिपठिक के स्थान में स्त्रीलिङ्ग में प्यङ् आदेश हाता है)

उदा०—ऋनिर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति इत्यण् इञ् इत्येतयोस्स्थाने प्यङ् आदेशो भवति ।

अण् —कारीपगन्ध्या । कीमुदगन्ध्या । इञ् -वाराणा । बालाक्य ॥

समर्थाना प्रथमाद् वा ४।१।८२

प० वि०—समर्थानाम् ६।३ प्रथमात् ५।१ वा अ० ।

अर्थ—इतोऽप्ये षड्यमाणा तद्धिता प्राग्दिशो विभक्तिरितियावत् समर्थानां य. प्रथम तस्मात् वा भवन्ति इत्यधिकारो वेदितव्य ।

(यहा से आगे नहे जान वाले प्राग्दिशो विभक्ति इस सूत्र तक जा प्रथम प्रकृति उस प्रातिपठिक से हाता है, इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

प्राग्दीव्यतोऽण् ४।१।८३

प० वि०—प्राक् १।१ दीव्यत. ५।१ अण् १।१

अर्थ—तेन दीव्यति खनति जयति जितम् इति एतस्मात् प्राक् अण् प्रत्ययो भवति इत्यधिकारो वेदितव्य. ।

(तेन दीव्यति खनति जयति जितम् इस सूत्र के पूर्व अण् प्रत्यय होता है, इस बात का अधिकार समझना चाहिए ।

• ऋअधिकार परिभाषा विधिर्वेति त्रिष्वपि दर्शनेषु अपवादविषयं परिहृत्य अण् प्रवर्त्ततेः

प्राग्दीव्यतोऽण् इस सूत्र को अधिकार सूत्र, परिभाषा सूत्र या विधि सूत्र इन तीनों प्रकारों में से किसी भी प्रकार का सूत्र माना जाय फिर भी अपवाद विषय से छोड़कर इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है)

अश्वपन्यादिभ्यश्च ८।१।८

प० वि०—अश्वपन्यादिभ्य ५।३ च अ० । स०—अश्वपतिरादि-
र्यदा ते अश्वपन्यादय तेभ्य ।

अर्थ—अश्वपन्यादिभ्य प्रातिपदिकेभ्य प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु अण्
प्रत्ययो भवति । (अश्व इत्यादि प्रातिपदिकानि न प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु भे
दग्न प्रत्यय हाता है)

उदा०—आश्वपनम् । शान्पनम् । अश्वपति । शतपति । धनपति ।
गणपति । राष्ट्रपति । कुत्रपति । गृहपति । गान्धरपति । पशुपति । धर्मपति ।
सभापति । प्राणपति । क्षेत्रपति ।

दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्य ८।१।८।

प० वि०—दिति-अदिति-आदित्य-पत्युत्तरपदान् ४।१ एव १।॥
स०—दितिश्च अदितिश्च आदित्यश्च पत्युत्तरपदञ्चेति दित्यदित्या
दित्यपत्युत्तरपदं सम्भा । पति उत्तरपदं यस्य तत् पत्युत्तरपदम् ।

अर्थ—दिति अदिति आदित्य इत्येतेभ्य पत्युत्तरपदान्च प्राति
पदिकान् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो भवति ।

(दिति अदिति आदित्य भोर पति पदं है उत्तर पदं जिनका एस प्राति
पदिक न प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु भेदग्न प्रत्यय हाता है)

उदा०—दैत्य । आदित्य । आदित्यम् । पत्युत्तरपदान्-प्राजा
पत्यम् । सैनापत्यम् ।

उत्सादिभ्योऽञ् ४।१।८६

प० वि०—उत्सादिभ्य ५।३ अञ् १।१ स०—उत्स आदिर्येपा ते
उत्सादय तेभ्य ।

अर्थ—उत्सादिभ्य प्रातिपदिकेभ्य प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेष्वञ् प्रत्ययो
भवति । (उत्स इत्यादि प्रातिपदिकानि न प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु भेदग्न प्रत्यय
हाता है)

उदा०—औत्स । औत्सपान ।

स्त्रीषु साम्या नञ्स्त्वञ्चो भवनात् ४।१।८७

प० वि०—स्त्रीषु साम्याम् ५।३ नञ्स्त्वञ्चो १।३ भवनान् ५।१ स०—
स्त्री च पुमांश्च इति स्त्रीषु मौ साम्याम् । नञ् च स्त्वञ्च इति नञ्स्त्वञ्चो ।

अर्थ—[प्राक्] घा यानां भ ने इत्येतस्मान् प्राक् ये अर्था विदिता
तेष्वर्थेषु स्त्रीशब्दात् पुंशब्दाच्च यथासकृन् नञ्स्त्वञ्चो प्रत्ययो भवति ।

(धान्यानां भवनं इति सूत्रं क पठने जितेन अथ विधानं किये गये हे उन अर्थों में स्त्री और पुंम् शब्द से क्रमशः नञ् और सञ्ज प्रत्यय होते हैं)

उदा०—स्त्रैणम् । पोस्नम् । स्त्रीषु भवमिति स्त्रैणम् । स्त्रीणां समूह इति स्त्रैणम् । स्त्राम्य आगत इति स्त्रैणम् । स्त्रीभ्यो हितम् इति स्त्रैणम् ।

द्विगालुङ्गनपत्ये ४।१।८८

प० वि०—द्विगो ६।१ तुक् १।१ अनपत्ये ७।१ स०—न अपत्यम् अनपत्यम् तस्मिन् अनपत्ये ।

अर्थ—[प्राग्दीव्यनोऽण] प्राग्दीव्यतीयेऽर्थेषु विहितो द्विगो सम्बन्धी योऽनपत्येऽर्थं वर्तमानं तद्धितं प्रत्ययं तस्य लुङ्भवति ।

(प्राग्दीव्यतीये अर्थों में विधानं किये गये द्विगु सम्बन्धी जो अपत्यभिन प्रथ में वर्तमान तद्धित प्रत्यय उभका लुङ् हाता है)

उदा०—पञ्चकपाल । दशकपाल । द्विवेद । त्रिवेद ।

सि०—पञ्चसु कपालेषु ससृजत इति विग्रहः । पञ्चकपाल^१ सुप अण^२ । पञ्चकपाल^३ सु । पञ्चकपाल । दी वेदावधीते इति विग्रहः । द्विवेद^४ औट् अण^५ । द्विवेद ।

अपत्याधिकारप्रकरणम्—

तस्यापत्यम् ४।१।८९

प० वि०—तस्य ६।१ अपत्यम् १।१

अर्थ—[समर्थानां प्रथमादृवा] तस्य इति पष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकात् अन्यमित्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्यया वा भवन्ति ।

(पष्ठी समय प्रातिपदिक से अपत्य इस अर्थ में यथाविहित जिस जिस प्रकृति से इस सूत्र के पूर्व या पदवात् प्रत्यय विधान किये गए हैं वे विकल्प से होते हैं)

उदा०—औपमय । आश्वपतः । दैत्य । औत्स । स्त्रैण । पोस्न ।

१—तद्धिताधोत्तरपदसमाहार च (२. १. ५१) २—ससृजतम् (४. ४. ३)

३—सस्यापूर्वो द्विगु (२. १. ५२) द्विगुलुङ्गनपत्ये (४. १. ८८) ४—तदधीते तद्वेद (४. ४. ५१)

सि०—उपगोरपत्यं पुमान् इति औपगवः । अश्वपतेरपत्यं पुमान् आश्वपतः । उपगु इस् अण् । उपगु अ । उपगो^१ अ । औपगो अ । औपगव् अ । औपगव सु । औपगवः । अश्वपति इस् अण् । अश्वपन् अ । आश्वपन् अ । आश्वपत सु । आश्वपतः ।

अत इज् ४।१।६५

प० वि०—अतः १।१ इज् १।१

अर्थ—[तस्यापत्यम्] अकारान्तात् प्रातिपदिकादिब् प्रत्ययो भवति तस्यापत्यमित्येतस्मिन्नर्थे । (भकारान्त प्रातिपदिक से उसका अपत्य इस मर्मे में इज् प्रत्यय होता है)

उदा०—दाक्षिः । प्लाक्षिः । दाक्षरथिः ।

सि०—दक्षस्य अपत्यं पुमान् इति दाक्षिः । दक्षः इस् इज् । दक्ष इ । दाक्षि सु । दाक्षिः ।

एको गोत्रे ४।१।६३

प० वि०—एकः १।१ गोत्रे ७।१

अर्थ—गोत्रे एक एव प्रत्ययो भवति । सर्वे अपत्येन युज्यन्ते । (गोन में एक ही प्रत्यय होता है । और उनके बाद जितने अपत्य हैं उन सभी का बोध एक प्रत्यय ने होता है)

गोत्राद्यन्यस्त्रियाम् ४।१।६४

प० वि०—गोत्रात् १।१ यूनि ७।१ अस्त्रियाम् ७।१ स०—न स्त्री अस्त्री, तस्याम् अस्त्रियाम् ।

यूनि अपत्ये विवक्षिते गोत्रादेव प्रत्ययो भवति, स्त्रियां तु न भवति । (पुत्रा अपत्य अर्थ में गोत्रप्रत्ययान्त से ही प्रत्यय होता है, स्त्री अपत्य में नहीं होता ।)

उदा०—गार्ग्यायणः । वात्स्यायनः । दाक्षायणः ।

सि०—गर्गस्य गोत्रापत्यम् इति गार्ग्यः । गार्ग्यस्य युवापत्यम् इति गार्ग्यायणः । गार्ग्य इस् षक् । गार्ग्यायणः । वात्स्यायनः । दक्षस्यापत्यम् दाक्षिः । दाक्षेर्पुत्रापत्यम् दाक्षायणः ।

गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चक् ४।१।६८

प० वि०—गोत्रे ७।१ कुञ्जादिभ्यः १।३ चक् १।१ स०—कुञ्ज

१—यच्च भम् (१. ४. १८) आष्टंशः (६. ४. १४६)

आदिर्येपान्ते कुञ्जादयः तेभ्यः ।

अर्थ—[तस्यापत्यम्] कुञ्जादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्ये च्फञ् प्रत्ययो भवति (कुञ्ज इत्यादि प्रातिपदिक से गोत्रापत्य अर्थ में च्फञ् प्रत्यय होता है)

उदा०—कौञ्जायनः ।

सि०—कुञ्जस्य गोत्रापत्यम् इति कौञ्जायनः । कुञ्ज इस् च्फञ् । कुञ्ज फ । कुञ्ज आयन । कुञ्ज आयन । कौञ्ज आयन । कौञ्जायन सु । कौञ्जायनः ॥

नडादिभ्यः फक् ४।१।६६

प० वि०—नडादिभ्यः ४।३ फक् १।१ स०—नड आदिर्येपान्ते नडादयः तेभ्यः नडादिभ्यः ।

अर्थ—[गोत्रे तस्यापत्यम्] नड इत्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्ये फक् प्रत्ययो भवति । (नड प्रादि प्रातिपदिक से गोत्रापत्य अर्थ में फक् प्रत्यय होता है)

उदा०—नाडायनः । चारायणः । पेटिकायनः ।

सि०—नडस्य गोत्रापत्यम् नाडायनः । नड इस् फक् । नड फ । नड आयन । नड आयन । नाडायन । नाडायनः । चर इस् फक् ।

यविजोश्च ४।१।१०१

प० वि०—यविजोः ६।२ च् अ० ।

स०—यञ् च इञ् च इति यविजौ तयोः ।

अर्थ—[फक् तस्यापत्यम् गोत्रे] गोत्रे यौ यविजौ तदन्तात् फक् प्रत्ययो भवति । (गोत्र अर्थ में यञ् और इञ् जिसके अन्त में हैं, ऐसे प्रातिपदिक से फक् प्रत्यय होता है ।)

उदा०—गार्ग्यायणः । वात्स्यायनः । दाक्षायणः । प्लाक्षायणः ।

सि०—गर्गस्य गोत्रापत्यम् गार्ग्यः । गार्ग्यस्य युवात्पत्यम् गार्ग्यायणः । गार्ग्य इस् फक् । गार्ग्य आयन । गार्ग्य आयन । गार्ग्यायण सु । गार्ग्यायणः ।

अनृप्यानन्तर्ये विदादिभ्योऽञ् ४।१।१०४

प० वि०—अनृपि, सोत्रो निर्देशः ५।३ आनन्तर्ये ७।१ विदादिभ्यः ५।३ अण् १।१ स०—न ऋपिः अनृपिः, तेभ्यः अनृपि सोत्रो निर्देशः ।

विद् आदिर्येपा ते विदादय तेभ्य ।

अर्थ—अनृपिभ्यो विदादिभ्य अनन्तरापत्येऽञ् प्रत्ययो भवति ।
 ❀ अत्रेदं बोध्यम् विदादिषु ऋपिवाचिन अनृपिवाचिनश्च शब्दा पठ्यन्ते ।
 तत्र ये ऋपिवाचिनश्शब्दा तेभ्यो गोत्रे एऽञ् प्रत्यय ये तु अनृपि-
 वाचिनश्शब्दास्तेभ्यो गोत्रेऽनन्तरे च प्रत्यय इत्येव भाष्याल्लभ्यत इति
 नागेश । सिद्धान्तफीमुद्रीकारस्तु अत्र एभ्यो गोत्रे ये त्वानृपयस्तेभ्य
 अनन्तरे, काशिकाकारस्तु अत्र विदादिभ्यो गोत्रापत्ये अनृपिभ्योऽनन्त-
 रापत्ये प्रत्ययो भवति, कैयटस्तु तत्र ऋपिभ्यो गोत्रे एऽञ् प्रत्यय
 अनृपिभ्यस्त्वनतरापत्य एतेत्येव त्रिषयविभाग । अत्र यथा प्रयोग तस्य
 सुधियो विभावयन्तु ।

उदा०—वैद । और्व । पौत्र । दीहित्र ।

सि०—त्रिस्य गोत्रापत्यम् वैद । विद ङस् अञ् । निद् अ । मैद
 सु । वैद । पुत्रस्यापत्यं पौत्र । दुहितुरपत्यं दीहित्र । दुहितृ ङस् अञ् ।
 दुहितृ अ । दीहित्र सु । दीहित्र ।

गर्गादिभ्यो यञ् ४।१।१०५

प० वि०—गर्गादिभ्य ५।३ यञ् १।१ स०—गर्ग आदिर्येपान्ते
 गर्गादय तेभ्य ।

अर्थ—[गोत्रे] गर्गादिभ्यो गोत्रापत्ये यञ् प्रत्ययो भवति ।

(गग इत्यादि प्रातिपदिक से गोत्रापत्य प्रथम में यञ् प्रत्यय होता है)

उदा०—गार्ग्य । वार्त्य ।

सि०—गर्गस्य गोत्रापत्यम् इति गार्ग्य । गर्ग ङस् यञ् । गर्ग्य ।
 गार्ग्य ह्र । गार्ग्य । वार्त्य ।

शिवादिभ्योऽण् ४।१।११२

प० वि०—शिवादिभ्य ५।३ अण् । स०—शिव आदिर्येपान्ते
 शिवादय तेभ्य ।

अर्थ—शिवादिभ्य प्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये अर्थे अण् प्रत्ययो भवति ।

❀ अतः प्रभृति सामायेन प्रत्यया विज्ञायन्ते गोत्र इति निवृत्तम्❀

(शिव इत्यादि प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय होता है)

उदा०—शैव । गङ्गा ।

सि०—शिवस्य अपत्यं पुमान् शैव । गङ्गाया अपत्यं पुमान् इति ।

मातुरुत्सख्यासंभद्रपूर्वायाः ४।१।११५

प० वि०—मातुः ६।१ उत् १।१ सख्यासंभद्रपूर्वायाः ६।१

स०—संख्या च सञ्च भद्रा चेति संख्यासंभद्राः । सख्यासंभद्राः पूर्वा यस्याः मातुरिति संख्यासंभद्रपूर्वा तस्याः ।

अर्थ—संख्यापूर्वात् सर्वाद् भद्रपूर्वाच्च मातृशब्दात् अपत्येऽर्थेऽण् प्रत्ययो भवति उकारश्चान्तादेशः ।

(सख्या, सं और भद्रा शब्द है पूर्व में जिस के ऐसे मातृ शब्दात् प्रातिपदिक से अपत्य के अर्थ में अण् प्रत्यय होता है और मातृ शब्द को उकार अन्तादेश होता है)

उदा०—द्वैमातुरः । पाण्मातुरः । सांमातुरः । माद्रमातुरः ।

सि०—द्वयोर्मात्रोरपत्यम् इति द्वैमातुरः । द्वि ओस् मातृ ओस् । अण् । द्वि मातृ अण् । द्विमातृ अ । द्वैमातृ अ । द्वैमातु अ । द्वैमातुर अ । द्वैमातुर सु । द्वैमातुरः । ऋउकारादेशार्थं वचनं प्रत्ययस्तु तस्यापत्यम् इत्येव सिद्धम् ।

कन्यायाः कनीन च ४।१।११६

प० वि०—कन्यायाः ६।१ कनीन अविभक्तिको निर्देशः । च अ० ।

अर्थ—कन्याशब्दाद् अपत्येऽर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, तत्सन्नियोगेन कनीनशब्द आदेशो भवति ।

(कन्या शब्द से अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय होता है और उसके सयोग से कन्या शब्द के स्थान में कनीन यह आदेश हो जाता है)

उदा०—कानीनो व्यासः । कानीनः कर्णः ।

स्त्रीभ्यो ढक् ४।१।१२०

प० वि०—स्त्रीभ्यः ५।३ ढक् १।१

अर्थ—स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक् प्रत्ययो भवति अपत्येऽर्थे ।

(स्त्रीप्रत्ययान्त शब्द से अपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है)

उदा०—सौपर्णेयः । वैनतेयः ।

कुर्वादिभ्यो ण्यः ४।१।१५१

प० वि०—कुर्वादिभ्यः ५।३ ण्यः १।१ स०—कुरादिर्ये पान्ते कुर्वा-
ह्यः तेभ्यः ।

अर्थ—कुरु इत्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये ण्यः प्रत्ययो भवति ।

(कुरु इत्यादि प्रातिपदिक स अपत्य अय में ण्य प्रत्यय होता है)

उग०—कीरव्य । गार्ग्य ।

सि०—कुरु कस् एय । कुरु य । कुरो^१ य । कृत्^२ य । कीरव्य सु । कीरव्य ।

मनोज्ञावज्जती पुक् च ४।१।१६१

प० वि०—मनो ६।१ जातो ७।१ अव्यती १।२ पुक् १।१ च अ० ।

अर्थ—मनुशब्दात् अव्यती प्रत्ययो भवति पुक् वागम जातो गम्यमाने ।) मनु शब्द में मन् और यन् प्रत्यय होते हैं और पुक् का वागम होता है जाति गम्यमान होने पर)

उदा०—मानुष । मनुष्य ।

सि०—मनु पुर् अन् । मनुप् अ । मानुष सु । मानुष । मनुपुक् य । मनुष्य ।

अपत्य पौत्रप्रभृति गोत्रम् ४।१।१६२

प० वि०—अपत्यम् १।१ पौत्रप्रभृति १।१ गोत्रम् १।१

स०—पौत्रात्प्रभृति पौत्रप्रभृति ।

अर्थ—पौत्रप्रभृति अपत्य गोत्रसज्ञ भवति ।

(पौत्र इत्यादि अपत्यो की गोत्र मना होता है)

जीवति तु वश्ये युवा ४।१।१६३

प० वि०—जीवति ७।१ तु अ० । वश्ये ७।१ युवा १।१

अर्थ—अभिजनप्रश्नो वश । अभिजना पितामहान्य । प्रश्न सन्तान । तत्र भवो वश्य तस्मिन् वश्ये । वश्ये पित्रादी जीवति पौत्रादे-
र्यदपत्य चतुर्धादि तद्युगसङ्गमेव न गोत्रसङ्गम् ।

(वश्य अर्थात् पिता इत्यादि क जीवित रहने पर पौत्र का जो अपत्य भवान् चतुष अपत्य उसकी युवासना होती है गोत्र मना नहीं)

जनपदशब्दात्क्षत्रियादन् ४।१।१६४

प० वि०—जनपदशब्दात् ५।१ क्षत्रियात् ५।१ अन् १।१

अर्थ—जनपदशब्दे य क्षत्रियात् क्षत्रियादन् प्रत्ययो भवति । (जनपद शब्द जो क्षत्रिय का कहने वाला उससे अपत्य अय में मन् प्रत्यय जाना है)

उदा०—ऐच्वाक । वैदेह । पाञ्चाल ।

सि०—ईच्नाकोरपत्यम् पुमान् ऐच्नाक । ऐच्वाक्^१ अ । ऐच्वाक ।

× क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदशब्दात्तस्य राजनि अपत्यवत् ×
पञ्चालानां राजा पाञ्चाल । विदेहानां राजा वैदेह । मगधानां राजा
मागध ।

द्वयञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण् ४।१।१७०

प० वि०—द्वयञ्मगधकलिङ्गसूरमसात् ५।१ अण् १।१ स०—द्वौ
अचौ यस्मिन् प्रातिपदिक इति द्वयच् । द्वयच्च मगधश्च कलिङ्गश्च
सूरमसाश्चेति द्वयञ्मगधकलिङ्गसूरमसम् तस्मात् ।

अर्थ—[जनपदशब्दात् क्षत्रियात्] जनपदशब्दात् क्षत्रियवाचिनो
द्वयच् मगध कलिङ्ग सूरमस इत्येतेभ्यश्चापत्येऽण प्रत्ययो भवति ।

(जनपद को कहन वाले क्षत्रियवाची जो दो अच् वाल तथा मगध
कलिङ्ग सूरमस शब्द है उनसे अपत्य ग्रथ में अण प्रत्यय होता है)

उदा०—आङ्ग । घाङ्ग । मागध । कलिङ्ग । सौरमस । × तस्य
राजनीत्येन × आङ्गो राजा ।

वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ज्यङ् ४।१।१७१

प० वि०—वृद्धेत्कोसलाजादात् ५।१ ञ्यङ् १।१ स०—वृद्धश्च इच्च
कोसलश्च अजादश्चेति वृद्धेत्कोसलाजादम् तस्मात् ।

अर्थ—[जनपदशब्दात् क्षत्रियात्] जनपदशब्दात् क्षत्रियवाचिनो
वृद्धादिकारान्तप्रातिपदिकात् कोसलाजादशब्दाभ्याञ्चापत्ये ञ्यङ्
प्रत्ययो भवति ।

(जनपद को कहन वाले क्षत्रियवाची वृद्ध सत्ता वाल, इकारान्त प्राति-
पदिक तथा कोसल और अजाद शब्द उनसे अपत्य ग्रथ में ञ्यङ् प्रत्यय होता है)

उदा०—वृद्धात्—आम्बष्ठ्य । सीवीर्य । इकारान्तात्—आवन्य ।
कौन्त्य । कौसत्य । आजाथ । × तस्य राजनीत्येव × आम्बष्ठ्यो
राजा ।

कुरुनादिभ्यो ण्य ४।१।१७२

प० वि०—कुरुनादिभ्य ५।१ ण्य १।१ म०—ननार आदिर्येऽपान्ते
नादय । कुरुश्च नादयश्चेति कुरुनादय तेभ्य ।

अर्थ—[जनपदशब्दात् क्षत्रियात्] कुरुनादनादिभ्यश्च प्राति-
पदिकेभ्यो ण्यप्रत्ययो भवति अपत्येऽर्थ ।

(कुरु घोर नकारादि प्रातिपदिक म अथय अथ में ण्य प्रत्यय होता है)
 उ०—कौरव्य । नादिभ्य-नैपथ्य । नैपथ्य । X तस्य राजनीत्येन X
 कौरव्यो राजा ।

ते तद्राजा ४।१।१७२

प० वि०—ते १।३ तद्राजा १।३

अर्थ—तेऽन्धान्यस्तद्राजसङ्घा भवन्ति ।

(उन भन्नादि प्रत्यया की तद्राज सङ्घा होता है)

इत्यष्टाध्यायी प्रकाशिकाया चतुर्थाध्याये प्रथम पाद

—२२४१२०—

रक्तछन्दप्रकरणम्—

तेन रक्त रागात् ४।२।१

प० वि०—तेन ३।१ रक्तम् ४।१ रागात् ३।१

अर्थ—रज्यते अनेनेति राग ॥ तेनेति तृतीयासमर्थान् रागविशेष-
 वाचिन प्रातिपदिकाद् रक्तम् इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहित प्रत्ययो भवति ।
 (तृतीय समय रागविशेषवाची (राग विगणवाची) प्रातिपदिक स रगा गया
 इस अथ में जैसा विधान किया गया है वैसा प्रत्यय हागा)

उ०—कापायम् । मजिष्ठम् । कीमुम्भम् ।

सि०—करायेण रक्त वस्त्रम् इति कापायम् वस्त्रम् । कपाय टा
 अण् । कपाय अ । कपाय् अ । कापाय् अ । कापाय मु । कापाय अम् ।
 कापायम् । मजिष्ठेन कुमुम्भेन वा रक्त वस्त्रम् इति विप्र ॥

लाक्षारोचनाट्ठक् ४।२।२

प० वि०—लाक्षारोचनाट्ठक् ३।१ ठक् ३।१ स०—लाक्षा च रोचन
 ङ्चेति लाक्षारोचनम् तस्मान् ।

अर्थ—[तेन रक्तम् अगात्] लाक्षान्भ्या रागवचनेभ्यस्तृतीया-
 समर्थप्रातिपदिकेभ्यो रक्तमित्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्यया भवति ।

(लाक्षा रोचन इन रागविशेषवाची तृतीया समय प्रातिपदिक स रगा गया
 इस अथ में ठक् प्रत्यय होता है)

उ । —लाक्षिकम् । राचनिकम् ।

नक्षत्रेण युक्त काल ४।२।३

प० वि०—नक्षत्रेण ३।१ युक्त ३।१ काल ३।१

अर्थ—[तेन] तृतीयासमर्थान्नक्षत्रविशेषवाचिनः प्रातिपदिकान् युक्तः काल इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ।

(तृतीया समय नक्षत्र विशेषवाची प्रातिपदिक से युक्त काल इस अर्थ में यथाविहित (अणु) प्रत्यय होता है)

उदा०—पौषी रात्रिः । पौषमहः ।

सि०—कथं पुनर्नक्षत्रेण पुष्यादिना कालो युज्यते । पुष्यादिसमीपस्ये चन्द्रमसि वर्तमानाः पुष्यादिशब्दाः प्रत्ययमुत्पादयन्ति । पुष्येण नक्षत्रेण युक्तः कालः, पुष्यसमीपस्थेन चन्द्रमसा युक्त इत्यर्थः ।

सि०—पुष्य टा अण् । पुष्य अ । पुष्य् अ । पौष्य् अ । पौष अ । पौष ङीप्^१ । पौषी सु । पौषी ॥

लुवविशेषे ४।२।४

प० वि०—लुप् १।१ अविशेषे ७।१ स०—न विशेष अविशेषः तस्मिन् ।

अर्थ—पूर्वेण विहितस्य प्रत्ययस्य लुन् भवति अविशेषे गम्यमाने ।

(पूर्व में विधान निये गमे प्रत्यय का लुप् हो जाता है विशेष किसी रात्रि या दिन का बोध न हो तो)

उदा०—अद्य पुष्य । अद्य कृतिका ।

दृष्ट साम ४।२।७

प० वि०—दृष्टम् १।१ साम १।१

अर्थ—[तेन] तृतीयासमर्थप्रातिपदिकान् दृष्ट साम इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहित प्रत्ययो भवति । (तृतीया समय प्रातिपदिक से देखा गया साम इस अर्थ में यथाविहित (अणु) प्रत्यय होता है)

उदा०—शुक्लेन दृष्टं साम इति कौञ्चम् । वाशिष्टम् । वैश्वामित्रम् ।

वामदेवाद् ड्यङ्ङ्यो ४।२।८

प० वि०—वामदेवात् १।१ ड्यङ्ङ्यो १।२ स०—ड्यङ्ङ्य ड्यङ्ङ्य इति ड्यङ्ङ्यो

अर्थ—[तेन दृष्ट साम] वामदेवान् तृतीयासमर्थान् प्रातिपदिकान्

१—गूर्पतिप्यागस्यमतयाना य उपपायाः (४. १. १५६) २—टिङ्ङा-
खञ् ० (४. १. १५)

दृष्टं साम इत्येतस्मिन्नर्थे इयन् इय इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः ॥

(वामदेव तृतीया समर्थं प्रातिपदिक से दत्ता गया साम इय अर्थ में इयन् शीर इय प्रत्यय होते हैं)

उदा०—वामदेवेन दृष्टं साम इति वामदेव्यम् साम ॥

संस्कृतं भक्षा ४।२।१६

१० वि०—संस्कृतम् १।१ भक्षा १।१

अर्थ—[तत्र] सप्तमीसमर्थान् प्रातिपदिकान् संस्कृतमन्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति यत्संस्कृतं भक्षाश्चन् ते भवन्ति ।

ऋत्सरविशदमन्यवहारार्थं भक्षम् इत्युच्यते । सत उन्कपाधानं संस्कारः॥

(सप्तमी समर्थं प्रातिपदिक में मन्थार किया गया इस अर्थ में यथाविहित (प्रण) प्रत्यय होता है) दानों से खवाकर खाने योग्य पदार्थ को भक्ष कहते हैं ।

उदा०—भ्राष्ट्रे संस्कृता भक्षा भ्राष्ट्रा अपूपाः । भ्राष्ट्रा यथाः । भ्राष्ट्रा ओदनाः ।

सि०—भ्राष्ट्रा हि अण् । भ्राष्ट्र । भ्राष्ट्रा जस् । भ्राष्ट्रा ॥

सास्य देवता ४।२।२४

१० वि०—सा १।१ अस्य ६।१ देवता १।१

अर्थ—प्रथमासमर्थान् प्रातिपदिकान् अस्य देवता इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । (प्रथमा समर्थप्रातिपदिक से 'देवता है इसका' इस अर्थ में यथाविहित (प्रण) प्रत्यय होता है)

उदा०—इन्द्रो देवतास्य मन्त्रम्येति ऐन्द्रो मन्त्रः । इन्द्रो देवतास्य इयिष इति ऐन्द्र इयिषः । ॥ देवतास्योऽयं बहुष्वर्थेषु प्रसिद्धः । दह तु मन्त्रप्रतिपादो विषयः देवताशब्देन उच्यते । तथा चोक्तं कात्यायनेन—या तेनाच्यते सा देवता (ऋक्सर्वानुक्रमणी०) । तेन यस्मिन् मन्त्रे इन्द्रः प्रतिपाद्यते वर्ण्यते स्मृत्यते तस्य मन्त्रस्य इन्द्रो देवता एवमग्न्यादयस्तत्तन्मन्त्रविषया देवतापदवाच्या दृष्टव्याः॥

(देवता शब्द लोक में बहुत अर्थों में प्रसिद्ध है । इस मूल में देवता शब्द से मन्त्र प्रतिपाद्य विषय का ग्रहण होता है । यही बात कात्यायन ने अपनी ऋक्सर्वानुक्रमणी में कही है । इस लिए जिस मन्त्र में इन्द्र का प्रतिपादन हो या स्तुति की गई हो उस मन्त्र का इन्द्र देवता होगा वह मन्त्र ऐन्द्र कहावेगा । इसी प्रकार अग्न्यादि देवताओं के विषय में भी समर्थ) ।

विषयभेदेन इमा इन्द्रादयो देवता सचेतना अचेतनाश्च भवन्ति । यदि कस्मिंश्चिन्मन्त्रे इन्द्रशब्देन विद्युदादयो भौतिकाः पदार्था उच्यन्ते तदा सा इन्द्रदेवता अचेतना उच्यते यदा तु इन्द्रशब्देन कस्मिंश्चिन्मन्त्रे आत्मा परमात्मा वा उच्यते तदा सा इन्द्रदेवता सचेतना इत्युच्यते । (विषय के भेद से ये देवता चेतन और अचेतन दोनों प्रकार के होते हैं । जब किसी मन्त्रमें इन्द्र शब्द से विद्युत् आदि भौतिकपदार्थों का वर्णन किया जाता है तब वह इन्द्र देवता अचेतन होता है और जब इन्द्र शब्द से किसी मन्त्र में आत्मा या परमात्मा का वर्णन होता है तब वह इन्द्र देवता सचेतन कहा जाता है)

अग्नेर्दक् ४।२।३३

प० वि०—अग्ने ५।१ ढक् १।१

अर्थ—[सास्य देवता] अग्ने प्रातिपदिकान् सास्य देवता इत्येतस्मिन्नर्थे ढक् प्रत्ययो भवति । (अग्नि प्रातिपदिक से वह देवता है इसका इस अर्थमें ढक् प्रत्यय होता है)

उदा०—आग्नेयो मन्त्र । आग्नेयोऽष्टकपालः ।

सि०—अग्निर्देवतास्य मन्त्रस्येति विग्रहः । अग्निं मु ढक् । अग्निं ढ । अग्नि एय । अग्न् एय । आग्न् एय । आग्नेय मु । आग्नेय ॥

पितृव्यमातुलमातामहपितामहा ४।२।३६

प० वि०—पितृव्यमातुलमातामहपितामहा १।३ स०—पितृव्यश्च मातुलश्च मातामहश्च पितामहश्चेति पितृव्यमातुलमातामहपितामहा ।

अर्थ—पितृव्य-मातुल मातामह-पितामह इत्येते शब्दा निपात्यन्ते (पितृव्य, मातुल मातामह, पितामह ये शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं)

उदा०—X पितृमातृभ्यां भ्रातरि व्यङ्गुलचौ X पितुर्भ्राता पितृव्य । मातुर्भ्राता मातुल । X मातृपितृभ्यां पितरि ढामहच् X मातु पिता मातामह । पितु पिता पितामह । X भ्रातरि पिच्च X [मातृपितृभ्यां भ्रातरि ढामहच् णच् वक्तव्य] पितुर्भ्राता पितामही । मातुर्भ्राता मातामही ।

सि०—पितृव्य । पितृ ङस् व्यत् । पितृ व्य । पितृव्य ॥ पितृव्य । मातृ ङस् हुलच् । मातृ उल । मातृ उल । मातुल । मातामह । पितामह । पितामह । मातामही । पितामही । मातामह ङीप् । मातामह ई । मातामही ।

तस्य समूहः ४।२।३७

प० वि०—तस्य ६।१ समूहः १।१

अर्थ—पण्ठीसमर्थान् प्रातिपदिकान् समूहः इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहित प्रत्ययो भवति (पण्ठीसमर्थं प्रातिपदिकं ते समूह इव अर्थं मे यथाविहित प्रत्यय होता है)

उदा०—काकम् । वाकम् । वार्कम् ।

सि०—काकानां समूहः इति विग्रहः । वरानां वृक्षानां वा समूह इति विग्रहः । वृक आम् अण् । वृक अण् । वृक अ । वृक् अ । वार्क् अ । वार्क सु । वार्क अम् । वार्कम् ।

भिक्षादिभ्योऽण् ४।२।३८

प० वि०—भिक्षादिभ्यः ५।३ अण् १।१ स०—भिक्षाशब्द आदिर्येषां ते भिक्षादयः तेभ्यः ।

[तस्य समूहः] भिक्षादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽण् प्रत्ययो भवति तस्य समूह इत्येतस्मिन्नर्थे । (भिक्षा इत्यादि प्रातिपदिकानां मे उक्तसमूह इव अर्थं मे अण् प्रत्यय होता है)

उदा०—भैक्षम् । गर्भिणम् । भिक्षा । गर्भिणी । क्षेत्र । कटीप । अङ्गार । चर्मिन् । धर्मिन् । सहस्र । पत्राति । पद्धति । अथर्वन् । दक्षिणा ।

सि०—भिक्षाणां समूहो भैक्षम् । गर्भिणीनां समूहो गर्भिणम् ।
X भस्याटे तद्धिते पुं वद्भावो वक्तव्यः X भिक्षा आम् अण् । भिक्षा अ । भैक्ष सु । भैक्ष अम् । भैक्षम् । गर्भिणी आम् अण् । गर्भिन् अ । गर्भिन् अ । गर्भिन् अ । गर्भिणम् ।

ग्रामजनवन्धुभ्यस्तल् ४।२।४३

प० वि०—ग्रामजनवन्धुभ्यः ५।३ तल् १।१ स०—ग्रामञ्च जनश्च वन्धुरश्चेति ग्रामजनवन्धुव. तेभ्यः ।

अर्थ—[तस्य समूहः] ग्राम-जन-वन्धुभ्यः प्रातिपदिकेभ्यस्तल् प्रत्ययो भवति तस्य समूहः इत्येतस्मिन्नर्थे । (ग्राम, जन और वन्धु प्रातिपदिक से तस्य समूह अर्थान् इनका समूह इव अर्थं मे तल् प्रत्यय होता है ।)

१—भस्याटे तद्धिते पुं वद्भावो वक्तव्य (६. ३. ३५ वा०) २—यच्च भम् (१. ४. १८) भस्य (६. ४. १२६) नस्तद्धिते (६. ४. १४४) इनप्यन-पत्वे (६. ४. १६४)

उदा०—ग्रामता । जनता । बन्धुता । X गजसहायाम्याञ्चेति
वक्तव्यः X गजता । सहायता ।

सि०—ग्रामाणां जनानां बन्धूनां वा समूहः इति विग्रह । ग्राम ग्राम्
तल् । ग्रामत टाप् । ग्रामता ।

तदधीते तद्वेद ४।२।५६

प० वि०—तत् २।१ अधीते क्रिया० । तत् २।१ वेद क्रिया० ।

अर्थ—द्वितीयासमर्थप्रातिपदिकात् अधीते वेद इत्येतयोरर्थयो-
र्यथाविहित प्रत्ययो भवति (द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से पढ़ता है और जानता
है इन दोनों अर्थों में यथाविहित (अण्) प्रत्यय होता है ।

उदा०—छान्दसः । वैयाकरणः । नैरुक्त । नैमित्तः ।

सि०—छन्द. व्याकरणं निरुक्त निमित्तानि वा अधीते वेद इति
विग्रह । छन्दस् अम् अण् । छान्दस सु । छान्दसः । व्याकरण अम्
अण् । वैयाकरण ।

क्रमादिभ्यो वुन् ४।२।६१

प० वि०—क्रम आदिर्येषाम्ने क्रमादय तेभ्यः ।

अर्थ—[तदधीते तद्वेद] क्रमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः तदधीते
तद्वेद इत्येतयोरर्थयोरुन् प्रत्ययो भवति ।

(क्रम इत्यादि प्रातिपदिक से उसको पढ़ता है या उसको जानता है, इन
अर्थों में वुन् प्रत्यय होता है)

उदा०—क्रमक । पदक. । क्रम । पद । शिक्षा । सीमांसा ।
सामन् ।

आतुराणिवप्रवरणम्—

तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ४।२।६७

प० वि०—तत् १।१ अग्निम् ७।१ अस्ति क्रिया० । इति अ० । देशे
७।१ तन्नाम्नि ७।१ । स०—तत् प्रत्ययान्त नाम यस्येति तन्नाम् तस्मिन् ।

अर्थ—तदिति प्रथमासमर्थप्रातिपदिकाद् अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे
यथाविहित प्रत्ययो भवति यत्तत्प्रथमासमर्थम् अस्ति चेत् तद्भवति,
यत्तद् अस्मिन्निति निर्दिष्टं प्रत्ययान्तनामा देशश्चेत् तद्भवति ।

(प्रथमा समर्थं प्रातिपदिक से सप्तमी के अर्थ में यथाविहित (अण्) प्रत्यय होता है, यदि वह प्रथमा समर्थं अस्ति अर्थात् 'है' अर्थ को बताना वाला हो और 'अस्मिन्' यह प्रत्ययान्त शब्द बनने पर, देश को कहने वाले हो)

उदा०—औदुम्बर । बाल्वज. । पार्वत. ॥

सि०—उदुम्बराः सन्ति अस्मिन् देशे इति औदुम्बरो देशा । पर्वता-
सन्त्यस्मिन् देशे इति पार्वताः ॥

तेन निर्वृतम् ४।२।६८

प० वि०—तेन ३।१ निर्वृतम् १।१

अर्थ—[देशे तन्नाम्नि] तृतीयसमर्थप्रातिपदिकान् निर्वृतम् इत्ये-
तस्मिन्नर्थे यथाविहित प्रत्ययो भवति देशनाम्नि अभिधेये ।

(तृतीया समर्थं प्रातिपदिक से बनाया गया अर्थात् बनवाया गया इस अर्थ में यथाविहित (अण्) प्रत्यय होता है देश का नाम गम्यमान हान पर)

उदा०—कौशाम्बी नगरी ।

सि०—कुशाम्बेन निर्मिता नगरी इति विग्रह । कुशाम्ब टा अण् ।
कौशाम्ब अ । कौशाम्ब क्षीप् । कौशाम्बी सु । कौशाम्बी ॥

तस्य निवास. ४।२।६९

प० वि०—तस्य ६।१ निवासः १।१

अर्थ—[देशे तन्नाम्नि] पष्ठीसमर्थप्रातिपदिकान् निवास इत्येन-
स्मिन्नर्थे यथाविहित प्रत्ययो भवति देशनामधेये । (पष्ठी समर्थं प्रातिपदिक से निवास इन अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है देश का नाम अभिधायक होने पर)

उदा०—शैव ।

सि०—शिरीनां निवासो देश इति शैवो देशः ॥

अदूरभवश्च ४।२।७०

प० वि०—अदूरभवः १।१ च अ० । स०—न दूरम् अदूरम् । अदूरे
भवः अदूरभवः ।

अर्थ—[देशे तन्नाम्नि, तस्य] पष्ठीसमर्थान् प्रातिपदिकाद् अदूरभव
इत्येतस्मिन्नर्थे देशनामधेये यथाविहित प्रत्ययो भवति । (पष्ठी समर्थं प्रातिपदिक से पास हान अर्थ में यथाविहित (अण्) प्रत्यय होता है देश के नाम होने पर)

उदा०—विदिशाया नद्या अदूरभव नगरं वैदिशम् ॥

शैपिकप्रकरणम्—

शेषे ४।२।६२

प० वि०—शेषे ७।१

अर्थ—इतोऽग्रे वक्ष्यमाण प्रत्यया-शेषे अर्थे भवन्ति इत्यधिकारो वेदितव्य । ऽपशब्देनात्र इत आरम्भ 'तस्येदम्' इतिपर्यन्तं ये अर्थाः वक्ष्यन्ते तेषां महत्त्वम् । (यहां से कहे जाने वाले प्रत्यय शेष ग्रन्थों में होते हैं, इस बात का अधिकार समझना चाहिये) शेष से अभिप्राय यहां 'तस्येदम्' प्रकरण पर्यन्त जितन वक्ष्यमाण ग्रन्थ कहें उनसे है ।

राष्ट्रावारपाराद् घञौ ४।२।६३

प० वि०—राष्ट्रावारपारात् ५।१ घञौ १।२ स०—राष्ट्रञ्च अवार-पारञ्चेति राष्ट्रावारपारम् तस्मात् । घञ्च खञ्चेति घञौ ।

अर्थ—राष्ट्र अवारपार इत्येताभ्यां यथासंख्य घञौ प्रत्ययौ भवतः शेषे । (राष्ट्र और अवारपार इन दो शब्दों से क्रमशः घ और ख प्रत्यय होने हैं शेष ग्रन्थों में)

उदा०—राष्ट्रियः । अवारपारीणः । ×अवारपाराद् विगृहीतादपि× अजारीणः । पारीणः ×निपरीताञ्च× पारावारीणः ।

ग्रामाद् यञञौ ४।२।६४

प० वि०—ग्रामात् ५।१ यञञौ १।२ स०—यश्च खञ्चेति यञञौ ।

अर्थ—ग्रामशब्दात् यञञौ प्रत्ययौ भवतः शेषे (ग्राम शब्द से य और ख प्रत्यय होते हैं शेष ग्रन्थों में)

उदा०—ग्राम्यः । ग्रामीणः ।

दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् ४।२।६५

प० वि०—दक्षिणापश्चात्पुरसः ५।१ त्यक् १।१ स०—दक्षिणा पश्चाञ्च पुरस्चेति दक्षिणा-पश्चात्पुरस् तस्मात्

अर्थ—दक्षिणा-पश्चात्-पुरसः प्रातिपदिकात् त्यक् प्रत्ययो भवति शैपिकः । (दक्षिणा, पश्चात् और पुरस् प्रातिपदिक से त्यक् प्रत्यय होता है शेष ग्रन्थों में)

उदा०—दक्षिणायां भवः दक्षिणात्यः । पश्चाद् भवः पश्चात्यः । पुरो भवः पौरत्यः ।

द्युप्रागपागुदकप्रतीचो यत् ४।२।१०१

५० वि०—द्युप्राग-अपाग-उदक्-प्रतीच ५।१ यत् १।१ म०—
द्यौश्च प्राक्च अपाक् च उदक्च प्रत्यच्चेति द्युप्रागपागुदकप्रत्यक् तस्मात् ।

अर्थ—दिक् प्राक्-अपाक् उदक् प्रत्यक् इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो
यत् प्रत्ययो भवति शैषिक । (दिक्, प्राक्, अपाक्, उदक्, प्रत्यक् इतः प्राति-
पदिकाः सन् यत् प्रत्ययः होना है सोयः अर्थों में)

उदा०—दिचि भज दिव्यम् । प्राच्यम् । अपान्नम् । वदीच्यम्
प्रतीच्यम् ॥

अव्ययात् त्यप् ५।२।१०४

५० वि०—अव्ययात् ५।१ त्यप् १।१

अर्थ—अव्ययान् त्यप् प्रत्ययो भवति शैषिक । (अव्ययः स त्यप् प्रत्ययः
हाना है नापः अर्थों में)

उदा०—ऋग्मेहकृतसिन्धोऽयं ऋग्मेहः । इहत्य । कृत्य ।
तत्तय । तत्रय ॥ Xत्यन्नेधुवेX नित्य ॥

ऐपमोह्यश्चसोऽन्यतरस्याम् ४।२।१०५

५० वि०—ऐपमोह्यश्चसः ५।१ अन्यतरस्याम् अ० । स०—ऐपमश्च
श्चश्चश्चेति ऐपमोह्यश्चसम् तस्मान् ।

अर्थ—[त्यप्] ऐपमम्-घस्-श्चसः प्रातिपदिकान् त्यप् प्रत्ययो भवति
शैषिकोऽन्यतरस्याम् । (ऐपमम्-ह्यन्-श्चस् इतः प्रातिपदिकाः ॥ दिक्त्यः स
त्यप् प्रत्ययः हाना है सोयः अर्थों में)

उदा०—ऐपमस्त्यम् । ऐपमस्तनम् । हस्त्यम् । हस्तनम् । ग्रस्त्यम् ।
श्चस्तनम् । शीतस्तिकम् ॥

दिक्पूर्वपदादभज्ञायाम् ४।२।१०७

५० वि०—दिक्पूर्वपदान् ५।१ असंज्ञायाम् ७।१ म०—पूर्वञ्च
तत्पदञ्चति पूर्वपदम्—दिक्पूर्वपदादभज्ञायाम् यस्य तन् । दिक्पूर्वपदम्
तस्मान् । न संज्ञा असंज्ञा तस्याम् ।

अर्थ—दिग्वाचिनः शब्दाः पूर्वपदानि यस्य तस्मान् अभज्ञायां यत्-
मानान् प्रातिपदिकान् अप्रत्ययो भवति शैषिक । (दिग्वाचिणः शब्दः है पूर्व-
पद विभक्ता एव अगन्ता ॥ वर्तमान प्रातिपदिकः स नापः अर्थों में अत्रत्यः होना है)

उदा०—दीर्घशाल । आपरशाल ।

सि०—समासप्रकरणे द्रष्टव्यम्

वृद्धाच्छः ४।२।११४

प० वि०—वृद्धात् ५।१ छः ११॥

अर्थ—वृद्धसंज्ञकप्रातिपदिकात् छः प्रत्ययो भवति शैपिकः । (वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक से छ प्रत्यय होता है शेष ग्रन्थ में)

उदा०—शालीयः । मालीयः ।

भवतष्ठक्छसौ ४।२।११५

प० वि०—भवतः ५।१ ठक्छसौ १।२ स०—ठक् च छरच इति ठक्छसौ ।

अर्थ—[वृद्धात्] भवच्छब्दाद् वृद्धान् ठक्छसौ प्रत्ययौ भवतः शैपिकौ । (वृद्धसंज्ञक भवत् शब्द से ठक् और छत् प्रत्यय होते हैं शेष ग्रन्थ में)

उदा०—भायत्कः । भवदीयः ।

सि०—भवत् ङस् ठक् । भवत् ठ । भावत् ठ । भावत्क सु^१ । भायत्कः । भवदीयः । भवत् छस् । भवत् छ^२ । भवत् ईय । भवद्^३ ईय । भवदीय सु । भवदीयः ॥

इत्याष्टाध्यायी-प्रकाशिकायां चतुर्थाध्याये द्वितीयः पादः

युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च ४।३।१

प० वि०—युष्मदस्मदोः ६।२ अन्यतरस्याम् अ० खञ् १।१ च अ० । स०—युष्मच्च अस्मच्चेति युष्मदस्मदौ तयोः ।

अर्थ—(उत्तरादेशार्थं पठ्यते) युष्मद्-अस्मद् इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् खञ्चपि प्रत्ययो भवति शैपिकोऽन्यतरस्याम् ।

(युष्मद् और अस्मद् प्रातिपदिक से खञ् प्रत्यय भी शेष ग्रन्थों में विवक्षित होता है)

अत्रेदं ज्ञातव्यम्-वृद्धत्वाच्छः अन्यतरस्यां ग्रहणादण खञ् तु साक्षादेव तस्मात् प्रकृतिद्वयं प्रत्ययत्रयमस्मान् कारणान् यथासंख्यं नञ्

उदा०—युवयोर्युष्माकं वा अयं युष्मदीयः, अस्मदीयः ।

सि०—युष्मद् ङस् छ । युष्मद् ईय । युष्मदीयः । अस्मदीयः ।

१—इमुमुक्तान्तान् ४: (७. १. ५१) २—सिति ४ (१. ४. १६) ३—पदत्वात्, भ्रजा वज्रोऽन्ते (८. २. ३६)

तस्मिन्नणि च युष्माकाम्माको ४।३।२

५० वि०—तस्मिन् ७१ अणि ७१ च अ० । शुष्मान्मात्माकी ११२

स०—युष्माकश्च अस्माकश्चेति युष्माकस्माकी ।

अर्थ—[युष्मदस्मदो] तस्मिन् राज्ञि अणि च युष्मत्स्मदोर्यथा सख्य युष्माकं अस्माकं इत्यतावादेशौ भवत ।

(उस क्षण और अणु के पर रहन पर पुष्पद और अस्मद के स्थान में क्रमशः पुष्पाक्ष और अस्माक्ष आदेश होते हैं)

उदा०—खनि-यौष्माकीण । अस्मान्नीन । अणि-यौष्मान् ।
आस्मान् ।

सि-युष्मद् वस् स्वञ् । युष्मद् र । युष्माक् ईन । युष्माक् ईन ।
 यौष्मानीन । यौष्माकीण मु । यौष्मानीण । अस्मानीन । यौष्माक् ।
 युष्मद् वस् अण् । युष्मान् अ । युष्माक् अ । यौष्माक् मु । यौष्मान् ।
 आस्माक् ।

तवकमभकावेकवचने ४।३।३

प० वि०—तयकममनी १।० ण्कनचते ७।१ स०—तवक्श्च मम-
क्श्चेति तयकममनी ।

अर्थ—[युष्मदस्मत्] युष्मदस्मदोरेकवचने तवत्समकावादेणौ भवत । (युष्मद् और स्मद् शब्द के स्थान में एक वचन य तवत् और समक आदिवा हात ह)

ॐ अत्रेदं ज्ञातव्यम् एकरचने आदेशार्थम् इदं वचनम्, प्रत्ययास्तु पूर्वैर्यैः सिद्धा ॐ

८१०—सवि-सायनीन । मामनीन । अणि-सायक । मामन ।
 धे-सनीय । मनीय ।

सि०-तव मम चा अयम् इति निग्रह । युष्मद् इस् अण् । तवक् अ । तवक् अ । तावक् अ । तावक् मु । तावक् । मामक् । तावक् नीन युष्मद् इस् खव् । तवक् र । तवक् ईन । तवक् ईन । तावक् ईन । तावक् नीन मु । तावक् नीन । मामक् नीन । त्वदीय । युष्मद् छ । युष्मद् ईय । त्व' अद् ईय । त्वद् ईय । त्वदीय मु । त्वनीय । मनीय ।

सि०—समासप्रकरणे द्रष्टव्यम्

वृद्धाच्छ ४।२।११४

प० वि०—वृद्धात् ५।१ छ ११॥

अर्थ—वृद्धसञ्ज्ञकप्रातिपदिकात् छः प्रत्ययो भवति शैपिक । (वृद्ध सञ्ज्ञक प्रातिपदिक से छ प्रत्यय होता है शेष अर्थ में)

उदा०—शालीय । मालीय ।

भवत्ठक्छसौ ४।२।११५

प० वि०—भवत् ५।१ ठक्छसौ १।२ स०—ठक् च छश्च इति ठक्छसौ ।

अर्थ—[वृद्धात्] भवच्छब्दाद् वृद्धात् ठक्छसौ प्रत्ययो भवत् शैपिकौ । (वृद्ध सञ्ज्ञक भवत् शब्द से ठक् और छस प्रत्यय होते हैं तोप अर्थ में)

उदा०—भावत्क । भवदीय ।

सि०—भवत् ङस् ठक् । भवत् ठ । भावत् ठ । भावत्क सु^१ । भावत्क । भवदीय । भवत् छस् । भवत् छ^२ । भवत् ईय । भवद्^३ ईय । भवदीय सु । भवदीय ॥

इत्याष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया चतुर्थाध्याये द्वितीयः पादः

युष्मदस्मदोरन्यतरस्या खञ्च ४।३।१

प० वि०—युष्मदस्मदो ६।२ अन्यतरस्याम् अ० खञ् १।१ च अ^१ । स०—युष्मच्च अस्मच्चेति युष्मदस्मदौ तयोः ।

अर्थ—(उत्तरादेशार्थं पठ्ठी) युष्मद् अस्मद् इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाम्याम् खञ्चपि प्रत्ययो भवति शैपिकोऽन्यतरस्याम् ।

(युष्मद् और अस्मद् प्रातिपदिक से खञ् प्रत्यय भी शेष अर्थों में विकल्प से होता है)

अत्रेदं ज्ञातव्यम् वृद्धत्वाच्च अन्यतरस्यां ग्रहणादण खञ् तु साक्षादेव तस्मात् प्रकृतिद्वय प्रत्ययत्रयमस्मात् कारणात् यथासख्यं नञ्

उदा०—युवयोर्युष्माक वा अय युष्मदीय^१, अस्मदीयः ।

सि०—युष्मद् ङस् छ । युष्मद् ईय । युष्मदीय । अस्मदीयः ।

१—इसुमुक्तान्तात् क (७. १. ५१) २—सिति च (१ ४. १६) ३—पदत्वात्, भक्ता जञोऽन्त (८ २. ३६)

तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ४।३।२

प० वि०—तस्मिन् ७।१ अणि ७।१ च अ० । युष्माकास्माकौ १।२ स०—युष्माकश्च अस्माकश्चेति युष्माकास्माकौ ।

अर्थ—[युष्मदस्मदोः] तस्मिन् खञि अणि च युष्मदस्मदोर्व्यासगत्य युष्माक अस्माक इत्यतावादेशो भवतः ।

(यत् नञ् धोर अण् के परे रत्न पर युष्मद् धोर अस्मद् के स्थान में क्रमशः युष्माक् धोर अस्माक् आदेश होते हैं)

उदा०—खञि-यौष्माकीण । अस्माकीन । अणि-यौष्माक । आस्माक ।

सि०—युष्मद् इस् खञ् । युष्मद् र । युष्माक् ईन । युष्माक् ईन । यौष्माकीन । यौष्माकीण मु । यौष्माकीण । अस्माकीन । यौष्माक । युष्मद् इन् अण् । युष्माक् अ । युष्माक् अ । यौष्माक मु । यौष्माक । आस्माक ।

तवकममकावेकवचने ४।३।३

प० वि०—तवकममकौ १।२ एकवचने ७।१ स०—तवश्च ममश्चेति तवकममकौ ।

अर्थ—[युष्मदस्मदोः] युष्मदस्मदोरेकवचने तवकममकावादेशो भवतः । (युष्मद् धोर अस्मद् वाच्य के स्थान में एक वचन में तवक् धोर ममक् आदेश होते हैं)

॥अत्रेदं ज्ञातव्यम्-एकवचने आदेशार्थम् इदं वचनम्, प्रत्ययान्तु पूर्वणैर सिद्धाः॥

उदा०—तवि-तावकीनः । मामकीनः । अणि-तावकः । मामकः । छे-तृतीय । मदीयः ।

सि०—तव मम वा अयम् इति निग्रहः । युष्मद् इस् अण् । तवक् अ । तवक् अ । तावक् अ । तावक् मु । तावकः । मामक । तारकीनः युष्मद् इस् खञ् । तवक् र । तवक् ईन । तवक् ईन । तावक् ईन । तावकीन मु । तावकीन । मामकीनः । तृतीय । युष्मद् ॥ । युष्मद् ईय । तव् अद् ईय । तव् ईय । तृतीय मु । तृतीय । मदीय ।

मध्यान्म ४।३।८

प० वि०—मध्यात् ५।१ म १।१

अर्थ—मध्यात् प्रातिपदिकात् शेषे म प्रत्ययो भवति । (मध्य प्रातिपदिक स शेष अथ में म प्रत्यय होता है)

उदा०—मध्ये भव मध्यम । × आदेशचेति वक्तव्यम् × आदिम ।

कालाट्ठम् ४।३।११

प० वि०—कालात् ५।१ ठञ् १।१

अर्थ—कालवाचिन प्रातिपदिकात् ठञ् प्रत्ययो भवति शेषेऽर्थे । (कालवाची प्रातिपदिक स शेष अथ में ठञ् प्रत्यय होता है)

उदा०—मासे भव मासिक । सांवत्सरिक । आर्द्धमासिक ।

श्राद्धे शरद ४।३।१२

प० वि०—श्राद्धे ७।१ शरद ५।१

अर्थ—[ठञ्] श्राद्धे गम्यमाने शरत्प्रातिपदिकान् ठञ् प्रत्ययो भवति शेषे । (श्राद्ध गम्यमान होने पर शप अर्थमें शरत् प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होता है)

उदा०—शरदि भव श्राद्धम् इति शारदिक श्राद्धम् ।

विभाषा रोगातपयोः ४।३।१३

प० वि०—विभाषा १।१ । रोगातपयो ७।० स०—रोगश्च आतपश्चेति रोगातपयो ।

अर्थ—[शरद] शरत्प्रातिपदिकाद् रोगे आतपे च अभिधेये ठञ् प्रत्ययो विभाषा भवति शेषे । (शरद शब्द से रोग और आतप अभिधेय होने पर ठञ् प्रत्यय विकल्प से होता है शप अर्थ में)

उदा०—शरदि भवो रोग आतपो वा शारदिको रोग । शारदिक आतप । अणि—शारदो रोग आतपो वा ।

निशाप्रदोषाभ्याञ्च ४।३।१४

प० वि०—निशाप्रदोषाभ्याम् ५।२ च अ० । स०—निशा च प्रदोषश्चेति निशाप्रदोषौ ताभ्याम् ।

अर्थ—[विभाषा ठञ्] निशाप्रदोषाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां विभाषा ठञ् प्रत्ययो भवति ।

(निशा और प्रदोष शब्द से विकल्प करके ठक् प्रत्यय होता है)

उदा०—निशायां प्रदोषे वा भव. नैशिकं प्रादोषिकम् । नैशम् । प्रादोषम् ।

श्वसस्तुट् च ४।३।१५

प० वि०—श्वसः १।१ तुट् १।१ च अ० ।

अर्थ—[विभाषा ठक्] श्व शब्दाद् विभाषा ठक् प्रत्ययो भवति तुट् चागमः शोषे । (श्व शब्द से विकल्प से 'टक्' प्रत्यय होता है शेष में और प्रत्यय को तुट् आगम भी ।

उदा०—श्वो भवः शौयस्तिकः ।

सि०—श्वस् तुट् ठक् । श्वस्त् ठ । श्वस्त इक । शौयस्त' इक । शौयस्त् इक । शौयस्तिक सु । शौयस्तिकम् ।

प्रावृष एण्य. ४।३।१७

प० वि०—प्रावृष. १।१ एण्यः १।१

अर्थ—प्रावृष् शब्दादेयः प्रत्ययो भवति शैपिक । (प्रावृद् शब्द से एण्य प्रत्यय होता है शेष में)

उदा०—प्रावृषि भवः यलाहक इति प्रावृषेण्यो यलाहकः ।

सायचिरप्राह्णे प्रगेऽव्ययेभ्यः ट्युट्युलौ तुट् च ४।३।२३

प० वि०—सायचिरप्राह्णे प्रगेऽव्ययेभ्यः. १।३ ट्युट्युलौ १।२ तुट् १।१ च अ० ।

स०—सायञ्च चिरञ्च प्राह्णे च प्रगे च अग्नानि च इति सायचिरप्राह्णे प्रगेऽव्ययानि तेभ्यः । ट्युश्च ट्युञ्च इति ट्युट्युलौ ।

अर्थ—[कालात्] साय चिर प्राह्णे प्रगे इत्येतेभ्योऽव्ययेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः कालवाचिभ्यः ट्युट्युलौ प्रत्ययो भवतस्तयोस्तुट् चागमः शैपिकी । (सायम्, चिरम् प्राह्णे प्रगे तथा अव्यय इन कालवाचो प्रातिपदिको से शेष भ्रम में ट्यु और ट्युल् प्रत्यय होते हैं और इन प्रत्ययों को तुट् का आगम होता है शेष भ्रम में)

उदा०—सायन्तनम् । चिरन्तनम् । प्राह्वेत्तनम् । प्रागेत्तनम् । दोषातनम् । दिवातनम् । प्राह्वप्रगयोरेदन्तत्वं निपात्यते ।

× चिरपरुपरादिभ्यस्तनो वक्तव्य. × चिरन्तनम् । परन्तनम् । परारितनम् ।

१—द्वारादीना च (७. ३. ४) इत्यनेन न वृद्धिरवागमश्च

तत्र जात ४।३।२५

प० वि०—तत्र अ० । जातः १।१

अर्थ—तत्र इति सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् जात इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । (सप्तमीसमर्थं प्रातिपदिकं से उत्पन्न हुआ इस अर्थ में यथाविहित (अण्) प्रत्यय होता है) । यहा से आगे ४।३।५१ तक इसका अधिकार है ।

उदा०—सुध्ने जातः । सौघ्नः । माधुरः । राध्रे जातः । राध्रिय ।

प्रावृषष्ठप् ४।३।२६

प० वि०—प्रावृष १।१ ठर् १।१

अर्थ—प्रावृषशब्दात् सप्तमीसमर्थात् जात इत्येतस्मिन्नर्थे ठप् प्रत्ययो भवति । (सप्तमीसमर्थं प्रावृष् शब्द से उत्पन्न हुआ इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है)

उदा०—प्रावृषि जातः प्रावृषिकः ।

प्रायभव ४।३।३६

प० वि०—प्रायभवः १।१ स०—प्रायेण भवः प्रायभवः ।

अर्थ—[तत्र] सप्तमीसमर्थान् प्रातिपदिकात् प्रायभव इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । (सप्तमीसमर्थं प्रातिपदिकसे अधिकतर होने वाला इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है)

उदा०—सुध्ने प्रायेण बाहुल्येन भवति सौघ्नः ।

संभूते ४।३।४१

प० वि०—संभूते (क्रिया०)

अर्थ—[तत्र] सप्तमीसमर्थप्रातिपदिकात् संभूते इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । सप्तमीसमर्थं प्रातिपदिक से सम्भव होता है इस अर्थ में यथा विहित प्रत्यय होता है)

उदा०—सुध्ने संभवति सौघ्नः । माधुरः ।

तत्र भव. ४।३।५३

प० वि०—तत्र अ० । भवः १।१

अर्थ—तत्रेति सप्तमीसमर्थप्रातिपदिकात् भव इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । (सप्तमीसमर्थं प्रातिपदिक से होने वाला इस अर्थ में

में यथाविहित प्रत्यय होता है)

उदा०—शालायां भव शालीयः । मालीयः । स्त्रीधनः । माधुरः ॥

दिगादिभ्यो यत् ४।३।५४

प० वि०—दिगादिभ्यः ५।३ यन् १।१ स०—त्रिकृच्छ्र आदिर्येषां ते दिगादयः तेभ्यः ।

अर्थ—[तत्र भव] दिशायाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यस्तत्र भव इत्येतस्मिन्नर्थे यन् प्रत्ययो भवति । दिशावाची प्रातिपदिक स उसमें हान वाला इस अर्थ में यन् प्रत्यय होता है)

उदा०—द्रिश्यम् । वर्ग्यम् । पूज्यम् । गण्यम् ।

शरीरावयवाच्च ४।३।५५

प० वि०—शरीरावयवान् ५।१ च अ० । म०—शरीरस्य अवयवः शरीरावयवः तस्मात् ।

अर्थ—[तत्र भव] शरीरावयवाचिनः प्रातिपदिकात् तत्र भव इत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्यया भवति ।

(शरीर के अङ्ग को कहने वाले प्रातिपदिक स तत्र भव इस अर्थ में यन् प्रत्यय होता है)

उदा०—दन्तेषु भव, दन्त्यम् । कर्ण्यम् । ओष्ठ्यम् ।

जिह्वामूलाङ्गुलेश्च ४।३।६०

प० वि०—जिह्वामूलाङ्गुले ५।१ छ १।१ स०—जिह्वामूलञ्च अङ्गुलिश्चेति जिह्वामूलाङ्गुलि तस्मात् ।

अर्थ—[तत्र भव] जिह्वामूल अङ्गुलि इत्येतस्या प्रातिपदिकाभ्यां छ प्रत्ययो भवति तत्र भव इत्येतस्मिन्नर्थे छ ।

(जिह्वामूल और अङ्गुलि शब्द स तत्र भव इस अर्थ में छ प्रत्यय होता है)

उदा०—जिह्वामूले भव जिह्वामूलीयम् । अङ्गुलीयम् ।

वर्गान्ताच्च ४।३।६३

प० वि०—वर्गान्तान् ५।१ च अ० । स०—वर्गशब्दोऽन्तो यस्येति वर्गान्तः तस्मात् ।

अर्थ—वर्गान्तात् प्रातिपदिकात् तत्र भव इत्येतस्मिन्नर्थे छ प्रत्ययो भवति । (वर्ग शब्दात् प्रातिपदिक स उसमें हान वाला इस अर्थ में छ प्रत्यय होता है)

उदा०—कवर्गे भवं कवर्गीयम् । तवगी यम् ।

सोऽस्य निवासः ४।३।८६

प० वि०—स. १।१ अस्य ६।१ निवासः १।१

अर्थ—प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् अस्य निवास इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहित प्रत्ययो भवति । (प्रथमासमर्थं प्रातिपदिकं से 'उसका निवास है' इस प्रथं में यथाविहित प्रत्यय होता है)

उदा०—स्र ध्नो निवासोऽस्येति स्रौध्नः । माधुरः । राष्ट्रियः ।

तेन प्रोक्तम् ४।३।१०२

प० वि०—तेन ३।१ प्रोक्तम् १।१

अर्थ—तृतीयासमर्थप्रातिपदिकात् प्रोक्तम् इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहित प्रत्ययो भवति ।

(तृतीयासमर्थं प्रातिपदिकं से प्रोक्तं प्रथं में यथाविहित प्रत्यय होता है)

उदा०—पाणिनीयम् । व्याकरणम् । पातञ्जलम् । पातञ्जलः ।

सि०—पाणिना प्रोक्तम् इति विग्रहः । पाणिनि छ^१ । पाणिन् ईय । पाणिनीय मु । पाणिनीय अम् । पाणिनीयम् । पातञ्जलिना प्रोक्तम् पातञ्जलं महाभाष्यम् । पातञ्जलमधीते वेद वेति पातञ्जलः । पातञ्जल अम् अण् । पातञ्जलः^२ ।

तस्येदम् ४।३।१२०

प० वि०—तस्य ६।१ इदम् १।१

अर्थ—पष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकात् इदमित्येतस्मिन्नर्थे यथाविहित प्रत्ययो भवति । (पष्ठी समर्थं प्रातिपदिकं से 'यह है उसका' इस प्रथं में यथाविहित प्रत्यय होता है)

विकारोऽप्यकरणम्

तस्य विकारः ४।३।१३२

प० वि०—तस्य ६।१ विकारः १।१ ॥

अर्थ—पष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकात् विकार इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहित प्रत्ययो भवति । (पष्ठी समर्थं प्रातिपदिकं से विकार प्रथं में यथाविहित प्रत्यय होता है)

उदा०—अश्मनो विनाशः आश्मनः । आश्मः । अश्मनो विनाश इति टिलोपः पाचिकः । मास्मनः । मार्तिकः ।

क्षेत्रस्यप्रकरणे तस्येति पुनर्वचनं शेषाधिकारनिवृत्त्यर्थम् ॥

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकायां चतुर्थाध्याये तृतीयः पादः ।

अध्याधिकारप्रकरणम्

प्राग्वहतेष्ठक् ४।४।१

प० वि०—प्राक् १।१ बहतेः १।१ ठक् १।१ ।

अर्थ—तद्यहति रथयुगप्रासङ्गम् इत्येतस्मात् प्राग् [नक्ष्यमाणेष्वर्थेषु ठक् प्रत्ययो भवति इत्यधिकारो वेदितव्यः ।

(तद् बहति रथयुगप्रासङ्गम् इनके पहने-बहने बहे जाने जाने प्रथो में ठक् प्रत्यय होता है, इस बात का अधिकार ममङ्गता चाहिये)

तेन दीव्यति सनति जयति जितम् ४।४।२

प० वि०—तेन ३।१ दीव्यति क्रिया० । सनति क्रिया० । जयति क्रिया० । जितम् १।१

अर्थ—तेनेति तृतीयासमर्थान् प्रातिपदिकात् दीव्यति सनति जयति जितम् इत्येतेषु अर्थेषु ठक् प्रत्ययो भवति । (तृतीया समर्थ प्रातिपदिक ते दीव्यति, सनति, जयति और जितम् इन प्रथो में ठक् प्रत्यय होता है)

उदा०—अनैर्दीव्यति, आक्षिक् । शालाक्षिक् । बौद्धाक्षिक् । अनैर्जयति जितम् वा आक्षिक् । शालाक्षिक् ।

मस्कृतम् ४।४।३

प० वि०—मस्कृतम् १।१

अर्थ—[तेन] तृतीयासमर्थप्रातिपदिकात् संस्कृतम् इत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । (तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक ते संस्कार क्रिया गया इन प्रथो में यथाविहित (ठक्) प्रत्यय होता है)

उदा०—दध्ना संस्कृतम् दाविक् ।

तरति ४।४।४

प० वि०—तरति क्रिया० ।

अर्थ—[तेन] तृतीयासमर्थप्रातिपदिकात् तरति इत्येतस्मिन्नर्थे

यथाविहितं प्रत्ययो भवति । (तृतीया समर्थं प्रातिपदिक से तैरता है इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हाता है)

उदा०—काण्डप्लवेन तरति काण्डप्लविकः । औडुपिकः ।

गोपुच्छाद् ठक् ४।४।६

प० वि०—गोपुच्छात् १।१ ठक् १।१

अर्थ—[तेन] तृतीयासमर्थाद् गोपुच्छशब्दात् तरति इत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ।

(तृतीयासमर्थं गोपुच्छ शब्द स तैरता है, इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है)

उदा०—गोपुच्छेन तरतीति गोपुच्छिकः ।

नीद्व्यचण्ठन् ४।४।७

प० वि०—नीद्व्यचः १।१ ठन् १।१ नीश्च द्व्यच्चेति नीद्व्यच् तस्मात् ।

अर्थ—[तेन तरति] नीशब्दात् द्व्यचश्च प्रातिपदिकात् तरति इत्येतस्मिन्नर्थे ठन् प्रत्ययो भवति । (नी और दो प्रच् है जिसमें ऐसे प्रातिपदिक से तैरता है, इस अर्थ में ठन् प्रत्यय होता है)

उदा०—नागा तरति नाविकः । द्व्यच-पटेन तरति घटिकः । बाहुकः ।

चरति ४।४।८

प० वि०—चरति क्रिया० ।

अर्थ—[तेन] तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् चरति इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । (तृतीया समर्थं प्रातिपदिक से जाता है और जाता है इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है)

उदा०—दम्ना चरति दाधिकः । हास्तिकः । शाकटिकः ।

निर्वृत्तेक्षत्तादिभ्यः ४।४।९

प० वि०—निर्वृत्ते ७।१ अक्षत्तादिभ्यः १।३ स० - अक्षत्तमादि येषान्ते अक्षत्तादिभ्यः ।

अर्थ—[तेन] अक्षत्तादिभ्यः तृतीयासमर्थप्रातिपदिकेभ्यो निर्वृत्ते इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहित प्रत्ययो भवति । (अक्षत्त इत्यादि तृतीया समर्थ प्रातिपदिकों से बनाया गया इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है)

कत्रेमन्मित्यम् ४।४।२०

प० वि०—कत्रे १।१ मप् १।१ नित्यम् १।१

अर्थ—[निरुत्ते] क्त्रिप्रत्ययान्तान् प्रातिपदिकान् निरुत्तम् इत्ये-
तस्मिन्नर्थे नित्य मप् प्रत्ययो भवति ।

(क्त्रि प्रत्ययान्त प्रातिपदिक म वनाया गया इस अर्थ म निरुत् हा मप्
प्रत्यय हाता है) नित्य ग्रहण स क्त्रि प्रत्ययान्त क्त्रि प्रातिपदिक क प्रयोग का
अभाव दशाया है इसीलिए 'तन' की अनुवृत्त हान हुए भी उसका सम्बन्ध इस
सूत्र में नही लगता ।

उदा०—कर्मणा निरुत्तम् इति क्त्रिमम् । पक्त्रिमम् ।

व्यञ्जनैरुपसिक्त ४।४।२६

प० वि०—व्यञ्जनै ३।३ उपसिक्ते ७।१

अर्थ—[तेन] व्यञ्जनराचिभ्य प्रातिपदिकेभ्यस्ततोयासमर्थेभ्य
उपसिक्ते इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहित प्रत्ययो भवति । (व्यञ्जनवाची ततोया
समर्थ प्रातिपदिक स उपसिक्त दल अर्थ म यथाविहित (ठक्) प्रत्यय हाता है)

उदा०—उच्चना उपसिक्तम् ओदनम् इति वाचिकम् । सौपिकम् ।
स्वारिकम् ।

यदधिकारप्रकरणम्

प्राग्हिताद्यत् ४।४।७५

प० नि०—प्राक् १।१ हितात् १।१ यत् १।१

अर्थ—इतोऽमे तस्मै हितम् इत्येतन्मात प्राक् यक्ष्यमाणेषु अर्थेषु
यत् प्रत्ययो भवति इत्यधिकारो यद्विदव्य । (तस्मै हितम् इस सूत्र क पहले
पहले कह ज न बाल अर्थो म यत् प्रत्यय हाता है इस वात का अधिकार
समस्त चाहिये)

तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् ४।४।७६

प० वि०—तत् २।१ वहति क्रिया० । रथयुगप्रासङ्गम् २।१ म०—
रथश्च युगश्च प्रासङ्गश्चेति रथयुगप्रासङ्गम् ।

अर्थ—तद् इति द्वितीयासमर्थान् रथयुगप्रासङ्गप्रातिपदिकान्
वहति इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहित (यत्) प्रत्ययो भवति ।

(द्वितीयासमर्थ रथ युग और प्रासङ्ग प्रातिपदिक स हाता है इस अर्थ में

परिपदो ण्य. ४।४।१०१

प० वि०—परिपदः ५।१ एयः १।१

अर्थ—[तत्र साधुः] परिपच्छब्दात् सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् साधु इत्येतस्मिन्नर्थे एयः प्रत्ययो भवति । (परिपद शब्द सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से चतुर इम अर्थ में ण्य प्रत्यय होता है)

सि०—परिपदि साधुः पारिपद्य. ॥

सभाया य ४।४।१०५

प० वि०—सभायाः ५।१ यः १।१

अर्थ—[तत्र साधुः] सभाशब्दात् प्रातिपदिकात् तत्र साधु इत्येतस्मिन्नर्थे यः प्रत्ययो भवति । (सभा शब्द से तत्र साधु इस अर्थ में य प्रत्यय होता है)

उदा०—सभायां साधुः सम्य ॥

समानतीर्थे वासी ४।४।१६७

प० वि०—समानतीर्थे ७।१ समानश्चासी तीर्थश्चेति समानतीर्थः तस्मिन् । यसतीति वासी महाद्वित्राणिनिः ॥

अर्थ—[तत्र] समानतीर्थशब्दात् सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् वासी इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति । (समानतीर्थ सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से वासी इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है)

उदा०—सतीर्थ्य ।

सि०—समाने तीर्थे गुरो यसतीति विग्रहः । समानतीर्थं हि यत् । समानतीर्थं य । सतीर्थं^१ य । सतीर्थ्यं सु । सतीर्थ्यः ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणज्ञमहावैयाकरणपण्डितब्रह्मदत्ता-

चार्याणामन्तेवासिना देवप्रकाशपातञ्जलेन विर-

चितायामष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया

चतुर्थाध्याये चतुर्थः पादः.

इति चतुर्थोऽध्यायः

यथाविहित (यत्) प्रत्यय होता है)

उदा०—रथ युग प्रासङ्गम् वा वहति इति रथ्य युग्य प्रासङ्ग्य गौ ।

शकटादण् ४।४।८०

प० वि०—शकटात् १।१ अण् ८।१

अर्थ—[तद्वहति] शकटात् प्रातिपदिकात् द्वितीयासमर्थात् वहती-
त्येस्मिन्नर्थे अण् प्रत्ययो भवति । (शकट प्रातिपदिक से ढोन अण् में अण्
प्रत्यय होता है)

उदा०—शकट वहति इति शाकटो गौ ॥

हलसीराट्ठक् ४।४।८१

प० वि०—हलसीरात् १।१ ठक् १।१ स०—हल च सीर च इति
हलसीरम् तस्मात्

अर्थ—[तद्वहति] हलसीरशब्दात् द्वितीयसमर्थप्रातिपदिकान्या
वहतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । (हल और सीर द्वितीया समर्थ
प्रातिपदिक से होता है इस अण् में ठक् प्रत्यय होता है)

उदा०—हल सीर वा वहति इति हालिक सैरिको गौ

तत्र साधु ४।४।८८

प० वि०—तत्र अ० । साधु १।१

अर्थ—सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् साधु इत्येतस्मिन्नर्थे यथावि-
हित (यन्) प्रत्ययो भवति । (सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से 'चतुर' है इस
अण् में यथाविहित (यत्) प्रत्यय होता है)

उदा०—सामसु साधु सामन्य । कर्मणि साधु कर्मण्य ।

सि—सामन् यत् । सामन् य । सामन्य ।

भक्तादण् ४।४।१००

प० वि०—भक्तात् १।१ अण् १।१॥

अर्थ—[तत्र साधु] भक्तशब्दात् सप्तमीसमर्थप्रातिपदिकात् साधु
इत्येतस्मिन्नर्थे अण् प्रत्ययो भवति । (भक्त शब्द से अच्छा अण् में अण्
प्रत्यय होता है)

उदा०—भक्ते साधु, भाक्त शालि । भाक्तास्तण्डुला ॥

१—ये चाभावकमणो (६ ४ १६८)

परिपदो ण्यः ४।४।१०१

प० वि०—परिपदः १।१ एवः १।१

अर्थ—[तत्र साधुः] परिपञ्च्यद्वात् सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् साधु इत्येतस्मिन्नर्थे एवः प्रत्ययो भवति । (परिपद इत्येव सप्तमी समर्थं प्रातिपदिकं से चतुर इत्यर्थं मे प्य प्रत्यय होता है)

सि०—परिपदि साधुः पारिपचः ॥

सभाया यः ४।४।१०५

प० वि०—सभायाः १।१ यः १।१

अर्थ—[तत्र साधुः] समाराध्यात् प्रातिपदिकात् तत्र साधु इत्येतस्मिन्नर्थे यः प्रत्ययो भवति । (सभा इत्येव से तत्र साधु इत्यर्थं मे य प्रत्यय होता है)

उदा०—सभायां साधुः सम्यः ॥

समानतीर्थे वासी ४।४।१६७

प० वि०—समानतीर्थे ७।१ समानश्चासी तीर्थश्चेति समानतीर्थः तस्मिन् । वसतीति वासी प्रहादित्वाणिनिः ॥

अर्थ—[तत्र] समानतीर्थशब्दान् सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकान् वामी इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं यन् प्रत्ययो भवति । (समानतीर्थं सप्तमी समर्थं प्रातिपदिकं मे वासी इत्यर्थं मे यथाविहितं प्रत्यय होता है)

उदा०—सतीर्थ्यः ।

सि०—समाने तीर्थे गुरो वसतीति विग्रहः । समानतीर्थं हि यत् । समानतीर्थं य । सतीर्थं य । सतीर्थ्यं मु । सतीर्थ्यः ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणजमहावैयाकरणपण्डितब्रह्मदत्ता-

चार्याणामन्तेवासिना देवप्रकाशपातञ्जलेन विर-

चितायामष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया

चतुर्थोऽध्याये चतुर्थः पादः

इति चतुर्थोऽध्यायः

प्राक् क्रीताच्छः ५।१।१

प० वि०—प्राक् १।१ क्रीतात् ५।१ छः १।१

अर्थ—इतोऽप्रे तेन क्रीतम् इत्येतस्मात् प्राक् वक्ष्यमाणेषु अर्थेषु छः प्रत्ययो भवति इत्यधिकारो वेदितव्यः । (यहां से तेन क्रीतम् इस सूत्र के पहले पहले कहे जाने वाले अर्थों में छ प्रत्यय होता है, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

उगवादिभ्यो यत् ५।१।२

प० वि०—उगवादिभ्यः ५।२ यत् १।१ स०—उश्च गवाद्यश्चेति तेभ्यः । गौरादियेषान्ते गवादयः ।

अर्थ—उवर्णान्तात् प्रातिपदिकाद् गवादिभ्यश्च प्राक्क्रीतीयेष्वर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति । (उवर्णान्त गौर गो इत्यादि प्रातिपदिक से क्रीत के पहले पहले अर्थों में यत् प्रत्यय होता है)

उदा०—उवर्णान्तात्—शङ्कुवे हितम् शङ्कुव्यं दारु । विचव्यः कार्पासः । कमण्डलव्य दारु ।

सि०—शङ्कु छे यत् । शङ्को^१ य । शङ्कु^२ य । शङ्कुव्य सु । शङ्कुव्य अम् । शङ्कुव्यम् ॥

तस्मै हितम् ५।१।५

प० वि०—तस्मै ५।१ हितम् १।१

अर्थ—चतुर्थीसमर्थात् प्रातिपदिकात् हितम् इत्येतस्मिन्नर्थे यथाधिहितं प्रत्ययो भवति । (चतुर्थी समर्थ प्रातिपदिक से हित इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है)

उदा०—वत्सेभ्यो हितम् गोधुक् इति वत्सीय. गोधुक्

शरीरावयवाद् यत् ५।१।६

प० वि०—शरीरावयवात् ५।१ यत् १।१ स० शरीरस्य अवयवः शरीरावयवः तस्मात् ।

अर्थ—[तस्मै हितम्] शरीरस्य अवयववाचिनः प्रातिपदिकात् तस्मै हितम् इत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति । (शरीर के अवयववाची प्रातिपदिक से तस्मै हितम् इस अर्थ में यत् प्रत्यय होता है)

१—यच्च भम् (१ ४. १८) यस्य (६ ४ १२६) ओष्ठेण. (६. ४. १४६) २—वान्तो वि प्रत्यये (६. १. ७६)

उदा०—दन्तेभ्यो हितम् दन्त्य चूर्णम् । कण्ठ्यम् । ओष्ठ्यम् ।
नाभ्यम् । नस्यम् ।

प्राग्वतेष्ठञ् ५।१।१८

प० वि०—प्राक् १।१ वते. १।१ ठञ् १।१

अर्थ—इतोऽपे तेन तुल्य क्रिया चेद्वति इत्येतस्मात् प्राक् वक्ष्यमा-
णेषु अर्थेषु ठञ् प्रत्ययो भवति इत्याधिरारो चेदित्यर्थः । (यह स तेन तुल्य
क्रिया चेद्वति इस मूल के पहले पहल कह जाने वाले अर्थों में ठञ् प्रत्यय
होता है इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

आर्हादिगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट्ठक् ५।१।१९

प० वि०—आ अ०) आर्हां १।१ अगोपुच्छसंख्यापरिमाणात् ५।१

ठक् १।१ स०—गोपुच्छं च संख्या च परिमाणं चेति गोपुच्छसंख्यापरि-
माणम् । न गोपुच्छसंख्यापरिमाणम् उति अगोपुच्छसंख्यापरिमाणम्
तस्मात् ।

अर्थ—तद्वहति इत्येतस्मात् प्राक् वक्ष्यमाणेषु अर्थेषु ठक् प्रत्ययो
भवति गोपुच्छादीन् वर्णयित्वा । तद्वहति इस मूल तक कहे जाने वाले
अर्थों में ठक् प्रत्यय होता है गोपुच्छादि शब्दों का छोड़कर इस बात का
अधिकार समझना चाहिये)

शताच्च ठन्यतावशते ५।१।२१

प० वि०—शतात् ५।१ च अ० । ठन्यती १।२ अशते ७।१ स०—

ठन् च यच्च इति ठन्यती । न शतम् अशत तस्मिन् ।

अर्थ—[आर्हांत्] शतशब्दात् आर्हन्त्यर्थेषु ठन्यती प्रत्ययो भवतः
अशतेऽभिधेये । (शत शब्द से आर्हाय अर्थों में ठन् और यत् प्रत्यय होने हैं शत
प्रमाण्य होने पर नहीं ।

उदा०—शतेन क्रीत शत्यम् । शतिकम् ।

संख्याया अतिशदन्तायाः कन् ५।१।२२

प० वि०—संख्यायाः ५।१ अतिशदन्तायाः ५।१ कन् १।१ स०—तिश्च
शच्च इति तिशती । अन्तश्च अन्तश्च इति अन्ती । तिशती अन्ती
यस्याः संख्याया इति तिशदन्ता । न तिशदन्ता इति अतिशन्ता तस्याः
अतिशदन्तायाः ।

अर्थ—[आहोन्] संख्यामाचिन प्रातिपदिकात् आहोप्यर्थेषु कन् प्रत्ययो भवति त्यन्तां शब्दन्तां च संख्यां वर्जयित्वा । (गण्यवाची प्रातिपदिन से आहोप्य घषों में कन् प्रत्यय होता है त्यन्त घोर शब्दत संख्या को छोड़कर)

उदा०—पञ्चभिः क्रीतः पञ्चक । बहुक । गणक ।

तेन क्रीतम् ५।१।३७

५० वि०—तेन ३।१ क्रीतम् १।१

अर्थ—तेनेति तृतीयाममर्थप्रातिपदियान् क्रीतम् इत्येनिमन्तर्धे यथाविहित प्राययो भवति (तृतीया नमर्थ प्रातिपदिन से गरीदा गया इन धर्मे में यथाविहित प्रत्यय होता है)

उदा०—भक्षारया क्रीतम् माप्ततिकम् । आशीतिकम् ।

सि०—सप्तति टा ठप् । सप्तति इक । माप्ततु इक । माप्ततिक मु । माप्तनिक अम् । माप्ततिरम् ।

इत्येतस्मिन्नर्थे यः प्रत्ययो भवति । (दण्ड इत्यादि द्वितीया समयं प्रातिपदिकं से योग्य होता है इन अर्थ में य प्रत्यय होता है)

उदा०—दण्डमर्हतीति दण्ड्यः ॥

तेन तुल्य क्रिया चेद्वति ५।१।११५

प० वि०—तेन ३।१ तुल्यम् १।१ क्रिया १।१ चेत् अ० । वतिः १।१

अर्थ—तृतीयासमर्थान् प्रातिपदिकात् तुल्य क्रिया चेद् इत्येतस्मिन्नर्थे वतिः प्रत्ययो भवति । (तृतीया समयं प्रातिपदिकं से 'समान क्रिया यदि हो' इन अर्थ में वति प्रत्यय होता है)

उदा०—ब्राह्मणेन तुल्य क्रिया चेत् ब्राह्मणवत् । स्थानिना तुल्यं क्रिया चेत् स्थानिवत् ॥

तत्र तस्येव ५।१।११६

प० वि०—तत्र अ० । तस्य ६।१ ऽव अ० ।

अर्थ—सप्तमीसमर्थान् प्रातिपदिकान् षष्ठीसमर्थान् प्रातिपदिकाद् वा इयार्थे वतिः प्रत्ययो भवति । (सप्तमी वा षष्ठी समयं प्रातिपदिकं से समान अर्थ में वति प्रत्यय होता है)

उदा०—मधुरायामिव मधुरावत् सुध्ने प्राकारः । देवदत्तस्य इव देवदत्तवत् ॥

तस्य भावस्त्वतलो ५।१।११६

प० वि०—तस्य ६।१ भावः १।१ त्वतलो १।२ स०—त्वत् तत् चेति त्वतलो ।

अर्थ—षष्ठीसमर्थप्रातिपदिकाद् भाव इत्येतस्मिन्नर्थे त्वतलो प्रत्ययो भवतः । (षष्ठी समयं प्रातिपदिकं से भाव अर्थ में त्व और तत् प्रत्यय हाते हैं)

उदा०—ऋषिप्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भावः गोर्भावो गोत्वम् गाता ॥ मनुष्यस्य भावः मनुष्यत्वम् । मनुष्यता ॥

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया पञ्चमाध्याये प्रथमः पादः

तदस्य सजातः तारकादिभ्यः इत्च् ५।२।३६

प० वि०—तन् १।१ अस्य ६।१ संजातः १।१ तारकादिभ्यः ५।३ इत्च् १।१ स०—तारकः आदिर्येपान्ते तारकादयः तेभ्यः ।

अर्थ—प्रथमासमर्थेभ्य तारकादिभ्य प्रातिपदिकेभ्य अस्येति पठ्यथे^१ इतच् प्रत्ययो भवति, यत्तन् प्रथमासमर्थं सञ्जातश्चेत् तद्भवति । (प्रथमा समर्थं तारकादि प्रातिपदिको स इस का' इस अथ मे इतच् प्रत्यय होता है यदि प्रथमा समर्थ सञ्जात (हुआ) अथ वो कहता हो)

उदा०—तारका सञ्जाता अस्य नमस्तारकित नम । पुष्पितो वृक्ष । पण्डित पुरुष ॥

प्रमाणे द्वयसञ्दध्नञ्मात्रच ५।१।३१

प० वि०—प्रमाणे ७।१ द्वयसञ्दध्नञ्मात्रच १।३ स०—द्वयसञ्च दध्नञ्च मात्रञ्चेति द्वयसञ्दध्नञ्मात्रच

अर्थ—[तस्य] प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्य प्रमाणम् इत्येतस्मिन्नर्थे^१ द्वयसञ्च दध्नञ् मात्रञ् इत्येते प्रत्यया भवति ।

(प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक स इसका प्रमाण है' इस अथ में द्वयसञ्च दध्नञ् और मात्रञ्च प्रत्यय होते हैं)

उदा०—ऊरु प्रमाणम् अत्येति ऊरुद्वयसम् । ऊरुदध्नम् । ऊरुमात्रम् । जानुद्वयसम् । जानुदध्नम् । जानुमात्रम् ।

पुरुषहस्तिभ्याम् अण् च ५।२।३८

प० वि०—पुरुषहस्तिभ्याम् ५।२ अण् १।१ च अ० । स०—पुरुषश्च हस्ती च पुरुषहस्तिनौ ताभ्याम् ।

अर्थ—[प्रमाणे तदस्य] प्रथमासमर्थाभ्याम् पुरुषहस्तिशब्दाभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्य प्रमाणम् इत्येतस्मिन्नर्थे^१ अण् प्रत्ययो भवति चकाराद् द्वयसञ्च दध्नञ् मात्रञ् इत्येते प्रत्यया भवन्ति ।

(प्रथमा समर्थ पुरुष और हस्तिन् प्रातिपदिक से 'इसका प्रमाण है' इस अर्थ में अण् और चकार से द्वयसञ्च दध्नञ् और मात्रञ्च प्रत्यय होते हैं)

उदा०—पुरुषो हस्ती वा प्रमाणम् अस्य उदकस्य इति पौरुष उदकम् । पुरुषद्वयसम् । पुरुषदध्नम् । पुरुषमात्रम् । हास्तिनम् । हस्तिद्वयसम् । हस्तिदध्नम् । हस्तिमात्रम् ॥

यत्तदेतेभ्य परिमाणे वतुप् ५।२।३९

प० वि०—यत्तदेतेभ्य ५।३ परिमाणे ७।१ वतुप् १।१ स०—यच्च तच्च एतच्चेति यत्तदेते तेभ्य

अर्थ—[तदस्य] यत्तदेतेभ्य प्रथमासमर्थेभ्य अस्य परिमाणम्

इत्येतस्मिन्नर्थे वतुप् प्रत्ययो भवति । (यद् तद् और एतद् प्रथमा समर्थं प्रातिपदिक से इसका परिमाण है इस अर्थ में वतुप् प्रत्यय होता है)

उदा०—यन् परिमाणमस्येति यावान् । तावान् । एतावान् ।

सि०—यत् सु वतुप् । यत् वत् । य आ^१ वत् । यावत्^२ । यावन् सु । यावान् सु । यावानुम्^३ सु । यावान्त् सु । यावान्त् स् । यावान्त् । यावान् । यावन्तो । यावन्तः । यावन्तम् । यावन्तो । यावतः । यावता । यावद्भ्याम्^४ । यावद्भिः ॥

किमिदंभ्यां वो घः ५।२।४०

प० वि०—किमिदंभ्याम् ५।२ घः ६।१ घः १।१ स०—किम् च इदम् च इति किमिदमौ ताभ्याम् ।

अर्थ—[तदस्य परिमाणे वतुप्] किम्-इदंभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्य परिमाणम् इत्येतस्मिन्नर्थे वतुप् प्रत्ययो भवति तस्य वतुपो वकारस्य च स्थाने घ इत्ययमादेशो भवति ।

(किम् और इदम् प्रातिपदिक से इसका परिमाण है इस अर्थ में वतुप् प्रत्यय होता है और वतुप् के वकार के स्थान में घ यह भावेश हो जाता है)

उदा०—कियान् । कियन्तो । कियन्तः । कियन्तम् । कियन्तो । कियतः । कियता । कियद्भ्याम् कियद्भिः । इदम्-दयान् । इयन्तो । इयन्तः । इयन्तम् । इयन्तो । इयतः । इयता । इयद्भ्याम् । इयद्भिः ।

सि०—किम् सु घतुप् । किम् घतुप् । किम् घत् । किम् इय् अन् । किम् इयत् । की इयत् । क् इयत् । कियत् । कियत् सु । कियान् स् । कियान्त् स् । कियान्त् । कियान् ।

इदम् । इदम् वतुप् । इदम् वत् । इदम् घत् । इश्^५ घत् । इ इय् अन् । इ इयत् । इयत् सु । इयान् स् । इया नुम त् स् । इयान्त् स् । इयान्त् । इयान् । इयन्तो । इयन्तः ॥

१—आ सर्वनाम्नः (६. ३. ६१) २—घकः सर्वार्थे दीर्घः (६. १. ६७) ३—उगिदचा सर्वनामस्थानेऽधतोः (७. १. ७०) ४—मिदचोऽन्त्यात्परः (१. १. ४६) ५—स्वादिष्वसर्वनामस्थाने (१. ४. १७) ६—भूना जशोऽन्ते (८. १. ३६) ७—इहदिमोरीदीकी (६. ३. ६०) ८—घनेकात्स्नित्त्वस्य (१. १. १४)

किम् संख्यापरिमाणे ङति च ५।२।४१

प० वि०—किम् ५।१ संख्यापरिमाणे ७।१ ङति १।१ च अ० ।

स०—संख्यायाः परिमाणम् संख्यापरिमाणम् तस्मिन् ।

अर्थ—[तदस्य वतुप् वो घः] किंशब्दात् प्रातिपदिकात् प्रथमासम-
र्थात् अस्य संख्यापरिमाणम् इत्येतस्मिन्नर्थे ङति प्रत्ययो भवति चका-
रात् वतुप् प्रत्ययोऽपि भवति, तस्य च वकारस्य स्थाने घकारादेशो
भवति । (किम् प्रथमा समर्थं प्रातिपदिक से “इसका संख्यापरिमाण” इस अर्थ
में ङति प्रत्यय होता है और चकार से वतुप् प्रत्यय भी और उस वतुप् के वकार
के स्थान में घकार आदेश हो जाता है)

उदा०—का संख्या परिमाणम् एषां ब्राह्मणानाम् इति कति कियन्तो
वा ब्राह्मणाः ॥

सि०—कति । किम् ङति । किम् अति । क् अति । कति । कति
जस् । कति^१ ॥

संख्याया अवयवे तयप् ५।२।४२

प० वि०—संख्यायाः ५।१ अवयवे ७।१ तयप् १ । १ ॥

अर्थ—[तदस्य] तद् इति प्रथमासमर्थात् संख्यावाचिप्रातिपदिकाद्
अस्य अवयव इत्येतस्मिन्नर्थे तयप् प्रत्ययो भवति । (प्रथमा समर्थं संख्या-
वाची प्रातिपदिक से इसका अवयव (भाग) है, इस अर्थ में तयप् प्रत्यय होता है)

उदा०—पञ्च अवयवाः अस्य इति पञ्चतयम् । पञ्चतयी । दश-
तयम् । दशतयी । चतुष्टयम् । चतुष्टयी ।

सि०—पञ्चन् तयप् । पञ्चतय सु । पञ्चतय अम् । पञ्चतयम् ।
पञ्चतयी । पञ्चतय ङीप् । पञ्चतय् २ । पञ्चतयी सु । पञ्चतयी ॥

द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ५।२।४३

प० वि०—द्वित्रिभ्याम् ५।२ तयस्य ६।१ अयच् १।१ वा अ० ।

स०—द्वी य त्रयश्चेति द्वित्री ताभ्याम् । ॐ शब्दप्रधानोऽयं-
निर्देशः, नत्वर्थप्रधानम् अतएव सूत्रे द्विवचनं क्रियते ।

अर्थ—द्वित्रिभ्यां परस्य तयस्य स्थाने अयच् इत्ययमादेशो भवति वा ।

(द्वि और त्रि शब्द के पदवात् तयर् के स्थान में विकल्प से अयच् आदेश

१—टि. (६. ४. १४३) २—बट्टगणवतुङति मंथ्या (१. १ २२) पदभ्यो
सुट् (७. १. २२)

होता है)

उदा०—द्वौ अवयवौ अन्येति द्वयम् द्वितयम् । त्रयोऽवयवा अन्येति त्रयम् । त्रितयम् ।

संख्याया गुणस्य निमाने भयट् ५।२।४७

प० वि०—संख्यायाः ५।१ गुणस्य ६।१ निमाने ७।१ भयट् १।१

अर्थ—[तदस्य] गुणो भागः इत्यनर्थान्तरम् । निमानं मूल्यम् इत्यनर्थान्तरम् । तद् इति प्रथमासमर्थान् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकान् अस्य गुणस्य भागस्य वा निमानम् मूल्यम् वा इत्येतस्मिन्नर्थे भयट् प्रत्ययो भवति । (प्रथमासमर्थं संख्यावाची प्रातिपदिक से “दस नाग वा यह मूल्य है” इस अर्थ में भयट् प्रत्यय होता है)

उदा०—यवानां द्वौ भागौ निमानमस्य चदरियद्भागस्य द्विमयम् चदरियद् यवानाम् । त्रिमयम् । चतुमेयम् ।

तस्य पूरणे ढट् ५।२।४८

प० वि०—तस्य ६।१ पूरणे ७।१ ढट् १।१

अर्थ—[संख्यायाः] पूर्यतेऽनेन इति पूरणम् । तस्येति पष्ठीसमर्थान् संख्यावाचिप्रातिपदिकान् पूरण इत्येतस्मिन्नर्थे ढट् प्रत्ययो भवति । (पष्ठीसमर्थं संख्यावाची प्रातिपदिक से पूरण अर्थ में ढट् प्रत्यय होता है)

उदा०—एकादशानां पूरणे, एकादशः । द्वादशः । त्रयोदशः ।

सि०—एकादश ढट् । एकादश^१ अ । एकादश सु । एकादशः ।

नान्तादसंख्यादेर्मट् ५।२।४९

प० वि०—नान्तान् ५।१ असंख्यादेः ५।१ भयट् १।१ स०—नः अन्तो यस्य इति नान्तः तस्मान् । संख्या आदिर्यस्य इति संख्यादिः न संख्यादिः असंख्यादिः तस्मात् ।

अर्थ—[संख्यायाः पूरणे] असंख्यादेर्नान्तान् प्रातिपदिकान् संख्यावाचिनः ढटो भङ्गागमो भवति पूरणेऽर्थे ।

(संख्यावाची शब्द आदि में नहीं है जिस के ऐसे नकारान्त संख्यावाची प्रातिपदिक से पूरण अर्थ में ढट् को मट् का आगम होता है)

उदा०—पञ्चानां पूरणं पञ्चमः । सप्तमः ।

सि०—पञ्चन् आम् मट् डट् । पञ्च म अ । पञ्चम सु । पञ्चम

पट्कतिकतिपयचतुरा थुक् १।२।५१

प० वि०—पट्कतिकतिपयचतुराम् ६।३ थुक् १।१

अर्थ—[तस्य पूरणे डट्] पट् कति रुपिपय चतुर् इत्येतेषां डटि परतरथुगागमो भवति तस्य पूरणे इत्येतस्मिन्नर्थे ।

ॐ अत्रेदं ज्ञातव्यम् पठोनिर्देशान् पद्यादीनामागमिरव स्पष्टम् इति तदानुकूत्येनानुपत्तो डट् सप्तम्या विपरिणम्यते ॐ

(पट् कति, कतिपय और चतुर शब्द को डट् के परे रहन पर थुक् का आगम होता है)

उदा०—पद्या पूरणो पठ । कतिथ । कतिपयथ । चतुर्थ ।

×चतुरद्वयतावाचत्तरलोपरच× चतुर्णां पूरणं, तुरीय । तुर्य ।

सि०—पष्ठ । पप् आम् डट् । पप् थुक् अ । पप् थ् अ । पप् ठ् । अ । पष्ठ सु । पष्ठ ।

तुरीय । चतुर् आम् छ । तुर छ । तुर् ईय । तुरीय सु । तुरीय । चतुर् यत् । तुर्य^१ ।

द्वेस्तीय १।२।५४

प० वि०—द्वे १।१ तीय १।१

अर्थ—[तस्य पूरणे] द्विशब्दात् तीय प्रत्ययो भवति तस्य पूरणे इत्येतस्मिन्नर्थे (द्वि शब्द से उसकी पूर्ति इस अर्थ में तीय प्रत्यय होता है)

उदा०—द्वयो पूरणो द्वितीय ।

त्रे सम्प्रसारणञ्च १।२।५५

प० वि०—त्रे १।१ सम्प्रसारणम् १।१ च अ० ।

अर्थ—[तीय] त्रिशब्दात् तस्य पूरणे इत्येतस्मिन्नर्थे तीय प्रत्ययो भवति तत्सन्नियोगेन त्रे सम्प्रसारणं च भवति ।

(त्रि शब्द से उसकी पूर्ति इस अर्थ में तीय प्रत्यय होता है और उसने अर्थोत्पत्ति को सम्प्रसारण भी हो जाता है)

उदा०—त्रयाणां पूरणं तृतीय ।

१—पुनः पु (न ४. ४०) २—चतुरद्वयतावाचत्तरलोपरच (१ २ ५१ वा०)

तदस्यास्त्यस्मिन्निति मनुप् ५।२।६४

प० वि०—तत् १।१ अस्य ६।१ अस्ति क्रिया० । अस्मिन् ७।१ इति अ० । मनुप् १।१

अर्थ—तदिति प्रथमासमर्थान् प्रातिपदिकात् अन्य अस्मिन् वा अस्ति इत्येतस्मिन्नर्थे मनुप् प्रत्ययो भवति । (प्रथमासमर्थं प्रातिपदिकं से 'इसका है' वा 'इसमें है' इन प्रथी में मनुप् प्रत्यय होना है)

उदा०—गावोऽस्य सन्ति इति गोमान् देवदत्तः । वृक्षाः अस्मिन् पर्वते सन्ति इति वृक्षान् पर्वतः ।

सि०—वृक्ष जस् मनुप् । वृक्ष वन्^१ स् । वृक्षन्^२ मु । वृक्षान्^३ स् । वृक्षान्^४ स् । वृक्षान् । वृक्षान् । वृक्षवन्ती । वृक्षयन्तः । वृक्षयन्तम् । वृक्षयन्ती । वृक्षयतः ।

अत इनिठनौ ५।२।११५

प० वि०—अतः ५।१ इनिठनौ १।२ स०—इतिश्च ठन् च इति इनिठनौ ।

अर्थ—[अन्यतरस्याम् तदस्यास्त्यस्मिन्निति] प्रथमासमर्थान् अकारान्तात् प्रातिपदिकान् अन्य अस्ति अस्मिन् वा इत्यर्थे इनिठनौ प्रत्ययो भवतः अन्यतरस्याम् पक्षे मनुप् च ।

(प्रथमासमर्थं अकारान्त प्रातिपदिकं से 'इसका या इसमें है' इन प्रथं में विवल्ग से इति घोर ठन् प्रत्यय होने हैं)

उदा०—गुणा सन्ति अस्य अस्मिन् वा इति गुणी । गुणिकः । गुणयान् । छत्री । छत्रिकः । छत्रवान् । दरडी । दरिद्रकः । दण्डवान् ।

सि०—गुण इनि । गुण इन् । गुण् उव । गुणिन् । गुणिन् मु । गुणीन्^१ स् । गुणीन् । गुणी^२ । गुणिनी । गुणिनः । गुणिनम् । गुणिनी । गुणिनः । गुणिना । गुणिभ्याम् । गुणिभिः ।

अस्मायामेवास्त्रजो विनिः ५।२।१२१

प० वि०—अस्मायामेवास्त्रजः ५।१ विनिः १।१ स०—अम् च माया च मेवा च स्त्र् च इति अस्मायामेवास्त्र् तन्मान् ।

१—मादुपधायाश्च मनोर्वोश्चवादिभ्यः (८. ३. ६) २—गुडननु गवम्भ (१. १. ४२) लगिदधा गवनामग्यानेऽपानोः (७. १. ७०) ३—मो च (६. ४. १४) ४—नलोऽतः प्रातिपदिकान्तस्य (८. २. ७)

अर्थ—[अन्यतरस्याम् तदस्यास्त्यस्मिन्निति] प्रथमासमर्थात् असन्तान् माया मेवा स्वरु इति एतेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्य अस्य अस्ति अस्मिन् वा इत्यर्थे विनि प्रत्ययो भवति अन्यतरस्याम् । (असन्त, माया, मेवा ओर स्वरु शब्द से मत्वर्थ में विनि प्रत्यय होता है)

उदा०—यश अस्ति अस्य अस्मिन्निति चेति यशस्वी । यशस्वान् । मायावी । मायावान् । मेधावी । मेधावान् । स्वामी ।

सि०—यशस्वी । यशस् सु विन् । यशस्वी । यशस्विनौ । यशस्विन । यशस् मतुप् । यशस् मत् । यशस्वत् । यशस्वत् सु । यशस्वात् स् । यशस्वान् । यशस्यान् । यशस्यन्तौ । यशस्वन्त ।

अर्श आदिभ्योऽच् ५।२।१२७

प० वि०—अर्थआदिभ्य ५।३ अच् १।१ स०—अर्श आदि येषान्ते अर्शआद्य तेभ्य ।

अर्थ—[तदस्यास्त्यस्मिन्निति] प्रथमान्तेभ्य अर्शस् इत्येषमादिभ्य प्रातिपदिकेभ्योऽस्यास्त्यस्मिन् वा इत्यर्थे अच् प्रत्ययो भवति । (प्रथमासमर्थं अर्शस इत्यादि शब्दों से 'इसका वा इसमें है' इस अर्थ में अच् प्रत्यय होता है)

उदा०—अर्शासि अस्य विद्यन्ते इति अर्शास । आकृतिगणोऽयम् । तेन । पापमन्य अस्मिन् या विद्यते इति पाप पुरुष । आम्नाणि सन्ति अस्य वृक्षस्येति आम्नो वृक्ष ।

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया पञ्चमाध्याय द्वितीय पाद

प्राग्दिशीयप्रत्ययप्रकरणम्

प्राग्दिशो विभक्ति ५।३।१

प० वि०—प्राक् १।१ दिश ५।१ विभक्ति १।१

अर्थ—इतोऽग्रे दिक्शब्देभ्य सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशान्ते-
ष्वस्ताति इत्येतस्मात् प्राक् चक्ष्यमाणा प्रत्यया विभक्तिसज्ञा भवन्ति
इत्यधिकारो वेदितव्यः । (यहाँ से दिक्शब्देभ्य इससे पहले पहल कहे जाने
वाले प्रत्ययों की विभक्ति सज्ञा होती है, इस बात का अधिकार सम्पन्नता चाहिए)

॥अत्रेदं ज्ञातव्यम् समर्थानामिति प्रथमादिति च निवृत्तम् चेति
त्यनुवृत्तं प्व ॥३॥

किसर्वनामबहुभ्योऽद्वयादिभ्य ५।३।२

किसर्वनामबहुभ्य ५।३ अद्वयादिभ्य ५।३ किञ्च सर्वनाम च बहुभ्येति किसर्वनामबहुभ्य तेभ्य । द्वि आदिर्येषान्ते द्वयादयः । न द्वयादय अद्वयादय तेभ्य ।

अर्थ—[प्राग्निश] दिशुशदेभ्य इति यावन् वक्ष्यमाणा प्रत्यया किम् सर्वनाम्न बहुशब्दाच्च द्वयादिभ्यो वर्जितेभ्य भवन्ति इत्यधिकारो ज्ञेयः । (दिक्पठेभ्य इत् भूत क पठने पठने बह जान बात प्रत्यय किम् सर्वनाम और बहु शब्द क पश्चात् द्वि इत्यादि को छोड़कर होत है इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

इदम् इश ५।३।३

प० वि०—इदम् ६।१ इश १।१ ॥

अर्थ—[प्राग्निश] इदम्, स्थाने इश इत्ययमादेशो भवति प्राग्निशीयेषु प्रत्ययेषु परत । (प्राग्निशीय प्रत्ययों के पर रहन पर इद के स्थान में इश भादेश हा जाता है)

एतेती रथो ५।३।४

प० वि०—एतेती १।२ रथोः ७।२ स०—एतरच इच्छेति एतेती । रथच यश्चेति, रथो रथो ।

अर्थ—[इदम्] इदशब्दस्य रेफादी यकारादी च प्राग्निशीये प्रत्यये परत एत इन् इत्येतोऽयथासत्यम् आदेशो भवत ।

(इद शब्द का एत और इत् भादेश क्रमशः हा जाता है प्राग्निशीय रेफादि और यकारादि प्रत्यय के परे रहने पर)

एतदोऽन् ५।३।५

प० वि०—एतदः ६।१ अन् १।१

अर्थ—[प्राग्निश] एतद प्राग्निशीये प्रत्यये परतः अन् इत्ययमादेशो भवति । (एतद के स्थान में अन् भादेश होता है प्राग्निशीय प्रत्यय क परे रहन पर)

अत्रेदं ज्ञातव्यम्—एतद इति योगविभागः कर्तव्यः । एतद 'एत' 'इन्' इत्येतामादेशो भवत रथो । तत अन् । अश्च भवत्येतद इति ।

सर्वस्य सोऽन्यतरस्या दि १।३।६

१० वि०—सर्वस्य ६।१ स-१।१ अन्यतरस्याम् अ० । ति ७।१

अर्थ—[प्राग्दिश] सर्वस्य स्थाने ङ इत्ययमादेशो भवति अन्यतरस्या प्राग्दिशीये ढकारादौ प्रत्यये परत । (सर्व के स्थान में स आदेश होता है प्राग्दिशीय ढकारादि प्रत्यय के परे रहन पर विकल्प से)

पञ्चम्यास्तसिल् १।३।७

१० वि०—पञ्चम्या १।१ तसिल् १।१

अर्थ—पञ्चम्यन्तात् किं सर्वनाम बहुभ्यस्तसिल् प्रत्ययो भवति । (पञ्चम्यन्त किम् सर्वनाम और बहु शब्द से तसिल् प्रत्यय होता है)

उदा०—कुत । कस्मात् । यत । यस्मात् । तत । तस्मात् । अत । एतस्मात् । इत । अस्मात् । अमुत । अमुष्मात् । बहुत । बहो ।

सि०—कुत । कस्मात् तसिल् । किम् ङसि तस् । किम् तस । कु तस । कुतस सु । कुतस । कुत । यत । यस्मात् तसिल् । यद् ङसि तस् । अ य तस् । य तस् । यत । तत । तद् ङसि तसिल् । तद् तस् । त अ तस । ततस् । तत । अत । एतस्मात् तसिल् । एतद् तस् । अन् तस् । अतस् । अत । इत । अस्मात् तसिल् । इदम् ङसि तस् । इदम् तस् । इश् तस् । इ तस् । इत । अमुत । अमुष्मात् तसिल् । अन् तस् । अद् अ तस् । अद् तस् । अमु तस् । अमुतस् सु । अमुतस । अमुत । ङ एते प्रत्यया स्वार्थे भवन्ति चेति ज्ञातव्यम्

पर्यभिभ्या च १।३।८

१० वि०—पर्यभिभ्याम् १।२ च अ० । स०—परिश्च अभिश्च इति परिश्रमी ताभ्याम् ।

अर्थ—परि अभि इत्येताभ्याम् च तसिल् प्रत्ययो भवति ।

१—वृत्तद्वितममासाश्च (१ २ ४६) गुणो धातुप्रातिपदिकयो (२ ४ ७२) २—कु तिहो (७ २ १०४) अनवात्तिस्त्वस्य (१ १ १४) ३—प्राग्गो विभक्त (५ ३ १) घट्टन भा विभक्तो (७ २ ८४) त्यदादीनाम् (७ २ १०२) ४—उत्सपदात्तात् (६ १ ६३) अतो गुण (६ १ ६४) ५—एतदाङ् (५ ३ ५) ६—इम इत् (५ ३ ३) ७—अन्ताऽसदादिदो म (८ २ ८०) ८—तद्वित्तद्वामविभक्ति (१ १ ३७) घट्टयदान्गु (२ ४ ८२)

(परि घोर अभिशब्द मे तसित् प्रत्यय होता है)

उदा०—परितः । अभितः ।

सप्तम्यास्त्रल् ५।३।१०

प० वि०—सप्तम्याः ५।१ त्रल् १।१ ॥

अर्थ—किसर्वनामबहुभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यस्त्रल् प्रत्ययो भवति ।

(किम् सर्वनाम घोर बहु सप्तम्यन्त दात्रों से त्रल् प्रत्यय होता है)

उदा०—कुत्र । कस्मिन् । यत्र । यस्मिन् । तत्र । तस्मिन् । अत्र ।

एतस्मिन् । इत्र । अस्मिन् । अमुत्र । अमुष्मिन् । वहुत्र ।

इदमो ह ५।३।११

प० वि०—इदमः ५।१ हः १।१ ॥

अर्थ—[सप्तम्याः] इदमः सप्तम्यन्ताद् ह. प्रत्ययो भवति ।

(इदम् सप्तम्यन्त से ह प्रत्यय हाता है)

उदा०—अस्मिन् अस्यां वा इह ।

मि०—अस्मिन् ह । इदम् चि ह । इदम् ह । इह । इह । इह ।

सु । इह ।

किमोऽन् ५।३।१२

प० वि०—किमः ५।१ अन् १।१

अर्थ—[सप्तम्याः] किमः सप्तम्यन्तान् अत् प्रत्ययो भवति स्वार्थे ।

(किम् सप्तम्यन्त स स्वार्थ में अत् प्रत्यय हाता है)

उदा०—क्व । कस्मिन् ।

मि०—किम् हि अन् । किम् अ । क्व^१ अ । क्व् अ । क्व

सु । क्व ।

इतराभ्योऽपि दृश्यते ५।३।१४

प० वि०—इतराभ्य ५।३ अपि अ० । दृश्यते क्रिया० ।

अर्थ—पञ्चम्यन्तसप्तम्यन्तेभ्य इतराभ्योऽपि विभक्तिभ्यः तसिलादयो दृश्यन्ते । (पञ्चम्यन्त घोर सप्तम्यन्त स निघ्न स भी तमिन् आदि प्रत्यय देखे जाते हैं)

उदा०—स भवान् । ततो भवान् । तत्र भवान् । तं भवन्तम् । तत्र

भवन्तम् । ततो भवन्तम् । तेन भवता । ततो भवता । तत्र भवता ।
तस्मै भवते । तत्र भवते । ततो भवते । तस्मात् भवत । ततो भवत ।
तत्र भवत । तस्य भवत । ततो भवत । तत्र भवत । तस्मिन् भवति ।
ततो भवति । तत्र भवति ।

सर्वैकान्यर्कियत्तद काले दा ५।३।१५

प० वि०—सर्वैकान्यर्कियत्तद ५।१ काले ७।१ दा १।१

स०—तर्चश्च एकरच अन्यरच करच यरच स चेति सर्व एक अन्य-
किम् यद्-तद् तस्मात् ।

अर्थ—[सप्तम्या] सप्तम्यन्तेभ्य सर्वादिभ्य कालार्थे वर्त-
मानेभ्य स्वार्थे दा प्रत्ययो भवति । (कालविषय में वर्तमान सर्वादि
सप्तम्यन्त प्रातिपदिक से स्वाथ में दा प्रत्यय होता है)

उदा०—सस्मिन् काले, सर्वदा । एक्स्मिन् काले एकदा । अन्य-
स्मिन् काले अन्यदा । फस्मिन् काले, कदा । यस्मिन् तस्मिन् वा काले
यदा, तदा ।

सि०—कदा । कस्मिन् दा । किम् दा । क^१ दा । कदा सु । कदा^२ ।
तदा । तद् हि दा । तद् दा । त अ दा । तदा । तदा सु । तदा ।

इदमो हिल् ५।३।१६

प० वि०—इदम ५।१ हिल् १।१

अर्थ—[सप्तम्या काले] सप्तम्यन्तात् इदम काले वर्तमानात्
हिल् प्रत्ययो भवति स्वार्थे । (काल ग्रथ में वर्तमान सप्तम्यन्त इदम् शब्द
से हिल् प्रत्यय होता है स्वाथ में)

उदा०—अस्मिन् काले एतर्हि ।

सि०—अस्मिन् हिल् । एत^३ हिल् । एतर्हि सु । एतर्हि ।

अधुना ५।३।१७

प० वि०—अधुना १।१ यद्वा अव्ययपदम् ।

अर्थ—अधुना इति निपा-यते । (अधुना निपातन से सिद्ध होता है)

ॐ किं निपात्यते इदमोऽस्मावो धुना च प्रत्यय । इदमो वा लोपोऽ-
धुना च प्रत्यय । अस्मिन् काले अधुना । ॐ

१-किम् क (७ २ १०३) २-तद्विदित्वासवविभक्ति (१ १ ३०)

अभ्ययादाप्पु (२. ४. ८७) ३-एततो रथो (१ ३ ४)

(इदम् वा अन् भाव और धृता प्रत्यय निपातन किया है अथवा इदम् वा लोप और अधुता प्रत्यय)

दानी च ५।३।१८

५० वि०—दानीम् १।१ च अ० ।

अर्थ—[सप्तम्या इदम् काले] [सप्तम्यन्ताद् इत्थं कालाचिन दानी प्रत्ययो भवति । (सप्तम्यन्त इदम् शब्द स दानीम् प्रत्यय होता है स्वाथ में)

उदा०—अस्मिन् काले इदानीम् ।

सि०—इदम् हि दानीम् । इदम् दानी । इत्^१ दानी । इदानीम् ।

तदो दा च ५।३।१८

५० वि०—तद् ५।१ दा १।१ च अ० ।

अर्थ—[सप्तम्या काले] सप्तम्यन्तान् काले वर्तमानान् तद् शब्दान् दा प्रत्ययो भवति चान् दानी च । (काल में वर्तमान सप्तम्यन्त तद् शब्द स दा प्रत्यय होता है और वकार स दानी प्रत्यय भी)

उदा०—तस्मिन् काले तदा, तदानीम् ।

सि०—तद् हि दा । तद् दा । त अ^१ दा । तन्^१ सु । तदा । तद् हि दानीम् । तद् दानीम् । त अ दानीम् । तदानीम् । तदानीम् सु । तदानीम् ।

अनद्यतने हिलन्यतरस्याम् ५।३।२१

५० वि०—अनद्यतने ७।१ हिंल् १।१ अन्यतरस्याम् अ० । स०—न अनद्यतनम्, अनद्यतनम् तस्मिन् ।

अर्थ—[सप्तम्या काले] किसर्वनामबहुभ्य सप्तम्यन्तेभ्यो अनद्यतने कालविशेषे वर्तमानेभ्यो हिंल् प्रत्ययो भवत्यन्यतरस्याम् ।

(किम् सर्वनाम और बहु इन सप्तम्यन्त कालवाची प्रातिपदिक स प्रात्र न हान वा ने वानविनेष में विन्य स हिन् प्रत्यय होता है)

उदा०—कहिं । कन् । यहिं । यन् । तहिं । तदा । एनहिं । वटुहिं ।

प्रकारवचने याल्

५० वि०—प्रकारवचने ७।१ याल् १।१ स०—उच्यते इति वचनम् प्रसारस्य वचनम् प्रसारवचनम् तस्मिन् ।

कालश्चेति दिक्देशकालाः तेषु ।

अर्थ—दिक्शब्देभ्यो दिग्देशकालेषु वर्तमानेभ्यः सप्तमीपञ्चमी-
प्रथमान्तभ्योऽस्तातिः प्रत्ययो भवति स्वार्थे ।

(दिशा, वात धोर देश अर्थ में वर्तमान दिशावाची 'मृत्तम्यन्त पञ्चम्यन्त
धोर प्रथमान्त शब्द से स्वार्थ में अस्ताति प्रत्यय होता है)

उदा०—दिक्शब्देभ्य—पूर्वस्यां दिशि वसति पुरस्ताद् वसति । पूर्व-
स्याः आगतः पुरस्तादागतः । पूर्वा दिशा रमणीयम् पुरस्ताद् रमणीयम् ।
देश-पूर्वांस्मिन् देशे वसति पुरस्ताद् वसति, पुरस्तादागतः पुरस्ताद्
रमणीयम् । काले-पूर्वस्मिन् काले वसति पुरस्ताद् वसति । पुरस्तादागतः ।
पुरस्ताद् रमणीयम् । अथम् अधस्ताद् वसति । अधस्तादागतः । अध-
स्ताद् रमणीयम् ।

मि०—पूर्वस्यां दिशि वसति पुरस्ताद् वसति । पूर्वां हि अस्ताति ।
पूर्वा अस्तान् । पुर् अस्तान् । पुरस्तान् । अधरा अस्ताति । अधरा
अस्तान् । अध् अस्तान् । अधस्तात् । अधस्तात् सु । अधस्तान् । अध-
स्तात् । अधरा हि अस्ताति । अधरा अस्तात् । अधर अस्तात् । अध्
अस्तान् । अधस्तात् ॥ एवं पञ्चम्यन्तेभ्यः प्रथमान्तेभ्योऽपि साधनीयम् ॥

पूर्वाधराधराणामसि पुरधवर्चपाम् १।३।३६

प० वि०—पूर्वाधराधराणाम् ६।३ असि ॥ अविभक्तिको निर्देशः ॥
पुरधवः १।३ च अ० । पपाम् ६।३ म०—पूर्वर्ध्व अधरर्ध्व अधरर्ध्वेति
पूर्वाधराधराः तेषाम् । पुर् च अध् च अय् च इति पुरधवः । प्रातिप-
दिकप्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि प्रहणं भवति इति दिग्वाचिनः
स्त्रीलिङ्गो अपि गृह्यन्ते ।

अर्थ—[अन्तात्तरर्थे] पूर्वाधराधराणाम् असिः प्रत्ययो भवति अन्ता-
त्तरर्थे, तत्सन्नियोगने च एषां यवासंख्यं पुर् अध् अय् इत्येते आदेशा
भवन्ति । (पूर्वं धपर धोर धवर शब्द मे एषि प्रत्यय होता है धोर उगळे
सन्नियोग मे पुर् अय् धोर अय् वमनः आदेश हो जाते है)

उदा०—पूर्वायां दिशि, पूर्वस्याः दिशः, पूर्वा वा दिक् इति पुरो
वसति । पुरः आगतः । पुरो रमणीयम् । अयो वसति । अधः आगतः ।
अयो रमणीयम् । अयो वसति । अयः आगतः । अयो रमणीयम् ।

१—पूर्वाधराधराणामसि पुरधवर्चपाम् (१. ३. ३६)

अर्थ—[किं सर्वनामग्रहण्योऽङ्ग्यादिभ्यः] किमादिभ्यः प्रकारवचने वर्तमानेभ्यः स्वार्थे थाल् प्रत्ययो भवति । (किम् , सर्वनाम गौर बहु इति प्रकारवाची शब्दो स यान् प्रत्यय होता है स्वाय में)

ॐ अत्रेदं ज्ञातव्यम् सप्तम्या काल इति निवृत्तम् । सामान्यस्य विशेषो भेदक प्रकार । प्रकृत्यर्थविशेषणं चैतत् ॐ

उदा०—तेन प्रकारेण तथा । यत्न प्रकारेण यथा । बहुभि प्रकारै बहुधा ।

सि०—तेन थाल् । तद् टा थाल् । तद् थाल् । त अ था । तथा सु । तथा । यथा । बहुधा ।

इदमस्थमु ५।३।२४

प० वि०—इत्थम् ५।१ यमु १।१

अर्थ—[प्रकारवचने] प्रकारवचने वर्तमानाद् इदमशब्दान् यमु प्रत्ययो भवति । (प्रकारवचन म वर्तमान इदम् शब्द स स्वाय में यमु प्रत्यय होता है)

उदा०—अनेन प्रकारेण इत्थम् ।

सि०—इदम् टा यमु । इत्थम् यमु । इदम् थम् । इत् थम् । इत्थम् ।

किमश्च ५।३।२५

प० वि०—किम् ५।१ च अ० ।

अर्थ—[प्रकारवचने यमु] प्रकारवचने वर्तमानात् किमशब्दात् यमु प्रत्ययो भवति । (प्रकारवचन म वर्तमान किम् शब्द से यमु प्रत्यय होता है)

उदा०—एन प्रकारेण कथम् ।

सि०—किम् टा यमु । किम् थम् । क थम् । कथम् सु । कथम् ।

स्वाधिकप्रत्ययप्रकरणम्—

दिवशब्दभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकाले-

प्वस्ताति ५।३।२७

प० वि०—दिक्शब्देभ्यः ५।३ सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः ५।३ दिग्देशकालेषु ७।३ अस्ताति १।१ म०-दिशा शब्द निक्शब्द तेभ्यः । सप्तमी च पञ्चमी च प्रथमा चेति सप्तमीपञ्चमीप्रथमा ताभ्यः । दिक् च देशश्च

१—एतत्ती रथो (५ ३ ४) २—किम् क (७ २ १०३)

कालश्चेति द्विकदेशकालाः तेषु ।

अर्थ—द्विकशब्देभ्यो द्विकदेशकालेषु वर्तमानेभ्यः सप्तमीपञ्चमी-
प्रथमान्तभ्योऽस्नातिः प्रत्ययो भवति स्वार्थे ।

(दिशा, वात और देश भयं में वर्तमान दिशावाची 'सप्तम्यन्त पञ्चम्यन्त
और प्रथमान्त शब्द से स्वार्थं में अस्नाति प्रत्यय होता है)

उदा०—द्विकशब्देभ्य—पूर्वस्यां दिशि वसति पुरस्ताद् वसति । पूर्व-
स्याः आगतः पुरस्तादागतः । पूर्वा दिशा रमणीयम् पुरस्ताद् रमणीयम् ।
देश-पूर्वास्मिन् देशे वसति पुरस्ताद् वसति, पुरस्तादागतः पुरस्ताद्
रमणीयम् । काले-पूर्वस्मिन् काले वसति पुरस्ताद् वसति । पुरस्तादागतः ।
पुरस्ताद् रमणीयम् । अयम् अवस्ताद् वसति । अवस्तादागतः । अव-
स्ताद् रमणीयम् ।

सि०—पूर्वस्यां दिशि वसति पुरस्ताद् वसति । पूर्वा हि अस्नाति ।
पूर्वा अस्तान् । पुर् अस्तान् । पुरस्तान् । अघरा अस्तानि । अघरा
अस्तान् । अध् अस्तान् । अधस्तात् । अधस्तात् सु । अधस्तात् । अध-
स्तात् । अघरा हि अस्तानि । अघरा अस्तात् । अघर अस्तात् । अघ्
अस्तात् । अघस्तान् ॥ एवं पञ्चम्यन्तेभ्यः प्रथमान्तेभ्योऽपि माधनीयम् ॥

पूर्वाघरावराणामसि पुरवदञ्चंपाम् ५।३। ३६

प० वि०—पूर्वाघरावराणाम् ६।३ असि ॥ अविभक्तिको निर्देशः ॥
पुरवदः १।३ च अ० । पाम् ६।३ स०—पूर्वदच अघरदच अघरश्चेति
पूर्वाघरावराः तेषाम् । पुर् च अध् च अघ् च इति पुरवदः । प्रातिप-
दिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टमपि ग्रहणं भवति इति दिग्वाचिनः
श्रीलिङ्गो अपि गृह्यन्ते ।

अर्थ—[अस्मात्तेरर्थे] पूर्वाघरावराणाम् असिः प्रत्ययो भवति अस्मा-
त्तेरर्थे, तत्सन्नियोगेन च एषां यथासंग्यं पुर् अघ् अध् इत्येते आदेशा
भवन्ति । (पूर्वं अघर और अघर शब्द में अति प्रत्यय होता है और उगटे
सन्निधौ में पुर् अघ् और अघ् प्रथमः आदेश हो जाते हैं)

उदा०—पूर्वायां दिशि, पूर्वस्याः दिशः, पूर्वा वा दिक् इति पुरो
वसति । पुरः आगतः । पुरो रमणीयम् । अघो वसति । अघः आगतः ।
अघो रमणीयम् । अघो वसति । अघः आगतः । अघो रमणीयम् ।

१—पूर्वाघरावराणामसि पुरवदञ्चंपाम् (५. ३. ३६)

अस्ताति च ५।३।४०

प० वि०—अस्ताति ७।१ च अ० । लुप्तानुबन्धात् सप्तम्यैकत्रचने रूपम्

अर्थ—[पूर्वाघराग्राणाम् पुरवच] अस्ताति प्रत्यये परत पूर्वादीनां यथासख्य पुरादय आदेशा भवन्ति । ॥अत्रेदं बोध्यम्—आदेशार्थम् इदं सूत्रम् । प्रत्ययस्तु पूर्वेष्वैव सिद्ध दिक्शब्देभ्य इति ॥ (अस्ताति प्रत्यय के परे रहन पर पूर्व अवर और अवर शब्द के स्थान में क्रमशः पुर अष् और अष् आदेश होते हैं)

उदा०—पूर्वत्र सूत्रे उदाहृतानि ।

सख्याया विधार्थं धा ५।३।४२

प० वि०—सख्याया ५।१ विधार्थं ७।१ धा १।१ स०—विधत्स्य अर्थ विधार्थं तस्मिन् ।

अर्थ—सख्यायाचिभ्य प्रातिपदिकेभ्यो विधार्थे वर्त्तमानेभ्यो धा प्रत्ययो भवति । (सख्यायाची प्रातिपदिक से विधाय अर्थात् क्रिया के प्रकार के अर्थ में धा प्रत्यय होता है)

उदा०—एकधा स्वादति । द्विधा गच्छति । त्रिधा । चतुर्धा । पञ्चधा ।

॥अत्रेदं बोध्यम्—विधायामिति वक्तव्ये अर्थग्रहणस्य प्रयोजनं विधा शब्दो यत्र अर्थे प्रसिद्धस्तत्रैव यथा स्यात् । तादृशश्चार्थः प्रकार एव, स च क्रियाविषयक एव गृह्यते । अत एव तत्र 'विधार्थे वर्त्तमानेभ्य' इत्यनेन क्रियाप्रकारे वर्त्तमानेभ्य इति ज्ञातव्यम् । कथं तर्हि 'नवधा द्रव्यं, बहुधा गुण' इत्यादि । अत्रापि हि अश्रुता क्रिया प्रतीयते इति ज्ञानेन्द्र । उपदिश्यते इति वा, भवति इति वा इति हरद्वय । प्रसार सामान्य इति वयम् ॥

अतिशायने तमविष्ठनी ५।३।५५

प० वि०—अतिशायने ७।१ तमविष्ठनी १।२ स०—अतिपूर्वाच्छे-
तेत्युट् । अतिशायनमेवातिशायनम् अस्मादेव निपातनाद्दीर्घः । तमप् च इष्ठन् च इति तमविष्ठनी ॥

अर्थ—अतिशायनविशिष्टेऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् सार्थे तमविष्ठनी प्रत्ययो भवति । (अत्यन्त प्रपञ्चा अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक

ये तमप् ओर इष्टन् प्रत्यय होते हे)

उदा०—**ऋ**प्रत्ययविशेषणं च स्वार्थिमानां द्योयं भवति **ऋ** मयें इमे
आह्व्याः, अयमेवामतिशयेन आह्व्य आह्वयतमः । मुमुमारतमः । दर्श-
नीयतमः । सर्वे इमे पटवः, अयमेवामतिशयेन पटुः, पटिष्ठः लविष्ठः ।
गरिष्ठः । **ऋ**यदा च प्रकर्षवतां पुनः प्रकर्षो विवक्ष्यते तदा अतिशायि-
शान्ताद् अपरः प्रत्ययो भवत्येव । श्रेष्ठतमाय कर्मणे (यत्तु० १।१) शुवि-
ष्टिरः श्रेष्ठतमः कुरुणाम् **ऋ**

नि०—पटिष्ठः । पटु सु इष्टन् । पटु इष्ट । पट इष्ट । पटिष्ठ
सु । पटिष्ठः ॥

तिट्ठच्च ५।३।५६

प० वि०—तिट्ठः ५।१ च अ० ।

अर्थ—तिट्ठन्ताच्चातिशयेन द्योत्ये तमप् प्रत्ययो भवति ।

(तिट्ठन्त से अतिशय द्योतित होने पर तमप् प्रत्यय होता है)

उदा०—सर्वे इमे पचन्ति इति अयमेवामतिशयेन पचति इति पच-
तितमाम् । खादन्तितमाम् । अस्तितमाम् ।

सि०—पचतितमाम् । पचति तमप् । पचतितम आम् । पचतितम्
आम् । पचतितमाम् सु । पचतितमान् ॥

द्विवचनविभज्योपपदे तरवीयमुनी ५।३।५७

प० वि०—द्विवचनविभज्योपपदे ७.१ तरवीयमुनी । १।२ स०—
द्वयोरर्थयोरन्येन च द्विवचनम् इति द्विवचनम् । करणे ल्युट् । कर्मणि षष्ठ्या
समासः ॥ विभज्यतमम् विभज्यम् । निपातनाद् यत् ॐ विभज्य च
तदुपपदं च विभज्योपपदम् । द्विवचनं च विभज्योपपदं च द्विवचनविभ-
ज्योपपदम् (समा० द्वन्द्वः) तस्मिन् X द्विवचनं च विभज्यं च द्विव-
चनविभज्यं, तच्च तदुपपदं चेति हरदत्तः । तच्चिन्त्यम्, तथासति उप-
पदमहण्य द्विवचनेनापि मन्द्व्यते । न च तदिष्यते । तस्मान् पूवं विभ-
ज्यगच्छेन कर्मधारयः गतो द्वन्द्वः । अत्र च 'अन्वर्थं चोपपदमुपेक्षितं-
पदमुपपदमिति तच्च विभज्य वाच्य एव प्रयुज्यते कृत्वा तु गतार्थेवात्र
प्रयुज्यते अन्यत्र हरदत्तेन यदुक्तं तदपि चिन्त्यम्, नष्टं हि 'माधुराः

१—टः (६. ४. १५१) १—विभक्तिद्वयपादाद्व्यङ्ग्यत्वे (५. ६. ११)

ॐ दादृशन्त्याह रगानुसारं नवेभ्यो धातुभ्यो यद् यद् यद्, प्रत्यय
भवन्ति इति मुपिष्टिरपीमामरः । ६० क्षीरवर्द्धिणी इष्ट ३१ टि० ३।

पाटलिपुत्रकेभ्य आढ्यतराः' इत्यत्र वृत्तावपि (प्रत्यये सत्यपि) पाटलि-
पत्रेभ्यः' इत्यस्य प्रत्यक्ष श्रवणात् ।

अर्थ—[अतिशयने, तिङश्च) द्वयोरेकस्यातिशये विभक्त्ये चोप-
पदे प्रातिपदिकान् तिङन्नाच्च तरवीयसुनौ प्रत्ययो भवतः ।

(दो में से एक के अतिशय और विभाग किये जाने वाले के उपपद रहने
पर तरप् और ईयसुन् प्रत्यय होते हैं)

उदा०—द्वा इमौ आढ्यौ, अयम् अनयो, अतिशयेन आढ्य, इति
आढ्यतरः । सुकुमारतरः । पचतितराम् । जल्पतितराम् । ईयसुन्-द्वा
इमौ पट् । अयमनयोरतिशयेन पटु, पटीयान् । लघीयान् । विभज्ये
चोपपदे—माथुरा, पाटलिपुत्रकेभ्य आढ्यतरा । दर्शनीयतराः । पटी-
यांसः । लघीयांसः ।

सि०—पटीयान् । पटु ईयसुन् । पट्^१ ईयस् । पटीयस् । पटीयस्
सु । पटीयास्^२ सु । पटीया नुम्^३ स् स् । पटीयान्स् स् । पटीयान्स् ।
पटीयान् । पटीयांसौ । पटीयांस ।

अजादी गुणवचनादेव ५।३।५८

प० वि०—अजादी १।२ गुणवचनात् ५।१ एव अ० । स०—अच
आदिर्ययोस्तौ अजादी (उहु०)

अर्थ—अजादी इष्टन्नीयसुनौ प्रत्ययो गुणवचनादेव भवतः ।
(प्रजादि इष्टन् और ईयसुन् ये दोनों प्रत्यय गुणवाची प्रातिपदिक से ही
होते हैं)

उदा०—लघीयान् । पटीयान् । पटिष्ठः । लघिष्ठः ।

सि०—लघु ईयसुन् । लघ् ईयस् । लघीयस् सु । लघीयास् स् ।
लघीया नुम् स् स् । लघीयान्स् स् । लघीयान्स् । लघीयान् । लघी-
यांसौ । लघीयांसः । लघीयांसम् । लघीयांसौ । लघीयसः ।

तुदध्यन्दसि ५।३।५९

प० वि०—तुः ५।१ द्यन्दसि ७।१

अर्थ—[अजादी] तुरिति तृन्तृचौ मामान्येन गृह्येते । (त्रन्त प्राति-
पदिक से द्यन्द में अजादि प्रत्यय होते हैं)

१—ट (६. ४. १५५) २—अतमन्तस्य चायातोः (६. ४. १५) ३—

उगिदचा सर्वनामस्थानेऽयातोः (७. १. ७०)

उदा०—आसुति करिष्ठः । दोहीयमी घेनुः ।

सि०—कृ तृच् । कर्त्तृ इष्ठन् । कर् इष्ठ । करिष्ठ सु । करिष्ठ । दोहीयसी । दुह् तृन् डीप् । दोग्घ्री । दोग्घृ ईयमुन् । दोह् ईयस् । दोहीयस् । दोहीयस् डीप् । दोहीयसी सु । दोहीयसी ।

ॐ अत्रेदं बोध्यम्—उमे उमे दोग्घ्र्यौ अयमनयोरतिशयेन दोग्घ्री भस्यादे तद्धिते सिद्धश्च प्रत्ययविधौ इति वचनात् तद्धिते कर्त्तव्ये प्रागेव पुंयद्भावात् इति ङीपि निवृत्ते दोग्घृगठान् प्रत्यय, ततश्च निवृत्ते निमित्ताभावात् घत्वजश्चयोरपि निवृत्तिः ॐ

प्रशस्यस्य श्र ५।३।६०

प० वि०—प्रशस्यस्य ६।१ अः १।१

अर्थ—[अजाद्यो इति प्रकृतम्य सप्तम्या विपरिणम्यते] प्रशस्यशब्दस्य श्र इत्ययमादेशो भवति अजाद्यो प्रत्यययोः परतः । (प्रशस्य शब्द के स्थान में श्र आदेश हो जाता है अजादि प्रत्यय के पर रहने पर)

उदा०—उभौ इभौ प्रशस्यौ अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः इति श्रेयान् । सर्वे इमे प्रशस्या, अयमेवामतिशयेन प्रशस्य इति श्रेष्ठः ॥

सि०—प्रशस्य ईष्ठन् । श्र ईष्ठ । श्र^१ ईष्ठ । श्रेष्ठ^२ सु । श्रेष्ठः ॥ श्रेयान् । प्रशस्य ईयमुन् । श्र ईयस् । श्रेयस् । श्रेयस् । श्रेयास् सु । श्रेया नुम् स् स् । श्रेयान् स् स् । श्रेयान् स् । श्रेयान् ।

ज्य च ५।३।६१

प० वि०—ज्य अविभक्तिको निर्देशः । च अ० ।

अर्थ—[प्रशस्यस्य अजाद्यो] प्रशस्यशब्दस्य ज्य इत्यादेशो भवति अजाद्यो प्रत्यययोः परतः । (प्रशस्य शब्द के स्थान में ज्य आदेश होता है अजादि प्रत्ययों के पर रहने पर)

उदा०—सर्वे इमे प्रशस्या, अयमतिशयेन प्रशस्यः श्रेष्ठः । उभावभौ प्रशस्यौ, अयमनयोरतिशयेन प्रशस्य इति ज्ञायान् । अयमगमान् ज्ञायान् ।

१—यचि भम् (१. ४. १८) मत्स्य (६. ४. १२६) यस्येति च (६. ४. १४८) टे. (६. ४. १५५) प्रकृत्येवान् (६. ४. १६३) इति प्रकृतिनाच २—पादगुण (६. १. ४८)

सि०—ज्यायान् । ज्य इयसुन् । ज्य आयस् । ज्य आयस् । ज्यायस्
सु । ज्यायास् स् । ज्याया नुम स् स् ज्यायान्स् स् । ज्यायान्स् । ज्यायान्
ज्यायांसी । ज्यायासः ।

विन्मतोलुक् ५।३।६५

प० वि०—विन्मतो ६।२ लुक् १।१ स०—विन्च मतुश्चेति विन्मतः
तस्य ।

अर्थ—[अजाद्योः] विनो मतुपश्च लुग् भवति अजाद्योः प्रत्यययोः
परतः । (विन् घोर मतुप् प्रत्यय का वुक् होता है अजादि प्रत्ययके परे रहने पर)

उदा०—सर्वे इमे स्रग्विनः अयमेपामतिशयेन स्रजिष्ठः । उभा-
विमौ स्रग्विनौ अयमेपामतिशयेन स्रजीयान् । अयमस्मात् स्रजीयान् ।

मतोः—सर्वे इमे स्वग्वन्तः, अयमेपामतिशयेन स्वचिष्ठः । उभौ इमौ
स्वग्वन्तौ, अयमनयोरतिशयेन, त्यचीयान् । अयमस्मात् त्यचीयान् ।

प्रशसायां रूपप् ५।३।६६

प० वि०—प्रशंसायाम् ७।१ रूपप् १।१

अर्थ—[तिङ्श्च] प्रशंसा स्तुतिः प्रशंसाविशिष्टेऽर्थे वर्तमानात् प्राति-
पदिकात् स्वार्थे रूपप् प्रत्ययो भवति । (प्रशसाविशिष्ट अर्थ में वर्तमान जो
प्रातिपदिक उससे स्वार्थ में रूपप् प्रत्यय होता है)

कृत्यार्थिकाः प्रत्ययाः प्रकृत्यर्थविशेषस्य द्योतकाः भवन्ति॥

उदा०—प्रशस्तो वैयाकरणः वैयाकरणरूपः । याज्ञिकरूपः । पचति-
रूपम् पचतोरूपम्, पचन्तिरूपम् । कृत्रियाप्रधानमाख्यातम् । एका च
क्रियेति रूपप्रत्यायनतात् द्विवचनबहुवचने न भवतः । नपु सकलिङ्गन्तु
भवति लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य॥

ईपदसमाप्ती कल्पव्देश्यदेशीयर ५।३।६७

ईपदसमाप्ती ७।१ कल्पव्देश्यदेशीयरः १।३ स०—संपूर्णता पदार्थानां
समाप्तिः स्तोत्रेणासंपूर्णता, ईपदसमाप्तिः तस्याम् ।

अर्थ—[तिङ्श्च] ईपदसमाप्तिविशिष्टेऽर्थे वर्तमानात् प्रातिपदि-
कात् तिङन्ताच्च कल्पव्-देश्य-देशीयरः प्रत्ययाः भवन्ति ।

(पोंडे संपूर्णता अर्थ विशिष्ट में वर्तमान प्रातिपदिक घोर तिङन्त से
कल्पव् देश्य घोर देशीयर प्रत्यय होते हैं)

उदा०—ईपदसमाप्तः पटु, पटुक् प. । पटुदेश्य. । पटुदेशीयः ।
पचति न्यम् । पचातदेश्यम् । पचनिदेशीयम् ।

विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात् ५।३।६८

प० वि०—विभाषा १।१ सुप. ५।१ बहुच् १।१ पुरस्तात् १।१ तु १।१

अर्थ—[ईपदसमाप्तौ] ईपदसमाप्तिविशिष्टेऽर्थे वर्तमानान्
पुरस्ताद् विभाषा बहुच् प्रत्ययो भवति, स तु पुरस्तादेन न तु परतः ।

(घोड़े से प्रपूर्णांता विविष्ट ग्रय में वर्तमान सुवन्त से विक्षेप करने बहुच्
प्रत्यय होता है और वह पहले ही होता है परचात् नहीं)

उदा०—ईपदसमाप्तः पटुः बहुपटुः । बहुमृदुः ।

प्रकारवचने जातीयर् ५।३।६९

प० वि०—प्रकारवचने ७।१ जातीयर् १।१

स०—प्रकारो अस्ति अस्मिन्निति प्रकारः । प्रकारस्य वचनप्रकारवचनम्
सस्मिन् ।

अर्थ—[सुप.] पुरस्तात् प्रकारविशिष्टेऽर्थे वर्तमानान् प्रातिपदि-
कान् स्वार्थे जातीयर् प्रत्ययो भवति । (सुवन्त जो प्रकार विविष्ट ग्रय में
वर्तमान है उससे स्वार्थ में जातीयर् प्रत्यय होता है)

उदा०—X प्रकारवति चार्थ प्रत्यय । थाल्पुनः प्रकारमात्रे एव
भवति X । पटुप्रकार पटुजातीयः । मृदुजातीय । दर्शनजातीय ।

प्रागिवात्क. ५।३।७०

प० वि०—प्राक् १।१ इवात् ५।१ क १।१

अर्थ—इमे प्रतिवृत्तौ इत्येतस्मात्प्राक् वक्ष्यमाणेषु स्वार्थेष्वर्थेषु कः
प्रत्ययो भवति इत्यधिकारो वेदितव्यः ।

(इमे प्रतिवृत्तौ इस सूत्र के पहले-पहले बड़े जाने वाले स्वार्थों में क
प्रत्यय होता है इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टे ५।३।७१

प० वि०—अव्ययसर्वनाम्नाम ६।३ अचच् १।१ प्राक् १।१ टेः ५।१

स०—अव्ययानि सर्वनामानि चेति अव्ययसर्वनामानि तेषाम् ।

अर्थ—[प्रागिवात् तिङश्च] वक्ष्यमाणेषु स्वार्थेष्वर्थेषु अव्ययानां
सर्वनाम्नां तिङन्तानां च टेः प्राक् अचच् प्रत्ययो भवति प्रागिवात् तिङ-
धिकारो वेदितव्यः ।

(इव प्रनिकृती इस मून के पहले पहल यहा से भागे रहे जान बात स्वार्यिक अर्थों में अव्यय तिङन्त और सबभाम के टि के पहल अकच प्रत्यय होता है इस बात का अधिकार मममना चाहिये)

अज्ञाते ५।३।७३

प० वि०—अज्ञाते ७।१ स—न ज्ञातम् इति अज्ञातम् तस्मिन् ।

अर्थ—[मुप तिङ्श्च] अज्ञातेऽई वर्तमानात् सुवन्तात् तिङ्-
न्ताच्च यथाविहित प्रत्ययो भवति । (अज्ञात अथ म वर्तमान सुवन्त और तिङन्त स यथाविहित अकच् या क प्रत्यय होता है ।

उदा०—सर्वनाम्नोऽकच्—सर्वके । विश्वके । उभयके । त्वयना ।
मयना । त्वयकि । मयकि । Xओऽरसभारभकारानौ सुपि सर्वनाम्नष्टे
प्रागकच् X

युरक्यो । आवक्यो । युष्मकासु । अस्मकासु । युष्मकाभि ।
अस्मकाभि । अव्ययान्कच्—इकै । नीचकै । शनकै । सुवन्तात्
क—अश्वक । उष्ट्रक । गर्दभक । तिङन्तादकच्—पचतकि जल्-
पतकि ।

मि०—सर्वके । सर्वे । सर्वे ० । सर्व् अकच् ० । सर्व् अकृ ० ।
सर्व् अकृ ० । सर्वके । एव सर्वत्र । युरक्यो । युरयो । युवय ओ ।
युरय् अकच् ओ । युवय् अकृ ओ । युवक्यो । अश्वक । अज्ञात
अश्न इति विमद । अश्न क । अश्वक सु । अश्नक ।

कुत्सिते ५।३।७४

प० वि०—कुत्सिते ७।१

अर्थ—[मुप तिङ्] कुत्सिते अर्थे वर्तमानात् सुवन्तात् तिङ्-
न्ताच्च यथाविहित प्रत्ययो भवति । (कुत्सित अथ म वर्तमान सुवन्त और तिङन्त स
यथाविहित प्रत्यय होता है)

उदा०—कुत्सितोऽश्व अश्वक । गर्दभक । उष्ट्रक । उच्चके ।
नीचकै । सर्वके । विश्वके । युवक्यो । आवक्यो । युष्मकाभि । अस्म-
काभि । युष्मकासु । अस्मकासु । पचतकि । जल्पतकि ।

क्रियत्तदो निर्द्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् १।३।६२

प० वि०—क्रियत्तदः १।१ निर्द्धारणे ६।१ द्वयोः ७।२ एकस्य ६।१ डतरच् १।१ स०—किं च यच्च तच्चेति क्रियत्तद् तस्मान् ।

अर्थ—[किम् यत् तद् इत्येतेभ्यः मुनन्तेभ्यः द्वयोरेकस्य निर्द्धारणे डतरच् प्रत्ययो भवति । (किम् यत् तत् इति मुनन्तो में दो में से किसी एक के निर्द्धारण के विषय में डतरच् प्रत्यय होना है)

उदा०—ॐ जातिगुणक्रियामंज्ञाभिः समुदायादेकदेशस्य

पृथक्करणम् निर्द्धारणम् ॐको भवतोः कठः । कतरो भवतोः कठः । यतरः, ततरः ॥ कः कतरो वा भवतोः कारकः । यतरः, ततरः । कः कतरो वा भवतोः पटुः । यतरः, ततरः । कतरो भवतोः देवदत्तः । यतरः, ततरः ॥

सि०—कतरः । किम् डतरच् । किम् यतर । कू^१ अतर । कतर तु । कतरः ॥

वा बहूना जातिपरिप्रश्ने डतमच् १।३।६३

प० वि०—वा अ० । बहूनाम् ६।३ जातिपरिप्रश्ने ७।१ डतमच् १।१ स०—जात्याः परिप्रश्नः इति जातिपरिप्रश्नः तस्मिन् ।

अर्थ—[क्रियत्तदं निर्द्धारणे एकस्य] बहूनां मध्ये एकस्य निर्द्धारणे गम्यमाने जातिपरिप्रश्नविषयेभ्यः किमादिभ्यः मुनन्तेभ्यो वा डतमच् प्रत्ययो भवति (बहुत में से किसी एक के निर्द्धारण गम्यमान होने पर जाति परिप्रश्नविषयन किमादि मुनन्त से डतमच् प्रत्यय होता है)

उदा०—ॐवाप्रहणमरुजर्थम् । महाविभाषया अप्रत्ययोऽपि मनति अत एव ग्रैह्यम् ॐ को भवतां कठः । कनमो भवतां कठ । को भवतां कठ । ॐ क इति अरुच्सहितस्य रूपमेतद् । महाभाष्ये सारुच्यार्थो वक्तव्योऽयं कादेशः इति किमः क इति सूत्रे निर्णीत अत एव अरुच्सहितस्य किम इत्येतस्य कठ इति न्न न जायते^२ यो कनमो यनो वा भवतां कठः । सः ततमो सनो वा आगच्छतु ॥ अपरिप्रश्नप्रमाणं च किम एव विशेषणं, न यत्तदोरसम्भवान् । जातिग्रहणं तु सर्वत्र सम्भवति ॥

इवे प्रतिवृत्तौ १।३।६६

प० वि०—इवे ७।१ प्रतिवृत्तौ ७।१

अर्थ—[कन्] प्रतिवृत्तौ इत्यर्थे मुनन्तान् कन् प्रत्ययो भवति ।

(प्रतिवृत्ति, प्रतिस्मृति, प्रतिवृत्ति या इसके सहज इसकी आवृत्ति है, इस अर्थ में वर्तमान सुबन्त से कन् प्रत्यय होता है)

उदा०—अश्व इव प्रतिवृत्तिः इति अश्वनः । उष्ट्रकः । गर्दभकः ॥

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया पञ्चमाध्याये तृतीय पाद.

किमेत्तिङव्ययघादाम्ब्रव्यप्रकर्षे ५।४।११

प० वि०—किमेत्तिङव्ययघाद् ५।१ आमु १।१ अद्रव्यप्रकर्षे ७।१

स०—किम् च एच्च तिङ् च अव्यय चेति किमेत्तिङ-व्ययानि तेन्यो घ इति किमेत्तिङव्ययघः तन्मात्रं । द्रव्यस्य प्रकर्षं द्रव्यप्रकर्षः । न द्रव्यप्रकर्षः अद्रव्यप्रकर्षः तस्मिन् ।

अर्थ—किमः एदन्तात् तिङोऽव्ययाच्च यो घस्तदन्तादाम्ब्रः प्रत्ययो भवति न तु द्रव्यप्रकर्षे ॥ (किम् एकारान्त तिङ् अव्यय के पदवात् विधान किया गया जो घ (तरप्, तमन्) तदन्त स आम् प्रत्यय होता है द्रव्य प्रकर्ष में नहीं ।

उदा०—कितराम् । किन्तमाम् पूर्वाहेतराम् । पूर्वाहेतमाम् । पचतितराम् । पचतितमाम् । उच्चैस्तराम् । उच्चैस्तमाम् ॥

सख्याया क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वमुच् ५।४।१७

प० नि०—सख्याया. ५।१ क्रियाभ्यावृत्तिगणने ७।१ कृत्वमुच् १।१

स०—वर्त्तनं वृत्ति । अभितः आसमन्ताद् वृत्तिरिति अभ्यावृत्तिः पौनः पुन्यमित्यर्थः ॥ तस्याः अभ्यावृत्तिः क्रियाभ्यावृत्तिः तस्याः गणनम् । क्रियाभ्यावृत्तिगणनम् तस्मिन् ।

अर्थ—सख्याशब्देभ्यः क्रियाभ्यावृत्तिगणने वर्तमानेभ्यः स्वार्थे कृत्वमुच् प्रत्ययो भवति । (सख्यावाची मुदन्त से क्रिया के बारम्बार होने को गणने में स्वार्थ में कृत्वमुच् प्रत्यय होता है)

उदा०—पञ्चरारान्मुह्वते पञ्चकृत्यो मुह्वते । सप्तकृत्यः ।

द्वित्रिचतुर्भ्यः मुन् ५।८।१८

प० वि०—द्वित्रिचतुर्भ्यः ५।८ मुन् १।१ स०—द्वौ च त्रयः च चत्वारः चेति द्वित्रिचत्वारः तेभ्यः

अर्थ—[मर्यादायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने] द्वि त्रि चतुर् इत्येतेभ्यः मर्यादगन्तेभ्यः क्रियाभ्यावृत्तिगणने वर्तमानभ्यः मुच् प्रत्ययो भवति ।
(क्रियाभ्यावृत्तिगणनं अयं मे वर्तमान द्वि त्रि चतुर् सस्यावाची मुबन् सै स्वार्थं मे मुच् प्रत्यय होता है)

उदा०—द्विः स्वादति । त्रिः स्वादति । चतुः स्वादति ॥

एकस्य सकृच्च ५।४।२२

प० वि०—एकस्य ६।१ सट् १।१ च अ० ।

अर्थ—[मुच्] एकस्य सकृदित्ययमादेशो भवति मुच्च प्रत्यय. क्रियागणनेऽर्थं वर्तमानात् ॥ (एक शब्द के स्थान में सट् यह आदेश हो जाता है और मुच् प्रत्यय होता है क्रिया गणनीय में वर्तमान ।)

उदा०—सट् रसादति ॥

बहुवल्पायाञ्छस्कारकादन्यतरस्याम् ५।४।३२

प० वि०—बहुवल्पायां ५।१ शस् १।१ कारकान् ५।१ अन्यतरस्याम् अ० । स०—बहुश्च अल्पश्च बहुल्पो । अर्थश्च अर्थरचेति अर्थो । बहुल्पो अर्थो यस्य तन् बहुवल्पर्यम् तस्मान् ।

अर्थ—बहुवल्पायां अल्पार्थाच्च कारकाभिधायिन शब्दान् शस् प्रत्ययो भवति अन्यतरस्याम् । (बहु अर्थं बाने तथा अल्प अर्थं बाने कारक वा बहने वाले शब्दों से विकल्प करने शम् प्रत्यय होता है)

उदा०—बहूनि ददाति बहुशो ददाति । अल्प ददाति अल्पशः ददाति । भूरिशो ददाति ॥ बहुभिः अल्पेन वा ददाति बहुशः अल्पशः वा ददाति एवं कारकान्तरेषु अपि उदाहार्यम् ।

सम्यैकवचनान्च वीप्सायाम् ५।४।४३

प० वि०—सम्यैकवचनान् ५।१ च अ० । वीप्सायाम् ७।१ स०—मर्यादा च एकवचनं चेति सम्यैकवचनम् तस्मान् ।

अर्थ—[शस् अन्यतरस्याम्] मर्यादाविधेयः सुगन्तेभ्यः एकवचनान्च वीप्सायां वर्तमानेभ्यः शस् प्रत्ययो भवति अन्यतरस्याम् ।

(मर्यादावाची मुबन् और एकवचन मुबन् स वीप्सा अर्थं मे विकल्प से शम् प्रत्यय होता है)

उदा०—सम्याया —द्वौ द्वौ मोदतौ ददाति, द्विशः ददाति त्रिरः । - कार्पाण्य कार्पाण्य ददाति कार्पाण्यशो ददाति । मापश । पादशः ।

कृभ्वस्तियोगे सपद्यकर्त्तरि च्वि ५।४।५०

५० वि०—कृभ्वस्तियोगे ७।१ सपद्यकर्त्तरि ७।१ च्वि १।१
स०—का च भूश्च अस्तिश्चेति कृभूअस्तय तैर्योग इति कृ भू-अस्ति-
योग तस्मिन् । सपद्यश्चासौ कर्त्ता चेति सपद्यकर्त्ता तस्मिन् । न भूत
अभूत ॥ तस्य आत्मनो भाव इति तद्भाव । अभूतस्य तद्भाव इति
अभूततद्भाव तस्मिन् ।

अर्थ—सपद्यकर्त्तरि वर्त्तमानात् सुगन्ताद् अभूततद्भावे गम्यमाने
कृ-भू-अस्तिभिर्धातुभिर्योगे च्वि प्रत्ययो भवति । (सपद्य कर्त्ता में वर्तमान
सुबन्त स अभूततद्भाव गम्यमान होन पर कृ भू और अस्ति धातु के योग में
च्वि प्रत्यय होता है)

उदा०—अशुक्ल शुक्ल. क्रियत इति शुक्लीकरोति । शुक्लीभवति ।
शुक्लीस्यात् ।

सि०—शुक्ल सु च्वि करोति । शुक्ली^१ करोति ॥

समासान्तप्रत्ययप्रवरणम्

समासान्ता ५।४।६८

५० वि०—समासान्ता १।३ स०—समासस्य अन्त समासान्त ते
समासान्ता । समासस्य अन्त. चरमावयव इत्यर्थ

अर्थ—आपादपरिसमाप्तेऽर्थे प्रत्यया पिहितास्ते समासस्य अन्ताव-
यवा चरमावयवा एकदेशा वा भवन्ति इत्यधिकारो वेदितव्य ।

(पाद की परिसमाप्ति तक जिन प्रत्यया का विधान किया गया है व समास
के अन्त अवयव हात हैं इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

न पूजनात् ५।४।६९

५० वि०—न अ० । पूजनात् ५।१

अर्थ—पूजनउचानात् सुगन्तान् समासान्तो न भवति । (पूजनवाची सुबन्त
के पदवाच समासान्त नही होता है, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

उदा०—सुराजा । अतिराजा X पूजायां स्वतिग्रहण कर्त्तव्यम् X
इह मा भून् । परमराज । परमगव ॥

नञस्तत्पुरुषात् ५।४।७१

५० वि०—नञ ५।१ तत्पुरुषान् ५।१

१—मस्य च्वि (७ ४ ३२)

अर्थ—नञः परे वक्ष्यमाणा ये राजादयम्भन्तान् तत्पुरुषान् समा-
सान्तो न भवति इत्यधिकारो वेदितव्यः ।

(नञ् के पश्चात् कहे जाने वाले जा राजन् इत्यादि शब्द तदन्त तत्पुष्प
से समासान्त प्रत्यय नहीं होता है, इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

उदा०—न राजा इति अराजा । न सखा इति असखा ।

ऋक्पूरव्यू.पयामानक्षे ५।४।७८

प० वि०—ऋक्पूरव्यूःपयाम ६।३ अ । लुप्तप्रथमैर्यचनान्तम् ।
अनक्षे ७।१ (सम्बन्धिनाऽधिकरणव्यविधत्तायां मत्तमां)

स०—ऋक् च पूर च अप् च घूर् च पन्यारचेति ऋक्पूरव्यूःपन्यान
वेपाम् । न अक्षः इति अनक्ष. तस्मिन् ।

अर्थ—ऋक्-पूर-अप्-घूर्-पयिन् इत्येवमन्तानां समासानाम्
अक्षारः प्रत्यया भवति, अक्षसम्बन्धिनी या धृन्तदन्तस्य न भवति ।

(ऋक्, पूर, अप्, घूर्, पयिन् ये शब्द हैं मन्त में त्रिमके ऐसे समान में
समामान् अक्षार प्रत्यय होता है, अक्ष सम्बन्धी जो घूर् शब्द है उसको छाटकर)

उदा०—अनृचः । बह्वृच । ललाटपुरम् । नान्दीपुरम् । द्वीपम् ।
अन्तरीपम् । समीपम् । राजधुरा । महाधुरः । जलपथः ।

मि०—अनृचबह्वृचाव्येतरेण । न ऋचोऽस्य सन्ति इति अनृचो
माणयः ।

नञ् ऋच् अ । अ ऋच । अनुद्^१ ऋच । अनृच सु । अनृच ।

यहन ऋचोऽस्य सन्तीति बह्वृचः ।

ललाटस्य पुरम् । ललाटपुरम् । नान्द्याः पुरम् । नान्दीपुरम् । द्वीपम्,
अन्तरीपम्, समीपम् । द्विगता आपो अग्निन्नग्नर्गता आपोऽस्मिन् सङ्गता
आपोऽस्मिन्निति विप्रहः ।

द्वि अप् अ । द्वि ईप्^२ अ । द्वीप् सु । द्वीपम् । अन्तरीपम् । अन्नर्
अप् अ । अन्तर् ईप् अ । अन्तरीपम् सु । अन्तरीपम् अम् । अन्तरीपम् ।
समीपम् । राजधुरा । गत्रः धृतिरिति विप्रहः । राजन् इम् घूर् अच् ।
राजन् घूर् अ । राजधुर । राजधुर टाप् । राजधुरा सु । राजधुरा ।
महाधुरः । महती धूर्त्यति विप्रहः । महती धूर् अ । महन् घूर् अ ।
मह आ^३ घूर् । महाधुर सु । महाधुर । जलस्य जले वा पन्या इति

१—उत्मानुहवि (६. ३. ७२) २—द्व्यन्तस्त्वगन्त्याज ईप् (६. ३. ६६)

आदे परस्य (१. १. ४३) ३—आन्महवः समानाधिकरणात्रातीवशा. (६. ३. ४८)

विग्रहः । जल डस् पयिन् अ । जल पयिन् अ । जलपथ^१ अ ।
जलपथ सु । जलपथः ।

तत्पुरुषस्याङ्गुले. संख्याव्ययादेः ५।४।८६

प० वि०—तत्पुरुषस्य ६।१ अङ्गुलेः ६।१ संख्याव्ययादेः ६।१

स०—संख्या च अव्ययं च संख्याव्ययम् संख्याव्ययम् आदि यस्य
इति संख्याव्ययादिः तस्य ।

अर्थ—[अच् इति प्रत्यन्वयपूर्वात्सामलोम्नः इत्यतः अनुवर्तते]
अङ्गुलिशब्दान्तस्य तत्पुरुषस्य संख्यादेरव्ययादेश्च अच् प्रत्ययो भवति ।

(अङ्गुलि शब्दान्त संख्यादि ओर अव्ययादि तत्पुरुष से समासान्त अच्
प्रत्यय होता है)

उदा०—द्व्यङ्गुलम् । त्र्यङ्गुलम् । निरङ्गुलम् ।

सि०—द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य, तिस्र अङ्गुल्य प्रमाणमस्य इति
विग्रहः । निर्गतमङ्गुलिभ्यो, निरङ्गुलम् । द्वि औ अङ्गुलि औ मात्रच् ।
द्वि औ अङ्गुलि^२ औ अच् । द्वि अङ्गुलि अच् । द्वि अङ्गुल् अ ।
द्व्यङ्गुल सु । द्व्यङ्गुलः ।

राजाहस्सखिभ्यष्टच् ५।४।९१

प० वि०—राजाहस्सखिभ्यः ५।३ टच् १।१ स०—राजा च अहश्च
सखा चेति राजाहस्सखायः तेभ्यः ।

अर्थ—[तत्पुरुषस्य] राजन् अहन् सखि इत्येवमन्तात् तत्पुरुषात्
समासान्तः टच् प्रत्ययो भवति ।

(राजन् अहन् ओर सखि शब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय होता है)

उदा०—मद्राजः । द्व्यहः । त्र्यहः । राजसखः ।

सि०—द्वे अहनी समाहृते । त्रीणि अहानि समाहृतानि इति
विग्रहः ।

द्वि औ अहन् औ टच् । द्वि अहन् टच् । द्वि अह^३ अ । द्वि अह ।
द्व्यहः । त्र्यहः । मद्राजः । मद्राणां राजन् टच् । मद्र आम् राजन् सु
टच् । मद्रराजन् अ । मद्रराज^३ अ । मद्रराज सु ।

१—नस्तद्धिते (६. ४. १४४) अचोऽन्यादि टि (१. १. ६३)

२—प्रमाणे लो द्विर्गोनित्यम् (१. २. ३७ वा०)

३—नस्तद्धिते (६. ४. १४४)

मद्राजः+। राजसखः । राज्ञः सखा इति विग्रहः । राजन् ङस् सखि
मु टच् । राजन् सखि अ । राजसखि अ । राजसख् अ । राजसख
मु । राजसखः ।

गोरतद्धितलुकि ५।४।६२

प० वि०—गोः ५।१ अतद्धितलुकि ७।१ स०—तद्धितस्य लुक् इति
तद्धितलुक् तस्मिन् ।

अर्थ—[तत्पुरुषस्य] गोशब्दान्तात् तत्पुरुषान् टच् प्रत्ययो भवति
तद्धितलुकि सति तु प्रत्ययो न भवति । (गोशब्दान्त तत्पुरुष से समानान्त
टच् प्रत्यय होता है, तद्धित लुक् होने पर प्रत्यय नहीं होता है)

उदा०—दशगवः । पञ्चगवः ।

सि०—तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च इत्यत्र द्रष्टव्या ।

नावो द्विगोः ५।४।६६

प० वि०—नावः ५।१ द्विगोः ५।१ म०—

अर्थ—[तत्पुरुषस्य टच्] नौशब्दान्तात् तत्पुरुषान् द्विगोष्टच्
प्रत्ययो भवति समासान्तः । (नौशब्दान्त तत्पुरुष द्विगु से समासान्त टच्
प्रत्यय होता है)

उदा०—पञ्च नावः प्रिया यस्येति पञ्चनावप्रियः । दशनावप्रियः ।

द्वन्द्वाच्चुदपहान्तात्समाहारे ५।४।१०६

प० वि०—द्वन्द्वात् ५।१ चुदपहान्तात् ५।१ समाहारे ७।१ म०—
चुरच् दश्च पश्च दश्च इति चुदपहम् । चुदपहम् अन्ते यस्य तन् चुदप-
हान्तम् तस्मात् ।

अर्थ—[टच्] द्वन्द्वाच्चुदपहान्ताद् दकारान्तान् पकारान्तान् हकारा-
न्ताच्च टच् प्रत्ययो भवति, स चेद् द्वन्द्वः समाहारे वर्तते ।

(द्वन्द्वं समाम् जो चवर्गान् दकारान् पकारान् घोर हकारान् उभये

१—यस्येति च (६ ४. १४६)

+विभाषा समानान्ता भवति (६ ७. ११७ भा०) इति परिभाषया समा-
सान्तानामावे 'सवराज्ञाम्' (भादि पर्व १ १८२) इत्येवमादय महाभारते भागनाट-
केषु च प्रयुक्ताः प्रयोगा माधवा भवन्ति एव च वृत्ता 'योग्युत्तम'पाराजि-
राजम्' इति (ऋ० ६० पदव्यवहार सूत्र ३४० वि० म०) इत्यादिशान्तः-
प्रयोगोऽप्युपपद्यते ।

समाहार में प्रत्यय समासान्त टच् हाते है)

उदा०—वाक्त्वचम् । स्रक्त्वचम् । श्रीस्रजम् । इड्जम् । वागूर्जम् ।
समिद्धपदम् । सपद्विपदम् । वाग्विप्रुपम् । छत्रोपानहम् ।
धेनुगोदुहम् ॥

सि०—स्रक्च त्वक् च इति स्रक्त्वचम् । श्रीश्च स्रक् चा इति
श्रीस्रजम् । वाक् च उर्क् च इति वागूर्जम् । समिद्ध पदच्चेति समिद्ध-
पदम् । सम्पच्च विपच्चेति सम्पद्विपदम् । वाग्च त्विट् चेति वाक्-
त्विपम् । वाक्च विप्रट् चेति वाग्विप्रुपम् । छत्रञ्च उपानच्चेति छत्रो-
पानहम् । धेनुश्च गोधुक् चेति धेनुगोदुहम् ।

अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य ५।४।१०७

प० वि०—अव्ययीभावे ७।१ शरत्प्रभृतिभ्य ५।३

अर्थ—[टच्] शरदादिभ्य मुञ्जन्तेभ्यष्टच् प्रत्ययो भवति अव्ययी-
भावे । (शरदादि मे अव्ययीभाव समास म म समासात् टच् प्रत्यय होता है)

उदा०—शरद् समीपम् । उपशरद्म् ॥

अनश्च ५।४।१०८

प० वि०—अन ५।१ च अ० ।

अर्थ—[अव्ययीभावे टच्] अनन्तादव्ययीभावाट् टच् प्रत्ययो
भवति समासान्त । (अनन्त अव्ययीभाव स समासात् टच् प्रत्यय होता है)

उदा०—राज्ञ समीपम् । उपराजम् ।

नि०—उपराजन् टच् । उपराज् अ । उपराज सु । उपराज अम्
उपराजम् ॥

बहुव्रीहौ सवध्यक्षणो स्वाङ्गात्पच् ५।४।११३

प्रसम्भ्या जानुनोर्जु ५।४।११६

प० वि०—प्रसम्भ्याम् ५।१ जानुन ६।१ नु १।१ स०—प्रश्च स
चेति प्रसमी ताभ्याम् ।

अर्थ—[बहुव्रीहौ] प्र सम् इत्येताभ्यामुत्तरस्य जानुशब्दस्य ह्युरादेशो
भवति समासान्ते बहुव्रीहौ । (प्र सम् व उत्तर जानु शब्द का नु भादस हा
जाना है समासान्त बहुव्रीहि में)

उदा०—प्रष्टृष्टे जानुनी अस्य प्रश्च । मर्च ।

ऊर्ध्वाद् विभाषा ५।४।१३०

प० वि०—ऊर्ध्वात् ५।१ विभाषा १।१

अर्थ—[बहुव्रीही जानुन] ऊर्ध्वशब्दादुत्तरस्य जानुशब्दस्य विभाषा हरित्यादेशो भवति विभाषा बहुव्रीही समासान्त । (ऊर्ध्व शब्द क पदवात् जानु शब्द का विक प से जु भाषा होता है बहुव्रीहि समासात् में)

उदा०—ऊर्ध्वं जानुनी अस्य, ऊर्ध्वजानु । ऊर्ध्वजु ।

ऊवपोऽनङ् ५।४।१३१

प० वि०—ऊवप ६।१ अनङ् १।१

अर्थ—[बहुव्रीही] ऊव शब्दान्तस्य बहुव्रीहेरनङादेशो भवति समासान्त । (ऊव शब्दात् बहुव्रीहि का समासान्त घनङ भाषा होता है)

उदा०—कुण्डमिव ऊवोऽन्या, सा कुण्डोऽध्नी । घटोऽध्नी ।

सि०—घटोऽनङ् डीप् । घटोऽध्नी । मु । घटोऽध्नी ॥

जायाया निङ् ५।४।१३४

प० वि०—जायाया ६।१ निङ् १।१

अर्थ—[बहुव्रीही] जायाशब्दान्तस्य बहुव्रीहेर्निङ् आदेशो भवति बहुव्रीही समासान्त । जाया शब्दात् बहुव्रीहि का निङ भाषा होता है समासात् में)

युवतिर्जाया यस्य स युवजानि । युवति जाया निङ् । युवजाया नि । युवजाय् नि । युवजानि मु । युवजानि ॥

गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्य ५।४।१३५

प० वि०—गन्धस्य ६।१ इत् १।१ उत्पूतिसुसुरभिभ्य ५।३ स०—
पञ्च पूतिश्च सुश्च सुरभिश्च इति उत्पूतिसुसुरभिभ्य तेभ्य ।

अर्थ—[बहुव्रीही] उत्त पूति सुसुरभि इत्येतेभ्य परस्य गन्धस्य शब्दस्य ट्कारादेशो भवति समासान्तो बहुव्रीही समामे । (उत् पूति सुसुरभि इत शब्दों के पदवात् गन्ध शब्द का ट्कार होता है बहुव्रीहि समासात् में)

उदा०—उद्गतो गन्धोऽस्येति उद्गन्धि । पूतिगन्धि । सुगन्धि ॥

उपमानाच्च ५।४।१३७

प० वि०—उपमानान् ५।१ च अ० ।

अर्थ—[गन्धस्य बहुव्रीही] उपमानाद् यो गन्धशब्द तस्येकारादेशो

भवति समासान्तो बहुव्रीही । (उपमान के पश्चात् जो गन्ध शब्द उसको इवार आदेश हा जाता है समासात् बहुव्रीहि में)

उदा०—पद्मस्य इन गन्धो यस्येति पद्मगन्धि ।

उर् प्रभृतिभ्य कप् ५।४।१५१

५० वि०—उर् प्रभृतिभ्य ५।३ कप् १।१ स०—उरस प्रभृतय उर् प्रभृतय तेभ्य उर् प्रभृतिभ्य

अर्थ—[बहुव्रीही] उर् प्रभृत्यन्ताद् बहुव्रीहे कप् प्रत्ययो भवति ।

(उर् इतिगति है अत म जिसके एस बहुव्रीहि से समासात् कप् प्रत्यय होता है)

उदा०—गृढमुरोऽस्य व्यूढोरस्क । प्रियसर्पिष्क ।

इन स्त्रियाम् ५।४।१५१

५० वि०—इन ५।१ स्त्रियाम् ७।१

अर्थ—[बहुव्रीही] इज्जन्ताद् बहुव्रीहौ कप् प्रत्ययो भवति स्त्रियां विषये । (इनत बहुव्रीहि स कप प्रत्यय होता है स्त्रीलिङ्ग क विषय में)

उदा०—बह्वो दण्डिनोऽस्या शालायां बहुदण्डिका शाला ।

नद्यृतश्च ५।४।१५३

५० वि०—नद्यृत ५।१ च अ० । स०—नदी च ऋच्चेति नद्यृत तस्मात् ।

अर्थ—[बहुव्रीही] नद्यन्ताद् बहुव्रीहे ऋकारान्ताच्च कप् प्रत्ययो भवति । (नद्यत बहुव्रीहि गौर ऋकारान्त से कप प्रत्यय होता है समासात्)

उदा०—बह्व य कुमार्य अस्मिन्देशे इति बहुकुमारीको देश । बहुकनृक ।

सि०—यही जस् कुमारी जस् कप् । बहुकुमारीक^१ क । बहु कुमारीक^२ सु । बहुकुमारीक ।

शेषाद्विभाषा ५।४।१५४

५० वि०—शेषात् ५।१ विभाषा १।१

अर्थ—[बहुव्रीही] यस्माद् बहुव्रीहे समासान्तो न विहित स शेष-

१—स्त्रिया पु वद—(६ ३ ३४) २—केश्ण (७ ४ १३) न कपि (७ ४. १४)

स्तस्माद् विभाषा कप् प्रत्ययो भवति । (जिम् बहुव्रीहि ने समानान्त विधान नहीं किया गया है ऐसे शेष से विवक्ष्य करने समानान्त कप् प्रत्यय होना है)

उदा०—बह्व्यः खट्वा अस्मिन् देशे म बहुखट्वको देशः । बहु-
खट्वाको देशः । बहुमालम् । बहुमालाकः ।

सि०—बह्वी जस् खट्वा जस् कप् । बह्वी खट्वा कप् । बहु^१
खट्व क । बहुखट्वाक^२ ॥ बहुखट्वम् । बहुखट्वाकः ।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणज्ञमहाविद्याकरणपण्डितब्रह्मदत्ता-
चार्याणामन्तेवासिना देवप्रकाशपातञ्जलेन विर-
चितायामष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया

पञ्चमाध्याये चतुर्थं पादः

इति पञ्चमोऽध्यायः

द्विवचनप्रकरणम्

एकाचो द्वे प्रथमस्य ६।१।१

प० वि०—एकाचः ६।१ द्वे १।२ प्रथमस्य ६।१ स०—एकोऽच् अस्मिन्
इति एकाच् (बहु०) तस्य ।

अर्थ—प्रथमस्य एकाचो द्वे भवतः इत्यधिकारो वेदितव्यः आ-
सम्प्रसारणान् । (प्रथम एकाच् को द्वित्व हो जाता है इस बात का अधिकार
समझना चाहिए सम्प्रसारण प्रकरण से पूर्व तक)

अजादेद्वितीयस्य ६।१।२

प० वि०—अजादेः ६।१ द्वितीयस्य ६।१ स०—अच् आदिर्यस्य इति
अजादेः तस्य ।

अर्थ—[द्वे प्रथमस्य] अजादेद्वितीयस्यैकाचो द्वे भवतः इत्यधि-
कारो वेदितव्यः । (यच् है यदि में जिम् क ऐसे ने द्वितीय एकाच् को द्वित्व
होना है, इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

१—स्त्रियाः पुबद्—(६. ३. ३४) २—नेष्टः (७. ४ १३) न वति
(७ ४ १४) भाषोऽन्वतरस्याम् (७ ४. १५)

न न्द्रा संयोगादयः ६।१।३

प० वि०—न अ० । न्द्राः १।३ संयोगादयः १।३ स०—नश्च दश्च रश्चेति न्द्राः (समासविग्रहे नकारदकारे अकार उच्चारणार्थ । संयोगस्य आदि. संयोगादिः ते संयोगादयः ।

अर्थ—[द्वितीयस्य एकाचो द्वे] द्वितीयस्य एकाच. संयोगस्य आदयः नकारदकारेफा न द्विरुच्यन्ते ।

(द्वितीय एक अच् बाले समुदाय के संयोग के नकार, दकार और रेफ को द्वित्व नहीं होता है, इस व त का अधिकार समझना चाहिये)

पूर्वोऽभ्यास ६।१।४

प० वि०—पूर्व १।१ अभ्यासः १।१

अर्थ—[द्वे इति प्रथमान्त पष्ठ्या विपरिणम्यते] ये द्वे विहिते तयोर्त्य पूर्व स अभ्यास सङ्गो भवति ।

(जिस द्वित्व को विधान किया गया है उन दोनों में जो पूर्व उसकी अभ्यास सज्ञा होती है)

उभे अभ्यस्तम् ६।१।५

प० वि०—उभे १।२ अभ्यस्तम् १।२

अर्थ—[द्वे] ये द्वे विहिते ते उभे समुदिते अभ्यस्तसङ्गो भवतः ।
(जिस द्वित्व का विधान किया गया है उन दोनों एकट्ठे की अभ्यस्त सज्ञा होती है)

लिटि धातोरनभ्यासस्य ६।१।८

प० वि०—लिटि अ१ धातो. ६।१ अनभ्यासस्य ६।१ स०—न अभ्यास अनभ्यास तस्य ।

अर्थ—[प्रथमस्य एकाचो द्वे द्वितीयस्य] लिटि परतो धातोः प्रथमस्यैकाचो द्वितीयस्य वा अनभ्यासस्य यथायोगं द्वे भवतः ।

(लिट् के परे रहने पर धातु के प्रथम या द्वितीय एकाच् को यथायोग द्वित्व होता है यदि वह अभ्यास सज्ञक न हो । अर्थात् पहले किसी और निमित्त को मानकर द्वित्व होकर अभ्यास सज्ञक न बना हो)

उदा०—पपाच । पपाठ

सन्यडो. ६।१।९

प० वि०—सन्यडो. ६।२ स०—संश्च यङ् च इति सन्यडो तयोः ।

अर्थ—[धातोरनभ्यासस्य] सनन्तस्य यङन्तस्य च धातोरवयवस्य प्रथमस्य एकाचो द्वितीयस्य वा अनभ्यासस्य यथायोगं द्वे भवतः ।

(सनन्त घोर यङन्त धातु के अनभ्यास अवयव के प्रथम या द्वितीय एक यच् बाने का यथायोग द्वित्व होता है ।

उदा०—सन.—पिपजति । पिपतिषति । अरिरिपति । अटिटिपति । अशिशिपति । उन्दिटिपति । अडिडिपति । अर्चिचिपति । यङ्—पाप-च्यते । यायच्यते । अटाट्यते । अरार्यते ।

सि०—अरिरिपति । अरि सन् । अरि स । अरि ङ् स । अरि ङ् स । अरिप । अरिप् रिप । अरि रिप लट् । अरिरिप लृ । अरिरिप तिप् । अरिरिप शप् ति । अरिरिप अ ति । अरिरिपति । अटिटिपति । अट् सन् । अट् स । अट् ङ् स । अटिम । अटिप । अटिप् टिप । अटि दिप लट् । अटिटिप तिप् । अटिटिप शप् ति । अटि टिप अ ति । अटिटिपति । अशिशिपति । अश् स । अशिस । अशिप । अशिप् शिप । अशि-शिप गप् तिप् । अशिशिपति । उन्दिटिपति । उन्दी क्लेदनं । उन्द् । उन्द् स । उन्दिप । उन्दिप् टिप । उन्दिटिप शप् ति । उन्दिटिपति । अडिडिपति । अद्ड अभिग्रेणे । अद्ड् सन् । अडिड प । अड् डिप । अड् डि डिप । अडिड डिप शप् तिप् । अडिडिपति ।

× अर्तेरट्यतिशृणोतीनामुपमग्न्यानाम् इति यच् × अरार्यते । अर यङ् । अर्य य । अर्य र्य । अर्य अ र्य । अर्य र्य । अरार्य लट् । अरार्य त । अरार्य गप् त । अरार्य त । अरार्यते ।

श्लो ६।१।१०

अर्थ—[धातोरनभ्यासस्य] श्लो परतोऽनभ्यासस्य धातोरवयवस्य प्रथमस्यैकाचो द्वितीयस्य वा यथायोगं द्वे भवतः । (श्लु क परे रहने पर अनभ्यास धातु के अवयव के प्रथम या द्वितीय एकाचो यथायोग द्वित्व होता है)
उदा०—जुहोति । जिमेति ।

चटि ६।१।११

अर्थ—[धातोरनभ्यासस्य] चटि परतोऽनभ्यासस्य धातोरवयवस्य प्रथमस्यैकाचो द्वितीयस्य वा यथायोगं द्वे भवतः । (चट् के परे रहने पर अनभ्यास धातु के अवयव प्रथम या द्वितीय एकाचो यथायोग द्वित्व होता है)

१-यटि च (७. ४. ३०) २-यकाररस्य रेकस्य प्रतिषेधो न भवतीति यक्तव्यम् (६. १. ३ बा०)

उदा०—अपीपचत् । अपीपठत् ।

❀ पचादीना एयन्ताना चडि कृते णिलोप उपधाह्रस्वत्व द्विर्वचन मित्येपा प्रवृत्तिक्रमः । तथा च सन्वल्लुनि चङ्परे इति सन्वद्भावो विधीयमानो ह्रस्वस्य स्थानिवद्भावात् प्रतिषिध्यते । यो हि अनादिष्टाद् अच पूर्वस्तस्य विधिः प्रति स्थानिवद्भावो भवति । न चास्मिन् कार्याणां क्रमेणनादिष्टादश्च पूर्वोऽभ्यासो भवति इति । आटिटत् इति द्विर्वचनेऽपि इति स्थानिवद्भावाद् द्वितीयस्यैकाचो द्विर्वचनं भवति ❀

सम्प्रसारणप्रकरणम्

प्यङ् सम्प्रसारण पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे ६।१।१३

प० वि०—प्यङ् ६।१ सम्प्रसारणम् १।१ पुत्रपत्यो ६।२ तत्पुरुषे ७।१

स०—पुत्रश्च पतिश्च इति पुत्रपती तयो पुत्रपत्यो ।

अर्थ—पुत्रपत्योरुत्तरपदयोस्तत्पुरुषे समासे प्यङ् सम्प्रसारण भवति ।

(तत्पुरुष में पुत्र और पति शब्द के उत्तर पद में परे रहन पर प्यङ् का सम्प्रसारण हो जाता है)

उदा०—कारीपगन्धीपुत्र । कारीपगन्धीपति । कौमुदगन्धीपुत्र ।

कौमुदगन्धीपति ।

सि०—अन्यत्सर्वं यङ्श्चाप् इति सूत्रे द्रष्टव्यम् विशेषस्तु कारीप गन्ध्याया पुत्र इति विग्रहः । कारीपगन्ध्या पुत्रः । कारीपगन्ध् इ आ पुत्रः । कारीपगन्ध् ई पुत्रः । कारीपगन्धीपुत्रः । कारीपगन्धीपुत्रः । कारीपगन्धीपतिः ।

वन्धुनि बहुव्रीहौ ६।१।१४

प० वि०—वन्धुनि ७।१ बहुव्रीहौ ७।१

अर्थ—[प्यङ् सम्प्रसारणम्] वन्धुशब्द उत्तरपदे बहुव्रीहौ समासे प्यङ् सम्प्रसारण भवति । (वन्धु शब्द के उत्तरपद में परे रहन पर बहुव्रीहि समास में प्यङ् को सम्प्रसारण होता है)

उदा०—कारीपगन्धीवन्धु । कौमुदगन्धीवन्धु । कारीपगन्ध्या वन्धुरस्येति विग्रहः ।

वचिस्वपियजादीना किति ६।१।१५

प० वि०—वचिस्वपियजादीनाम् ६।३ किति ७।१ स०—यज आदि-

येषामन्ते यजादयः । वचिश्च स्वपिश्च यजादयश्चेति वचिस्वपियजादयः
तेषाम् । क् इद् यस्य स किन् तस्मिन् किति ।

अर्थ—[सम्प्रसारणम्] वच परिभाषणे । ब्रूवो वचिरिति च ।
त्रिष्वप् शये । यजादयो, यज देवपूजासंगतिकरणदानेऽप्यित्यतः प्रभृति
आ गणान्तात् । तेषां वचिस्वपियजादीनां सम्प्रसारणं भवति किति
प्रत्यये परतः । (वच्, स्वप् और यजादि धातुओं का सम्प्रसारण होता है किन्
प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—वचि-उक्तः । उक्तवान् । स्वपि-सुप्तः । सुप्तवान् । यज-
इष्टः । इष्टवान् ।

सि०—वच् क्त । वच् त । उ अ च् त । उच्^१ त । उक्तः^२ ।

ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छति-

भृज्जतीना इति च ६।१।१६

प० वि०—ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि-वष्टि-विचति-वृश्चति-पृच्छति-
भृज्जतीनाम् ६।३ इति ७।१ च अ० । स०—ग्रहिरच् ज्याश्च वयिश्च
व्यधिश्च वष्टिश्च विचतिश्च वृश्चतिश्च पृच्छतिश्च भृज्जतिश्चेति
ग्रहि-ज्या - वयि-व्यधि-वष्टि - विचति-वृश्चति-पृच्छति-भृज्जतयः
तेषाम् । इद् इत् यस्येति डित् तस्मिन् डिति ।

अर्थ—[सम्प्रसारणम् किति] ग्रह उपादाने, ज्या वयोहानी, वेवो
वयि, व्यध ताडने, वश कान्तौ, व्यच व्याजीकरणे, ओग्रश्च छेदने,
प्रच्छ क्षीप्तायाम्, भ्रस्ज पाके इत्येतेषां धातूनां इति प्रत्यये परतरच-
कारात्किति च सम्प्रसारणं भवति । (इन धातुओं को डित् और किन् प्रत्यय
के परे रहने पर सम्प्रसारण होता है)

उदा०—ग्रह इति—गृह्णाति । जरीगृह्यते । किति—गृहीतः । गृही-
तवान् । ज्या इति—जिनाति । जेजीयते । किति—जीनः । जीनवान् ।
वयि—लिटि परतो वेवो वयिरादेशस्तस्य डिद्मावात् किदेवोदाह्रियते ।
ऊयुतुः । ऊयुः । व्यध इति—विध्यति । वेविध्यते । किति—विद्धः ।
विद्धवान् । वश इति—वष्टः । वशन्ति । किति—वशितः । वशितवान् ।
व्यच इति—विचति । वेविच्यते । किति—विचितः । विचितवान् । वृश्च
इति—वृश्चति । वरीवृश्च्यते । किति—वृक्लः । वृक्लवान् । प्रच्छ

डिति—पृच्छति । परिपृच्छयते । प्रश्न , नङि तु प्रश्ने चासन्नकाले इति निपातनाद् असम्प्रसारणम् । किति—पृष्ट । पृष्टवान् । भ्रञ्ज डिति—भृञ्जति । वरीभृञ्जयते । भ्रञ्ज किति—भृष्ट । भृष्टवान् ।

सि०—गृहाति । ग्रह् लट् । ग्रह् ल् । ग्रह् तिप् । ग्रह् श्ना ति । ग्रह ना ति । गृच्छ अ ह् ना ति । गृह् ना ति । गृहाति । ग्रह यङ् । ग्रह य । गृह् य । गृह् गृह् य । गृ गृह् य । गर^१ गृह् य । ग^२ गृह् य । ज^३ गृह् य । ज रीकृ^४ गृह् य । जरीगृह् लट् । जरीगृह् शप् । जरीगृह् अ ते । जरीगृह्यते । ग्रह् क्त । गृह् त । गृह् ईदृत् । गृहीत । जी^५ ना ति । जि^६ नाति । ज्या क्त । ज्या त । जि त । जी त । जी न^७ । जीन । उयतु । वेब् । वेब् लिट् । वय लिट् । वय् अतुस् । उ अ य् अतुस् । वय् अतुस् । वय् उय् अतुस् । उ वय् अतुस् । उयतुस् । उयतु । विद्ध । व्यध क्त । व्यध् त । व इ अ ध् त । वि अ ध् त । वि ध् त । विध् घ^८ । विद्ध । विद्ध । विद्ध । उष्ट । वश् क्त । वश् त । उ अ श् त । उश् त । उप्^९ व । उप्^{१०} । उष्ट सु । उष्ट । वृक् ण । वृश् क्त । वृश् त । वृश्च त । वृश्क् त । वृक्^{११} न । वृक् ण । वृक् ण । क्लृप्तमत्र कुव, न वृश्चभ्रस्जेति सूत्रेण परेन भनितव्यम्—उच्यते × निष्ठादेश पत्वस्वरप्रत्ययविधीड विधिषु सिद्धो वक्तव्य × तत्र पत्व प्रति नत्वस्य सिद्धत्वाद् भलादि-निष्ठा न भनति । कुत्वे तु कर्त्तव्ये तदसिद्धमेवेति प्रवृत्ते कुत्वम्क्

लिट्यभ्यासरयोभयेपाम् ६।१।१७

प० वि०—लिटि ७।१ अभ्यासस्य ६।१ उभयेपाम् ६।३

अर्थ [सम्प्रसारणम्] उभयेपा वक्ष्यादीनां ग्रहादीनां च लिटि परत्वं

- १—उरत् (७ ४ ६६) उरण् रपर (१ १ ५०) २—पूर्वोऽभ्यास (६ १ ४) अत्र लोपोऽभ्यासस्य (७ ४ ५०) हलादि शप् (७ ४ ६०) ३—कुहोऽष्टु (७ ४ ७२) ४—रागृदुषस्य च (७ ४ ६०) भाद्यन्तो टकितो (१ १ ४५) ५—हल (६ ४ २) ६—प्वादीनां ह्रस्व. (७ ३ ८०) ७—त्वादिभ्यश्च (८ २ ४४) ८—अपस्तथोर्बोऽश्च (८ २ ४०) ९—वृश्चभ्रस्जसृजमृनयजराजप्राजच्छशा य (८ २ ३६) १०—पुना पु (८ ४ ४०) ११—स्को सयोगाद्योरन्ते च (८ २ २६)

अभ्यासस्य सम्प्रसारणं भवति । (वच इत्यादि ओर ग्रह इत्यादि इन दोनों के अभ्यास का सम्प्रसारण होता है लिट् के पर रहने पर)

उदा०—वचि—उवाच । उचयिथ । स्वप्—सुप्ताय । सुप्तापिथ । यज्—इयाज । इयजिथ । ग्रह्—जग्राह । जग्रहिथ । क्लृप्—हरिषोप क्लृ

(धातु के अभ्यास को सम्प्रसारण होकर 'जग्रह्' अ' 'उरत्' म धरादत्त करके रेफ की निवृत्ति करने से भी 'जग्राह' रूप बनता है और सम्प्रसारण बिना किए भी 'ह्यादि संप' से रेफ की निवृत्ति होने पर वही रूप बनता है ।

ज्या—जिज्यौ । जिज्यिथ । वचि—उवाच । उचयिथ । व्यथ—विव्याथ । विव्ययिथ । यश—उवाश । अवशिथ । व्यच—त्रिव्याच । विव्यचिथ । यश्च—यजश्च । यजश्चिथ । पृच्छतिभृज्जयोरारिषोप पूर्ववत् ।

सिच्—यच् । यच् लिट् । यच् लृ । यच् णल् । याच् अ । याच् वाच् अ । या याच् अ । य याच् अ । उ अ याच् अ । उवाच । यच् लिट् । यच् थल् । यच् थ । क्लृप्त्र प्रकरणे इडं योऽयम्—आदिनियमादित् प्राप्ता उदेशोऽयत्न इति प्रतिपिद्धः, स्रुतो भारद्वाजस्य इति नियमान् पुनरिह आगमो भवति क्लृ यच् ट् थ । यचिथ । यच् यच् इथ । य यच् इथ । उ अ यचिथ । उचयिथ । उचयिथ ॥ ग्रह् लिट् । ग्रह् णल् । ग्राह् अ । ग्राह् ग्राह् अ । मा ग्राह् अ । म ग्राह् अ । गृ ग्राह् अ । गर् ग्राह् अ । ग ग्राह् अ । जग्राह् ॥ क्लृयद्यपि ग्रहिपृन्वतिभृज्जनीनामभ्यासस्य सम्प्रसारणे कृतेऽकृतं च विशेषो नास्ति, तथापि पर्जन्यरक्षणां प्रवर्तते । जग्राह्, पग्रन्ध, यध्रज्ज, इत्यादिषु सम्प्रसारणे कृते प्रयोगो निष्पादनीयः कृतेऽन्तु विशेषः । सम्प्रसारणस्य अक्षरणे यग्रन्ध इत्यत्र यनारम्य सम्प्रसारणं भ्यात् । कृते तु न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम् इति निषेधप्रवृत्तिरिति ॥

विभाषा द्वे. ६।१।३०

प० लि०—विभाषा १।१ ज्येः ६।१

अर्थ—[सम्प्रसारणम्, लिट्यहोश्च] दुओरिय इत्येवमभ्यासोऽविभाषा सम्प्रसारणं भवति लिटि यच्च च परत्वं । (दुषादिषु धातु का विभक्त्य मे सम्प्रसारण होता है लिट् ओर णट् के पर होने पर)

उदा०—गुग्गाय । शिशवाय । गुगुवतुः । गिग्वयतुः । यद्वि—गोगु-यत् । गेग्वीयते ।

सि०—टुओशिव । शिव । शिव लिट् । शिव लृ । शिव णल् । श् वृ इ णल् । श् वृ इ अ । श् उ अ । शु अ । शौ अ । शाव् अ । शु^१ शाव । शुशाव । शिव णल् । श्वै अ । श्याय् अ । शि^१ श्वाय् अ । शिश्वाय ॥

न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम् ६।१।३६

प० वि०—न अ० । सम्प्रसारणे ७।१ सम्प्रसारणम् १।१

अर्थ—सम्प्रसारणे परतः सम्प्रसारणं न भवति (सम्प्रसारण के परे रहने पर सम्प्रसारण नहीं होता है)

उदा०—विद्धः ।

सि०—व्यध् क्त । व्यध् त । वृ इ अ ध् त । विध् त । विद्धः ।
 ❀अन्यत्सर्वं साधनं सम्प्रसारणविधायकं सूत्रे द्रष्टव्यम् । अत्र यकारस्य सम्प्रसारणे कृते पुनः यकारस्य सम्प्रसारणमनेन सूत्रेण प्रतिपिध्यते ❀

प्राक्प्रकरणम्

आदेच उपदेशोऽशिति ६।१।४४

प० वि०—आत् १।१ षच् । ६।१ उपदेशे ७।१ अशिति ७।१ स०—
 न शित् अशित् तस्मिन् अशिति ।

अर्थ—[धातोः] उपदेशे यां धातुरेजन्तस्तस्य आकारादेशो भवति, शिति तु न भवति । (उपदेश में जो धातु एजन्त उसको आकार आदेश हो जाता है, एकार इन् वाला प्रत्यय परे हो तो नहीं)

उदा०—❀अशीतीति प्रसज्यप्रतिषेधोऽय तेनैतदात्मनैमित्तिक प्रागेव प्रत्ययोत्पत्तेर्भवति ❀ ग्लाता । ग्लातुम् । ग्लातव्यम् । ग्लाता । ग्लातुम् । ग्लातव्यम् ।

सि०—ग्लौ ग्लौ हर्यक्षये । ग्लौ । ग्ला वृच् । ग्ला वृच् । ग्लावृ सु । ग्लात् अनङ् सु । ग्लातन् स् । ग्लातान् स् । ग्लातान् । ग्लाता । ग्लातारौ । ग्लातारः । ग्लातारम् । ग्लातारौ । ग्लातन् । ग्लात्रा । ग्लातृ-भ्याम् । ग्लातृभिः ।

क्रीड्जीना णी ६।१।४७

प० वि०—क्रीड्जीनाम् ६।३ णी ७।१ स०—क्रीश्च इङ् च जिश्चेति क्रीड्जय तेषां क्रीड्जीनाम् ।

१—द्विवचनेऽचि (१ १. ५८)

अर्थ—[आदेच्] हुकीञ् द्रव्यविनिमये, इङ् अध्ययने, जि जये इत्येतेषां धातूनाम् एचः स्थाने णी परतः आकारादेशो भवति ।

(हुकीञ् द्रव्यविनिमये, इङ् अध्ययने, जि जये इन धातुओं का आकार आदेश हो जाता है णिच् के परे रहने पर)

उदा०—क्रापयति । अध्यापयति । जापयति ।

सि०—हुकीञ् । क्री णिच् । क्री इ । का इ । का पुक्^१ इ । कापि लट् । कापि ल् । कापि तिप् । कापि शप् ति । कापि अ ति । कापे अ ति । कापय् अ ति । कापयति । कापयतः । कापयन्ति ॥ इङ् । इ णिच् । इ इ । आ इ । आ पुक्^२ इ । आपि लट् । आपि तिप् । आपि शप् ति । आपे अ ति । आपय् अ ति । आपयति । अधि आपयति । अध्यापयति । जि णिच् । जा इ । जा पुक्^३ इ । जापि । जापि लट् । जापि तिप् । जापि शप् ति । जापे अ ति । जापय् अ ति । जापयति ।

सृजिदृशोर्भक्त्यमकिति ६।१।५७

प० वि०—सृजिदृशोः ६।२ भक्ति ७।१ अम् १।१ अकिति ७।१ स०—सृजिश्च दृशश्चेति सृजिदृशो तयोः । न किरति अकिन् तस्मिन् ।

अर्थ—सृज विसर्गे, दृशार् प्रेक्षणे इत्येतयोर्वाच्योर्भक्ताभावकिति प्रत्यये परतोऽमागमो भवति । (सृज् दृशिर इन धातुमा को अम् वा आगम होता है भक्तादि भक्ति प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—सृष्टा । सृष्टुम् । सृष्टव्यम् । दृष्टा । द्रष्टुम् । द्रष्टव्यम् ।

सृज्युष रगुणस्यापवादेऽयममागमः

सि०—सृज । सृज् लृच् । सृ अम् ज् लृ । सृज्^१ लृ । सृप्^२ लृ । सृष्टु सु । सृष्टा । द्रष्टा ॥

धात्वादेः घः मः ६।१।६२

प० वि०—धात्वादेः ६।१ घः ६।१ मः १।१ स०—धातोरादिः धात्वादिः तस्य धात्वादेः ।

अर्थ—धातोरादेः पकारस्य सकारादेशो भवति । (धातु के आदि पकार का सकारादेश होता है)

उदा०—सहते । सहेते । सहन्ते । सहसे । सह्ये । सह्ये । सदे ।

१—घातिह्रीन्नी० (७. ३. ३६) २—ह्यो यणञि (६. १. ७४)

३—सदचभ्रस्त्रसृजमृजयत्रराजभ्राजच्छरा प. (८. २. ३६)

सहावहे । सहामहे ।

सि०—पह । पह । सह लट् । सह त् । सह शप् त् । सह् अ ॥ ।
सह् अ ते । सहते ॥

णो नः ६।१।६३

प० वि०—णः ६।१ नः १।१

अर्थ—[धात्वादेः] धातोरादेः णकारस्य नकारादेशो भवति । (धातु के प्रादि णकार का नकार आदेश होता है)

उदा०—नयति । नयतः । नयन्ति । नयसि । नयथः । नयथ ।
नयामि । नयावः । नयामः ॥ नमति । नमतः । नमन्ति ।

सि०—णीञ् । णी । नी लट् । नी लृ । नी तिप् । नी शप् ति ।
नी अ ति । ने अ ति । नय् अ वि । नयति ।

लोपो व्योर्वलि ६।१।६४

प० वि०—लोपः १।१ व्योः ६।२ वलि ७।१ स०—२श्च यश्चेति
व्यौ तयोः व्योः

अर्थ—वकारयकारयोर्लोपो भवति वलि परत् । ('वलि प्रत्याहा' के पने रहने पर वकार और यकार का लोप होता है)

उदा०—यकारस्य—पचेत् । पचेनाम् । पचेयुः । पचेरन् । यजेरन्
वकारस्य—जीरदानुः ।

सि०—हुपचप् पाके । पच् लिङ् । पच् लृ । पच् तिप् । पच् शप्
ति । पच ति । पच यामुट् ति । पच यास् सुट् ति । पच या^१ ति । पच
या त् । पच इय् त् । पचेय् त् । पचेन् । पचेय् ताम् । पचेताम् । पचे-
रन् । पच् शप् म् । पच रन् । पच सीयुट् रन् । पच् ईय् रन् । पचेय
रन् । पचेरन् ॥ जीव् । जीव् रदानुक्^२ । जीव् रदानु । जीरदानु सु ।
जीरदानुः ।

वेरपृक्तस्य ६।१।६५

प० वि०—वेः ६।१ अपृक्तस्य ६।१

अर्थ—[लोपः] अपृक्तस्य वेर्लोपो भवति । (अपृक्त वकार का लोप होता है)

उदा०—चित् । चितौ । चित । छिन् । छिदौ । छिद ।

सि०—चिन् । चि म्विप्^१ । चि विप् । चि वि । चि व् । चि । चि तुक् । चित् सु । चित् स् । चित् । छिदिर् । छिद् म्विप् । छिद् व् । छिद् सु । छित्^२ । छिदौ ॥

हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्त्वपृक्त हल् ६।१।६६

प० वि०—हल्ङ्याब्भ्य ५।३ दीर्घात् ५।१ सुतिसि १।१ अष्टमत् १।१ हल् १।१ स०—हल् च डी च आप् चेति हल्ङ्याप् तभ्य । हल्ङ्याब्भ्य । मुश्च तिरच सिरच इति सुतिसि (समा० द्वन्द्व)

अर्थ—[लोप] हलन्ताद् ड्यन्ताद् आगन्ताच्च दीर्घान् पर सु ति सि इत्येतद् अष्टमत् हल् लुप्यते । (हलन्त ड्यन्त भोर आगत जा दीर्घ उक्त पश्चात् मु ति सि जो षष्ठ्य हल उमका लाप हाता है)

उदा०—हलन्तान् मुलोप—राजा । तच्चा । कर्त्ता । हर्त्ता । ड्यन्तान् मुलोप—कुमारी । गौरी । शार्ङ्ग रवी । आगन्तात् मुलोप—उदया । लता । मीता । गीता । हलन्तादेव तिलोप मिलोपय्च । तिलोप—अधिभर्भवान् । अजागर्भवान् । सिलोप—अभिनेऽत्र ।

सि०—राजन म् । राजान्^३ म् । राजान् । राजा । तत्तन् मु । तत्तान् स् । तत्तान् । तच्चा । अभिरम् । भृम् लट् । भृ ल् । भृ तिप् । भृ श्लु ति । भृ ति । भर^४ ति । भर भर्^५ ति । भ भर ति । यभर् नि । निभर्^६ न । निभर् । अट् विभर् । अभिभर्भवान् ॥ जागृ निद्राक्षये । जागृ लङ् । जागृ तिप् । जागृ शप् ति । जागृ ति । जागरन् । जागर् । अट् जागर् । अजागर् भवान् । अजागर्भवान् । अभिनेऽत्र । भिदिर् । भिद् । भिद् लङ् । भिद् ल् । भिद् सिप् । भिरनमृद् सि । भिनद् स् । भिनद् । भिनर्^७ । अट् भिनर् । अभिनर् अत्र । अभिन उ^८ अत्र । अभिनो^९ अत्र । अभिनोऽत्र^{१०} ॥

पातारदानुक् । जीवति प्राणान् धाग्यति इति जोग्यानु । वैदिक रूपमेतद् (उणा० २. २३) १—निवष च (३ २ ७६) २—वावसान (८ ४ ११) ३—सर्वनामस्थान चासम्बुद्धौ (६. ४. ८) ४—मायषानुवापप नृकयो (७ ३. ८४) उरण रपर (११ ५०) ५—द्वौ (६. १. १०) ६—पृत्रामिन् (७ ४ ७६) ७—दत्त (८ २. ७५) ८—द्वौ राएप्पुत्रादप्पुन (६१ १०६) ९—पादगुण (६ १ ८४) १०—एह पदात्तादिति (६. १. १०४)

एङ्हस्वात्सु बुद्धे ६।१।६७

प० वि०—एङ्हस्वात् ११ सवुद्धे ६।१ स०—एङ् च ह्रस्वश्चेति एङ्हस्व तस्मात् ।

अर्थ—[लोप हल्] एङन्तात् प्रातिपदिकात् ह्रस्वान्ताच्च परो हल् लुप्यते स चेत् सवुद्धेर्भवति । (एङन्त और ह्रस्वान्त प्रातिपदिक के पश्चात् हल् का लोप होता है यदि वह हल् सम्बुद्धि का हो)

उदा०—एङन्तात्—हे अग्ने । हे वायो । ह्रस्वान्तात्—हे देवदत्त । हे नदि । हे यधु । हे कुण्ड ।

सि०—अग्नि सु । अग्ने^१ स् । अग्ने^२ । हे कुण्ड सु इत्यत्र अतोऽम् इत्यम् आदेशे कृते अमि पूर्व इति पूर्वरूपे कृते हल्मात्रस्य मकारस्य लोपो भवति ।

तुगागमप्रकरणम्

ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् ६।१।६८

प० वि०—ह्रस्वस्य ६।१ पिति ७।१ वृति ७।१ तुक् १।१ स०—पकार इत् यस्य सोऽय पित् तस्मिन् पिति ।

अर्थ—पिति कृति परतो ह्रस्वस्य तुगागमो भवति ।

(पकार इत् वात् कृत्तशब्द प्रत्यय के परे रहन पर ह्रस्व का तुक् का प्रागम होता है)

उदा०—अग्निचित् । सोमसुत् । प्रकृत्य । प्रहृत्य ।

सहिताप्रकरणम्

सहितायाम् ६।१।७०

प० वि०—सहितायाम् ७।१

अर्थ—इतोऽग्रे अनुदात्त पदमेकवर्जम् इति यावत् घट्यमाणानि कार्याणि सहितायां भवन्ति इत्यधिकारो वेदितव्य । (यहाँ से प्रागे कहे जान वाल काय सहिता के विषय में होते हैं, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

१ वस्तुतः 'सवविधिम्यो लोपविधिबलीमान्' इतिपरिभाषया प्रमादेशात् प्रागेव लोप प्रवर्तत ।

१-ह्रस्वस्य गुण (७ ३ १०८) = एङ्हस्वात्सम्बुद्धे (६ १ ६९)

छे च ६।१।७१

प० वि०—छे ७।१ च छ० ।

अर्थ—[ह्रस्वस्य तुक्] छकारे परतः संहितायां विषये ह्रस्वस्य तुगा-
गमो भवति । (छकार के परे रहने पर संहिता के विषय में ह्रस्व को तुक् का
आगम होगा है)

उदा०—इच्छति । गच्छति । यच्छति ।

सि०—इषुगमियमां छ इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

इको यणचि ६।१।७४

प० वि०—इकः ६।१ यण् १।१ अचि ७।१

अर्थ—[संहितायाम्] अचि परतः इकः स्थाने यण् भवति महि-
तायां विषये । (मच् के परे रहने पर इक् के स्थान में यण होता है, महिता के
विषय में)

उदा०—दध्यत्र । मध्यत्र । कर्त्रर्थम् । लाहृतिः ।

सि०—दधि अत्र । दध्य् अत्र । दध्यत्र । मधु अत्र । मधूय्
अत्र । मध्यत्र । कर्त्तृ अर्थम् । कर्त्र् अर्थम् । कर्त्रर्थम् । ल् आहृतिः ।
ल् आहृति । लाहृतिः । × इङ्गे यणभिर्यनगान् व्याडिगालनयोरिति
यस्तन्यम् × भू आदयः । भून् आदयः । भूनादयः ।

एचोऽयवायाव ६।१।७७

प० वि०—एचः ६।१ अयवायावः १।३ स०—अय् च अन् च आय्
च आय् चेति अयवायावः ।

अर्थ—[संहितायाम् अचि] अचि परतः एचः स्थाने अय् अन्
आय् आय् इयेते आदेशा भवन्ति संहितायां विषये यथामग्यम् ।

(मच् के परे रहने पर एच् के स्थान में अय् अन् आय् आय् के
आदेश महिता के विषय में होने हैं)

उदा०—चयनम् । लयनम् । पायनम् । लायनम् ।

सि०—ये अनम् । य् अय् अनम् । यदनम् । लो अनम् । लय-
नम् । यं अकः । य् आय् अकः । पायकः । लो अकः । ल आय् अकः
लायकः ।

सहितायामेकादेशप्रकरणम्

एक पूर्वपरयो ६।१।८१

प० वि०—एक १।१ पूर्वपरयो ६।१ स०—स्वत्यात्परस्येति एतस्मात् प्राक् पूर्वस्य परस्य च द्वयोरपि स्थाने एकादेशो भवति इत्यधिकारो वेदितव्यः । (स्वत्यात्परस्य इति मूल तक पूर्व और पर दोनोंके स्थान में एकादेश होता है इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

आदगुण ६।१।८४

प० वि०—आत् १।१ गुण १।१

अर्थ—[अचि सहिताया पूर्वपरयो एक] अवर्णादचि पूर्वपरयो स्थाने गुण एकादेशो भवति सहिताया विषये ।

(भवण के पश्चात् अच के परे रहन पर पूर्व और पर के स्थान में गुण एकादेश होता है सहिता के विषय में)

उ०—खट्वेन्द्र । मालेन्द्र । तयोदकम् । खट्वोदकम् । तयश्च । खट्वश्च ।

सि०—खट्वा इन्द्र । तव उदकम् । खट्वा उदकम् । तव ऋश्य । खट्वा ऋश्य ॥

वृद्धिरेचि ६।१।८५

प० वि०—वृद्धि १।१ एचि ७।१

अर्थ—[आत्] अवर्णागेचि पूर्वपरयो वृद्धिरकादेशो भवति । (भवण के पश्चात् एच के परे रहन पर पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है सहिता के विषय में)

उ०—ब्रह्म एडका, ब्रह्मैडका । खट्वा एडका, खट्वैडका । ब्रह्म ऐतिकायन, ब्रह्मैतिकायन । खट्वा ऐतिकायन, खट्वैतिकायन । ब्रह्म ओदनम् ब्रह्मौदनम् । खट्वा ओदनम्, खट्वौदनम् । ब्रह्म ओपगव, ब्रह्मौपगव । खट्वा ओपगव, खट्वौपगव ।

आटश्च ६।१।८७

प० वि०—आट १।१ च अ० ।

अर्थ—[अचि] आट अचि पूर्वपरयो स्थाने वृद्धिरकादेशो भवति सहिताया विषये । (आट के पश्चात् अच के परे रहन पर पूर्व और पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है सहिता के विषय में)

उदा०—ऐवत । ऐवेताम् । ऐवन्त । ऐवथाः । ऐवेथाम् । ऐवध्वम् ।
ऐधे । ऐधायहि । ऐधामहि ।

सि०—एध । एध् णिङ् । एध् ल् । एध् त् । एध् शप् त् । एध् अ
त । एवत । आट् एवत । आ एवत । ऐवत ।

आट् ग्रहणेन याटोऽपि ग्रहणं भवति तेन 'कुमार या ए' इत्यन्यथा-
यामनेन वृद्धिर्भवति कुमार्यै ।

श्रोतोऽम्शसोः ६।१।६०

प० वि०—आ १।१ श्रोतः १।१ अम्शसोः ७।२ म०—अम् प
शश्चेति अम्शसो नयोः अम्शसोः ।

अर्थ—श्रोकारादमि शमि च परतः पूर्वपरयोः स्थाने आकारादेशो
भवति । (श्रीकार के पदवान् अम् श्रीर एगु के परे रहने पर पूर्व पर के स्थान
में आकारादेश होता है)

उदा०—गा परय । गाः पश्य । गां परय, गा पश्य ।

सि०—गो अम् । गा अम् । गाम् । गो शम्, गो अम् । गा अम् ।
गाम् । गारु । गार् । गाः ।

एटि [पररूपम्] ६।१।६१

उत्स्यपदान्तात् ६।१।६३

प० वि०—उसि ७।१ अपदान्तान् १।१ म०—उत्स्य अन्तः पदान्तः
तस्मान् पदान्तान् ।

अर्थ—[आन् पररूपम्] अयमाक्षपदान्तादमि पूर्वपरयोः स्थाने
पररूपमेकादेशो भवति । (अक्षान् अकार के पदवान् उम् के परे रहने पर
श्रीर पर के स्थान में पररूप एकादेश होता है)

उदा०—भिन्त्यः । भिन्नुः । अमान् । अगात्तम् । अगुः ।
अगाः । अगातम् । अगान् । अगाम् । अगाव । अगाम ।

सि०—भिद्रि । भिद्रिङ् । भिद्रि ल् । भिद्रि णि । भिद्रि तुम् ।
भिद्रि उत् । भिद्रि अम् । भिद्रि उत् । भिद्रि उत् । भिद्रि उत् ।
भिद्रि यामुत् उत् । भिद्रि याम् उत् । भिद्रि याम् उत् । भिद्रि याम् उत् ।
इत्ययं माधन गान्ध्यापुत्राभ्याः सितः परम्परेषु इत्यत्र इष्टम् ।

अतो गुणे ६।१।६४

प० वि०—अतः १।१ गुणे ७।१

अर्थ—[अपदान्तान् पररूपम्] अपदान्तादकाराद् गुणे परतः पूर्व-परयोः स्थाने पररूपमेकादेशो भवति । (अपदान्त अकार के पश्चात् गुण के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान में पररूप एकादेश होता है)

उदा०—पचन्ति । यजन्ति ।

सि०—अदेङ्गुणः इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

अकः सवर्णो दीर्घः ६।१।६७

प० वि०—अकः ५।१ सवर्णो ७।१ दीर्घः १।१

अर्थ—[अचि] अकः उत्तरस्य सवर्णो अचि परतः पूर्वपरयोः स्थाने दीर्घ एकादेशो भवति । (अक् के पश्चात् सवर्ण अच् के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान में दीर्घ एकादेश होता है)

उदा०—दण्ड-अप्रम्, दण्डाप्रम् । दधि-इन्द्रः, दधीन्द्रः । मधु-उदके, मधूदके । होतु-अश्वयः, होतुश्वयः ।

प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ६।१।६८

प० वि०—प्रथमयोः ७।१ पूर्वसवर्णः १।१ स०—प्रथमा च प्रथमा च इति प्रथमे तयोः । पूर्वस्य सवर्णः इति पूर्वसवर्णः (पृष्ठी तत्पु०)

अर्थ—[अकः दीर्घः अचि] ॐ प्रथमाशब्दो विभक्तिविशेषे रूढस्तरसाहचर्यान् द्वितीयापि प्रथमेत्युक्ता ॐ प्रथमायां द्वितीयायां च विभक्तावचि अक उत्तरस्य पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशो भवति । (अक् के पश्चात् प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के अच् के परे रहने पर पूर्व पर के स्थान में पूर्व सवर्ण दीर्घ एकादेश होता है)

उदा०—अग्नी । वायू । वृक्षाः । प्लक्षाः । वृक्षान् । प्लक्षान् ।

सि०—अग्नि औ । अग्नी । वृक्ष जस् । वृक्ष अस् । वृक्षाः । वृक्ष शस् । वृक्ष अस् । वृक्षास् । वृक्षान् ।

तस्माच्छसो नः पुंसि ६।१।६९

प० वि०—तस्मात् ५।१ शसः ६।१ नः १।१ पुंसि ७।१

अर्थ—[पूर्वसवर्णः दीर्घः] तस्मात् पूर्वसवर्णदीर्घादुत्तरस्य शसो न इत्ययमादेशो भवति पुंसि । (उस पूर्वसवर्ण दीर्घ के पश्चात् शस् के स्थान में नकार आदेश होता है पुल्लिङ्ग में)

उदा०—वृक्षान्, पुरुषान्, यान्, तान् ।

सि०—अलोऽन्त्यस्य इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

नादिचि ६।१।१००

प० वि०—न अ० । आत् ५।१ इचि ७।१

अर्थ—अवर्णादिचि यदुक्तं तन्न भवति । पूर्वसवर्णदीर्घो न भवतीत्यर्थः । (अवर्ण के पश्चात् इच् प्रत्याहार के पर रहने पर पूर्व सवर्ण दीर्घ नहीं होता है)

उदा०—रामो । तौ । यौ । खट्वे । कुण्डे ।

सि०—राम औ । रामौ । ॐअत्रप्रकरणे इदं बोध्यम्—राम औ इति स्थिते वृद्धिरेचि इति सूत्रेण वृद्धि-एकादेशो प्राप्ते प्रथमयोः पूर्वसवर्ण इत्यस्य सूत्रस्य तदपवादत्वात् प्रवृत्तिः, तस्यापि निषेधः नादिचि इति सूत्रेण । पुनः वृद्धिरेचि इत्यनेनैव सूत्रेण वृद्धिरेकादेशो भवति । ॐ

दीर्घाज्जसि च ६।१।१०१

प० वि०—दीर्घात् ५।१ जसि ७।१ च अ० ।

अर्थ—[इचि] दीर्घाज्जसि इचि च परतः पूर्वसवर्णदीर्घो न भवति । (दीर्घ के पश्चात् जम् घोर इच् के परे रहने पर पूर्व पर के स्थान में पूर्व सवर्ण दीर्घ एकादेश नहीं होता है)

उदा०—कुमार्यः । कुमार्यौ । ब्रह्मवन्धू । ब्रह्मवन्ध्वः ।

सि०—कुमारी जस् । कुमारी अस् । कुमार्यः । कुमारी औ । कुमार्यौ । ब्रह्मवन्धू जस् । ब्रह्मवन्ध्वः । ब्रह्मवन्ध्व औ । ब्रह्मवन्ध्वौ ।

वा छन्दसि ६।१।१०२

प० वि०—वा अ० । छन्दसि ७।१

अर्थ—[दीर्घाज्जसि च] दीर्घाच्छन्दसि विषये जसि इचि च परतः वा पूर्वसवर्णदीर्घो न भवति । (दीर्घ के पश्चात् छन्द के विषय में जम् घोर इच् के परे रहने पर विस्मय से पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होता है)

अमि पूर्वः ६।१।१०३

प० वि०—अमि ७।१ पूर्वः १।१

अर्थ—[अकः] अक उत्तरस्य अमि परतः पूर्वपरयोः स्थाने पूर्व एकादेशो भवति । (अक के पश्चात् अम् के परे रहने पर पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होता है)

उदा०—रामम् । अग्निम् । वायुम् ।

सि०—राम अम् । रामम् ।

सम्प्रसारणाच्च ६।१।१०४

प० वि०—सम्प्रसारणात् ५।१ च अ० ।

अर्थ—[पूर्वः अचि] सम्प्रसारणादचि परत पूर्वपरयोः स्थाने पूर्व एकादेशो भवति । (सम्प्रसारण के पश्चात् अच् के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होता है)

उदा०—उक्तम् । साधन सम्प्रसारणसंज्ञासूत्रे द्रष्टव्यम् ।

एङः पदान्तादति ६।१।१०५

प० वि०—एङः ५।१ पदान्तात् ५।१ अति ७।१

अर्थ—[पूर्वः] पदान्तादेङेऽति परत. पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वरूप-मेकादेशो भवति । (पदान्त एङ के पश्चात् अकार के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान में पूर्व रूप एकादेश होता है)

उदा०—वायोऽत्र । अग्नेऽत्र ।

सि०—वायु सु । वायो म । वायो अत्र । वायोऽत्र ।

डसिडसोश्च ६।१।१०६

प० वि०—डसिडसो. ६।२ च अ० । स०—डसिश्च डश्चेति डसि-डसौ तयो ।

अर्थ—[एङः अति] एङ. उत्तरयोर्डसिडसोरति परतः पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वरूपमेकादेशो भवति । (एङ के पश्चात् डमि और डस् के अकार के परे रहने पर पूर्व पर के स्थान में पूर्व रूप एकादेश होता है)

उदा०—वायोः । अग्नेः ।

सि०—वायु डसि । वायु अस् । वायो^१ अस् । वायोस् । वायोः ।

ऋत उत् ६।१।१०७

प० वि०—ऋतः ५।१ उत् १।१

अर्थ—[डसिडसोरति] ऋकारान्तादुत्तरयोर्डसिडसोरति परतः पूर्वपरयोरुकार एकादेशो भवति । (ऋकारान्त के पश्चात् डसि और डस् के अकार के परे रहने पर पूर्व पर के स्थान में उकार एकादेश होता है)

उदा०—पितुरामच्छति । पितुरयं वेदः ।

सि०—पितृ ङसि । पितृ अस् । पित् उर् स् । पितुर स् । पितुर् स् । पितुः ।

ख्यत्यात्परस्य ६।१।१०८

प० वि०—ख्यत्यान् ५।१ परस्य ६।१ स०—ख्यश्च त्यश्च इति ख्यस्यं तस्मात् ख्यत्यात् ।

अर्थ—[ङसिङ्सोरति उत्] ख्य् त्य् इत्येतान्यां परस्य ङसिङ्सो-
रतः स्थाने उकारादेशो भवति । (ख्य् और त्य् के पश्चात् ङसि और ङस् के
प्रकार के स्थान में उकार आदेश होता है)

उदा०—सख्युरामच्छति । सख्युरयं वेदः । पत्युरामच्छति । पत्यु-
रयं वेदः ।

सि०—सखि ङसि । सखि अस् । सख्य् अस् । सख्य् उर् स् ।
सख्युर स् । सख्युः । पति ङसि । पति अस् । पत्य् अस् । पत्य् उर्
स् । पत्युर स् । पत्युर् । पत्युः ।

अतो रोरप्लुतादप्लुते ६।१।१०९

प० वि०—अतः ५।१ रोः ६।१ अप्लुतात् ५।१ अप्लुते ७।१
स०—न प्लुतः तस्मात् ।

अर्थ—[उन् अति] अप्लुतादकारादुत्तरस्य अप्लुतेऽति परतः रो
रेफस्य उकारादेशो भवति । (अप्लुत प्रकार के पश्चात् अप्लुत प्रकार के परे
रहने पर र के रेफ के स्थान में उकार आदेश होता है)

उदा०—वृक्षोऽत्र । प्लक्षोऽत्र ।

सि०—वृक्ष उ अत्र । वृक्ष उ अत्र । वृक्षो अत्र । वृक्षोऽत्र ।

ऋक्ष्यम् अस्य आश्रयत्वात् पूर्वत्रासिद्धम् इत्यसिद्धं न भवति ।

हशि च ६।१।११०

प० वि०—हशि ७।१ च अ० ।

अर्थ—[अतो रोः] हशि च परतः अत उत्तरस्य रोरकारादेशो
भवति । (हन् के परे रहने पर अकारके पश्चात् र के रेफ के स्थान में
उकार आदेश होता है)

उदा०—पुरुषो हसति । पुरुषो याति ।

सि०—पुरुषर् हसति । पुरुष उ हसति । पुरुषो हसति ।

प्रकृतिभावप्रकरणम्

प्रकृत्यान्तः पादमव्यपरे ६।१।१११

प० वि०—प्रकृत्या ३।१ अन्तःपादम् ७।१ अव्यपरे ७।१ स०—पादस्य अन्तः [मध्ये] इति अन्तः पादम् (विभक्त्यर्थे अव्ययीभावः) अव्य-यादाप्सुप इति डेलुकि प्राप्ते तृतीयासप्तम्योर्वहुलम् इति डेरम्भावः) अविद्यमानौ वकारयकारौ परौ यस्येति अव्यपरम् तस्मिन् ।

अर्थ—! पादमध्यस्थे अवकारयकारपरेऽति परतः एङ् प्रकृत्या भवति ।

(पाद के मध्य में वर्तमान अकार के परे रहने पर एङ् प्रकृतिभाव से रहता है, यदि अकार से परे य, व न हो)

उदा०—ते अग्रे अश्वमायुञ्जन् । ते अस्मिन् यवमादधुः । अव्यपरे इति किम्-तेऽवदन् । तेऽयस्मयम् ।

सर्वत्र विभाषा गोः ६।१।११८

प० वि०—सर्वत्र १।१ यद्वा अव्ययपदम् । विभाषा १।१ गोः ६।१

अर्थ—[एङोऽति] सर्वत्र यजुपि भाषायां च अति परतो गोरेङ् प्रकृत्या भवति विभाषा (सर्वत्र अर्थात् यजुः या भाषा में गो शब्द का एङ् अकार के परे रहने पर विकल्प करके प्रकृति से रह जाता है)

उदा०—गोऽग्रम् । गो अग्रम् ।

अवङ् स्फोटायनस्य ६।१।११९

प० वि०—अवङ् १।१ स्फोटायनस्य ६।१

अर्थ—[गोः अचि विभाषा] अचि परतो गोः स्फोटायनाचार्यस्य मतेनावहादेशो भवति विभाषा । (अच के परे रहने पर स्फोटायनाचार्य के मत से गो शब्द का अवङ् आदेश होता है विकल्प से)

उदा०—गवामग्रम् गोऽग्रम्, गवाजिनम्, गोऽजिनम् ।

! अत्र सर्वेऽपि वृत्तिकृतः पादशब्देन ऋणपादस्यैव ग्रहणमाहुः केचन तदर्थं 'वाङ्छन्दसि' इत्यतः छन्दसीत्यनुवर्तयन्ति । यद्यप्ययं नियमो वैदिकभुं प्रायेण दृश्यते तथापि क्वचित् महाभारतादावपि नियमस्थोपलम्भात् सूत्रकृता च 'ऋचि छन्दसि' इत्यादिपदस्यानुवर्तत्वात् सामान्यविषयोऽयं द्रष्टव्यः इति भीमासक्ताः ।

॥ उपरिष्ठाद् (६।१।११३) 'यजुपि' इत्यनुवर्तते तन्निवृत्त्यर्थं सर्वत्रग्रहणम्

इन्द्रे च ६।१।१२०

प० वि०—इन्द्रे ७।१ च अ० ।

अर्थ—इन्द्रशब्दस्याचि परतो गोरवडादेशो भवति । (इन्द्र शब्द के अच क परे रहन पर गो शब्द का अवङ् आदेश होता है)

उदा०—गो इन्द्र० । गवेन्द्र० ।

प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ६।१।१२१

प० वि०—प्लुतप्रगृह्या १।३ अचि ७।१ नित्यम् १।१ स०—प्लुतारच प्रगृह्यारचेति प्लुतप्रगृह्या ।

अर्थ—[प्रकृत्या] प्लुतारच प्रगृह्यारचाचि नित्य प्रकृत्या भवन्ति ।

प्लुत और प्रगृह्य अच् के परे रहन पर नित्य ही प्रकृति भाव से रहते हैं)

उदा०—देवदत्ता ३ अत्र न्वसि । प्रगृह्या—अग्नी इति । यायू इति ।

आडोऽनुनासिकश्छन्दसि बहुलम् ६।१।१२२

प० वि०—आड ६।१ अनुनासिक १।१ छन्दसि ७।१ बहुलम् १।१

अर्थ—[अचि प्रकृत्या] आडोऽचि परत संहिताया छन्दसि विषयेऽनुनासिकादेशो बहुल भवति, स च प्रकृत्या भवति । (अच क परे रहन पर संहिता क विषय में छन्द में आड को अनुनासिक आदेश बहुल करने होता है और वह प्रकृतिभाव से रहता है)

उदा०—अभ्र औं अप । गभीर औं उग्रपुरे जिघासत । बहुलं किम्—

दिव उत् ६।१।१२७

अर्थ—[पठान्तात्] दिव पदस्य उकारादेशो भवति । (दिव पद का उकारादेश होता है)

उदा०—त्रिवि कामो यस्येति शुक्लम् । शुभ्याम् । य मि ।

एतत्तदोः सुलोपोऽङ्कोरनञ्समासे हलि ६।१।१२८

प० वि०—एतत्तदो ६।२ सुलोप १।१ अङ्को ६।२ अनञ्समासे ७।१ हलि ७।१ स०—एतच्च तच्चेति एतत्तदौ तयो एतत्तदो । सोर्लोप इति सुलोप । न विद्यते क० ययो तौ (अक्+औ) अकौ तयो अङ्को ।

। महाभाष्यानुसारी पाठाज्यम् । अन्ये तु बहुलं न पठन्ति ।

॥—बहुलवचनात् अवचिन्त भवति—इदो बाहुल्याभावात् (आ+अत्तरत्) अवचिद् आडोऽन्यत्राप्यनुनासिका भवति । यथा—सवित० सवाम्ये एषा (अ० १ । १।१ । १) २—अत्राचार उच्चारणार्थं । अयथा “अययो” इति स्यात् ।

नञः समासः नञ्समासः । (प० तत्पु०) न नञ्समासः इति अनञ्-
समासः (नञ् तत्पु०) तस्मिन् अनञ्समासे ।

अर्थ—अनञ्समासे वर्तमानयोरककारयोरित्तदोः सुलोपो भवति
हलि परतः संहितायां विषये ।

(नञ् समास में वर्तमान नहीं हो, ऐसा जो ककार रहित एतद् और तद्
शब्द उसके सु का लोप होता है हल् के परे रहने पर संहिता के विषय में)

उदा०—एष ददाति । स ददाति ।

सि०—एतद् सु । एत अ० सु । एत सु । एस० स् । एष० ददाति ।
एष ददाति । तद् सु । त अ० सु । त सु । स० सु । स सु ददाति । स
ददाति ॥

सुडागमप्रकरणम्

सुट् कात्पूर्व ६।१।१३१

प० व०—सुट् १।१ कात् १।१ पूर्वः १।१

अर्थ—ककारात् पूर्वः सुडागमो भवति इति पारस्करप्रभृतीनि च
संज्ञायाम् इति यावत् अधिकारो वेदितव्यः । (ककार के पूर्व सुट् का
भाग्न होता है, पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम् सूत्र तक इस बात का अधिकार
समझना चाहिए)

संपरिभ्यां करोती भूपणो ६।१।१३२

प० वि०—संपरिभ्यां १।२ करोती ७।१ भूपणो ७।१ स०—सं च
परिश्च इति संपरी, ताभ्याम् ।

अर्थ—सं परि इत्येताभ्यां भूपाण्यर्थे करोती परतः सुट् कात् पूर्वो
भवति । (स और परि के पश्चात् भूपण अर्थ में वर्तमान ■ धातु को ककार के
पूर्व सुट् का भाग्न होता है)

उदा०—संस्कृता । संस्कृत्म् । संस्कृत्वम् । परिष्कृता । परिष्क-
ृत्म् । परिष्कृत्वम् ।

सि०—सं कर्ता । सं सुट् कर्ता । संस्कृता ।

१—त्यदादीनामः (७. २. १०२) अलोऽन्त्यस्य (१. १. ५१) २—तदोः
सः सावनन्त्ययोः (७. २. १०६) ३—आदेशप्रत्यययोः (८. ३. ५६)

स्वरप्रकरणम्

अनुदात्त पदमेकवर्जम् ६।१।१५२

प० वि०—अनुदात्तम् १।१ पदम् १।१ एकवर्जम् १।१

अर्थ—एकवर्जं पदं सर्वमनुदात्तं भवति । (एक को छोड़कर सारा पद अनुदात्त होता है)

अत्रेदं बोध्यम्—यत्र क्वचिदपि केनापि सूत्रेण उदात्त स्वरितो वा निधीयते, तमेव उदात्त स्वरित वा स्वरं वर्जयित्वा अन्यत्सर्वमनुदात्तं भवतीत्यर्थः । अपि चात्र मुप्तिङन्तं पदमिति पारिभाषिक पदं न ग्राह्यम्, धात्वादायस्य सूत्रस्य अप्रवृत्तेः । अत एव पद्यते गम्यते अर्थो येन तत्पदम् । तत एव प्रकृतिप्रत्यययोगमादिषु विगृहीतेष्वपि स्वरयिवि सिध्यति । (जहाँ कहीं भी किसी मूल से भी उदात्त या स्वरित का विधान किया जाता है, उसी उदात्त या स्वरित को छोड़कर शेष पद सारा अनुदात्त होता है । यहाँ यह भी जानने योग्य बात है कि मुप्तिङन्त पदम्' इस मूल में जो पद सज्ञा की जाती है उस पारिभाषिक पद सज्ञा का यहाँ ग्रहण नहीं होता है क्योंकि यदि उस पद का ग्रहण हो तो धातु इत्यादि में उदात्त या स्वरित स्वर का विधान होने पर शेष में अनुदात्त स्वर की प्रवृत्ति ही नहीं होगी, क्योंकि केवल धातु (प्रकृति) या केवल प्रत्यय की पद सज्ञा ही नहीं होनी । इसलिये जिससे अर्थ का ज्ञान हो उसकी पद कहते हैं । ऐसा करने में धातु प्रत्यय आगम इत्यादि को असंग्रहण उदात्त या स्वरित स्वर सिद्ध हो जाता है, यह परिभाषा मूल है)

उदा०—कर्त्तव्यम् । गोपायति । अत्रेदं बोध्यम्—सतिशिष्टः स्वरो वलीयान् । उत्तरोत्तर स्वरो वलीयान् भवतीत्यर्थः यथा कर्त्तव्यम् इत्यत्र घातोरित्यनेन सूत्रेण (६१. १५६) कृ धातोरन्तोदात्तो भवति । ततस्तद्व्यक्त्यानीयरः इत्यनेन सूत्रेण तद्व्यप्रत्ययः । सोऽप्याद्युदात्तो भवति । केन प्रकारेण भवेत् स्वरव्यवस्था इत्यस्ति अत्र विचारणा । सतिशिष्टः स्वरो वलीयान् इति नियमान् सतिशिष्टत्वान् प्रत्ययस्वरो भवति । अतएव आगुदात्तश्च इत्यनेन प्रत्ययस्य आगुदात्तत्वं भवति । तथा च सति कर्त्तव्यम् इत्यत्र तत्तरोत्तरवर्ती अकार एव उदात्तो भवति । एवं सर्वत्र

(यहाँ पर ज्ञातव्य है—जो जा स्वर आगे आता जायेगा वही वलीयान् होता जायेगा । जैसे कर्त्तव्यम् यहाँ पर धातोः (६१. १५६) इस मूल में कृ धातु अन्तोदात्त होता है । उसके पश्चात् तद्व्य प्रत्यय आता है । अब वह आद्युदात्त

होता है। यद्वा पर किस प्रकार से स्वर की व्यवस्था हो यही विचार उपस्थित है। अब इस स्थिति में आगे आगे आने वाला स्वर बलवान् होता है इस नियम से प्रत्यय का ही स्वर होगा। अब आद्युदात्तश्च इस सूत्र से त में अकार आद्युदात्त हुआ)

ॐ विरुणस्वरस्तु सतिशिष्टोऽपि सार्वधातुकस्वरं न बाधते ॐ लुनीत इति तस एव स्वरो भवति ।

अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः ६।१।१५५

प० वि०—अनुदात्तस्य ६।१ च अ० । यत्र अ० । उदात्तलोपः १।१ स०—उदात्तस्य लोपः उदात्तलोपः ।

अर्थ—[उदात्तः] यत्र यस्मिन्ननुदात्ते परत उदात्तस्य लोपो भवति तस्यानुदात्तस्यादिरुदातो भवति । (जिस अनुदात्त के पगे रहने पर उदात्त का लोप होता है उस अनुदात्त का आद्युदात्त होता है)

उदा०—कुमारी । कुमार इ, कुमारी । कुमारशब्दोऽन्तोदात्तस्तस्य ङीप्पनुदात्तो उदात्तो लुप्यते । अनुदात्तो ङीव् उदात्तः ।

धातोः ६।१।१५६

प० वि०—धातो ६।१

अर्थ—[कर्पात्वतो घञोऽन्त उदात्तः ६।१।१५३ इत्यतः अन्त इत्यनुवर्त्तते] धातोर्न्तोदात्तो भवति । (धातु अन्तोदात्त होता है)

उदा०—पचति । पठति । गोपायति ।

चितः ६।१।१५७

प० वि०—चितः ६।१ स०—चकार इदृयस्येति चित् तस्य चितः ।

अर्थ—[अन्तः] चितोऽन्तोदात्तो भवति । (चकार इत्वाला प्रत्यय अन्तोदात्त होता है)

उदा०—भञ्जभासमिदो घुरच । भङ्गुर्म् । भासुरम् । मेदुरम् ।

तद्धितस्य ४।१।१५८

अर्थ—[अन्तः चितः] तद्धितस्य चितोऽन्तोदात्तो भवति । (चकार इत्वाला तद्धित अन्तोदात्त होता है)

उदा०—गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ् । कौञ्जायनाः ।

कितः ६।१।१५९

प० वि०—कितः ६।१ ककार इत् यस्येति कित् तस्य कितः ।

अर्थ—[तद्धितस्य अन्तः] तद्धितस्य क्तः अन्तोदात्तो भवति ।
(ककार इत्वात् तद्धित अन्तोदात्त होता है)

उदा०—नडादिभ्यः फृ । नाडायनः । चारायणः ।

तित्स्वरितम् ६।१।१७०

प० वि०—तित् १।१ स्वरितम् १।१ स०—तकार इत् यस्येति तित् ।

अर्थ—तित्स्वरितं भवति । (तकार इत् वाना स्वरित होता है)

उदा०—सन्नन्ताद्यत् । चिकीर्ष्यम् । जिहीर्ष्यम् । ऋहलोर्ष्यत् ।

हार्यम् ॥

भीह्लीभृहुमदजनवनदरिद्राजागरा

[प्रत्ययात्पूर्वं] पिति ६।१।१८६

लिति ६।१।१८७

प० वि०—लिति ७।१

अर्थ—[प्रत्ययात्पूर्वं] लिति प्रत्ययात्पूर्वमुदात्त भवति ।

(लकार इत्वात् प्रत्यय के परे रहने पर पूर्व को उदात्त होता है)

उदा०—चिकीर्षकः । जिहीर्षकः ॥

ञ्जित्यादिनित्यम् ६।१।१९१

प० वि०—ञ्जिति ७।१ आदिः १।१ नित्यम् १।१ स०—नश्च नञ्येति ङ्नी । इच्च इच्चेति इतो । ङ्नी इतो यस्येति ङ्जित् तस्मिन् ङ्जिति ।

अर्थ—ञिति निति च नित्यमादिस्तात्तो भवति । (नकार घोर नकार इत् पाजे प्रत्यय के परे रहने पर नित्य आदि उदात्त होता है)

उदा०—गार्ग्यः । शात्म्यः । धामुदेवानुनाम्नां वुन् । धामुदेयनः । अर्जुनकः ।

आमन्त्रितस्य च ६।१।१९२

अर्थ—आमन्त्रितस्यादिस्तात्तो भवति । (आमन्त्रित वा आदि उदात्त होता है)

उदा०—देवदत्तः । देवदत्तो । देवदत्ताः ॥

उपोत्तम रिति ६।१।२११

प० वि०—उपोत्तमम् १।१ रिति ७।१ स०—रेफ इत् यस्येति तित् तस्मिन् रिति ।

अर्थ—रिदन्तस्योपोत्तममुदात्त भवति । (रफ है इत् जिसका ऐसे तदन्त का उपोत्तम उदात्त होता है)

उदा०—त्रिप्रभृतीनामन्यमुत्तमम् । तस्य समीपमपोत्तमम् । तन्न्यत्त-
व्यानीयर । करणीयम् । हरणीयम् । इत्यत्र शेरिकार उदात्तो भवति ।

समासस्य ६।१।२।१७

प० वि०—समासस्य ६।१

अर्थ—समासस्यान्तोदात्तो भवति । (समास का अन्तोदात्त होता है)

उदा०—राजपुरुष । ब्राह्मणकन्वल । ब्राह्मणसमित् । स्वरविधौ
व्यञ्जनतमविद्यमानवदिति ह्यन्तेऽप्यन्तोदात्तत्वं भवति ।

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया षष्ठाध्याये प्रथम पाद

अलुक्प्रकरणम्

अलुगुत्तरपदे ६।३।१

प० वि०—अलुक् १।१ उत्तरपदे ७।१ स०—न लुक् अलुक् । उत्तरं
च तत् पदं च इति उत्तरपदं तस्मिन् उत्तरपदे ॥

अर्थ—अलुगिति प्रागानङ्, उत्तरपदे इति प्रागङ्गस्य अधिकारो
वेदितव्य । (अलुक् इस पद का आनङ् कृतो ढङ् इस सूत्र तक तथा उत्तरपद
इस पद का अङ्गस्य इस सूत्र तक अधिकार समझना चाहिये)

पञ्चम्या स्तोकादिभ्य ६।३।२

प० वि०—पञ्चम्या ६।१ स्तोकादिभ्य ५।३ स०—स्तोकमादि
येषां ते स्तोकादयः तेभ्यः ।

अर्थ—स्तोकादिभ्य उत्तरस्य पञ्चम्या अलुगभवति उत्तरपदे
परतः । (स्तोक इत्यादि शब्दों के पदवात् पञ्चमी का अलुक् होता है उत्तरपद
के परे रहने पर)

उदा०—स्तोकान्मुक्तः । अन्यान्मुक्तः । अन्तिरादागतः । अभ्या-
शाद्भागतः । दूरादागतः । विप्रवृष्टान्मुक्तः । वृच्छान्मुक्तः ।

ओजसहोम्भस्तमसस्तृतीयाया ६।३।३

प० वि०—ओजसहोम्भस्तमस ५।१ तृतीयाया ६।१ स०—
ओजस्य सहस्य अम्भस्य तमस्येति ओजसहोम्भस्तम तस्मात् ओज
सहोम्भस्तमस

अथ—ओजस् सहस् अम्मस् तमस् इत्येतेभ्य उत्तरन्यास्तृतीयाया
अलुक् भवति उत्तरपदे परतः । (ओजस् सहस् अम्मस् तमस् इत शब्दों के
परवान् तृतीया का अलुक् होता है उत्तरपद के परे रहने पर)

उदा०—ओजसाकृतम् । सहसाकृतम् । अम्मसाकृतम् । तमसा-
कृतम् ।

[आत्मनश्च] ६।३।६

वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः ६।३।७

प० वि०—वैयाकरणाख्यायाम् ७।१ चतुर्थ्याः ६।१ म०—वैयाकर-
णस्य आग्या (मंज्ञा) वैयाकरणाग्या तस्याम् ।

अर्थ—[आत्मनः] वैयाकरणस्य आग्यायां वर्तमानायाम् आत्मनः
चतुर्थ्या अलुक् भवति उत्तरपदे परतः । (वैयाकरण की मज्ञा में वर्तमान
आत्मन् शब्द के चतुर्थी का अलुक् होता है, उत्तरपद के परे रहने पर)

उदा०—आत्मनेपदम् । आत्मनेभाषा ।

परस्य च ६।३।८

प० वि०—परस्य ६।१ च अ० ।

अर्थ—[वैयाकरणाग्यायां चतुर्थ्याः] वैयाकरणाग्यायां वर्तमानायां
परस्य चतुर्थ्याः अलुग्भवति उत्तरपदे परतः । (वैयाकरण की आग्या में
वर्तमान पर शब्द की चतुर्थी का अलुक् होता है उत्तरपद के परे रहने पर)

उदा०—परस्मैपदम् । परस्मैभाषा ।

हलदन्तात् सप्तम्याः मंज्ञायाम् ६।३।९

प० वि०—हलदन्तान् ५।१ सप्तम्याः ६।१ मंज्ञायाम् ७।१ म०—
हल् च अच्च इति हलतो । अन्तश्च अन्तश्चेति अन्तो । हलतो अन्तो
यस्येति हलदन्तम् तस्मान् हलदन्तान् ।

अर्थ—हलन्ताद्दन्ताच्चोत्तरम्याः सप्तम्याः मंज्ञायामलुग् भवति
उत्तरपदे परतः । (हलन्त और अकारान्त के परे मज्ञा के सम्प्रदान होने पर
सप्तमी का अलुक् होता है, उत्तरपद के परे रहने पर)

उदा०—युधि स्थिरः इति युधिष्ठिरः । गविष्ठिरः । अदन्तान्—
अरथ्येतिनका । अरथ्येभाषा ॥

प्रावृट्शरत्कालदिव्या जे ६।३।१५

प० वि०—प्रावृट्शरत्कालदिव्याम् ६।३ जे ७।१ म०—प्रावृट् च

शरच्च कालश्च द्यौश्चेति प्रावृट्शरत्कालद्याव तेषाम् प्रावृट्शरत्काल-
दिवाम् ।

अर्थ—[सप्तम्या] प्रावृट् शरत् काल दिव इत्येतेषां सप्तम्या अलु-
ग्भवति जशब्दे उत्तरपदे परत । (प्रावृट्, शरत् काल और दिव शब्द की
सप्तमी का अलुक् होता है जशब्द के उत्तरपद में पर रहन पर)

उदा०—प्रावृषिज । शरदिज । कालेज । दिविज ।

घकालतनेषु कालनाम्न ६।३।१७

प० वि०—घकालतनेषु ७।३ कालनाम्न ५।१ स०—घश्च कालश्च
तन चेति घकालतनानि तेषु घकालतनेषु । कालस्य नाम कालनाम
तस्मात् कालनाम्न ।

अर्थ—[विभाषा वर्षत्तरशरवरान् इत्यन विभाषा अनुवर्तते]
घसङ्गके प्रत्यये कालशब्दे तनप्रत्यये च उत्तरपदे परत कालनाम्न-
उत्तरस्या सप्तम्या विभाषा अलुग्भवति । (घ सज्ञा वाले प्रत्यय काल शब्द
और तन प्रत्यय के उत्तरपद के पर रहन पर कालवाची शब्द के पश्चात्
सप्तमी का विकल्प से अलुक् होता है)

उदा०—घ—पूर्वाह्नेतर । पूर्वाह्नेतर । पूर्वाह्नेतम । पूर्वाह्नेतम ।
काल- पूर्वाह्नेकाल । पूर्वाह्नेकाल । तन- पूर्वाह्नेतन । पूर्वाह्नेतन ।

आनङ् ऋतो द्वन्द्वे ६।३।२५

प० वि०—आनङ् १।१ ऋत ६।१ द्वन्द्वे ७।१

अर्थ—ऋकारान्नाना द्वन्द्वे समासे उत्तरपदे परत आनङ् आदेशो
भवति [पूर्वपत्स्य] । (ऋकारात्तो के द्व द्व समास में [पूर्वपद को] आनङ्
आदेश होता है उत्तरपद पर रहन पर)

उदा०—मातापितरौ

सि०—माता सु पिता सु । मातृ पितृ । मातृ आन् पितृ । मातापितृ ।
मातापितृ श्री । अग्नेः पूर्वपत् ।

पु वदभावप्रकरणम्

स्त्रिया पु वद्भाषितपु स्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियाम-
पूरणीप्रियादिषु ६।३।३४

प० वि०—स्त्रिया ६।१ पु वद् १।१ भाषितपु स्कात् ५।१ अनूङ् १।१
(पठ्यर्थे प्रथमति हरत्) समानाधिकरणे ७।१ स्त्रियाम् ७।१ अपूरणी-
प्रियादिषु ७।३ स०—भाषित पुमान् येन समानायामाहृती एकस्मि-

प्रवृत्तिनिमित्ते स भाषितपुंस्कः तस्मात् भाषितपुंस्कात् । समानमधिकरणं यस्य स समानाधिकरणं तस्मिन् समानाधिकरणे । पूरणी च प्रियादयश्चेति पूरणीप्रियादयः । न पूरणीप्रियादय इति अपूरणीप्रियादयः तेषु अपूरणीप्रियादिषु । ऊङोऽभावः अनूङ् तस्य अनूङ् (अनूङ् ङसोलुक्)

अर्थ—भाषितपुंस्काद् ऊङवर्जितायाः स्त्रियाः पुंषद् भवति स्त्रीलिङ्गे समानाधिकरणे उत्तरपदे पूरणीप्रियादिवर्जिते ।

ॐभाषितपुंस्कादनूङः स्त्रीशब्दस्य पुंशब्दस्य इय रूपं भवतीत्यर्थः ॐ

(एक ही भाकृति मर्यात् एक प्रवृत्ति निमित्त में कह दिया है पुल्लिङ्ग को जिस ने, ऐसे ऊङ् प्रत्ययान्त वजित स्त्रीलिङ्ग शब्द को पुल्लिङ्गवत् हो जाता है, स्त्रीलिङ्ग समानाधिकरण शब्द के उत्तर पद के परे रहने पर पूरणी और प्रियादिगण पठित शब्दों को उत्तर पद में छोड़कर)

उदा०—दर्शनीयभार्यः ।

सि०—दर्शनीया भार्या यस्य स दर्शनीयभार्यः । दर्शनीया तु भार्या सु । दर्शनीया^१ भार्या । दर्शनीय भार्या । दर्शनीयभार्य^२ सु । दर्शनीयभार्यः ।

तसिलादिप्वाकृत्वमुचः ६।३।३५

प० वि०—तमिलादिषु ७।३ आ अ० । कृत्वमुचः ५।१ स०—तसिल् आदिर्येषां ते तसिलादयः तेषु तसिलादिषु ।

अर्थ—[स्त्रियाः पुंषद्भाषितपुंस्कादनूङ्] कृत्वमुजिति एतस्मान् प्राक् तसिलादिषु प्रत्ययेषु परतो भाषितपुंस्कादनूङ्स्त्रियाः पुंषद् भवन्ति ।

(कृत्वमुच् प्रत्यय के पहले-पहले तसिल् इत्यादि प्रत्ययों के परे रहने पर कह दिया है पुल्लिङ्ग शब्द को जिस ने ऐसा ऊङ् प्रत्ययान्तवजित स्त्रीलिङ्ग शब्द पुल्लिङ्ग शब्दवत् हो जाते हैं)

उदा०—तस्याः शालायाः ततः । तस्यां शालायां तत्र । × भस्यादे तद्वित्ते पुंषद्भावो वक्तव्यः × हस्तिनीनां समूहः हस्तिनम् ।

पुंषत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु ६।३।४२

प० वि०—पुंषत् १।१ कर्मधारयजातीयदेशीयेषु ७।३ स०—कर्मधारयश्च जातोऽश्च देशीयश्च इति कर्मधारयजातीयदेशीयाः तेषु ।

अर्थ—[स्त्रियाः भाषितपुंस्कादनूङ्] कर्मधारये समामे उत्तरपदे

परतः जीतीये प्रत्यये देशीये प्रत्यये च भाषितपुंस्कादन्नुङ्प्रत्ययाः पुंवद् भवति । (कर्मधारय समाम में जातीय और देशीय प्रत्ययो के उत्तरपद में परे रहने पर कह दिया है पुल्लिङ्ग को जिसने ऐसा ऊङ् वञ्जित स्त्रीलिङ्ग शब्द पुल्लिङ्गवत् ही जाता है)

उदा०—कर्म—पाचकवृन्दारिका । पाचकजातीया । पाचकदेशीया ।

सि०—पाचिका^१ चासौ वृन्दारिका चेति विग्रहः । ईसद् असमाप्ता पाचिका इति पाचकजातीया, पाचकदेशीया ।

घरूपकल्पचलद्ब्रुवगोत्रमतहतपुङ्ग्वोनेकाचो ह्रस्व ६।३।४३

प० वि०—घ-रूप-कल्प-चेलट्-ब्रु-व-गोत्र-मत-हतपु ७।३ इयः ६।१ अनेकाचः ६।१ ह्रस्वः १।१

स०—घश्च रूप च कल्पश्च चेलट् च ब्रु घश्च गोत्रश्च मतश्च हतश्च इति घरूपकल्पचेलट्ब्रुवगोत्रमतहताः तेषु । एकश्चासौ अच्च इति एकाच् न एकाच् इति अनेकाच् तस्य अनेकाचः ।

अर्थ—[भाषितपुंस्मात्] घ-रूप-कल्प इत्येतेषु प्रत्ययेषु चेलट्-ब्रु-व गोत्र-मत-हत इत्येतेषु च उत्तरपदेषु परतो भाषितपुंस्काद् यो ङीप्रत्यय-स्तदन्तस्य अनेकाचो ह्रस्वो भवति । (घ रूप कल्प इन प्रत्ययो तथा चेलट्-ब्रु-व-गोत्र मत-हत इन शब्दों के उत्तरपद में परे रहने पर कह दिया है पुल्लिङ्ग को जिस ने ऐसे शब्द के पश्चात् जो ङी प्रत्यय तदन्त अनेकाच् को ह्रस्व होता है)

उदा०—ब्राह्मणितरा । ब्राह्मणितमा । ब्राह्मणिस्था । ब्राह्मणिकन्या । ब्राह्मणिचेली । ब्राह्मणिन्नुवा । ब्राह्मणिगोत्रा । ब्राह्मणिमता । ब्राह्मणिहता ।

नद्या शेषस्यान्यतरस्याम् ६।३।४४

प० वि०—नद्या. ६।१ शेषस्य ६।१ अन्यतरस्याम् अ० ।

अर्थ—[घ-रूप-कल्प-चेलट्-ब्रु-व-गोत्र मत-हतपु ह्रस्व.] शेषस्य घादिषु उत्तरपदेषु परतः नद्याः अन्यतरस्याम् ह्रस्वो भवति ।

ॐ कश्च शेषः । अङी च या नदी इत्यन्तं च यदेकाच् ॐ (पादि उत्तरपद के परे रहने पर शेष नदी को ह्रस्व होता है विग्रह परने)

उदा०—ब्रह्मन्धूतरा । ब्रह्मन्धुतरा । स्त्रिनरा । स्त्रीतरा । स्त्रितमा । स्त्रीतमा ।

उगितश्च ६।३।४५

प० वि०—उगितः ६।१ च अ० । स०—उक् इन् यस्येति उगित् तस्य ।

अर्थ—[नद्याः घादिषु अन्यतरस्यां ह्रस्वः] उगितश्च परस्य घादिषु अन्यतरस्यां ह्रस्वो भवति । (घादि उत्तरपद के परे रहने पर उगित् का विकल्प करके ह्रस्व होता है)

उदा०—श्रेयसितरा श्रेयसीतरा श्रेयस्तरा । श्रेयसितमा, श्रेयसीतमा श्रेयस्तमा । विदुपितरा विदुपीतरा विद्वत्तरा ।

आन्महतः समानाधिकरणजातीययो ६।३।४६

प० वि०—आत् १।१ महतः ६।१ समानाधिकरणजातीययोः ७।२

स०—समानाधिकरण च जातीयश्च इति समानाधिकरणजातीयौ तयोः ।

अर्थ—समानाधिकरण उत्तरपदे जातीये च प्रत्यये परतो महत आकारादेशो भवति । (समानाधिकरण उत्तरपद के परे रहने पर तथा जातीय प्रत्यय के परे रहने पर महत् शब्द का धाकार हो जाता है ।

उदा०—महान् चासौ देवश्च इति महादेवः । महात्राक्षणः । महाधाहुः । महाजातीयः ।

द्व्यष्टनः सख्यायामवहुग्रीह्यशीत्योः ६।३।४७

प० वि०—द्व्यष्टनः ६।१ सख्यायाम् ७।१ अवहुग्रीह्यशीत्योः ७।२

स०—द्विश्व' अष्टश्च' इति द्वि-अष्टन तस्य । न बहुग्रीहिः अष्टग्रीहिः । न शीतिः अशीतिः । अष्टग्रीहिश्च अशीतिश्चेति अष्टग्रीहि-अशीती तयोः अष्टग्रीह्यशीत्योः ।

अर्थ—[आत्] द्वि-अष्टन् इत्येतयोरासमादेशो भवति संख्याया-मुत्तरपदे परतः अष्टग्रीह्यशीत्योः ।

(द्वि और अष्टन् शब्द का आकार आदेश होता है मध्यवाची उत्तरपद के परे रहने पर बहुग्रीहि में और अशीतिशब्द के उत्तर पद में न परे रहने पर)

उदा०—द्वात्रिंशः । द्वाविंशतिः । द्वात्रिंशत् । अष्टादश । अष्टाविंशतिः । अष्टात्रिंशत् ।

❀ द्वाभ्यामधिका द्वादश इति समानाधिकरणाधिसरे शाकनार्थिवा-

दीनामुपसंख्यानमुत्तरपदलोपरचेलुत्तरपदलोपी (२. १. ६० वा०) तत्पुरुष-
समासः।॥

त्रैस्त्रयः ६।३।४८

प० वि०—त्रेः ६।१ त्रयः १।१

अर्थ—[संख्यायाम् अबहुव्रीह्यशीत्योः] त्रि इत्येतस्य त्रयस् इत्ययमा-
देशो भवति संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः ।

(त्रि शब्द के स्थान में त्रयस् यह आदेश हो जाता है संख्यावाची उत्तर-
पद के परे रहने पर, बहुव्रीहि समास में तथा अशीति शब्द के उत्तर पद में
परे रहने पर नहीं)

उदा०—त्रयोदश । त्रयोविंशतिः । त्रयस्त्रिंशत् ।

विभाषा चत्वारिंशत्प्रभृतौ सर्वेषाम् ६।३।४९

प० वि०—विभाषा १।१ चत्वारिंशत्प्रभृतौ ७।१ सर्वेषाम् ६।३ स०—
चत्वारिंशतः प्रभृतिः इति चत्वारिंशत्प्रभृतिः तस्याम् चत्वारिंशत्प्रभृतौ ।

अर्थ—[संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः सर्वेषां द्व्यष्टन् त्रि इत्येतेषां
यदुक्तं तद् विभाषा भवति ॥ (चत्वारिंशत् इत्यादि संख्यावाची शब्दों के
उत्तरपद में परे रहने पर सभी द्वि अष्टन् और त्रि शब्द को जो कुछ कहा गया
है, वह विरुद्ध से होता है, बहुव्रीहि समास तथा अशीति उत्तरपद के परे
रहने पर नहीं होता)

उदा०—द्विचत्वारिंशत् । द्वाचत्वारिंशत् । त्रिपञ्चाशत् । त्रयःपञ्चा-
शत् । अष्टपञ्चाशत् । अष्टापञ्चाशत् ।

हृदयस्य हल्लेखयदण् लासेषु ६।३।५०

प० वि०—हृदयस्य ६।१ हृत् १।१ लेखयदण् लासेषु ७।३ स०—
लेखश्च यच्च अण् च लासश्चेति लेखयद्अण्लासाः तेषु ॥

अर्थ—हृदयस्य हृद् इत्ययमादेशो भवति लेख यत् अण् लास इत्ये-
तेषु परतः । (हृदय शब्द के स्थान में हृत् यह आदेश होता है लेख, यत् अण्
और लास शब्द के परे रहने पर)

उदा०—हृदयं लिखतीति हल्लेखः । हृदयम् । हार्दम् । हल्लासः ।

सि०—हल्लेखः । हृदय लिख् अण् । हृदयाय हितम् हृद्यम्* ।
हृदयस्य इदम् हार्दम्* । हृदयस्य लासः । लसनं लासः । लस् घञ्*

१—कर्मण्यण् (३. २. १) २—घरीरावयवाद्यत् (५. १. ६) ३—
प्राग्दीप्यतोऽण् (४. १. ८३) तस्येदम् (४. ३. १२०) ४—मावे (३. ३. १८)

× कृद्योगा च पष्ठी समस्यते इति (राशान् वा०) ×

खित्यनव्ययस्य ६।३।६६

प० वि०—खिति ७।१ अनव्ययस्य ६।१ स०—ख् इत् यस्येति खित् तस्मिन् । न अव्ययम् इति अनव्ययम् तस्य अनव्ययस्य ।

अर्थ—[ह्रस्वः] खिदन्त उत्तरपदेऽनव्ययस्य ह्रस्वो भवति ।
(खिदन्त उत्तरपद के परे रहने पर अव्ययमिन्न का ह्रस्व होता है)

उदा० कालिमन्या । हरिणिमन्या ।

सि०—कालीमात्मानं मन्यते । हरिणीमात्मानं मन्यते इति विग्रहः ।
कालीम् मन् स्वश्^१ । कालीम् मन् श्यन् अ । कालीम् मन्य । काली मन्य ।
काली मन्य टाप् । काली मन्या । कालि मन्या । कालि मुम् मन्या ।
कालिमन्या ॥

मुमागमप्रकरणम्

अरुद्विपदजन्तस्य मुम् ६।३।६७

प० वि०—अरुद्विपदजन्तस्य ६।१ मुम् १।१ स०—अरुस् च द्विपत् च अजन्तश्च इति अरुद्विपदजन्तं तस्य ।

अर्थ—अरुम् द्विपत् इत्येतयोरजन्तानां चानव्ययानां खिदन्त उत्तर-
पदे मुमागमो भवति । (अरुम् द्विपत् गौर अव्ययमिन्न अजन्त को मुम्
का प्रागम होता है खिदन्त उत्तरपद के परे रहने पर)

उदा०—अरुत्तुदः । द्विपतपः । अजन्तस्य—कालिमन्या ।

सि०—अरुत्तुदतीति विग्रहः । अरुस् तुद् स्वश्^२ । अरुस् तुद् ख
अ । अरुस् तुद् अ अ । अरुम् तुद् । अरु मुम् स् तुद् । अरुस् तुद् ।
अरुम् तुद् । अरुं तुद् मु । अरुत्तुदः । द्विपन्तं तापयतीति विग्रहः ।
द्विपत् अम् तापि खच्^३ । द्विपत् अम् तपि^४ अ । द्विपत् अम् तप ।
द्विपत् तप । द्विप मुम् त तप । द्विपम् तप । द्विपम् तप । द्विपन्तप मु ।
द्विपन्तपः ॥

नलोपो नञः ६।३।७३

प० वि०—नलोपः १।१ नञः ६।१ स०—नस्य लोपः । नलोपः

१—आत्ममाने स्वश् (६।३. २. ८३) २—विध्वरूपोस्तुदः (३. २. ३५)

३—द्विपत्परमोस्तापेः (३. २. ३६) ४—चचि ह्रस्वः (६. ४. ६४)

अर्थ—नञो नकारस्य लोपो भवति उत्तरपदे परत । (नञ् के नकार का लोप होता है उत्तरपद के पर रहन पर)

उदा०—न ब्राह्मण अब्राह्मण ।

तस्मान्नुडचि ६।३।७४

प० वि०—तस्मात् १।१ नुट् १।१ अचि ७।१

अर्थ—[नञ्] तस्मान्नलोपान्नञ् नुडागमो भवति अजादावुत्तर-पदे परत । (उस नकार लोप के पश्चात् नञ् को नुट् का आगम होता है अजादि उत्तरपद के पर रहा पर)

उदा०—न अज । अनज । न अरज । अनरज

सि०—नञ् इति समासविधायनसूत्रे सावन द्रष्टव्यम् ॥

नगोऽप्राणिष्वन्यतरस्याम् ६।३।७७

प० वि०—नग १।१ अप्राणिषु ७।३ अन्यतरस्याम् अ० । स०—न प्राणी अप्राणी तेषु अप्राणिषु ।

अर्थ—नग इति अप्राणिषु निपात्यते अन्यतरस्याम् । (नग यह प्राणिवाचक न हो तो विकल्प से निपातन से सिद्ध होता है)

उदा०—नगा वृक्षा । अगा वृक्षा । नगा प्लक्षा । अगा प्लक्षा ॥

[सहस्य सः] सज्ञायाम् ६।३।७८

अव्ययीभावे चाकाले ६।३।८१

प० वि०—अव्ययीभावे ७।१ च अ० । अकाले ७।१

अर्थ—[सहस्य स] अव्ययीभावे च समासेऽनालवाचिन्युत्तरपदे सहस्य ॥ इत्ययमादेशो भवति । (अव्ययीभाव समास में अकालवाची सङ्घ के उत्तरपद में रहन पर सह के स्थान में स यह आदेश होता है)

उदा०—सचक्रं धेहि ।

सि०—अव्यय विभक्तिसमीपेति सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

वोपसर्जनस्य ६।३।८२

प० वि०—वा अ० । उपसर्जनस्य ६।१

अर्थ—[सहस्य स] उपसर्जनस्य सहस्य स इत्ययम् आदेशो भवति विकल्पेन उत्तरपदे परत । (उपसर्जन सह के स्थान में स यह आदेश विकल्प से होता है उत्तरपद के पर रहन पर)

उदा०—पुत्रेण सह । सपुत्र । सहपुत्र । साधन तेन सहेति तुल्य-

योगे (२. २. २८) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचन-

वन्धुषु ६।३।८५

प० वि०—ज्योतिस्-जनपद-रात्रि-नाभि-नाम गोत्र-रूप-स्थान-वर्ण-वयस्य वचन-वन्धुषु ७।३ स०—स्पष्टम् (इतरे० द्वन्द्व)

अर्थ—[समानस्य स] ज्योतिस्-जनपद-रात्रि-नाभि-नाम-गोत्र-रूप स्थान वर्ण वयस्य-वचन-वन्धुषु उत्तरपदेषु परत समानस्य स इत्ययमादेशो भवति । (इत ग०शों क उत्तरपद में परे छन पर समान क स्थान में स यह आदेश होता है)

उदा०—स-ज्योति । स-जनपद । स-रात्रि । स-नाभि । स-नामा । स-गोत्र । स-रूप । स-स्थान । स-वर्ण । स-वयस्य । स-वचन । स-वन्धु ।

सि०—समान ज्योतिरस्येति निग्रह । तत्पुरुषेऽपि भवित स्वयमेव एव सत्र निग्रह कर्त्तव्यम् ॥

दृग्दृगवतुषु ६।३।८६

प० वि०—दृग्दृगवतुषु ७।३ स०—दृक् च दृशश्च वतुश्च इति दृग्दृशवतुषु तेषु ।

अर्थ—[समानस्य स] दृक् दृशश्च वतु इत्येतेषु उत्तरपदेषु परत समानस्य स इत्ययमादेशो भवति । (दृक् दृग वतु क उत्तरपद में पर छन पर समान क स्थान में स यह आदेश होता है)

अ०—सदृक् सदृश । X दृने चेति वस्तव्यम् X सदृज ।

मि०—समानमात्मान पश्यतीति सदृक् सदृशो वा । समान अम् दृश् स्विन् । समान अम् दृश् । समान अम् दृक् । समान दृक् । सन्क् । सदृक् कम् । सदृश ।

इदक्मिमीशकी ६।३।८७

प० वि०—इदक्मिमी ६।२ ईशकी अविभक्त । स०—इत्थं किंच इति इदक्मिमी तयो । ईश च का च इति ईशकी ।

अर्थ—[इदक्मिमीवतुषु] इदं किम् इत्येतयोरीश की इत्येतावादेशो

१—त्यदादिषु दृगोऽलोचन कञ्च (३ २. ६०) २—विन्त्ययस्य कु (८ २ ६२)

भवतः यथासत्य दृक्दृशवतुषु । (इदं गौर किम् के स्थान में कमतः ईदं गौर की आदेश होते हैं दृक् दृश वतु के पर रहने पर)

उदा०—इदमिव पश्यतीति ईदृक् । ईदृशः । किमिव पश्यतीति कीदृक् । कीदृशः । ❧ व्युत्पत्तिमात्रार्थो विग्रहः कृतः । नात्रावयवार्थो विग्रहवाक्योपदर्शितो विद्यते तथा हि ईदृक् ईदृश इत्यनेन तुल्य इत्ये-
षोऽर्थः समुदायादेव प्रतीयते । कीदृक् कीदृश इत्यापि केन तुल्य इति ❧ किं परिमाणमस्येति कियान् । इदं परिमाणमस्येति श्यान् ।

सि०—साधनं कृतप्रकरणे तद्धितप्रकरणे च द्रष्टव्यम् ।

आ सर्वनाम्न ६।३।६१

प० वि०—आ १।१ सर्वनाम्नः ६।१

अर्थ—[दृक्दृशवतुषु] सर्वनाम्न आकारादेशो भवति दृक्दृशवतुषु ।
(सर्वनाम को आकारादेश होता है दृक् दृश वतु के पर रहने पर)

उदा०—तादृक् । तादृशः । तावान् । यान्क् । यादृशः । यानान् ।

× दृक्ते चेति यक्तव्यम् × तादृक् । यादृक् ।

द्वयन्तरूपसर्गोभ्योऽप ईत् ६।३।६७

प० वि०—द्वयन्तरूपसर्गोभ्यः ५।३ अप ६।१ ईत् १।१

स०—द्विरच अन्तरश्च उपसर्गश्चेति द्वयन्तरूपसर्गाः तेभ्यः ।

अर्थ—द्वि अन्तर उपसर्ग इत्येतेभ्य उत्तरस्य अप ईकारादेशो भवति ।
(द्वि, अन्तर, गौर उपसर्ग क पश्चात् अप शब्द का ईकार आदेश होता है)

उदा०—द्वीपम् । अन्तरीपम् । नीपम् । समीपम् ।

सि०—ऋक्पूरुषूपथामानच्चे (५. ४. ७४) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् ६।३।१०६

प० वि०—पृषोदरादीनि १।३ यथोपदिष्टम् १।१ स०—आदिशब्दः

प्रकारवचन इति । पृषोदर आदि येषां तानि पृषोदरादीनि (यहु०) यानि यानि शिष्टैरुपदिष्टानि इति यथोपदिष्टम् । (यथासादृश्ये इति धीप्ता-
यामव्ययीभावः)

अर्थ—❧ दिशिरत्रोच्चारणक्रियः उपदिष्टान्पुष्कारितानीत्यर्थः ❧ पृषोदरप्रकाराणि शिष्टैर्यथोच्चारितानि तथैव साधूनि भवन्ति ।

(पृषोदर इस प्रकार के शब्द जैसे शिष्टो द्वारा उच्चारित होते हैं वैसे ही साधु मान जाते हैं)

उदा०—पृषदुदर यस्य, पृषोदरम् । पृषद् उद्वान यस्य, पृषोद्वानम् । तकारलोप । वारिवाहिको, बलाहक । पूर्वपदस्य व, उत्तरपदादेशच लप् । जीवनस्य मूत, जीमूत । वनशान्तस्य लोप । शवाना शयन, श्मशानम् । शान शान्तस्य श्मादेश । शयनशान्तस्यापि शानशब्दादेश । ऊर्ध्वं स्वम् यस्येति उलूखलम् ऊर्ध्वरशदयोरुलूखल इत्येतावादेशौ । मह्य रीतीति मयूर । रीतेरचि टिलोप, महीशदस्य मयूमाय ।

भवेद्वर्णागमाद्धश सिद्धेवर्णविपर्ययात् ।

गूढोत्तमा वर्णविहृतेर्वर्णनाशात्पृषोदरम् ।

ॐ के शिष्टा ? एतस्मिन्नायावर्त्तं निगसे ये ब्राह्मणा कुम्भीधान्या अलोलुपा अगृह्यमाणकारणा किञ्चित्-तरेण कस्याश्चिद्विद्याया पारङ्गतास्तत्र भवन्त शिष्टा (महाभाष्य) ॐ

ढलोप पूर्वस्य दाघोऽण ६।३।१११

प० वि०—ढलोपे ७।१ पूर्वस्य ६।१ दीर्घ १।१ अण ६।१

स०—ढश्च रश्चेति ढी (द्वन्द्व) । ढ्योलोपो यस्मिन् इति ढलोप (यहु०) तस्मिन् ।

अर्थ—ढलोपे पूर्वस्याणो नीघो भवति ।

(ढकार और रफ का सोन हो जिसमें उसके पूर्व अण का दीघ होता है)

उदा०—लीढम् । मीढम् । उपगूढम् । रलोपे—नीरक्तम् । अग्नी रथ । इन्दुरथ । पुनारक्तं नास । अन्तराष्ट्रीय ।

सि०—लिह् क्त^१ । लिह् त । लिढ्^२ त । लिढ् घ^३ । लिढ ढ^४ । लि^५ ढ । ली ढ^६ सु । लीढ अम् । लीढम् । मिह क्त । मिह् त । मिढ् त । मिढ् घ । मिढ् ढ । मि ढ । मीढ सु । मीढ अम् । मीढम् । उपगूढ क्त । उपगूढ् त । उपगूढ् घ । उपगूढ् ढ । उप गूढ । उपगूढ सु । उपगूढ अम् । उपगूढम् । निर रक्तम् । नि रक्तम्^७ । नी रक्तम्^८ । अग्नि रथ । अग्नि रथ । अग्नीरथ । इन्दुर रथ । पुनर रक्तम् । अन्तराष्ट्रीय ।

१—भूते (३ २ ८४) निष्ठा (३ २ १०२) क्तक्तवत् निष्ठा (१ १ २६)

२—हो ढ (८ २ ३१) ३—ऋस्तघोषोऽथ (८ २ ४०) ४—पुना प्ठु

(८ ४ ४०) ५—ढो ढे लोप (८ ३ १३) ६—ढलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽण

(६ ३ १११) ७—रो रि (८ २ १४)

सहिवहोरोदवर्णस्य ६।३।११२

प० वि०—सहिवहो ६।० ओत् १।१ अवर्णस्य ६।१ स०—सहिवहो
यहस्चेति सहिवहो तयो ।

अर्थ—[ढलोपे] सहि वह इत्येतयोरवर्णस्य ओभारादेशो भवति
ढलोपे । (सह और वह धातु के अकार व स्थान में आकार आदेश होता है
हकार और रेफ के साथ होने पर)

उदा०—सोढा । सोढुम् । सोढव्यम् । षोढा । वोढुम् । वोढव्यम् ।

सि०—सह् वृच् । सह् वृ । सड् वृ । सड् धृ । सड् ढृ । स ढृ सु ।
सोढा । एव सर्वत्र स्वयमेव अभ्यासः कर्त्तव्यः ।

सहितायाम् ६।३।११४

प० वि०—सहितायाम् ७।१

अर्थ—सहितायाम् इत्यधिकारो वेदितव्यः ।

(अथ महा स भागे सहिता का अधिकार समझना चाहिये)

अचि तुनुधमक्षुतङ्कुत्रोरुप्याणाम् ६।३।१३३

प० वि०—अचि ७।१ तुनुधमक्षुतङ्कुत्रोरुप्याणाम् ६।३

अर्थ—[दीर्घ] अचि विषये तु-नु-ध-मक्ष-तङ्-कु-त्र उरुय
इत्येतेषां दीर्घा भवति सहितायां विषये । (ऋक् ऋचा में) तु नु, प, मधु
(सीध) तङ् कु, त्र, उरुय इनको दीर्घ होता है सहिता के विषय में)

उदा०—आ तू न इन्द्र वृत्रहन् । नू करणे । उत चा धा स्यात्तात् ।
मक्षू गोमन्तमीमहे । तङ्—भरता जातवेदसम् तडिति धात्रेशस्य
डित्यपच्चे ग्रहण, तेनेह न भवति शृणोत प्रावाण । कूमन । अत्रा गौ ।
उरुप्या णोम्ने ।

निपातस्य ६।३।१३६

प० वि०—निपातस्य ६।१

अर्थ—[अचि दीर्घ] अचि विषये सहितायां निपातस्य दीर्घो
भवति । (ऋचा के विषय में सहिता में निपात का दीर्घ होता है)

उदा०—एता ते ।

अन्येषामपि दृश्यते ६।३।१३७

प० वि०—अन्येषाम् ६।३ अपि अ० । दृश्यते (त्रिया०)

अर्थ—[दीर्घः] अन्येषामपि दीर्घो दृश्यते । ॐ स दीर्घ शिष्ट-
प्रयोगादनुगन्तव्य । यस्य दीर्घत्वं न विहितं दृश्यते च प्रयोगे तदनेन
कर्त्तव्यम् ॐ (अन्यो को भी दीर्घ देखा जाता है)

उदा०—केशाकेशि । कचानचि । जलापाट् । नारक पूरुपः ।

सि०—केशोपु केशोपु गृहीत्वा इदं युद्धं वृत्तमिति विग्रहः । केश सुप्
केश सुप् । केशकेशः^१ । केशाकेशः । केशाकेश इच्^२ केशाकेशः^३ इ । केशा-
केशि सु । केशाकेशि^४ । जल सहते इति विग्रहः । जल अम् सह
रिव^५ । जल सह वि । जल सह व् । जला^६ साह् । जला साह^७ ।
जलासाह^८ । जलासाह् । जलापाट्^९ ।

चौ ६।३।१३८

प० वि०—चौ ७।१

अर्थ—[पूर्वस्य दीर्घः] चौ परत पूर्वपदस्य दीर्घो भवति ।

(चु क परे रहने पर पूर्व पद का दीर्घ होना है)

उदा०—दधीच पश्य । दधीचा । दधीचे । मधूच पश्य । मधूचा ।
मधूचे ।

सि०—अच (६. ४. १३८) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

सम्प्रसारणस्य ६।३।१३९

प० वि०—सम्प्रसारणस्य ६।१

अर्थ—[पूर्वस्य दीर्घः] सम्प्रसारणान्तस्य पूर्वपदस्य उत्तरपदे परतो
दीर्घो भवति । (सम्प्रसारणान्त पूर्वपदका दीर्घ होता है, उत्तरपद के परे
रहने पर)

उदा०—कारीपगन्वीपुत्र । कीमुदगन्वीपुत्र ।

सि०—प्यङः सम्प्रसारणम् (६. १. १२) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया षष्ठाध्याये तृतीय पाद

१—तत्र तेन दर्शयति सरूपे (२. २. २७) २—इच् कमव्यतीहारे (५. ४. १२७) ३—इचोऽप्ययत्नम् अत एव अन्वयादाप्सुष (२. ४. ८१) ४—द्यदमि सह (३. २. ६३) ५—अन्येषामपि दृश्यते (६. ३. १३७) ६—हो ड (८. २. ३१) ७—कला जगोऽन्ते (८. २. ३६) ८—वावसान (८. ४. ५८) ९—सहे साह पः (८. ३. ५६)

अङ्गाधिकारप्रकरणम्—

अङ्गस्य ६।४।१

प० वि०—अङ्गस्य ६।१

अर्थ—आ सप्तमाध्यायपरिसमाप्ते 'अङ्गस्य' इत्यधिकारो वेदितव्यः । (सप्तमाध्यायपर्यन्त अङ्गस्य का अधिकार समझना चाहिए । अर्थात् प्रगते सूत्रों में यह पद उपस्थित होता है)

हल ६।४।२

प० वि०—हल ५।१

अर्थ—[अणु सम्प्रसारणस्य दीर्घः] हल उत्तरस्य अङ्गस्यावयवस्य अणो दीर्घो भवति । (हल के उत्तर अङ्ग के अवयव सम्प्रसारण अणु का दीर्घ होता है)

उदा०—जीन । जीनान् ।

सि०—महिज्येति (६ । १६) सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

नामि ६।४।३

प० वि०—नामि ७।१

अर्थ—[दीर्घः] नामि परतोऽङ्गस्य दीर्घो भवति ।

(नाम् के परे रहन पर अङ्ग का दीर्घ होता है)

उदा०—अग्नीनाम् । वायूनाम् । कण्टाम् । हृत्पणाम् ।

न तिसृचतसृ ६।४।४

प० वि०—न अ० । तिसृचतसृ (सुपा सुलुगिति पष्ठीद्विवचनस्य लुक् कृत्वा निर्देशः कृत इति न्यासः)

अर्थ—[नामि दीर्घः] तिसृ चतसृ इत्येतयोर्नामि दीर्घो न भवति ।

(तिसृ और चतसृ अङ्ग का नाम के परे रहन पर दीर्घ नहीं होता है)

उदा०—तिसृणाम् । चतसृणाम् ।

छन्दस्युभयथा ६।४।४

प० वि०—छन्दसि ७।१ उभयथा १।१ अवयवा अव्ययपदम् ।

अर्थ—[तिसृ चतसृ नामि दीर्घः] तिसृ चतसृ इत्येतयोर्नामि परत उभयथा दृश्यते छन्दसि विषये । (छन्द के विषय में तिसृ और चतसृ को दीर्घ और अदीर्घ दोनों प्रकार से देखा जाता है नाम के पर रहन पर)

उदा०—तिसृणाम् मध्यदिने तिसृणा मध्यदिने । चतसृणा मध्यदिने

चतमृणां मन्थदिने ॥

सि०—त्रि आम् । तिस्र^१ आम् । तिम^२ नुद्^३ आम् । तिस्रनाम् ।
तिस्र नाम् । तिस्रणाम् । चतुर्^४ नाम्^५ । चतस्रणाम् ।

नृ च ६।४।६

प० वि०—नृ (लुप्तपष्ठोऽयं पदम्) च अ० ।

अर्थ—[नामि उभयथा] नृ इत्येतस्य च नामि परतो उभयथा
भवति । (नाम् के परे रहने पर नृ शब्द का दोनों प्रकार से दीर्घ और मदीन
होता है)

उदा०—एव नृणां नृपते । एव नृणां नृपते ॥

नोपधाया ६।४।७

प० त्रि०—नः ६।१ ऋसौत्रात्रिङ्गस्य यकारलोपस्यासिद्धत्वं
अनात्रिणाद् गुणः कृत ऋषचाया ६।१

अर्थ—[नामि दीर्घः] नान्तस्याङ्गस्योपधाया नामि परतो दीर्घो
भवति । ऋ न इति वर्णप्रमाणम् । तत्र वर्णप्रमाणे मर्त्यत्र तदन्तरिधि प्रयो-
जयन्ति इति नशास्त्रेण नकारान्तस्य प्रमाणं क्रियते । ऋ

(नकारान्त ऋङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है नाम् के परे रहने पर)

उदा०—पञ्चानाम् । मत्नानाम् । नयानाम् । दशानाम् ।

मि०—पञ्चन आम् । पञ्चन् नुद्^३ आम् । पञ्चन् नाम् । पञ्चान्^५
नाम् । पञ्चानाम्^६ ॥

सर्वनामस्याने चानम्बुद्धौ ६।४।८

प० वि०—सर्वनामस्याने ७।१ च अ० । असम्बुद्धौ । ७।१

अर्थ—[नोपधायाः दीर्घः] सम्बुद्धिभिन्ने सर्वनामस्याने च परतो
नामस्योपधाया दीर्घो भवति । (सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्याने विभक्ति के परे
रहने पर नकारान्त ऋङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है)

उदा०—राजा । राजानी । राजान । राजानम् । राजानी ।
मामानि निष्ठन्ति । मामानि पश्य ॥ असम्बुद्धौ इति किन्-हे राजन् ।

१—त्रिचतुरा म्बिषा त्रिचतुरम् (७. २. १६) २—हस्वनघातो नुद् (७.
१. १४) ३—पञ्चाना पट् (१. १. २३) पञ्चानुस्यञ्च (७. १. १५) ४—नोपधायाः
(६. ४. १७) ५—स्वादिभ्यस्सर्वनामस्याने (१. ४. १७) पश्य (८. १. १६) नमो-
प्रातिपदिकान्तस्य (८. २. ४)

हे तद्धन् । हे सामन् ।

सान्तमहत्तः संयोगस्य ६।४।१०

प० वि०—सान्तमहत्तः ६।१ संयोगस्य ६।१ स०—सकारोऽन्तो यस्येति सान्तः । सान्तरच महच्चेति सान्तमहत्तः तस्य सान्तमहत्तः ।

अर्थ—[नोपधायाः सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ] सान्तसंयोगस्य महत्तरच यो नकारस्तस्योपधाया दीर्घो भवति सम्बुद्धिभिन्नसर्वनामस्थाने परतः । (सकारान्त घोर महत्त शब्द के संयोग का जो नकार उसकी उपधा को दीर्घ होता है, सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान विभक्ति के परे रहने पर)

उदा०—श्रेयान् । श्रेयांसौ । श्रेयांसः । श्रेयांसम् । श्रेयांसौ ॥

पयांसि । यशांसि । मनांसि ॥ महत्तः—महान् । महान्तौ । महान्तः । महान्तम् । महान्तौ ॥ असम्बुद्धौ इति किम्—हे श्रेयन् । महन् ।

सि०—साधनं प्रशास्यस्य श्र इत्यत्र घप्रकरणे द्रष्टव्यम् ॥

अप्त्तृत्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षतृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम् ६।४।११

प० वि०—अप्-तृन्-तृच्-त्स्वसृ-नप्तृ-नेष्टृ-त्वष्टृ-क्षतृ-होतृ-पोतृ-प्रशास्तृणाम् ६।३

अर्थ—[उपधायाः दीर्घः सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ] अप्-तृन्-तृच्-स्वसृ-नप्तृ-नेष्टृ-त्वष्टृ-क्षतृ-होतृ-पोतृ-प्रशास्तृ इत्येतेषामङ्गानामुपधाया दीर्घो भवति सम्बुद्धिभिन्नसर्वनामस्थाने परतः (अप् इत्यादि अङ्गो की उपधा को दीर्घ होता है सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान विभक्ति के परे रहने पर)

उदा०—अप्—आपः । अस्मिन्मनसमासिकतावर्षाणां बहुत्व च (लिङ्ग० १।२६) इत्येतेषां बहुत्वं अत एव एकपचनद्विवचने न संभवतः अतः तृन्—कर्ता । कर्तारौ । कर्तारः । कर्तारम् । कर्तारौ ॥ तृच्—कर्ता । कर्तारौ । कर्तारः । कर्तारम् । कर्तारौ । अर्थे वैशिष्ट्यम् अस्त्वसृ—स्वसा । स्वसारौ । स्वसारः । स्वसारम् । स्वसारौ । नप्तृ—नप्ता । नप्तारौ । नप्तारः । नप्तारम् । नप्तारौ । नेष्टृ—नेष्टा । निष्टारौ । नेष्टारः । नेष्टारम् । नेष्टारौ ॥ त्वष्टृ—त्वष्टा । त्वष्टारौ । त्वष्टारः । त्वष्टारम् । त्वष्टारौ ॥ क्षतृ—क्षत्ता । क्षत्तारौ । क्षत्तारः । क्षत्तारम् । क्षत्तारौ । होतृ—होता । होतारौ । होतारः । होतारम् । होतारौ ॥ पोतृ—पोता । पोतारौ । पोतारः । पोतारम् । पोतारौ । प्रशास्तृ—प्रशास्ता । प्रशास्तारौ । प्रशास्तारः । प्रशास्तारम् । प्रशास्तारौ । अङ्गनप्रादीनां

ग्रहणमव्युपत्तिपक्षे विध्यर्थम्, व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थम् । एवं भूताना-
मन्येषां सक्षाशब्दानां दीर्घो मा भूदिति ॥ पितरौ । पितर । मातरौ ।
मातर । भ्रातरौ । भ्रातर । ॐ असम्बुद्धाविति त्रिम्—हे कर्त्त ।
हे स्वस ॥

सि०—कर्त्ता इत्यस्य साधनं एवमुक्तं इति सूत्रे दृष्टव्यम् । अन्यत्सर्गं
कर्तृवञ्जेयम् ॥ ॐनाशिकायामेवमन्तर्गतं नोदाहृतम् । तत्र अदुशनस्युरो-
दशोऽनेहसाञ्चेत्यनवादेशे कृते नोपधाया सर्वनामस्थाने चामम्बुद्धौ
इत्यादिना दीर्घस्य सिद्धत्वात् इति यन्न्यासे लिखितं तच्चिन्त्यम्—
कथं परत्वान् अपठन०—इत्येव न्यायान् ॐ

इन्हन्पूर्पार्यम्णा शौ ६।४।१०

प० वि०—इन् हन् पूर्पार्यम्णाम् ६।३ शौ ७। स०—इन् च हन् च
पूपन् च अर्थमन् चेति इन्हन्पूर्पार्यमण तेषाम् ।

अर्थ—[उपधाया दीर्घ] इन् हन् पूपन्-अर्थमन् इत्येतेषां शायेषो-
पधाया दीर्घा भवति नान्यत्र । (इन् हन्, पूपन् घोर भयमन् इतरा उपधा
या दीर्घ हाता है शि व हा पर रहन पर घोर बगह मही)

उ०—बहुव्रीहिनि । बहुव्रीहिणि । बहुवृत्रहाणि । बहुभ्रूणहाणि ।
बहुपूपाणि । बह्वर्धमाणि । एतेषां शानेन दीर्घा भवतीति त्रिम्—दृष्टिनी ।
दृष्टिन् । दृष्टिन्म । दृष्टिनी । दृष्टिन् । दृष्टिना । दृष्टिभ्याम् ।
दृष्टिभि । एव दृष्टिणी । वृत्रहा । पूपा । अर्थमणौ ॥

सौ च ६।४।१३

प० वि०—सौ ७।१ च अ० ।

अर्थ—[इन्हन्पूर्पार्यम्णाम् उपधाया दीर्घ असम्बुद्धौ] सापस-
म्बुद्धौ परत इन्हन्पूर्पार्यम्णामुपधाया दीर्घा भवति । (इन् हन् पूपन्
भयमन् इतरा उपधा या दीर्घ हाता है सम्बुद्धिभिन मु व पर रहन पर)

उ०—दृष्टिनी । वृत्रहा । पूपा । अर्थमा । असम्बुद्धौ इति त्रिम् ।
हे दृष्टिन् । हे वृत्रहन् । हे पूपन् । हे अर्थमन् ।

अत्यमन्तस्य चाद्यानो ६।४।१४

प० वि०—अत्यमन्तस्य ६।१ च अ० । अद्यानो ६।१ स०—अनुरच
अत्येति अत्यसौ । अन्तरा अन्तश्चेति अन्तो । अयसी अन्तो
यत्येति अत्यसन्तम् तस्य अत्यसन्तस्य । न चानुरिति अद्यानु तस्य ।

अर्थ—[उपधायाः सावसम्बुद्धौ दीर्घः] धातुभिन्नस्य अत्वन्तस्य असन्तस्य च अङ्गस्योपधायाः सावसम्बुद्धौ दीर्घो भवति । (धातुभिन्न अत्वन्त और असन्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ हाना है सम्बुद्धिभिन्न सु के परे रहने पर)

उदा०—अत्वन्तस्य, डवतु—भवान् । क्तवतु—गतवान् । मतुप्—गोमान् । यवमान् ॥ क्लृपं नित्यं च नुम् बाधित्वा वचनसामर्थ्यादादौ दीर्घः, ततो नुम्क्लृअसन्तस्य—सुपयाः । सुयशाः ॥ असम्बुद्धावित्येव गोमन् । हे सुपयः ।

अनुनासिकस्य क्विभक्तोः क्विडिति ६।४।१५

प० वि०—अनुनासिकस्य ६।१ क्विभक्तोः ७।२ क्विडिति ७।१

अर्थ—[उपधायाः दीर्घः] अनुनासिकान्तस्याङ्गस्योपधाया दीर्घो भवति क्विप्रत्यये परतो भक्तादौ च क्विडिति । (अनुनासिकान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है क्वि प्रत्यय के परे रहने पर और भक्तादि क्वि डित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—क्वौ—प्रशान् । प्रतान् । भक्तादौ क्विति—शान्तः । शान्तवान् । शान्तिः । भक्तादौ डिति—शंशान्त । तन्तान्तः ॥

सि०—शमु उपशमे । शम् क्विप्^१ । प्रशम् । प्रशाम्^२ । प्रशान्^३ । तमु काङ्क्षायाम् । प्रतम् क्विप् । शम् क्त । शान्तः^४ । शमु यङ् य । शम् शम् य । श शम् य । श नुक्^५ शम् य । शन् शम् य । शशम्य । शंशम्^६ लट् । शंशम् तस् । शंशम् शप् तस । शंशम्^७ तस् । शंशान्तस् । शंशांतस् । शंशान्तः ॥

अङ्गभनगमा सनि ६।४।१६

प० वि०—अङ्गभनगमाम् ६।३ सनि ७।१ स०—अच्च हन् च गम्

१—क्विप् च (३ २ ७२) २—अनुनासिकस्य क्विभक्तोः क्विडिति (६. ४. १५) ३—क्विबन्त धातुत्व न जहाति इति वचनाद० मो नो धातोः (८. २. ६४) ४—नश्चापदान्तस्य क्विति (८. २. २४) अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः (८. ४. ५७) ५—नुगतोऽनुनासिकान्तस्य (७. ४. ८१) आद्यन्तो टक्त्वो (१. १. ४५) ६—यङोर्जि च (२. ४. ७४) सनाद्यन्ता धातवः (३. १. ३२) धातोः (३. १. ६१) वर्तमाने लट् (३. २. १२३) प्रत्यय (३. १. १) परस्य (३. १. १) ७—अदिप्रमृतिभ्यः णपः (२. ४. ७२)

येति अन्मनगमः तेषाम् ।

अर्थ—[मन्त्रि दीर्घः] अजन्त-हन्-गम इत्येतेषामङ्गानां मन्त्रादी मनि दीर्घो भवति । (अजन्त, हन् गम्, इन अङ्गा का दीर्घ होता है मन्त्रादि मन् के परे रहने पर)

उदा०—अजन्तस्य-चिकीर्षति । जिहीर्षति । हन्-जिघांसति । गम-अधिजिगांसते । X गमेरिहादेशस्येति वक्तव्यम् । इह मा भूत् नजि-गंसते वरमो मात्रेति ।

मि०—चिकीर्षति इति मायन सन्निवायस्मूत्रे द्रष्टव्यम् । जिघांसति । हन् । हान् मन् । हान् हान् स^१ । इ हान् म । म^२ हान् म । ज^३ हान् स । ज घान्^४ स । जघान् म । जिवान्^५ स । जिवान्म लट् जिघांस शप् ति । जिघांसति ॥ अधिजिगांसते । इह । गम्^६ । गम सन् । गम् गम् स । ग गम् स । ज गम् म । जि^७ गम् म । जिगाम् स । जिगांस लट् । जिगांम त । जिगांस शप् त । जिगांस अ त जिगांसत । जिगांसते । अधिजिगांसते ।

च्छ्वो. गूढनुनासिके च ६।८।१६

प० मि०—च्छ्वोः ६।९ शुद्ध १।१ अनुनासिके ७।१ च अ० । म०—च्छ्वश्च वरचेति च्छ्वो तयोः च्छ्वो । गश्च उठचेति शुद्ध ।

अर्थ—[कियमलोः किहति] च्छ्व् इत्येतयोः स्थाने यथासक्यं श् उठ् इत्येतापादेशो भवतः, अनुनासिकादी प्रथमे परतः क्वौ मन्त्रादी च किहति ।

(च्छ्व घौर व् के स्थान में क्रमशः श् घौर उठ आदेश होते हैं अनुनासिकादि प्रथमे के परे रहने पर कि के परे रहने पर घौर मन्त्रादि किन् किन् के परे रहने पर)

उदा०—अनुनासिके-ग्रन् । विन्नः । वकारस्य उठ-भ्योनः । क्वौ च्छ्वस्य-शब्दप्राट् । वकारस्य क्वौ-असद्यः । हिरण्यः । मन्त्रादी च्छ्वस्य किति-गृष्टः । गृष्टवान् । गृष्ट्वा । वकारस्य मन्त्रादी किति-गृत्तः । गृत्तवान् । गृत्त्वा ।

१—हन्तयोः (६ १. ६) २—पूर्वोऽभ्यासः (६ १. ४) घन लोपोऽभ्यासस्य (७. ४. १८) गूढोच्च (७. ४. ६२) ३—अभ्यासे वचं (८. ४. ११) ४—अभ्यासाच्च (७. ३. १६) ५—इहत्थ (२. ४. ४८) ६—अदतः (७ ४. ७६)

सि०—प्रच्छ नङ् । प्रश्नः, साधनन्तु नङ्विधिसूत्रे द्रष्टव्यम् ।
 स्योनः । सिव् न^१ । सि उठ् न । स्यू न । स्योन^२ सु । स्योनः । अक्षै-
 र्दिव्यति इति अक्षद्युः । अक्ष भिस् दिव् क्विप् । अक्ष भिस् दि उठ् ।
 अक्षद्यु सु । अक्षद्यु ।

राल्लोप ६।४।२१

प० वि०—रात् ५।१ लोप १।१

अर्थ—[रच्छ्वो० किरम्लो० विडति] रेफादुत्तरयोश्छ्वोलोपो
 भवति ययौ परतो मल्लादौ च ण्डिति ।

(रेफ के पश्चात् च्छ्व और व का लोप हो जाता है किंवा घौर मल्लादि
 कित् डित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—मुर्छा । मू । मुरौ । मुरः । मूर्त्ति^३ । राल्लोपे सतुक्कस्य
 छत्थाभावात्रेवलो गृहातेऽक्क वकारस्य-तुर्वा-त् । तुरौ । तुर । तूर्ण^४ ।
 तूर्णवान् । तूर्त्ति^५ । धुरी । धू । धुरौ । धुर^६ । धूर्ण^७ । धूर्णवान् ।
 धूर्त्तिः ।

सि०—मुर्छा । मुर्छ् क्विप् । मुर् सु । मूर^२ । मू । मुर औ ।
 मुरौ । एव सर्वत्र ॥

शनान्नलोप ६।४।२३

प० वि०—रनात् ५।१ नलोप १।१

अर्थ—रनादुत्तरस्य नकारस्य लोपो भवति ।

(रन के पश्चात् नकार का लोप होता है)

उदा०—अनक्ति । भनक्ति । हिनस्ति ।

सि०—अन्ज् व्यक्तिभ्रक्षणकान्तिगतिषु । भन्जो आमर्हने । हिसि
 हिंसायाम् ।

अन्ज् । अन्ज् लट् । अन्ज् तिप् । अ शनम् ग्ज् तिप् । अनग्ज्
 ति । अनग्ज् ति । अनग्^४ ति । अनक्ति^५ ।

अनिदिता हल उपधाया विडति ६।४।२४

प० वि०—अनिदिताम् ६।३ हलः ६।१ उपधाया. ६।१ विडति ७।१

१—धापवस्यज्यतिभ्यो न इति (उण ३. ६) धादिभ्यो विधीय-
 मानो न प्रत्ययो बहुलवचनात् सिक्वरेपि भवति । २—सावंधातुकावधातुकयो
 (७. ३. ८४); ३—गोष्पधाया दीर्घ इक् (८. २ ५६) ४—चोः कु (८. २.
 ३०) ५—स्तरि च (८. ४. ५४)

सः—इन् इन् यन्वेति इदिन् । न इदिन् अनिदिन् तेषा अनिदिताम् ।

अर्थ—[नलोपः] अनिदितामङ्गानां हलन्वानाम् उपवाया नकारस्य लोपो भवति किङ्कति प्रत्यये परत ।

(इकार इत् विभक्ता नहीं है ऐसे हलन्व शब्दों की उपवाया नकार का तात् होता है, किन्ति प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—मिति-स्रस्वः । ध्वम्तः । म्रम्यते । ध्रुत्यने । मनीम्रत्यने मनीम्रम्यते ।

मि०—म्रंमु ध्वंमु अवपतने । म्रन्म् स्त । म्रन्म् यक्^१ ते । म्रन्म् यङ् । म्रम् य । स म्रम् य । म नीक्^२ म्रम् य । मनीम्रम्य शप्^३ ते मनीम्रम्यते । ✕ रजकरजनरजःमुरज्जेम्यसम्यानम् ✕ रजन । रजनम् । रज ।

शाम् डदट् हलो ६।४।३४

प० मि०—शासः ६।१ इन् १।१ अङ्गलो ७०

अर्थ—[किङ्कति] शाम् उपवाया इकारादेशो भवति अङ्कितं परतो हलादौ च किङ्कति ।

(शाम की उपवाया का इकारादेश होता है अट् के शीर हलादि किन्ति के परे रहने पर)

उदा०—अन्यगिपन् । अन्रगिपताम् । अन्यगिपन । अन्यगिपः । अन्यगिपनम् । अन्यगिपत । अन्यगिपन् । अन्यगिप्य । अन्रगिप्य । हलादौ किति-शिष्ट । शिष्टान् । हलादौ डिति-नौ गिट । यग शिप्प ।

शा ही ६।४।३५

प० मि०—शा १।१ ही ७।१

अर्थ—[शाम्] शासो ही परतः शा इयमादेशो भवति ।

(शाम् के स्थान में शा आदेश होता है हि के पर रहने पर)

उदा०—अनुशाधि । प्रशाधि ।

मि०—शाम् लोट । शाम् लृ । शाम् मिप् । शाम् दि । शा हि^१ । शाधि ।

१—सार्वभानुके यक् (३. १. ६३) २—नीवञ्चुरमुष्ममुष्मंमुष्मन्-पदम्बन्दात् (७. ४. ८६) ३—अग्निद्वन्द्वनामात् (६. ४. ७७) इन्मन्म्याधि. (६. ४. १०१)

हन्तेर्ज ६।४।३६

प० वि०—हन्ते ६।१ ज १।१

अर्थ—[हौ] हन्तेर्घांतोर्ज इत्ययमादेशो भवति हौ परत ।
(हन् धातु के स्थान में ज आदेश होता है हि के परे रहने पर)

उदा०—जहि शत्रून् ।

सि०—हन् सिप् । हन् हि । ज^१ हि । जहि ।

अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो

भलि किडति ६।४।३७

प० वि०—अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनाम् ६।३ अनुनासिक-
लोप १।१ भलि ७।१ किडति ७।१ स०—अनुदात्तो य उपदेशे स अनु-
दात्तोपदेश । तनोति आदि येषां ते तनोत्यादयः । अनुदात्तोपदेशश्च
वनतिश्च तनोत्यादयश्च इति अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादयः तेषाम् ।
अनुनासिकस्य लोप अनुनासिकलोप ।

अर्थ—उपदेशे अनुदात्तानां वनते तनोत्यादीनां चाङ्गानां भलि
इति अनुनासिकस्य लोपो भवति । (उपदेश में जो अनुदात्त धातुएँ, वनति
और तनोति आदि अङ्गों के अनुनासिक का लोप होता है अनादि किन् डित्
प्राथम्य परे रहने पर)

उदा०—यत्वा । यत । यतवान् । रत्वा । रत । रतवान् ।

वनति—वति (त्तिनो रूपम्) । तनोत्यादयः—तत—ततवान् । वत ।
वतवान् । डिति—अतत । अतथा ।

ॐ अनुनासिक इत्यत्र सिद्धान्तकौमुदीकारस्तु यल्लुप्तपठ्ठीक मन्यते
तच्चिन्त्यम् । अत्र तत्त्रयोधिनीव्याख्यायां—यद्यत्र एतेषामनुनासिकस्य
लोप इति व्याख्यायते तदा मन्यतेर्नमूनिहमिहमुधमस्ज्जादीनां चानन्त्य-
स्यापि लोप स्यात्, तथा च मत नत नद्ध मीढ मग्ग इत्यादि न सिध्येत्
इत्येतदपि तथैव चिन्त्यम्—तस्मिन्निति निदिष्टे पूर्वस्येति भलि किडति
इति सप्तमीनिर्देशेन विधीयमानम् अनुनासिकलोपकार्यं वर्णान्तरेणाव्य-
वहितस्य पूर्वस्य अलोऽन्त्यस्यैव सरलतया बोध्यत्वात् ।

आर्धधातुके ६।३।४६

प० वि०—आर्धधातुके ७।१ ॥

अर्थ—आ न ल्यपे उद्यमानानि कार्याणि आर्धधातुके परतः भवन्ति इत्यभिप्राये वेदितव्य ।

(न ल्यपि इमं सूत्रं तत्र यथा न आगे कहे जाने वाले वाय आर्धधातुक के परे रहने पर हात है, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

अतो लोप ६।४।४८

प० वि०—अतः ६।१ लोप १।१

अर्थ—अङ्गस्य अकारस्य लोपो भवति आर्धधातुके ।

(अङ्ग के अकार का लोप होता है आर्धधातुक के परे रहने पर)

उदा०—चिकीर्षिता । चिकीर्षितुम् । चिकीर्षितव्यम् ।

यस्य हल ६।४।४९

प० वि०—यस्य ६।१ हलः ५।१

अर्थ—[लोपः] हल उत्तरस्य यराद्यस्य आर्धधातुके लोपो भवति ।

(हलन्त अङ्ग के पश्चात् य शब्द का लोप होता है)

उदा०—वेभिदिता । वेभिदितुम् । वेभिदिव्यम् ।

सि०—भिदिर् । भिद् यङ् । वेभिद्यं वृष् । वेभिद् अ वृ । वेभिद् वृ । वेभिदिता । ❀ अत्र आदेः परस्येति सूत्रेण य् इत्येतस्य लोपः कर्त्तव्यं पश्चात् अतो लोप इत्यनेन अकारस्य लोपः ❀

णेरनिति ६।४।५१

प० वि०—णो ६।१ अनिति ७।१ स०—न इद् अनिद् तस्मिन् अनिति ।

अर्थ—[लोप] अनिडादायार्धधातुके णेलोपो भवति ।

(अनिडादि आर्धधातुक के परे रहने पर णि का लोप होता है)

उदा०—अततक्षत् । अतरक्षत् । आशिशत् । आटिटत् । कारणा । हारणा । कारकः । हारकः । कार्यते । हार्यते ।

निष्ठाया सेटि ६।४।५२

प० वि०—निष्ठायां ७।१ सेटि ७।१ स०—इटा सह इति सेट तस्मिन् ।

अर्थ—[णे.] निष्ठायां सेटि परतो णेलोपो भवति ।

(सेट् निष्ठा के परे रहने पर णि का लोप होता है)

उदा०—कारितम् । हारितम् ।

सि०—कृ णिच् इट् क्त । कारि इत् । कार् इत् । कारित सु ।
कारित अम् । कारितम् ।

स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्जनग्रहदृशा वा
चिण्वदिट् च ६।४।६२

प० वि०—स्यसिच्सीयुट्तासिषु ७।३ भावकर्मणो ७।० उपदेश ७।१
अज्जनग्रहदृशाम् ६।३ वा अ० । चिण्वत् १।१ इट् १।१ च अ० ।

स०—स्यश्च सेच्च सीयुट् च तासि चेति स्यसिच्सीयुट्तासय
तेषु । भाउ च कर्म च भावकर्मणी तयो । अच्च हनश्च ग्रहश्च इट् च
इति अज्जनग्रहदृश तेषाम् ।

अर्थ—स्य सिच् सीयुट् तासि इत्येतेषु भाउकर्मविषयेषु परत उपदे
शेऽज्जनानामङ्गाना इन् ग्रह् दृश् इत्येतेषा च चिण्वन् कार्यं भवति,
इडागमश्च । तेन यदा चिण्वत् कार्यं तदा इडागम । (भाव और कम
विषयक स्य सिच् सीयुट् और तासि के परे रहन पर उपदेश में जो अज त धातु
उसको और हन ग्रह तथा दृश को विकल्प से चिण्वत् काय होता है और इट् का
आगम भी होता है । जब चिण् होता है तभी इट् का आगम भी होता है ऐसा
समझना चाहिए)

चिण्वद् वृद्धिर्युक् च हन्तेश्च घत्व दीर्घरचोक्तो यो मिता वा चिणीति ।
इट् चासिद्धस्तेन मे लुप्यते णिर्नित्यश्चाय वलनिमित्तो विधाती ॥

इमान्येवास्य सूत्रस्य प्रयोजनानि । यथा चिणि णित्वाद् 'अचो-
ऽञ्जिणति' इति वृद्धिर्भवति तथैव चिण्वद्भावेऽपि भवति । यथा चिणि
'आतो युक् चिण्कृतो' इत्याकारान्तस्य युग् भवति तथा चिण्वद्
भावेऽपि भवति । यथा चिणि 'हो हन्तेर्जिण्नेप' इति हन्तेर्हकारस्य
घत्व भवति तथैव चिण्वद्भावेऽपि भवति । यथा चिणि 'चिण्णमुलो
दीर्घोऽन्यतरस्याम्' इति मिता वा दीर्घत्व भवति तथैव चिण्वद्भावे-
ऽपि भवति । अपर चैतत् प्रयोजनम्—अनेन विहितमिदं 'असिद्धवद्
ग्राभात्' नियमेनासिद्धो भवति अत शेरनिटि' इत्यनेन सत्यपीटि
इदोऽसिद्धत्वेन शैलोपो भवति ।

ननु चानेनेडागमे विधीयमानेऽपि 'आर्धधातुकस्येड्बलादे' इत्यने-
नेट् प्राप्नोति चिण्वद्भावेन च तत्र पदत्वात् साप्तमिकेन इडा भवित-

व्यम्, तस्मिंश्च सति तस्यामिद्वयत्वाभावात् श्लिषोपो न प्राप्नोति ।
उच्यते—आर्यधातुकस्येति विहितं माप्तमिदं बलादि निमित्तमाश्रयते,
अयं पुनः निर्निमित्तकः न किञ्चिन्निमित्तमाश्रयते । तेन बलादिलक्षणे
इति कृतेऽपि प्राप्नोति अकृतेऽपि । ‘यः कृतेऽपि प्राप्नोति अकृतेऽपि स
नित्यः’ इति नियमान् चिण्वद्भावसहचरितमिद् नित्यम् । परत्याश्च
नित्यं बलवान् भवति इति न्यायान् पूर्वं चिण्वद्भावसहचरितमिद्
भवति । सति चाग्निमिति बलादित्वाभावात् बलादिनिमित्तकः साप्न-
मिदं इदं न प्राप्नोति । अर्थान् बलादिलक्षणेऽयमिद् निमित्त
विहन्ति ।

इस सूत्र के निम्नलिखित प्रयोजन हैं—१. जिस प्रकार चिण् परे रहने
पर ‘अचोऽञ्जिति’ इत्यादि में ‘अचायि’ आदि में वृद्धि होती है वैसे चिण्वद्
भाव में भी हो जाती है—दायिष्यते । २. जिस प्रकार चिण् परे रहने पर
‘घातो युक् चिण्वत्तोः’ से ‘घदायि’ इत्यादि में आकारान्त अय को युक् का
प्रागम होता है, वैसे चिण्वद् भाव में भी हो जाता है—दायिष्यते ।
३. जिस प्रकार चिण् परे रहने पर हन् धातु के हकार को ‘हो हन्तेऽञ्जिनेषु’
सूत्र से घव हो जाता है वैसे चिण्वद् भाव में भी होता है—घामिष्यते । ४.
जिस प्रकार णि में चिण् परे रहने पर ‘चिण्णमुलो दीर्घाऽन्यतरस्याम्’ में ‘घशामि
घशमि’ में मिन् सज्ञको को विकल्प से दीर्घ होता है वैसे चिण्वद् भाव में भी
विकल्प से दीर्घ हो जाता है—घामिष्यते, घमिष्यते । ५. अन्त धातु में चिण्व-
द् भाव के साथ इस सूत्र के साथ जो इट् का प्रागम होता है वह ‘घमिड-
वदनाभात्’ नियम से असिद्धवन् हो जाता है इसलिए स्यादि को घमिडादि
म’नकर ‘णोरिति’ से णि का लोर हो जाता है यथा—घामिष्यते, घमिष्यते,
चिण्वद् भभाव में—घमयिष्यते ।

प्रदन—‘शम् णिच् स्व ते’ इस अवस्था में इस सूत्र में भी इट् प्राप्त होता
है, ‘आर्यधातुकस्येड्वतादेः’ में भी । परत्व में ‘आर्यधातुकस्य’ में इट् होगा इस
से नहीं, तब णि को लोप कैम होगा ?

उत्तर—इस सूत्र में जो इट् होना है वह नित्य है । ‘आर्यधातुकस्य’ सूत्र
में विहित इट् सभी होता है जब बलादि प्रत्यय हों । इस इट् के लिए कोई
निमित्त नहीं है चाहे वह वनादि हो चाहे घञादि । इसलिए परत्वान् वनादि
निमित्तक इट् के हो जाने पर भी इस सूत्र से पुनः इट् की प्राप्ति होती है ।
जो कार्य किसी कार्य के न करने पर भी प्राप्त हो और न करने पर भी वह
नित्य होता है । इस कारण यह इट् नित्य है । इस इट् के न करने पर प्रत्यय

बलादि नहीं रहता अतः बलादि लक्षण इट् नहीं होता। इस प्रकार वह इट् अनित्य है। पर से भी नित्य बलवान् होता है अतः पहले यही चिन्वद् भाव वाला इट् होगा, इसके हो जाने पर सप्तमाध्याय वाला बलादि लक्षण इट् नहीं होगा और यह इट् शिलोप के करन में 'असिद्धवद्वाभावत्' नियम से असिद्धवत् हो जाता है अतः 'शामिप्यते' में शि का लाप हा जाएगा।

उदा०—अजन्तानाम्—चायिप्यते। चेप्यते। अचायिप्यत। अचेप्यत। दायिप्यते। दास्यते। अदायिप्यत अदास्यत। शामिप्यते। शमिप्यते। शमयिप्यते। अशामिप्यत। अशमिप्यत। अशमयिप्यत। हन्—चानिप्यते। हनिप्यते। अचानिप्यत। अहनिप्यत। ग्रह—ग्राहिप्यते। ग्रहीप्यते। अग्राहिप्यत। अग्रहीप्यत। ग्रहोऽलिटि दीर्घ इति प्रकृतस्येदो दीर्घत्वम् न त्वस्य। दृश्—दर्शिप्यते। द्रक्ष्यते। अदर्शिप्यत। अद्रक्ष्यत। सिच्यजन्तानाम्—अचायिपाताम्। अचेपाताम्। अदायिपाताम्। अदिपाताम्। अशामिपाताम्। अशमिपाताम्। अशमयिपाताम्। हन्—अचानिपाताम्। अचधिपाताम्। अहसाताम्। ग्रह—अग्राहिपाताम्। अग्रहीपाताम्। दृश्—अदर्शिपाताम्। अदृक्षाताम्। सीयुटि अजन्तानाम्—चायिपीष्ट। चेपीष्ट। दायिपीष्ट। दासीष्ट। शामिपीष्ट। शमिपीष्ट। शमयिपीष्ट। हन्। चानिपीष्ट। चधिपीष्ट। ग्रह—ग्राहिपीष्ट। ग्रहीपीष्ट। दृश्—दर्शिपीष्ट। दृक्षीष्ट। तासावजन्तानाम्—चायिता। चैता। दायिता। दाता। शामिता। शमिता। शमयिता। हन्—चानिता। हन्ता। ग्रह—ग्राहिता। ग्रहीता।

दीडो युडचि किडति ६।४।६३

प० वि०—दीड्. ५।१ युट् १।१ अचि ७।१ किडति ७।१

अर्थ—दीडो युडागमो भवति अजागौ किडति प्रत्यये परत।

❖ दीड् इति पञ्चमीनिर्देशाद् अजादेयुडागमो भवति ❖

(दीड् के पश्चात् अजादे कित्ठित् को युट् का प्रागप होता है)

उदा०—उपदिदीये। उपदिदीयाते। उपदिदीयिरे।

आतो लोप इटि च ६।४।६४

प० वि०—आत. ६।१ लोपः १।१ इटि ७।१ च अ०।

अर्थ—[आर्धधातुके किडति] युडादावार्धधातुके किडति च आकारान्तस्याङ्गस्य लोपो भवति।

(अत्रादि आद्यधानुके ओर किन् दिन् प्रत्यय के परे रहने पर धाकारान्त मङ्ग का लोप होता है)

उदा०—पपिथ । तस्थिथ । किति—यपतुः । पपुः । तस्थुः । तस्थुः । गोदः । कम्बलदः । किति—प्रदा । प्रया ।

सि०—पा । पा लिट् । पा थल् । पा थ । पा इट् थ । प् इ थ । पा प् इ थ । प प् इ थ । पपिथ । प्र दा अट् । प्रद टाप । प्रदा मु । प्रदा ।

इत्यति ६।४।६५

प० वि०—ईन् १।१ यति ७।१

अर्थ—[आतः] आकारान्तस्याङ्गस्य ईकारादेशो भवति यति परतः । (धाकारान्त मङ्ग को ईकार आदेश होता है, यन् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—देयम् । धेयम् । हेयम् ।

धुमास्थागापाजहातिसा हलि ६।४।६६

प० वि०—धु-मा-स्था-गा-पा-जहाति-साम् ६।३ हलि ७।१

अर्थ—धु-मा-स्था-गा-पा-हा-सा इत्येतेषामङ्गानाम् ईकारादेशो भवति हलादी किङ्कति प्रत्यये परतः ।

(धु (दा धा) मा, स्था, गा, पा, घोहाइ त्यागे पो धन्तरमंणि इन मङ्गों को ईकार आदेश होता है हलादि किङ्कति प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—दीयते । धीयते । देहीयते । देधीयते । मीयते । मेमीयते । ग्हीयते । तेष्ठीयते । गीयते । जेगीयते । पीयते । पेरीयते । हीयते । जेहीयते । अनसीयते । अवसेसीयते ।

एल्लिंति ६।४।६७

प० वि०—एः १।१ लिङि ७।१

अर्थ—[धुमास्थागापाजहातिसां किङ्कति] धुमास्थागापाजहातिमा-मङ्गानामेकारादेशो भवति लिङि किङ्कति परतः ।

(किङ्कित लिट् के परे रहने पर इन मङ्गों को एकार आदेश होता है)

उदा०—देयान् । धेयान् । मा माने । मेयान् । ग्मेयान् । कै गो राच्चे । मेयान् । पेयान् । हेयान् । अवमेयान् । किङ्कति—इन्धेय । दासोप । धापीप ।

वाऽन्यस्य सयोगादे ६।४।६८

प० वि०—वा अ० । अ-न्यस्य ६।१ सयोगादे ६।१

अर्थ—[गलिङि आत्] घ्रादिभ्योऽन्यस्य सयोगादेराकारान्त-
स्याङ्स्य विकल्पेन एकारादेशो भवति लिङि क्खिति ।

(घ्रु इत्यादि से भिन्न अन्य आकारान्त अङ्गो का विकल्प से एकार
प्रादक्ष होता है लिङ् क्खितित् प्रत्यय क पर रहन पर)

उदा०—ग्लायत् । ग्लेयात् । ग्लायत् । ग्लेयात् ।

न ल्यपि ६।४।६९

अर्थ—न्यपि परतो घुमास्थागापाज्हातिसा यदुक्तं तन्न भवति ।

(ल्यप के पर रहन पर घ्वादि धातुओं को जो कहा गया सो नहीं होता)

उदा०—प्रदाय । प्रघाय । प्रमाय । प्रस्त्राय । प्रगाय । प्रपाय । प्रहाय ।

अवसाय ।

लुङ् लङ् लृङ् क्ष्वडुदात्त ६।४।७१

प० वि०—लुङ् लङ् लृङ्क्षु ७।३ अट् १।१ उदात्त १।१

स०—लुङ् च लङ् च लृङ् चेति लुङ् लङ् लृङ्, तेषु ।

अर्थ—लुङ् लङ् लृङ् इत्येतेषु परतोऽङ्स्य अङ्गागमा भवति,
उदात्तश्च स भवति । (इनक पर रहन पर अङ्ग को अट का आगम होता
है और वह उदात्त होता है)

उदा०—लुङ्—अकर्षीत् । अहर्षीत् । लङ्—अकरोत् । अहरत् ।

लृङ्—अकरिष्यत् । अहरिष्यत् ।

आडजादीनाम् ६।४।७२

प० वि०—आट् १।१ अजादीनाम् ६।३

अर्थ—[लुङ् लङ् लृङ्क्ष्वडुदात्त] अजादीनामङ्गानामाङगमो
भवति एतेषु परत उदात्तश्च स भवति ।

(इनक पर रहने पर अजादि अङ्गो को आट का आगम होता है और वह
उदात्त होता है)

उदा०—लुङ्—ऐधिष्ट । लङ्—ऐधत् । लृङ्—ऐधिष्यत् ।

न माङ्योमे ६।४।७४

अर्थ—[लुङ् लङ् लृङ्क्षु] माङ्योमे लुङ् लङ् लृङ्क्षु यदुक्तं

‘तन्न भवति । (माङ् के योग में इनके परे रहने पर जो कुछ कहा गया है, सो नहीं होता है)

उदा०—मा भवान् कार्पान् । मा स्म करोत् ।

अचि शुधातुभ्रुवा य्वोरियङ्वङी ६।४।७७

प० वि०—अचि ७।१ शुधातुभ्रुवाम् ६।३ य्वो ६।२ इयङ्वङी १।२ स०—रनुश्च धातुश्च भ्रूश्च शुधातुभ्रुवः तेषाम् । इश्च इश्चेति यूतयो य्वोः । इयङ् च उयङ् च इयङ्वङी ।

अर्थ—रनु-धातु भ्रू इत्येतेषाम् इवणोपगणयोः स्थाने इयङ् उयङ् इत्येतावादेशो भवतोऽचि परतः । (रनुप्रत्ययान्त इवर्णान्त उवर्णान्त धातु ग्रीर भ्रू भङ्ग के इवर्ण ग्रीर उवर्ण के स्थान में इयङ् ग्रीर उयङ् आदेश होता है भजादि प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—आप्नुवन्ति । धातोः—चिजियतुः । चित्तियुः । लुलुयतुः । लुलुवुः । नियौ । नियः । लुयौ । लुवः । क्व किरन्तं धातुत्वं न जहाति इति परिभाषया धातुत्वम् भ्रू—भ्रुवौ । भ्रुवः ।

सि०—आप्नु । आप कि । आप् अन्ति । आप् शु अन्ति । आप् न उयङ् अन्ति । आप्नुव् अन्ति । आप्नुवन्ति ।

अभ्यासस्यामवर्णौ ६।४।७८

प० वि०—अभ्यासस्य ६।१ असवर्णौ ७।१॥

अर्थ—[य्वोरियङ्वङी अचि] अभ्यामस्येवर्णोऽर्णान्तस्य असवर्णौ-ऽचि परत इयङ् उयङ् इत्येतावादेशो भवतः । (इवर्णान्त ग्रीर उवर्णान्त अभ्याम की असवर्ण भजादि प्रत्यय के परे रहने पर इयङ् ग्रीर उयङ् आदेश होता है)

उदा०—इयेप । उयोप ।

सि०—इप् । इप् णिट् । इप् तिप् । इप् णल् । एप् अ । इप् एप् अ । इ एप् अ । इयङ् एप् । इय् एप् । इयेय ॥ उप् ॥ उयोप ।

स्त्रियाः ६।४।७९

प० वि०—स्त्रियाः ६।१

अर्थ—[अचि इयङ्] स्त्री इत्यंतरयाजादौ प्रत्यये परतः इयङ् आदेशो भवति । (स्त्री शब्द को भजादि प्रत्यय के परे रहने पर इयङ् आदेश होता है)

उदा०—स्त्री । स्त्रियौ । स्त्रियः । स्त्रियम् स्त्रीम् । मित्र्यौ । मित्र्यः

स्त्रीः । स्त्रिया । स्त्रीभ्याम् । स्त्रीभिः । स्त्रियै । स्त्रीभ्याम् । स्त्रीभ्यः ।
 स्त्रियाः । स्त्रीभ्याम् । स्त्रीभ्यः । स्त्रियाः । स्त्रियोः । स्त्रीणाम् । स्त्रियाम् ।
 स्त्रियोः । स्त्रीषु । हे स्त्रि । हे स्त्रियो । हे स्त्रियः ॥

सि०—स्त्रियै । स्त्री डे । स्त्री आट् ए । स्त्री आ ए । स्त्री ऐ । स्त्र
 इयङ् ऐ । स्त्रिय् ऐ । स्त्रियै । स्त्रीणाम् । परत्वानुदागमः ॥ ❀हलादौ
 नहि किञ्चिद् वैशिष्ट्यम् अमि शसि च अग्रिमेण सूत्रेण विकल्पः❀

वाऽम्शसोः ६।४।८०

प० वि०—चा अ० । अपशसोः ७।२

अर्थ—[स्त्रियाः इयङ्] अमि शसि च परतो वा इयङादेशो
 भवति स्त्रियाः* (अम् ओर शस् के परे रहने पर स्त्री शब्द को विकल्प से इयङ्
 मादेश होता है)

उदा०—स्त्रियम् । स्त्रीम् । स्त्रियः । स्त्रीः ॥

इणो [यण्] ६।४।८१

एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य ६।४।८२

प० वि०—एः ६।१ अनेकाचः ६।१ असंयोगपूर्वस्य ६।१ न एक इति
 अनेकः । अनेकोऽच यस्मिन् इति अनेकाच् तस्य अनेकाचः । अविद्य-
 मानः संयोगः पूर्वः यस्मात् स असंयोगपूर्वः तस्य ॥

अर्थ—[अचि धातोः यण्] असंयोगपूर्वस्यानेकाच इष्यन्तस्य
 धातोर्ङस्य यण् आदेशो भवति अचि परतः । (नहीं है संयोग पूर्व जिसका
 ऐसे अनेक अच् वाले इष्यन्त धातु अङ्ग का यण् मादेश होता है अजादि
 प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—निन्यतुः निन्युः । ग्रामण्यौ । ग्रामण्यः ।

सि०—णीञ् । णी । नी लिट् । नी अतुस् । नी नी अतुस् । नि
 नी अतुस् । निन्य् अतुस् । निन्यतुः ॥

ह्रस्नुवोः सार्वधातुके ६।४।८३

प० वि०—ह्रस्नुवोः ६।२ सार्वधातुके ७।१

अर्थ—[अनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य अचि यण्] हु इत्येतस्य अङ्गस्य
 श्नुप्रत्ययान्तस्यानेकाचोऽसंयोगपूर्वस्याजादौ सार्वधातुके परतो यणादेशो
 भवति । (हु ओर श्नु प्रत्ययान्त अनेक अच् वाला जो असंयोग पूर्व उसका

गमनहनजनखनघसां लोपः किङित्यनङि ६।४।६८

प० वि०—गमहनजनखनघसाम् ६।३ लोपः १।१ किङिति ७।१ अनङि ७।१ स०—गमश्च हनश्च जनश्च खनश्च घश्चेति गमहनजन-खनघसः तेषाम् । न अङ् इति अनङ् तस्मिन् ।

अर्थ—[उपधायाः अचि लोपः] गह-हन-जन-खन-घस इत्येतेषा-मङ्गानामुपधाया लोपो भवति अजादौ किङिति अनङि परतः । (इन मङ्गो की उपधा का लोप होता है, अङ् भिन्न अजादि किङ् इति प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—जम्मतुः । जम्मु । जघ्नतुः । जघ्नुः । जज्ञे । जज्ञाते । जशिरे । चस्नतु । चरुनुः । जक्तुः । जक्तुः । अनङि इति किम् । अगमत् । अघसत् ।

सि०—गम् लु । गम् लिट् । गम् अतुस् । गम् अतुस् । गम्^१ गम् अतुस् । ग गम् अतुस् । जम्मतुस् । जम्मतुः । हन् अतुस् । हन् अतुस् । हन् हन् अतुस् । ह हन् अतुस् । म^२ हन् अतुस् । ज^३ हन् अतुस् । जघ्नतुस्^४ । जघ्नतुः । जन् लिट् । जन् त । जन् एश् । जन् ए । जन् जन् ए । ज ज् ए । ज ज् ए^५ ए । जज्ञ् ए । जज्ञे । अद् लिट् । घसल्ल^६ लिट् । घस् अतुस् । घस् अतुस् । घस् घस् अतुस् । घ घस् अतुस् । म घस् अतुस् । म घ् अतुस् । ज घस् अतुस् । जक्प^७ अतुस् । जक्पतुस् । (जक्तुः) अथवा घल्ल अदने इत्यस्यैतद्रूपम् ।

घसिभसो[हंलि] च ६।४।१००

हुभलभ्यो हेधिः ६।४।१०१

प० वि०—हुभलभ्यः ५।३ हेः ६।१ धिः १।१ स०—हुरच भल्ल चेति हुभलः तेभ्यः ।

अर्थ—[हलि] ॥ इत्येतस्माद् भल्लन्तेभ्यश्चोत्तरस्य हलादेर्हेः स्थाने धिः आदेशो भवति । (हु घोर भल्लन्त अङ्ग के पश्चात् हलादि हि के स्थान

१—द्विर्वचनेऽपि (१. १. ५८) २—कुहोश्चुः (७. ४. ६२) ३—अभ्यासे चचं (८. ४. १४) ४—अभ्यासाच्च (७. ३. ५५) ५—स्तोः श्चुना श्चुः (८. ४. ३९) ६—निट्यन्यतरस्याम् (२. ४. ४०) ७—शासिबसिपसीनाञ्च (८. ३. ६०)

मे धि यह आदेग होता है)

उदा०—जुहुवि । मिन्द्रि । छिन्द्रि । दलि इति मिम-रुद्रिदि ।

चिणो लुक् ६।४।१०८

प० वि०—चिणः ५।१ लुक् १।१

अर्थ—चिण उत्तरस्य प्रत्ययस्य लुक् भवति ।

(चिण् के उत्तर प्रत्यय का लुक् होना है)

उदा०—अकारि । अहारि । चिण्माचर्मणोरित्यत्र दृष्टव्यम् ।

अतो हे ६।४।१०५

प० वि०—अतः ५।१ हेः ६।१

अर्थ—[लुक्] अदन्तादङ्गात् उत्तरस्य हेल्कु भवति ।

(अदन्त अङ्ग के पदवात हि का लुक् होना है)

उदा०—पच । पठ । खाद ।

उत्तश्च प्रत्ययादमयोगपूर्वान् ६।४।१०३

प० वि०—उतः ५।१ च अ० । प्रत्ययान् ६।१ असंयोगपूर्वान् ५।१

स०—अधिग्रमानः संयोग पूर्वः यस्मात् । असंयोगपूर्वः तस्मान् ।

अर्थ—[हेल्कु] असंयोगपूर्वादुच्चारान्तान् प्रत्ययादङ्गादुत्तरस्य हेल्कु भवति । (नहीं है संयोग पूर्व जिसका एम उच्चारान्त प्रत्यय के पदवात हि का लुक् होना है)

उदा०—चिनु । मुनु ।

लोपश्चम्यान्यतरस्या म्यो ६।४।१०७

प० वि०—लोपः १।१ च अ० । अस्य ६।१ अन्यतरस्याम् । अ० म्योः ७।२ स०—मश्च यश्चेति म्यो तयो म्यो ।

अर्थ—[उतः असंयोगपूर्वान्] मामध्यान् पष्ठीभ्यां विपरिणम्येते एते पदे] अस्य असंयोगपूर्वम्योऽकारस्य प्रत्ययान् अन्यतरस्यां लोपो भवति मकारादौ वकारादौ च प्रत्यये परत । ङ-लुगिति वर्तमाने लोपः प्रथमम् अन्यलोपार्थम् (नहीं है संयोग पूर्व जिसका एम उच्चारान्त प्रत्यय का विकल्प मे सां होना है मकारादि घोर वकारादि प्रत्यय के परे रहे पर)

उदा०—मुन्यः । मुनुयः । मुन्मः । मुनुमः । तन्यः । तनुयः । तन्मः । तनुमः ।

सि०—पुञ् । सु लट् । सु लृ । सु वम् । सु श्नु वस् । सु नु वस् । मुन्यः । मुनुवः ।

नित्य करोते: ६।४।१०८

प० वि०—नित्यम् १।१ करोते: १।१

अर्थ—[उतः स्वीः] करोतरुत्तरस्य उकारप्रत्ययस्य यकारमकारादौ प्रत्यये परतो नित्य लोपो भवति । (इ अङ्ग के पश्चात् उकार प्रत्यय का नित्य हो लोप होता है यकारादि और मकारादि प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—कुर्यः । कुर्मः । ऋउकारलोऽन्य दीर्घविधायस्थानियद्भावाद् हलि चेति दीर्घत्वं प्राप्तं न भवत्युः । इति प्रातिपिथ्यतेः

ये च ६।४।१०९

प० वि०—ये ५।१ च अ० ।

अर्थ—[उतः लोपः नित्यम्] करोतेरुत्तरस्योकारप्रत्ययस्य नित्यं लोपो भवति यकारादौ च प्रात्यये परतः । (इ अङ्ग के पश्चात् उकार प्रत्यय का नित्य लोप होता है यकारादि प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—कुर्यान् । कुर्याताम् । कुर्युः ऋविध्यादिलिङि अयं विधिः आशिपि तु रिङ्शयग्लिङ्शु इत्यनेन रिङादेशे कृते क्रियात् । क्रिया-स्ताम् । क्रियासुः इति रूपाणि भवन्ति

अत उत्सार्वधातुके ६।४।११०

प० वि०—अतः ६।१ लृ १।१ सार्वधातुके ७।१

अर्थ—[करोतेः क्तिङिति] करोतेरुत्तरस्य स्थाने उकारादेशो भवति । सार्वधातुके क्तिङिति परतः । (इ अङ्ग के अकार के स्थान में उकारादेश होता है सार्वधातुक क्तिङिति प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—कुरुतः । कुर्वन्ति ।

सि०—सार्वधातुनमपित् इत्यत्र द्रष्टव्या ॥

श्नसोरत्लोपः ६।४।१११

प० वि०—श्नसोः ६।२ अलोपः १।१ स०—श्नश्च अश्चेति श्नसो तयोः श्नसोः (अकारस्य पररूपत्वम् शक्न्वादित्वात्) अतो लोपः अलोपः (प० वत्पु०)

अर्थ—[सार्वधातुके क्तिङिति] श्नस्यास्तेश्च अकारस्य लोपो भवति

सार्वधातुके क्चित्ति परत । (इत्न ग्रीर अस्ति क अकार का लोप हाता है सावधातुक् किन् दिन् प्रत्यय के पर रहन पर)

उदा०—रुद्ध रुन् । रुन्ति । भिन्त । भिन्दन्ति ॥ अग्ने —न्त । सन्ति । स्य । स्थ । स्य । स्म ॥

ज्ञाभ्यस्तयोरात् ६।८।११०

प० वि०—ज्ञाभ्यस्तयो ६।० आत् ६।१

अर्थ—[सार्वधातुके क्चित्ति लोप] ज्ञा अभ्यस्त इत्येतयोराकारभ्य लोपो भवति सार्वधातुके क्चित्ति । (इत्ना ग्रीर अभ्यस्त आकार का लोप हाता है सावधातुक् किन् दिन् प्रत्यय के पर रहन पर)

उदा०—लुनते । लुनताम् । अलुनत । पुनते । पुनताम् । अपुनत । अभ्यस्तस्य—मिमते । मिमताम् । अमिमत । सजिह्वे । सजिह्वाम् । सजिह्वत ॥

सि०—लून् । लू लट् । लू म । लू ज्ञा क । लू ना अत^१ । लुन्^२ अत । लुनत । लुनते । लू लोट् । लू ज्ञा म । लू ना अत । लुन् अत । लुनत । लुनते । लुनन् आम^३ । लुनताम् । लू लट् । अट् लू ज्ञा म । अ लु न् अत । अलुनत ॥ मा^४ माने । मा लट् । मा क । मा मा म । म मा अत । म म् अत । म मत । मि^५ मत । मिमते ॥ ओहा^६ गतौ इत्यस्य रूपम् सजिह्वे इति ॥

ई हल्यघो ६।४।११३

प० व०—ई १।१ हलि ४।१ अघो ६।१ स०—न घु इति ऋयु तस्य अघो

अर्थ—[ज्ञाभ्यस्तयोरात् सार्वधातुके क्चित्ति] ज्ञा अभ्यस्तयोरात् स्थाने इकारादेशो भवति हलादी सार्वधातुके क्चित्ति । (इत्ना ग्रीर अभ्यस्त अङ्ग क आकार के स्थान में इकार आदेश हाता है सावधातुक् हलादि कित्ति डित् प्रत्यय के पर रहन पर)

उदा०—लुनीत । लुनीय । पुनीत । पुनीय । अभ्यस्तानाम्—मिमिते । मिमीपे । मिमीचे । सजिहीते । सजिहीपे । सजिहीचे । इति स्मि—लुनन्ति । पुनन्ति ॥

१—आत्मनपदध्वनत (७ १ ५) २—प्रादाना ह्रस्व (७ ३ ८०)

३—आमेत (३ ४ ६०) ४—भृशामिन् (७ ४ ७६)

[इद्]दस्तिस्स्य ६।४।११४

मियोऽन्यतरस्याम् ६।४।११५

प० वि०—भियः ६।१ अन्यतरस्याम् अ० ।

अर्थ—[सार्वधातुके हलि किञ्चिद् इत्] भी इत्येतस्य अङ्गस्यान्यतरस्याम् इकारादेशो भवति सार्वधातुके हलादौ किञ्चिद् परतः ।

(भी इस अङ्ग का इकार आदेश होता है विकल्प से सार्वधातुक हलादि कित् डित प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—विभितः । विभीतः । विमिथः । विभीथः । विभिद्यः । विभीवः । विभिमः । विभीमः । हलि इति किम्—विभ्यति । किञ्चितीति किम्—विभेति ॥

जहातेश्च ६।४।११६

प० वि०—जहातेः ६।१ च अ० ।

अर्थ—[सार्वधातुके हलि किञ्चिद् इत् अन्यतरस्याम्] जहातेश्च इकारादेशो भवति अन्यतरस्यां सार्वधातुके हलादौ किञ्चिद् ।

(आहोक् त्यागे अङ्ग को इकारादेश होता है विकल्प से सार्वधातुक हलादि कित् डित प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—जहितः । जहीतः । जहियः । जहीथः । हलाधिर्येव जहति । हा मि ॥ किञ्चितीत्येव । जहाति । सार्वधातुक इत्येव । हीयते । जेहीयते ॥

आ च हौ ६।४।११७

प० वि०—आ १।१ च अ० । हौ ७।१

अर्थ—[इत् अन्यतरस्याम् जहाते] जहातेराकारश्चान्तादेशो भवति इकारश्चान्यतरस्यां हौ परतः । पक्षे ई । (आहोक् त्यागे अङ्ग को आकार और इकार अन्तादेश, विकल्प से होता है हि के परे रहने पर और पक्ष में ईकार)

उदा०—जहाहि । जहिहि । जहीहि । भट्टिकाव्ये—“जहिहि जहीहि जहाहि रामभार्याम्” ।

लोपो यि ६।४।११८

प० वि०—लोप १।१ यि ७।१

अर्थ—[जहातेः किञ्चिद् सार्वधातुके] जहातेर्लोपो भवति यकारादौ सार्वधातुके किञ्चिद् परतः । (आहोक् अङ्ग का लोप होता है सार्वधातुक

यवारादि कित् डित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—जह्यात् । जह्याताम् । जह्युः । ऋनिध्यादौ लिटि अय विवि-
न तु आशिपि तस्यार्थधातुत्वात् तत्र तु हंयात् । हेयास्ताम् । हेयामु ।
हेया । हेयास्तम् । हेयास्त । हेयासम् । हेयास्य । हेयास्म । एलिटि
इत्येत्वमुक्ते

ध्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ६।४।११६

प० वि०—ध्वसो ६।० एन् १।१ हौ ७।१ अभ्यासलोप १।१
च अ० ।

अर्थ—धु-अस् इत्येतयोरेकारादेजो भवति हो परतोऽभ्यासलोपश्च ।
(धु सज्जक और अस भङ्ग का एकार आदेश होता है हि के पर रहन पर
और अभ्यास का लाप भा होता है)

उदा०—ऋलोपश्चेत्यत्र हौ शकारो निर्दिष्टौ । तत्रेको लोपभ्य
सम्बन्धी । द्वितीयस्तु विभक्ते अत एव लोपश् इत्यत्र लोपश् इत्यत्र
विज्ञेयम् । तथा च सति लोपस्य शिखान सर्गस्य अभ्यासस्य लोपो
भवति, न अलोऽन्त्यस्य हेहि । वेहि । अस्ते । एरि ।

सि०—ऋनाम्नाङ्गारेने रूपे । अन्येषां तु घुमज्जनानामुदाहरण न
सम्भवति । निररणेन हेर्व्यवधानान् अस् लोट् । अस् हि । म् हि ।
ए हि । ए वि । ऋ सकारान्य एते ऋने असिद्धवदनामान् अविनासूत्रेण
तस्य एवभ्यासिद्धत्वात् हुमन्म्योहेर्विरिति विभावः ॥

अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि ६।४।१००

अत ६।१ एवहल्मध्ये ७।१ अनादेशादे ६।१ लिटि ७।१ स०—
एरशब्दोऽयमसहायवाची । एरश्च एरश्च एकी । एकी च तौ हली च
इत्येकहली । एरहलोर्मध्ये इति द्विवचनान्तस्य पष्ठीसमासः ॥ अविद्य-
मान आदेश आदिर्यस्येति अनादेशादि तस्य अनादेशादेरङ्गस्य ॥

अर्थ—[किङ्कति एन् अभ्यासलोपश्च] अनादेशादेरङ्गस्य असहाय-
योर्हलोर्मध्ये वर्तमानस्य एकारादेशो भवति लिटि किङ्कति परतोऽभ्यास-
लोपश्च । (नही हुआ है आदि आदेश में जिसके एस भङ्ग के असहाय हला के
बीच में वर्तमान अकार व स्थान में एकार आदेश होता है और अभ्यास का

१—इनसारल्लाप (६ ४ २३) २—असिद्धवदनामात् (६ ४ २२)

हुमन्म्यो हपि (६ ४ १०१)।

लोप भो, लिट् कित् डित् प्रत्यय के पर रहन पर)

उदा०—रेणुत् । रेणु । येमत् । येमु । पेचत् । पेचु ॥

सि०—रण शब्दार्थे, यम उपरमे ॥ पच् लिट् । पच् पच् अतुस । पेच् अतुस । पेचतु ।

थलि च सेटि ६।४।१२१

प० ०—थलि ७।१ च अ० । सेटि ७।१

अर्थ—[सर्वे सूत्रमनुवर्त्तते] अनादेशादेरङ्गस्य असहाययोर्हलोर्मध्ये-
वर्तमानस्याकारस्य स्थाने एकारादेशो भवति सेटि थलि परतोऽभ्यास-
लोपश्च । (इट् के साथ थल के पर रहने पर अनादेशादि अङ्ग के असहाय हलो
के बीच में वर्तमान अव्यय क स्थान में एकार आदेश होता है और अभ्यास का
लोप भी होता है)

उदा०—पेचिथ । शेचिथ । सेटीति किम्—पपन्थ ॥

सि०—पच् लिट् । पच् थल् । पच् इट् थ । पच् पच् इथ । पेच्
इथ । पेचिथ ।

अर्वणस्त्रसावनञ्च ६।४।१२८

मघवा बहुलम् ६।४।१२८

प वि० मघवा (पष्ठ्यर्थे प्रथमा) बहुलम् १।१

अर्थ—[तृ] मघवन्शब्दस्य बहुल तृ इत्ययमादेशो भवति ।

(मघवन् अङ्ग का बहुल करके तृ यह आदेश होता है)

उदा०—मघवान् । मघवन्तो । मघवन्त । मघवन्तम् । मघवन्तौ ।
मघवत । मघवता । मघवद्भ्याम् । मघवद्भि । मघवते । मघवद्-
भ्याम् । मघवद्भ्य । मघवत । मघवद्भ्याम् । मघवद्भ्य । मघवत
मघवतो । मघवताम् । मघवति । मघवतो । मघवत्सु । हे मघवन् ।
हे मघवन्ती । हे मघवन्त । न च भवति । मघवा । मघवानो । मघ-
वान् । मघवानम् । मघवानौ । मघोन । मघोना । मघवभ्याम् । मघ
वभि । मघोने । मघवभ्याम् । मघवभ्य । मघोन । मघवभ्याम् ।
मघवभ्य । मघोन । मघोना । मघोनाम् । मघोनि । मघोनो । मघ
वसु । हे मघवन् । हे मघवानो । हे मघवान ।

सि०—मघवन् । मघवत् । मघवत् । मघवान् । इतोऽग्रे सर्वेषा

रूपाणां साधनं निष्ठेति^१ सूत्रे द्रष्टव्यम् । मघय इत्यत्र तु मघयन् सु । मघयन् स् । मघवान् । मघवा । मघौन । इत्यत्र तु मघयन् शस् । मघयन् अस् । मघ उ^२ अन् अस् । मघ उन्^३ अस् । मघोन्^४ अस् । मघोन । एवं सर्वं साधनं पुन पुन अभ्यसनीयम् ।

उस्तुतस्तु द्विविवमेतच्छब्दरूपम् पञ्चमीणादिक कनिन प्रत्ययान्त मघयन् प्रातिपदिकम्, तस्य अनन्तरप्रातिपदिकयन् रूपाणि, अजानो मुपि तु 'श्वयुजमघोनामतद्विते' इति सम्प्रसारणम् । अपर मघमत्यास्तीति मघयन् मतुपप्रत्ययान्तम्, तस्य अन्यमतुपप्रत्यया तवद्वरूपाणि द्रष्टव्यानि । एव च सति विनाप्येतत्सूत्रेणोभयप्रसारकाणि रूपाणि सिद्ध्यन्ति इति मीमांसना ।

मस्य ६।४।१२६

अर्थ—इतोऽग्रे आ अन्यायपरिसमाप्ते वक्ष्यमाणानि कार्याणि यद्वस्य भस्य भवन्ति इत्यधिनारो वेदितव्य ।

(यहा स आगे कह जान वाले, अभ्याय की परिसमाप्ति तक, वाय भस जव के हाते ह हम बात का अधिकार समझना चाहिए)

वसो सम्प्रसारणम् ६।४।१३१

प० वि०—उसा ६।१ सम्प्रसारणम् १।१

अर्थ—यन्तन्त्य भव्य सम्प्रसारण भवति ।

(वसु है अत मे जिन्क एम नमस्तक अङ्ग का सम्प्रसारण होता है)

सद्वा०—विद्वान् । विद्वासी । विद्वास् । विद्वासम् । विद्वासी । विदुप । विदुपा । विद्वन्भ्याम् । विद्वद्भि । विदुपे । विद्वद्भ्याम् । विद्वद्भ्य । विदुप । विद्वद्भ्याम् । विद्वद्भ्य । विदुप । विदुपो । विदुपाम् । विदुपि । विदुपो । विद्वत्सु । हे विद्वन् । हे विद्वासी । हे विद्वान्स ॥

१—सवनामस्थान चासम्बुद्धौ (६ ४ ८) २—स्वादित्वसवनामस्थान (१. ४. १७) यचि मम् (१ ४ १८) मस्य (६ ४ १२६) श्वयुजमघोनामतद्विते (६ ४ १२३) इष्यण सम्प्रसारणम् (१ १ ४५) ३—पर सतिक्पं सहिता (१ ४ १०७) सहितायाम् (६ १. ७०) एक पूर्वपरयो (६ १ ८१) अग्नि पूर्व (६ १ १८३) सम्प्रसारणाच्च (६ १ १०४) ४—मादृष्टुण. ६ १ ८४)

सि०—विद्वान् । विद् शट्^१ । विद् वसु^२ । विद्वस् । विद्वस् सु ।
विद्वस्^३ सु । विद्वानुम्^४ स् स । विद्वान्स् । विद्वान् । विदुष ।
विद्वस् शस् । विद्वस् अस् । विद् उ^५ यस् अस् । विद् उत्^६
अस् । विदुस अस् । विदुप्^७ अस् । विदुष । विद्वस् भ्याम् । विद्वद्^८
भ्याम् । विद्वद्भ्याम् । विद्वत्सु । विद्वस सुप् । विद्वद्^९ सु । विद्वत्^९
सु । विद्वत्सु । अन्यत्सर्प साधनमुच्चारणमात्रेण सरलतया एव
कर्त्तव्यम् ।

स्वयुवमघोनामतद्धिते ६।४।१३३

प वि०—स्वयुवमघोनाम् ६।३ अटद्धिते ७।१

अर्थ—[अल्लोपोऽन इत्यत अन अपकृत्यते] अन्न-ताना भसज्ञकाना
श्वन् युवन् मघयन् इत्येषामङ्गानामतद्धिते सम्प्रसारण भवति ।

(अन् है अत म जिसके एमे भ सना वाले श्वन् युवन् और मघयन् अङ्गो
का ताद्धित भिन्न प्रत्यय के पर रहन पर सम्प्रसारण होता है)

उदा०—श्वा । श्वानो । श्वान । श्वानम् । श्वानो । शुन । शुना ।
श्वभ्याम् । श्वभि । शुने । श्वभ्याम् । श्वभ्य । शुन । श्वभ्याम् ।
श्वभ्य । शुन । शुनो । शुनाम् । शुनि । शुनो । श्वसु । हे श्वन् । हे
श्वानो । हे श्वान । युवा । युवानो । युवान । युवानम् । युवानो ।
यून । यूना । युवभ्याम् । युवभि । यूने । युवभ्याम् । युवभ्य । यून ।
युवभ्याम् । युवभ्य । यून । यूनो । यूनाम् । यूनि । यूना ।
युवसु ॥ हे युवन् । युवानो । युवान ।

सि०—श्वा इत्यस्य साधन मघया इतिवत् कर्त्तव्यम् । शुन इत्यत्र
श्वन् शस् । श्वन् अस् । श् उ अन् अस् । शुन् अस् । शुन । यून
इत्यत्र तु युवन् शस् । युवन् अस् । यु उ अन् अस् । यु उन् अस् । यून
अस् । यून

१—लट शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरण (३ २ १२४) २—विदे
शतुवमु (७ १ ३६) ३—अवसतस्य चाघातो (६ ४ १४) ४—उगिदचा
सवनामस्थानाऽघातो (७ १ ७०) गिदचोऽयात्पर (१ १ ४६) ५—स्वादि
प्लवसवनामस्थान (१ ४ १७) यचि भम (१ ४ १८) भस्य (६ ४ १२९)
वसो सम्प्रसारणम् (३ ४ १३१) इग्यण सम्प्रसारणम् (१ १ ४५) ६—
सम्प्रसारणाच्च (६ १ १०४) ७—आदश्चप्रथमयो (८ ३ ५६) ८—वसुसुतुम्
स्वनद्वहा ९ (८ २ ७२) ९—खरि च (८ ४ ५५)

अल्लोपोऽनः ६।४।१३४

प० वि०—अल्लोपः १।१ अनः ६।१ स०—अतः लोपः अल्लोपः ।

अर्थ—अनन्तस्य भस्य अकारलोपो भवति । (अन् है अन्त में जिसके ऐसे भसजकप्रज्ञ के प्रकार का लोप होता है)

उदा०—(राजा । राजानी । राजानः । राजन् । राजानी) राजः । राज्ञा । राजभ्याम् । राजभिः । राज्ञे । राजभ्याम् । राजभ्यः । राज्ञः । राजभ्याम् । राजभ्यः । राज्ञः । राज्ञोः । राज्ञाम् । राज्ञि । राजनि । राज्ञोः । राजसु । हे राजन् । हे राजानी । हे राजनः । तद्वा । तद्वाणौ । तद्वाणः ॥ तद्वाणम् । तद्वाणो । तद्वाणः ।

सि०—राज्ञः । राजन् शस् । राजन् अस । राजन् अस् । राज् व् । अस् । राज् अस् । राजस् । राजः ॥

विभाषा द्विश्योः ६।४।१३६

प० वि०—विभाषा १।१ द्विश्योः ७।२ स०—द्विश्व शीश्चेति द्विश्यो तयोः द्विश्योः ।

अर्थ—[अनः अल्लोपः] द्विश्योः अनो विभाषा अकारलोपो भवति । (द्वि और शी के परे रहने पर अनन्त जो अङ्ग उसके प्रकार का लोप विकल्प से होता है)

उदा०—राज्ञि, राजनि । साम । सामनी । साम्नी । (सामानि) । साम । सामनी । साम्नी । (सामानि) । अन्यत्सर्वं राजन् इतिवत् । सप्त-
म्यामपि तथैव सामनि । साम्नि इति । (हे साम । हे सामन्) ।

सि०—सामन् औ । सामन् शी । सामन् ई । साम्न् ई । साम्नी । सामन् ई । सामान् ई । सामानी । हे सामन् । हे साम् ।

न संयोगाद्वमन्तात् ६।४।१३७

प० वि०—न अ० । संयोगान् १।१ वमन्तान् १।१ स०—वश्च मश्चेति वमी । अन्तश्च अन्तश्चेति अन्तो । वमी अन्तो यस्य तत् वमन्तं तस्मात् वमन्तात् ।

अर्थ—[अल्लोपऽनः] वकारान्तात् मकारान्तात् संयोगादुरत्तस्य अनोऽकारस्य लोपो न भवति । (वकार और मकार है अन्त में जिसके ऐसे संयोग के पश्चात् अन् के अकार का लोप नहीं होता)

उदा०—(यज्वा । यज्वानौ । यज्वान । यज्वानम् । यज्वानी)
 यज्वन । यज्वना । यज्वभ्याम् । यज्वभि । मकारान्तात्—(आत्मा ।
 आत्मानौ । आत्मान । आत्मानम् । आत्मानौ) आत्मन । आत्मना ।
 आत्मभ्याम् । आत्मभि । आत्मने । आत्मभ्याम् । आत्मभ्य । आत्मन ।
 आत्मभ्याम् । आत्मभ्य । आत्मन । आत्मनो । आत्मनाम् । आत्मनि ।
 आत्मनो । आत्मसु । हे आत्मन् । हे आत्मानौ । हे आत्मान ।

आतो घातो ६।४।१४०

प० वि०—आत ६।१ घातो ६।१

अर्थ—[लोप] आकारान्तस्य घातोर्भस्य लोपो भवति ।

(भसत्तक आकारात् घातु का लोप होता है)

उदा०—(सोमपा । सोमपौ । सोमपा । सोमपाम् । सोमपौ)
 सोमप । सोमपा । सोमपाभ्याम् । सोमपाभि । सोमपे । सोमपाभ्याम् ।
 सोमपाभ्य । सोमप । सोमपाभ्याम् । सोमपाभ्य । सोमप । सोमपौ ।
 सोमपाम् । सोमपि । सोमपो । सोमपासु । हे सोमपा । हे सोमपौ । हे
 सोमपा ।

सि०—सोमप । सोमपा शस । सोमप^१ अस् । सोमपस । सोमप ।

ति विशतेर्दिति ६।४।१४२

प० वि०—ति (लुप्तपट्टीन्म्) विशते ६।१ दिति ७।१

अर्थ—[लोप] भस्य विशतस्तिशब्दस्य लोपो भवति दिति प्रत्यये
 परत । (भसत्तक विशति के ति शब्द का लोप होता है दित् प्रत्यय क पर
 रहन पर)

उदा०—विशक । विश शतम् । एकविश शतम् ।

सि०—विशत्या क्रीत विशक । विशति टा ड्वुन्^१ । विशति घु ।
 विशति अक । विश अक । विशक^२ । विशक सु । विशक ।
 विशम्^३ । विशतिरधिका अस्मिन् शते इति विश शतम् । एर्णविशति
 रधिका अस्मिन् शते इति एर्णविश शतम् । विशति ड^४ । विशति अ ।
 विश अ । विश अ । विश^५ सु । विश अम् । विशम् । एकविशम् ।

१—विशन्त घातु व न जहाति दयन एव घातु वम् । २—विशतिविशदभ्या
 ड्वुत्सत्तायाम् (५ १ १४) ३—अतो गुण (६ १ ६४) ४—गदतविशतेश्च
 (५ २ ४६)

टे ६।४।१४३

प० वि०—टे ६।१

अर्थ—[डिति लोप] भसन्नस्याङ्गस्य टे लोपो भवति डिति प्रत्यये परत । (भसन्नक षङ्ग की टि का लोप होता है डित् प्रत्यय के परे रहन पर)

उदा०—कति ।

सि०—किम मर्यापरिमाणे डति च इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

नस्तद्धिते ६।४।१४४

प० वि०—न ६।१ तद्धिते ७।१

अर्थ—[टें लोप] नकारान्तस्य भन्य टेर्लोपो भवति तद्धिते परत । (नकारान्त भन्यक षङ्ग की टि का लोप होता है तद्धित के परे रहन पर)

उदा०—अग्निशर्मणोऽपत्यम् आग्निशमिः ।

सि०—अग्निशर्मन् इत् । अग्निशर्म इ । अग्निशर्म इ । अग्निशर्मि मु । आग्निशर्मि ।

अह्णष्टखोरेव ६।४।१४५

प० वि०—अह् ६।१ टखो ७।१ अ० ।

अर्थ—[टे लोप] अहन् इत्येतस्य टखोरेव परतष्टेर्लोपो भवति । (अहन् १०२ की टि का लोप होता है ट और ख के ही पर रहन पर ही)

उदा०—इयह । इयह । अहीन क्रतु ।

सि०—अह्ना समूह क्रतु अहीन क्रतु । अहन् ख × अह् समूहे खो घक्त-य × अहन् ईन । अह् ईन । अहीन मु । अहीन ।

ओर्गुण ६।४।१४६

प० वि०—ओ ६।१ गुण १।१

अर्थ—[तद्धिते] उवर्णा-तस्य भस्य गुणो भवति तद्धिते परत । (उवर्णा-त भन्यक षङ्ग का गुण होता है तद्धित के परे रहन पर)

उदा०—ओपगय । सावनं वृद्धिरानैच् इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

ढे लोपोऽकद्रवा ६।४।१४७

प० वि०—ढे ७।१ लोप १।१ अकद्रवा ६।१

अर्थ—[उ] उवर्णा-तस्य भस्य अकद्रवा लोपो भवति ढे परत ।

(ढ प्रत्यय के परे रहने पर उवर्णान्ति भसन्न अङ्ग का लोप होता है, कद्रु शब्द को छोड़ कर)

उदा०—कामएडलेयः । शैतवाहेयः ।

सि०—कमएडलु ढञ्^१ । कमएडल एय । कामएडल् एय । कामएडलेयः ।

यस्येति च ६।४।१४८

प० वि०—यस्य ६।१ ईति ७।१ च अ० । स०—इश्च अश्च इति यम् तस्य यस्य ।

अर्थ—[तद्धिते] इवर्णान्तस्य अवर्णान्तस्य च भस्य अङ्गस्य ईकारे तद्धिते च परतो लोपो भवति । (इवर्णान्त और उवर्णान्त भसंश्व अङ्ग का लोप होता है ईकार और तद्धित के परे रहने पर)

उदा०—इवर्णान्तस्य ईकारे—दाक्षी । प्लाक्षी । इवर्णान्तस्य तद्धिते—दीलेयः । अवर्णान्तस्य ईकारे—गौरी । कुमारी । अवर्णान्तस्य तद्धिते—दाक्षिः । प्लाक्षिः ।

दाक्षी । दाक्षि ङीप्^२ । दाक्षि ई । दाक्ष् ई । दाक्षी सु । दाक्षी । दुलि ढक्^३ । दुलि ढ । दुलि एय । दुल् एय । दौल् एय । दीलेय सु । दीलेयः । गौर ङीप्^४ । गौर ई । गौरी सु । गौरी । ढक्षस्य अपत्यम् दाक्षिः । दक्ष इञ्^५ । दक्ष् इञ् । दाक्ष् इ । दाक्षि सु । दाक्षिः ।

सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्याना [य उपधायाः] ६।४।१४९

हलस्तद्धितस्य च ६।४।१५०

प० वि०—हलः ५।१ तद्धितस्य ६।१ च अ० ।

अर्थ—[उपधायाः यः लोपः ईति] भसङ्गकस्याङ्गस्य हल उत्तरस्य तद्धितस्य यकारस्य उपधाया ईति परतो लोपो भवति । (भसङ्गक अग के हल् तद्धित के यकार की उपधा का लोप होता है ईकार के परे रहने पर)

उदा०—गार्गी । वात्सी ।

सि०—गर्ग यञ् । गर्ग य । गार्ग्य ङीप्^१ । गार्ग्य ई । गार्ग्य् ई ।

१—चतुष्पादस्यो ढञ् (४. १. १३५) २—इतो मनुष्यजातेः (४. १. ६५)

३—इतश्चानिङ् (४. १. ११२) ४—पिद्गौरादिभ्यश्च (४. १. ४१)

५—अत इञ् (४. १. ८५) ६—यञश्च (४. १. १६)

गार्गी सु । गार्गी ।

तुरिष्ठेमेयस्म ६।४।१५४

प० वि०—तुः ६।१ इष्ठेमेयस्म ७३

अर्थ—तृ इत्येतस्याङ्गस्य इष्ठन् इमनिच् ईयमुन् इत्येतेषु परतो लोपो भवति । (तृ इस् भङ्ग का लोप होता है इष्ठन् इमनिच् प्रीर ईयमुन् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—आमुर्तिं करिष्ठः । विजयिष्ठः । दोहीयसी धेनुः ।

❀ इमनिग्प्रदणमुत्तरार्थम् इतरौ तु तुरद्यन्दसीति भवतः ❀

सि०—करिष्ठः । कृ तृन् । कर्तृ इष्ठन् । कर् इष्ठ । करिष्ठ सु । करिष्ठः । विजि तृन् । विजेतृ । विजेतृ इष्ठन् । विजे इष्ठ । विजय इष्ठ । विजयिष्ठ सु । विजयिष्ठः । दुहृ तृच् । दोहृ तृ ङीप् ईयमुन् । दोहृ तृ ईयस् । दोहीयस् ङीप् । दोहीयसी सु । दोहीयसी ।

❀ लोपविधिः सर्वविधिम्यो यलीयान् इति पूर्वं लोपः प्रवर्तते न तु दादेर्धातोर्धः इति घत्वम् तेन पूर्वं लोपे कृते घत्व न भवति निमित्ताभावात् ।

टेः ६।४।१५४

प० वि०—टेः ६।१

अर्थ—[इष्ठेमेयस्म लोपः] भस्य टेलोपो भवति इष्ठन् इमनिच् ईयमुन् इत्येतेषु परतः । (इन प्रत्ययों के परे रहने पर भसङ्ग टि का लोप होता है)

उदा०—पटु । पटिष्ठः । पटिमा । पटीयान् । लघु । लचिष्ठः । लचिमा । लपीयान् । × एविष्ठवत्प्रातिपदिकस्य कार्यं भवतीति वक्तव्यम् × पटुमाचष्टे पटयति ।

सि०—पटु इमनिच् । पट् इमन् । पटिमन् सु । पटिमान् स् । पटिमान् । पटिमा । पटिमानौ । पटिमानः ।

ज्यादादीयसः ६।४।१६०

—प० वि०—ज्यात् १।१ आत् १।१ ईयसः ६।१

१—तुद्यन्दसि (१. ३. ५६) २—प्रतिशायने तमविष्ठमी (१. १. ५५) उगितश्च (४. १. ६) ३—मस्याडे तदिते इति पुंल्लभाय ऋत्रे तुरिष्ठिमेव-स्त्विति वृत्तिः । ४—पृष्ठादिभ्य इमनिच् वा (१. १. १२२) .

अर्थ—ज्यादुत्तरस्य ईयस् आमार आदेशो भवति ।

(ज्य के पश्चात् ईयस् का आकार आदेश होता है)

उदा०—ज्या ईयसुन् । ज्या आयस्^१ । ज्यायम्^२ । ज्यायास् सु । ज्याया-
स् सु । ज्यायान्स् । ज्यायान् । ज्यायांसौ । ज्यायासः ।

प्रकृत्यैकाच् ६।४।१६३

प० वि०—प्रकृत्या ३।१ एकाच् १।१

अर्थ—[इष्टेमेयस्सु] एकाज् भसंज्ञकं प्रकृत्या भवति इष्टेमेयस्सु
परतः । (एक अच् वाला भसंज्ञक अण प्रकृति से रह जाता है इन प्रत्ययों के परे
रहने पर)

उदा०—स्रजिष्ठः । स्रजीयान् ।

सि०—स्रजिन्^३ इष्ठन् । स्रज्^४ इष्ठन् । स्रजिष्ठ सु । स्रजिष्ठः ।

इनप्यनपत्ये ६।४।१६४

प० वि०—इन् १।१ अणि ७।१ अनपत्ये ७।१

अर्थ—[प्रकृत्या] इन्नन्तम् अनपत्ये अणि परतः प्रवृत्त्या भवति ।
(इन्नन्त भसंज्ञक अङ्ग अपत्य से भिन्न अर्थ में अण के परे रहने पर
प्रकृति से रह जाता है)

उदा०—सांस्कृटिनम् । सांराबिणम् । कूट दाहे । रु शब्दे ।

सि०—सम् कूट् इनुण्^५ । सांस्कृटिन् अण^६ । सांस्कृटिनम् ।

गाथिविदधिकेशिगणिपणिनश्च ६।४।१६५

प० वि०—गाथिविदधिकेशिगणिपणिनः १।३ च अ० ।

अर्थ—[अणि प्रकृत्या] गाथिन्, विदथिन्, केशिन्, गणिन्,
पणिन् इत्येते च अणि प्रकृत्या भवन्ति । ये भसंज्ञक अङ्ग अण के परे रहने
पर प्रकृति से रहते हैं)

उदा०—गाथिनोऽस्त्यम् गाथिनः । वैदथिनः । कैशिनः । गाणिनः ।
पाणिनः । ॐ अपःप्रार्थोऽयमारम्भः ॐ

१—आदे. परस्मै (१. १) २—प्रकृत्यैकाच् (४. ३. १६२) अक सवर्णे
दीर्घः (६. १.) ३—अस्मायामेधास्रजा विनिः (५. २. १२१) ४—विग्न-
तोडुंक् (५. ३. ६५) प्रकृत्यैकाच् (६. ४. १६२) ५—अत्रिविधो भाव इनुण्
(३. ३. ४३) ६—अणिनुण्. (५. ४. १५)

सयोगादिश्च ६।४।१६६

अर्थ—[इनणि प्रकृत्या] सयोगादिश्च इनणि प्रकृत्या भवति ।

(सयोग है आदि जिस का ऐसा इन्नन्त, भण के परे, रहने पर प्रकृति से रहता है)

उदा०—शद्विनोऽपत्यं, शद्विनः । माद्रिणः । वाग्रिणः ।

ॐ अयमपि अपत्यार्थः । शङ्खमद्रवज्रशब्देभ्यो मत्वर्थे इति ।
तदन्तादण ॐ

अन् ६।४।१६७

अर्थ—[प्रकृत्या अणि] अन्नन्नमणि प्रकृत्या भवति ।

(अन्नन्त प्रकृति से रहता है अण् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—ॐ सामान्येनाण्मात्रे त्रिधिः अपत्ये अन्नपत्ये च ॐ

सि०—सामन इदम्^१ सामन् अण् । सामनः ।

ये चाभावकर्मणोः ६।४।१६८

५० वि०—ये ७।१ च अ० । अभावकर्मणोः ।

अर्थ—[तद्धिते] यकारादौ च तद्धितेऽभावकर्मणोर्ययोरन् प्रकृत्या भवति । (भाव और कर्म प्रथम को छोड़कर यकारादि तद्धित के परे रहने पर अग्रन्त प्रकृति से रह जाता है)

उदा०—सामसु साधु, सामान्यः^२ । ब्रह्मण्यः ।

आत्माध्वानी खे ६।४।१६९

५० वि०—आत्माध्वानी १।२ खे ७।१

अर्थ—[प्रकृत्या] आत्मन् अध्वन् इत्येती खे परतः प्रकृत्या भवतः ।

(आत्मन् और अध्वन् शब्द ख के परे रहने पर प्रकृति से रहते हैं)

उदा०—आत्मने हितम् । अध्वने हितम् । आत्मनीनः^३ [अध्वनीनम्^४] ।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणजमहावैयाकरणपण्डितब्रह्मदत्ता-

चार्याणामन्तेवासिना देवप्रकाशपातञ्जलेन विर-

चितायामष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया

पष्ठाध्याये चतुर्थः पादः

इति पष्ठोऽध्यायः

१—नत्येदम् (४. ३. १२०) २—तत्र साधु (४. ४. ९८) ३—आत्मन-
विश्वजनमोगोत्तरपदात् खः (५. १. ९) ४—अध्वनी यत्नी (५. २. १६)

प्रत्ययस्य विकारप्रकरणम्

युवोरनाकौ ७।१।१

प० वि०—युवोः ६।१ (समाहारद्वन्द्वे सौत्र पुंस्त्वम्) अनाकौ १।२ स०—युश्च युश्चेति युवुः तस्यः युवाः । अनश्च अकश्च इति अनाकौ ॥

अर्थ—अनुनासिक्यण्विशिष्टयोर्युवोः स्थाने यथासंख्यं अन-अकौ भवतः । (अनुनासिक यण्विशिष्ट जो यु और वु उसके स्थान में क्रमशः अन और अक आदेश होते हैं)

उदा०—ॐ प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः ॐ नन्दनः^१ । रमणः^२ । सायंतनः^३ । चिरंतनः^४ । कारकः^५ । हारकः^६ । अनुनासिक्यणोरिति किम् । ऊर्णावुः । उर्णाया युस् (५. २. १२३)

सि०—साधनं प्रत्ययोत्पादकसूत्रे द्रष्टव्यम् ।

आयनेयीनीयियः फट्स्वच्छघा प्रत्ययादीनाम् ७।१।२

प० वि०—आयनेयीनीयियः १।३ फट्स्वच्छघाम् ६।३ प्रत्ययादीनाम् ६।३ स०—आयश्च ऐय् च ईश्च ईय् च इय् चेति आयन्-एय्-ईन्-ईय्-इयः ॥ फश्च ढश्च खश्च छश्च घश्च इति फट्स्वच्छघः तेषाम् । प्रत्ययस्य आदिः प्रत्ययादिः तेषाम् प्रत्ययादीनाम् ॥

अर्थ—प्रत्ययादीनां फट्स्वच्छघाम् आयन्-एय्-ईन्-इय इय् इत्येते आदेशा यथासंख्यं भवन्ति । (प्रत्यय के आदि जो फ ढ छ ख घ उनके स्थान में क्रमशः आयन् एय्, ईन्, ईय् और इय् आदेश होते हैं)

उदा०—फस्य^१—नाडायनः । चारायणः । ढस्य^२—सौपर्णेय । चैन-तेयः । खस्य^३—युष्माकीणः । अस्माकीनः ॥ छस्य^४—शालीयः^५ । मालीयः । घस्य^६—कियान्^७ इयान् । प्रतिसूत्रे साधनं द्रष्टव्यम् ॥

भोऽन्तः ७।१।३

प० वि०—भः ६।१ अन्तः १।१

अर्थ—[प्रत्ययस्य] प्रत्ययस्य अवयवस्य भस्य स्थाने अन्त् इत्ययमादेशो भवति । (प्रत्यय के अवयव भकार के स्थान में अन्त यह आदेश होता है)

१—नन्दिग्रहिषवादिभ्यो ल्युणिग्न्यः (३. १. १३४) २—सायञ्चिरमित्यादिना (४. ३. २३) जातादौ शैपिकेऽयं तद्धितः ३—प्लुतृचो (३. १. १३३) ४—नडादिभ्यः फक् (४. १. ६६) ५—स्त्रीभ्यो ढक् (४. १. १२०) ६—युष्मदस्मदोरन्मतरस्या खञ्च (४. ३. १) तस्मिन्गणि च युष्माकास्माकौ (४. ३. १) ७—बुद्धाच्छ (४. २. ११३) ८—किमिदंभ्या वो घः (५. २. ४०)

उदा०—पठन्ति । खादन्ति । एधन्ते । स्पर्द्धन्ते ।

अदभ्यस्तात् ७।१।४

प० वि०—अत् १।१ अभ्यस्तात् ५।१

अर्थ—[भ] अभ्यस्तादङ्गादुत्तरस्य भकारस्य स्थाने अत् इत्ययमादेशो भवति । (अभ्यस्त भङ्ग के पश्चात् भ् के स्थान में अत् आदेश होता है)

उदा०—ददति । ददतु । दधति । दधतु ॥

उदा०—डुदाञ् दाने । दा लट् । दा फि । दा शप् फि । दा दा फि । द दा फि । द दा अत् इ । द दा अति । द दू^३ अति । ददति ॥

आत्मनेपदेष्वनत ७।१।५

प० वि०—आत्मनेपदेषु ७।३ अनत ५।१ स०—न अत् इति अनत् तस्मात् अनतः ॥

अर्थ—[अत् भ] अनकारान्तादङ्गादुत्तरस्य आत्मनेपदेषु वर्तमानस्य भकारस्य अत् इत्ययमादेशो भवति । (अनकारान्त भङ्ग क पश्चात् आत्मनेपद में वर्तमान भकार के स्थान में अत् आदेश होता है)

उदा०—चिन्वते^१ । चिन्वताम्^२ । अचिन्वत^३ । लुनते^३ । लुनताम्^३ । अलुनत^३ । अनत इति किम् । च्यवन्ते । प्लवन्ते । क्षिन्वन्ते । आदत्र विकरणे कृते कोऽन्तादेशेन भवितव्यम् इति अन् आदेशो न भवति ॥

शीङो रुट् ७।१।६

प० वि०—शीङ् ५।१ रुट् १।१

अर्थ—शीङोऽङ्गादुत्तरस्य भकारस्य आदेशस्य अतो रुडागमो भवति । (शीङ भङ्ग के पश्चात् ङा भ् के स्थान में अत् उसका रुट का भागम होता है)

उदा०—शेरते^१ । शेरताम्^२ । अशेरत^३ ।

अतो भिस ऐस् ७।१।६

प० वि०—अत् ५।१ भिस ६।१ ऐस् १।१

१—डुहोत्यादिभ्यः श्नु (२. ४ ७५) इतो (६ १ ११) पूर्वोऽभ्यासः (६ १. ४) २—उभे अभ्यस्तम् (६ १ ५) स्नाभ्यस्तयोरात् (६. ४ ११२) ३—वर्तमाने लट् (३. २ १२३) ४—लोट च (३ ३. १६२) ५—अनद्यतने लङ् (३. १. १११)

अर्थ—अदन्तादङ्गादुत्तरस्य भिस्ः स्थाने ऐसादेशो भवति । (प्रदन्त प्रङ्ग के पश्चात् भिस् के स्थान में ऐस् आदेश होता है)

उदा०—रामै । बालकैः । तैः । यै । कैः । ण्तैः । अत इति किम् । अग्निभिः । वायुभिः । तपरकरणमिति किम् । खट्वाभिः । मालाभिः । ताभिः । याभिः । काभिः । एताभिः ।

सि०—राम भिस् । एम् ऐस् । रामैस् । रामैः । तद् भिस् । त अ^१ भिस् । त^२ भिम् । त ऐम् । तै^३ । यद् भिम् । य अ भिस् । य भिस् । य ऐस् । यैः । किम् भिस् । क^४ भिस् । क ऐस् । कैस् । कैः ॥ एतद् भिस् । एत अ भिस् । एत भिस् । एत ऐस् । एतैस् । एतैः । ताभिः । तद् भिस् । त अ भिस् । त भिस् । त टाप्^५ भिस् । त आ भिस् । ताभिः^६ ॥

बहुल छन्दसि ७।१।१०

प० वि०—बहुलम् १।१ छन्दसि ७।१

अर्थ—छन्दसि विषये बहुलमैसादेशो भवति । (छन्दसि के विषय में बहुल कर ऐस् आदेश होता है)

उदा०—अनतोऽपि भवति । नद्यैः । देवैः । सर्वैः ।

टाडसिडसामिनात्स्याः ७।१।१२

प० वि०—टाडसिडसाम् ६।३ इनात्स्या १।३ स०—टाश्च डंसिश्च डश्चेति टाडसिडस तेषाम् । इनश्च आच्च स्यन्वेति इनात्स्याः ।

अर्थ—[अतः] अदन्तादङ्गादुत्तरेषां टा-डस्-डसाम् इन-आत्-स्याः आदेशो भवति । (प्रदन्त प्रङ्ग के पश्चात् टा, डस् डस् के स्थान में क्रमशः इन आत् स्य आदेश होते हैं)

उदा०—ट.—रामेण । बालकेन । तेन । येन । केन । एतेन । अनेन । फलेन । डसेः—रामान् । बालकान् । फनात् । डस—रामस्य । बालकस्य । तस्य । यस्य । कस्य । एतस्य । अस्य । फलस्य । अत इत्येव । टः—अग्निना । वायुना । पत्या । सख्या । तपरकरणमिति किम् । रमया । बालिकया । तया । यया । कया । अनया ।

१—त्यदादीनामः (७. २. १०२) २—अतो गुणे (६. १. ६७) ३—वृद्धिरेचि (६. १. ८८) ४—किमः कः (७. २. १०३) ५—प्रजायतष्टाप् (४. १. ४) ६—अकः सवर्णे दीर्घः (६. १. ६७)

एतया । ङसे —अग्ने । वायो । पत्यु । सरयु । तपरकरणमिति किम् ।
रमाया । वालिकाया । तस्या । यस्या । कस्या । अस्या । एतस्या ।
ङस —अग्ने । वायो । पत्यु । सरयु । तपरकरणमिति किम् ।
रमाया । वालिकाया । तस्या । यस्या । कस्या । एतस्या ।

सि०—रामेण । राम टा । राम इन । रामन्^१ । रामेण^२ । तद् टा ।
त अ टा । त इन । तेन । अनेन । इदम्^३ टा । इद अ टा । इद टा । अन्^४
अ टा । अन टा । अन इन । अनेन । राम ञमि । राम आन । रामान ।
राम् ङम् । राम स्य । रामस्य । तद् ञस् । त अ अस् । त स्य । तस्य ।
अत्य । इदम् ङस् । इत् अ अम् । इत् अम् । इद स्य । अ^५ स्य ।
अस्य । अग्नि टा । अग्नि ना^६ । प्रायुना । पति टा । पति आ । पत्या^७ ।
सखि टा । सरया । रमा टा । रमे^८ आ । रमय आ । रमज । त्या ।
तद् टा । त अ आ । त आ । ता^९ आ । ते^{१०} अ । तय् आ । तया ।
अनया । इदम् टा । इद अ आ । अन्^{११} अ आ । अन आ । अना^{१२}
आ । अने^{१३} आ । अनय् आ । अनया । अग्ने । अग्नि ङसि । अग्नि
अस् । अग्ने^{१४} अस् । अग्नेस्^{१५} । अग्न । पति ञसि । पति अस ।
पत्युरस्^{१६} । पत्यु^{१७} । रमा ङसि । रमा अस् । रमा यात्^{१८} अस् । रमा
या अस् । रमा यास् । रमाया । तद् ङसि । तद् अम । त अ अस् ।
त अस् । ता^{१९} अस् । ता यात्^{२०} अस् । त स्या अस् । त स्यास् ।
तस्या । ॥

डेर्य ७।१।१३

प० वि०—ङे ६।१ य १।१

अर्थ—[अत] अकारान्तादङ्गादुत्तरस्य ङे इत्येतस्य य इत्ययमादेशो
भवति । (प्रकारान्न भङ्ग के पश्चात् ङ के स्थान में य प्रादेग हावा है)

उदा०—रामाय । वालिकाय । अत इत्येवम् । अग्नये । वायवे । पत्ये ।

- १—प्रादप्रस (६ १ ८४) २—अङ्कुप्वाङ्नुम्यवायेऽपि (८ ४ २)
३—अनाप्यक (७ २ ११२) ४—हलि लाप (७ २ ११३) ५—प्राडा
नाऽस्त्रियाम् (७ ३ ११९) ६—इको यणचि (६ १ ७४) ७—प्राडि चाप
(७ ३ १०५) ८—अजायतप्राप् (४ १ ४) ९—अपो ध्वसि (१ ४ ७)
वेडिति (७ ३ १११) १०—ङसिङसोश्च (६ १ १०६) ११—क्यत्यात्परम्य
(६ १ १०८) १२—रात्तस्य (८ २ २४) १३—याडाप (७ ३ ११३)
१४—सवनाम्न स्यादङस्त्वश्च (७ ३ ११४)

सख्ये । तपरकरणमिति किम्-रमायै । वालिकायै । तस्यै । यस्यै । कस्यै । अस्यै । एतस्यै ।

सि०—राम डे । राम य । रामाय^१ । अग्नि डे । अग्नि ए । अग्ने^२ ए । अग्नय् ए । अग्नये । पति डे । पति ए । पत्ये । सख्ये । रमायै । रमा डे । रमा याट्^३ ए । रमा या ए । रमा यै । रमायै । तस्यै । तद् डे । त अ ए । त ए । ता^४ ए । ता स्याट् ए । त स्या ए । तस्यै ।

सर्वनाम्नः स्मै ७।१।१४

प० वि०—सर्वनाम्नः ५।१ स्मै (अविभक्तिको निर्देशः)

अर्थ—[अतः डेः] अकारान्तात् सर्वनाम्न उत्तरस्य डेः स्थाने स्मै इत्ययमादेशो भवति । (अकारान्त सर्वनाम के पश्चात् डे के स्थान में स्मै प्रादेश होता है)

उदा०—तस्मै । यस्मै । कस्मै । अस्मै । एतस्मै । सर्वस्मै । अत इत्येव । तस्यै । यस्यै । कस्यै । अस्यै । एतस्यै । सर्वस्यै । भवते ।

सि०—तद् डे । त अ डे । त डे । त स्मै । तस्मै ।

डसिङ्योः स्मात्स्मिनी ७।१।१५

प० वि०—डसिङ्योः ६।२ स्मात्स्मिनी १।२

अर्थ—[अतः सर्वनाम्नः] अदन्तात् सर्वनाम्नः उत्तरेयोः डसि ङि इत्येतयोः स्थाने स्मात् स्मिन् इत्येतावादेशौ भवतः । (अकारान्त सर्वनाम के पश्चात् ङिति और ङि के स्थान में स्मात् और स्मिन् प्रादेश होते हैं)

उदा०—डसेः—तस्मात् । यस्मात् । कस्मात् । अस्मात् । एतस्मात् । सर्वस्मान् । विश्वस्मात् । ङी—तस्मिन् । यस्मिन् । कस्मिन् । अस्मिन् । एतस्मिन् । सर्वस्मिन् । विश्वस्मिन् । अत इत्येव । डसेः—तस्याः । एतस्याः । सर्वस्याः । विश्वस्याः । भवतः । ङी—तस्याम् । यस्याम् । कस्याम् । अस्याम् । एतस्याम् । भवतः ।

सि०—तद् डसि । त अ डसि । त स्मान् । तस्मात् । तद् ङि । त अ ङि । त स्मिन् । तस्मिन् । तस्याम् । तद् ङि । त अ ङि । त ङि । ता^५ ङि । त स्याट् इ । तस्या आम् । तस्याम् ।

१—स्पानिवदादेशोऽप्रविल्ली (१. १. ५५) गुपि च (७. ३. १०२)

२—तोपो ष्यनक्ति (१. ४. ७) षेडिति (७. ३. १११) ३—याटापः (७. ३.

११३) ४—मजाघनष्टाप् (४. १. ४) ५—ङेरात्मन्नाम्नीभ्यः (७. ३. ११६)

पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा ७।१।१६

स०—पूर्व आदिर्येपा ते पूर्वादय पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स, अन्तर शब्दाः ।

अर्थ—[सर्वनाम्नः ङसिङ्यो स्मात्मिनौ] पूर्वादिभ्यो नवभ्यो सर्वनाम्न उत्तरयोर्ङसिङ्यो स्मान् स्मिन् इत्येतावादेशौ वा भवतः ।

(पूर्वं इत्यादि नव सर्वनाम के पश्चात् ङसि और ङि के स्थान में स्मान् और स्मिन् विकल्प से हाते हैं)

उदा०—पूर्वात् । पूर्वस्मात् । पूर्वस्मिन् । पूर्वं ।

जस शी ७।१।१७

प० वि०—जस ६।१ शी (अविभक्तिको निर्देश)

अर्थ—[अतः सर्वनाम्न] अकारान्तान् सर्वनाम्न उत्तरस्य जस शी इत्ययमादेशो भवति । (अकारान्त सर्वनाम क पश्चात् जस् के स्थान में शा आदेश हाता है)

उदा०—ते । ये । के । इमे । एते । सर्वे । विश्वे । पूर्वे । अत इत्येन-ता । या । का । इमा । एता । सर्वा । विश्वा । पूर्वा । भवन्तः ।

सि०—तद् जस् । त अ अस् । त अस् । त शी । त इ । ते । तद् जस । त अ जस् । त अस् । त टाप् अस् । ता अस् । ता ॥

औड आप ७।१।१८

प० वि०—औड ६।१ आप ५।१

अर्थ—[जस शी] आपन्तादङ्गादुत्तरस्य औड स्थाने शी इत्ययमादेशो भवति । औङ् इति औ ओङ् इत्येतयोः पूर्वाचार्यसङ्गाः । (भावन्तः अङ्ग क पश्चात् ओङ् के स्थान में शी यह आदेश हाता है)

उदा०—खट्वे । खट्वे । रमे । रमे । ते । ये । के । इमे । एते । सर्वे । विश्वे ॥

सि०—खट्वा औ । खट्वा शी । खट्वा ई । खट्वे । रमे । तद् औ । त अ औ । त टाप् औ । ता शी । ता ई । ते ॥ इदम् औ । इद अ औ । इद औ । इदा औ । इमा शी । इमे ॥

नपु सकाच्च ७।१।१६

प० वि०—नपुंसकात् ५।१ च अ० ।

अर्थ—[औडः शी] नपुंसकादङ्गादुत्तरस्य औडः शी इत्ययमादेशो भवति । (नपुसक अङ्ग के पदचात् औड् के स्थान में शी यह आदेश होता है)

उदा०—फले । कुण्डे । वने । ये । ते । के । इमे । एते । ऋयस्येति लोपः प्राप्तः ×स्यां प्रतिषेधो वक्तव्यः× इति न भवतिः दधिनी । मधुनी । त्रपुणी । जतुनी ॥

सि०—फल औ । फल औ । फल शी । फल ई । फले । तद् औ । त अ औ । त औ । त शी । त ई । ते । दधि औ । दधि शी । दधि ई । दधि नुम्^१ ई । दधि न् ई । दधिनी ।

जश्शसोः शिः ७।१।२०

प० वि०—जश्शसोः ६।२ शिः १।१

अर्थ—[नपुंसकात्] नपुंसकादुत्तरयोर्जश्शसोः शि इत्ययमादेशो भवति । (नपुसक अङ्ग के पदचात् जस् और शस् के स्थान में शि यह आदेश होता है)

उदा०—फलानि । कुण्डानि । दधीनि विप्लन्ति । दधीनि पश्य । त्रपूणि । जतूनि । तानि । यानि । कानि । इमानि । एतानि ।

सि०—फल जस् । फल शि । फल नुम्^२ इ । फलन् इ । फलान्^३ इ । फलानि । तद् जस् । त अ जस् । त शि । त नुम् इ । तान् इ । तानि ॥

अष्टाभ्य औश् ७।१।२१

प० वि०—अष्टाभ्यः ५।३ औश् १।१

अर्थ—[जश्शसोः] ऋअष्टाभ्य इति कृताकारोऽष्टशब्दो गृह्यते अष्टन आ विभक्तौ इति ऋ अष्टाभ्य उत्तरयोः जश्शसोरीशादेशो भवति । (अष्ट शब्द के पदचात् जस् और शस् के स्थान में औश् आदेश होता है)

उदा०—अष्टन् जस् । अष्ट आ जस् । अष्टा औश् । अष्टा औ । अष्टौ । अष्टौ ॥ कृताकारास्य ग्रहणं किम् । अष्ट तिष्ठन्ति । अष्ट पश्य ।

षड्भ्यो लुक् ७।१।२२

प० वि०—षड्भ्यः ५।३ लुक् १।१

१—इवोपि विभक्तौ (७. १. ७३) मिदचोऽन्त्यात्परः (१. १. ४६) २—ति सर्वनामस्थानम् (१. १. ४१) नपुसकस्य क्तनचः (७. १. ७२) मिदचोऽन्त्यात्परः (१. १. ४६) ३—सर्वनामस्थानं चासम्बुद्धौ (६. ४. ८)

अर्थ—[जश्शसोः] पट्सङ्गकेभ्य उत्तरयोर्जश्शसोर्लुक् भवति ।
(पट् संज्ञक अङ्ग के पश्चात् जम् और शस् का लुक् हो जाता है)

उदा०—पट् तिष्ठन्ति । पट् पश्य । पञ्च । नव । दश ।

सि०—पप् जस् । पप्^१ । पङ्^२ । पट्^३ । पङ् ॥ पञ्चन् जस् ।
पञ्चन्^४ । पञ्च^५ ॥

स्वमोर्नपुंसकात् ७।१।२३

प० वि०—स्वमोः ६।२ नपुंसकान् १।१

अर्थ—[लुक्] नपुंसकादुत्तरयोः स्वमोर्लुक् भवति । (नपुंसक के पश्चात् लुक् और स्वम् का लुक् होता है)

उदा०—मधु तिष्ठन्ति । मधु पश्य । दधि । त्रपु । जतु । तत् । यन् ।
किम् । इदम् । एतन् ।

अतोऽम् ७।१।२४

प० वि०—अतः १।१ अम् १।१

अर्थ—[स्वमोः] अदन्तान्नपुंसकादुत्तरयोः स्वमोः स्थाने अम् इत्य-
यमादेशो भवति । (अदन्त नपुंसक के पश्चात् लुक् और अम् के स्थान में अम्
आदेश होता है)

उदा०—फलम् । कुण्डं पश्य । कुण्डं तिष्ठति ।

युष्मदस्मद्भ्याम् ७।१।२७

प० वि०—युष्मदस्मद्भ्याम् १।२ इत् ६।१ अश् १।१

अर्थ—युष्मद् अस्मद् इत्येताभ्यामुत्तरस्य इत्सः स्थाने अश्
इत्ययमादेशो भवति । (युष्मद् और अस्मद् के पश्चात् इत्सः के स्थान में अश्
आदेश होता है)

उदा०—तव । मम ।

सि०—युष्मद् इत्सः । युष्मद् अश् । तव^१ अद् अ । तव
अ^२ । तव^३ ।

हे प्रथमयोरम् ७।१।२८

प० वि०—हे । इत्यभिहितको निर्देश । प्रथमयोः । ६।२ अम् १।१

अर्थ—[युष्मदस्मद्भ्याम्] युष्मद्-अस्मद्भ्यामुत्तरयोः हे इत्येतस्य

१—पणान्ता पट् (१. १. २३) २—भक्ता जसोऽत्वे (८. २. ३६) ३—
वावमाने (८. ४. १५) ४—नलोपः (८. २. २) ५—तवमगौ इति (७. २.
६६) ६—सिपे लोप (७. २. ६०) ७—अता युणे (६. १. ६४)

प्रथमाद्वितीययोश्च विभक्त्योरम् इत्ययमादेशो भवति ।

(युष्मद् और अस्मद् अङ्ग के पश्चात् छे, प्रथमा और द्वितीया विभक्त के स्थान में अम् यह आदेश होता है ।

उदा०—हे—तुभ्यम् । मह्यम् । प्रथमाया—त्वम् । युवाम् । यूयम् । अहम् । आवाम् । वयम् । द्वितीयाया—त्वाम् । माम् । आवाम् ।

सि०—युष्मद् हे । तुभ्य^१ अद् हे । तुभ्य अम् । तुभ्यम्^२ । मह्यम् । त्वम् । युष्मद् सु । त्व^३ अद् अम् । त्व अम् । त्वम् । युष्मद् औ । युष्मद् अम् । युव^४ अद् अम् । युव आ^५ अम् । युवा^६ अम् । युवाम्^७ । युष्मद् जस् । युष्मद् अम् । यूय अद् अम् । यूय अम् । यूयम् । युष्मद् अम् । युष्मद् अम् । त्व अद् अम् । त्व अ आ अम् । त्व आ^८ अम् । त्व आम् । त्वाम् । युष्मद् औद् । युव अद् औ । युव अ आ^९ अम् । युव आम् । युवाम् ।

शसो न ७।१।२६

प० वि०—शस ६।१ न (अभिभक्तिक्त्तम्)

अर्थ—[युष्मदस्मद्भ्याम्] युष्मदस्मद्भ्यामुत्तरस्य शसो नकारादेशो भवति । (युष्मद् और अस्मद् के पश्चात् शस् के स्थान में नकार आदेश होता है)

उदा०—युष्मान् । अस्मान् ।

सि०—युष्मद् शस् । युष्म अ अस् । युष्म अस् । युष्मास् । युष्मान् । अस्मान् ।

भ्यसोऽभ्यम् ७।१।३०

प० वि०—भ्यस ६।१ भ्यम् अभ्यम् वा १।१ (उभयथा विग्रहः सम्भवति)

अर्थ—[युष्मदस्मद्भ्याम्] युष्मदस्मद्भ्यामुत्तरस्य भ्यसो भ्यम् (अभ्यम् वा) आदेशो भवति । (युष्मद् और अस्मद् के पश्चात् भ्यत् के स्थान में भ्यम् (वा अभ्यम्) आदेश होता है)

उदा०—युष्मभ्यम् । अस्मभ्यम् ।

१—तुभ्यमहौ ढवि (७. २ ६५) २—ममि पूर्व. (६. १. १०३) ३—त्वाहो सो (७ २ ६४) ४—युवाहो द्विवचने (७ २ ६२) ५—प्रथमायाश्च द्विवचने मापायाम् (७ २. ८८) ६—प्रकः सर्वर्णे दीर्घः (६ १ ६७) ७—ममि पूर्वः (६ १ १०३) ८—द्वितीयाया च (७ २. ८७)

सि०—ॐ भ्यमादेशाच्चे शेपे लोप इत्यन्त्यलोपः अभ्यमादेशाच्चे तु
अन्त्यलोपे टिलापे वा पञ्चद्वयसि साधु ॐ युष्मद् भ्यस् । युष्मद् भ्यम् ।
युष्मद् भ्यम् । युष्मद् भ्यस् । युष्मद् अभ्यम् । युष्मद् युष्मद् वा
अभ्यम् । युष्मद्भ्यम् युष्मद्भ्यम् । ॐ भ्यमादेशे कृते शेपे लोपे च बहुवचने
मत्त्येदिति एत्वं प्राप्नोति । तदङ्गद्वये पुनर्ब्रूतावधिर्निष्ठितस्य इति न
भवति ॐ

पञ्चम्या अत् ७।१।३१

प० वि०—पञ्चम्याः ६।१ अन् १।१

अर्थ—[युष्मद्भ्यम्भ्याम् भ्यसः] युष्मद्भ्यम्भ्यामुत्तरस्य
पञ्चम्याः भ्यसा अन् इत्ययमादेशो भवति । (युष्मद् और भ्यम्भ्या के
पश्चात् पञ्चमी भ्यस् के स्थान में अत् आदेश होता है)

उदा०—युष्मन् । अस्मत् ।

सि०—अस्मद् भ्यस् । अस्मद् अन् । अस्मद् अद् अन् । अस्मद्
अत् । अस्मत् ।

एकवचनस्य च ७।१।३२

प० वि०—एकवचनस्य ६।१ च अ० ।

अर्थ—[युष्मद्भ्यम्भ्याम् पञ्चम्याः अत्] युष्मद्भ्यम्भ्यामुत्तरस्य
पञ्चम्याः एकवचनस्य अन् इत्ययमादेशो भवति ।

(युष्मद् और भ्यम्भ्या मङ्ग के पश्चात् पञ्चमी एकवचन के स्थान में अत्
यह आदेश होता है ।

उदा०—त्वत् । मत् ।

सि०—अस्मद् असि । म २ अद् अत् । म अत् । मत् ।

साम आकम् ७।१।३३

प० वि०—सामः ६।१ आकम् १।१

अर्थ—[युष्मद्भ्यम्भ्याम्] ३ युष्मद्भ्यम्भ्यामुत्तरस्य साम
आकम् इत्ययमादेशो भवति । (युष्मद् और भ्यम्भ्या मङ्ग के पश्चात् साम
के स्थान में आकम् यह आदेश होता है)

उदा०—युष्माकम् । अस्माकम् ।

सि०—ॐ साम इति पष्ठीबहुवचनमागतमुट्कं गृह्यते ॐ

अस्मद् आम् । अस्^१ सुट्^२ आम् । अस्म साम । अस्म आकम् ।
अस्म आकम् । अस्माकम् ।

आत औ एलः ७।१।३४

प० वि०—आतः ५।१ औ (अविभक्तिको निर्देशः) एलः ६।१

अर्थ—आकारान्ताद्भादुत्तरस्य एलः स्थाने औकारादेशो भवति ।

(आकारान्त भङ्ग के पश्चात् एल् के स्थान में औकार आदेश होता है)

उदा०—पपौ । तस्थौ ।

सि०—पा एल् । पा औ । प^३ औ । पा प^४ ओ । पा पौ । पपौ ।
पठा । स्था^५ एल् । स्था औ । स्था स्था औ । स्थ स्था औ । थ स्था
तस्था औ । औ । तस्थौ ।

तुह्योस्तातङ्गशिष्यन्यतरस्याम् ७।१।३५

प० वि०—तुह्योः ६।२ तानङ् १।१ आशिपि ७।१ अन्यतरस्याम् अ० ।

अर्थ—तु हि इत्येतयोराशिपि विषये तातङ्गादेशो भवति अन्यतर-
स्याम् । (तु और हि के स्थान में तातङ् आदेश होता है आशीस् अर्थ में विकल्प
करके)

उदा०—भवतु । भवतात् । भव । भवतात् ।

विदेः शतुर्वसु ७।१।३६

प० वि०—विदेः ५।१ शतुः ६।१ वसुः १।१

अर्थ—विद् ज्ञाने इत्यस्माद्वातोरुत्तरस्य शतुर्वसुरादेशो भवति ।

(विद् धातु के पश्चात् शतु के स्थान में वसु आदेश होता है ।

उदा०—विद्वान् । साधनन्त वसो सम्प्रसारणमित्यत्र (६. ४. १३१)

द्रष्टव्यम् ।

समासेऽनङ्पूर्वो क्त्वो ल्यप् ७।१।३७

प० वि०—समासे ७।१ अनङ्पूर्वो ७।१ क्त्वः ६।१ ल्यप् १।१ स०—
अविद्यमानो नञ् पूर्वो यस्मात् सः अनङ्पूर्वः समासः तस्मिन्ने
अनङ्पूर्वः ।

अर्थ—अनङ्पूर्वो समासे क्त्वा इत्येतस्य स्थाने ल्यप् इत्ययमादेशो

१—शेषे लोपः (७. २. ६०) २—आपि सर्वनाम्नः सुट् (७. १. ५२)

३—मातो लोप इटि च (६. ४. ६४) ४—द्विवचनेऽचि (१. १. ५८)

५—धात्वादेः प. स. (६. १. ६२)

भवति । (नहीं है नत्र पूर्व जिससे ऐसे समास में क्त्वा के स्थान में त्यप् प्रादेश होता है)

उदा०—प्रहृत्य । प्रहृत्य । अनञ्पूर्वे इति किम्—अहृत्या ।

सि०—ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् इत्यत्र (६. १. ६६) द्रष्टव्यम् ।

[आज] जसेरमुक् ७।१।५०

आमि सर्वनाम्नः सुट् ७।१।५८

प० वि०—आमि ७।१ सर्वनाम्नः ५।१ सुट् १।१

अर्थ—[आत्] अयणात्सर्वनाम्न उत्तरम्यामः सुडागमो भवति ।

(प्रयणात्सर्वनाम के पश्चात् आम् को सुट् का आगम होता है)

अमोति सप्तमोनिर्देश उत्तरार्थः । इह तु सर्वनाम्न इति पञ्चमीनिर्देशात्समादित्युत्तरस्येति पञ्चीप्रकल्पितमिति

उदा०—तेषाम् । तेषाम् । केषाम् । एषाम् । एतेषाम् । युष्माकम् ।

अस्माकम् । तासाम् । यासाम् । कासाम् । आसाम् । एतासाम् ।

सि०—तेषाम् । तद् आम् । त अ आम् । त आम् । त सुट् आम् ।

त साम् । ते साम् । तेषाम् ।

त्रेस्त्रयः ७।१।५३

प० वि०—त्रेः ६।१ त्रयः १।१

अर्थ—[आमि] त्रेस्त्रय इत्यपमादेशो भवति आमि परतः ।

(त्रि के स्थान में आम् के परे रहने पर त्रय यह प्रादेश होता है)

उदा०—त्रयाणाम् । त्रीणाम् इत्यपि छन्दसि दृश्यते ।

ह्रस्वनद्यापो नुट् ७।१।५४

प० वि०—ह्रस्वश्च नदी च आप्चेति ह्रस्वनद्याप् सत्मात् ।

अर्थ—[आमि] ह्रस्वान्तान्नद्यन्तादावन्ताच्च सत्तरस्य आमो नुडागमो भवति । (ह्रस्वान्त, नद्यन्त और दावन्त अङ्ग के पश्चात् आम् को नुट् का आगम होता है)

उदा०—ह्रस्वान्तात्—वृक्षाणाम् । प्लक्षाणाम् । अग्नीनाम् । वायूनाम् । कनशाणाम् । नद्यन्तात्—कुमारीणाम् । गौरीणाम् । शार्ङ्गरीणाम् । लक्ष्मीणाम् । ददावन्तात्—खट्वानाम् । मालानाम् ।

बहुराजानाम् ।

पट्चतुर्भ्यश्च ७।१।५५

प० वि०—पट्चतुर्भ्यः ५।३ च अ० ।

अर्थ—[आमि नुट्] पट्संज्ञकेभ्यश्चतुःशब्दाच्चोत्तरस्य आमो नुडागमो भवति । (पट् सज्ञक प्रोर चतुर् सन्ध के पश्चात् माम् को नुट् का भागम होता है)

उदा०—पणाम् । पञ्चानाम् । सप्तानाम् । नवानाम् । दशानाम् । चतुर्णाम् ॥

सि०—पप् आम् । पप् नुट् आम् । पप नाम् । पङ् नाम् । पण् नाम् । पणाम्^३ ॥ पञ्चन् आम् । पञ्चन् नुट् आम् । पञ्चन् नाम् । पञ्चान्^४ नाम् । पञ्चानाम्^५ ॥

नुमागमकरणम्

इदितो नुम् घातोः ७।१।५८

प० वि०—इदितः ६।१ नुम् १।१ घातोः ६।१ स०—इत् इत् यस्य स इदित् तस्य इदितः । अर्थ—इदितो घातोर्नुमागमो भवति । (इकार, है इत् जिसका ऐसे घातु को नुम् का भागम होता है)

उदा०—नन्दनः । साधनन्तु नन्दिमहिषचादिभ्यः (३. १.१३४) इति सूत्रे द्रष्टव्यम् ॥

शे मुचादीनाम् ७।१।५९

प० वि०—शे ७।१ मुचादीनाम् ६।३

अर्थ—[नुम्] मुचादीनां घातूनां नुमागमो भवति शे परतः । (मुचादि^१ घातुमो को श के परे रहने पर नुम् का भागम होता है)

उदा०—मुञ्चति । लुम्पति । विन्दति ।

सि०—मृच्छ् । मुच् लट् । मुच् तिप् । मु नुम् च् श ति । मुच् अ ति । मुच्^२ अ ति । मुञ्चति^३ ॥

- १—भना जघोञ्ते (८. २. ३९) २—मरोञ्जनामिकेञ्जनामिको वा (८. ४. ४५) ३—पुना प्तुः (८. ४. ४१) ४—भोन्धायाः (६. ४. ७)
 ५—नलोप प्रातिपदिकान्तस्य (८. ७. ७) ६—नश्चाजान्तस्य कलि (८. ३. २४) ७—अनुस्वारस्य ययि परमवर्णः (८. ४. ५७)

उगिदच्चा सर्वनामस्थानेऽधातोः ७।१।७०

प० वि०—उगिदचाम् ६।३ सर्वनामस्थाने ७।१ अधातो ६।१ स०—
उङ् डत् यस्य ल उगित् । उगिन्च अच्चेति उगिदच तेषाम् उगिद-
चाम् । न धातु अधातु तस्य अगता ।

अर्थ—[नुम्] धातुवर्जितानामुगितामङ्गानामञ्चतेश्च नुमागमो
भवति सर्वनामस्थाने परत । (धातु वर्जित उगित् ग्रीर अङ्गु धातु को
नुम का आगम होना है मवनामस्थान के परे रहन पर)

उदा०—इयत्तुप्—भवान्^१ । भवन्ती । भवन्त । भवन्तम् । भवन्ती ।
ईयसुन्—श्रेयान्^२ । श्रेयासी । श्रेयास । श्रेयासम् । श्रेयासी । शतृ । पचन् ।
पचन्ती । पचन्त । पचन्तम् । पचन्ती । अञ्चते प्राप् । प्राञ्चौ ।
प्राञ्च । प्राञ्चतीति प्राङ् । प्राञ्च क्तिन्^३ ।

युजेरसमासे ७।१।७१

प० वि०—युजे ६।१ असमासे ७।१

अर्थ—[सर्वनामस्थाने नुम्] युजेरसमासे सर्वनामस्थाने परतो नुमा-
गमो भवति । (सममाम में युज को नुम का आगम होता है मवनामस्थान
विभक्ति के परे रहन पर)

उदा०—युङ् । युङ्जो । युञ्ज । युञ्जम् । युञ्जो ।

सि०—युजिर् । युज् क्तिन्^३ । युज् सु । यु नुम् ज् सु । युञ्ज्
स् । यु न् ज् । युन् । युङ्^४ । युज् औ । यु नुम् ज् औ । युञ्ज् औ ।
य ज् औ । युञ्जी ।

नपु सकस्य भलच ७।१।७२

प० वि०—नपु सकस्य ६।१ भलच ६।१ स०—भल् च अच्चेति
भलच् तस्य ॥

अर्थ—[नुम् सर्वनामस्थाने] भजन्तस्य अजन्तस्य च नपु सकस्य
नुमागमो भवति सर्वनामस्थाने विभक्तौ परत । (भजन्त ग्रीर अजन्त
नपु सक को मवनामस्थान विभक्ति के परे रहन पर नुमागम होता है)

उदा०—भजन्तस्य—यशासि । यशासि । अजन्तस्य—कुण्डानि ।

१—अत्वसत्तस्य चाधातो (६ ४ १४) २—सा तमहत् सयोगस्य (६
४, १०) ३—ऋत्विगादिभूतण (३ २ ६६) क्तिन् । ४—क्तिन्प्रत्यस्य कु
(८ २ ६२)

वनानि । ऋगितो मलन्तस्य नपु सकस्य परत्वाद्नेनैव नुम्भवतिः
श्रेयासि । भूयासि ।

सि०—यशस् जस् । यशस् शि^१ । यशास्^२ इ । यशा नुम् स् इ ।
यशान्स् इ । यशासि^३ । कुरड जस् । कुरड शि । कुरड नुम् शि
कुरडन् इ । कुरडान्^४ इ । कुरडानि ।

इकोऽचि विभक्तौ ७।१।७३

प० वि०—इक ६।१ अचि ७।१ विभक्तौ । ७।१

अर्थ—[नपु सकस्य नुम्] इगन्तस्य नपु सकस्य अजादौ विभक्तौ
नुमागमो भवति । (इग त नपु सक को अजादि विभक्ति के परे रहन परे
नुम् का आगम होता है)

उदा० - वारि औ । वारि औ । वरि शी । वारि ई । वारि नुम् ई ।
वारि न् ई । वारि ण् ई । वारिणी ॥ ऋवारीणाम् इत्यत्र तु नुमचिरवृ-
ज्वद्भावेभ्यो नुद पूर्वविप्रतिपेधेन इत्यनेन नुडेव भवति । ततो नामि
दीर्घ ऋ

तृतीयादिपु भापितपु स्क पु वद्गालवस्य ७।१।७४

प० वि०—तृतीयादिपु ७।३ भापितपु स्क १।१ पु वद् १।१ गाल-
वस्य ६।१ स —तृतीया आदि येषां ते तृतीयादयः तेषु तृतीयादिपु ।
भापित पुमान् येन समानायामाकृतौ एकस्मिन् प्रवृत्तिनिमित्तं तत्
भापितपुस्कम् ।

अर्थ—[इकोचि विभक्तौ] तृतीयादिपु अजादिपु विभक्तिपु भापित-
पु स्कं नपु सकम् इगन्त गालवाचार्यस्य मतेन पुं वद् भवति ।

(तृतीया आदि अजादि विभक्ति के परे रहन पर भापितपु स्क इगन्त नपु सक
गालवाचार्य के मत में पु वद् हो जाता है)

उदा०—ऋयथा पु सि ह्रस्वनुमौ न भयतस्तद्वन्त्रापि न भयत
इत्यर्थ ऋ ग्रामणी ब्राह्मण । ग्रामणि ब्राह्मणकुलेन । ग्रामण्या ब्राह्मण-
कुलेन । ग्रामणिना ब्राह्मणकुलेन । ग्रामण्ये, ग्रामणिने । ग्रामण्य, ग्राम-
णिन । ग्रामण्य । ग्रामणिन । ग्रामण्यो, ग्रामणिनो । ग्रामण्या ।
ऋनुमचिरेति पूवविप्रतिपेधेन नुद ऋ ग्रामणीनाम् । ग्रामण्या,
ग्रामणिनि ।

१—जडासो शि (७ १ २०) २—अत्वसतस्य चापातो (६ ४ १४)

नरपापदान्तस्य भति (८ ३ २४) सवनामस्यान चासम्बुद्धौ (६ ४ ८)

अस्थिदधिसक्थ्यक्षणांमनडुदात्त ७।१।७५

प० वि०—अस्थि दधि-सक्थि अक्षणाम् ६।३ अनड् १।१ उदात्त १।१

अर्थ—[नपु सक्थ्य तृतीयादिपु विभक्तौ] अस्थि-दधि सक्थि अक्षणाम् नपु समाना तृतीयादिष्वजादिपु विभक्तिपु परतोऽनड् इत्ययमादेशो भवति, स चोदात्तः भवति । (अस्थि दधि, सक्थि और भक्षि इन नपु सक धङ्गा को अनड् आदेश होता है तृतीयादि मजादि विभक्ति के पर रहन पर और वह उदात्त होता है)

उदा०—अस्थि । अस्थ्ना । अस्थ्ने । अस्थन् । अस्थन् । अस्थ्नो । अस्थ्नाम् । अस्थिन् । अस्थनि । दधि । दध्ना । दध्ने । दधन् । दधन् । दध्नो । दध्नाम् । दधिन् । दधनि । सक्थि । सक्थ्ना । सक्थ्ने । सक्थन् । सक्थन् । सक्थ्नो । सक्थ्नाम् । सक्थिन् । सक्थनि । अक्षि । अक्ष्णा । अक्ष्णे । अक्षन् । अक्षन् । अक्ष्णो । अक्ष्णाम् । अक्षिन् । अक्षिणि ।

सि०—अस्थ्ना । अस्थि दा । अस्थ् अनड दा । अस्थन् दा । अस्थन्' आ । अस्थ्ना ॥

नाभ्यस्ताच्छतु ७।१।७६

प० वि०—न अभ० । अभ्यस्तात् ५।१ शतु ६।१

अर्थ—[नुम्] अभ्यस्तादद्वातुत्तरम्य शतनुम् भवति । (अभ्यस्त धङ्ग के पश्चात् जो शत उसको नुम् का आगम नहा होता है)

उदा०—ददत् । ददती । ददन् । दधत् । दधती । दधन् ।

वा नपु सकस्य ७।१।७६

प० वि०—वा अभ० । नपु सकस्य ६।१

अर्थ—[अभ्यस्ताच्छतु नपु सकस्य नुम्] अभ्यस्तादद्वातुत्तरो य शतप्रत्ययस्तन्तस्य नपु सकस्य वा नुमागमो भवति । (अभ्यस्त धङ्ग के पश्चात् जो शत प्रत्यय तदन्त नपु सक को विकल्प से नुम् का आगम होता है)

उदा०—क्षि सप्तनामस्थानेऽय विकल्प क्षि ददति कुलानि । ददन्ति कुलानि । दधति कुलानि । दधन्ति कुलानि ॥

सि०—दा लट् । दा शतु । दा अत् । दा दा अत् । दा दत् ।

१—प्रलोपोज (६ ४ १३४)

ददत् । ददत् जस् । ददत् शि । ददति । ददत् शि । दद नुम् त् इ ।
ददन्त् इ । ददन्त् इ । ददन्ति ।

आच्छीनद्योर्नुम् ७।१।८०

प० वि०—आत् ५।१ शीनद्योः ७।२ नुम् १।१

अर्थ—[शतुः वा नुम्] अवर्णादिङ्गादुत्तरस्य शतुर्वा नुमागमो भवति शीनद्योः परतः । (अवर्णान्त अङ्ग के पश्चात् जो शतृ प्रत्यय उसको नुम् विकल्प से होता है क्षी और नदी पर रहने पर)

उदा०—शौ—तुदती कुले । तुदन्ती कुले ॥ याती कुले । यान्ती कुले । करिष्यती कुले । करिष्यन्ती कुले । नद्याम्—तुदन्ती ब्राह्मणी । तुदती ब्राह्मणी । याती ब्राह्मणी । यान्ती ब्राह्मणी । करिष्यती ब्राह्मणी । करिष्यन्ती ब्राह्मणी ॥

सि०—तुद् लट् । हुद् शट् । तुदत् औ । तुदत् शी । तुदती । तुदन्ती ॥

शप्श्यनोर्नित्यम् ७।१।८१

प० वि०—शप्श्यनो ६।२ नित्यम् १।१

अर्थ—[शतुः शीनद्योः नुम्] शप् श्यन् इत्येतयोः शतुः शीनद्योः परतो नित्यं नुमागमो भवति । (शतृ और श्यन् का जो शतृ प्रत्यय उसको नित्य ही नुम् का आगम होता है क्षी और नदी के पर रहने पर)

उदा—शौ—पचन्ती कुले । [पचन्ति कुलानि] ।

सावनडुह ७।१।८२

प० वि०—सौ ७।१ अनडुहः ६।१

अर्थ—[नुम्] सौ परतोऽनडुहोऽङ्गस्य नुमागमो भवति ।

(अनडुह अङ्ग की नुम् का आगम होता है सु के परे रहने पर)

उदा०—अनड्वान् । अनड्वाहौ । अनड्वाह । हे अनड्वन् । हे अनड्वाहौ । हे अनड्वाह । अनड्वाहम् । अनड्वाहौ । अनडुह । अनडुहा । अनडुद्भ्याम् । अनडुद्भिम् । अनडुहे । अनडुद्भ्याम् । अनडुद्भ्यः । अनडुह । अनडुद्भ्याम् । अनडुद्भ्य । अनडुहः । अनडुहोः । अनडुहाम् । अनडुहि । अनडुहो । अनडुभुम् ।

सि०—अनडुह् सु । अनडु नुम् ह् स् । अनडुह् स् । अनडुह् ।

अनडुन् । अनडु आम^१ न् । अनड् व^२ आ न् । अनड्वान् । अनडुद्-
भ्याम्^३ । अनडुद्भ्याम् । अनडुद्भुम् । अनडुनुम् । अनडुन् । अनडुन् । अनडु अम्^४ न । अनड्वन् ।

दिव औत् ७।१।८४

प० वि०—दिव ६।१ औत् १।१

अर्थ—[सौ] सौ परतो दिव् इत्येनम्य औदित्ययमादेशो भवति ।

(मु के परे रहने पर दिव अङ्ग को औकार आदेश होता है)

उदा०—द्यौः । दिवौ । दिवः । दिवम् । दिवा । दिव । दिवा ।
द्युभ्याम् । द्युभिः । दिवे । द्युभ्याम् । द्युभ्यः । दिवः । द्युभ्याम् ।
द्युभ्यः । दिवः । दिवोः । दिवाम् । दिवि । दिवोः । द्युपु । हे द्यौः । हे
दिवो । हे दिवः ।

सि०—द्यौः । दिव् सु । दि औ स् । द्यौः । दिव् भ्याम् । दि व^५
भ्याम् । द्युभ्याम् ।

पथिमय्युमुक्षामात् ७।१।८५

प० वि०—पथि-मथि-ऋमुक्षाम् ६।३ आन् १।१

अर्थ—[सौ] पथिन्, मथिन्, ऋमुक्षिन् इत्येतेषामङ्गानाम् सौ
परत आकारादेशो भवति । (पथिन्, मथिन् और ऋमुक्षिन् अङ्गों का
आकार आदेश होता है मु के पर रहने पर)

उदा०—पन्थाः । पन्थानौ । पन्थानः । पन्थानम् । पन्थानी । पथः ।
पथा । पथिभ्याम् । पथिभिः । पथे । पथिभ्याम् । पथिभ्यः । पथः ।
पथिभ्याम् । पथिभ्यः । पथः । पथाः । पथाम् । पथि । पथो । पथिपु]
मन्थाः । मन्थानी । मन्थानः । ऋमुक्षाः । ऋमुक्षानी । ऋमुक्षाणः ।

सि०—पथिन् सु । पथि आ^६ सु । पथ् थ^७ आ स् । पन्थ^८ आ स् ।
पन्थाः । पथिन् शस् । पथ् अस् । पथः । ऋ स्थानिन्यनुनासिकेऽपि

- १—चतुरन्तुहोरापुदात्त (७ १ ९८) मिदचोऽन्त्यात्तरः (१ १. ७४)
२—इको यणचि (६. १. ७४) ३—वसुस्रमुध्वस्वनट्टा द (८. २. ७२)
४—अम्सम्बुद्धौ (७ १. ६६) ५—दिव उन् (६ १. १२७)
६—पथिमय्युमुक्षामात् (७. १ ८५) अनोऽन्त्यस्य (१. १. ५१) ७—
इतोऽस्तवन्तामस्थाने (७ १. ८६) ८—पथि (७ १. ८७) ९—पथि भम्
(१. ४. १८) मस्य टेलोप. (७ १. ८८) अचोऽन्त्यादि टि (१ १. ६३) .

आकारोऽनुनासिको न भवति । भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणं न भवतीति शुद्धो ह्ययमुच्चार्यते ॥

इतोऽसर्वनामस्थाने ७।१।८६

प० वि०—इत् ६।१ अत् १।१ सर्वनामस्थाने ७।१

अर्थ—[पथिमथि ऋमुत्ताम्] पथ्यादीनाम् इकारस्य स्थाने अकारादेशो भवति सर्वनामस्थाने परत् । (पथि इत्यादि अङ्गो के इकार के स्थान में अकार आदेश होता है सवर्णनामस्थान के परे रहन पर)

उदा०—पन्था । पन्थानौ । पन्थान् । पन्थानम् । पन्थानौ । मन्था । मन्थानौ । मन्थान् । मन्थानम् । मन्थानौ । ऋमुत्ता । ऋमुत्ताणी । ऋमुत्ताण । ऋमुत्ताणम् । ऋमुत्ताणौ ।

योन्य ७।१।८७

प० वि०—थ ६।१ न्य १।१

अर्थ—[सर्वनामस्थाने पथिमध्यमुत्ताम्] पथिमथोस्थकारस्य स्थाने न्य इत्ययमादेशो भवति सर्वनामस्थाने परत् ।

(पथि और मथि अङ्ग के यकार के स्थान में य आदेश होता है सर्वनामस्थान विभक्ति के परे रहन पर)

उदा०—पन्था । पन्थानौ । पन्थान् इत्यादयः ।

भस्य टेलोप ७।१।८८

प० वि०—भस्य ६।१ टे ६।१ लोप १।१

अर्थ—[पथिमध्यमुत्ताम्] पथ्यादीनां भसञ्जकानां टेलोपो भवति । (पथि इत्यादि भसञ्जक अङ्गो की टि का लोप होता है)

उदा०—पथ । पथा । पथे । पथ । पथ । पथो । पथाम् । पथि । पथो । मथ । मथा । मथे । मथ । मथ । मथो । मथाम् । मथि । मथो । ऋमुत्त । ऋमुत्ता । ऋमुत्ते । ऋमुत्त । ऋमुत्त । ऋमुत्तो । ऋमुत्ताम् । ऋमुत्ति । ऋमुत्तो ।

॥ सर्वनामस्थान इत्यनुवर्तमानमपि विरोधादिह न सवद्व्यते ॥

पु सोऽसुङ् ७।१।८९

प० वि०—पु स ६।१ असुङ् १।१

अर्थ—[सर्वनामस्थाने] पु स इयेवस्य असुङ् इत्ययमादेशो भवति सर्वनामस्थान विभक्तौ परत् ।

(पु स के स्थान में अमुड यह आदेश होता है सबनामस्थान विभक्ति के परे रहन पर)

उदा०—पुमान् । पुमासी । पुमास । पुमासम् । पुमासी । सप्तनाम-
स्थाने इति किम् । पु स । पु सा । पु म्याम् । पु भि । पु से । पु भ्याम् ।
पु म्य । पु स । पु म्याम् । पु म्य । पु स । पु सा । पु साम् । पु सि ।
पु सो । पु सु । हे पुमन् । हे पुमासो । हे पुमास ।

सि०—पुम्स् सु । ॐ पुम् असुङ् सु । पुमास्^१ सु । पुमा तुम्^२ स
स् । पुमान्स्^३ । पुमान्^४ । पुम्स् शस् । पुस् अस् । पु स । पु भ्याम् ।
पुम्स् भ्याम् । पुम् भ्याम् । पु भ्याम् । पु सु । पुम्स् सुप् । पुम् सु । पु सु ।

गोतो गित् ७।१।६०

अर्थ—[सर्वनामस्थाने] ॐसामर्ध्यान् प्रथमा विभक्ति ॐ गोशब्दात्
पर सर्वनामस्थान शिद् भवति । (गोशब्द के पश्चात् सबनामस्थान विभक्ति
गित् हो जाती है)

उदा०—गौ । गावो । गान् । गाम् । गावो । [गा । गवा ।
गोभ्याम् । गोभि । गव । गोभ्याम् । गोभ्य । गा । गाभ्याम् । गोभ्य ।
गो । गवो । गवाम् । गवि । गवो । गापु] हे गो । ह गानी ।
हे गाव ।

सि०—गो सु । गो स् । गौ । गो आ । गो औ । गाव् औ ।
गावो । गाम् । गो अम् । ग् आ^१ अम् । गा अम् । गाम् । गा शस् ।
गा^२ अस् । गा । गो दा । गो आ । गव् आ । गवा । गो आम् ।
गवाम् ॥

एलुत्तमो वा ७।१।६१

प० वि०—एल् १।१ उत्तम १।१ वा अ० ।

अर्थ—[गित्] उत्तमो एल् वा शिद् भवति । (उत्तम पुल्य का एल
विकल्प से गित् होता है)

उदा०—चकार । चकर । पपाठ । पपठ ।

१—सात्तमहत्त सयोगस्य (६ ४ १०) २—उविदधा सबनामस्थानऽ
धातो (७. १. ७०) ३—हल्दयान्म्यो दीर्घात्पुत्तिस्यपृक्त हल (६ १ ६६)
४—सयोगान्तस्य लोप (८ २ २३) ५—गौतोऽप्यसौ (६ १. ६३)

सख्युरसबुद्धौ ७।१।६२

प० वि०—सख्युः १।१ असबुद्धौ ७।१

अर्थ—[सर्वनामस्थाने लिङ्] असबुद्धौ यः सखिशब्दः तस्मात् पर सर्वनामस्थाने लिङ् भवति । (असबुद्धि के परे रहने पर जो सखि शब्द उसके पश्चात् सर्वनामस्थाने विगति लिङ् होती है)

उदा०—सखा । सखायौ । सखायः । सखायम् । सखायौ । [सखीन् । सख्या । सखिम्याम् । सखिभिः । सख्ये । सखिभ्यः । सख्युः^१ । सख्योः । सखीनाम् । सख्याम् । सख्योः । सखिपु । हे सखे] हे सखायौ । हे सखायः ।

सि०—सखि सु । सख् अनङ्^२ सु । सखन् सु । सखान्^३ स । सखान् । सखा । सखि औ । सखै^४ औ । सखाय् औ । सखायौ । सखि शस् । सखीस्^५ । सखीन् । सखि डसि । सखि अस् । सख्युर्^६ इ । सख्युर्^७ । सख्युः । सखि आम् । सखि नुट् आम् । सखि नाम् । सखीनाम् । सखि ङि । सखि आट्^८ इ । सखि आ आम्^९ । सखि आम् । सख्याम् । हे सखे । सखि सु । सखे स् । सखे ।

अनङ् सौ ७।१।६३

प० वि०—अनङ् १।१ सौ ७।१

अर्थ—[सख्युः असबुद्धौ] सखिशब्दस्य सावसम्बुद्धौ अनङ् इत्ययमादेशो भवति । (सम्बुद्धिभिन्न मु के परे रहने पर सखि शब्द को अनङ् यह आदेश होता है)

उदा०—सखा । असम्बुद्धाविति णिम्-हे सखे ।

ऋदुशनस्पृक्षशोऽनेहसा च ७।१।६४

प० वि०—ऋदुशनस्पृक्षशोऽनेहसाम् ६।३ च अ० । स०—ऋच्च उशनश्च पुरुक्षश्च अनेहश्चेति ऋदुशनस्पृक्षशोऽनेहसः तेषाम् ऋदुशनस्पृक्षशोऽनेहसाम् ।

१—अनङ् सौ (७. १. ६३) २—सर्वनामस्थाने सावसम्बुद्धौ (६. ४. ८) ३—अचो ङिति (७. २. ११५) ४—प्रथमयोः पूर्वसवर्णः (६. १. ६८) ५—इको यणचि (६. १. ७४) ६—स्वत्यात्परस्य (६. १. १०८) ६—रात्सस्य (८. २. २३) ७—शेषो ध्यसखि (१. ४. ७) ८—आणवाः (७. ३. ११२) ९—डेराम्नाम्वीभ्यः (७. ३. ११६)

अर्थ—[अनङ् असम्बुद्धौ सौ] ऋकारान्तानामङ्गानामुशनस् पुरुदंशस् अनेहस् इत्येतेषां च असम्बुद्धौ सौ परतोऽनङ् आदेशो भवति ॥

(ऋकारान्त उशनस् पुरुदंशस् अनेहम् अङ्ग को सम्बुद्धिभिन्न सु के परे रहने पर अनङ् आदेश होना है)

उदा०—ऋतः—कर्त्ता । हर्त्ता । माता । पिता । भ्राता । उशना । पुरुदंश । अनेहा । असम्बुद्धाणि किम्—हे कर्त्तः । हे हर्त्तः । हे मातः । हे पितः । हे पुरुदंशः । हे अनेहः । हे उशनः ।

चतुरनङ्गुहोरामुदात्त ७।१।६८

प० वि०—चतुरनङ्गुहोः ६।२ आम् १।१ उदात्तः १।१

अर्थ—[मयनामस्थाने] चतुर् अनङ्गुह् इत्येतयोः सर्वनामस्थाने परत आमागमो भवति, स चादान् ।

(चतुर् और अनङ्गुह् प्रज्ञो को मयनामस्थान विभक्ति के परे रहने पर आम् का आगम होना है, वह उदात्त होना है)

उदा०—वत्यारः । अनङ्गान । अनङ्ग्याही । अनङ्ग्याह । अनङ्ग्याहम् । अनङ्ग्याही ॥

ऋत इदातोः ७।१।१००

प० वि०—ऋतः ६।१ इन् १।१ धातोः ६।१

अर्थ—ऋकारान्तस्य धातोर्द्वयस्य इकारादेशो भवति । (ऋकारान्त धातु जो अङ्ग उम का इकारादेश जाना है)

उदा०—किरति । गिरति । चिकीपेति । जिहोर्षेति ।

सि०—कृ विक्षेपे । गृ निगरणे । कृ लट् । कृ तिप् । कृ श न । किर अति । किरति ॥

उपधायाश्च ७।१।१०१

प० वि०—उपधायाः ६।१ च अ० ।

अर्थ—[ऋतः इन्] उपधायाश्च ऋकारान्तस्य इकारादेशो भवति । (उपधा जो ऋकार उम का आगम जाना है)

उदा०—कीर्त्तयति । कीर्त्तयतः । कीर्त्तयन्ति ।

सि०—कृत् संशब्दने चुपदिः । कृत् लिच् । कृत् न ड । कृत् न ड । कीर्त्ति लट् । कीर्त्ति तिप् । कीर्त्ति गप् । कीर्त्तयति ।

उदोष्ठ्यपूर्वस्य ७।१।१०३

प० वि०—उत् १।१ ओष्ठ्यपूर्वस्य ६।१ स०—ओष्ठ्यः पूर्वो यस्मात् असौ ओष्ठ्यपूर्वः तस्य ओष्ठ्यपूर्वस्य ।

अर्थ—[धातोः] ओष्ठ्यः पूर्वो यस्माद् ऋकारात् तदन्तस्य धातो-
रङ्गस्य उकारादेशो भवति । (ओष्ठ्य वणं है पूर्वं जिस ऋकार से ऐसे तदन्त
धातु का उकार आदेश होता है)

उदा०—पुपूर्पति । मुमूर्पति ।

सि०—प पालनपूरणयोः । प सन्^१ । पुर् स । पूर्^२ स शप तिप् ।
पूर पूर् अ ति । पुपूर् पति । पुपूर्पति ॥ व वरणे । इत्योत्वाभ्यां
गुणवृद्धी भवतो विप्रतिपेधेन तेनेह पिपत्तिं शुणो भवत्येव न उत्त्वम्
इति ।*

पिपत्तिं इत्यस्य साधनमर्त्तिपिपत्योश्चेति (७. ४. ७७) द्रष्टव्यम् ।

इत्याप्ताध्यायी-प्रकाशिकायां सप्तमाध्याये प्रथमः पादः

—२२०६९—

सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु ७।२।१

प० वि०—सिचि ७।१ वृद्धिः १।१ परस्मैपदेषु ७।३

अर्थ—परस्मैपदेषु परेषु सिचि परत इगन्तस्य अङ्गस्य वृद्धिर्भवति ।
(परस्मैपद है परे जिसके ऐसे सिच् के परे रहने पर इगन्त अङ्ग को वृद्धि
होती है)

उदा०—अचैपीत् । अनैपीत् । अलावीत् । अपावीत् । अकार्पीत् ।
अहार्पीत् ।

सि०—संज्ञाप्रकरणे द्रष्टव्या ।

अतो ल्रान्तस्य ७।२।२

प० वि०—अतः ६।१ ल्रान्तस्य ६।१ स०—लश्च रश्च इति ल्रौ ।
अन्तश्च अन्तश्च इति अन्तौ । ल्रौ अन्तौ यस्येति ल्रान्तः तस्य ।

अर्थ—लकारान्तस्य रेफान्तस्य च अकारस्य स्थाने वृद्धिर्भवति
परस्मैपदेषु परेषु सिचि परतः ।

१—सति ग्रहश्लोच (७. २. १२) इको मल्ल (१. २. ६) उदोष्ठ्यपूर्वस्य
(७. १. १०३) उरण् स्परः (१. १. ४६) २—हलि च (८. २. ७७)

(लकारान्त और रेफान्त अकार के स्थान में वृद्धि होती है परस्मैपद है परे जिसके ऐसे सिच् के परे रहने पर)

उदा०—त्सर । अक्षारीत् । त्सर । अत्सारीत् । जल । अजालीत् । झल । अझालीत् ।

वदव्रजहलन्तस्याच ७।२।३

प० वि०—वदव्रजहलन्तस्य ६।१ अच. ६।१ हल् अन्ते यस्य इति हलन्तः । वदश्च व्रजश्च हलन्तश्च इति वदव्रजहलन्तं तस्य ।

अर्थ—[सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु] वद व्रज हलन्त इत्येतेषामङ्गानामचः स्थाने वृद्धिर्भवति सिचि परस्मैपदेषु परतः । (वद व्रज और हलन्त अङ्गों के अच् के स्थान में वृद्धि होती है परस्मैपदपरक सिच् के पर रहने पर)

उदा०—अपादीत् । अप्राजीत् । हलन्तस्य—अभूत्सीत् । अच्छीत्सीत् ।

नेटि ७।२।४

प० वि०—न अ० । इटि ७।१

अर्थ—[सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु हलन्तस्य] इडादौ सिचि परस्मैपदेषु परतः हलन्तस्य अङ्गस्य वृद्धिर्न भवति । (इडादि सिच् परस्मैपद के परे रहने पर हलन्त अङ्ग की वृद्धि नहीं होती है)

उदा०—अदेयीत् । असेयीत् ।

ह्मन्त्यन्तक्षणश्चसजागृणिद्व्येदिताम् ७।२।५

प० वि०—ह्-म्-यन्त क्षण-श्चस जागृ-णि-श्चि-एदिताम् ६।३

अर्थ—[सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु नेटि] हकारान्तानां मकारान्तानां यकारान्तानामङ्गानां क्षण श्चस जागृ णि श्चि इत्येतेषामेदितां च इडादौ सिचि परस्मैपदेषु परतो वृद्धिर्न भवति । (हकारान्त, मकारान्त, यकारान्त, क्षण, श्चस, जागृ, णिजन्त, श्चि धी एकार इन् वाले अङ्गों की वृद्धि नहीं होती है, इडादि सिच् परस्मैपद के परे रहने पर)

उदा०—ह्वारान्तस्य—ग्रह उपादने । अप्रदीत् । स्यमु स्यन ध्वन शब्दे । अस्थमीत् । व्यय वित्तसमुत्सर्गे । अव्ययीत् । क्षणु दिंसापाम् । अक्षणीत् । श्चस प्राणने । अश्चसोत् । जागृ निद्राक्षये । अजागरीत् । णि । उन परिहाणे ईल श्रेरणे । चुरादिणिच् । औनयीत् । ऐनयीत् । टुआरिग गतिवृद्धौ । अरगयीत् । एदिताम् । रगे लगे सद्गे । अरगीत् । फरे । अफरीत् ।

उदोष्ठ्यपूर्वस्य ७।१।१०३

प० वि०—उत् १।१ ओष्ठ्यपूर्वस्य ६।१ स०—ओष्ठ्यः पूर्वो यस्मात् असौ ओष्ठ्यपूर्वः तस्य ओष्ठ्यपूर्वस्य ।

अर्थ—[धातोः] ओष्ठ्यः पूर्वो यस्माद् ऋकारात् तदन्तस्य धातो-
रङ्गस्य उकारादेशो भवति । (ओष्ठ्य वरुणं है पूर्व जिस ऋकार से ऐसे तदन्त
धातु का उकार आदेश होता है)

उदा०—पुपूर्पति । मुपूर्पति ।

सि०—प पालनपूरणयोः । प सन्^१ । पुर् स । पूर^२ स शप तिप् ।
पूर पूर स अ ति । पुपूर् पति । पुपूर्पति ॥ व वरणे । ॐ इत्वोत्वाभ्यां
गुणवृद्धी भवतो विप्रतिपेधेन तेनेह पिपत्तिं गुणो भवत्येव न उत्त्यम्
इति ॥ॐ

विपत्तिं इत्यस्य साधनमर्त्तिपिपत्योश्चेति (७ ४. ७७) द्रष्टव्यम् ।

इत्याष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया सप्तमाध्याये प्रथम. पाद.



सिचि वृद्धि परस्मैपदेषु ७।२।१

प० वि०—सिचि ७।१ वृद्धिः १।१ परस्मैपदेषु ७।३

अर्थ—परस्मैपदेषु परेषु सिचि परत इगन्तस्य अङ्गस्य वृद्धिर्भवति ।
(परस्मैपद है परे जिसके ऐसे सिच् के परे रहने पर इगन्त अङ्ग को वृद्धि
होती है)

उदा०—अचैपीत् । अनेपीत् । अलावीत् । अपावीत् । अकार्पीत् ।
अहार्पीत् ।

सि०—संज्ञाप्रवरणे द्रष्टव्या ।

अतो लूरान्तस्य ७।२।२

प० वि०—अतः ६।१ लूरान्तस्य ६।१ स०—लश्च रश्च इति लूरी ।
अन्तश्च अन्तश्च इति अन्तौ । लूरी अन्तौ यस्येति लूरान्तः तस्य ।

अर्थ—लकारान्तस्य रेफान्तस्य च अकारस्य स्थाने वृद्धिर्भवति
परस्मैपदेषु परेषु सिचि परतः ।

१—मनि ग्रहणोदच (७. २. १२) इतो भव् (१. २. ६) उदोष्ठ्यपूर्वस्य
(७ १. १०३) उरण् रपरः (१. १. ४६) २—इति च (८. २. ७७)

(लकारान्त घोर रेफान्त अकार के स्थान में वृद्धि होती है परस्मैपद है परे जिसके ऐसे सिच् के परे रहने पर)

उदा०—क्षर । अक्षारीत् । त्सर । अत्सारीत् । जल । अज्वालीन् । हल । अद्वालीत् ।

वदव्रजहलन्तस्याच ७।२।३

प० वि०—वदव्रजहलन्तस्य ६।१ अचः ६।१ हल् अन्ते यस्य इति हलन्त । वदश्च व्रजश्च हलन्तरच इति वदव्रजहलन्तं तस्य ।

अर्थ—[सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु] वद व्रज हलन्त इत्येतेषामङ्गानामचः स्थाने वृद्धिर्भवति सिचि परस्मैपदेषु परतः । (वद व्रज घोर हलन्त अङ्गों के अच् के स्थान में वृद्धि होती है परस्मैपदपरक सिच् के परे रहने पर)

उदा०—अयादीत् । अत्राजीन् । हलन्तस्य—अमेत्सीत् । अच्यैत्सीत् ।

नेटि ७।२।४

प० वि०—न अ० । इटि ७।१

अर्थ—[सिचिः वृद्धिः परस्मैपदेषु हलन्तस्य] इडादौ सिचि परस्मैपदेषु परतः हलन्तस्य अङ्गस्य वृद्धिर्न भवति । (इडादि सिच् परस्मैपद के परे रहने पर हलन्त अङ्ग की वृद्धि नहीं होती है)

उदा०—अदेवीत् । असेवीत् ।

हृम्यन्तक्षणद्वसजागृणिद्व्येदिताम् ७।२।५

प० वि०—हृ-मृ-यन्त-क्षण द्वस जागृ-णि-रि-रि-दिताम् ६।३

अर्थ—[सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु नेटि] हकारान्तानां मकारान्तानां यकारान्तानामङ्गानां क्षण द्वस जागृ णि रि रि इत्येतेषामेदितां च इडादौ सिचि परस्मैपदेषु परतो वृद्धिर्न भवति । (हकारान्त, मकारान्त, यकारान्त, क्षण, द्वस, जागृ, णिजन्त, रिघ्रि घी एकार इत् वाले अङ्गों की वृद्धि नहीं होती है, इडादि सिच् परस्मैपद के परे रहने पर)

उदा०—हृफारान्तस्य—ग्रह उपादने । अग्रहीत् । स्यमु स्वन ध्वन शब्दे । अस्यमीन् । व्यय वित्तसमुत्सर्गे । अव्ययीन् । क्षणु द्विसायाम् । अक्षणीन् । द्वस प्राणने । अश्वसोन् । जागृ निद्राक्षये । अजागरीत् । णि । ऊन परिहाणे ईल प्रेरणे । चुरादिणिच् । ओनयीन् । ऐलयीत् । दुआरिण गतिवृद्धयो । अश्वयीन् । एदिताम् । रणे लगे सङ्गे । अरणीन् । कृते । अकरणीन् ।

ऊर्णोति [विभाषा ७।२।६]

अतो हलादेर्लघो. ७।२।७

प० वि०—अतः ६।१ हलादेः ६।१ लघो ६।१

अर्थ—[इटि सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु न विभाषा] हलादेरङ्गस्य लघोरकास्य इडादौ सिचि परस्मैपदेषु परतो विभाषा वृद्धनं भवति ।

(हलादि अङ्ग के लघु अकार की विकल्प से वृद्धि नहीं होती है इडादि सिचि परस्मैपद के परे रहने पर)

उदा०—अकणीत् । अकारणीत् । अरणीत् । अराणीत् ।

इट्प्रकरणम्

नेड्वशि कृति ७।३।८

प० वि०—न अ० । इट् १।१ वशि ७।१ कृति ७।१

अर्थ—इशादौ कृति प्रत्यये परत इडागमो न भवति । (इशादि कृत् प्रत्यय के परे रहने पर इट् का आगम नहीं होता है)

उदा०—ईशिता । ईशितुम् । ईश्वरः । दीपिता । दीपितुम् । दीप्तः ।

तितुत्रतथसिमुसरकसेषु च ७।२।९

प० वि०—ति-तु-त्र-त-थ-सि-मु-सर-क-सेषु ७।२ च अ० ।

अर्थ—[नेट कृति] ति-तु-त्र-त-थ-सि-मु-सर-कस इत्येतेषु कृत्सु इडागमो न भवति । (इट् कृत् प्रत्ययो के परे रहने पर इडागम नहीं होता है)

उदा०—कितच् । तनिता । तनितुम् । तन्तिः । कितन् । दीपिता । दीपितुम् । दीपितः । तु । सचिता । सचितुम् । सक्तुः । त्र । तनिता । तनितुम् । तन्त्रम् । त । हसिता । हसितुम् । हस्तः । लविता । लवितुम् । लोतः । श्रीणादिकस्यैव तशाब्दस्य ग्रहणमिष्यते न पुनः क्तस्य श्री हसितुम् इत्येव तत्र भवति । कोपिता । कोपितुम् । कुष्ठम् । सि । कोपिता । कोपितुम् । कुक्षिः । सुक् च इषेः । पपिता । पपितुम् । इक्षुः । सर । अशिता । अशितुम् । अक्षरम् । क । शलिता । शलितुम् । शल्कः । स । वदिता । वदितुम् । वत्स ।

एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् ७।२।१०

प० वि०—एकाच ५।१ उपदेशे ७।१ अनुदात्तात् ५।१

अर्थ—[इट् न] उपदेशे यो घातुरेकाच् अनुदात्तश्च तस्माद् इडा-

गमो न भवति । (उपदेश में जो धातु एक् अच् वाले और अनुदात्त उसके पश्चात् इट् का आगम नहीं होता है)

उदा०—दाता । नेता । चेता । स्तोता ।

उपदेशो के घातवोऽनुदात्ता इति घातुपाठाज्जेयम् ।

श्र्युक किति ७।२।११

प० वि०—श्र्युकः ६।१ किति ७।१ स०—अश्च उक् च इति श्र्युकृतस्य ।

अर्थ—[नेट्] श्रि इत्येतस्य उगन्तानां च किति प्रत्यये परत्वं इडागमो न भवति । (श्रि और उगन्त धातु को कित् प्रत्यय के परे रहने पर इट् का आगम नहीं होता है)

उदा०—श्रित्वा । श्रितः । श्रितवान् । उगन्तानां च । युत्वा । युतः । युतवान् । लूना । लूनः । लूनवान् ।

सनि ग्रहगृहोश्च ७।२।१२

प० वि०—सनि ७।१ ग्रहगृहोः ६।२ च अ० ।

अर्थ—[उक् नेट्] ग्रह गृह इत्येतयोरुगन्तानां च सनि प्रत्यये परत्वं इडागमो न भवति । (ग्रह-गृह् और उगन्त अङ्ग को इट् का आगम नहीं होता है सन् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—जिघृक्षति । जिघृक्षतः । जिघृक्षन्ति । जुघृक्षति । जुघृक्षतः । जुघृक्षन्ति । उगन्तानां च-रूपति । रूपतः । रूपन्ति । लुलूपति ।

सि०—ग्रह । ग्रह् सन् । गृह् स । गृह् गृह् स^२ । गृ^३ गृह् स । गर^४ गृह् स । ञ^५ गृह् स । जि^६ गृह् स । जि घृह्^७ स । जि घृह्^८ स । जिघृक्^९ स । जिघृक्ष^{१०} शप् तिप् । जिघृक्षति ।

१—इदविदमुपग्रहिस्वपिप्रच्छ सश्च (१. २. ८) इति सनि कित्वे सति ग्रहादिसूत्रेण (६. १. १६) सम्प्रसारणम्, इग्यणः सम्प्रसारणम् (१. १. ४४) २—सग्यडोः (६. १. १०) ३—तूर्वोम्यामः (६. १. ४) अत्र लोपोऽम्यासस्य (७. ४. ५८) हलादिः शेषः (७. ४. ६०) ४—उरत् (७. ४. ६६) उरण् रपर. (१. १. ४९) हलादि शेष. (७. ४. ६०) ५—कुहोदचुः (७. ४. ६२) ६—सन्त्यतः (७. ४. ७६) ७—एकाचो वचो भप् भपन्नस्य स्थ्वोः (८. २. ३८) ८—हो ङः (८. २. ३१) ९—पङ्गो कः सि (८. २. ४१) १०—आदेशप्रत्यययोः (८. ३. १९)

कृसृभृवृस्तुद्रुसृश्रुवो लिटि ७।२।३१

प० वि०—कृ-सृ-भृ-वृ-स्तु-द्रु-सृ-श्रु-व. ६।१ लिटि ७।१

अर्थ—[नेट्] कृ-सृ-भृ-वृ-स्तु-द्रु-सृ-श्रु इत्येतेषां लिटि प्रत्यये इडागमो न भवति । (कृ-सृ-भृ-वृ-स्तु-द्रु-सृ-श्रु इनको लिट् प्रत्यय के परे रहने पर इट् का आगम नहीं होता है)

❁ सिद्धे सति आरम्भो नियमार्थः । ऋादय एव लिट्यनिटस्ततोऽन्ये सेट इति ❁

उदा०—कृ । चकृव । चकृम । सृ । ससृव ससृम । भृ । बभृव । बभृष । वृव् । ववृष । ववृम । वृड् । ववृवहे । ववृमहे । स्तु । तुष्टुव । तुष्टुम । द्रु । द्रुव । द्रुम । सृ । सुसृव । सुसृम । श्रु । शुश्रुव । शुश्रुम ।

इषीदितो निष्ठायाम् ७।२।१८

प० वि०—इषीदित ६।१ निष्ठायाम् ७।१ स०—शिवश्च ईदितश्च इति इषीदित् तस्य ।

अर्थ—[नेट्] शिव इत्येतस्य ईदितश्च निष्ठायामिडागमो न भवति । (शिव और ईकार इत् वाले धातु को निष्ठा के परे रहने पर इट् का आगम नहीं होता है)

उदा०—शूनः । शूनवान् । ईदितः । ओलस्जी । लग्नः । लग्नवान् ।

यस्य विभाषा ७।२।१५

प० वि०—यस्य ६।१ विभाषा १।१

अर्थ—[नेट् निष्ठायाम्] यस्य धातोः विभाषा क्वचिदुक्तस्तस्य निष्ठायां परत इडागमो न भवति ।

(जिस धातु को कही भी इट् का विधान विकल्प से दिया गया है, उस को निष्ठा के परे रहने पर इट् का आगम नहीं होता है)

उदा०—धूल् । विधूत ! । विधूतवान् । गुह् । गूढः । गूढवान् ।

सि०—गुह्^१ त । गुह्^२ घ^३ । गुह्^३ ढ^४ । गु^४ ढ^५ । गूढ^५ सु । गूढः ।

! स्वरतिमूतिमूयतिधूज्जिता वा (७. २.) से विकल्प कहा है ।

१—हो ढः (८. २. ३१) २—भ्यस्तथोर्षोऽथ. (८. २. ४०) ३—पुना प्लुः (८. ४. ४०) ४—हो ढे लोपः (८. ३. १३) ५—इलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः (६. ३. १११)

आदितश्च ७।२।१६

प० वि०—आदिनः ६।१ च अ० ।

स०—आन् इत् तस्य इति आदित् तस्य ।

अर्थ—[नेट् निष्ठागम्] आदितश्च धातोर्निष्ठागमिडागमो न भवति । (आकार इन् जाने धातु को निष्ठा के परे रहने पर इट् का आगम नहीं होता है)

उदा०—जिमिडा । मिन्नः । मिन्नवान् ।

आर्धधातुकस्येड्वलादे ७।२।३५

प० वि०—आर्धधातुस्य ६।१. इट् १।१ वलादे. ६।१ स०—वल् आर्धिर्यस्य इति वलादिः तस्य वलादे ।

अर्थ—वलादेरार्धधातुस्य इडागमो भवति ।

(वल् प्रत्याहार में आन जाने कोर्द अक्षर है आदि में जिस आर्धधातुक प्रत्यय के समको इट् का आगम होता है)

उदा०—लयिता । लयितुम् । लयितव्यम् ।

ग्रहाञ्जलिटि दीर्घ ७।२।३७

प० वि०—ग्रहः ५।१ अलिटि ७।१ दीर्घ १।१।

अर्थ—ग्रह उत्तरस्य इट्. अलिटि दीर्घो भवति ।

(ग्रह धातु के पश्चात् इट् का दीर्घ होता है, लिट् के परे रहने पर नहीं ।

उदा०—ग्रहीता । ग्रहीतुम् । ग्रहीतव्यम् । अलिटीति किम् । जगृहिष । जगृहिम ।

ॐ प्रकृतस्य इटो दीर्घत्वमिदं तेन चिण्वदिटो न भवति ॐ प्राहिता । प्राहिष्यते ।

वृत्तो वा ७।२।३८

प० वि०—वृत्त. ५।१ वा अ० । स०—वृ च ऋन् च इति वृत् तस्मात् वृत्त. ।

अर्थ—[इट् दीर्घ] अलिटि वृ इति वृह्वृचो सामान्यने ग्रहण तस्मादुत्तरस्य ऋकारान्तेभ्यश्चेटो वा दीर्घो भवति अलिटि ।

वृ (वृङ् वृत्) और ऋकारान्त धातुओं के पश्चात् इट् का विकल्प से दीर्घ होता है लिट् के परे रहने पर नहीं)

उदा०—वृङ्—वरिता । वरीता । वृब् । प्रावरिता । प्रावरीता ।
 ऋकारान्तेभ्य—त्—तरिता । तरीता । मृब् । आस्तरिता । आस्तरीता ।
 सि०—वृजन्तानि रूपाणि इमानि ।

न लिङि ७।२।३६

प० वि०—न अ० । लिङि ७।१

अर्थ—[वृत्तः इट् दीर्घः] वृत्त उत्तरस्य इटो लिङि दीर्घो न भवति ।
 (वृत् के पश्चात् इट् का दीर्घ नहीं होता है लिङ् के परे रहने पर)

उदा०—विधरिपीष्ट । प्रावरिपीष्ट । आस्तरिपीष्ट । विस्तरिपीष्ट ।

सि०—वृङ्—ट् लिङ् । वृ ल् । वृ त् । वृ सोयुट् सुट् । वृ सोयू स्
 त । वृ सी स् त । वृ इट् सीस् त । वर् इ पीप् त । वरिपीष्ट । वि उप-
 सर्गान् विधरिपीष्ट । एवं सर्वम् ।

सिचि च परस्मैपदेषु ७।२।४०

प० वि०—सिचि ७।१ च अ० । परस्मैपदेषु ७।३

अर्थ—[वृत्तः इट् दीर्घः न] परस्मैपदेषु परतः सिचि वृत्त उत्तरस्य
 इटो दीर्घो न भवति । (परस्मैपदपरक सिच के पर रहने पर वृत् के पश्चात्
 इट् का दीर्घ नहीं होता है)

उदा०—प्रावारिष्टाम् । प्रावारिषु । अतारिष्टाम् । अतारिषु । अस्ता-
 रिष्टाम् । अस्तारिषु । परस्मैपदेष्विति ऋम् । प्रावरिष्ट । प्रवरीष्ट । प्र
 वृब् । वृ सिच् लुङ् । वृ इट् स् तस् । वृ इम् ताम् । वार् इत् ताम् ।
 वारिष्टाम् । अट् वारिष्टाम् । अवारिष्टाम् । अ अवारिष्टाम् । प्रावा-
 रिष्टाम् ।

❧ वृङ् उदाहरणं नोपन्यस्तम् तस्य परस्मैपदासम्भवात् । प्रावरिष्ट ।
 प्रावरीष्ट ।

इट् सनि वा ७।२।४१

प० वि०—इट् १।१ सनि ७।१ वा अ० ।

अर्थ—[वृत्तः] वृत्त उत्तरस्य सनो वा इडागमो भवति ।

(वृत् के पश्चात् सन् को विकल्प से इडागम होता है)

उदा०—वृङ्—वुवूर्पते । वुवूर्पते । वुवूर्पन्ते । विवरिपते । विवरी-
 पते । वृब्—प्रावुवूर्पति । प्रावुवूर्पतः । प्रावुवूर्पन्ति । प्राविवरिपति ।
 प्राविवरीपति । ऋकारान्तेभ्य—तितीर्पति । तित्तरिपति । तितरीपति ।

आतिस्तीर्षति । आतिस्तरिपति । आतिस्तरिपति । ॥ सनि प्रहृष्टोश्चेति
इट् प्रतिपेक्षे प्राप्ते पक्षे इडागमो विधीयते । इटश्च वृत्तो वेति पक्षे
दीर्घः ॥ चिह्नीर्षति (क स इत्यन्यथायां) इत्यत्रोपदेशाधिकारान्ता-
च्चणिरुवाच इडागमो न भवति ॥

सि०—वृह् । वृ सन्^१ । वृ^२ स । वृ^३ स । वृ^४ स । वृ^५ स । वृ^६ स ।
स । वृ वृ^७ स । वृ^८ स । वृ^९ स । वृ^{१०} स । वृ^{११} स । वृ^{१२} स । वृ^{१३} स । वृ^{१४} स । वृ^{१५} स ।

लिङ्मिचोरात्मनेपदेषु ७।२।४२

प० वि०—लिङ्सिचो. ६।२ आत्मनेपदेषु ७।२

अर्थ—[वृत्तः वेत्] आत्मनेपदेषु परतो वृत्त उत्तरयोर्लिङ्सिचोः
या इडागमो भवति । (आत्मनेपद है परे जिसके ऐसे लिङ् और सिच् का
वृत्त धातुओं के पदान् विवक्ष्य से इट् का आगम होता है ।

उदा०—वृहः । वृषीष्ट । वरिषीष्ट । वरीषीष्ट । वृषः । प्रावृषीष्ट ।
प्रावरिषीष्ट । प्रावरीषीष्ट । ऋतः । आस्तीर्षीष्ट । आस्तरिषीष्ट । आस्त-
रीषीष्ट । सिचि वृहः । अवृत्त । अवरिष्ट । अररीष्ट । वृषः । प्रावृत्त ।
प्रावरिष्ट । प्रावरीष्ट । ऋतः । आस्तीर्ष । आस्तरिष्ट । आन्तरीष्ट ।

सि०—वृषीष्ट । वृह् । वृ लिङ् । वृ त । वृ सीयुट् सुट् त । वृ सीयू
न् त । वृ सी स् त । वृषीष्ट । अवृत्त । वृह् । वृ लुङ् । वृ त । वृ सिच्
त । वृ स् त । वृत्^१ । अट् वृत्त । अट्टत्त । पय सन्नेर सूत्रपूर्वक साव-
नीयम् ।

ऋतश्च संयोगादे ७।२।४३

प० वि०—ऋतः ५।१ च अ० । संयोगादे. ५।१ स०—संयोग
आदिर्यस्य स संयोगादिः तस्मात् संयोगादेः ।

अर्थ—[लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु वा इड्] संयोगादिर्यो धातुः
ऋतारान्तस्तस्मादुत्तरयोर्लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु वा इडागमो भवति ।

(संयोग है आदि में जिसके ऐसे जो धातु ऋतारान्त उमके पदान्
लिङ् और सिच् को विवक्ष्य से इट् का आगम होता है आत्मनेपद के परे
रहने पर)

१—यदा इडागमो न भवति तदा इको भवति (१. २. ६) विडति च (१.
१. ५.) २—यजुर्मनगमा सनि (६. ४. १६) ३—उदोष्यपूर्वस्य (७. १. १०२)
उरस् रपरः (१. १. ४९) ४—हति च (८. २. ७७) ५—ह्रस्वाद्वाद्वा (८.
२. ७७)

उ०—ध्वृपीष्ट । ध्वरिपीष्ट । स्मृपीष्ट । स्मरिपीष्ट । सिच
खल्पपि—अध्वृपाताम् । अध्वरिपाताम् । अस्मृपाताम् । अस्मरिपाताम् ।
सि०—ध्वृ हृच्छन । भावकर्मणोरित्यात्मनेपदम् । ए०मन्यत्रापि
आत्मनेपद वेदितव्यम् ।

स्वरतिसूतिसूयतिधूञ्जुदितो वा ७।२।४४

प० वि०—स्वरतिसूतिसूयतिधूञ्जुदित ५।१ वा अ० । स०—स्वरति-
श्च सूतिश्च सूयतिश्च धूञ् च ऊदिच्च इति स्वरतिसूतिसूयतिधूञ्-
ऊदित् तस्मात् । ऊत् इत् यस्य स ऊदित् ।

अर्थ—[आर्धधातुकस्येड्वलादे] सृष्ट शब्दोपतापयो पूङ् प्राणि
गर्भविमोचन इत्यादादिक । पूङ् प्राणिप्रसव इति दैवादिक । धूञ् कम्पने
इति सौधान्तिक । ऋ यादिश्चौरादिक । तत्रैकाच् इत्यधिकारादाद्ययार्ग्रह
णम् नेतरस्य चौरादिकस्य ऊदित् गाहू बिलोडने गुप् रक्षणे इत्यादयः ।
एतेभ्य उत्तरस्य वलोदरार्धधातुकस्य वा इडागमो भवति । (इत धातुभो के
पश्चात् वलादि प्राथमधातुक को विकल्प से इट् का आगम होता है)

उदा०—स्वर्ता । स्वरिता । सूति । प्रसोता । प्रसविता । सूयति
सोता । सविता । धूञ् । धोता । धविता । ऊदित् । विगाढा । विगा-
हिता । गोप्ता । गोपिता ।

रधादिभ्यश्च ७।२।४५

प० वि०—रधादिभ्य ५।३ च अ० ।

अर्थ—[आर्धधातुकस्येड्वलादे वा] रधादिभ्य उत्तरस्य वलादे-
रार्धधातुकस्य वा इडागमो भवति । (रधादि धातुभो के पश्चात् वलादि प्राथ-
मधातुक को विकल्प से इट् का आगम होता है)

उदा०—रविता । रद्धा । नष्टा । नशिता ।

सि०—रध् रृच् । रध् इट् रृ । रधित् सु । रधिता । रधितारौ ।
रधितार । णश अदर्शने । नश् रृच् । न नुम्^१ श् रृ । नन्श् रृ । नश्
रृ । नप्^२ रृ । नष्ट्^३ सु । नष्ट । नष्टारौ । नष्टार ।

तीपसहलुभरुपरिप ७।२।४८

प० वि०—ति ७।१ इपसहलुभरुपरिप ५।१ स०—इपश्च हश्चस

१—मस्तिजगोमलि (७ १ ३०) २—वश्चादिसूत्र ख० (८ २ ३६)
३—पुग पृ (८ ४ ४०)

लुभश्च रूपश्च रिट् चेति इपसहलुभरूपरिट्, तस्मात् ।

अर्थ—[आर्धधातुकस्य इट् वा] इपु इच्छायाम् । पह मर्पणे । लुभ गाद्धे । लुभ विमोहने । द्वयोरपि ग्रहणम् । रूप रोपे । रूप रिप हिंसायाम् । ऐतेभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य तकारादेरार्धधातुक्रम्य इड् आगमो वा भवति । (इन धातुग्रां के पश्चात् तकारादि आधधातुव को विवृत्य से इडागम होता है)

उग्रा०—इपु । एष्टा । एपिता । सह । सोढा । सहिता । लुभ । लोभ्या । लोभिता । रूप । रोष्टा । रोपिता । रिप् । रेष्टा । रेपिता । तीति क्रिम् । एपिष्यति ।

सि०—सोढा । पह । पह् । सह । कृच् । सङ् । कृ । सङ् धृ । सङ् कृ । सङ् धृ । सङ् । सोढ् । सोट् सु । सोढ् अनङ् सु । सोढन् स् । सोढान् स् । सोढान् । सोढा । सोढारी । सोढार । लोभ्या । लुभ् कृच् । लोभ् कृ । लोभ् धृ । लोब्ध् । लोब्ध्या । लोब्ध्वारी । लोब्ध्वार ।

सनीवन्तर्द्धभ्रस्जदम्भुश्चिस्व्यूण् भरज्जपिसनाम् ७।२।४६

प० वि०—सनि ७।१ इवन्तर्द्धभ्रस्जदम्भुश्चिस्व्यूण् भरज्जपि-
सनाम् ६।३ स०—इच् अन्ते यस्य स इवन्त । इवन्तश्च ऋधुरश्च भ्रस्ज-
श्च दम्भुरश्च श्रिश्च स्वा चि युश्च ऊर्णुश्च भरश्च क्षपिश्च सश्च इवन्त-
र्द्धसन, तेषा ।

अर्थ—[वा इट्] इवन्ताना धातूनाम् ऋधु धृद्धी, भ्रस्ज पाके, दम्भु म्भे, श्रिच् सेवाया, स्तु शान्तेपतापयो, यु मिश्रणे, ऊर्णुव् आच्छादने, भृञ् भरणे, भारणतोषणनिशामनेषु क्षपिर्गन्त, पणु वाने, वन पण सम्भत्ती (द्वयोरपि ग्रहण) इत्येतेषाञ्च सनि वा इडा-
गमो भवति । (इन धातुग्रा के पश्चात् सन् को विवृत्य स इट् वा आगम होता है)

उग्रा०—इवन्तानाम्—दिदेरिपति । दुग्धुपति । सितेविपति । मुस्यु-
पति । गृध् । अर्दिपति । ईर्सेति । भ्रम्ज । मिभ्रजिपति । मिभ्रक्षति ।
मिभ्रर्जिपति । मिभ्रर्क्षति । म्भु । म्भिमिपति । धीप्मति । धिप्सति ।
शि । उन्दिभ्रयिपति । उच्छिभ्रीपति । स्थृ । सिम्वरिपति । सुगृध्वति ।

१—पात्वद प ॥ (६ १ ६२) २—हाट् (८ २ ३१) ३—मप-
स्तपार्थोऽप (८ २ ४०) ४—पुना पु (८ ४ ४०) ५—दो ष सार
(८ ३ १३) ६—महिबहारोऽवणम्य (६ ३ ११२)

हु । यियविपति । युयूपति । उर्यु । प्रोगुनविपति । प्रोगुनुविपति । भर इति भृञित्येतस्य भौवादिकस्य ग्रहण शपा निर्देशात् । निभरिपति । बुभूर्पति । ज्ञपि । जिज्ञपयिपति । ज्ञीप्सति । सन् । ससनिपति । सिपा सति । × तनिपतिदरिद्राणामुपसरयानम् × तितनिपति । तितसति । तितासति । पिपतिपति । पित्सति । दिदरिद्रिपति । दिदरिद्रासति ।

सि — दिवु । निव् सन् । दिव् स । दि ऊठ् स । नि ऊ स । द्यू स । द्यू द्यूप । दू द्यूप । दुगूष शप् तिप् । दुद्यूपति ।

ऋध् सन् । ऋध् इट् स । ऋव् इट् स । अर्ध् इट् स । अर्धिप । अर्धि^१ धिप । अर्ध् दिधिप^२ । अर्धिधिप शप् तिप् । अर्धिधिपति । ईर्त्सति । ऋध् सन् । ऋध्स । ईर्त्स^३ स । ईर्त्स ध्स^४ । ईर्त्स^५ । ईर्त्स^६ । ईर्त्स^७ शप् तिप् । ईर्त्स अ ति । ईर्त्सति । अस्ज सन् । अस्ज इट् स । अस्ज इट् स । अस्ज् अस्जिजस । भ अस्जिजस । व अस्जिजस । विभ्रस्जिप । विभ्रद्विजप^८ । विभ्रज्जिप^९ शप् तिप् । विभ्राज्जपति । विभ्रर्त्तति । अस्ज् सन् । भ रम् स्ज^{१०} स । भ र्ज^{११} स । भ र्ज् भर्ज् स । भ भर्ज् स । य भर्ज् स । विभर्ज् स । विभर्ग^{१२} स । विभर्क्^{१३} प । विभर्क् शप् तिप् । विभर्त्तति^{१४} । विभ्रज्जिपति । अस्ज् सन् । अस्ज इट् स । भ र्ज् इट् स । भ र्ज् भर्ज् इट् स । भ भर्ज् इट् स । भ भर्जिजस । व भर्जिजस । विभर्जिजस । विभर्जिज शप् तिप् । विभर्जिजपति । विभ्रर्त्तति । अस्ज् । अस्ज सन् । अस्ज् अस्ज् सन् । भ अस्ज् सन् । व अस्ज् स । विभ्रस्प्^{१५}

१—यदा ह गमो न भवति तदा—हलताच्च (१ २ १०) २—विडति च (१ १ ५) ३—च्छवो धूडनुनासिके च (६ ४ १६) अलोऽत्यस्य (१ १ ५१) ४—इको यणचि (६ १ ७४) ५—न द्रा सघोणादय (६ १ ३) ६—भ्रम्यास चच (८ ४ १४) ७—आवक्ष्यधामीत (७ ४ ५५) उरण रपर (१ १ ५०) ८—अजाद्वितीयस्य (६ १ २) ९—अत्र लोपोऽभ्यासस्य (७ ४ ५८) १०—खरि च (८ ४ ५५) ११—वतमान लट् (३ २ १२३) १२—भ्रता जग भ्रति (८ ४ १३) इति सकारस्य दकार. १३—स्तो द्युना द्यु (८ ४ ३६) इति दकारस्य जकार १४—अस्जो रोपघयोरभयतरस्याम् (६ ४ ४७) इयकारान् परो रमागमो रोपघयोरिति पठ्ठीनिद्वाद् पत्स्योपधा याश्च सकारस्य निवृत्तक १५—चो कृ (८ २ ३०) १६—अतो गुणे (६ १) १७—अश्चअस्जादिनृण पत्वम्

स। विभ्रप्^१ स। विभ्रक्^२ स। विभ्रक्प। विभ्रक् शप् तिप्। विभ्रक्
 ति। ॥ इति तदभावे च रमागमविकृपाच्चत्वारि रूपाणि भवन्ति ॥
 दम्भ् सन्। दम्भ् इट् ॥ दम्भिस। दम्भ् दम्भिप। ददम्भिप। दिद-
 म्भिप शप् तिप्। दिदम्भिपति। वीप्सति। विप्सति। दम्भ् सन्। दिम्भ्^३
 स। दिम्प्^४ स। दिप्^५ स। दिप् दिप् स। दिप् स शप् तिप्। धिप्^६
 स शप् तिप्। धिप्सति। धीप्सति। उच्छिन्नीपति। शिन्। शि स^७ श्री^८
 श्री श्री स। शि^९ श्री प शप् तिप्। शिन्नीपति। उन् शिन्नीपति। उच्^{१०}
 शिन्नीपति। उच्छिन्नीपति^{११}। सिस्वरिपति। सृ सन्। सृ सृ स। सृ सृ इट्
 स। सृ सृ इस। स सृ इस। सर सृ इस। सृ इस। सि सृ इस।
 सि स्वरिप शप् तिप्। सिस्वरिपति। सृ स। स्वर स। स्वर स। स्वर स।
 स्वर स। स्वर प। स्वर स्वर्य। स्वर्य। स्वर्य शप् तिप्। स्वर्यपति
 यु। यु स। यु इट् स। योडम। यन्निप। यु यन्निप^{१२}। यि^{१३} यन्निप शप्
 तिप्। यि यन्निपति। उर्णन्। उर्ण सन्। उर्नू^{१४} नू स। उर्णू-
 पति^{१५}। उर्ण स। उर्ण इट् स। उर्ण इस। उर्ण उर्नू^{१६} इप।
 उर्णू इप। उर्णू विप। उर्नू नु विप। उर्णू नु निपति। उर्णू सन्।
 उर्णू इट् स। उर्णो इस। उर्णू इप। उर्णू विप। उर्नू नु विप। उर्णू
 न निपति ॥ क्षीप्सति। क्षिप्^{१७} स। क्षीपि^{१८} स। क्षीप्स^{१९}। क्षीप क्षीप्

१—स्वा ० (८ २ २६) इति भ्रति सकार ताप २—पडा व सि (८
 २ ४१) ३—दम्भ इच्च (७ ४ ५६) ४—खरि च (८ ४ ५५) ५—हलन्ताच्च
 (१ २ १०) इति कि वम् अनिदिना हल उपधाया निङिति (६ ४, २४)
 ६—एकाचो वसो भप् ऋपतस्य स्थवा (८ २ ३७) ७—इतो भन् (१ २
 किङिति च (१ १ ५) ८—अजम्भगना सान (६ ४ १६) ९—तू यो
 सय (७ ४ ६१) १०—स्त्री स्तुना इत्तु (८ ४ ३६) ११—सर्वाजटि (८ ४
 ८२) १२—द्विवचनर्जच (१. १ ५८) १३—घा पुयण्ज्यपर (७ ४, ८०)
 १४—अत्रादेर्द्वितीयस्य (६ १, २) नद्वा सयागादय (६ १ ३) १५—
 रपाभ्या ना ए समानपद (८ ४ १) १६—विभाषार्थो (१ २ ०) इति
 यदा क्त्वं तदा-अचि इनुषातुभ्रुवापिति (६ ४ ७७) उवडादस, अयषा तु
 शुण. छिच्च (१. १ ५२) १७—हतुमति च (३ १ २६) अतिहास्योत्या-
 दिना (७. ३ ३६) पुक् १८—माभ्याप्युषामोव (७ ४ ५५) १९—गरनिटि

स । जि झीप् स । झीप्स^१ शप् ति । झीप्सति ॥ सिपासति । सन्
सन् । स आ^२ सन् । सा सन् । सा सा स । स सा स । सि पा
स । सिपासति । तिपासति । पित्सति । पत् स । पित् त्^३ स ।
पित्^४ स । पित् पित् स । पित्स शप् तिप् । पित्सति । दिदरिद्रिपति ।
दिदरिद्रासति । ऋदरिद्रातेरार्धधातुके लोपो वक्तव्य ऋ विकल्पेन आका-
रलोप ।

जुप्रश्च्यो क्त्वि ७।२।५५

उदितो वा ७।२।५६

प० वि०— उदित ५।१ वा अ० ।

अर्थ—[क्त्वि] उदितो धातोरुचरस्य क्त्व वा इडागमो भवति ।
(उकार इत् वाले धातु के पश्चात् क्त्वा को इट का आगम होता है विकल्प
करके)

उदा०—शमु । शमित्वा । शान्त्वा ।

सि०—शम् क्त्वा । शम् त्वा । शाम्^१ त्वा । शान्त्वा^२ । शान्त्वा
सु । शान्त्वा ।

सेऽसिचि कृतचृतच्छृदत्तृदन्तृ ७।२।५७

प० वि०—से ७।१ असिचि ७।१ कृतचतच्छृदत्तृदन्तृ ५।१

अर्थ—[वा इट् आर्धधातुकस्य] कृती छेदने इति तौदादिक । कृती
वेष्टन इति रौवादिक् (द्वयोरपि प्रहणम्) चृती हिसासग्रन्थयो । उच्छ
दिर् दीप्तिदेवनयो उत्तरि हिसादानयो नृती गात्रविच्छेपे इत्येतेभ्य
उत्तरस्य असिचि सकारादेरार्धधातुकस्य वा इडागमो भवति । (इन
धातुओं के पश्चात् सिचि चि न सकारादि आधधातुक को विकल्प में इट का
आगम होता है)

कृन् । कर्त्स्यति । कर्त्तिष्यति । अकर्त्स्यत् । अकर्त्तिष्यत् । चिकृत्सति ।
चिकत्तिपति । । चत् । चर्त्स्यति । चर्त्तिष्यति । अचर्त्स्यत् ।

(६ ४ ५१) १—अन लोपोऽभ्यामस्य (७ ४ ५८) २—जनसनक्षना
सञ्मलो (६ ४ ४२) इत्यात्वम् । ३—सनि मीमाधुरमलभशपतपदामच
इस (७ ४ ५४) ४—स्को सयोगाद्योरते च (८ २ २६) ५—घनुनासिवस्य
विवक्तलो विडति (६ ४ २४) ६—नदचापदातम्य भलि (८ ३ २४)
घनुस्मारस्य ययि परसवण (८ ४ ५७)

अचर्त्तिष्यत् । चिचृत्सति । चिचर्त्तिषति । छट् । छर्त्स्यति । छर्त्तिष्यति ।
 अच्यत्स्यन् । अच्यर्त्तिष्यन् । चिच्यत्सति चिच्यर्त्तिषति । कृट् । कर्त्स्यति ।
 कर्त्तिष्यति । अनर्त्स्यन् । अनर्त्तिष्यन् । तितृत्सति । तितर्त्तिषति । नृन् ।
 नर्त्स्यति । नर्त्तिष्यति । अनर्त्स्यन् । अनर्त्तिष्यन् । निनृत्सति । निनर्त्तिषति ।

गमेरिट् परस्मैपदेषु ७।२।५८

गमे ५।१ इट् १।१ परस्मैपदेषु ७।३

अर्थ—[मे आर्धधातुकस्य] गमेस्त्तरस्य सकारादेराधधातुस्य पर-
 स्मैपदेषु डङागमो भवति । (गम् धातु क परचात सकारादि आधधातुक को
 परस्मैपद के परे रहने पर इट का प्रागम होता है)

उदा०—गमिष्यति । अगमिष्यन् । जिगमिषति ।

न वृद्धभ्यश्चतुर्थ्यं ७।२।५९

प० त्रि०—न अ० । वृद्धभ्य ५।३ चतुर्थ्यं ५।३

अर्थ—[से आर्धधातुकस्य इट् परस्मैपदेषु] वृद्धादिभ्यश्चतुर्थ्यं
 उत्तरस्य सकारादेराधधातुस्य परस्मैपदेषु डङागमो न भवति । (वृध् वृध्
 वृध् स्वरङ्ग इन चार धातुओं के पञ्चान सकारादि आधधातुक का इट् का प्रागम
 नहीं होता है परस्मैपद के परे रहने पर)

उदा०—वृत्-वर्त्स्यति । अवर्त्स्यन् । विवृत्सति । वृध्-वर्त्स्यति ।
 अनर्त्स्यत् । विवृत्सति । वृग्-वर्त्स्यति । अवर्त्स्यन् । विवृत्सति । म्यन्-
 वर्त्स्यति । अस्यन्वर्त्स्यन् । सिष्यन्वर्त्स्यति ॥

तासि च क्लृप ७।२।६०

प० वि०—तासि (अभिभक्तिको निर्देश) च अ० । क्लृप ५।१

अर्थ—[से आर्धधातुस्य परस्मैपदेषु नेट्] कृप उत्तरस्य तासे
 सकारादेराधधातुस्य परस्मैपदेषु डङागमो न भवति ।

(कृप् सामर्थ्ये इष धातु क परचात ताम का घोर सकारादि आधधातुक
 का इट् का प्रागम नहीं होता है परस्मैपद के पर रहने पर)

उदा०—क्लृप्ता श्व । क्लृप्स्यति । अक्लृप्स्यन् । चिक्लृप्सति ।

अचस्नास्वत्यत्यनिटा नित्यम् ७।२।६१

प० त्रि०—अच ५।१ तास्व १।१ यति ७।१ अनिट् ५।१
 नित्यम् ६।१

अर्थ—[इट् न उपदेशे इत्यपकर्षणात्] उपदेशे ऽजन्तो यो धातु-
स्तासौ नित्यानिट् तस्मादुत्तरस्य तासाविव थल् इट् आगमो न भवति ।
(उपदेश में अजन्त जो धातु, तास् के परे पर नित्य अनिट्, उसके पश्चात्
तास् के समान थल् को इट् का आगम नहीं होता है)

उदा०—याता । ययाय । च्वेता । चिचेय ।

उपदेशोऽत्वतः ७।२।६२

प० वि०—उपदेशे ७।१ अत्वतः ५।१

अर्थ—[तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्] उपदेशे यो धातुर् अकारयान्
तासौ नित्यमनिट् तस्मात् उत्तरस्य थल् तासाविव इडागमो न भवति ।
(उपदेश में जो धातु अकारयान् और तास् के परे रहने पर नित्य अनिट्
उसके पश्चात् थल् को तास् के समान इट् का आगम नहीं होता है)

उदा०—पक्ता । पक्कथ । शक्ता । शशक्थ ।

ऋतो भारद्वाजस्य ७।२।६३

प० वि०—ऋत ५।१ भारद्वाजस्य ६।१

अर्थ—[तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्] ऋकारान्ताद् धातोर्भारद्वाज-
स्याचार्यस्य सतेन तासाविव नित्यानिटस्वल् इडागमो न भवति ।
(ऋकारान्त जो धातु तास् के परे रहने पर नित्य अनिट् उसके पश्चात्
तास् के समान थल् को इट् का आगम नहीं होता है भारद्वाज आचार्य के
मत से)

उदा०—स्मर्त्ता । सस्मथ । ध्वर्त्ता । ध्वर्थ । * सिद्धे सत्यारम्भो
नियमार्थः । ऋत एव भारद्वाजस्य नान्येषां धातूनाम् । अन्येषां तु क्रादि-
नियमात् क्राद्यन्यो धातुर्निटि सेङ् भवत्येव ।

न च ऋतो भारद्वाजस्य इत्येतत् सूत्रं तेषां स्तुद्वादीनामपि धत्ति
इतिनियमस्य निवर्त्तकमिति वाच्यम् अनन्तरस्य विधिर्वा प्रतिषेधो वा
इति नियमात् अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्, उपदेशोऽत्वतः इति सूत्र-
द्वयस्यैव निवर्त्तकत्वात् । अयमेव नियमो यैयाकरणनिकाये भारद्वाज-
नियमनाम्ना प्रसिद्ध इत्यपि बोध्यः)

(अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम् तथा उपदेशोऽत्वतः इन दोनों सूत्रों से ही
यह ऋकारान्त धातु थल् के परे रहने पर अनिट् सिद्ध हो ही जाता है पुनः
जो इस ऋतो भारद्वाजस्य सूत्र का आरम्भ आचार्य ने किया है वह इसलिए कि
यह सूत्र नियम सूत्र हो नाय । अर्थात् दूसरे सूत्रों से कार्य के सिद्ध हो जाने पर

भी जो मूत्र का आरम्भ किया जाता है वह नियमाय हो जाता है। यहाँ पर इस मूत्र में यह नियम निकलना है कि यदि भारद्वाज आचार्य के मत में किसी धातु को यत्न के परे रहने पर इष्ट का आगम न हो तो केवल वह श्रृङ्गारान्त धातु को ही अन्य धातुओं का यत्न के परे रहने पर उनके मत से इष्ट का आगम हो ही जाता है, ऐसे करने से 'ययिष' में इष्ट का आगम हो गया।

"स्तु द्रु, स्म, इत्यादि धातु को भी यत्न के परे रहने पर भारद्वाज के मत से इष्ट का विकल्प होता है, ऐसा यदि कोई समझा कर सा ठीक नहीं है क्योंकि व्याकरण की परिभाषा है अनन्तरस्य विविक्षा प्रतिषेधा वा अर्थान् प्राप्तुं रहने वाले मूत्रों का ही निषेध या विधान जाना है अतः अथ उपा उपपन्न इन दाना मूत्रों का ही विकल्प इस नियम में हो सकता है, स्तु द्रु, इत्यादि धातुओं का विकल्प नहीं हो सकता। उसका तो धत् में निषेध हो ही जाता है। यह नियम व्याकरणों के समूह में भारद्वाज नियम में प्रसिद्ध है।

एतत्परकरणमकारान्तस्य निवर्त्यर्थम् तथा हि सति विध्यर्थमेत-
त्स्यात् ॥

विभाषा मृजिदृशो ७।२।६५

प० वि०—विभाषा १।१ सृजिदृशो ६०

अर्थ—[यत्नि नेट्] मृजि दृशि द्रव्यनाम्नामुत्तरस्य यत्नो विभाषा दृडागमो न भवति। (मृज् और दृग् धातु के पश्चात् यत्न का विकल्प में इष्ट का आगम नहीं होता है)

उदा०—मस्र्थ । ससर्जिथ । ददृष् । ददर्शिय ।

सि०—मृज् यत् । मृ अम^१ ज् थ । मृज् थ । सृज् सृज् थ । स सृज् थ । मस्र् थ । सस्र्थ ।

इत्यर्थात्तिव्ययतीनाम् ७।२।६६

प० वि०—इष्ट १।१ अत्यर्त्तिव्ययतीनाम् ६।३

अर्थ—[यत्नि] अद भक्षणे, ऋ गती, व्येय् संपरणे इत्येतेभ्यः धातुभ्य उत्तरस्य यत्न दृडागमो भवति।

(इन धातुओं के पश्चात् यत्न को इष्ट का आगम होता है)

उदा०—आदिथ । आरिथ । सवित्र्यथ ।

सि०—अद् यत् । अद अद् ड थ । अ अद् ड थ । आ^२ अद् ड

थ । आदिथ^१ । ऋ थल् । ऋ इट् थ । अर् इ थ । अर् अर् इ थ । अ
अरिथ । आ^१ अरिथ । आरिथ । व्येञ् । व्ये । व्ये^३ थल् । व्ये इट् थ ।
व्ये व्ये इ थ । व् इ^४ ए व्ये इ थ । वि ए व्ये इ थ । विन्यय्^५ इ थ । विन्य
यिथ । सम् विन्ययिथ । सविन्ययिथ ।

वस्वेकाजादघसाम् ७।२।६७

प० वि०—वसु (अविभक्तिको निर्देश) एकाजादघसाम् ६।३

स०—एकान् आश्च घश्च इति एकाजादघस तेषाम् ।

अर्थ—[इट्] कृतद्विर्चनानामेकाचा धातूनाम् आकारान्ताना
घसेश्च वसाविडागमो भवति । (द्विचन कर लन क पश्चात् जो एक
अच वाता धातु उसस तथा आकारान्त धातु से तथा वसू क पश्चान् जो वसु
उसका इट् का भागम होता है)

उत्प०—आदिवान् । आशिवान् । पेचिवान् । शोक्विवान् । आत्
ययिवान् । तस्थिवान् । वसू—जक्षिवान् ।

सि०—अद् लिट् । अद् ववसु^१ । अद् वस् । अद् अद् वस् ।
अ अद् वस् । आ^१ अद् वस् । आद्^२ वस् । आद् इट् वस् । आदिवस्
सु । आदिवस स । आदिवानुमस् स् । आदिवान्स्^३ स् । आदिवान्स् ।
आदिवान् । आदिवसौ । आदिवस । आदिवसम् । आदिवसौ ।
आदुप^४ । आदुपा । आदिवद्भ्याम्^५ । आदिवदिभ ॥ अश भोजने ।
अश् लिट् । अश् ववसु^६ । अश् अश् वस् । अ अश् वस् । आ अश
वस् । आश् वस् । आश् इट् वस् । आशिवस् सु । आशिवन्स् स ।
आशिवान्स् स् । आशिवान् स् । आशिवान् । आशिवसौ । आशिवस ।
पच लिट् । पच् वस् । पच् पच वस । प पच् वस् । पेच्^७ वस् । पेच्
इट् वस । पेचि वस् । पेचिवस सु । पेचिवन्स् स । पेचिवान्स् स् ।
पेचिवान्स् । पेचिवान् । पेचिवसौ । पेचिवस । या या लिट् । या

१—अत आदे (७ ४ १०) २—प्रक सवर्णे दीघ (६ १ ६७) ३—न
व्यो लिटि (६ १ ४६) इत्यात्व न ४—लिट्यभ्यासस्थोभयेषाम् (६ १
१७) ५—सम्प्रसारणाच्च (६ १ १०४) ६—ववसुश्च (३ २ ११७)
७—सातमहत् सयागस्य (६ ४ १०) ८—वसो सम्प्रसारणम् (६ ४ ३१)
९—वसुस मुध्वस्वनडुहा द (८ २ ७२) १०—अत एकह्रस्व्येऽनादेशा
देर्लिटि (६ ४ १२०)

इट् वस् । आ इत्स् । य् इत्स् । या^१ यिवस् । य यित्स् । ययिवान् ।
 अद् । घल् । घस् लिट् । घस् क्त्वा । घस इट् वस् । घस् इवस् ।
 घस्^२ इत्स् । घस् १^३ इवस् । घक्स्^४ इवस् । घक्^५ इवस् ।
 म्^६ इवस् । ज^७ इत्स् । जइत्स्वान् ।

ऋकादिनियमान् सिद्धे सति आरम्भाऽय नियमार्थं ण्य वेदितव्य ।
 एकाजादघसामेय धमाग्रिडागमो भवति नान्येषाम् । एतेन नियमेन
 विभिद्वान् इत्यादय सिध्यन्तिः

(कादिनियम म इन धातुभो के पश्चात् लिट् को इट् का भागम सिद्ध है
 फिर जो इट् का विधान किया गया, इनम यह नियम निकलता है कि इन
 धातुभा के पश्चात् ही वप् को इट् का भागम नहीं होता, अथ को होता है ।
 इस विभिद्वान् इत्यादि सिद्ध हो जाते हैं)

विभाषा गमहनविदविशाम् ७।२।६८

प० वि०—विभाषा १।१ गमहनविदविशाम् ६।३

अर्थ—[इट् वस्] गम, हन, विशिना साहचर्याद् विदल्ल लाभे,
 विश प्रवेशने इत्येतेषा धातूनां वसी विभाषा इडागमो भवति ।

(गम् हन् विद् विश इन धातुभो के पश्चात् वप् को विकल्प से इट् का
 भागम होता है)

उदा०—गम—जग्मिवान् । जगन्वान् । हन—जह्निवान् । जघ-
 न्निवान् । विद्—विविद्वान् । विजिजिवान् । ज्ञानार्थस्य विद् धातोस्तु
 नित्य विविद्वान् इत्येव भवति । विश—विशिषिवान् । विविशिवान् ।
 दृशेदिति व-स्तन्यम् दृशिषिवान् दृशिष्वान् ।

सि०—गम् लिट् । गम् वस् । गम् इट् वस् । गम्^१ इवस् । गम्
 ग्म्^२ इत्स् । ग ग्म् इवस् । जग्मिवस् । जग्मिवनुम्स् । जग्मि-
 वान्स्^३ स् । जग्मिवान्स् । जग्मिवान् । जग्मिवासी । जग्मिवास ।
 जग्मिवांसम् । जग्मिवांसो । जग्मुप । जग्मुपा । जग्मिवद्भ्याम्^४ ।

१—द्विवचनेऽचि (१. १ ५८) २—गमहनजवखनघसा विदित्यनङि (६.
 ४. ६८) ३—स्वरि च (८ ४. ५४) ४—शासिवसिषसीना च (८ ३. ६०)
 ५—कुहोश्च (७ ४. ४२) ६—ग्रन्थासे चर्षं (८. ४ ५३) ७—गमहनजन-
 खनघसा लोष विदित्यनङि (६ ४ ६८) ८—द्विवचनेऽचि (१ १. ५८) लिटि
 धातोरनभ्यासस्य (६ १ ८) ९—मान्तमहन सयोगस्य (६ ४ १०)
 १०—वसुस सुष्वण्वनङुहो द. (८ २ ७२)

जग्मिवद्भि । जगन्वान् । जगम्बान् । जगन्वान् । जगन्वान् । हन्-
वस् । हन् इट् वस् । हन् इवस् । हन् हन् इवस् । ह हन् इवस् । ह
घ्न^१ इवस् । म्^२ घ्न इवस् । ज^३ घ्निवस् । जघ्निवान् ।

ऋद्धनो स्ये ७।२।७०

प० वि०—ऋद्धनो ६।२ स्ये ७।१ स०—ऋञ्च हश्चेति ऋद्धनो
तयो. ऋद्धनो ।

अर्थ—[इट्] ऋकारान्तानां धातूनां हन्तेश्च स्ये इडागमो भवति ।
(ऋकारान्तं भोर हन् धातु के पश्चात् स्य को इट् का आगम होता है)
उदा०—कृ । करिष्यति । ॥ हरिष्यति । हन् । हनिष्यति ।

अञ्जे [सिचि] ७।२।७१

स्तु सुधुञ्भ्य परस्मैपदेषु ७।२।७२

प० वि०—स्तुसुधुञ्भ्य ४।३ परस्मैपदेषु ७।३

अर्थ—[सिचि इट्] स्तु सु धुञ् इत्येतेभ्य उत्तरस्य सिचि इडा-
गमो भवति परस्मैपदेषु परत । (स्तु पु भोर धुञ् धातुभ्यो के पश्चात् सिचि
को इट् का आगम होता है परस्मैपद के परे रहने पर)

उदा०—अस्तावीन् । असावीन् । अधारीन् ।

ॐ ष्टुञ् स्तुतौ । पुञ् अभिपद्ये । अनयोऽनुदात्तत्वात् प्रतिषेधे
प्राप्ते धूञ्स्तु स्वरत्यादिसूत्रेण (७ ० ४४) विकल्पे प्राप्ते सती इदमा-
रभ्यते ॐ

परस्मैपदेषु इति किम् । अस्तोष्ट । असोष्ट । अयोष्ट । अधविष्ट ।

यमरमनमाता सक् च ७।२।७३

प० वि०—यमरमनमाताम् ६।३ सक् १।१ च अ० ।

स०—यमश्च रमश्च नमश्च आश्चेति यमरमनमाता तेषाम् यम-
रमनमाताम् ।

अर्थ—[सिचि इट्] परस्मैपदेषु यम उपरमे रमु क्रीडायाम् एम
ग्रहत्वे शट्ठे च इत्येतेभ्य आकारान्तेभ्यश्च धातुभ्य सिचि इडागमो
भवति परस्मैपदेषु परत. तत्सन्नियोगेन एतेषां धातूनां सक् च आगम ।

(रमु रमु एम तथा आकारान्त धातुभ्यो के पश्चात् सिचि को इट् का

१—अभ्यासाच्च (७ ३ ५५) २—पूर्वोऽभ्यास (६ १ ४) अत्र लोपोऽभ्यासस्य
(७ ४ ५८) कुहोश्च (७ ४ ६२) ३—अभ्यासे चच (८ ४. ५३)

आगम होता है परस्मैपद के परे रहने पर तथा इस इट् के सन्धियोग से इन पानुग्रो को सक् का आगम होता है)

उदा०—यमु—अयसीन् । अयसिष्टाम् । अयसिपु । रमु—व्यर-
सीन् । व्यरसिष्टाम् । व्यरसिपु । ऋम—अनमीत् । अनमिष्टाम् ।
अनसिपु । आन्—या । अयासीन् । अयासिष्टाम् । अयासिपु ।
ऋमर्षेणामनुदात्तत्वाद्दिप्रतिषेधे प्राप्तेऽयमारम्भ । यमादोनां हलन्त-
लक्षणा वृद्धिः प्राप्ता सा नेटोति प्रतिषिध्यते॥

स्मिपूङ् रञ्ज्वा सनि ७।२।७४

प० वि०—स्मिपूङ् रञ्ज्वाशाम् ६।३ मनि ७।१

अर्थ—[इट्] स्मिङ् उपद्वहने, पूङ् पवन, श्रु गतिप्रापणयोरिति
भ्यादिः । श्रु गताविति जुहोत्यादि. (उभयोरपि ग्रहणम्) अञ्जु
अचरो, अशू व्याप्तौ इत्येतेभ्य उच्चारस्य सन द्वागमो भवति ।

(इन पानुग्रो के पदवान् सन् को इट् का आगम होता है)

उदा०—सिस्मयिपते । पिपनिपते । अरिरिपति । अञ्जिजिपति ।
अशिशिपते ।

किरश्च पञ्चभ्यः ७।२।७५

प० वि०—किरः ५।१ च अ० । पञ्चभ्यः ५।३

अर्थ—[सनि इट्] किरादिभ्यः पञ्चभ्यः उच्चारस्य सन द्वागमो
भवति । (इ विक्षेप इत्यादि वाच पानुग्रो के पदवान् सन् को इट् का आगम
होता है)

उदा०—कृ—चिकरिपति । गु—जिगरिपति । कृअत्रेटो दीर्घो नेष्ट कृ
दृङ्—दिदरिपते । धृङ्—दियरिपते । प्रच्छ—पिपृच्छिपति ।

सि०—प्रच्छ सन्^१ । पृच्छ^२ स । पृच्छ् पृच्छ् स । पृ पृच्छ स ।
प^३ पृच्छ स । पर^४ पृच्छ् स । प^५ पृच्छ् स । पि^६ पृच्छ् स । पि पृच्छ्
ष्ट् स । पिपृच्छिपति । जिगरिपति । जिगलिपति ॥

रुदादिभ्यः सार्वधातुके ७।२।७६

प० वि०—रुदादिभ्यः ५।३ सार्वधातुके ७।१

१—रुदविदेत्यादिना (१ २ ८) सन क्त्वम् २—ग्रहिज्येत्यादिना (१
१. १६) सम्प्रसारणम् ३—उरन् (७. ४. ६६) ४—उरण् स्वर (१. १.
५०) ५—हलादि. शेष. (७. ४. ६०) ६—सन्धनः (७. ४. ७६)

अर्थ—[वलादेः इट्] ऋभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो वलीयान् इति रुदादिभ्य इत्येपा पञ्चमी सार्वधातुक इत्यस्याः सप्तम्या पठ्नीत्य् प्रकल्पयतिः

रुदिर् अश्रुविमोचने, विष्वप् शये, श्वस प्राणने अन च, जह् अदने इत्येतेभ्यो रुदादिभ्य उत्तरस्य वलादे सार्वधातुकस्य इडागमो भवति । (इन रुदादि धातुभ्यो के पश्चात् वसादि सार्वधातुक को इट् का आगम होता है)

उदा०—रोदिति । स्वपिति । श्वसिति । प्राणिति । जहिति ।

(१) ईश से ७।२।७७

(२) ईङ्जनोर्ध्वे च ७।२।७८

। (३) [ईशीङ्जना स्ध्वे]

प० वि०—(१) ईश. ६।१ से ७।१ (२) ईङ्जनोः ६।२ ध्वे ७।१ च अ० । (३) ईशीङ्जनाम् ६।३ स्ध्वे ७।१ स०—(१) ईश्च ईट् च जन् चेति ईशीङ्जनां तेषाम् । सश्च धश्चेति स्धम् तस्मिन् स्ध्वे ।

अर्थ—[सार्वधातुके इट्] ईश ऐश्वर्ये, ईङ् स्तुती जनो प्रादुर्भावे, जन जनने (उभयोरपि ग्रहणम्) इत्येतेभ्यो धातुभ्य. सकारादे. ध्रादेश्च सार्वधातुकस्य इडागमो भवति । (ईश् इट् जन् इन धातुभ्यो के पश्चात् सकारादि ध्रा ध्वादि सार्वधातुक को इट् का आगम होता है)

उदा०—ईश्-ईशिपे । ईशिष्व । ईशिध्वे । ईशिध्वम् ईङ्-ईङ्घिये । ईङ्घिय । ईङ्घिये । ईङ्घियम् ।

लिङ् सलोपोऽनन्त्यस्य ७।२।७९

प० वि०—लिङ् ६।१ सलोप. १।१ अनन्त्यस्य ६।१ स०—सस्य लोप सलोपः । अन्ते भय अन्त्य । न अन्त्य अन्त्य. तस्य अनन्त्यस्य ।

अर्थ—[सार्वधातुके, सामर्थ्यात् पठ्या विपरिणम्यते] लिङ्-लकारसमन्विनोऽनन्त्यस्य सार्वधातुकस्य सकारस्य लोपो भवति । (लिङ् लकार समन्वी जो अन्त में न हाने वाला सार्वधातुक लकार होता है, उसका लोप हो)

! महानाप्यममताऽय पाठ ।

उदा०—कुर्यात् । कुर्याताम् । कुर्युः । कुर्वीत । कुर्वीयाताम् । कुर्वी-
रन् । अनन्त्यस्य इति किम् । कुर्युः । कुर्याः । सार्वधातुक इत्येव ।
क्रियास्ताम् । क्रियासुः । कृषीष्ट । कृषीयास्ताम् । कृषीरन् ।

ॐसार्वधातुके लिङि सकारद्वयस्यापि निवृत्तिः मुटः श्रवणं तु
आशीर्लिङि । स्फुटतरं तु तत्राप्यात्मनेपदेः

अतो येय ७।२।८०

प० वि०—अतः २।१ या [सुपां मुलुगिति पठ्याः लुक्]
इयः १।१

अर्थ—[सार्वधातुके, अत इति पञ्चमीसामर्थ्यादिह पठ्या विपरि-
णम्यते] अकारान्ताद्भादुत्तरस्य या इत्येतस्य सार्वधातुकस्य इय् इत्ययमा-
देशो भवति । (अकारान्त भङ्ग के पश्चात् या सार्वधातुक के स्थान में
इय् प्रादेश होता है)

उदा०—पचेत् । पचेताम् । पच्युः ।

सि०—लिङ् विधायस्सूत्रे साधनं द्रष्टव्यम् ।

आतो डितः ७।२।८१

प० वि०—आतः ६।१ डितः (अभयवपठ्ठी)

अर्थ—[अतः इयः सार्वधातुकस्य] अकारान्ताद्भादुत्तरस्य डित्य-
यस्य आकारस्य सार्वधातुकस्य इय् इत्ययमादेशो भवति ।

(अकारान्त भङ्ग के पश्चात् डित् सार्वधातुक के अवयव आकार के
स्थान में इय् यह प्रादेश होता है)

उदा०—पचेते । पचेथे । पचेताम् । पचेथाम् ।

सि०—पच् लट् । पच् आताम् । पच् शप् आताम् । पच आताम् ।
पच इयाताम् । पच्य् ताम् । पचेताम् । एवं सर्वत्र ॥

आने मुक् ७।२।८२

प० वि०—आने ७।१ मुक् १।१

अर्थ—[अतः] ॐअतो येयः इति पूर्वसूत्रादनुवृत्तं पञ्चम्यन्तमपि
अत इति पदं पठ्या विपरिणम्यते, आने इति सप्तमीबलात् । न च
अत इति पञ्चमीबलाद् आने इति सप्तम्यन्तं पदं पठ्या विपरिणम्य-
ताम् इति शङ्क्यम्, पञ्चम्याः पूर्वसूत्रे चरितार्थत्वात् सप्तम्याश्च

अचरितार्थत्वात्॥ अकारान्तस्य अङ्गस्य मुगागमो भवति आने परत
(प्रकारान्त अङ्ग को मुक् का आगम होता है, आन के परे रहन पर)
उदा०—पचमान । यजमान ।

ईदास ७।२।८३

प० वि०—ईत् १।१ आस ५।१

अर्थ—[आने] ॥ आने इति पद पठ्या विपरिणम्यते आस इति
पञ्चमीप्रलात् ॥ आस उत्तरस्य आनस्य ईकारादेशो भवति ।

उदा०—आसीनो यजते ।

(आस् के पश्चात् आन व। ईकारादेश होता है)

सि०—आस् लट् । आस् शानच् । आम् आन । आस् शप्
आन । आम् आन । आस् ई न । आसीन सु । आसीन स् ।
आमीन स् यजते । आसीन रु यजते । आसीन र् यजते । आसीन
उ यजते । आसीनो यजते ।

अष्टन आ विभक्तो ७।२।८४

प० वि०—अष्टन ६।१ आ १।१ विभक्तौ ७।१ ॥ अष्टन इत्यत्र
सोऽत्रादल्लोपऽन इति न ॥

अथ—[रायो हलि इत्यतः हलि इत्यपहृण्यते] अष्टनो हलादौ विभक्तौ
परत आकारादेशो भवति । (अष्टन शब्द को आकार आदेश हो जाता है
हलादि विभक्ति क परे रहन पर)

उदा०—अष्टाभिः । अष्टाभ्यः ।

सि०—अष्टन् भिस् । अष्ट आ भिस् । अष्टा भिस् । अष्टाभिः ।
॥ रुथ अष्टानाम् तदुच्यते—अष्टन् आम् । अष्टन् नुट् आम् । अष्टन
नाम् । अष्ट आ नाम् । अष्टानाम् ॥

रायो हलि ७।२।८५

प० वि० राय ६।१ हलि ७।१

१—तिङ्गित् सावधानुबन्धम् (३. ४ ११३) सावधानुबन्धम् (३. १. ६७)
वर्त्तरि शप् (३. १. ६८) २—अदिप्रभृतिभ्यः घञ् (२. ४. ७२) ३—ईदास
(७. २. ८३) आदे परस्य (१. १. ५३) ४—प्रलोप्यस्य (१. १. ४१)
५—प्रवः सवर्णे दीर्घः (६. १. १७) ६—प्लान्ता षट् (१. १. २३) षट्चतु-
म्यन्च (७. १. ५५) आद्यन्तो ऽङितौ (१. १. ४५) ७—प्रवः सवर्णे दीर्घः
(६. १. ६७)

अर्थ—[आ विभक्तौ] रै इत्येतस्य हलादौ विभक्तौ परत आकारादेशो भवति । (रै को आकार आदेश होता है हलादि विभक्ति के परे रहन पर)

उदा०—रा । राभ्याम् । राभि । राभ्य । रासु । हलि इति किम् । रायौ । राय । राया । राये । राय । राया । रायो । रायाम् । रायि । विभक्ताविति स्मिम् । रैत्वम् । रैता ।

युष्मदस्मदोरनादेशो ७।२।८६

प० वि०—युष्मदस्मदो ६।२ अनादेशो ७।१ स०—युष्मच्च अस्मच्चेति युष्मदस्मदौ तयो युष्मदस्मदो । न आदेश अनादेश तस्मिन् अनादेशो ।

अर्थ—[आ विभक्तौ] युष्मदस्मदोरनादेशो विभक्तौ परत अनादेशो भवति । (युष्मद् और अस्मद् भङ्ग का, जिसका आदेश नहीं हुआ है ऐसी विभक्ति क परे रहन पर, आकार आदेश हाना है)

उदा०—युष्माभि । अस्माभि । युष्मासु । अस्मासु । अनादेश इति किम्—युष्मन् । अस्मन् ।

सि०—युष्मद् भिस् । युष्म आ भिस् । युष्माभि ।

द्वितीयाया च ७।२।८७

प० वि०—द्वितीयायाम् ७।१ च अ० ।

अर्थ—[युष्मदस्मदो आ विभक्तौ] युष्मदस्मदोरानारादेशो भवति द्वितीयाया विभक्तौ परत । (युष्मद् और अस्मद् भङ्ग को आकार आदेश होता है द्वितीया विभक्ति के परे रहन पर)

उदा०—स्याम् । माम् । युनाम् । आनाम् । युष्मान् । अस्मान् ।
ॐ आदेशार्थं वचनम् ॐ

सि०—माधन तु एतेषा सर्वेषा पदानां सप्तमाध्यायस्य प्रथमे पाठे विस्तृतरूपेण दत्तम् अत एव तत्रैव द्रष्टव्य तस्य च नियन्त्रणमपि कर्तव्यम् ।

प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् ७।२।८८

प० वि०—प्रथमाया ६।१ च अ० । द्विवचने ७।१ भाषायाम् ७।१

अर्थ—[युष्मदस्मदो आ] प्रथमायाश्च द्विवचने विभक्तौ परतो युष्मदस्मदोरानारादेशो भवति । (प्रथमा की द्विवचन विभक्ति क परे रहने

पर युष्मद् और अस्मद् भङ्ग को भाकार भादेश होता है भाषा में)

उदा०—युवाम् । आवाम् ।

योऽन्ति ७।२।८६

प० वि०—य. १।१ अचि ७।१

अर्थ—[युष्मदस्मदोः अनादेशे विभक्तौ] अजादावनादेशे विभक्तौ परतो युष्मदस्मदोर्नकारादेशो भवति ।

(भादेश जिस का नहीं हुआ है ऐसी अजादि विभक्ति के परे रहने पर युष्मद् और अस्मद् भङ्ग को यकार भादेश होता है)

उदा०—त्वया । मया । त्वयि । मयि । युवयोः । आवयोः ।

सि०—युष्मद् टा । त्व अद् टा । त्व अय् आ । त्वया । एवं सर्व सूत्रपूर्वक साधनीयम् ।

शेषे लोप ७।२।८०

प० वि०—शेषे ७।१ लोप. १।१

अर्थ—[विभक्तौ युष्मदस्मदोः] शेषे विभक्तौ युष्मदस्मदोलोपो भवति । कश्च शेष. यत्र आकारो यत्तरश्च न विहितः ।

(शेष विभक्ति के परे रहने पर युष्मद् और अस्मद् का लोप होता है) शेष का अर्थ है जहाँ यकार और भाकार का विधान नहीं किया गया है । पञ्चमी चतुर्थी पष्ठी और प्रथमा के एकवचन और बहुवचन में लोप का विधान होता है)

उदा०—त्वत् । मत् । युष्मत् । अस्मत् । तुभ्यम् । मह्यम् । युष्म-
न्यम् । अस्मान्यम् । तत्र । मम । युष्मानम् । अस्मानम् । त्वम । अहम् ।
यूयम् । ययम् ।

सि०—साधने त्रय पक्षा. सन्ति—(१) स्वामिनो दयानन्दा. शेषे लोप इति टिलोपम् इच्छन्ति । (२) सिद्धान्तश्रीमुदीकारास्तु शेषे लोप इति अलोन्यस्यैव लोपम् इच्छन्ति । तथा च सति अतो गुणे, अमि पूर्वः इति सूत्रद्वयं प्रयुज्जन्ति । (३) नव्यास्तु त्वाही सौ इत्यादिषु मपर्यान्ता-
नामादेशानां सर्वत्रैव अकार उच्चारणार्थ इति मन्यन्ते तस्माद् अतो गुणे इति पररूपप्रयासो व्यर्थ इत्याहुः । तथैव क्रमेण भाषणं प्रदर्शयते—(१) युष्मद् सु । त्व अद् सु । तत्र अम् । (२) युष्मद् सु । तत्र अद् सु । त्व अ अम् । त्व अम् । त्वम् । (३) युष्मद् सु । त्व अद् अम् । त्वम् । अस्मिन् पक्षे टिलापो वा स्यात् अन्यलोपो वा स्यात् नहि कश्चिद्

निशेष भ्यसोऽभ्यम् इत्यत्र तु टिलोपपक्षे अभ्यमादेश कर्त्तव्यः अन्यथा युष्मभ्यम् इत्येव रूप जायते ।

मपर्यन्तस्य ७।२।६१

प० त्रि०—मपर्यन्तस्य ६।१

अर्थ—इतोऽप्रे वक्ष्यमाणा आदेशा मपर्यन्तस्यैव भवन्ति इत्यधिकारो येदित्तव्य । (यहा से आगे मकार मपर्यन्त का ही आदेश होते हैं, इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

युवावौ द्विवचने ७।२।६२

प० वि०—युवावौ १।२ द्विवचने ७।१

अर्थ—[युष्मदस्मदो विभक्तौ मपर्यन्तस्य] द्विवचने रिभक्तौ परतो युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य स्थाने युग्म आत् इत्येतावादेशो भवत । (द्विवचन विभक्ति के पर रहने पर युष्मद् और अस्मद् शब्दों के स्थान में युव (युव्) याव (याव्) मपर्यन्त आदेश होते हैं)

उदा०—युनाम् । आयाम् । युनाभ्याम् । आनाभ्याम् । यवयो । आयवो ।

यूयवयौ जसि ७।२।६३

प० त्रि०—यूयवयौ १।२ जसि ७।१

अर्थ—[युष्मदस्मदो मपर्यन्तस्य] युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य जसि परतो यूय वय इत्येतावादेशो भवत । (युष्मद् और अस्मद् शब्दों के मपर्यन्त यूय और वय आदेश होते हैं जस के पर रहने पर)

उदा०—यूयम् । वयम् ।

त्वाही सौ ७।२।६४

प० वि०—त्वाही १।२ सौ ७।१

अर्थ—[युष्मदस्मदो मपर्यन्तस्य] युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य त्व अह् अत्येतावादेशो भवत सौ परत । (युष्मद् और अस्मद् के स्थान में मपर्यन्त त्व और अह् आदेश होते हैं सु के पर रहने पर)

उदा०—त्वम् । अहम् ।

तुभ्यमह्यौ डयि ७।२।६५

प० त्रि०—तुभ्यमह्यौ १।२ डयि ७।१

अर्थ—[युष्मदस्मदो मपर्यन्तस्य] युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य तुभ्य महा

इत्येतावादेशौ भवतः ङयि परतः । (युष्मद् भोर अस्मद् के स्थान में मपर्यन्त तुभ्य भोर महा आदेश होते हैं ङे के परे रहने पर)

उदा०—तुभ्यम् । मह्यम् ।

तवममी ङसि ७।२।६६

प० वि०—तवममी १।२ ङसि ७।१

अर्थ—[युष्मदस्मदोः मपर्यन्तस्य] युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य तव मम इत्येतावादेशौ भवतः ङसि परतः ।

(युष्मद् भोर अस्मद् के स्थान में मपर्यन्त तव भोर मम आदेश होते हैं ङस् के परे रहने पर)

उदा०—तव । मम ।

त्वमावेकवचने ७।२।६७

प० वि०—त्वमी १।२ एकवचने ७।१

अर्थ—[युष्मदस्मदोः मपर्यन्तस्य] युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य त्व म इत्येतावादेशौ भवतः एकवचने विभक्तौ परतः । (युष्मद् भोर अस्मद् के मपर्यन्त स्थान में त्व भोर म वचन आदेश होते हैं, एकवचन विभक्ति के परे रहने पर)

उदा०—त्वाम् । माम् । त्वया । मया । त्वत् । मत् । त्वयि । मयि ।

प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ७।२।६८

प० वि०—प्रत्ययोत्तरपदयोः ७।२ च अ० । स०— उत्तरं च तत् पदं चेति उत्तरपदम् । प्रत्ययश्च उत्तरपदं चेति प्रत्ययोत्तरपदे तयोः प्रत्ययोत्तरपदयोः ।

अर्थ—[युष्मदस्मदोः मपर्यन्तस्य एकवचने] प्रत्यये उत्तरपदे च परत एकार्थयोर्युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य त्व म इत्येतावादेशौ भवतः । (प्रत्यय भोर उत्तरपद के परे रहने पर एक अर्थ वाले युष्मद् भोर अस्मद् के स्थान में त्व भोर म आदेश होने हैं)

उदा०—तवायं त्वदीयः । मदीयः । अतिशयेन त्वम् । त्वत्तरः । मत्तरः । उत्तरपदे । तव पुत्रस्त्वत्पुत्रः । मत्पुत्रः ।

सि०—युष्मद् छ । त्व अद् छ । तद् ईय । त्वदीयः । त्वत्पुत्रः । युष्मद् ऊम् पुत्र सु । युष्मद् पुत्र । त्व अद् पुत्र । त्वद् पुत्र । त्वत्पुत्र सु । त्वत्पुत्रः ॥

त्रिचतुरो स्त्रिया तिसृचतसृ ७।२।६६

प० वि०—त्रिचतुरो ६।२ स्त्रियाम् ७।१ तिसृचतसृ (अभिभक्ति०)

अर्थ—त्रि चतुर् इत्येतयो स्त्रिया तिसृचतसृ इत्येतामादेशो भवतो विभक्तौ परत । (त्रि और चतुर क स्थान में त्रिचतुर् में तिसृ और चतसृ आदेश होत है विभक्ति क पर रहन पर)

उदा०—तिस्र । तिस्र । तिसृभि । तिसृभ्य । तिसृभ्य । तिसृ
णाम् । तिसृषु । चतस्र । चतस्र । चतसृभि । चतसृभ्य । चतसृभ्य ।
चतसृणाम् । चतसृषु ।

अचि र ऋत ७।२।१००

प० वि०—अचि ७।१ र १।१ ऋत ६।१

अर्थ—[तिमृचतम् अभिभक्तौ] तिमृचतम् इत्येतयोर्ऋत म्याने रेफादेशो भवति अजादौ विभक्तौ परत । (तिमृ और चतसृ क ऋकार के स्थान में रफ आदेश होता है अजादि विभक्ति क पर रहन पर)

उदा०—तिम्र तिष्ठन्ति । तिम्र पश्य । चतम्र तिष्ठन्ति । चतस्र पश्य ।

जराया जरमन्यतस्याम् ७।२।१०१

प० वि०—जराया ६।१ जरम् १।१ अन्यतरस्याम् अ० ।

अर्थ—[अचि अभिभक्तौ] जरा इयनस्य जरम् इयमादेशो भवति अन्यतरस्याम् अजादौ विभक्तौ परत । (जरा क स्थान में अजादि विभक्ति क पर रहन पर जरम यह आदेश होता है विकल्प करके)

उदा०—जरा । जरे । जरा । जराम् । जर । जरा । जरया । जरा
म्याम् । जरामि । जरयै । जराभ्याम् । जराभ्य । जराया । जराभ्याम् ।
जराभ्य । जराया । जरयो । जराणाम् । जरायाम् । जरयो । जरामु ।
हे जरे । हे जरे । हे जरा । जरसो । जरस । जरसम् । जरसो ।
जरस । जरमा । जरमे । जरस । जरस । जरसो । जरसाम् । जरसि ।
जरसो । हे जरसो । हे जरस ।

त्यदादीनाम् ७।२।१०२

प० वि०—त्यदादीनाम् ६।३ अ १।१ स०—त्यद् आन्वियेपा ते त्यदादय तेपाम् त्यदादीनाम् ।

अर्थ—[विभक्तौ] त्यदादीनामादेशो भवति विभक्तौ परत ।

(त्यद् इत्यादि को प्रकार आदेश होता है विभक्ति के परे रहन पर)

उदा०—त्यद् । स्य । त्री । त्ये । तद् । स । ती । ते ।

किम् क ७।२।१०३

प० वि०—किम् ६।१ क १।१

अर्थ—[विभक्तौ] किम् इत्येतस्य स्थाने क इत्ययमादेशो भवति विभक्तौ परत । (किम् के स्थान में क आदेश होता है विभक्ति के पर रहने पर)

उदा०—क । की । के ।

कु तिहो ७।२।१०४

प० वि०—कु १।१ तिहो ७।२

अर्थ—[किम् विभक्तौ] तकारादौ हकारादौ च विभक्तौ परत किम् कु इत्ययमादेशो भवति । (तकारादि और हकारादि विभक्ति के परे रहन पर किम् के स्थान में कु यह आदेश होता है)

उदा०—कुत । कुत्र । कुह । क्षतिहोरितीमार उच्चारणार्थं क्ष

क्वाति ७।२।१०५

प० वि०—क्व । अविभ । अति ७।१

अर्थ—[किम् विभक्तौ] अन् इत्यस्या विभक्तौ परत किम् क्व इत्ययमादेशो भवति । (अन् विभक्ति के परे रहन पर किम् क स्थान में क्व आदेश होता है)

उदा०—क्व गमिष्यसि ।

सि०—साधन तु तद्धितप्रकरणे द्रष्टव्यम् ॥

तदो स सावनन्ययो ७।२।१०६

प० वि०—तदो ६।२ स १।१ सो ७।१ अनन्ययो ६।२ स०—
तच्च दृष्टेति तदो तयो तदो ।

अर्थ—[त्यदादीनाम्] त्यदादीनाम् अनन्ययोस्तदो स्थाने सकारादेशो भवति सो परत । (त्यदादियों के अनन्त्य=जा अन्त में न हों उन तकार और दकार के स्थान में सकार आदेश होता है सुब परे रहने पर)

उदा०—तनारस्य—त्यद् । स्य । तद् । स । षतद् । ण्य । अदस् असौ ।

अदस औ मुलोपञ्च ७।२।१०७

प० वि०—अदस ६।१ औ (अभिभ०) मुलोप १।१ च अ० ।

अर्थ—[सौ] अदस सौ परत औनारादेशो भवति सोश्च लोपो भवति । (अदम् शब्द क अतिम सकार क स्थान में ओकार प्रादग होता है, मु क परे रहन पर ओर मु का ताप होता है)

उदा०—असौ ।

सि०—अदम् । अदस् मु । अद औ । अद औ । अस औ । असौ ।

इदमो म ७।२।१०८

प० वि०—इदम ६।१ म १।१

अर्थ—[सौ] इदम सौ परतो मकारान्तादेशो भवति ।

(इदम शब्द का मकारान्त प्रादग होता है मु क पर रहन पर)

क्रमकारस्य मकाररचनत्वेनाद्रीनाम इति अत्युपगमार्थम्

उदा०—इयम् । अयम् ।

ददच ७।२।१०९

प० वि०—द ६।१ च अ० ।

अर्थ—[इदम विभक्ती म] इदमा दकारस्य स्थाने मकारादेशो भवति विभक्ती परत । (इदम क दकार क स्थान में मकार प्रादग होता है विभक्ति के परे रहन पर)

उदा०—इमो । इमे । इमम् । इमो । इमान् ।

य मौ ७।२।११०

प० वि०—य १।१ मौ ७।१

अर्थ—[इदम द] इदमा दकारस्य स्थाने यकारादेशो भवति मौ परत । (इदम् क दकार क स्थान में यकार प्रादग होता है मु क पर रहन पर)

उदा०—इयम्

इदोज्य पु मि ७।२।१११

प० वि०—इद ६।१ अय १।१ पु मि ७।१

अर्थ—[इदम मौ] इदम इदमस्य पु मि मौ परतोऽय् इत्ययमादेशो भवति । (इदम् क इद् भाग का अय प्रादग होता है मु क पर रहन पर पुस्विङ्ग में)

उदा०—अयम् वेदपाठी ।

अनाप्यकः ७।२।११२

प० वि०—अन (अविभ) आपि ७।१ अक ६।१

अर्थ—[इदम् इद विभक्तौ] इदमोऽककारस्य इदरूपस्य स्थाने अन इत्ययमादेशो भवति आपि विभक्तौ परतः ।

(कवाररहित इदम् के इद् भाग के स्थान में अन आदेश होता है भाप विभक्ति के परे रहन पर)

उदा०—आपीति प्रत्याहार तृतीयैक्यचनात्प्रभृति सुप् पकारेणानेन । अनयो ।

हलि लोप ७।२।११३

प० वि०—हलि ७।१ लोप १।१

अर्थ—[इदम् अक इद] इदमोऽककारस्य इदरूपस्य लोपो भवति हलादौ विभक्तौ परतः । (कवाररहित इदम् के इद भाग का लोप होता है हलादि विभक्ति के परे रहन पर)

उदा०—आभ्याम् । एभि । एभ्य । एषाम् । एषु ।

वृद्धिप्रकरणम्—

मृजेवृद्धिः ७।२।११४

प० वि०—मृजे ६।१ वृद्धि १।१

अर्थ—मृजेरङ्गस्य वृद्धिर्भवति । (मृज् अङ्ग की वृद्धि होती है)

उदा०—मार्ष्टा । मार्ष्टुम् । मार्ष्टव्यम् ।

सि०—मृज् वृच् । मार्ज् वृ । मार्प् वृ । मार्प् वृ । मार्ष्टा ।

अचो ज्जिति ७।२।११५

प० वि०—अच ६।१ ज्जिति ७।१ स०—अश्च एश्चेति ज्जौ ।

इच्च उच्चेति इतौ । वणौ इतौ यस्य स ज्जित् तस्मिन् ज्जिति ।

अर्थ—[वृद्धि] अजन्तस्य अङ्गस्य वृद्धिर्भवति जिति जिति च प्रत्यये परतः । (जित् और जित् प्रत्यय के परे रहन पर अजन्त अङ्ग की वृद्धि होती है)

उदा०—जिति—फार । हार । जिति—कुम्भफारः ।

अत उपधाया ७।२।११६

प० वि०—अत ६।१ उपधाया ६।१

अर्थ—[वृद्धि ङिति] उपधाया. अकारस्य स्थाने वृद्धिर्भवति निति णिति च प्रत्यये परत । (किन्तु और णिन् प्रत्यय क पर रहने पर उपधा के अकार क स्थान में वृद्धि होती है)

उदा०—निति—नाम् । त्यागः । णिति—पाचम् । पाठक ।

सि०—साधनं तु एतुलुत्तृचो इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

तद्धितेष्वचामादे ७।२।११७

प० वि०—तद्धितेषु ७।३ अचाम् ६।३ आदे ६।१

अर्थ—[अच. ङिति वृद्धिः] तद्धिते निति णिति च प्रत्यये परतो-ऽङ्गस्याचामादेरचः स्थाने वृद्धिर्भवति । (तद्धित त्रिन् णित् प्रत्यय क पर रहने पर अङ्ग न अचः के आदि अच् के स्थान में वृद्धि होती है)

उदा०—निति—गाय्य । वात्म्यः । णिति—श्रीपगः ।

किति च ७।२।१८

प० वि०—किति ७।१ च अ० ।

अर्थ—[तद्धितेषु अचामादेरच वृद्धिः] किति च तद्धिते परनाऽङ्ग-स्याचामादेरचः स्थाने वृद्धिर्भवति । (तद्धित त्रिन् प्रत्यय क पर रहने पर अचो के आदि अच् के स्थान में वृद्धि होती है)

उदा०—नाडायन । चारायणः

सि०—साधनं तु नडादिभ्यो षक् इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया सप्तमाध्याये द्वितीयः पाठः

न द्वाभ्या पदान्ताभ्या पूर्वो तु ताभ्यामैच् ७।३।३

प० वि०—न अ० । द्वाभ्याम् १।० पदान्ताभ्याम् १।२ पूर्वो १।० तु अ० । ताभ्याम् १।० ऐच् १।१

अर्थ—[अचोऽङ्गिति वृद्धिः तद्धितेष्वचामादे किति च] पदान्ताभ्याम् यनारयकाराभ्यामुत्तरस्य न वृद्धिः किन्तु ताभ्यां पूर्वो क्रमाद-चायागमो भवति तद्धिते ङिति निति च परतः । (पदान्त पकार वकार के पूर्व क्रमात्, एच् आगम होता है त्रिन् एतन् किन्तु तद्धित प्रत्यय के पर रहने पर)

उदा०—यथावरणः । मौवरणः ।

सि०—व्याकरणमपीते वेद वा इति विमर्शे—चि आवरण=

व्याकरण अम् अण्^१ । न्याकरण अ । व् ऐ याकरण अ । वै याकरण अ । वैयाकरण सु । वैयाकरणः । शोभनोऽश्वः स्वश्वः इति विग्रहे-
स्वश्वस्य अपत्यम् इति विग्रहः । स् औ श्व अ^२ । सोश्वः ।

द्वारादीनां च ७।३।४

अर्थ—द्वार इत्येवमादीनां र्वाभ्याम् उत्तरस्याचामादेरच. स्थाने वृद्धिर्न भवति किन्तु पूर्वो^३ तु ताभ्यामैजागमो भवति. तद्धिते भित्ति णिति भित्ति च प्रत्यये परत । (द्वार इत्यादि के यकार वकार के पश्चात् अचो के आदि घच् के स्थान म वृद्धि नहीं होती है किन्तु उसके पूर्व ऐच का आगम होता है)

उदा०—द्वारपालस्पयेड् ड्वावारपालम्^४ । शौचस्तिक.^५ ।

हनस्तोऽचिण्णलो ७।३।३२

प० वि०—हन ६।१ तः १।१ अचिण्णलोः ७।२

अर्थ—[ञिणति] हनस्तकारादेशो भवति भित्ति णिति च प्रत्यये परत चिण्णलो वर्जयित्वा । (हन् को तकारादेश होता है भित्ति णित् प्रत्यय के परे रहने पर चिण और णल् को छोड़कर)

उदा०—घातयति । घातकः । भित्—घातो वर्त्तते ।

सि०—हन् णिच्^६ । हन् इ । हान्^७ इ । हात् इ । घात्^८ इ । घाति शप् तिप् । घातयति । हन् एबुल् । घातक । हन् घम् । घातः । अचिण्णलोरिति किम्—अघानि^९ । जघान^{१०} ।

आतो युक्चिण्कृतो. ७।३।३३

प० वि०—आतः ६।१ चुक् १।१ चिण्कृतोः ७।२

अर्थ—[ञिणति] आकारान्तस्य अङ्गस्य चिणि कृति ञिणति च प्रत्यये परतः युगागमो भवति । (आकारान्त अङ्ग को युक् का आगम होता है चिण तथा भित्ति णित् वृत् प्रत्यय के परे रहने पर)

- १—तदधीते तद्वेद (४. २. ५६) २—शिवादिभ्योऽण् (४. १. ११२)
३—तत्वेदम् (४. ३. १२०) ४—इवस्तुट् च (४. ३. १५) ५—हेतुमति च (३. १. २६) ६—घत उपपायाः (७. २. ११६) ७—हो हृतेऽण्णनेषु (७. ३. ५४) ८—चिण् भाववर्माणोः (३. १. ६६) भाववर्माणो. (१. ३. १३) ९—चिणो चुक् (६. ४. १०४)

उदा०—चिण्—अदायि भवता । अघायि भवता । कृति ङिति—
दाय । धायः । कृति णिति—दायकः । धायकः ।

नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्थानाचमे ७।३।३४

प० वि०—न अ० । उदात्तोपदेशस्य ६।१ मान्तस्य ६।१ अनाचमे.
६।१ स०—उदात्तः उपदेशे य स उदात्तोपदेशः तस्य । मोऽन्ते यत्र स
मान्त तस्य मान्तस्य क्मकारोऽन्ते यस्य इति मन्त तस्य मन्तस्य इति
पाठः साधुतरः प्रतिभाति । यतः अशमि इत्यादीनि उदाहरणानि मका-
रान्तानि सन्ति न तु मान्ताति । अत्र अकार उच्चारणार्थोऽपि न मन्तव्यो
भवतीति 'नेचिदाहु', तच्चिन्त्यम् अनां खान्तस्य इति निर्वक्षान् आचार्यस्य
हि एतादृशी गैली वर्तते अतः मकारे अकार उच्चारणार्थ एव ।

न आचमि. अनाचमिः तस्य अनाचमे ।

अर्थ—[चिण्कृतोः ङिति] उदात्तोपदेशस्य मकारान्तस्य अङ्गस्य
आचमिवर्जितस्य चिण् कृति च ङिति यदुक्तं तत्र भवति ।

(उपदेश में उदात्त पढ़ा गया है ऐसे मकारान्त धातुओं को जा भी कुछ
कहा गया है वह बिण् मीर जिन् णिन् इन् के परे रहने पर नहीं जाना आचम्
धातु को छोड़कर)

उदा०—अशमि । अतमि । अदमि । कृति—शमकः । दमकः ।
तमकः । शमः । तमः । दमः । क् अत उपधाया इति वृद्धिर्न भवति क्
अनाचमेरिति किम्—आचामकः ।

जनिवध्योश्च ७।३।३५

प० वि०—जनिवध्यो ६।० च अ० ।

अर्थ—[चिण्कृतोः ङिति यदुक्तं तत्र भवति ।

(जन् मीर वप् धातु को चिण् तथा जिन् णिन् कृत के परे रहने पर जो
कुछ कहा गया है सा नहीं होगा)

उदा०—अर्पयति । ह्येपयति । ज्येपयति । रंपयति । क्नोपयति ।
क्षमापयति । दासयति । वापयति ।

क् यनि. प्रहृन्त्यन्तरमस्ति व्यञ्जनान्तः, तस्याय प्रतिषेधः न ययः
इति आदेशस्य तस्य तु अदन्तरमादेय वृद्धेरभावः क्

उदा०—अजनि । जनकः । प्रजन । अयति । ययकः । ययः ।

शो प्रागमप्रकरणम्

अत्ति ह्रील्लीरीकनूयीक्ष्माय्याता पुग्णौ ७।३।३६

प० वि०—अत्तिह्री लीरीकनूयीक्ष्माय्याताम् ६।३ युक् १।१ शौ ७।१

स०—अर्तिश्च ह्रीश्च व्लीश्च रीश्च क्रूयीश्च द्मायीश्च आश्चेति अर्त्ति-क्ष्मायात तेषाम् ।

अर्थ—ऋ गतिप्रापणयो, ऋ गतौ (इति द्वयोरपि ग्रहणम्) ह्री लङ्जायाम्, व्ली वरणे, री गतिशोपणयो, रीड् अन्त्ये (इति द्वयोरपि ग्रहणम्) कनूयी शब्दे, द्मायी निधूनने इत्येतेषामङ्गानाम् आकारान्तानां च पुगागमो भवति शौ परतः ।

(इत धातुभा का णिच क परे र्हन पर पुक् का प्रागम होता है)

शाच्छासाह्वाच्यावेपा युक् ७।३।३७

प० नि०—शाच्छासाह्वाच्यावेपा ६।३ युक् १।१

अर्थ—[शौ] शो तन्वरणे, छो छेदने, पोऽन्तकर्मणि, हेच स्पृष्टादा, व्यञ् सवरणे, वेञ् तन्तुसन्ताने, पा पाने, पै ओवै शोपण (इति द्वयोरपि ग्रहणम्) इत्येतेषामङ्गानां पुगागमो भवति शौ परतः ।

(इत धातुभा का युक् का प्रागम हाना है णिच क पर र्हन पर)

उदा०—निशाययति । अन्च्छाययति । अयसाययति । ह्याययति । स्याययति । धाययति । पाययति ।

सि०—शो । शो णिच् । शा^१ युक् ३ । शायि । शायि लट् । शायि शप् तिप् । शाययति । ण्व सर्वत्र ।

भियो हतुभये पुक् ७।३।४०

प० वि०—भिय ६।१ हेतुभये ७।१ पुन् १।१

स०—हेतु स्वतन्त्रम्य कर्तु प्रयोजक । विभेत्तरमादिति भयम् । हेतोर्भय हेतुभयम् तस्मिन् हेतुमय ।

अर्थ—[शौ] भी इत्येतस्य हतुमयेऽर्थ पुगागमो भवति शौ परतः । (स्वतन्त्रकर्ता वा प्रयोजक हतु उससे भय इसके अर्थ में भी वो पुक् का प्रागम होता है)

उदा०—मुएहो भीपयते ।

स्फायो व ७।३।४१

प० वि०—स्फाय ६।१ व. १।१

१—मादेच उपदेशेऽजिति (६ १ ४४)

अर्थ—[खी] स्फाय् इत्येतस्य अङ्गस्य वकारादेशो भवति खी परत ।
(स्फाय् का वकार प्रादेश होता है खिच् व पर रहन पर)

उदा०—स्फाययति ।

शद्वेरगतौ तु ७।३।४२

प० वि०—शद्वे ६।१ अगती ७।१ त १।१

अर्थ—[खी] शद्वेरङ्गस्य अगती अर्थ वर्तमानस्य तकारादेशो भवति खी परत । (अगति अर्थ में वर्तमान शब्द धातु की तकार प्रादेश होता है खिच् क पर रहन पर)

उदा०—पुष्पाणि शातयति । फनानि शातयति ।

रुह पाञ्च्यतरस्याम् ७।३।४३

प० वि०—रुह ६।१ प १।१ अन्यतरस्याम् अ० ।

अर्थ—[खी] रुह् इत्येतस्य पकारादेशो भवति खी परत । (रुह का विकृप त पकार प्रादेश होता है खिच् व पर रहन पर)

उदा०—ग्रीहीन् रोषयति । ग्रीहीन् रोहयति ।

प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात् इदाप्यमुष ७।३।४४

प० वि०—प्रत्ययस्थान् ५।१ कात् ५।१ पूर्वस्य ६।१ अत ६।१ इन् १।१
आपि ७।१ अमुष ५।१

अर्थ—प्रत्ययस्थान् पकारान् पूर्वस्य अकारस्य स्थाने इकारादेशो भवति आपि परत म चैनाप्युष परा न भवति ।

(प्रत्यय में स्थित पकार व पूर्व अकार व स्थान में इकार प्रादेश होता है आप् के परे रहन पर, यदि वह आप् मुर क पदवान् बना हो ता)

उदा०—जटिलिना । मुदिडिना । कारिका । हारिका ।

सि०—जटिल क । जटिलिक् । कारक टाप् । कारेका ।

ठम्येकः ७।३।५०

प० वि०—ठस्य ६।१ ठक १।१

अर्थ—[अङ्गस्य इति सम्बन्धे पठ्ठी] अङ्गस्य सम्बन्धिनपठ्ठा-
रस्य स्थाने इक् इत्ययमादेशो भवति ।

(अङ्ग का सम्बन्धी का ठकार ठम्ये स्थान में इक् प्रादेश होता है)

उदा०—तात्तिरम् ।

१—प्राग्विवात् (१ ३ ७०)

सि०—लाच्चा ठक्^१ । लाच्चा ठ । लाच्चा इक्^२ । लाच्चा^३ इक् ।
लाच्चिक् । लाच्चिक मु । लाच्चिक् अम्^४ । लाच्चिक उस्त्रम् ।

इसुसुक्तान्तात्क ७।३।५१

प० वि०—इसुसुक्तान्तात् ५।१ क १।१ स०—इस् च उस् च उक्
च तश्चेति इसुसुक्तम् । इसुसुक्तम् अन्ते यस्येति इसुसुक्तान्तं तस्मात् ।

अर्थ—[ठस्य] इसन्तात् उसन्तात् उगन्तात् तकारान्ताच्च अङ्गाद्
उत्तरस्य ठस्य स्थाने क इत्ययमादेशो भवति । (इसन्त, उसन्त, उगत प्रौर
तकारान्त अङ्ग के पदचात् ठ क स्थान में क आदेश होता है)

उदा०—इस्—सर्पिष्क । उस्—वानुष्क । याजुष्क । उक्—
नैपादकपुंक् । शारजम्बुक । मातृन्म् । पैतृक्म् । तान्तात्—
औदशित्व ।

सि०—सर्पिस् ठक्^१ । सर्पिस् ठ । सर्पिस् क^२ । सर्पिक्^३ क ।
सर्पिर्^४ क । सर्पि^५ क । सर्पिष्क^६ मु । सापिन् । धनुस् ठक्^७ ।
धानुस् क । धानुर्^८ क । धानु क । धानुष्क^९ सु । धानुष्क । यजुम्
ठक्^{१०} । यजुम् क^{११} । यजुर्^{१२} क । यजु क । यजुष्क मु । यजुष्क ।
निपादकपुं^{१३} । शारजम्बु^{१४} । निपादकपुं^{१५} शारजम्बुवा जात इति विग्रह
निपादकपुं^{१६} ठक्^{१७} । निपादकपुं^{१८} क । निपादकपुं^{१९} क^{२०} । नैपादकपुं^{२१} क ।
मातुरागत पितुरागतमिति विग्रह । मातृ ठक्^{२२} । मातृ क । मातृन् ।
पैतृक् । उदशिवन् ठक्^{२३} । उदशिवत् क । औदशित्व मु । औद-
शित्व ॥

चजोः कु घिण्यतो ७।३।५२

प० वि०—चजो ६।२ कु १।१ घिण्यतो ७।२ स०—चश्च

१—लक्षारोचनाट्क (४ २ ०) २—टस्येव (७ ३ ५०) ३—यस्यति
च (६ ४ ११८) ४—घतोऽम् (७ १ २४) ५—उदस्य वप्यम् इति (४ ४
५१) प्राग्वहृतीमष्टक ६—इसुसुक्तान्तात्क (७ ३ ५१) ७—यस्यतोपा ४
(८ २ ६६) ८—सरवसानयाविसन्ननीय (८ ३ १५) ९—इसुसा सामप्ये
(८ ३ ४४) १०—तेन दाप्यति सन्नति जयति जितम् (४ ४ २) ठक् ११—
तेन दीप्यतीति (४ ४ ०) ठक् १२—विति च (७ २ ११७) १३—घोर्ह्य
ठक् (४ २ ११६) १४—हृण् (७ ४ १३) ह्रस्व १५—ऋतप्यत् (४
३ ७३) १६—उदशिवतोऽन्यतरस्याम् (४ २ १६)

जश्चेति चजो तयो चजो । घिश्च एयच्च इति घिएत्यती तयो घिएत्यतो ।

अर्थ—चकारजकारयो कर्गदेशो भवति घिति एयति च प्रत्यये परत । (चकार भोर जकार क स्थान में कर्ग भादस हाता है पिन भोर प्यत प्रत्यय क परे रहन पर)

ॐ अत्र यथासत्य नास्तिः

उदा०—घिति-पाक । राग । त्याग । एयति-पाक्यम् । घाक्यम् ।

सि०—हुपचप् । पच् घञ् । पच् अ । पाच् अ । पाक् अ । पाक । पाक सु । पाक । राग । त्याग इति मात्रे सूत्रे साधनं द्रष्टव्यम् । पच् एयन् । पाक्यम् । यच् एयत् । घाक्यम् ।

हो हन्तेऽङ्गिण्नेषु ७।३।५४

प० वि०—ह ६।१ हन्ते ६।१ ङ्गिण्नेषु ७।३ स०—घरश्च एरश्चेति ङ्गी । इ च इच्चेति इती । ङ्गी इती यस्येति ङ्गिण् । ङ्गिच्च नश्चेति ङ्गिण्ना तेषु ङ्गिण्नेषु ।

अर्थ—[कु] हन्तेर्हवास्य भ्याने कर्गदेशो भवति भिति णिति च प्रत्यये परतो नकार च । (हन् घातु क हकार के स्थान में कर्ग भादस हाता है, त्रित् णित् प्रत्यय क पर रहन पर भोर नकार क पर रहन पर)

उदा०—भिति-घातो उर्वते । णिति-घातयति । घातक । साधु-धाती । नशारे-घ्नन्ति । घ्नन्तु । अघ्नन् ।

अभ्यासाच्च ७।३।५५

प० वि०—अभ्यासात् ५।१ च अ० ।

अर्थ—[हो हन्ते कु] अभ्यासादुत्तरस्य हन्तेर्हकारस्य कर्गदेशो भवति । (अभ्यास क पदवात् हन् घातु क हकार का कर्म भादस हाता है)

उदा०—जिघांसति । जङ्घन्यते । अहं जघन ।

सि०—जिघांसति इति अस्य साधनं अङ्मनगमां सनि इत्यप्र द्रष्टव्यम् । जङ्घन्यते । हन् यङ् । हन् हन् य । हं हन् य । मं हन् य । जं हन् य । ज घन् य । ज जुङ् घन् य । जम् घन्य ।

१—घातारकाचो हन्ते क्रियासममिहारे यङ् (३ १. २२) २—सायडो (६ १ ६) ३—पूर्वोऽभ्यास (६ १ ४) घन साधोऽभ्यासस्य (७ ४. ५८) हमादि दोष (७. ४ ६०) ४—कुटोदु (७. ४. ६२) ५—अभ्यास एवं (८ ४ ५३) ६—अभ्यासाच्च (७ ३ ५५) ७—नुगतो (७ ४. ८५)

जघ्न्य^१ । जङ्घ्न्य^२ शप् त । जङ्घ्न्यते । जघ्न । उत्तमपुरुषे णाल
यदा णित्त्वं नास्ति तदैतदुदाहरणम् । णित्त्वपक्षे तु पूर्वण्येव
सिद्धम् ।

हेरचङि ७।३।५६

प० वि०—हे. ६।१ अचङि ७।१

अर्थ—[हः अभ्यासात् कु] हिनोतेर्हकारस्य अभ्यासादुत्तरस्य
कवर्गादेशो भवति अचङि । (हि मती धातु के हकार के स्थान में कवर्ग
प्रादेश होता है, अभ्यास के पश्चात् चङ पर रहने पर नहीं)

उदा०—प्रजिघीपति । प्रजेघीयते । प्रजिघाय । अचङीति किम्
प्राजीहयत् दृत्तम् ।

सि०—हि सन् । हि सन्^३ । ही स^४ । ही ही स । मि ही स । जि
ही स । जि घी^५ स । जिघीप शप् तिप् । जिघीपति । प्रजिघीपति । हि
यङ् । ही य^६ । ही ही य । हि ही य । मि ही य । जि ही य । जि घी
य^७ । जे घीय^८ शप् त । जेघीयत । जेघीयते । प्रजेघीयते । हि णल् । हि
हि णल् । मि हि अ । जि घि अ । जि घै अ । जिघाय ॥ प्रजिघाय ।
प्राजीहयन् । हि णित् । हे इ^९ । हाय् इ । हाय् इ चङ^{१०} । हय्^{११} इ अ ।
हय्^{१२} अ । हि हय्^{१३} अ । मि हय् अ । जि हय् अ । जी हय^{१४}
तिप् । जीहयन् । अट् जीहयत् ।

सन्लिटोर्जे ७।३।५७

प० वि०—सन्लिटोः ७।२ जेः ६।१

अर्थ—[अभ्यासात् कु] अभ्यासादुत्तरस्य जेरङ्स्य कवर्गादेशो
भवति सनि लिटि च प्रत्यये परतः । (अभ्यास के पश्चात् जि जये इम धातु

- १—नश्चापदान्तस्य झलि (८. ३. २२) २—अनुस्वारस्य० (८. ४. ५७)
३—एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् (७. २. १०) इको झल् (१. २. ९)
विडति ॥ (१. १. ५) ४—अज्झनगमा सनि (६. ४. १६) ५—हेरचङि (७.
३. ५६) ६—प्रकृतसार्वधातुकयोर्दीर्घं (७. ४. २५) ७—गुणो यङ्लुको (७.
४. ३२) ८—अचो ज्झिति (७. २. ११५) ९—एचोऽयवायाव (६. १. ७५)
१०—णिश्रीत्यादिना चडावेश (३. १. ४८) ११—णो चङ्युपधाया ह्रस्व.
(७. ४. १) १२—गेरनिटि (६. ४. ५१) १३—णो कृत स्थानिवद् भवतीति हि-
शब्दस्य द्विवचनम् १४—दीर्घो लघो (७. ४. ६४)

का कवर्गं घादेन हो जाता है मन् घौर निट् के परे रहने पर)

छलक्षणप्रतिपदोस्तयोः प्रतिपदोक्नस्यैव ग्रहणमिति परिभाषया
ज्या ययोद्धानौ इति एतस्य न ग्रहणं भवति॥

उदा०—सनि-जिगीपति लिटि-जिगाय । छ्त्रादेः परस्येति परस्या-
देर्जकारस्य कुन्वम॥

विभाषा चैः ७।३।५८

प० वि०—विभाषा १।१ चै. ६।१

अर्थ—[अभ्यामान् कु सन्निटोः] अभ्यासादुत्तरस्य चिनोत्तेरङ्स्य
विभाषा कवर्गोद्देशो भवति सनि लिटि च परतः । (अभ्यास के पदवात्
चि को विकल्प से कवर्गं घादेश होता है मन् घौर निट् के परे रहने पर)

उदा०—चिचोपति । चिकीपति । चिचाय । चिकाय ।

घो[लोपो] लेटि वा ७।३।७०

श्रोत. श्यनि ७।३।७१

प वि०—श्रोतः ६।१ श्यनि ७।१

अर्थ—[लोपः] ओकारान्तस्य अङ्स्य लोपो भवति श्यनि परतः ।
(ओकारान्त अङ्ग का लोप होना है, श्यन् के परे रहने पर)

उदा०—शो—निश्चयति । छो—अवच्छेदयति । दो—अवयति ।
सो—अवस्यति ।

कसस्याचि ७।३।७२

प० वि०—कसस्य ६।१ अचि ७।१

अर्थ—[लोपः] कसस्य अजादी प्रत्यये परतो लोपो भवति ।
(कस का लोप होना है अजादि प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—अधुक्षाताम् । अधुक्षायाम् । अधुक्षि । अचि इति किम्—
अधुक्षन् । अधुक्षाताम् ।

लुग्या दुहृदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये ७।३।७३

प० वि०—लुक् १।१ वा अ० । दुहृदिहलिहगुहाम् ६।३ आत्मनेपदे
७।१ दन्त्ये ७।१

अर्थ—[कसस्य] दुहृदिह लिह गुह इत्येतेषामात्मनेपदे दन्त्यादी
परतः कसस्य या लुगभयति । (दन्त धातुओं के पदवात् कस का विकल्प न

लुक् होता है आत्मनपद में दात से उच्चारण किये जान वाले वण है आदि में जिसके, ऐसे प्रत्यय के परे रहन पर)

उदा०—दुह—अदुग्ध । अधुक्षत । अदुग्धा । अधुक्षथा । अधु-
ग्धम् । अधुक्षधम् । अदुह्वहि । अधुक्षावहि । दिह—अदिग्ध । अधि-
क्षत । लिह—अलीह । अलिक्षत । गृह—न्यगृह । न्यवुक्षत । आत्मनेपद
इति किम्—अधुक्षत् । दन्त्य इति किम् । अधुक्षामहि । ॐदन्त्योष्ठ्योऽपि
प्रकारो दन्त्ये इति गृह्यते । यदि स न गृह्येत ततस्तौ ग्रहणमेव कृत
स्यात् ॐ (द त से बहा दात और ओष्ठ्य से उच्चारण किये जान वाले वकार
का भी ग्रहण करना चाहिये) । क्योंकि आचाय का यही अभिप्राय है, यदि दात
वाले वण का करना अभिष्ट होता तो, 'तु का सप्तमी एकवचन 'तौ' से ही निर्देश
करते जिससे केवल तवर्गादि का बोध होता परन्तु ऐसा नहीं किया अतएव यहा
वकार का भी ग्रहण करना चाहिये)

सि०—अदुग्ध । दुह् । दुह् लुङ् । दुह् त । दुह् क्स^१ त । दुह्
स त । दुष्^२ स त । दुष्^३ त । दुष् घ^४ । दुग्ध । अट् दुग्ध । अदुग्ध ।
अधुक्षत । दुह् त । दुह् क्स त । दुह् स त । दुष् स त । धुष्^५ स त ।
धुक्^६ स त । धुक्पत । अट् धुक्षत । अधुक्षत । अदुग्धा । दुह् थास् ।
दुह् क्स थास् । दुह् थास् । दुष् थास् । दुष् धास् । दुग्धा । अट्
दुग्धा । अदुग्धा । ॐअत्र एकाचो यशो भप् इत्यनेन भप्भावो न
भवति पूर्वत्रासिद्धम् इति धकारस्य असिद्धत्वात् ॐ

शमामष्टाना दीर्घं श्यनि ७।३।७४

प० वि०—शमाम् ६।३ अष्टानाम् ६।३ दीर्घं १।१ श्यनि ७।१

अर्थ—शमाम् अष्टानाम् दीर्घो भवति श्यनि परत । (शम् इत्यादि
आठ धातुओं को दीर्घ होता है श्यन् के परे रहन पर)

उदा०—शाम्यति । शाम्यत । शाम्यन्ति ।

ष्ठिवुक्लम्याचमा शिति ७।३।७५

प० वि०—ष्ठिवुक्लमु-आचमाम् ६।३ शिति ७।१

अर्थ—[दीर्घ] ष्ठिवुक्लमु आचम् इत्येतेषा दीर्घो भवति शिति
परत । (इन धातुओं का दीघ होता है शित् प्रत्यय के परे रहन पर)

१—शल दगुणघादनित कम (३ १ ४५) २—दादेर्घातोष (८ २ ३२)

३—लुगवा० (७ ३ ७३) ४—ऋपस्तयोर्घोऽथ (८ २ ४०) ५—एकाचो
यशो० (८ २ ३७) ६—स्तरि व (८ ४ ५६)

उदा०—प्रीति । क्लामति । आचामति ।

क्रम. परस्मैपदेषु ७।३।७६

प० वि०—क्रमः ६।१ परस्मैपदेषु ७।३

अर्थ—[शिति दीर्घः] क्रमः परस्मैपदेषु शिति परतो दीर्घो भवति ।
(अमु पादविशेषे इमं धातुं वा दीर्घं होना है परस्मैपद में शित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—क्रामति । क्रामतः । क्रामन्ति ।

इपुगमियमा छः ७।३।७७

प० वि०—इपुगमियमाम ६।३ छः ६।१

अर्थ—[शिति] इपु गमि यम इत्येतेषां शिति परतरछकारादेशो भवति । (इपु, गम ओर यम धातुओं का छकारादेश होता है शित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—इच्छति । गच्छति । यच्छति ।

सि०—इपु । इप् लट् । इप् तिप् । इप् [गप् ति । इप् अ ति । इच्छ अ ति । इ तुक् छ् अ ति । इच्छति ।

पाघ्राध्मास्यान्नादाण्दृष्यत्तिसर्त्तिगदमदा पिवजिघ्रधम-

तिष्ठमनयच्छपश्यच्छधौशीयमीदा ७।३।७८

प० वि०—पा-प्रा-ध्मा-स्या-न्ना-दाण्-दृशि-अर्त्ति-सर्त्ति-शद-मदाम् ६।३ पिव-जिघ्र-धम-तिष्ठ-मन-यच्छ-पश्य-अच्छ-धौ-शीय-मीदा. १।३

अर्थ—[शिति] पा पाने, घ्रा गन्धोपादाने, ध्मा शब्दाग्निमयोगयो, घ्रा गतिनिवृत्ती, स्ना अभ्यासे, दाण् दाने, दृशिर् प्रेक्षणे, अ गतिप्राप-णयो, अ सृ गती च, शद्ल् विगरणे, पद्ल् विगरणगत्ययमा-दनेषु भीरादिकः इत्येतेषां धातूनां स्वाने पिशादयः आदेशा भवन्ति शिति (इन धातुओं के स्थान में पिव इत्यादि आदेश होते हैं शित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—पिबिष इत्यकारान्तोऽयमादेशः, अन्येषाम् अकार उच्चार-णार्थः

उदा०—पिबति । जिघ्रति । घमति । तिष्ठति । मनति । यच्छति । पश्यति । यच्छति । घायति । शीयते ऋ शब्देः शित् १।३।६० इयामने-पदम् ऋ सोदति ।

ज्ञाजनोर्जा ७।३।७६

९० वि०—ज्ञाजनोर् ६।२ जा अविभ० ।

अर्थ—[शिति] ज्ञा, जनी प्रादुर्भावि (दैवादिकस्य ग्रहणम्) इत्ये-
तयोः स्थाने जा इत्ययमादेशो भवति शिति । (जा और जनी धातु क स्थान
में जा यह आदेश होना है, चित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—जानाति । जायते ।

प्वादीना ह्रस्व ७।३।८०

९० वि०—प्वादीनाम् ६।३ ह्रस्व. १।१

अर्थ—[शिति] पूव् पवने इत्यादीनां ह्रस्वो भवति शिति परतः ।
(पूव् इत्यादि धातुभो का ह्रस्व होता है चित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—पुनाति । लुनाति ।

गुणप्रकरणम्—

मिदेर्गुण ७।३।८२

९० वि०—मिदेः ६।१ गुण १।१

अर्थ—[शिति] मिदेरङ्गस्य गुणो भवति शिति प्रत्यये परतः ।

(चित् प्रत्यय के परे रहने पर मिद् भङ्ग का गुण होता है)

उदा०—मेद्यति । मेद्यतः । मेद्यन्ति । क्लृप्तधूपधगुणस्य प्रतिषेधस्य
पुनः गुणस्य विधानार्थमिद् वचनम्

जुसि च ७।३।८३

९० वि०—[गुणः अचि] अजादौ जुसि च प्रत्यये परतोऽङ्गस्य
गुणो भवति । (अजादि जुस् के परे रहने पर अङ्ग का गुण होता है)

उदा०—अजुह्वुः । अविभयु । अजादौ इति किम्—जागृयुः,
चिनुयुः, सुनुयुः । आशिपि तु जागर्यात् । जागर्यास्ताम् । जागर्यासु

सार्वधातुकार्धधातुकयो ७।३।८४

९० वि०—सार्वधातुकार्धधातुकयो अ० स०—सार्वधातुक च
आर्धधातुक चेति सार्वधातुकार्धधातुके तयो सार्वधातुकार्धधातुकयोः ।

अर्थ—[गुण] सार्वधातुके आर्धधातुके च प्रत्यये परतो अङ्गस्य
गुणो भवति । (सार्वधातुक और आर्धधातुक प्रत्यय के परे रहने पर अङ्ग
का गुण होता है)

उदा०—तरति । नयति । भजति । आर्धधातुके—भयिता । भवितुम् ।

जाग्रोऽविचिण्णल्लिङ्गत्सु ७।३।८५

प० वि०—जाग्रः ६।१ अविचिण्णल्लिङ्गत्सु ७।३

अर्थ—[गुणः] जाग्रु इत्येतस्य अद्गस्य गुणो भवति अविचिण्ण-
ल्लिङ्गत्सु परतः । (जाग्रु अद्ग वा गुण होता है वि, चिण्ण, एत् घोर टिन्
प्रत्ययों को छोड़ कर अन्य प्रत्ययों के परे रहने पर)

उदा०—जागरयति । जागरक । साधुजागरी । जागरो वर्तते ।
कथम् अजागरुः । अहं जजागर इति । अविचिण्णल्लिङ्गत्सु इति प्रति-
पेधान् अजागरुस्त्वयं जुमि च इत्यनेनापि प्राप्नोति गुणस्य प्रतिपेधः
प्राप्नोति एवमहं जजागर इत्यत्र एतुत्तमो वेति (७।१।६१) यचना-
ण्णं यदा नास्ति तदा सार्वधातुसार्वधातुक्योरिति प्राप्नोत्यापि गुणस्य
प्रतिपेधः प्राप्नोति एलि निपेधान् इति कथं ? तदुच्यते—प्रतिपेधो द्विधा
भवति । प्रमन्यप्रतिपेधः पर्युदासप्रतिपेधश्च । प्रसज्यप्रतिपेधे हि लज्जणा-
न्तरेणापि प्रसक्तस्य प्रतिपेधो भवति, प्रतिपेधार्थस्य प्राधान्यान् । पर्युदा-
सप्रतिपेधे तु विधानस्य प्राधान्यं भवति न तु प्रतिपेधस्य तेन सचपि-
पर्युदासे यदि केनचित् अन्येन मूत्रेण कार्यं प्राप्नोति तद् भवत्येव । एवं
प्रवृत्ते पर्युदासप्रतिपेधः । अतः यदि अन्येन मूत्रेण गुणो प्राप्नुयान् तदा
भवेदेव । तथा च मति अजागरुः इत्यत्र जुमि चेति गुण, अहं जजागर
इत्यत्रापि सार्वधातुसार्वधातुक्योरिति गुणो भवत्येव ।

पुगन्तलघूपधस्य च ७।३।८६

प० वि०—पुगन्तलघूपधस्य ६।१ च अ० । म०—पुकि अन्तः पुगन्तः
मुष्पुपा इति समाम इति नागेशः । सप्तमी इति योगविभागान् समास इति
न्यासः । लघ्या चार्मा उपधा चेति लघूपधा (वर्मवारयममाम) । पुग-
न्तरश्च लघूपधा चेति पुगन्तलघूपधम् (ममा० द्वन्द्वः) तस्य पुगन्तलघू-
पस्य । छ नायं बहुव्रीहिः । लघु उपधायां यस्य स लघूपध इति । वट्ट-
प्रोहो तु भिनत्ति इत्यत्रापि गुणः प्राप्नोति, लघूपध इत्यस्य अद्गरीश-
ण्णान् ।

अर्थ—[सार्वधातुसार्वधातुक्योः] अद्गस्य पुकि परतोऽन्ते पुगन्तर-
इक्, उपधायाश्च लघुसप्तक इन् तस्य गुणो भवति सार्वधातुके सार्वधातुके
च प्रत्यये परतः । (अद्ग वा पुक् पठे रहा पर ओ इक् घोर उपधा में वा
मपु सप्त इक् उपधा गुण होता है सार्वधातुके घोर सार्वधातुके प्रत्यय के परे
रहने पर)

उदा०—व्लेपयति । ह्येपयति । लघूपधस्य—भेदनम् । छेदनम् ।
भेत्ता । छेत्ता ।

नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके ७।३।८७

प० वि०—न अ० । अभ्यस्तस्य ६।१ अचि ७।१ पिति ७।१ सार्व-
धातुके ७।१

अर्थ—[लघूपधस्य गणः] अभ्यस्तसज्ञकस्य अङ्गस्य लघूपधस्य
अजादौ पिति सार्वधातुके गुणो न भवति । (अभ्यस्य सज्ञक अङ्ग की जो
लघु उपधा उसको अजादि पित् सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहने पर गुण नहीं
होता है)

उदा०—नेनिजानि । अनेनिजम् ।

सि०—णिजिर् शौचपोषणयोः । णिज् । निज् लोट् । निज् मिप् ।
निज् नि । निज् आट् नि । निज् शप् आनि । निज् आनि । निज्
आनि । निज् निज् आनि । नेनिजानि ।

भूसुवोस्तिङि ७।३।८८

प० वि०—भूसुवोः ६।२ तिङि ७।१

अर्थ—[सार्वधातुके गुणः न] भू सू इत्येतयोस्तिङि सार्वधातुके
गणो न भवति । (भू सू अङ्ग का तिङ् सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहने
पर गुण नहीं होता है)

उदा०—अभूत् । अभूताम् । अभूवन् । सुवे । सुवावहे । सुवामहे ।

सि०—अभूत् इत्यस्य साधर्न गातिस्थेति सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

ॐ सूतेर्लुग्विकरणस्येदं ग्रहणम् ॐ पूङ् प्राणिगर्भविमोचने । पू ।
सू लोट् । सू वहि । सू वहे । सू वहे । सू आट् वहे । सू आ वहे । सू
उवङ् आवहे । सुव् आवहे । सुवावहे ।

उतो वृद्धिर्लुकि हलि ७।३।८९

प० वि०—उतः ६।१ वृद्धिः १।१ लुकि ७।१ हलि ७।१

अर्थ—[सार्वधातुके पिति] उकारान्तयाङ्गस्य वृद्धिर्भवति लुकि
सति ह्लादौ पिति सार्वधातुके । (लुक् हो जाने पर ह्लादि पित् सार्वधातुक
के परे रहने पर उकारान्त अङ्ग की वृद्धि होती है)

उदा०—यौति । यौपि । यौमि । नोति । नौपि । नौमि । स्तौति
स्तौपि । स्तौमि ।

सि०—यु मिश्रणे अमिश्रणे च । णु स्तुती । ण्वु स्तुती ।

ॐ नाभ्यस्तस्य इत्येतदनुवर्तते योयोति नोनोति इत्येवमाद्यथम् ॐ

ऊर्णोतिविभाषा ७।३।६०

प० वि०—ऊर्णोति ६।१ विभाषा १।१

अर्थ—[वृद्धि हलि पिति सार्वधातुके] ऊर्णोतिविभाषा वृद्धि-
भवति हलादौ पिति सार्वधातुके । (हलादि पित् सावधातुक क परे रहन पर
उण्व षाच्छादन धातु को विकल्प स वृद्धि हाता है)

उदा०—प्रोर्णोति । प्रोर्णोति ।

गुणोऽपृक्ते ७।३।६१

प० वि०—गुण १।१ अपृक्ते ७।१

अर्थ—[ऊर्णोति हलि पिति सार्वधातुके] ऊर्णोतेर्धातोरपृक्ते
हलादौ पिति सार्वधातुके गुणो भवति । (ऊर्णुं धातु का गुण होता है
अपृक्त हलादि पित् सावधातुक प्रत्यय के पर रहन पर)

उदा०—प्रोर्णोत् । प्रोर्णो ।

ब्रुव ईट् ७।३।६३

प० वि०—ब्रुव ५।१ ईट् १।१

अर्थ—[हलि पिति सार्वधातुके] ब्रुव उत्तरस्य हलादे पित् सार्व-
धातुस्य ईडागमो भवति । (ब्रूक् अक्ताया वाचि इस धातु क पश्चात्
हलादि पित् सावधातुक को ईट् का आगम होता है)

उदा०—ब्रवीति । ब्रवीपि । ब्रवीमि । ब्रवीनीन् । हलीत्येव ब्रवाणि ।

यडो वा ७।३।६४

प० वि०—यड ५।१ वा अ० ।

अर्थ—[हलि पिति सार्वधातुके ईट्] यड उत्तरस्य हलादे पित्
सार्वधातुकस्य ईडागमो भवति वा । (यड के पश्चात् हलादि पित् साव-
धातुक को विकल्प स ईट् का आगम होता है)

ॐ हलादे पित् सार्वधातुस्य यडन्तस्याभावे यडलुगन्तस्योपा-
हरणम् ॐ

उदा०—बोभवीमि । बोभोमि । लालपीति । लालप्ति । वाचवीति । वाचप्ति ।

सि०—भू यङ् । भू मू यङ् । वू भू य । बु भू य । वो भू य । वो भू । वो भू लट् । वो भू विप् । वो भू ईट् ति । वो भो ईति । वो भव् ईति । बोभवीति । साधकम्प्राणि वर्तमाने लट् इत्यत्र द्रष्टव्यानि ।

तुरुस्तुशम्यम सार्वधातुके ७।३।६५

प० वि०—तु रुस्तु-शमि अम ५।१ सार्वधातुके ७।१

अर्थ—[हलि] तु इति सौत्रो धातुर्द्वयं इत्येके । हिंसार्थ इत्यपरे । अस्य च लुग् विकरणत्वं स्मर्यते, रु शब्दे, ण्डव् स्तुतौ, शम उपशमे, अम गत्यादिषु, इत्येतेभ्य उत्तरस्य हलादे सार्वधातुकस्य वा ईडागमो भवति । (इत धातुघो के पश्चात् हलादि सावधातुक को विकल्प से ईट् का आगम होता है)

उदा०—उत्तवीति । उत्तौति । उपरवीति । उपरौति । उपस्तवीति । उपस्तौति । शमीध्वम् । शम्यध्वम्* अभ्यमीति* । अभ्यमति । शम्यमोर्वेहुल छन्दसीति २।४।७३ इत्यनेन विकरणस्य लुकि सति हलादिसार्वधातुकमनन्तर सम्भवति । आपिशलास्तु शम्यम सार्वधातुका-सु छन्दसीति पठन्ति । तत्र सर्वेषामेव छन्दसि विषये विधिरय भवति

अस्तिसिचोऽपृक्ते ७।३।६६

प० वि०—अस्तिसिच ५।१ अपृक्ते ७।१

अर्थ—[हलि सार्वधातुके ईट्] अस्तेरङ्गात् सिजन्ताच्च उत्तरस्य अपृक्तस्य हलादे सार्वधातुकस्य ईडागमो भवति । (अस धातु और सिच के पश्चात् अपृक्त हलादि सावधातुक को ईट् का आगम होता है)

उदा०—अस्ते—आसीत् । आसी । सिजन्तात्—अहर्पात् । अहर्पात् ।

* ईडभावे उदाहरणमिह यद्वृत्तिकारमतानुसारम् । वस्तुतस्तु अननङ् विकल्पे यथा स्तीति स्तौति रीतिश्च रीति इत्युदाह्रियते तथा अत्रापि विकरण-लुक्पक्ष एव ईडभावोर्जप उदाहृतम् । शम अमोरदादौ पाठो नास्तीति चेत् यथा सूत्रवचनप्रामाण्यात् तौतेरदादित्व प्रमाणीक्रियते तथान्वयोरपि एतत् सूत्रप्रामा-ण्यादादित्व स्वीकृतव्यम् । तथा सति शमीध्वम् शम्यध्वम्, अभ्यमीति, अभ्यमति इत्येवमुदाहृतव्यम् इति मीमांसका

सि०—अस् लङ् । अस् ल् । अस तिप् । अस् त् । अस् ईट् त् ।
अस् ईत् । आट् असीत् । आसीन् । कुट् । कु लुङ् । कु तिप् । कु
सिच् ति । कार् स् ति । कार् स् त् । कार् स् ईट् त् । कार्
प् ईत् । कार्पीत् । अट् कार्पीत् । अस् कार्पीत् ।

रुदश्च पञ्चभ्यः ७।३।६८

प० वि०—रुदः ५।१ सुञ्चययेन बहुवचनस्यैकत्वम् । पञ्चभ्यः ५।३
अर्थ—[सार्वधातुके हलि अपृक्ते] रुदादिभ्यः पञ्चभ्य उत्तरस्य
हलादेः सार्वधातुस्य अपृक्तस्य ईडागमो भवति । (रुदिर् इत्यादि पाच
धातुषो के पश्चात् हतादि अपृक्त सावधातुक प्रत्यय का ईट् का आगम
होता है)

उदा०—अरोदीत् । अरोदी ।

अङ्गार्ग्यगालवयो ७।३।६९

प० वि०—अट् १।१ गार्ग्यगालवयो ६।२

अर्थ—[सार्वधातुके अपृक्ते रुदादिभ्यः] रुदादिभ्यः पञ्चभ्य उत्त-
रस्य अपृक्तस्य सार्वधातुकस्य अडागमो भवति गार्ग्यस्य गालवस्य च
मतेन । ऋगार्ग्यगालवग्रहण पूजार्थम् (रुद इत्यादि पाच धातुषा क
पश्चात् अपृक्त सावधातुक का अट् का आगम होता है)

उदा०—आरोदत् । आरोद ।

अद सर्वेषाम् ७।३।१००

प० वि०—अट् ५।१ सर्वेषाम् ६।३

अर्थ—[सार्वधातुके अपृक्ते अट्] अद भक्षणे इत्यस्मादुत्तरस्य
अपृक्तस्य सार्वधातुकस्य अडागमो भवति सर्वेषामाचार्याणां मतेन ।

(प्रद धातु के पश्चात् अपृक्त सावधातुक प्रत्यय का अट् का आगम होता है
सभी आचार्यों के मत में)

उदा०—आदत् । आद ।

अतो दीर्घो यजि ७।३।१०१

प० वि०—अतः ६।१ दीर्घः १।१ यजि ७।१

अर्थ—[सार्वधातुके] अकारान्तस्माद्भ्यः दीर्घो भवति यजनादी सर्व-
धातुके परतः । (यकारान्त स्माद् का दीर्घ होता है यज् प्रत्याहार में जाने वाला
कोई अक्षर है आदि में जिसके ऐम सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहन पर)

उदा०—पचामि । पचाव । पचाम ।

सुपि च ७।३।१०२

प० वि०—सुपि ७।१ च अ० ।

अर्थ—[अतो दीर्घो यन्नि] अकारान्तस्याङ्गस्य दीर्घो भवति यच्चादौ सुपि परत । (अकारान्त अङ्ग का दीर्घ होता है यच्चादि सुप के परे रहन पर)

उदा०—वृक्षाय । प्लक्षाय । रामाय ।

सि०—वृक्ष डे । वृक्ष य । वृक्षा य । वृक्षाय ।

बहुवचने भल्येत् ७।१।१०३

प० वि०—बहुवचने ७।१ कलि ७।१ एत् १।१

अर्थ—[सुपि अत] अकारान्तस्य अङ्गस्य एकारादेशो भवति भलादौ सुपि परत बहुवचने । (अकारान्त अङ्ग का बहुवचन में भलादि सुप के पर रहन पर एकार आदेश होता है)

उदा०—वृक्षेभ्य । प्लक्षेभ्य । रामेभ्य । वृक्षेपु । प्लक्षेपु । रामेपु ।

ओसि च ७।३।१०४

प० वि०—ओसि ७।१ च अ० ।

अर्थ—[अत एत्] ओसि च परतोऽकारान्तस्य अङ्गस्य एकारादेशो भवति । (ओस के परे रहन पर अकारान्त अङ्ग का एकार आदेश होता है)

उदा०—रामयो धनम् । तयो । कयो ।

आडि चाप ७।३।१०५

प० वि०—आडि ७।१ च अ० । आप. ५।१

अर्थ—[एत्] आडिति पूर्वाचार्यनिर्द्देशेन तृतीयैक्यचनम् । आडि चकाराद् ओसि च परत आप्तस्य अङ्गस्य एकारादेशो भवति ।

(टा और ओस् के परे रहन पर आप्त अङ्ग का एकारादेश होता है)

उदा०—खट्वया । मालया । लतया । बालिकया । खट्वयो । मालयो । लतयो । बालिकयो ।

सि०—लता टा । लते आ । लतया । लता ओस् । लते ओस् । लतय् ओस् । लतयो ।

सम्बुद्धौ च ७।३।१०६

प० वि०—सम्बुद्धौ ७।१ च अ० ।

अथ—[आप ण्] सम्बुद्धौ च परत आबन्तस्याङ्गस्य एकारादेशो भवति । (सम्बुद्धि क पर रहन पर आबन्त अङ्ग का एकारादेश होता है)

उदा०—हे लते । हे बालिने ।

सि०—लता मु । लते म् । लते ।

आम्बार्थनद्योर्ह्रस्व ७।३।१०७

प० रि०—अम्बार्थनद्यो ङा० ह्रस्व १।१

अर्थ—[सम्बुद्धौ] अम्बार्थाना नद्यन्ताना चाङ्गाना ह्रस्वो भवति सम्बुद्धौ परतः । (अम्बा घब वाले धीर नद्य सङ्गत अङ्ग का ह्रस्व होता है सम्बुद्धि क पर रहन पर)

उदा०—हे अम्ब । हे अक्क । हे अन्त । नद्या—हे कुमारी ।

सि०—अम्बा मु । अम्ब स् । अम्ब । कुमारी मु । कुमारि स । कुमारी ।

ह्रस्वस्य गुणः ७।३।१०८

प० वि —ह्रस्वस्य ङा० गुण १।१

अर्थ—[सम्बुद्धौ] ह्रस्वान्तस्य अङ्गस्य गुणो भवति सम्बुद्धौ परतः । (सम्बुद्धि क पर रहन पर ह्रस्वात् अङ्ग का गुण होता है)

उदा०—हे अग्ने । हे वायो ।

सि०—आतु मु । वायो म् । वायो ।

जसि च ७।३।१०९

प० रि०—जसि ङा० च अ० ।

अर्थ—[ह्रस्वस्य गुण] जसि च परतो ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणो भवति । (जस् क पर रहन पर ह्रस्वात् अङ्ग का गुण होता है)

उदा०—अग्नय । वायव । पृथ । वेनय । सुद्धय । X जसानिपु द्यन्तसि वाचचन प्राप् णी चह्युगवाया ह्रस्व X इत्येतस्मान् परये । परावे ।

सि०—अग्नि जस् । अग्ने अस् । अग्नय् अम् । अग्नय ।

ऋतो डिसर्वनामस्थानयो ७।३।११०

प० रि०—ऋत ङा० डिसर्वनामस्थानयो ङा०

अर्थ—[गुण] (ऋतारात्स्याङ्गस्य ङौ सर्वनामस्थाने च परतो गुणो भवति । (ऋतारात् अङ्ग का गुण होता है ङि धीर सर्वनामस्थान विभक्ति के पर रहन पर)

उदा०—डौ—भातरि । पितरि । भ्रातरि । कर्त्तरि । सर्वनामस्थाने—
कर्त्तारौ । कर्त्तारः । कर्त्तारम् । कर्त्तारौ ॥

घेडिति ७।३।१११

प० वि०—घेः ६।१ डिति ७।१

अर्थ—[गुणः] व्यन्तस्याङ्गस्य गुणो भवति डिति प्रत्यये परतः ।

(पि हे घन्त में जिस के ऐसे अङ्ग का गुण होता है डित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—अग्नये । अग्नेः । अग्नेः । वायवे । वायोः । वायोः ।

सि०—अग्नि डे । अग्ने ण । अग्नय् ण । अग्नये । अग्नि डसि ।

अग्नि अस् । अग्ने अस् । अग्नस् । अग्नेः ।

आणनद्या. ७।३।११२

प० वि०—आट् १।१ नद्या ५।१

अर्थ—[डिति] नद्यान्तादङ्गादुत्तरस्य डितः प्रत्ययस्य आडागमो भवति । (नद्यन्त अङ्ग के पश्चात् डित् प्रत्यय को आट् का आगम होता है)

उदा०—कुमार्यै । कुमार्या । कुमार्या ।

सि०—कुमारी डे । कुमारी आट् ण । कुमारी ऐ^१ । कुमार्यै । कुमारी आट् अस् । कुमारी आ. । कुमार्या. ।

याडाप. ७।३।११३

प० वि०—याट् १।१ आप ५।१

अर्थ—[डिति] यावन्तादङ्गादुत्तरस्य डितः प्रत्ययस्य याडागमो भवति । (यावन्त अङ्ग के पश्चात् डित् प्रत्यय का याट् का आगम होता है)

उदा०—लतायै । लताया । लतायाः ।

सि०—नना डे । लता याट् ण । लता यै^२ । लतायै ।

सार्वनाम्न स्याद्ध्रस्वश्च ७।३।११४

प० वि०—सर्वनाम्न^१ ५।१ स्याट् १।१ ह्रस्वः १।१ च अ० ।

अर्थ—[आपः डिति] सर्वनाम्न यावन्तादङ्गादुत्तरस्य डितः प्रत्ययस्य स्याडागमो ह्रस्वश्च भवति । (यावन्त सर्वनाम के पश्चात् डित् प्रत्यय को स्याट् का आगम होता है और उस यावन्त सर्वनाम का ह्रस्व होता है)

उदा०—सर्वस्यै । सर्वस्याः । सर्वस्याः । तस्यै । तस्याः । तस्याः ।

सि०—सर्वा ङे । सर्वा म्याट् ए । सर्व स्या ए । सर्वस्यै । सर्वस्यै ।

विभाषा द्वितीयातृतीयाभ्याम् ७।३।११५

प० वि०—विभाषा १।१ द्वितीयातृतीयाभ्याम् ५।२

अर्थ—[ङिति स्याट्] द्वितीया तृतीया इत्येताभ्यामुत्तरस्य ङितः प्रत्ययस्य विभाषा स्याडागमो भवति । (द्वितीया और तृतीया षष्ठ के पश्चात् ङित् प्रत्यय को विकल्प से स्याट् आगम हाना है)

उदा०—द्वितीयायै । द्वितीयस्यै । तृतीयायै । तृतीयस्यै ।

डेराम्नद्याम्नीभ्य ७।३।११६

प० त्रि०—ङे ६।१ आम् १।१ नद्याम्नीभ्यः ५।३ स०—नदी च आप् च नीश्च इति नद्याम्न्य. तेभ्यः नद्याम्नीभ्यः ।

अर्थ—नद्यन्ताद्यान्तात् नी इत्येतस्माच्चोत्तरस्य डेराम् इत्ययमादेशो भवति । (नद्यन्त आद्यन्त और नी अङ्ग न पश्चात् ङि के स्थान में आम् यह आदेश होता है)

उदा०—कुमार्याम् । गौर्याम् । ब्रह्मण्य्याम् । आप । खट्वायाम् । मालायाम् । लतायाम् । नी । राजन्याम् । सेनान्याम् ।

सि०—कुमारी ङि । कुमारी आम् । कुमारी आट् आम् । कुमारी आम् । कुमार्याम् । खट्वा याट् आम् । खट्वायाम् ।

इदुद्भ्याम् ७।३।११७

प० वि०—इदुद्भ्याम् ५।२

अर्थ—[नद्याः डेराम्] इकारोकाराभ्यामुत्तरस्य डेरामादेशो भवति । (इकारान्त और उकारान्त नदी सङ्ग के पश्चात् ङि के स्थान में आम् आदेश होता है)

उदा०—कृत्याम् । घेन्याम् ।

सि०—कृति आट् ङि । कृति आट् आम् । कृत्याम् ।

ओत् ७।३।११८

प० वि०—ओत् १।१

अर्थ—[इदुद्भ्याम् ङेः] इदुद्भ्यामुत्तरस्य डेरामादेशो भवति ।
❀ यत्र नदीसङ्ग नापि विसङ्गमिकारान्तं तदिदोदहरणम् ❀ (इकारान्त

उकारान्त भङ्ग के पश्चात् डि के स्थान में ओकार आदेश होता है)

उदा०—सख्यौ । पत्यौ ।

सि०—सखि डि । सखि औ । सख्यौ । पति डि । पति औ । पत्यौ ।

अच्च घे ७।३।११६

प० वि०—अत् १।१ च अ० । घे ६।१

अर्थ—[डे औत्] पि सङ्गकादुत्तरस्य डेरोऽकारादेशो भवति तस्य च घेरकारादेशो भवति । (पि सङ्गक भङ्ग के पश्चात् डि के स्थान में ओकार आदेश होता है और उस पि का अकारादेश होता है)

उदा०—अग्नौ । वायौ । मुनी । सावी । कृती । धेनी । पटी ।

सि०—अग्नि डि । अग्नि औ । अग्नौ ।

आडो नाऽस्त्रियाम् ७।३।१२०

प० वि०—आड ६।१ ना १।१ अस्त्रियाम् ७।१

अर्थ—[घे] घेरुत्तरस्य आडो ना इत्ययमादेशो भवति । अस्त्रियाम् । (पि सङ्गक भङ्ग के पश्चात् आड के स्थान में ना यह आदेश होता है स्त्रीलिङ्ग शब्द को छोड़कर)

उदा०—अग्निना । वायुना । अस्त्रियामिति किम् । कृत्या । धेन्या ।

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया सप्तमाध्याये तृतीय पाद

शौ चङ्युपधाया ह्रस्व ७।४।१

प० वि०—शौ ७।१ चङि ७।१ उपधाया ६।१ ह्रस्व १।१

अर्थ—चङ् परे शौ यदङ्ग तस्योपधाया ह्रस्वो भवति ।

(चङ परे है जिस के ऐसे शिच् के परे रहन पर भङ्ग की उपधा को ह्रस्व होता है)

उदा०—अचीकरत् । अजीहरत् । अलीलवत् । अपीपठत् ।

सि०—कृ शिच् । कार् इ । कारि लुङ् । कारि ल् । कारि तिप् । कारि चङ् तिप् । कर् इ च ति । कर् कर् इ अ ति । क करि अ ति । च कर् अ ति । चि^१ कर ति । ची^२ करत् । अट् चीकरत् । अचीकरत् ।

❧ अत्र द्विर्वचनोपधाह्रस्वत्वयो प्राप्तयो परत्वादुपधाह्रस्वत्व तत्र कृते द्विर्वचनम् ❧

नाग्लोपिशास्वृदिताम् ७।४।२

प० वि०—न अ० । अग्लोपि-शासु-ऋदिताम् ६।३ म०—अको लोपऽलोपः । स अस्यास्तीति अग्लोपी । ऋत् इत् यस्येति ऋदित् । अग्लोपी च शासुश्च ऋदिच्चेति अग्लोपिशास्वृदितः तेषाम् ।

अर्थ—[णी चङ्युपधाया ह्रस्वः] अग्लोपिनामङ्गानां शासेऽर्द्ध-दितां च णी चङ्युपधाया ह्रस्वो न मयति ।

(अङ् प्रत्ययाहार में आन वाले कोई अक्षर लोप होने वाल मङ्ग, धातु अनुक्षिप्ती धातु तथा ऋकार इत् वाले का चङ् परे है जिस के ऐसे णिच् के परे रहने पर ह्रस्व नहीं होता है)

उदा०—अग्लोपिनाम्—मालामारयन् इति अममालत् । मातरमाप्यत् इति अममातरत् । शासु—अशशासन् । ऋदिताम्—आ० । अननायन् ।

सि०—माला णिच् । माल् इ । मालि लुङ् । मालि तिप् । मालि चङ् । ति । माल् अति । माल् माल् अत् । मा मालत् । म मालत् । अट् ममालत् । अममालत् ।

भ्राजभासभापदीपजीवमीलपीडामन्यतरस्याम् ७।४।३

प० वि०—भ्राज-भास-भाप-दीप-जीव-मील-पीडाम् ६।३ अन्यतरस्याम् अ० ।

अर्थ—भ्राज् दीप्ती, भास् दीप्ती, भाप व्यस्ततायां वाचि, दीपी दीप्ती, जीव प्राणधारणे, मील निमेषणे, पीड अरगाहने इत्येतेषामङ्गानां णी चङ्युपधाया ह्रस्वो भवति अन्यतरस्याम् । (इन धातुओं की उपधा का ह्रस्व होता है, चङ परव णिच् के परे रहने पर विकल्प करके)

उदा०—अग्निध्वजन् । अग्निभजन् । अग्नीभसन् । अग्निभासन् । अग्नीमयन् । अग्निभापन् । अग्निदीपन् । अग्नीजिजन् । अग्निजीवन् । अग्निमीलन् । अग्नीमिलत् । अपिपीडत् । अपीपिडन् । × काण्यदीनां वेति वक्तव्यम् × अचकाणन् । अचीकणत् ।

लोपः पिवतेरीच्चाभ्यासस्य ७।४।४

प० वि०—लोपः १।१ पिवते ६।१ इत् १।१ च अ० । अभ्यासस्य ६।१

अर्थ—[णी चङ्युपधायाः] पिवतेरङ्गस्य णी चङ्युपधाया लोपो

भवति अभ्यासस्य चेकारादेशो भवति । (पा घातु की उपधा का चङ् परक णिच् के परे रहने पर लोप, होता है, और अभ्यास का ईकार आदेश होता है)

उदा०—अपीप्यन् । अपीप्यताम् । अपीप्यन् ।

सि०—पा णिच् । पा युक् इ । पाय् इ । पाय् इ लुङ्—पाय् इ तिप् । पाय् इ चङ् तिप् । पाय् अ त् । प्य् अ त् । पा प्य् अ त् । पीप्यन् । अट् पीप्यत् । अपीप्यत् ।

ॐ उपधालोपे कृते ओः पुन्यवचनं (७ ४. ८०) ह्रापकं शौ स्थानिबद्भाष्येति स्थानिवद्भावाद् द्विवचनम् ॐ

तिष्ठतेरित् ७।४।५

प० वि०—तिष्ठतेः ६।१ इत् १।१

अर्थ—[शौ चङ्युपधायाः] तिष्ठतेरङ्गस्य शौ चङ्युपधायाः इकारादेशो भवति । (स्था घातु को चङ् परक णिच् के परे रहने पर इकारादेश होता है)

उदा०—अतिष्ठिपत् । अतिष्ठिपताम् । अतिष्ठिपत् ।

जिघ्रतेर्वा ७।४।६

प० वि०—जिघ्रतेः ६।१ वा अ० ।

अर्थ—[शौ चङ्युपधायाः इत्] जिघ्रतेरङ्गस्य शौ चङ्युपधायाः वा इकारादेशो भवति । (घा गन्धोपादाने इस घातु का विकल्प से इकारादेश होता है चङ्परक णिच् के परे रहने पर)

उदा०—अजिघ्रिपत् । अजिघ्रिपताम् । अजिघ्रिपत् । अजिघ्रपत् । अजिघ्रपताम् । अजिघ्रपत् ।

उर्ध्वत् ७।४।७

प० वि०—उः ६।१ ऋन् १।१

अर्थ—[शौ चङ्युपधायाः वा इत्] शौ चङ्युपधायाः ऋवर्णस्य स्थाने वा ऋकारादेशो भवति । (चङ्परक णिच् के परे रहने पर ऋवर्ण के स्थान में विकल्प से ऋकार आदेश होता है)

उदा०—ॐ इररामपवाद्ः ॐ इट्—अचिकीर्त्तत् । अचिकृत्तत् । अर्—अववर्त्तत् । अवोवृत्तत् । आर्—अममार्जत् । अमीमृजत् ।

दयतेदिगि [लिटि] ७।८।९

ऋतदच मयोगादगुण ७।८।१०

प० वि०—ऋत ६।१ च अ० । मयोगादे ६।१ गुण १।१

अर्थ—[लिटि] ऋकारान्तस्याङ्गस्य मयोगादेर्गुणा भवति लिटि परत । (मयोगादि ऋकारात् अङ्ग वा गुण हाता है लिट् क पर रहत पर)

उदा०—स्मृ—मस्मरतु । मस्मरु । स्मृ—सम्प्रतु । सम्प्ररु ।
ऋदृद्विप्रियं तु पूर्वप्रतिषेधेन वृद्धिरेवेप्यते । मस्मार । मस्मारः

मि०—स्मृ लिट् । स्मृ प्रतुम् । स्मृ स्मृ अतुम् । स स्मृ अतुम् ।
सर स्मृ अतुम् । स स्मर अतुम् । मस्मरतु ।

ऋच्छन्त्यनाम् ७।८।११

प० वि०—ऋच्छत्यनाम् ६।३

अर्थ—[लिटि गुण] ऋच्छतेरङ्गस्य ऋच्चेतस्य ऋकारान्तानां च लिटि परतो गुणो भवति । (ऋच्छ गति ईदृश प्रत्यय मूर्तिभावतु, ऋ, ऋच्-रात् क विनैव न निगरणे इत्यादि वाचुषो वा गुण हाता, है लिट् क पर रहत पर)

उदा०—आनर्च्छ । आनर्च्छतु । आनर्च्छ । ऋ-आर । आरतु ।
आरु । ऋकारान्तानाम्—उकरतु । उकरु । जगरतु । जगरु ।

मि०—ऋच्छ अतुम् । अर्च्छ अतुम् । अर्च्छ अर्च्छ अतुम् ।
अ अर्च्छ अतुम् । आ अर्च्छ अतुम् । आ नु अर्च्छ अतुम् ।
आनर्च्छतु ऋदृद्विप्रियं तु पूर्वप्रतिषेधेन वृद्धिरेवेप्यते । अकार ।
जगारः

मदप्रा ह्रस्वो वा ७।८।१०

प० वि०—मदप्रा ६।३ ह्रस्व १।१ वा अ० ।

अर्थ—[लिटि] श हिमाया, ऋ प्रिगरणे, प् पालनपूरणयो इत्येते-
पामद्धानां लिटि परतो वा ह्रस्वो भवति । (पृ ६ शीर प वाचु वा ह्रस्व हा
जाता है लिट् क पर रहत पर विचित्र बरक)

उदा०—विशप्रतु । विशप्रु । विशशरतु । विशशरु । विन्दतु ।
विन्दः । विन्दरतु । विन्दरु । निषप्रतु । निषप्रु । निषरतु ।
निषरु ।

ऋयावचनात् पने गुणो भवत्येव । असन्नि ह्रस्वमहो पापच-

नेन विकल्पिते यस्मिन् पक्षे गुणो नास्ति तस्मिन् पक्षे ऋत इद्घातो-
रितीत्यं प्रसज्येत, उदोष्ठ्यपूर्वस्येत्युत्वं च (७. १. १०२) तस्मात् तन्नि-
वृत्यर्थं ह्रस्व इत्युच्यते॥

केऽणः ७।४।१३

प० वि०—के ७।१ अणः ६।१

अर्थ—[ह्रस्वः] के प्रत्यये परतोऽणो ह्रस्वो भवति । (क प्रत्यय के परे
रहने पर अण का ह्रस्व होता है)

उदा०—कुमारिका । किशोरिका ।

सि०—कुमारीका । कुमारिक टाप् । कुमारिका मु । कुमारिका ।

न कपि ७।४।१४

अर्थ—[अणः ह्रस्वः] कपि प्रत्यये परतोऽणो ह्रस्वो न भवति ।

(कप् प्रत्यय के परे रहने पर अण का ह्रस्व नहीं होता है)

॥अणिति पूर्वण एकारेण प्रत्याहारग्रहणमु॥

उदा०—बहुकुमारीकः । साधनं तु नद्युतरचेति (५.४.१५३) द्रष्टव्यम् ।

आपोऽन्यतरस्याम् ७।४।१५

अर्थ—[न कपि ह्रस्वः] आबन्तस्याङ्गस्य कपि ह्रस्वो न भवति अन्य-
तरस्याम् । (आबन्त अङ्ग का विकल्प से ह्रस्व नहीं होता है, कप् प्रत्यय के
परे रहने पर)

उदा०—बहुखट्वाकः । बहुखट्वक ।

ऋदृशोऽङि गुणः ७।४।१६

प० वि०—ऋदृशः ६।१ अङि ७।१ गुणः १।१

अर्थ—ऋवर्णान्तानां दृशोश्च अङि परतो गुणो भवति ।

(ऋवर्णान्त भोर दृश् घातु का गुण होता है अङ् के परे रहने पर)

उदा०—कृ—अकरत् । अकरताम् । अकरन् । दृश्—अदर्शत् ।

अदर्शताम् । अदर्शन् ।

अस्यतेस्थुक् ७।४।१७

अर्थ—[अङि] असु क्षेपणे इत्यस्य घातोः थुक् आगमो भवत्यङि
परतः । (असु घातु को थुक् का आगम होता है अङ् के परे रहने पर)

उदा०—आस्थत् । आस्थताम् । आस्थन् ।

द्वयतेरः ७।४।१८

अर्थ—[अङि] दुद्योस्वि गतिवृद्धयोः इत्यस्याङ्गस्य अकारादेशो भवत्यङि । (दुद्योस्वि अङ्ग वा अकार आदेश होता है, अङ् के परे रहने पर)

उदा०—अश्मन् । अश्मताम् । अश्मन् । अश्मः । अश्मतम् । अश्मत । अश्मम् । अश्माव । अश्माम ।

पतः पुम् ७।४।१९

अर्थ—[अङि] पत्तु गती इत्येतस्याङ्गस्य पुमागमो भवत्यङि परतः (पत् घातु को पुम् का भागम होता है अङ् के परे रहने पर)

उदा०—अपत्तत् । अपत्तताम् । अपत्तन् ।

वच उम् ७।४।२०

अर्थ—[अङि] वच परिभाषणे इत्येतस्याङ्गस्य अङि परतः उमागमो भवति । (वच् घातु को पुम् का भागम होता है अङ् के परे रहने पर)

उदा०—अवोचन् । अवोचताम् । अवोचन् ।

शीङ् सार्वधातुके गुणः ७।४।२१

अर्थ—शीङोऽङ्गस्य सार्वधातुके परतो गुणो भवति ।

(शीङ् घातु को सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहने पर गुण होता है)

उदा०—शेते । शयाते । शेरते । सार्वधातुक इति किम्-शिरये ।

अयङ् यि किङिति ७।४।२२

प० वि०—अयङ् १।१ यि ७।१ किङिति ७।१

अर्थ—[शीङः] यकारादी किङिति प्रत्यये परतः शीङोऽङ्गस्य अयङ् इत्ययमादेशो भवति । (यकारादि किङ् द्विन् प्रत्यय के परे रहने पर शीङ् घातु को अयङ् यह आदेश होता है)

उदा०—शाय्यते । शाय्यते । प्रशाय्य ।

अकृत्सार्वधातुकयोर्दोषः ७।४।२५

प० वि०—अकृत्सार्वधातुकयोः ७।२ दीर्घः १।१ स०—कृच्च सार्वधातुकं चेति कृत्सार्वधातुके, न कृत्सार्वधातुके अकृत्सार्वधातुके तयोः अकृत्सार्वधातुकयोः ।

अर्थ—[यि किङिति] अकृद्यकारे असार्वधातुक्यकारे च किङिति प्रत्यये परतोऽजन्तस्याङ्गस्य दोषो भवति । (कृत् और सार्वधातुक भिन्न यका-

रादि क्त् डित् प्रत्यय के परे रहने पर भजन्त भङ्ग का दीर्घ होता है)

उदा०—चीयते । चीयेते । चीयन्ते । चेचीयते । चेचीयेते । चेची-
यन्ते । स्तूयते । स्तूयेते । स्तूयन्ते ।

सि०—चिञ् यक् ते । चि यङ् । प्लुञ् यक् ते । अकृदिति किम् ।
प्रकृत्य । प्रकृत्य । असार्वधातुक इति किम्—चिनुयात् ।

चवी च ७।४।२६

अर्थ—[दीर्घ] च्विप्रत्यये परतोऽजन्तस्याङ्गस्य दीर्घो भवति ।

(च्वि प्रत्यय के परे रहने पर भजन्त भङ्ग को दीर्घ होता है)

उदा०—पट्टकरोति । पट्टभवति । पट्टस्यात् ।

रीङ् ऋत. ७।४।२७

प० वि०—रीङ् १।१ ऋतः ६।१

अर्थ—[अकृतसार्वधातुकयोः यि] ऋकारान्तस्याङ्गस्य अकृतकारेऽसार्व-
धातुक्यकारे च परतो रीङ् इत्ययमादेशो भवति ।

(ङ्त् और सार्वधातुक भिन्न यकारादि प्रत्यय के परे रहने पर ऋकारान्त
भङ्ग का स्थान में रीङ् यह आदेश होता है)

उदा०—मात्रीयति । मात्रीयते । पित्रीयते । चेक्रीयते ।

सि०—माट् क्यच् । माट् य । मात् रीङ् य । मात्रीय । मात्रीय शप्
तिप् । मात्रीयति । माट् क्यङ् । पिट् क्यङ् । कृ यङ् ।

रिङ् शयग्लिङ् क्षु ७।४।२८

प० वि०—रिङ् १।१ शयग्लिङ् ७।३

अर्थ—[असार्वधातुके यि ऋतः] ऋकारान्तस्याङ्गस्य श यक् इत्ये-
तयोर्लिङि च यकारादी असार्वधातुके परतो रिङ् इत्ययमादेशो भवति ।

(श यक् और सार्वधातुक भिन्न यकारादि लिङ् के परे रहने पर ऋका-
रान्त भङ्ग को रिङ् यह आदेश होता है)

उदा०—श-आद्रियते । आद्रियते । यक्-क्रियते । ह्रियते । लिङ्-
क्रियात् । ह्रियात् ।

सि०—रङ् आदरे । घृङ् अवस्थाने । आङ् पूर्वः । धृ श त ।
धृ रिङ् अ ते । धि अ ते । ध्र् इयङ् अ ते । ध्रियते । आद्रियते ।

गुणोत्तिसंयोगाद्योः ७।४।२९

प० वि०—गुण १।१ अर्त्तिसंयोगाद्योः ६।२

अर्थ—[ऋतः यकि लिङि; श इत्यत्रासंभवात्तानुवर्तते] अर्त्तः संयोगादीनामृकारान्तानां च यकि असार्वधातुके यकारादौ लिङि च परतो गुणो भवति । (ऋ ओर सयोग आदि है जिसका ऐसे ऋकारान्त भट्ट का गुण होता है यक् ओर सार्वधातुक भिन्न यकारादि लिट् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—ऋ-यकि-अर्यते । अर्यते । अर्यन्ते । लिङि-अर्यान् । अर्यास्ताम् । अर्यामुः । अर्याः । अर्यास्तम् । अर्यान् । अर्यान् । अर्यान् । अर्यान् । अर्यान् । संयोगादेः ऋतः-यकि-स्मर्यते । स्मर्यते । स्मर्यन्ते । लिङि-स्मर्यात् । स्मर्यास्ताम् । स्मर्यामुः । स्मर्याः । स्मर्यास्तम् । स्मर्यास्त । स्मर्यास्तम् । स्मर्यास्व । स्मर्यास्म ।

यङि च ७।४।३०

अर्थ—[अत्ति-संयोगाद्योः ऋतः गुणः] अर्त्तः संयोगादेश्च ऋतो गुणो भवति यङि च परतः । (ऋ ओर संयोगादि ऋकारान्त भट्ट को गुण होता है, यङ् के परे रहने पर)

उदा०—ऋ-अर्यते । स्मृ-सास्मर्यते । धृ-दाध्यर्यते । सृ-सास्वर्यते । × हन्ते हिंसायां घ्नीभाषो वक्तव्यः × जेघ्नीयते ।

सि०—अर्यते इत्यस्य साधनं सन्तोदोरिति सूत्रे द्रष्टव्यम् । स्मृ यङ् । स्मर् य । स्मर् स्मर् य । स स्मर् य । सा स्मर् य शप् ते । सास्मर्यते । सास्मर्यते । सास्मर्यन्ते । हन् यङ् । घ्नी य । घ्नी घ्नी य । घी घ्नी य । वि घ्नी य । मि घ्नी य जि घ्नी य । जेघ्नीय शप् ते । जेघ्नीयते । हिंसायामिति किम्-जङ्घन्यते । हन् यङ् । हन् हन् य । ह हन् य । क हन् य । ज हन् य । ज घ्न य । ज नुक् घ्न य । ज प्न्य । जङ्घन्य शप् ते । जङ्घन्यते ।

ई घ्राध्मोः ७।४।३१

प० वि०—ई (अविभ०) घ्राध्मोः ६।२

अर्थ—[यङि] घ्रा ध्मा इत्येतयोर्यङि परत ईकारादेशो भवति । (घ्रा ओर ध्मा भग की ईकार आदेश होता है यङ् के परे रहने पर)

उदा०—जेघ्नीयते । जेघ्नीयते ।

अस्य च्चो ७।४।३२

अर्थ—[ई] अयणान्तस्याद्गस्य च्चो परत ईकारादेशो भवति ।

(प्रवर्णान्त अग को ईकार आदेश होता है च्व प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—शुल्कीभवति । शुल्कीकरोति । शुल्कीस्यात् ।

सि०—साधनमिति अभूत्तद्भावे इति सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

क्यचि च ७।४।३३

अर्थ—[अस्य ई] क्यचि परतोऽवर्णान्तस्याङ्गस्य ईकारादेशो भवति ।

(क्यच् के परे रहने पर प्रवर्णान्त अङ्ग को ईकार आदेश होता है)

उदा०—पुत्रीयति । घटीयति ।

सि०—सिद्धिस्तु सुपः आत्मनः क्यच् इत्यत्र द्रष्टव्या ।

द्यतिस्यतिमास्थामिति किति ७।४।४०

प० वि०—द्यति-स्यति-मा-स्थाम् ६।३ इत् १।१ ति ७।१
किति ७।१

अर्थ—दो अवस्त्वङने, पो अन्तर्कर्मणि, मा माने, माङ् माने शब्दे च, माङ् माने, मेङ् प्रणिदाने, ऋगामादाप्रहणेष्वविशेषः (परि०) इति चतुर्णामपि^१ प्रहणम्) ष्ठा गतिनिवृत्तौ इत्येतेषामङ्गानाम् इकारादेशो भवति तकारादौ किति प्रत्यये परत । (इन् धातुषो को इकार आदेश होता है, तकारादि कित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—निर्दिष्टः । निर्दिष्टवान् । अवसितः । अवसितवान् । मितः । मितवान् । स्थितः । स्थितवान् । तीति किम् । अवदाय । कितीति किम् । अवदाता ।

अत्राद्यस्य दो द्धोः (७.४.४६) इति इत्वे प्राप्ते शेषाणां घुमास्येति सूत्रेण (६.४.६६) ईत्वे प्राप्ते ईत्वं विधीयते

शाछोरन्यतरस्याम् ७।४।४१

प० वि०—शाछोः ६।२ अन्यतरस्याम् अ० ।

अर्थ—[इत् ति किति] शो तनूकरणे, छो छेदने इत्येतयोरङ्गयोः तकारादौ किति प्रत्यये परत इकारादेशो भवति अन्यतरस्याम् । (शो और छो इनको इकार आदेश होता है तकारादि कित् के परे रहने पर विकल्प करके)

उदा०—शा-निशितम् । निशातम् । निशितवान् । निशातवान् । छा-अवच्छिन्नम् । अवच्छातम् । अवच्छितवान् । अवच्छातवान् ।

१माङ् माने इति देवादिकः न सर्वसम्मत, अतस्तद्भावे प्रयणाम् ।

सि०—शो । शा क्त । शात । निशात मु । निशात अम् ।
निशातम् । निशितम् ।

दधातेहिः ७।४।४२

प० वि०—दधातेः ६।१ हिः १।१

अर्थ—[ति किति] दधातेरङ्गस्य हि इत्ययमादेशो भवति तकारादौ किति प्रत्यये परतः । (था धातु को हि यह आदेश होता है तकारादि कित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—हितः । हितवान् । हित्वा ।

ॐ अत्रेदं बोध्यम्—शितपा शपातुञ्घेन निर्दिष्टं यद् गणेन च ।

यत्रैकाज् ग्रहणं चैव पञ्चैतानि न यद्भुक्ति ।

दधातेहिः इत्यत्र शितपा निर्देशः, अत एव यद्भुगन्तस्य हिरादेशो न भवति, दाधीतम्, दाधीतवान्, दाधीत्या ।

जहातेश्च क्त्वि ७।४।४३

अर्थ—[हि.] जहातेश्चाङ्गस्य क्त्राप्रत्यये परतो हि इत्ययमादेशो भवति । (जहाति धातु का हि आदेश होता है क्त्रा प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—हित्वा राज्यं धनं गतः । हित्वा गच्छति ।

दो दद्घो ७।४।४६

प० वि०—दः ६।१ दद् १।१ घोः ६।१

अर्थ—[ति किति] घुसङ्क्षकस्य दा इत्येतस्य दद् इत्ययमादेशो भवति तकारादौ किति प्रत्यये परतः । (घु सङ्क्ष दा धातु के स्थान में दद् यह आदेश होता है तकारादि कित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—दत्तः । दत्तवान् । दत्त्वा ।

सि०—दा क्त । दा त । दत् त । दत् त । दत्त मु । दत्त ।

अच उपसर्गति ७।४।४७

प० वि०—अचः ५।१ उपसर्गान् ५।१ तः १।१

अर्थ—[दद् घोः ति किति] अजन्तादुपसर्गादुत्तरस्य दा इत्येतस्य घुसङ्क्षकस्य त इत्ययमादेशो भवति तकारादौ किति प्रत्यये परतः ।

(अजन्त उपसर्ग के पश्चात् घुसङ्क्ष दा के स्थान में त यह आदेश होता है तकारादि कित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—त इत्यत्र अस्मात् उच्चारणार्थः । प्रत्तम् । अयत्तम् ।

सि०—प्र दा क्त । प्र दा त । प्र त्त । प्रत्त सु । प्रत्त अम् ।
प्रत्तम् ।

अपो मि ७।४।४८

प० वि०—अप ६।१ मि ७।१

अर्थ—[त] अप् इत्येतस्याङ्गस्य भकारादौ प्रत्यये परतस्त इत्यय
मादेशो भवति । (मय का तकार आदश होता है भकारादि प्रत्यय के पर
रहन पर)

उदा०—अद्भि । अद्भ्य । भीति किम्—अप्सु ।

स स्याधधातुके ७।४।४९

प० वि०—स ६।१ सि ७।१ आर्धधातुके ७।१

अर्थ—[त] सकारान्तस्याङ्गस्य सकारादायार्धधातुके परतस्तका-
रादेशो भवति । (सकारान्त अङ्ग को तकार आदश होता है सकारादि
आधधातुक प्रत्यय के पर रहन पर)

उदा०—वत्स्यति । अवत्स्यत् । विवत्सति ।

सि०—वस् लृट् । वस तिप् । वस् स्य ति । वत्स्यति ।

तासस्त्योर्लोप ७।४।५०

प० वि०—तासस्त्यो ६।२ लोप १।८

स०—तास् च अस्तिश्चेति तासस्ती तयो ।

अर्थ—[सि स] तासेरस्तेश्च सकारस्य सकारादौ प्रत्यये परत
लोपो भवति । (तम और अम धातु के सकार का लोप होता है सकारादि
आधधातुक प्रत्यय के पर रहन पर)

उदा०—भवितासि । कर्त्तासि । कर्त्तासे । अस्ते । त्वमसि ।
व्यसिते । ॐ अस्तेरकारसकारयोर्लुप्तयो से इति प्रत्ययमात्रमेव
पदम् ।

रि च ७।४।५१

अर्थ—[तासस्त्योर्लोप स] तासेरस्तेश्च सकारस्य लोपो भवति ।
रेफानौ च प्रत्यये परत ।

(तास और अस् के सकार का लोप होता है रेफादि प्रत्यय के पर रहन पर)

उदा०—भवितारौ । भवितार । ॐ लोके अस्ते रेफादिप्रत्ययो न
सम्भवति इति नास्ति उदाहरणम् ॐ

ह एति ७।४।५२

प० वि०—हः १।१ एति ७।१

अर्थ—[तासस्त्योः सः]-तासस्त्योः सकारस्य हकारादेशो भवति एति परतः । (ताम् घोर भम् के सकार के स्थान में हकार आदेश होता है एकार के के परे रहने पर)

उदा०—भवतिहे । अस्तेः—व्यतिहे ।

सि०—व्यति अस् इट् । व्यति अस् ए । व्यति स् ए । व्यति ह् ए । व्यतिहे ।

सनि मीमाधुरभलभशकपतपदामच इस् ७।४।५४

प० वि०—सनि ७।१ मी-मा-धु-रभ-लभ-शक-पत-पदाम् ६।३ अचः ६।१ इस् १।१

अर्थ—[सि] मीम् हिंसायां, हुमिब् प्रक्षेपणे (उभयोरपि ग्रहणम्) मा (इति गामादाग्रहणेष्वविशेष इति परिभाषया मेङ् प्रभृतीनां चतुर्णामपि* ग्रहणम्) धु, रभ राभस्ये, हुलभप् प्राप्ता, शक्ल शक्ती, शल हुल पत्न्यु गती, पद गती इत्येतेषामङ्गानामचः स्थाने इस् इत्ययमादेशो भवति सनि सकारादौ प्रत्यये परतः । (इन धातुओं के अच् के स्थान में इन् यह आदेश होता है साकारादि मन् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—मीनाति । मित्सति । मिनोति । प्रमित्सति । मित्सते । अप-मित्सते । दित्सति । घित्सति । रभ—आरिप्सते । लभ—आलिप्सते । शक्—शिञ्जति । पत—पित्सति । पद—प्रपित्सते ।

सि०—मित्सति । मी सन् । म् इस् सन् । मित् स । मित्म* । मिन् मिन् स । मि मिन् स । मित्स शप् तिप् । मित्सति । आरिप्सति । रम् सन् । र् इस् भ् स । रित् भ् स । रि भ् स । रिप्स । रिप्स शप् तिप् । रिप्सति । आरिप्सति । पित्सति, पिपतिपति × तनिपतिदृष्टाणाम् (७।२।४६ या०) × इति वेद ।

आप्लप्यधामीत् ७।४।५५

प० वि०—आप्-क्षपि-धाम् ६।३ ईन् १।१

अर्थ—[अचः सि सनि] आप्ल व्याप्तौ, क्षा पुक् क्षिच्, ऋधु पृद्धौ, इत्येतेषामङ्गानामचः स्थाने ईकारादेशो भवति सनि सकारादौ प्रत्यये परतः । (आप्ल, क्षिप् घोर ऋधु पृद्ध वा ईकार आदेश होता है सना-

रादि सन् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—आप्—ईप्सति । झपि—झीप्सति । ऋध्—ईर्त्सति ।

सि०—ईप्सति । आप् सन् । ईप् स । ईप् ईप् स । ई ईप् स । ईप्स शप् तिप् । ईप्सति । ईर्त्सति, झीप्सति इत्येतयोः साधनं सनीवन्तर्धेति (७. २. ४६) सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

दम्भ इच्च ७।४।५६

प० वि०—दम्भ. ६।१ इत् १।१ च अ० ।

अर्थ—[अच सि सनि] दम्भेश्च स्थाने इकारः चकाराद् ईकारश्च आदेशा भवति सनि सकारादौ परतः । (सकारादि सन् के परे रहने पर दम्भ का इकार और चकार से ईकार आदेश होता है)

उदा०—धीप्सति । विप्सति ।

सि०—सिद्धिस्तु सनीवन्तेति (७. २. ४६) सूत्रे द्रष्टव्या ।

अभ्यासप्रकरणम्—

अत्र लोपोऽभ्यासस्य ७।४।५८

प० वि०—अत्र अ० । लोपः १।१ अभ्यासस्य ६।१ ॥

अर्थ—अत्र यदेतत् प्रकान्त सनिमीमेत्यारभ्य मुचोऽन्मकस्येति यावत् तस्य अभ्यासस्य लोपो भवति । (यहा अर्षान् सनि मीमा० से मुचोऽन्मकस्य पद्यन्त जिनको इसादि कहा है उसके अभ्यास का लोप होता है)

उदा०—पूर्वेषु सूत्रेषुदाहृतानि ॥

ॐ 'अभ्यासस्य' पदस्य स्वरितवचनादा अभ्यासपरिसमाप्तेरधिकारो द्रष्टव्यः (इस सूत्र में 'अभ्यासस्य' पद स्वरित है अतः इस पद का अभ्यास की समाप्ति पर्यन्त अधिकार^१ जाता है)

ह्रस्व ७।४।५९

अर्थ—अङ्गस्याभ्यासस्य ह्रस्वो भवति । (अङ्ग के अभ्यास को ह्रस्व होता है)

उदा०—हुडोकिपते । तुत्रोकिपते ।

सि०—डोक्, तोक् । डोक् सन् । डोक् इट् स । डोकि स । डोकिप । डोक् डोकिप । डो डोकिप । हु डोकिप । हु डोकिप । हुडोकिप शप् ते । हुडोकिपते ।

हलादिः शेषः ७।४।६०

प० वि०—हल् १।१ आदिः १।१ शेषः १।१

१. स्वरितेनाधिकारः (१. ३. ११)

अर्थ—अभ्यासस्यादिर्हल् शेषस्तिष्ठति अर्थात् अनादिलुप्यते ।

(अभ्यास का आदि हल् बचता है अर्थात् जो आदि में नहीं है, उतना शेष हो जाता है)

उदा०—बुद्धोक्तिपते ।

शार्पूर्वा खय ७।४।६१

प० वि०—शार्पूर्वा १।३ खय १।३ स०—शार् पूर्वो येषां ते शार्पूर्वा (नहुजीहि)

अर्थ—[शेष] अभ्यासस्य शार्पूर्वा खय शिष्यन्ते । अन्ये हलो लुप्यन्ते । (शर प्रत्याहार में आन वाला बाई वर्ण है पूर्व जिस खय प्रत्याहार में आन वाले वर्ण व, एमे अभ्यास का खय ही बचता है और दूसर लुप्त हो जाते हैं)

उदा०—पस्पर्ध । पस्पर्धांते । पस्पर्धिरे ।

सि०—स्पर्ध । स्पर्ध् लिट् । स्पर्ध् स्पर्ध् लिट् । प स्पर्ध् स । प स्पर्ध् पश् । पस्पर्ध् म । परस्पर्ध् ।

बुद्धोदचु ७।४।६२

प० वि०—बुद्धो ६।० चु १।१ स०—बुद्ध च ह्यचेति बुद्धो नयो बुद्धो ।

अर्थ—अभ्यासस्य वृजगंहकारयोश्चवर्गादेशो भवति ।

(अभ्यास व वृज और हकार व स्थान में वृज आदेश होता है)

उदा०—चकार । हकारस्य—जहार ।

सि०—च लिट् । च गृह् । कार् अ । कार् कार् अ । का कार् अ । क कार् अ । चकार । ह लिट् । ह गृह् । हार् अ । हार् हार् अ । हा हार् अ । ह हार् अ । म' हार् अ । जहार ।

उरन् ७।४।६६

प० वि०—उ ६।१ आ १।१

अर्थ—उरणांन्त्याभ्यासस्याकारादेशो भवति । (उरणांन्त्याभ्यास का आकारादेश होता है)

उदा०—उरन्ते । उरन्ते । नरन्ति । नरन्ति । नरन्ति ।

सि०—उरन् उरन्ते । उरन् बुद्धो । उरन् लिट् । उरन् म । उरन् म ।

१—बुद्धोदचु (३. ८. ६०) २—अभ्यास पस्पर्ध (८. ४. १४)

वृ वृत् त । व वृत् त । वर वृत् त । व वृत् णश् । ववृत्ते । एतानि त्रीणि
 रूपाणि यङ्लुगन्तस्य सन्ति । नृत् यङ् । नृत् नृत् य । नृ नृत्
 य । न नृत् य । नर् नृत् य । न नृत् थ । न रुक् नृत् ।
 नर् नृत् शप् तिप् । नर् नृत् ति । नर्न अर् त् ति । नर्नर्त्ति । न रिक्
 नर्त्ति । नरिनर्त्ति । न रीक् नर्त्ति । नरीनर्त्ति । ऋइत्यत्रेदं बोध्यम्—
 अभ्यासविकारेषु अपवादो नोत्सर्गान्विधीन्वाधत इत्युरद्रत्वे कृते स्मादय
 आगमाः क्रियन्तेः

(अभ्यास के विकार में अपवाद सूत्र उत्सर्ग सूत्र का बाधक नहीं होता ।
 घट. यहा पर रक् रिक् रीक् इनकी विधायक अपवाद सूत्र इस सूत्र के पश्चात्
 में है, इसलिये परे होने से यदि वे यहा पर लग जाय तो उरत् सूत्र की प्रवृत्ति
 अवर्णान्त न रहने से नहीं होती । इन बातों के लिये यह परिभाषा है, इससे
 पहले उरत् सूत्र लग जायेगा, उसके पश्चात् रूपादि का आरम्भ करन चाहिये)

द्युतिस्वाप्यो. सम्प्रसारणम् ७।४।६७

व्यथो लिटि ७।४।६८

प० वि०—व्यथः ६।१ लिटि ७।१

अर्थ—[सम्प्रसारणम्] व्यथ भयचलनयोरित्येतस्य लिटि परतो-
 ऽभ्यासस्य सम्प्रसारणं भवति । (व्यथ के अभ्यास का सम्प्रसारण होता है
 लिटि के पर रहने पर)

उदा०—विध्यथे । विध्यथाते । विध्यथिरे ।

सि०—व्यथ् लिट् । व्यथ् त । व्यथ् व्यथ त । य् इ अ थ.
 व्यथ् त । विथ व्यथ् त । वि व्यथ् ण् । विध्यथे ।

दीर्घ इणः किति ७।४।६९

प० वि०—दीर्घः १।१ इणः ६।१ किति ७।१

अर्थ—[लिटि] इणोऽभ्यासस्याङ्गस्य दीर्घो भवति किति लिटि परतः ।
 (इण् धातु के अभ्यास का दीर्घ होता है किन्तु लिटि के परे रहने पर)

उदा०—इयतुः । इयुः । किनीति किम् । इयाय । इययिथ ।

सि०—इयतुः । इण् । इ लिट् । इ अतुम् । य् अतुम् । इ य्
 अतुम् । इयतुः । इयाय । इ अल् । मे अ । आय अ । इ आय् अ ।
 इयङ् आय् अ । इय् आय । इयाय ।

अत आदे ७।४।७०

प० वि०—अत ६।१ आदे ६।१

अर्थ—[लिटि दीर्घ] अभ्यासस्यादेरकारस्य दीर्घो भवति लिटि परत । (अभ्यास के आदि अकार का दीर्घ हाता है लिटि के परे रहन पर)

उदा०—आट् । आटतु । आटु । आदेरितिक्मि—पपाच ।

सि०—अट् अट् एल् । अ आट् अ । आ आट् अ । आट् अ । आट ।

तस्मान्नुद् द्विहल ७।४।७१

प० वि०—तस्मात् ५।१ नुट् १।१ द्विहल ६।१ स०—द्वौ हलौ यस्य तद् द्विहल् तस्य द्विहल ।

अर्थ—तस्माद् दीर्घोभूतादभ्यासादुत्तरस्य द्विहलोऽङ्गावयवस्य नुबागमो भवति । (उस अभ्यास के दो हल वाले अङ्ग अवयव का नुट् का आगम हाता है)

उदा०—आनर्च । आनर्चतु । आनर्चु ।

सि०—अर्च एल् । अर्च अर्च अ । अ अर्च अ । आ अर्च अ । आ अर्च अ । आ नुट् अर्च अ । आनर्च । ऋऌकारैकदेशो रेफो हल्प्रत्ययेन गृह्यते । तेनेहापि द्विहलोऽङ्गस्य नुबागमो भवति । आनर्चतु । आनृधु ॐ

अश्नोतेश्च ७।४।७२

अर्थ—[नुट्] अश्नोतेश्च दीर्घोभूतादभ्यासादुत्तरस्य नुबागमो भवति । (अग व्याप्ती घानु के दीर्घ हुए हुए अभ्यास के पश्चात् नुट् का आगम हाता है)

उदा०—व्यानशे । व्यानशाते । व्यानशिरै ।

भवतेर ७।४।७३

प० वि०—भवते ६।१ अ १।१

अर्थ—[लिटि] भवतेरभ्यासस्यासारदेशो भवति लिटि परत ।

(भवति घानु के अभ्यास को अकार आदि हाता है लिटि के परे रहन पर)

उदा०—बभूव । बभूवतु । बभूवु । बभूवे । बभूवाते । बभूविरे ।

निजा तयाणा गुणः इलो ७।४।७५

र्थ—णिजिर् शीचपोषणयो, निजिर् पृथग्भावे, निप्त्वाप्तौ

इत्येतेषां निजादीनां त्रयाणां गुणो भवति श्लो सति ।

(इन घातुओं के अभ्यास को गुण होता है श्लु में)

उदा०—नेनेक्ति । नेनक्ति । नेनिजति । नेनेहि । नेनिकथ ।
नेनिकथ । नेनेस्मि । नेनिञ्ज । नेनिज्मः ॥ वेवेक्ति । वेवेष्टि ।

भृजामित् ७।४।७६

प० वि०—भृजाम् ६।३ इत् १।१

अर्थ—[त्रयाणाम् श्लौ] भृजन् धारणपोषणयो, माह् माने,
ओहाह् गतौ इत्येतेषां त्रयाणां भृजाम् अभ्यासस्य इकारादेशो भवति
श्लो सति ।

(इन घातुओं के अभ्यास को इकारादेश होता है श्लु में)

उदा०—विभर्ति । विभृत् । विभ्रति । विभर्षि । विमृथः । विभृथ ।
विभर्मि । विभृषः । विभृम । मिमीते । मिमाते । मिमते । मिमीपे ।
मिमाथे । मिमीध्वे । मिमे । मिमीवहे । मिमीमहे । जिहीते । जिहाते ।
जिहृते । जिहीपे । जिहाथे । जिहीध्वे । जिहे । जिहीवहे । जिहीमहे ।

सि०—भृ लट् । भृ तिप् । भृ शप् तिप् । भृ श्लु ति । भृ ति । भृ भृ
ति । भर् भृ ति । भ भृ ति । भ भृ ति । भिभर् ति । विभर्ति ।

अस्तिपित्योश्च ७।४।७७

प० वि०—अस्ति-पित्यो ६।२ च अ० ।

अर्थ—[इत् श्लौ] ऋ गतौ, पृ पालनपूरणयो. इत्येतयोरभ्यासस्य
इकारादेशो भवति श्लो ।

(ऋ और प घातु के अभ्यास का इकार आदेश होता है श्लु में)

उदा०—इयस्ति । इयूतः । इयूति । इयर्षि । इयूथः । इयूथ । इयर्मि ।
इयूषः । इयूमः । पिपस्तिः । पिपूर्तः । पिपुरति । पपर्षि । पिपूथः । पिपूथ ।
पिपर्मि । पिपूतः । पिपूमः ।

सि०—ऋ लट् । ऋ श्लु तिप् । ऋ ति । ऋ ऋ ति । अर् ऋ ति । अ
ऋ ति । इ ऋ ति । इर् ऋ ति । इ ऋ ति । इयङ् ऋ ति । इय् अर्
ति । इयर्ति । इयर्त्ति । पिपूर्तः । पृ तस् । पुर् तस् । पूर् तस् । पूर् पूर्
तस् । पू पूर् तस् । पु पूर् तस् । पिपूथः ।

सन्यतः ७।४।७८

प० वि०—सनि ७।१ अतः ६।१

अर्थ—[इत] अकारान्तस्य अभ्यासस्य सनि परतः इकारादेशो भवति । (सन् के परे रहने पर अकारान्त अभ्यास के स्थान में इकार प्रादेश होता है)

उदा०—पिपासति । तिष्ठासति ।

गुणो यङ्लुकोः ७।४।८२

प० वि०—गुणः १।१ यङ्लुकोः ७।२

अर्थ—यङि यङ्लुकि च परतोऽभ्यासस्य गुणो भवति ।

(यङ् और यङ्लुक् के परे रहने पर अभ्यास को गुण होता है)

उदा०—यङि—चेचीयते । चेचीयते । चेचीयन्ते । यङ्लुकि—दो-
नयीति । योभोति । योभूतः । योभुवति ।

दीर्घोऽकितः ७।४।८३

प० वि०—दीर्घः १।१ अकितः । स०—न किञ्चित् अकित् तस्य अकितः ।

अर्थ—[यङ्लुकोः] अकितोऽभ्यासस्य दीर्घो भवति यङि यङ्लुकि च परतः । (अकित् अभ्यास को दीर्घ होता है यङ् और यङ्लुक् के परे रहने पर)

उदा०—पापच्यते । पापचीति । पापकित् । पापस्तः । पापचति ।
पापचीपि । पापत्ति । पापकथः । पापकथ । पापचीमि । पापक्षि । पापच्यः ।
पापक्ष्मः ।

सि०—साधनं तु धातोरेकाव इतिसूत्रे द्रष्टव्यम् ।

नीगवञ्चुसंमुध्वसुभ्रंसुकसपतपदस्कन्दाम् ७।४।८४

प० वि०—नीक् १।१ वञ्चु-संमुध्वसु-भ्रं-सु-कस पत-पद-स्क-
न्दाम् ६।३

अर्थ—[यङ्लुकोः] वञ्चु, (चञ्चु, वञ्चु, वञ्चु, वञ्चु, वञ्चु, वञ्चु
गत्यर्थाः) संमुध्वसु अवसंस्रने, कस गती, (शल हुल) पत्ल गती,
स्फन्दिर् गतिशोषणयोः इत्येतेषामभ्यासस्य नीगागमो भवति यङि
यङ्लुकि च परतः । (इन अक्षुप्तो के अभ्यास को नीक् का आगम होता है
यङ् और यङ्लुक् के परे रहने पर)

उदा०—वनीवच्यते । वनीवञ्चीति । सनीस्रस्यते । सनीस्रंसीति ।
दनीध्वस्यते । दनीध्वंसीति । वनीभ्रस्यते । वनीभ्रंसीति । वनीक्स्यते ।

चनीकसीति । पनीपत्यते । पनीपतीति । पनीपद्यते । पनीपदीति । चनी-
रुद्यते । चनीस्कदीति ।

सि०—ॐ वनीवच्यते इत्यत्र अनिद्रितामित्यादिना तुनासिक्लोपः ।
वनीवच्येति । अत्र न भवत्यनुनासिक्लोपः । यडो लुक्त्वान्न लुमताङ्ग-
स्येति प्रत्ययलक्षणनिषेधात् । अथ नीकि कृतेऽभ्यासस्य ह्रस्वत्वं कस्मान्न
भवति । दीर्घोच्चारणसामर्थ्यात् ॥

नुगतोऽनुनासिकान्तस्य ७।४।८५

प० वि०—नुक् १।१ अतः ६।१ अनुनासिकान्तस्य ६।१

अर्थ—[यङ्लुकोः] अनुनासिकान्तस्याङ्गस्योकारान्तोऽभ्यास-
स्तस्य नुगागमो भवति यङि यङ्लुकि च परतः ।

(अनुनासिका-त अङ्ग का जो अकारान्त अभ्यास, उसको यङ् और यङ्-
लुक् के परे रहने पर नुक् का आगम होता है)

उदा०—तन्—तंतम्यते । ततनीति । तंतन्ति । तन्तान्तः । तंतनति ।
तंतनीपि । तंतसि । तन्तान्थः । तन्तान्थ । तन्मनीमि । तन्तन्मि । तन्त-
न्वः । तन्तन्मः । गम्—जंगम्यते । जगमीति । जंगन्ति । जंगतः ।
जगमति । जंगमीपि । जगंसि । जंगथ । जगथ । जंगमीमि । जगन्मि ।
जंगन्वः । जगन्मः ।

सि०—तन्तान्तः । तन्तान्थः । जगतः । जंगमति । जंगन्मि ।

ॐ अत्र महाभाष्ये—नुकि ययम्यते ररम्यते इति रपाऽसिद्धिः ।
× अनुस्वारागात् सिद्धम् × एवमपीदमेव रूपं स्यात्—ययं ययम्यते इदं न
स्यात् ययम्यते । × पदान्तवच्च × वा पदान्तस्य ॐ अत्रेहं धोष्यम्-
ययम्यते इत्यत्र नुकि आगमे कृते नकारस्य नश्चापदान्तस्य भलि इत्ये-
तेन सूत्रेण भलपरत्वाभावान्मो अनुस्वारः । अत एव स्थानिनाऽत्रा-
देशोऽनुस्वार उपलक्ष्यते । तस्मादनुस्वार एवागमोऽत्र विधीयते न तु
नुक् । सत्यप्येवं ययं ययम्यते इत्येव प्राप्नोति अपदान्ते नित्यं परसर्वण-
त्वात्, न तु ययम्यते इति तदुच्यते—अयं नुगागमो पदान्तवच्चेति
भवति इति यक्तव्यं तेन वा पदान्तस्य इति सूत्रेण परसर्वणदेशो
विकल्प्यते तेन उभयमेव रूपं सिध्यति ययम्यते ययं ययम्यते इति ।

जपजभदहृदशभञ्जपशाञ्च ७।४।८६

अर्थ—[नुक् यङ्लुकोः] जप जल्प व्यस्तायां वाचि, जभि जृभी
गात्रविनामे, दह भस्मीकरणे, दश दशने, भञ्जो आमर्दने, पशि

सौत्रो धातु इत्येतेषामभ्यासस्य नुगागमो भवति यङि यङ्लुकि च परत । (इन धातुओ के अभ्यास का नुक का भागम होता है यङ और यङ्लुक के परे रहन पर)

उदा०—जजप्यते । जजपीति । जजभ्यते । जजभीति । ददह्यते । ददहीति । ददश्यते । ददशीति । ॐ दश इति दशिरस्य नकार लोपार्थमेव निदिष्ट ॐ वभज्यते । वभज्जीति । पपश्यते । पपशीति । गत्यर्थकोऽयं धातु । ॐ पस धातुर्जनयान्त सौत्रो गत्यर्थ इति स्पर्श बाधनस्पर्शनयो-रिति अत्र साधय ॐ तत्पक्षे सूत्रेऽपि भज्जपसा च इति पाठ । पपश्यते । पसस् कण्ठादि , तस्य पपश्यते सुखायते इत्यर्थ ।

चरफलोश्च ७।४।८७

प० वि०—चरफलो ६।२ च अ० ।

अर्थ—[नुक यङ्लुको] चर गतौ, निफला विशरणे, फल मिष्यत्तौ (द्वयोरपि प्रहरणम्] इत्येतयोरभ्यासस्य नुगागमो भवति यङि यङ्लुकि च परत । (चर और फल धातुओ के अभ्यास को नुक का भागम हाता है यङ और यङ्लुक के परे रहन पर)

उदा०—चचूर्यते । चचूर्यते । चचूर्यन्ते । चचुरीति । चचूर्ति । चचूर्त । चचरति । पपुन्यते । पपुलीति । पपुलित । पपुन्त । पपुलति ।

ति०—चर् यङ् । चर् चर् य । च चर् य । च नुक चर् य । च चूर् य । च चूर् य शप्ते । चचूर्यते ।

उत्परस्यात् ७।४।८८

प० वि०—उत् १।१ परस्य ६।१ अत ६।१

अर्थ—[चरफलो यङ्लुको] चरफलोर्भ्यासात् परस्य अकारस्य स्थाने उकारादेशो भवति यङि यङ्लुकि च परत ।

(चर् और फल क अभ्यास क परचाव अकार क स्थान में उकार भादश होता है यङ और यङ्लुक के रहन पर)

उदा०—चचूर्यते । चचुरीति । पपुन्यते । पपुलीति ।

ति च ७।४।८९

प० वि०—ति ७।१ च अ० ।

अर्थ—[चरफलो अत उत्] चरफलोर्कारस्य स्थाने उकारादेशो भवति तकारादौ प्रत्यये परत । (चर और फल धातु क अकार क स्थान में उकार भादश होता है तकारादि प्रत्यय के परे रहन पर)

उदा०—चूर्ति । प्रफुल्लिः ।

सि०—चर्क्त्तिन् । चूर्त्ति । चूर्त्ति । चूर्त्तिः । फल्क्त्तिन् । फल्क्त्ति । फल्क्त्ति । फुल्त्ति । फुल्लि सु । प्रफुल्लिः ।

रीगृदुपघस्य च ७।४।६०

प० वि०—रीक् १।१ ऋदुपघस्य ६।१ च अ० ।

स०—ऋदुपघायां यस्य तद् ऋदुपधम् तस्य ऋदुपधस्य ।

अर्थ—[यङ्लुकोः] ऋकारोपधस्याङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्य रीगागमो भवति यङि यङ्लुकि च परतः । (ऋकार उपधा वाले भङ्ग के अभ्यास को रीक् का आगम होता है यङ् और यङ्लुक् के परे रहने पर)

उदा०—घरीवृत्त्यते । घरीवृत्तीति । घरीवर्त्ति । घरीवृतः । घरीवृतति । नरीनृत्यते । नरीनृतीति । नरीनर्त्ति । नरीनृतः । नरीनृतति ।
×रीगृत्थत इति चत्तज्यम्× घरीवृश्च्यते । घरीवृश्चीति । घरीपृच्छ्यते । यङ्लुकि यङो लुक्त्वात् संप्रसारणं न भवति । तेन प्राप्नोतीति, प्राप्ति ।

रुमिकौ च लुकि ७।४।६१

प० वि०—रुमिकौ १।० च अ० लुकि ७।१

अर्थ—[ऋदुपघस्य] ऋकारोपधस्याङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्य रुमिकावागमौ भवत यङ्लुकि परतः । (ऋकार उपधा वाले भङ्ग के अभ्यास को रुक् रीक् का आगम होता है यङ्लुक् के परे रहने पर)

उदा०—वर्षतीति । वर्षर्त्ति । वरिषतीति । वरिषर्त्ति । वर्धत । वरिषृतः । वर्धतति । वरिषृतति ।

ऋतश्च ७।४।६२

प० वि०—ऋतः ६।१ च अ० ।

अर्थ—[लुकि] ऋकारान्तस्याङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्य रीक् रुक् रीक् इत्येते आगमा भवन्ति यङ्लुकि परतः । (ऋकारान्त भङ्ग का जो अभ्यास उसको रोद् रुक् और रीक् ये तीन आगम होत हैं यङ्लुक् के परे रहने पर)

अत्र चकारः सम्मुच्यार्थः । ऋकारान्तस्यापि एते आगमा भवेयुरिति एवमर्थम् । आतश्चैव विज्ञेयम् अन्यथा रुमिकौ च लुकि इत्यत्र चकारेण रीक् इत्येतस्य अनुवृत्तौ अत्र रोर्नोऽनुवृत्तिर्न स्यात् चानुवृष्ट नोत्तर इति नियमात्

उदा०—कृ—चरीकरीति । चर्करीति । चरिकरीति । चरीकर्त्ति । चर्कर्त्ति । चरिकर्त्ति । चरीकृतः । चर्कृतः । चरिकृतः । चरीकृति । चर्कृति । चरिकृति ।

सि०—चरीकरीति ऋइत्यत्र नाभ्यस्तन्याचि पिति सावधातुक इत्यनेन गुणस्य निषेधो न, तस्य सूत्रस्य लघुस्य गुणस्य निषेधपरकत्वात् अत्र सार्वधातुकार्धधातुक्योरिति गुणो भवत्येवः

किरिति चर्करीतान्तं च पचतीत्यत्र यो नयेत् ।

प्राप्तिज्ञ तमहं मन्ये प्रारब्धस्तेन सप्रहः ॥

अर्थ—किरितिमिति ऋकारान्तोपलक्षणं, चर्करीतिमिति यङ्लुकः पूर्वोच्चार्यसत्रा, पचतीति लट् उपलक्षणम् । तेन चरीकर्त्तव्यादीनि रूपाणि किरतेर्यो नयेदित्यर्थः । प्राप्तिज्ञं रूपादीनां विषयविभागेन या प्राप्ति-
स्तत्त्वं, संप्रहः साधुशब्दसंप्रहः । इति पदमञ्जरी ॥ इत्थं शब्दशास्त्रे व्युत्पन्नस्यैव व्याडिप्रणीते संप्रहग्रन्थेऽधिकार इति मीमांसकाः ।

सन्वल्लघुनि चङ् परेऽनग्लोपे ७।४।६३

प० वि०—मन्वत् १।१ लघुनि ७।१ चङ् परे ७।१ अनग्लोपे ७।१

स०—चङ् परो यस्मात् तच्चङ् परम् तस्मिन् चङ् परे । अग्लो लोपः अग्लोपः । नास्ति अग्लोपो यस्य तदनग्लोपम् तस्मिन् अनग्लोपे ।

अर्थ—लघुनि धात्वक्षरे परतो योऽभ्यासस्तस्य चङ् परे शो परतः सनीच कार्यं भवति अनग्लोपे । (लघु धात्वक्षर के परे रहने पर जो अभ्यास, उसका सन् के समान कार्य होता है चङ् परे हों जिससे ऐसे एिच् के परे रहने पर । अर्थात् सन् के परे रहने पर जो कार्य होता वंश ही उसको कार्य होता है)

उदा०—अपीपचत् । अपीपचताम् । अपीपचन् । अचीकरत् । अचीकरताम् । अचीकरन् । लघुनीति क्रिम्—अततचन् । अररचन् । अनग्लाप इति क्रिम् । अचकथत् । ऋकथ धाक्यप्रगोथ इति अयं धातुः चुरादा-
वदन्तः

दीर्घो लघो ७।४।६४

अर्थ—[लघुनि चङ् परेऽनग्लोपे] दीर्घो भवति लघोरभ्यासस्य लघुनि शो चङ् परेऽनग्लोपे । (लघु धात्वक्षर के परे रहने पर लघु अभ्यास को दीर्घ होता है, चङ् परे है जिससे ऐसे एिच् के परे रहने पर)

उदा०—अचीकरत् । अपीपठत् ।

अस्मृदृत्वरप्रथमदस्तस्पर्शाम् ७।४।६५

प० वि०—अत् १।१ स्मृ-दृ-त्वर-प्रथ-मद-स्त-स्पर्शाम् ६।३

अर्थ—[चङ्परे] स्मृ चिन्तायाम्, दृ भये, बित्वरा सभ्रमे, प्रथ प्रख्याने, अम मर्हने, स्तृञ् आच्छादने, स्पर्श बाधनस्पर्शनयोः इत्येतेषामभ्यासस्य अकारादेशो भवति चङ्परे णौ परतः । (इन धातुभो के अभ्यास का अकार आदेश होता है, चङ्परक णिच् के परे रहने पर)

उदा०—असस्मरत् । अददरत् । अतत्वरत् । अपप्रथत् । अममदत् । अतस्तरत् । अपस्पर्शत् ऋसन्वद् भावादित्त्वं प्राप्तमनेन बाध्यते । तपरकरणसामर्थ्यात् अति कृते दीर्घो लघोरित्येतदपि न भवति अददरत् इति ऋ

विभाषा वेष्टिचेष्टयोः ७।४।६६

प० वि०—विभाषा १।१ वेष्टिचेष्टयोः ६।२

अर्थ—[अत् चङ्परे] वेष्टि चेष्टि इत्येतयोरभ्यासस्य विभाषा अकारादेशो भवति चङ्परे णौ परतः । (वेष्टि और चेष्टि धातुभो ॥ अभ्यास को विहृत्य से अकार होता है चङ्परक णिच् के परे रहने पर)

उदा०—अववेष्टत् । अविवेष्टत् । अचचेष्टत् । अचिवेष्टत् ।

ई च गणः ७।४।६७

प० वि०—ई (अविभ०) च अ० । गणः ६।१

अर्थ—[चङ्परे] गणेरभ्यासस्य ईकारादेशो भवति चकारादच्च चङ्परे णौ परतः । (गण के अभ्यास को ईकार और चकार से अकार आदेश होता है, चङ्परक णिच् के परे रहने पर)

उदा०—अजीगणत् । अजगणत् ।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणज्ञमहावैयाकरणपण्डितब्रह्मदत्ता-

चार्याणामन्तेवासिना देवप्रकाशपातञ्जलेन विर-

चितायामष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया

सप्तमाध्याये चतुर्थं पादः

इति सप्तमोऽध्यायः

पदस्य ८।१।१६

अर्थ—प्रागपदान्ताविमाराद् इतोऽग्रे वक्ष्यमाणानि कार्याणि पदस्य भवन्ति इत्यधिकारा वेदितव्यः । (अपदान्त अधिकार के पहले पहल यहां से आगे कहे जाने वाले कार्य पद को हाते हैं, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

पदात् ८।१।१७

अर्थ—कुत्सने च मुष्यगोत्रादौ इत्येतस्मात्प्राक् इतोऽग्रे वक्ष्यमाणानि कार्याणि पदात् पदस्य भवन्ति इत्यधिकारो वेदितव्यः ।

(कुत्सने च मुष्यगोत्रादौ (८. १. ६६) इस सूत्र के पहले पहल यहां से आगे कहे जाने वाले कार्य पद के पदचात् पद के होते हैं, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

युष्मदस्मदो. पष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वाच्चावौ ८।१।२०

५० वि०—युष्मदस्मदो. ६।२ पष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयो ६।२ वाच्चावौ १।२ स०—युष्मच्च अस्मच्चेति युष्मदस्मदो तयोः युष्मदस्मदोः । पष्ठी च चतुर्थी च द्वितीया चेति पष्ठीचतुर्थीद्वितीया. तामु तिष्ठति य. स पष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थ. तयो. पष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयो । वाम् च नौ च वाच्चावौ ।

अर्थ—[पदस्य पदात्] पदादुत्तरयो पष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्युष्मदस्मदोः पदयो वाम् नौ इत्यथावादेशौ भवतः । (पद से उत्तर पदयन्त अनुष्मन्त द्वितीयात्त युष्मद् और अस्मद् पद के स्थान में वाम् और नौ यथास्य आदेश होते हैं)

उदा०—पष्ठी—ग्रामो वां स्वम् । ग्रामो नौ स्वम् । चतुर्थी—ग्रामो वां दीयते । ग्रामो नौ दीयते । द्वितीया—ग्रामो नो पश्यति । ग्रामो नो पश्यति । स्थग्रहण श्रूयमाणविमर्त्यर्थम् । इह मा भूत् । उति युष्मत्पुन इति ।

वहुवचनस्य वस्नमौ ८।१।२१

अर्थ—[युष्मदस्मदो पष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः] पदादुत्तरयो-युष्मदस्मदोः पष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वाच्चावाम् वम् नस् इत्यथावा-देशौ भवतः । (पद से उत्तर पष्ठी चतुर्थी द्वितीया विभक्ति में स्थित बहुवच-नान्त युष्मद् और अस्मद् पद के स्थान में वाम् वम् नस् और नस् आदेश होते हैं)

उदा०—ग्रामो वः स्वम् । जनपदो नः स्वम् । ग्रामो वो दीयते ।
जनपदो नो दीयते । ग्रामो वः पश्यति । जनपदो नः पश्यति ।

तेमयावेकवचनस्य ८।१।२१

प० वि०—तेमयौ १।२ एकवचनस्य ६।१ स०—ते च मे चेति
तेमयो ।

अर्थ—[युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः] युष्मदस्मदोरेक-
वचनान्तयो. षष्ठीचतुर्थीस्थयोर्यथासंख्य ते मे इत्येतावादेशौ भवतः ।

(षष्ठी चतुर्थी विभक्ति में स्थित एकवचनान्त युष्मद् और अस्मद् पद के
स्थान में क्रमशः ते और मे आदेश होने हैं, किसी पद के पश्चात्)

उदा०—ग्रामस्ते स्वम् । ग्रामो मे स्वम् ॥ ग्रामस्ते दीयते । ग्रामो मे
दीयत ॥ ॐ द्वितीयान्तस्यादेशान्तरविधानसामर्थ्यात् षष्ठीचतुर्थ्योरेव अय
योग ॐ

त्वामी द्वितीयाया ८।१।२३

अर्थ—[एकवचनस्य युष्मदस्मदोः] द्वितीयायाः एकवचनान्तयोर्यु-
ष्मदस्मदोर्यथासंख्य त्वा मा इत्येतावादेशौ भवतः । (द्वितीया एकवचनान्त
युष्मद् और अस्मद् के स्थान में त्वा और मा क्रमशः आदेश होते हैं)

उदा०—ग्रामस्त्वा पश्यति । ग्रामो मा पश्यति ।

इत्याष्टाध्यायी-प्रकाशिकायामष्टमाध्याये प्रथम. पाद

—X—

असिद्धप्रकरणम्—

पूर्वत्रासिद्धम् ८।२।१

प० वि०—पूर्वत्र अ० । असिद्धम् १।१

अर्थ—इतोऽग्रे आ अध्यायपरिसमाप्ते वक्ष्यमाणं कार्यं पूर्वेण सूत्रेषु
असिद्धं भवति इत्यधिकारो वेदितव्यः । (यहां से आगे अध्याय की परिम-
माप्ति तक रहे जाने वाले कार्य कार्यविधायक न पूर्व सूत्रों की दृष्टि में असिद्ध
समझे जाते हैं, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

न मु ने ८।२।३

प० वि०—न अ० । मु अविभ० ने ७।१ इति तृतीयैकवचनस्य
नाशब्दस्य सप्तम्यैकवचनम् ।

अर्थ—मुभावो नाभावे कर्त्तव्ये नासिद्धो भवति । (य ने स्थान में ना

करने में घु का होना प्रसिद्ध नहीं होता है)

उदा०—अमुना । Xसिज्लोप ण्छादेशे सिद्धो वस्तव्यः X अला-
यीन् ।

सि०—अदम् टा । अद अ टा । अद टा । अमु टा । अमुना ।

नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य दा२।७

प० वि०—नलोपः १।१ प्रातिपदिकान्तस्य दा१ स०—नलोप
नलोपः । प्रातिपदिकस्य अन्तः प्रातिपदिकान्तः तस्य प्रातिपदिकान्तस्य ।

अर्थ—[पदस्य] प्रातिपदिकान्तस्य पदस्य यो नशरन्तस्य लोपो
भवति पूषर्गसिद्धं च । (प्रातिपदिकान्त पद के नशर का नाश होता है
और पूषं की दृष्टि में प्रसिद्ध होता है)

उदा०—राजा । राजभ्याम् । राजभिः राजता । राजतर ।
राजतमः । कर्ता* ।

न टिमवदध्यो दा२।८

(ङि और सम्बुद्धि के परे रहने पर नकार का लोप नहीं होता है)

उदा०—आद्रे चर्मन् । लोहिते चर्मन् । मबुद्धौ-हे राजन् ।
हे वृक्षन् । × वा नपु सक्रानामिति वक्तव्यम् × हे चर्मन् । हे चर्म ।

मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्य ङा२।६

प० वि०—मात् ५।१ उपधाया ५।१ च अ० । मतो. ६।१ वः १।१

अयवादिभ्यः ५।३ स०—मश्च अश्चेति म तस्मात् मात् ।

अर्थ—मकारान्ताद् मकारोपधादयणान्तादयणोपधाच्च उत्तरस्य
मतोर्व इत्ययमादेशो भवति, यवादिभ्यस्तु परतो न भवति ।

(मकारान्त, मकारोपध, अयणान्त, अयणोपध के पश्चात् मतुप् के स्थान
में वकार प्रादेश होता है, यवादि शब्द को छोड़कर)

उदा०—मकारान्तात्-किवान् । शंवान् । मकारोपधात्-शमीवान् ।
दाडिमीवान् । अयणान्तात्-वृक्षवान् । प्लक्षवान् । अयणोपधात्-पय-
स्वान् । यशस्वान् । भास्वान् ।

सि०—किमस्यास्ति इति मतुप् । किम् मतुप् । किम् मत् । किम्
वत् । किम् वत् सु । किम् वत् सु । किम् वात् स् । किं वा नु म् त् स् ।
किंवान् स् । किंवान् । किवान् ।

अथ ङा२।१०

अर्थ—[मतोर्वः] मयन्तादुत्तरस्य मतोर्व इत्ययमादेशो भवति ।

(मयन्त प्रातिपदिक के पश्चात् मतुप् के स्थान में वकार प्रादेश
होता है)

उदा०—अग्निचित्वान् ग्रामः । विद्युत्त्वान् मलाहकः ।

कृपो रो ल. ङा२।१८

प० वि०—कृपः ६।१ रः ६।१ लः १।१

अर्थ—[पूर्वत्रासिद्धम्] कृपेर्घातोः रेफस्य लकारादेशो भवति
पूर्वत्रासिद्धं च । (कृप् धातु के रेफ के स्थान में लकार प्रादेश होता है और पूर्व
की दृष्टि में असिद्ध होता है)

उदा०—कल्पता । कल्पतारी । कल्पतारः । कल्प्तः । कल्प्तवान् ।

उपसर्गस्यायतो ङा२।१६

प० वि०—उपसर्गस्य ६।१ अयतो ७।१

अर्थ—[रो लः] अयतो परत उपसर्गस्य यो रेफन्तस्य लसारादेशो भवति । (यम् पातु के परे रहने पर उपसर्ग का ओ रेफ उमको सकार धारेण होता है)

उदा०—प्लायते । प्लायते ।

संयोगान्तस्य लोपः ८।२।२३

प० वि०—संयोगान्तस्य ६।१ लोपः १।१ स०—संयोगान्तो यम्य सः संयोगान्तः तस्य संयोगान्तस्य ।

अर्थ—संयोगान्तस्य पदस्य लोपो भवति । (संयोग अन्त धाने पद का लोप होता है और वह पूर्व की दृष्टि में भविष्य होता है)

उदा०—गोमान् । ययमान् । कृतयान् । हनवान् ।

मि०—गोमन् मु । गोमान् मु । गोमा नुम् त् स् । गोमान् । गोमान् ।

रात्सम्य ८।२।२४

प० वि०—रान् ५।१ मास्य ६।१

अर्थ—[संयोगान्तस्य पदस्य] संयोगान्तस्य पदस्य यो रेफन्तरमादुत्तरस्य सकारस्य लोपो भवति । (संयोग अन्त धाने पद का ओ रेफ उमके पश्चात् सकार का लोप होता है)

उदा०—भानुः । पितुः ।

सि०—माधनं तु ग्ययात्तरस्य इत्यत्र दृष्टव्यम् ।

धि न्व ८।२।२५

अर्थ—[मास्य] घकारादी प्रत्यये परतः सकारस्य लोपो भवति । (पकार धादि का प्रत्यय के परे रहने पर सकार का लोप होता है)

उदा०—अनविध्यम् । अनविद्धम् । अरविध्यम् । अरविद्धम् ।

मि०—सून् । सूनुद् । सूध्यम् । सून्निध्यम् । सूमिन्ध्यम् ।

सूदृष्टम्ध्यम् । सोदृष्टम्ध्यम् । लूदृष्टम्ध्यम् । मविध्यम् । अदृष्टविध्यम् । अनविध्यम् । इति प्रभृति निधः सकारस्य लोप इत्यनेन

भनो भनि ८।२।२६

प० वि०—भनः ५।१ भ.सि ७।१

अर्थ—[सस्य] मल उत्तरस्य सकारस्य लोपो भवति मलि परत ।
 (मल के पश्चात् सकार का लोप होता है मल के पर रहन पर)
 उ०—अभित् । अभित्वा ।

ह्रस्वादङ्गात् ८।२।२७

अर्थ [सस्य मलि] ह्रस्वाद्वादङ्गादुत्तरस्य सकारस्य लोपो भवति मलि परत । (ह्रस्वात् मङ्ग के पश्चात् सकार का लोप होता है मल के पर रहन पर)
 उ०—अकृत । अकृत । अकृथा । अकृथा ।

इट ईटि ८।२।२८

अर्थ—[सस्य] इट उत्तरस्य सकारस्य लोपो भवति ईटि परत ।
 (इट के पश्चात् सकार का लोप होता है ईट के पर रहन पर)
 उ०—अलावीत् । अपावीत् ।

स्को सयोगाद्योरन्ते च ८।२।२९

प० वि —स्का ६।२ सयोगाद्यो ६।२ अन्ते ७।१ च अ० । स०—
 सश्च नश्च इति स्को तयो स्का । सयोगस्य आदि सयोगादि तयो
 सयोगाद्यो ।

अर्थ—[मलि] सयोगाद्यो सकारककारयोर्लोपो भवति मलि
 परत प०ान्ते च । (सयोग के आदि जो सकार और ककार उसका
 लोप होता है मल के परे रहन पर और पदात्त में)

उ०—ओलस्जी । लग्न । लग्नवान् । साधुलक् । ककारस्य—
 तच् । तष्ट । तष्टवान् । काष्ठतट् ।

सि०—लस्ज् क्त । लस्ज् त । लज् त । लज् न । लग्न सु । लग्न ।
 साधुलक् । लस्ज् क्विप् । लस्ज् । लज् । लग् । लक् । साधुलक् ।
 तच् । तच् क्विप् । तक्प् । तप् । तप् सु । तप् । तड् । तट् ।

चो कु ८।२।३०

अर्थ—[मलि अन्ते च] चवर्गस्य चवर्गादेशो भवति मलि परत
 प०ान्ते च । (चवर्ग के स्थान में चवर्ग आदेश होता है मल् के परे रहन पर
 और पदात्त में)

उदा०—पक्ता । पक्तुम् । पस्तव्यम् । ओदनपक् । पक्ता ।
 चक्तुम् । चक्तव्यम् । वाक् ।

रादेशो भवति मलि पदान्ते च । (नह् क हकार क स्थान में घकार प्रादेश होता है मल् के पर रहन पर मोर पदात्त में)

उदा०—नद्धा । नद्धम् । नद्धव्यम् ।

आहस्थ ८।२।३५

अर्थ—[ह मलि] आहो हकारस्य यकारादेशो भवति मलि परत । (आह व हकार क स्थान में यकार प्रादेश होता है मल क परे रहन पर)

उदा०—आथ ।

अश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशा प ८।२।३६

अर्थ—[मलि अन्ते च] ओअश्चू छेदने, भ्रस्जो पाके, सृज विसर्गे, मृजू शुद्धी, यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु भ्राजू दीप्ती इत्येतेषां छकारान्तानां शकारान्तानां च पकार आदेशो भवति मलि परत पदान्ते च ।

(इन धातुओं व तथा छारात्त घोर शकारान्तों के पकार प्रादेश होता है मल् के पर रहन पर मोर पदात्त में)

उदा०—अश्च—अष्टा । अष्टुम् । अष्टव्यम् । मूलवृट् । भ्रस्ज—भ्रष्टा । भ्रष्टुम् । भ्रष्ट यम् । घानाभृट् । सृज—स्रष्टा । स्रष्टुम् । स्रष्टव्यम् । रज्जुसृट् । मृज—मार्ष्टा । मार्ष्टुम् । मार्ष्टव्यम् । कसपरिमृट् । यज—यष्टा । यष्टुम् । यष्ट यम् । उपयट् । राज—सम्राट् । स्मराट् । विराट् । क्शराजभ्राजो पदान्तार्थं ग्रहण मलादिराभ्यामिटा व्यग्रधीयते क्केचिच्चाष्टिभ्राष्टिरिति क्तिन्नन्तमिच्छन्ति ।

× क्तिन्नायादिभ्यश्च यस्तव्य × (३।३।६४ वा०) छकारान्तानाम्—प्रच्छ । प्रष्टा । प्रष्टुम् । प्रष्टव्यम् । शब्दप्राट् । क्छयो शुद्धनुनासिके चेत्यत्र निडतीत्यनुवर्तते इति छग्रहणमिह क्रियते क्शकारान्तानाम्—लिश । लेष्टा । लेष्टुम् । लेष्टव्यम् । लिट् । विश । वेष्टा । वेष्टुम् । वेष्टव्यम् । विट् ।

मि०—अश्च कृच् । अष् कृ । अष् कृ । अष्ट । अष्ट सु । अष्ट अनङ सु । अष्टन् म् । अष्टान् म् । अष्टान् । अष्ट । मूलं धृच्छति इति मूलवृट् । मूल अम् अश्च म्विप् । मूलवृश्च । मलवृश्च । मूलवृप् । मूलवृप् सु । मूलवृप । मूलवृङ् । मूलवृट् । मूलवृषी । मूलवृप । मूलवृपम् । मूलवृषी । मूलवृप । मूलवृषा । मूलवृङ्म्याम् । मूलवृङ्मि । अष्टा । सम्राट् ।

एकाचो वशो भप् भपन्तस्य स्वो ८।२।३७

५० वि०—एकाच (अत्रयत्रयप्रा) वश ६।१ भप् १।१ भपन्तस्य ६।१ स्वो ७।२ स०—एकोऽच् यस्मिन् प्रति एकाच् तस्यावयवस्य एसाच । भप् अन्ते यस्येति भपन्त तस्य भपन्तस्य । सत्त्वं धाग्व इति स्वो तयो स्वो ।

अर्थ—धातोरवयवो य एकाच् भपन्त तदवयवस्य रश स्थाने भप् आदेशो भवति भलि सकारे धाशब्दे च परत पन्तान्ते च ।

(धातु का प्रवयव जा एव भप् वाला भपन्त उस प्रवयव क वप् क स्थान में भप् आदेश होता है भनादि सकार और भनादि ध्व गन्ध क पर रहन पर और पदांत में)

उदा०—बुग्—भोत्स्यन्ते । अमुद्ध्यम् । अर्थमुत् । गुह—निपो-
दयते । न्यगूढ्यम् । पर्णमुद् । दुह—धादयन्ते । अमुग्ध्यम् । गोपुद् ।
अजर्षा ।

सि०—बुध अवगमने-बुध् लृट् । बुग् क । बुध् अन्त । बुग् अन्ते ।
बुध् स्य अन्ते । मुध् स्यन्ते । माध् स्यन्ते । भोत्स्यन्ते । बुध् लृट् । बुग्
धम् । बुध् सिच् ध्वम् । बुध् स् ध्वम् । बुध् धम् । मुध् ध्वम् । मुद्-
ध्यम् । मुद्ध्यम् । अट् मुद्ध्यम् । अमुद्ध्यम् । अर्थमुन् । अथ अम् बुध्
क्यप् । अर्थबुध् । अर्थमुध् । अथमुध् सु । अर्थमुध् । अर्थमुद् ।
अर्थमुन् ॥

गुह । गुह् लृट् । गुह् त । गुह् तं । गुह् स्य ते । गोह् स्यते ।
घोह् स्यते । घोह् स्यते । घाक् स्यत । घोक्प्यते । पोदयते ।
निपोदयते ।

गुह् लृट् । गुह् धम् । गुह् सिच् ध्वम् । गुह् ध्वम् । गुद्ध्यम् ।
गुद्ध्यम् । गुद्ध्यम् । गूढ्यम् । अट् गूढ्यम् । अगूढ्यम् । नि अगू-
ढ्यम् । न्यगूढ्यम् । दुह् । दुह् स्यते । दुध् स्यते । दौध् स्यते । पोप
स्यते । पोक्प्यते । पोदयते । गोधुक् । गोदुह् क्यप् । गोदुह् ।
गोधुह् । गोधुध् । गोधुध् सु । गोधुध् । गोधुग् । गोधुक् ।

अजर्षा । गृध् अभिकाहतायाम् । गृध् यद् । गृध् गृध् य । गृ
गृय । गृ गृध् य । गर गृध् य । गृ गृध् य । जगृध् । जगृध्

गृध् । जर् गृध् । जर्गृध् लङ् । जर्गृध् सिप् । जर् गृध् स । जर्
गर्ध् स् । जर् गर्ध् ^१ । जर्धर्ध् ^२ । जर्धर्ध् ^३ । जर्धर् र् ^४ जवर् ^५ ।
जर्धा ^६ । अट् जर्धा । अजर्धा ।

दधस्तथोश्च ८।२।३८

प० वि०—दध ६।१ तथो ७।७ च अ० ।

अर्थ—[वशो भप् भपन्तस्य स्प्रो] ऋद्ध इति दधाति कृतद्विर्वचनो
निर्दिश्यते ऋद्ध इत्येतस्य भपन्तस्य वश स्थाने भप् आदेशो भवति
तकारथकारयो परतश्चकारात् स्प्रोश्च परत । (दध जो भपन्त उसक वश
क स्थान में भप आदेश होता है तकार थकार क परे रहने पर धोर चकार
से स् धोर ध्व के परे रहने पर)

उदा०—धत्त । धत्थ । धत्से । धद्धम् ।

सि०—धा लट् । धा तस् । धा श्लु तस् । धा तस् । धा धा तस ।
ध धा तस् । द धा तस् । दध् तस । धध् तस् । धत्तस । धत्त । धध
धास् । धध् से । धत्से । धद्धम् । धव् ध्वे । धध् ध्वम् । धद्ध्वम् ।

भला जशोऽन्ते ८।२।३९

प० वि०—भनाम् ६।३ जश १।३ अन्ते ७।१

अर्थ—पदस्य भना जश आदेशा भवन्ति पदस्यान्ते । (पदान्त
भनो का जश् होता है)

उदा०—वागत्र । श्लिङ्गत्र । अग्निचिदत्र ।

सि०—वाक् अत्र । वाग् अत्र । वागत्र ।

भपस्तथोद्धोऽध ८।२।४०

प० वि०—भप् ५।१ तथो ६।२ ध १।१ अध ५।१

अर्थ—भप उत्तरयोस्तकारथकारयो स्थाने धकारादेशो भवति ।
दधाति वर्जयित्वा । (भपन्त धातु के पश्चात् त् धोर ध के स्थान में ध्
आदेश होता है, धा धातु को नहीं हाता है)

उदा०—लब्धा । लब्धुम् । लब्ध्वम् । अलब्ध । अलब्धा । दुह ।
दोग्धा । दोग्धुम् । दोग्ध्वम् । अदुग्ध । अदुग्धा । लिह । लेढा । लेढुम् ।

१—ह्रस्वा० ग० (६ १ ६६) २—एवावा० (८ २ ३७) ३—भना०
(८ २ ३६) ४—दश्च (८ ३ ७५) ५—रो रि (८ ३ १४) ६—ड्राप०
(६ ३ १०६)

लेद्व्यम् । अलीढ । अलीढाः । वुघ । वोद्धा । वोद्धुम् । वोद्व्यम् ।
अबुद । अबुद्धा । अघ इति क्रिप् । घचः । घत्यः ।

सि०—लभ् वृच् । लभ् वृ । लभ् धृ । लब्धु मु । लब्ध् अनङ् स् ।
लब्धन् स् । लब्धान् स् । लब्धान् । लब्धा । लब्धारी । लब्धारः ।
अलब्ध । लभ् लुङ् । लभ् त । लभ् सिच् त । लभ् स् त । लभ् त । लभ्
त । लभ् घ । लब्ध । अट् लब्ध । अलब्ध । अलीढ । लिङ् लुङ् । लिङ्
सिच् त । लिङ् त । लिङ् व । लिङ् घ । लिङ् ढ । लिङ् । लीढ ।
अट् लीढ । अलीढ ।

पढो. कः सि ८।२।४१

प० वि०—पढोः ६।२ क. १।१ सि ७।१ स०—यश्च ढश्चेति पढो
तयो. पढो. ।

अर्थ—पकारढकारयोः ककारादेशो भवति सकारे परत ।

(प और ढ के स्थान में क् आदेश होता है सकार के रहन पर)

उदा—पकारस्य—विप्—वेद्यति । अवेद्यत् । विविक्षति । ढका-
रस्य—लिङ्—लेद्यति । अलेद्यत् । लिलिक्षति । सीति किम्—पिनाष्टि ।

सि०—विप् । विप् लुङ् । विप् तिप् । विप् स्य ति । वेप् स्य ति ।
वेक् स्य ति । वेक् स्य ति । वेक्षति । विप् लुङ् । अवेक्षन् । विप् सन् ।
विप् विप् स । वि विप् स । वि विक् स । विविक्प शप् तिप् ।
विविक्षति ।

रदाभ्या निष्ठातो नः पूर्वस्य च द. ८।२।४२

प० वि०—रदाभ्याम् ५।२ निष्ठात. ६।१ न. १।१ पूर्वस्य ६।१ च
अ० । द. ६।१ स०—यश्च ढश्चेति रदो ताभ्याम् रदाभ्याम् । निष्ठायाः
तकारः निष्ठान् तस्म निष्ठात ।

अथ—रेफढकारभ्यामुत्तरस्य निष्ठातकारस्य नकार आदेशो भवति
पूर्वस्य च ढकारस्य । (रेफ और ढकार के पश्चात् निष्ठा के तकार के स्थान में
नकार आदेश होता है और पूर्व ढकार के स्थान में भी (नकार) आदेश होता है)

उदा०—रेफान्तात्—आस्तीर्णम् । विस्तीर्णम् । गिरीर्णम् । निगी-
र्णम् । अवगृर्णम् । ढकारात्—भिन्नः, भिन्नान् । द्विन्नः, द्विन्नान् । स्त-
क्त । स्त त । स्तिर् त । स्तीर् त । स्तीर् न । स्तीर्ण । आ स्तीर्ण ।
आस्तीर्णम् । आस्तीर्णम् । अम् । आस्तीर्णम् । ण्वं सर्वत्र । शृ । गृ ।
भिदिर् । द्विदिर् ।

संयोगादेरातो धातोर्यण्वत्. ८।२।४३

प० वि०—संयोगादेः ५।१ आतः ५।१ धातोः ५।१ यण्वत्: ५।१
स०—संयोगः आदिर्द्यस्मात् सः संयोगादि. तस्मात् संयोगादेः ।

अर्थ—[निष्ठातः नः] संयोगादिर्यो धातुराकारान्तो यण्वान् तस्मा-
दुत्तरस्य निष्ठातकारस्य नकारादेशो भवति । (संयोगादि जो धातु भाका-
रान्त गए वाला ऐसे के पश्चात् निष्ठा के तकार के स्थान में नकार प्रादेश
होता है)

उदा०—प्रद्राणः । प्रद्राण्वान् । ग्लानः । ग्लानवान् ।

सि०—द्रा कुत्सायां गतौ । द्रा क्त । द्रा न । प्रद्रा न । प्रद्राण सु ।
प्रद्राणः । ग्लौ ग्लौ । हर्षक्षये । ग्ला क्त । ग्ला न । ग्लान सु । ग्लानः ।

त्वादिभ्य ८।२।४४

अर्थ—[निष्ठातः नः] त्वादिभ्यरुत्तरस्य निष्ठातकारस्य स्थाने नका-
रादेशो भवति । (सूज् इत्यादि धातुप्रो के पश्चात् निष्ठा के तकार के स्थान
में नकार प्रादेश होता है)

उदा०—लूनः । लूनवान् । धूनः । धूनवान् । जीनः । जीनवान् ।

सि०—ज्या क्त । ज् इ आ त । जि त । जीन सु । जीनः ।

ओदितश्च ८।२।५०

अर्थ—[निष्ठातः नः] ओकारेतो धातोरुत्तरस्य निष्ठातकारस्य
नकारादेशो भवति । (ओकार इव वाले धातु के पश्चात् निष्ठा के तकार के
स्थान में नकार प्रादेश होता है)

उदा०—ओलस्जी । लग्नः, लग्नवान् । ओविजी । उद्विग्नः, उद्वि-
ग्नवान् । ऋत्वादय ओदितः ऋ पूङ् । सूनः । सूनवान् । दूङ् । दूनः ।
दूनवान् । दीङ् । दीनः । दीनवान् । डीङ् । डीनः । डीनवान् । धीङ् ।
धीनः । धीनवान् । मीङ् । मीनः । मीनवान् ।

शुपः कः ८।२।५१

अर्थ—[निष्ठातः] शुप शोपणे इत्यस्माद्धातोरुत्तरस्य निष्ठातका-
रस्य स्थाने फकारादेश भवति । (शुप् धातु के पश्चात् निष्ठा के तकार के
स्थान में नकार प्रादेश होता है)

उदा०—शुफ्रः । शुफ्रवान् ।

पचो व. ८।२।१२

अर्थ—[निष्ठातः] पचोर्धातोर्लुत्तरस्य निष्ठातकारस्य वकारादेशो भवति । (पच् धातु के पश्चात् निष्ठा के तकार के स्थान में वकार आदेश होता है)

उदा०—पक्वः । पम्बान् ।

क्षायो म ८।२।१३

अर्थ—[निष्ठातः] क्षै जै पै क्षये इत्यस्माद् धातोर्लुत्तरस्य निष्ठातकारस्य स्थाने मकारादेशो भवति । (क्षै धातु के पश्चात् निष्ठा के स्थान में मकार आदेश होता है)

उदा०—क्षाम । क्षामयान् ।

सि०—क्षै । क्षा क्त । क्षाम सु । क्षाम ।

क्विन्प्रत्ययस्य कु ८।२।१४

प० वि०—क्विन्प्रत्ययस्य ६।१ कु १।१ स०—क्विन् प्रत्ययो यस्माद् धातोः स क्विन्प्रत्ययः तस्य क्विन्प्रत्ययस्य ।

अर्थ—क्विन् प्रत्ययस्य पदस्य क्वर्गादेशो भवति ।

(क्विन् प्रत्यय का विधान किया गया है किम धातु स उस पद को क्वर्ग आदेश होता है)

उदा०—घृतस्पृक् । जलस्पृक् ।

नशेर्वा ८।२।१५

प० वि०—नशे ६।१ वा अ० ।

अर्थ—[कुः] नशे पदस्य वा क्वर्गादेशो भवति ।

(नश् पद का विकल्प करके क्वर्ग आदेश होता है)

उदा०—जीवस्य नाशो जीवनक् । जीवनट् ।

मि०—जीव नश् क्विप् । जीवनक् । जीवनप् । जीवनप् सु । जीवनप् । जीवनट् । जीवनट् । जीवनट् ।

मो नो धातो. ८।२।१६

प० वि०—मः ६।१ नः १।१ धातो. ६।१

अर्थ—मकारान्तस्य धातोः पदस्य नकारादेशो भवति ।

(मकारान्त धातु पद का नकार आदेश होता है)

उदा०—प्रनान् । प्रशान् । साधनं तु अनुनासिकस्य० (६।१।१५) इत्यत्र

द्रष्टव्यम् ।

म्बोश्च ८।२।६५

प० वि०—म्बोः ङर च अ० ।

अर्थ—[मो नो घातोः] मकारे चकारे च परतः मकारान्तस्य घातो-
र्नकारादेशो भवति । (मकार और नकार के परे रहने पर मकारान्त घातु को
नकार भादेश होता है)

उदा०—क्षमुप् । चक्षण्वहे । चक्षण्वहे ।

सि०—क्षम् लिट् । क्षम् वहि । क्षम् घहे । क्षम् क्षम् घहे । च क्षम्
घहे । चक्षण्वहे । चक्षण्वहे ।

ससजुपो रुः ८।२।६६

प० वि०—ससजुपः ६।१ रुः १।१ स—सरश्च सजुप् चेति ससजुप्
तस्य ससजुपः ।

अर्थ—[पदस्य] सकारान्तस्य पदस्य सजुप् इत्येतस्य च रुर्भवति ।
(पदान्त सकार और सजुप् शब्द के पकार के स्थान में रु आदेश होता है)

उदा०—सकारस्य-अग्निरत्र । वायुरत्र । सजुपः । सजुर्ष्टपिभिः ।

सि०—अग्निस् अत्र । अग्निरु अत्र । अग्निरत्र । सजुप् ऋपिभिः ।
सजुरु ऋपिभिः । सजुरु ऋपिभिः । सजुर्ष्टपिभिः ।

अहन् ८।२।६८

अर्थ—[रुः] अहन् इत्येतस्य पदस्य रुर्भवति । (अहन् पद को रु
होता है)

उदा०—अहोभ्याम् । अहोभिः ।

सि०—अहन् भ्याम् । अहरु भ्याम् । अहरु भ्याम् । अह उ भ्याम् ।
अहोभ्याम् ।

रोऽमुपि ८।२।६९

प० वि०—रुः १।१ अमुपि ङर

अर्थ—[अहन्] अहन् इत्येतस्य रेफादेशो भवति अमुपि परतः ।
(अमुर् के परे रहने पर अहन् पद को रेफ आदेश होता है)

उदा०—अहर्द्वाति । अहर्मुर्द्वते ।

वसुस्रमुध्वस्वनडुहा दः ८।२।७२

प० वि०—वसु-भ-मु-ध्व-मु-अनडुहाम् ६।३ दः १।१

अर्थ—[सप्तजुषो रु इत्यत्र स इति दर्शते] वन्वन्तस्य पदस्य सकारान्तस्य सप्तं ध्वमुअनहु इत्येतेषां च इकारान्तो भवति ।

(वन्वन्त पद उदाहरण, धनु, ध्वनु और अनहु क स्थान में इकार आदेश होता है)

उदा०—वमु—विद्वामि । नमु—अन्वामाद्व्याम् । ध्वमु—परि-
ध्वद्व्याम् । अनहुह—अनहुद्व्याम् ।

निप्यनन्ते पाठः ८३

प० नि०—तिपि ७१ अनन्ते ६१

अर्थ—[सः पदस्य ट्] तिपि परत सकारान्तस्य पदस्य अनन्ते-
कार आदेशो भवति । (जिन् क पर रहन पर अस्ति का आठवर
सकारान्त पद का ट्कार आदेश होता है)

उदा०—अचकाद्भवान् । अन्वशाद्भवान् ।

मि०—चरात् शीघ्रौ । चकाम् लप् । चकाम तिप् । चकास् ति ।
चकास् शप् ति । चकाम् न् । चरास् । अट् चकाम् । अचकास् ।
अचकाद् ।

मिपि घातान्वा पाठः ८४

प० वि०—मिपि ७१ घातो ६१ रु ११/ वा अ० ।

अर्थ—[स पदस्य ट्] मिपि परत सकारान्तस्य पदस्य घातो रु
इत्ययमादेशो भवति इकारो वा । (मिपि क पर रहन पर सकारान्त पद जो
घातु उभय स्थान में ह आदेश होता है और इकार भी)

उदा०—अचरात्त्वम् । अचकात्त्वम् । अन्वशात्त्वम् । अन्वशा-
त्त्वम् ।

सि०—अचराम् । अचकार् । अचरार् । अचका । अचका त्वम् ।
अचरात्त्वम् । अचकास् । अचराद् त्वम् । अचकात्त्वम् ।

दश्च पाठः ८५

अर्थ—[सिपि रु घातो वा ट्] इकारान्तस्य घातो पदस्य सिपि
परतो रुभ्ररति इकारो वा । (इकारान्त घातु जो पद उसको रु होता है
और विवल्प म इकार भी सिप् के परे रहन पर)

उदा०—अजर्वा । साधन तु एनाचो वशो भप् इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

वोरूपधाया. दीर्घ इकः ८।२।७६

प० वि०—वोः ६।२ उपधायाः ६।१ दीर्घः १।१ इकः ६।१

स०—रश्च वश्च इति वोँ तयोः वोँ ।

अर्थ—रेफान्तस्य वकारान्तस्य च धातोः पदस्य उपधाया इको दीर्घो भवति । (रेफान्त और वकारान्त जो धातु पद उसकी उपधा इक् को दीर्घ होता है)

उदा०—गीः । गिरी । गिरः । पूः । पुरी । पुरः ।

सि०—गिर् सु । गिर् । गीर् । गीः ।

हलि च ७।२।७७

अर्थ—[वोँ धातोः उपधाया इक दीर्घः] हलि च परतः रेफान्तान्तयोः धातोरुपधाया इको दीर्घो भवति । (हल् के परे रहने पर रेफान्त और वकारान्त धातु की उपधा जो इक् उसको दीर्घ होता है)

उदा०—आस्तीर्णम् । विस्तीर्णम् । विशीर्णम् ।

सि०—रदाभ्यामित्यत्र दृष्टव्यम् ।

उपधाया च ८।२।७८

अर्थ—[धातोः हलि वोरूपधायाः दीर्घः इक] हलि परतो या धातोरुपधा तस्यां यी रेफवकारो तयोरुपधाया इको दीर्घो भवति ।

(हल् के परे रहने पर जो धातु की उपधा में रेफ और वकार उसकी उपधा के इक् को दीर्घ होता है)

उदा०—हुर्छा । हुर्छ् तृच् । हूर्छिता । मुर्छा । मूर्छिता ।

न भकुर्धु राम् ८।२।७९

अर्थ—रेफस्य वकारान्तस्य च अस्य कुर् छुर् इत्येतयोश्च दीर्घो न भवति । (रेफ और वकारान्त जो न और कुर् छुर् उनको दीर्घ नहीं होता है)

उदा०—धुरं वहति धुर्य् । दिव्यम् । कुर् । कुर्यात् । छुर्यात् ।

ॐ हलि चेति दीर्घत्वे प्राप्ते प्रतिषेधोऽयमारभ्यते ॐ

अदसोऽपेदाद्दु दो म ८।२।८०

प० वि०—अदसः ६।१ असेः ६।१ दान् ५।१ उ । अयिम० । दः ६।१ मः १।१

अर्थ—असकारान्तस्य अदसो दादुत्तरस्य चवर्णादेशो भवति टकारस्य च मकार । (असकारान्त जो अदम् शब्द उसके दवार के पदवात् चवर्ण

आदेश होता है और दवार के स्थान में मकार आदेश होता है)

उदा०—पु सि-असी । अमू । अमी । अमुम् । अमू । अमून ।
अमुना । अमूभ्याम् । अमीभिः । अमुष्यै । अमूभ्याम् । अमीभ्यः ।
अमुष्मात् । अमूभ्याम् । अमीभ्यः । अमुष्य । अमुयो । अमीपाम् ।
अमुष्मिन् । अमुयो । अमीषु ।

तपु सके—अदः । अमू । अमूनि । अद । अमू । अमूनि । अन्य-
त्सर्व पुल्लिङ्गवत् ।

स्त्रीलिङ्गे—असौ । अमू । अमू । अमूम् । अमु । अमू । अमूया ।
अमूभ्याम् । अमूभिः । अमुष्यै । अमूभ्याम् । अमूभ्यः । अमुष्या ।
अमूभ्याम् । अमूभ्यः । अमुष्या । अमुयो । अमूपाम् । अमुष्याम् ।
अमुयो । अमूषु ।

सि०—असी, अदस् औ सुतोपरच इत्यत्र द्रष्टव्यम् । अदस् औ ।
अद अ औ । अद औ । अमु औ । अमू । अदम् जस् । अद अ अस् ।
अद अस् । अद शी । अद ई । अदे । अमी । अदस् अम् । अद अ
अम् । अद अम । अमु अम् । अमुम् । अमू । अमून । अदस् रास् ।
अद रास् । अमु अस् । अमूस् । अमून । अदस् दा । अद दा । अमु
ना । अमुना । अदस् भ्याम् । अद भ्याम् । अदा भ्याम् । अमूभ्याम् ।
अदस् भिस् । अद भिस् । अदे भिस् । अमीभिः । अदस् डे । अदस्
अ डे । अद डे । अमु डे । अमु स्मे । अमुष्यै । कृपूर्वेनासिद्धम् इति
असिद्धत्वात् अदन्तत्वादेव स्मैभावः कः अमीपाम् । अदस् आम । अद
आम् । अद सुट आम । अदे साम् । अमीपाम् । अदस् मु । अदस्
अदस् । अदर । अद । अमू । अदम् जस् । अदस् शि । अद इ ।
अद नुम् इ । अदन् इ । अदानि । अमूनि । अमुया । अदस् दा । अद
आ । अदे आ । अदया । अमुया । एव सर्व सर्वत्रैव सूत्रपूर्वमाचेष्ट-
व्यम् ।

एत ईद् बहुवचने ८।२।८१

प० वि०—एत ६।१ ईन् १।१ बहुवचने ७।१

अर्थ—[अदसोऽमेदादु दो म] अदसो दकारादुत्तरस्य एकारस्य
ईकारादेशो भवति दकारस्य च मकार बहुवचने नूनामर्थानामुक्तौ ।
(असकारान्त अदस् के दकार क पदवात एकार के स्थान में ईकार आदेश
होता है और दकार के स्थान में मकार आदेश होता है बहुवचन में)

सि०—वृत्तस् छादयति । वृत्तरु छादयति । वृत्तर् छादयति ।
वृत्तः छादयति । वृत्तम् छादयति । वृत्तश् छादयति । वृत्तश्छादयति ।
राम सु । राम स् । राम रु । राम र् । रामः ।

रोः मुपि ८।३।१६

प० वि०—रोः ६।१ मुपि ७।१

अर्थ—[रः विसर्जनीयः] रु इत्येतस्य रेफस्य मुपि परतो विसर्जनी-
यादेशो भवति । (र के रेफ के स्थान में विसर्जनीय प्रादेश होना है
मुप के पर रहने पर)

उदा०—ऋमुसीति सप्तमीरुवचनं गृह्यते । पयस्मु । सर्पिःपु । यशः
सु । ऋसिद्धे सति आरम्भो नियमार्थं रोरेव मुपि विसर्जनीयादेशो
नान्यस्य गीर्णु, धूर्णु ।

भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि ८।३।१७

प० वि०—भो-भगो-अघो-अपूर्वस्य ६।१ यः ६।१ अशि ७।१

स०—भोरश्च भगोश्च अघोश्च अश्चेति भोभगोअघोआः । भोभगो-
अघोआः पूर्वाः यस्य स भोभगोअघोअपूर्वः, तस्य ।

अकारस्य च पूर्वरूपं न भवति स्वल्पनिर्देशपरतान्ते

अर्थ—[रो रः] भो भगो अघो इत्येवं पूर्वस्य अर्णपूर्वस्य च
रोरेफस्य यकारादेशो भवति अशि परतः ।

(भो भगो अघो ओर अवर्ण पूर्वक जो र उसके रेफ के स्थान में यकार
प्रादेश होता है यस् के पर रहने पर)

उदा०—भो अत्र । भगो अत्र । अघो अत्र । भो ददाति । भगो द-
दाति । अघो ददाति । अर्णपूर्वस्य क आस्ते । यस् आस्ते । प्राग्रणा
ददाति । पुरुषा ददाति ।

सि०—भोस् अत्र । भोरु अत्र । भोर् अत्र । भोय् अत्र । भो
ददाति । भोम् ददाति । भोरु ददाति । भोर् ददाति । भोय् ददाति ।
भो ददाति ।

व्योर्लघु प्रयत्नतर. शाकटायनस्य ८।३।१८

प० वि०—व्योः ६।२ लघुप्रयत्नतर १।१ शाकटायनस्य ६।१ स०—

एश्च यश्चेति व्यो तयोः व्योः । लघु प्रयत्नो यस्य स लघुप्रयत्नः ।
एतिरायेन लघुप्रयत्नो लघुप्रयत्नतर. लघुप्रयत्नतरत्वम् ग्यानं तादादि-
एरत्तं जिहामनादि तयोरुच्चारणे शैथिल्यम्, मन्द प्रयत्नता

उदा०—अमी । अमीभिः । अमीभ्य अमीपाम् । अमीपु ।

तयोर्वावचि [सहितायाम्] ८।२।१०८

अर्थ—सहितायाम् आ अध्यायपरिसमाप्तेरधिकार (अध्याय की परिसमाप्ति तक अधिकार है)

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकायामष्टमाध्याये द्वितीय पादः

ढो ढे लोप ८।३।१३

प० रि०—ढ ६।१ ढे ७।१ लोप १ । ८

अर्थ—ढकारस्य ढकारे लोपो भवति ।

(ढकार के परे रहन पर ढकार का लोप होता है)

उदा०—लीढम् । उपगूढम् । साधन ढलोपा० (६ ३, १०६) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

रो रि ८।३।१४

प० वि०—र ६।१ रि ७।१

अर्थ—[लोप] रेफस्य रेफे परतो लोपो भवति । (रेफ का रेफ के परे रहन पर लोप होता है)

उदा०—नीरक्तम् । दूरक्तम् । अग्नी रथ । इन्द्र रथ । पुनारक्त यास । ऋषदस्य इत्यस्य विशेषणे पठ्ठी तेन पदस्य अवयवस्य यो रेफस्तस्य रेफे परतो लोपो भवतीति अपदान्तस्यापि लोपो विज्ञायते तेन अजर्घा अपात्वा इति सर्वं सिध्यतिः

सि०—निर् रक्तम् । नि रक्तम् । नीरक्तम् । अजर्घा । एकाचो वशो भप् इत्यादौ सूत्रे इदं व्युत्पादितम् । स्पर्द्ध यङ् । स्पर्द्ध स्पर्द्ध य । प स्पर्द्ध य । पा स्पर्द्ध य । पास्पर्द्ध लङ् । पास्पर्द्ध सिप् । पास्पर्द्ध स् । पास्पर्द्ध शप् स् । पास्पर्द्ध स् । पास्पर्द्ध । पास्पर्द्ध । पास्पर्द्ध । पास्पर्द्ध । पास्पर्द्ध । पास्पर्द्ध । अट् पात्वा । अपात्वा ।

खरवसानयोर्विसर्जनीय ८।३।१५

प० वि०—खरवसानयो ७।२ विसर्जनीय १।१ स०—खर् च अवसान चेति खरवसाने तयो खरवसानयो ।

अर्थ—[र पदस्य] रेफान्तस्य पदस्य खरि परतोऽवसाने च विसर्जनीयादेशो भवति । (पदान्त रफ का विसर्जनीय आदेश होता है खर् के परे रहने पर और अवसान में)

उदा०—वृक्षश्छादयति । प्लक्षश्छादयति । अवसाने—राम । पुरष ।

सि०—वृत्तस् छादयति । वृत्तरु छादयति । वृत्तर् छादयति ।
वृत्तः छादयति । वृत्तम् छादयति । वृत्तश् छादयति । वृत्तरु छादयति ।
राम सु । राम म् । राम रु । राम र् । रामः ।

रो. सुपि ८।३।१६

प० रि०—रो' ६।१ सुपि ७।१

अर्थ—[रः विसर्जनीय] रु इत्येतस्य रेफस्य सुपि परतो विसर्जनी-
यादेशो भवति । (र के रेफ के स्थान में विसर्जनीय आदेश होना है
सुप् के परे रहने पर)

उदा०—ऋमुपीति सप्तमीरुवचनं श्रुते । पयम् । मर्षिषु । यश
सु । ऋसिद्वे सति आरम्भो नियमार्य रोरेव सुपि विसर्जनीयादेशो
नान्यस्य गीर्ण, घूर्ण ।

भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽग्नि ८।३।१७

प० वि०—भो-भगो-अघो-अपूर्वस्य ६।१ य ६।१ अग्नि ७।१
स०—भोग्य भगोश्च अघोश्च अरचेति भोभगोअघोआ । भोभगो-
अघोआ पूर्णं यस्य स भोभगोअघोअपूर्व, तस्य ।

अत्रात्म्य च पूर्वरूपं न भवति स्वरूपनिर्देशपरत्वान्

अर्थ—[रो र'] भो भगो अघो इत्येवं पूर्वरूप अर्णपूर्वस्य च
रोरेफस्य यकारादेशो भवति अग्नि परत ।

(भा भगो प्रपा घोर घरणं पूर्वक जो रु उमरे रफ व स्थान में यकार
आदेश होना है घस के परे रहने पर)

उदा०—भो अत्र । भगो अत्र । अघो अत्र । भो ददाति । भगो द-
दाति । अघो ददाति । अर्णपूर्वस्य च आत्ने । फ्य् आत्ने । प्राद्वणा
ददति । पुण्या ददति ।

सि०—भोम् अत्र । भोरु अत्र । भोर् अत्र । भोय् अत्र । भो
ददाति । भोम् ददाति । भोरु ददाति । भोर् ददाति । भोय् ददाति ।
भो ददाति ।

व्योर्लघुप्रयत्नतर श्रावटायनस्य ८।३।१८

प० रि०—व्यो ६।१ लघुप्रयत्नतर १।१ श्रावटायनस्य ६।१ स०—
एश्च यरचेति व्यो तयो व्यो । लघु प्रयत्नो यस्य स लघुप्रयत्न ।
७तिशयेन लघुप्रयत्नो लघुप्रयत्नतर लघुप्रयत्नतरश्चमन्थान तात्प-
र्यत जित्वात्मनादि तयोरुन्सारणे शैथिल्यम्, मन्द प्रयत्नता

इत्यर्थे ॥

अर्थ—[अशि^१] वकारयकारयो पदान्तयोर्लघुप्रयत्नतर आदेशो भवति अशि परत. शाकटायनाचार्यस्य मतेन । (पदान्त में जो यकार और वकार उसको लघुप्रयत्नतर आदेश होता है अश् के परे रहने पर शाकटायनाचार्य के मत से)

उदा०—भोयत्र । भगोयत्र । अधोयत्र । कय् आस्ते । अस्मायत्र प्रसादादित्य । द्वावत्र ।

सि०—भोस् अत्र । भोरु अत्र । मोर् अत्र । भोय् अत्र । ॥शाकटायनग्रहण विकल्पार्थम्॥

लोप शाकल्यस्य ८।३।१६

अर्थ—[व्यो अशि^२] वकारयकारयो पदान्तयोरवर्णपूर्वयोर्लोपो भवति शाकल्यस्य आचार्यस्य मतेन अशि परत । (अवर्णपूर्वक पदान्त यकार और वकार का लोप होता है शाकल्यचार्य के मत से अश् के परे रहने पर)

उदा०—क^३ आस्ते । कय् आस्ते । काक आस्ते । काकय् आस्ते । अस्मा उद्धर । अस्माय् उद्धर । द्वा अत्र । द्वाव् अत्र । ॥शाकल्यग्रहण विकल्पार्थम्॥

ओतो गार्ग्यस्य ८।३।२०

प० वि०—ओत ५।१ गार्ग्यस्य ६।१

अर्थ—[व्यो लोप अशि] ओकारादुत्तरस्य यकारस्य^४ लोपो भवति गार्ग्यस्य आचार्यस्य मतेन अशि परत ।

(ओकार के पश्चात् यकार का लोप होता है गार्ग्य आचार्य के मत से अश के परे रहने पर)

उदा०—॥गार्ग्यग्रहण पूजार्थम्॥ भो अत्र । भगो अत्र । अधो अत्र । ॥अत्रेष्ट वोप्यम्—योऽय लघुप्रयत्नस्य लोप शाकल्यस्य इति सूत्रेण विकल्पेन लोपो विधीयते सोऽनेन निवर्त्यते, नित्यलोपाथोऽयमा-

१ अत्र काशिकाकार 'भोभगोअधोअपूर्वस्य' इत्यनुवर्तयति, तदनावश्यकम् ।

२ अत्र काशिकाकार 'अपूर्वस्य' इत्यनुवर्तयति, तदनावश्यकम् । ओकारान्तेषु भो भगो अधो प्रभृतिषु उत्तरसूत्रेण नित्यलोपविधानात् ।

३. व्योऽनुवृत्तावपि ओकारान्तपरस्य वकारस्यासम्भवात् वृत्तो न सवद्व्यते ।

रम्भ इत्यर्थः॥

(जो लघु प्रत्यन्तर आदेश नहीं हुआ है, उस पक्ष में उसका तोड़ 'लोपः' शाक्यस्य, इस मूत्र से विकल्प से कहा है, लेकिन ओंकार के पश्चात् नित्य लोप हो, इसलिये इस मूत्र का आरम्भ किया गया है। अतः ओं अत्र महा पर ओंतो गार्ग्यस्य से यकार का लोप होता है और जिस पक्ष में लघुप्रत्यन्तर होता है, वहा ओय् अत्र उदाहरण बनता है)

हलि सर्वेषाम् ८।३।२२

५० वि०—हलि ७।१ सर्वेषाम् ६।३

अर्थ—[भाभगोअघोअपूर्वस्य पदान्तस्य यः पदस्य लोप] हलि परतो भाभगोअघोअपूर्वस्य पदान्तस्य यकारस्य लोपो भवति सर्वेषामाचार्याणां मतेन। (हल् के परे रहने पर ओ, अघो अघो और अवर्णपूर्वक पदान्त यकार का लोप होता है सभी भाचार्यों के मत से)

उदा०—ओ इमति। भगो इमति। अघो हसति। घृत्वा इमन्ति। ॥ सर्वेषां इत्यस्य ग्रहणं शाकटायनस्यापि लोपो यथा म्यात्, लघुप्रत्यन्तरों मा भूदिति॥

मोऽनुस्वार ८।३।२३

५० वि०—मः ६।१ अनुस्वारः १।१

अर्थ—[पदस्य हलि] पदान्तस्य मकारस्य अनुस्वार आदेशो भवति हलि परतः। (पदान्त मकार का अनुस्वार आदेश होता है, हल् के परे रहने पर)

उदा०—कुण्डम् हसति।। कुण्डं हसति। यनम् हसति। यन हसति।

नश्चापदान्तस्य ऋलि ८।३।२४

५० वि०—नः ६।१ च अ०। अपदान्तस्य ६।१ ऋलि ७।१

अर्थ—[मः अनुस्वारः] नकारस्य मकारस्य चापदान्तस्यानुस्वारदेशो भवति ऋलि परतः। (अपदान्त मकार और नकार का अनुस्वार होता है ऋल् के परे रहने पर)

उदा०—पयांसि। यशांसि। मकारस्य—गस्यते। गंस्यते। गंस्यन्ते।

सि०—पयम् जम्। पयस् अम्। पयाम् शि। पया नुम् म् इ। पयान्म् इ। पयांसि। गम्। कर्मणि। गम् लट्। गम् ल। गम् ते। गम् स्य ते। गंस्यते।

मो राजि सम क्वौ ८।२।२५

प० वि०—म ६।१ राजि ७।१ सम ६।१ क्वौ ७।१

अर्थ—[म] समो मकारस्य मकार आदेशो भवति राजतौ क्विप्प्र
त्ययान्ते परत । (क्विप्प्र प्रत्यया त राज् दीप्तो धातु के पर रहन पर सम् के
मकार के स्थान में मकार ही आदेश होता है)

उदा०—सम् राट् । सम्राट् । साधन व्रश्चभ्रस्तेति सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

डमो ह्रस्वादचि डमुणित्यम् ८।३।३२

प० वि०—डम ५।१ ह्रस्वात् ५।१ अचि ७।१ डमुट् १।१ नित्यम् १।१

अर्थ—ह्रस्वात्परो यो डम् तदन्तात्पदादुत्तरस्याचो डमुडागमो भवति
नित्यम् । (ह्रस्व के पश्चात् जो डम् तदन्त पद के पश्चात् अच को नित्य
डमुट का आगम होता है)

उदा०—ऋङ्गणेभ्यो यथासरथ ऋणना भवन्ति ऋङ्गारान्तान्
हुट् । प्रत्यङ् आस्ते । प्रत्यङ् आस्ते । एकारान्तात्पदात् । वण् आस्ते ।
वण् आस्ते । नकारान्तान्नुट् । कुर्यन् आस्ते । कुर्यन् आस्ते ।

विसर्गसत्त्वप्रकरणम्—

विसर्जनीयस्य स ८।३।३४

प० वि०—विसर्जनीयस्य ६।१ स १।१

अर्थ—[खरि] विसर्जनीयस्य सकारादेशो भवन्ति खरि परत ।

(खर के परे रहन पर विसर्जनीय को सकार आदेश होता है)

उदा०—वृक्षश्चादयति । प्लक्षश्चादयति । वृक्षप्लक्षार । प्लक्षप्ल
क्षार । वृक्षश्चिनोति । प्लक्षश्चिनोति ।

सि०—साधन तु स्तो र्चुना र्चु , ण्डुना ण्डु इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

शर्परे विसर्जनीय ८।३।३५

प० वि०—शर्परे ७।१ विसर्जनीय १।१ स०—शर् परो यस्मात् स
शर्पर तस्मिन् शर्परे ।

अर्थ—[खरि] शर्परे खरि परतो विसर्जनीयस्य विसर्जनीयादेशो
भवति । (शर् पर है विसर्ग एष खर के पर रहन पर विसर्जनीय के स्थान में

१—नित्यशब्दोऽत्र प्रायोवाची नित्यप्रहसितो नित्यप्रज्वलित (महामाध्वे
पस्पशाह्निके) इति यथा तन नवचिन्नापि भवति यथा अगुदितसवणस्य
चाप्रत्यय ।

विसर्जनीय आदेश होता है)

उदा०—शशाः क्षरम् । पुरुषः क्पुषम् (क्षरम्) । अद्भिः प्सातम् ।

वा शरि ८।३।३६

प० वि०—वा अ० । शरि ७।१

अर्थ—[विसर्जनीयस्य विमर्जनीयः] विसर्जनीयस्य विसर्जनीयादेशो वा भवति शरि परतः । (शर् के परे रहने पर विमर्जनीय के स्थान में विकल्प से विसर्जनीय आदेश होता है)

उदा०—वृक्षः शेते । वृक्षशेते । वृक्ष साये । वृक्षम्साये ।

× खपरे शरि वा लोपां वक्तव्य × वृक्षा स्थातार* । वृक्षाः स्थातारः । वृक्षास्थातारः ।

कुप्वो ॐकॐ पौ च ८।३।३७

प० वि०—कुप्वोः ७।२ ॐकॐ पौ १।२ च अ० ।

स०—कुप्च पुरचेति कुप् तयोः कुप्वो ।

अर्थ—[विमर्जनीयस्य] स्वर्गे पत्रगे च परतो विसर्जनीयस्य यथा-मस्य ॐ (जिह्वामूलीय.) ॐ (उपध्मानीय) इत्येतायादेशौ भवतः, चकारादिविसर्जनीयश्च ।

(स्वर्गं शीर पत्रगं के परे रहने पर विमर्जनीय का समश्च ॐ (जिह्वामूलीय) ॐ (उपध्मानीय) आदेश होता है और चकार से विसर्जनीय भी)

उदा०—वृक्ष ॐ करोति । वृक्ष करोति । वृक्ष ॐ स्वनति । वृक्षः

१—इमो जिह्वामूलीयोपध्मानीयो अयोगवाट्पु परिगणितो तैत्तिरीय-प्रातिशाख्यस्य परे षड्ध्माणः (१।१८) सूत्रानुसारं पुरा षड्ध्माणां आसन् तेषां च तमः जिह्वामूलीयश्च प. स उपध्मानीयश्चकार इत्येवमासीत् । तेषां पञ्च यथाक्रमं षड्वर्गसमानस्थाना मन्त सस्थाना इत्युच्यन्ते । यथा षड्वर्ग-मस्थाना उच्चा जिह्वामूलीय षड्वर्गमस्थानीय शब्दः । एवमुत्तरत्र । तेन सस्था-नेन द्वितीया इति शिष्टासूत्रस्यायमर्थं वर्गाणां द्वितीयं वर्गा मस्थानेनोष्मणा (तदीयप्रयनेन हुक्ता) भवति । प्रकारेण चतुर्था—वर्गाणां चतुर्थेवर्णां हकारस्योष्मणा युक्ता भवन्ति । अत्र ऋव्रप्रतिशाख्यस्य त्रयोदशपटलस्य षोडश-सप्तदशे सूत्रे तथाऋवटीयं व्याख्यानं चानुगीतनीयम् । ऋव्रप्रतिशाख्ये उत्तरं ष्टा ऋध्माणः (१।१०) सूत्रं षष्टावृध्माणां उक्ता । तेषु विमर्जनीयोऽनुस्वारश्चाधि-वावृक्तो इति मीमांसकाः ।

खनति । वृत्त ऽ पचति । वृत्त पचति । वृत्त ऽ फलति । वृत्त फलति ।

सोऽपदादौ ८।३।३८

प० वि०—स ६।१ अपदादौ ७।१॥

अर्थ—[विसर्जनीयस्य कुप्वो] सकारादेशो भवति विसर्जनीयस्य कुप्वोरपदाद्यो परत । (विसर्जनीय का सकार आदेश होता है अपदादि कवग और पवग के पर रहन पर)

उदा०—ॐ पाशकल्पककाम्येषु ॐ पयस्कल्पम् । पयस्कम् । पयस्का म्यति ।

इण प ८।३।३९

अथ—[अपदादौ विसर्जनीयस्य कुप्वो] इण उत्तरस्य विसर्जनीयस्य पकारादेशो भवति कुप्वोरपदाद्यो परत । (इण के पश्चात् विसर्जनीय का पकारादेश होता है अपदादि कवग और पवग के पर रहन पर)

उदा०—ॐ पाशकल्पककाम्येषु ॐ पाश—शर्पिष्पाशम् । यजुष्पाशम् । कल्प—सर्पिष्कल्पम् । यजुष्कल्पम् । क—सर्पिष्कम् । यजुष्कम् । काम्य—सर्पिष्काम्यति । यजुष्काम्यति । अपदादाविति किम्—अग्नि करोति । वायु करोति । अग्नि पचति । वायु पचति ।

इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य ८।३।४१

प० वि०—इदुदुपधस्य ६।१ च अ० । अप्रत्ययस्य ६।१

स०—इक्ष उर्चति इदुतौ । इदुतौ उपधा यस्य तद् इदुदुपधम् तस्य इदुदुपधस्य । न प्रत्यय अप्रत्यय तस्य अप्रत्ययस्य ।

अर्थ—[विसर्जनीयस्य प कुप्वो] इकारोपधस्य उकारोपधस्य च अप्रत्ययस्य विसर्जनीयस्य पकारादेशो भवति कुप्वो परत ।

(इकार और उकार उपधा वाले प्रत्यय भिन्न विसर्जनीय का पकार आदेश होता है कवग और पवग के पर रहन पर)

उदा०—ॐ निर्वुर्वाहिराविश्चतुर्रादुस् ॐ निस् । निष्कृतम् । निष्पीतम् । दुस् । दुष्कृतम् । दुष्पीतम् । बहिस्—बहिष्कृतम् । बहिष्पीतम् । आविस्—आविष्कृतम् । आविष्पीतम् । चतुस्—चतुष्कृतम् । चतुष्पीतम् । प्रादुस्—प्रादुष्कृतम् । प्रादुष्पीतम् । अप्रत्ययस्येति किम्—अग्नि करोति । वायु करोति । अग्नि पचति । वायु पचति ।

तिरसोजन्यतरस्याम् ८।३।४२

द्विस्त्रिश्चतुरिति कृबोर्थे ८।३।४३

स०—द्विश्च त्रिश्च चतुश्च द्विस्त्रिचतु । कृबस अर्थ कृत्वोऽर्थ तस्मिन् कृत्वोऽर्थ ।

अर्थ—[विसर्जनीयस्य प कुप्पो अन्यतरस्याम्] द्विस् त्रिस् चतुर् इत्येतेषां कृत्वोऽर्थे उर्चमानानां विसर्जनीयस्य पकार आदेशो भवति अन्यतरस्याम् कुप्पो परत ।

(द्विम् त्रिस् चतुर् इनके इतरसुच् के अथ म वतमान होन पर विसर्जनीय का पकार आदेश हाता है विकल्प करक कवग और पवग के प पर रहन पर)

उदा—द्वि करोति । द्विप्करोति । त्रि करोति । त्रिप्करोति । चतु करोति । चतुप्करोति । द्वि पचति । द्विप्पचति । त्रि पचति । त्रिप्पचति । चतु पचति । चतुप्पचति ।

इमुमा सामर्थ्ये ८।३।४४

अर्थ—[विसर्जनीयस्य अन्यतरस्या प कुप्पो] इस् त्रिस् इत्यतयोर्विसर्जनीयस्यान्यतरस्या पकारान्तेणो भवति सामर्थ्ये कुप्पो परत ।

(इन और उन क विसर्जनीय का विकल्प म पकार आदेश हाता है सम्बन्धित कवग और पवग व पर रहन पर)

उदा—सर्पि करोति । सर्पिप्करोति । सामर्थ्य इति किम्—तत्तु सर्पि पिबतु उत्कम क इत्यत्र सर्पि इत्येतस्य पिबतु इत्यनेन सह सम्बन्धो नास्ति क

मन्ताया मूढन्यप्रकरणम्—

अपदान्तस्य मूढन्य ८।३।५५

अर्थ—आ पाठपरिसमाप्ते अपदान्तस्य मूढन्यादेशो भवति इत्यधिकारो वेदितव्य । (पाठ की परिसमाप्ति तक अपदांत का मूढन्य आदेश होता है, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

सहे साड म ८।३।५६

प० वि०—सहे ६।१ साड ६।१ स ६।१

अर्थ—सहेर्धातो साड्पस्य सकारस्य मूढन्यादेशो भवति ।

(सह् धातु का जा बना हुआ साड् यह रूप उत्तक सकार क स्थान में मूढन्य आदेश होता है)

उदा०—जलापाट् ।

सि०—जलं सहते इति विग्रह । जल अम् सह णि० । जल सह् । जलसाह् । जलसाढ् । जलसाड् । जलासाह् । जलासाढ् । जलासाड् । जलापाह् । जलापाढ् । जलापाड् ।

इणको ८।३।५७

प० वि०—इणको ५।१ स०—इण् च कुरचेति इण्कु वस्मात् इणको । (समा० द्वन्द्व) ।

अर्थ—इतोऽप्रे आ पादपरिसमाप्ते वक्ष्यमाणानि कार्याणि इरु वर्गाभ्या उत्तरस्यभवन्ति इत्यधिकारो वेदितव्य ।

(यहा से पाद की समाप्ति तक कह जान वाले काय इण और ववग के पश्चात् होते हैं इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

नुम्बिसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ८।३।५८

प० रि०—नुम्बिसर्जनीयशर्व्यवाय ७।१ अपि अ० ।

स०—नुम् च विसर्जनीयश्च शर्चेति नुम्बिसर्जनीयशर् । नुम्बिसर्जनीयशर्भि व्यवाय नुम्बिसर्जनीयश र्यवाय तस्मिन् ।

अर्थ—[इणको अपान्तस्य स मद्धन्य] व्यववायरा प्रयक्त मभिसम्बध्यते नुम्ब्यवायेऽपि विसर्जनीयव्यवायेऽपि शर्व्यवायेऽपि इणकोरुत्तरस्य सकारस्य मद्धन्यान्देशो भवति ।

(नुम् विसर्जनीय और शर् के द्वारा व्यवधान रहन पर भी इण और ववग क पश्चात् प्रपदान्त सकार के स्थान में मद्धन्य आदेश होता है)

उदा०—नुमा—सर्पीपि यजुपि । विसर्जनीयेन—सर्पिपु । यजुपु । शरा—सर्पिष्पु । यजुष्पु ।

सि०—सर्पिस । सर्पिस् जस । सर्पिस् शि । सर्पिस ड । सर्पि नुम् स इ । सर्पिन्स् ड । सर्पिन्ति । सर्पीपि । सर्पिपु । सर्पिस्तु । सर्पिष्पु । सर्पिष्पु ।

ॐ नुमादिभि प्रत्येक व्यवाये पत्रमिष्यते न समस्तै ॐ

(नुम् इत्यादि केवल एक के ही व्यवधान रहन पर पत्र होता है यदि इसमें से कोई दो या तीन का एक साथ मिलकर व्यवधान हो तो पत्र नहीं होगा)

१—प्रायेण समाहारद्व द्वौ नपु सफलिकौ भवति । सूत्रकारवचनप्रामाण्यात् पु लिङ्गोऽपि द्रष्टव्य । एव युवोरनाको (७।१।१) इत्यत्रापि ज्ञेयम्

आदेशप्रत्यययो ८।३।५६

५० नि०—आदेशप्रत्यययोः ६।० स०—आदेशश्च प्रत्ययरचेति आदेश-
प्रत्ययो तयो आदेशप्रत्यययो ।

अर्थ—[म इत्को मूर्द्धन्य.] इत्यन्तागाम्यामुत्तरस्य आदेशो य
सकार. प्रत्ययस्य च य. सकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति ।

(इण् घोर ववग क पदवान् आदेश जा सकार घोर प्रत्यय का जा सकार
उभवा मूर्द्धन्य आदेश होता है)

उदा०—आदेशस्य—सिपेत् । मुष्याप् । प्रत्ययस्य—अग्निपु ।
यायुपु ।

सि०—पिपु । पिप् । सिप् । लिट् । सिप् । लृत् । सिन् । एल् । सिन्
अ । सिन् । सिन् । अ । सि । मिन् । अ । सि । सेव । सि । पेत् । सिपिपु ।
सिपिपु । अग्नि मुप् । अग्नि मु । अग्निपु ।

शासिबसिघसीना च ८।३।६०

५० नि०—शासि-उसि-उमीनाम् ६।३ च अ० । स०—शासिश्च
बसिश्च घसिश्चेति शासिउमिघसय तेषाम् शासिउमिउमीनाम् ।

अर्थ—[इत्को म मूर्द्धन्य] शासि बसि घसि इत्येतेषां च इत्को-
रुत्तरस्य सकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति ।

(इण् घोर ववग क पदवान् शाम् वल् घोर वम क मकार का मूर्द्धन्य
आदेश होता है)

उदा०—शामि । अन्यशिपन् । अन्यशिपताम् । अन्यशिपन् ।
शिप् । शिष्टवान् । वसि । उपित । उपितवान् । उपित्वा । पमि ।
जक्षतु । जक्षु ।

सि०—शामु । शाम् । शाम् । लुट् । शाम् । लृत् । शाम् । निप् । शाम्
अट् । ति । शिम् । अ । ति । शिप् । अ । त । शिपा । अट् । शिपन् । अशिपन् ।
अनु । अशिपत् । अन्यशिपन् । वम । निवामे । वम् । क्त । वम् । त । उ । अ
म् । त । उप् । इट् । त । उपित । मु । उपित । जक्षतु । गमदनेति सूत्रे
उपेक्ष्यम् ।

इण् पीध्वलुट् लिट् घोऽद्वात् ८।३।७८

५० नि०—इण् ५।१ पीध्वलुट् लिट् ६।३ घ ६।१ अद्वात् ५।१

अर्थ—[मूर्द्धन्य] इत्यन्ताद्वात्तुत्तरेषां पीध्वलुट् लिट् यो घकार-

स्तस्य स्थाने मूर्द्धन्यादेशो भवति । (इणन्त मङ्ग के पश्चात् पीध्वम्, लुङ् और लिट् का जो धकार उसके स्थान में मूर्द्धन्य आदेश होता है)

उदा०—च्योपीढ्वम् । प्लोपीढ्वम् । लुङ्-अच्योढ्वम् । अप्लो-
ढ्वम् । लिट्-चकृढ्वे ॥

सि०—च्युङ् । च्यु लिङ् । च्यु ल् । च्यु ध्वम् । च्यु सीयुद् ध्वम् ।
च्यु सीय् ध्वम् । च्यो सी ध्वम् । च्योपीढ्वम् ।

विभाषेतः ८।३।७६

प० वि०—विभाषा १।१ इटः ५।१

अर्थ—[इण पीध्वंलुङ्लिटाम् घ मूर्द्धन्यः] इण. परस्मादितः
उत्तरप्रां पीध्वलुङ्लिटं यो धकारस्तस्य स्थाने मूर्द्धन्य आदेशो भवति ।
(इण के पश्चात् जो इट् उसके पश्चात् पीध्व, लुङ् और लिट् के धकार
के स्थान में मूर्द्धन्य आदेश विकल्प से होता है)

उदा०—लविपीढ्वम् । लविपीध्वम् । लुङ्-अलविध्वम् । अल-
विढ्वम्—लिट्-लुलुविढ्वे । लुलुविध्वे ।

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकायामष्टमाध्याये तृतीय. पाद.

सहिताया सत्वप्रकरणम्—

रपाभ्या नो एण समानपदे ८।४।१

प० वि०—रपाभ्याम् ५।२ नः ६।१ एणः १।१ समानपदे ७।१ स०—
समानं च तत्पदं चेति समानपदं (कर्म०) तस्मिन् समानपदे । एरच
पश्चेति रपौ ताभ्याम् रपाभ्याम् ।

अर्थ—समानम् एकम् इति अनर्थान्तरम् । रेफपकाराभ्यामुत्तरस्य
नकारस्य एकारादेशो भवति एकस्मिन् पदे । ऋसमानपदस्थौ चेन्निमि-
त्तनिमित्तिनौ भवतः ऋः । (एक पद में स्थित रेफ और पकारके पश्चात् नकार
के स्थान में एकार आदेश होता है) ऋरेफ और पकार तथा न एकपद में रहना
चाहिए अर्थात् कार्य और कारण एक ही पद में होना चाहिए) ऋः

उदा०—आस्तीर्णम् । विस्तीर्णम् । पकारात्-कुप्णाति । पुप्णाति ।
× ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम् × मातराणाम् । पितराणाम् ।

सि०—आस्तीर्णम् । संयोगादेरातो घातोर्बर्बतः इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।
पृश्ना ति । कुप्णाति ।

प्राणिदाने इत्येतयोर्ग्रहणम् ।

गद नद पत पद धु मा स्यति याति वाति द्राति प्साति वपति वहति शाम्यति चिनोति देग्धि इत्येतेषु परतः उपसर्गस्थाभ्यां रेफपकाराभ्यामुत्तरस्य नेर्नकारस्य एकारादेशो भवति । (उपसर्ग में स्थित रेफ ग्रीर पकार के पश्चात् नि के नकार के स्थान में एकारादेश होता है गदादि के परे रहने पर)

उदा०—प्रणिगदति । परिणिगदति । प्रणिनदति । प्रणिपतति । प्रणिपणते । प्रणिददाति । प्रणिदधाति । भाङ् । प्रणिमिमीते । मेङ् । प्रणिमयते । प्रणिप्यति । प्रणिहन्ति । प्रणियाति । प्रणिवाति । प्रणिद्राति । प्रणिप्साति । प्रणिवपति । प्रणिवहति । प्रणिशाम्यति । प्रणिचिणोति । प्रणिदेग्धि ।

उपसर्गदिनोत्पर । ८।४।२७

कृत्यच्. ८।४।२६

प० वि०—कृति ७।१ अच ५।१

अर्थ—[उपसर्गात् रपाभ्याम् नो ए] अच उत्तरस्य कृत्स्थस्य नकारस्य उपसर्गस्थाभ्यां रेफपकाराभ्यामुत्तरस्य एकारादेशो भवति ।

(उपसर्ग में स्थित रेफ ग्रीर पकार के पश्चात् जो अच् ग्रीर उस अच् के पश्चात् जो कृत में स्थित नकार उस नकार के स्थान में एकार आदेश होता है)

उदा०—अन मान अनीय अनि इनि निष्ठादेशा एते एत्व प्रयोजयन्ति । अन—प्रयाणम् । परियाणम् । प्रमाणम् । परिमाणम् । प्रयायमाणम् । प्रयाणीयम् । अप्रयाणि । इनि—प्रयायिणी । निष्ठादेशः—प्रहीण । प्रहीणवान् ।

सि०—प्र या यक् शानच् । प्रयायमाणम् ।

[न] भाभूपूकमिगमिप्यायीवेपाम् ८।४।३३

पात्पदान्तात् ८।४।३५

प० वि०—पात् ५।१ पदान्तात् ५।१

अर्थ—[नो ए न] पकारात् पदान्तादुत्तरस्य नकारस्य एकारादेशो न भवति । (पदान्त पकार के पश्चात् नकार के स्थान में एकारादेश नहीं)

। अयमेव मूलपाठ । अनोत्पर स्थान बहुसम् इति पाठस्तु भाष्यकार-कल्पितः । काशिकादिषु च स एव स्वीकृत ।

हावा है)

उदा०—निष्पानम् । दुष्पानम् ।

नशे पान्तस्य ८।४।३६

अर्थ—[न] पकारान्तस्य नशे एकारादेशो न भवति ।

(पकारान्त नश का एकारादेश नहीं होता है)

उदा०—प्रनष्ट । परिनष्ट । पान्तस्यति किम्—प्रणश्यति ।

पदान्तस्य ८।४।३७

अर्थ—[न] पदान्तस्य नकारस्य एकारादेशो न भवति ।

(पदान्त नकार का एकारादेश नहीं होता है)

उदा०—वृक्षान् । प्लक्षान् ।

संहिताकायप्रकरणम्—

स्तो श्चुना श्चु ८।४।४०

प० रि०—स्तो ६।१ श्चुना ३।१ श्चु १।१ स०—शरच तुरचेति

स्तु तस्य स्तो । (समा० द्वन्द्व १) शरच चुरचेति श्चु तेन श्चुना ।

अर्थ—सकारतवर्गयोः शकारतवर्गाभ्यां योगे शकारतवर्गो आदेशो भवति । (सकार और चवर्ग के योग में सकार और तवर्ग के स्थान में शकार और चवर्ग आदेश होता है)

उदा०—ऋषयासरस्य नेप्यतेऋ वृक्षम् शेते । वृक्षशेते । प्लक्षशेते । प्लक्षश्चेते । प्लक्षश्चिनोति । वृक्षश्चिनोति । प्लक्षश्चिनोति । प्लक्षश्चिनोति । प्लक्षश्चादयति । वृक्षश्चादयति । प्लक्षश्चादयति । प्लक्षश्चादयति । अग्निचित् शेते । अग्निचित् शेते । अग्निचित् शेते । सोममुच्छेदे । अग्निचित् छादयति । अग्निचित् छादयति । सोममुच्छेदयति । अग्निचित् जयति । अग्निचित् जयति । सोममुज्जयति ।

पुना प्ठु ८।४।४१

प० वि०—पुना ३।१ प्ठु १।१ स०—परच तुरचेति प्ठु तेन पुना ।

अर्थ—[स्तो] सकारतवर्गयोः पकारतवर्गाभ्यां योगे पकारतवर्गो आदेशो भवति । (पकार तवर्ग के योग में सकार और तवर्ग के स्थान में पकार

और टवर्ग आदेश होता है)

उदा०—वृक्षस् पण्डे । वृक्षण्ण्डे । वृक्षस् टीकते । वृक्ष्ण्टीकते ।
पेष्टा । पेष्टुम् । पेष्टव्यम् । कृषीष्ट । कृषीष्ठाः । अग्निचित् टीकते ।
अग्निचिट्टीकते ।

सि०—पिप्प्लु वृच् । पेष्टा ।

• न पदान्ताट्टोरनाम् ८।४।४२

प० वि०—न अ० । पदान्तान् ५।१ टोः ५।१ अनाम् (लुप्तपष्ठी०)

अर्थ—पदान्ताट् टवर्गाद् उत्तरस्य स्तोः ण्डुत्वं न भवति नाम्
इत्येतद् वर्जयित्वा । (पदान्त टवर्ग के पश्चात् सकार और तवर्ग का पकार
और टवर्ग नहीं होता है नाम् को छोड़कर)

उदा०—मधुलिट् साये । मधुलिट् तरति । ×अनाम्नवतिनगरी-
णाम् इति वाच्यम् × पण्णाम् । पण्णयति । पण्णगरी ।

तोः पिः ८।४।४३

अर्थ—[न] तवर्गस्य पकारे यदुक्तं तन्न भवति । (तवर्ग का पकार के
परे रहने पर जो कुछ कहा गया है सो नहीं होता है)

उदा०—अग्निचित् पण्डे । भवान् पण्डे ।

शात् ८।४।४४

अर्थ—[न तो.] शकारादुत्तरस्य तवर्गस्य यदुक्तं तन्न भवति । (शकार
के पश्चात् तवर्ग के स्थान में जो कुछ कहा गया है सो नहीं होता है)

उदा०—प्रश्नः । विश्नः ।

यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ८।४।४६

प० वि०—यः ६।१ अनुनासिके ७।१ अनुनासिकः १।१ वा
अ० ।

अर्थ—[पदान्तस्य] पदान्तस्य यरोऽनुनासिके परतो वा अनुना-
सिकादेशो भवति । (पदान्त यर् का अनुनासिक आदेश विवक्ष्य से होना
है अनुनासिक के परे रहने पर)

उदा०—वाङ्मनयति । वाङ्मनयति । श्वलिङ्मनयति । श्वलिङ्मनयति ।
अग्निचिङ्मनयति । अग्निचिङ्मनयति ।

अचो रहाभ्या द्वे ८।४।८६

प० वि०—अच १।१ रहाभ्याम् १।२ द्वे १।२ स०—रश्च हश्च इति रहो ताभ्या रहाभ्याम् ।

अर्थ—[चा यर] अच उत्तरो यो रफहकारो ताभ्यामुत्तरस्य यरो द्वे भवत । (अच क उत्तर जा रफ और हकार उसक पश्चात् यर का विकल्प स द्विव हाता है)

उदा०—अक । अर्क । मर्क । मरुर्क । ब्रह्मा । ग्रन्था ।

अनचि च ८।४।४७

प० वि०—अनचि ७।१ च अ० । स०—न अच् इति अनच् तस्मिन् अनचि ।

अर्थ—[अच यर वा द्वे] अच उत्तरस्य यरा वा द्वे भवत न तु अचि । (अच के पश्चात् यर का विकल्प स द्विव हाता है अच पर रहन पर नहीं)

उदा०—दयि अत्र । दधय अत्र । दध्वयत्र । दध्वा । दध्यत्र ।

भला जश्भशि ८।४।५३

प० वि०—भलाम् ६।३ जश् १।१ भशि ७।१

अर्थ—भला स्थाने भशि परत जश् आदेशो भवति । (भल क स्थान म भश के परे रहन जश् आदेश हाता है)

उदा०—ल-गा । लन्धुम् । लन्ध्वम् ।

सि०—साधन तु भयस्तथार्वाऽध इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

अभ्यास चर्च ८।४।५४

प० वि०—अभ्यासे ७।१ चर् १।१ च अ० ।

अर्थ—[भलाम्] अभ्यासे वर्तमानाना भला चरादेशो भवति चरादेशश्च । (अभ्यास में वर्तमान भल क स्थान म चर् आदेश हाता है और चकार स जश् भी)

उदा०—X प्रवृत्तिचरा प्रवृत्तिचरो भवन्ति । प्रवृत्तिजशा प्रवृत्तिजशो भवन्ति X चिचिपति । जिज्जनिपति ।

खरि च ८।४।५५

अर्थ—[भलाम् चर्] खरि च परतो भला चरादेशो भवति । (खर् के पर रहन पर भल क स्थान म चर आदेश हाता है)

उदा०—भेत्ता । भेत्तुम् । भेत्तव्यम् ।

वावसाने ८।४।५६

प० वि०—वा अ० । अवसाने ७।१

अर्थ—[मलां चर्] अवसाने वर्त्तमानानां मलां वा चर् आदेशो भवति । (अवसान में मल का विकल्प से चर् आदेश होता है)

उदा०—वाच् । वाक् । वाग् । वाक् ।

अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिकः ८।४।५७

प० वि०—अणः ६।१ अप्रगृह्यस्य ६।१ अनुनासिकः १।१

अर्थ—[अवसाने वा] अप्रगृह्यस्य अणो वावसाने अनुनासिकादेशो भवति । (अप्रगृह्य अणु का अवसान में विकल्प से अनुनासिक आदेश होता है)

उदा०—दधि । दधिं । मधु । मधुं ।

अनुस्वारस्य ययि परसवर्णं ८।४।५८

अर्थ—अनुस्वारस्य ययि परतः परसवर्णादेशो भवति । (अनुस्वार का यम् के परे रहने पर परसवर्ण आदेश होता है)

उदा०—नन्दिता । नन्दितुम् । नन्दितव्यम् । शङ्किता । शङ्कितुम् । शङ्कितव्यम् ।

सि०—दुनदि । नद् । न नुम् द् । नन्द् । नद् । नन्द् वृच् । नन्द् इट् वृ । नन्दिता । शकि । शक् । श नुम् क् । शन्क् । शंक् । शङ्क् वृच् । शङ्क् इट् वृ । शङ्कित् । शङ्किता । शङ्कितारौ ।

वा पदान्तस्य ८।४।५९

प० वि०—वा० अ० । पदान्तस्य ६।१ ।

स०—पदस्य अन्तः पदान्तः तस्य पदान्तस्य ।

अर्थ—[अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः] पदान्तस्यानुस्वारस्य ययि परतो वा परसवर्णादेशो भवति । (पदान्त अनुस्वार का यम् के परे रहने पर विकल्प से परसवर्ण आदेश होता है)

उदा०—तं कथं चित् । तङ्कथञ्चित् ।

तोलि ८।४।६०

प० वि०—तोः ६।१ लि ७।१

अर्थ—[परसवर्णः] तवर्गस्य लकारे परतः परसवर्णादेशो भवति ।

(लकार के परे रहने पर तवर्ग का परसवर्ण आदेश होता है)

उदा०—अग्निचित् लुनाति । अग्निचिल्लुनाति । भवान् लुनाति । भवाँल्लुनाति ।

उद. स्थास्तम्भोः पूर्वस्य ८।४।६१

प० वि०—उदः ५।१ स्थास्तम्भोः ६।२ पूर्वस्य ६।१

अर्थ—[सनर्णः] उद उत्तरयोः स्थास्तम्भ इत्येतयोः पूर्वसवर्णादेशो भवति । (उद् के पश्चात् स्था और स्तम्भ का पूर्वसवर्ण आदेश होता है)

उदा०—उत्थ्याता । उत्थ्यातुम् । उत्थ्यातव्यम् । उत्थाता । उत्थातुम् । उत्थातव्यम् । स्तम्भेः । उत्तम्भिता । उत्तम्भितुम् । उत्तम्भितव्यम् ।

सि०—उन् स्थाता । उन्त्थ्याता । उत्थाता । ॐ अत्राचोपस्य महाप्राणस्य सस्य तादृशः एव थकारः तस्य ऋरो ऋरि सवर्णे इति पाचिको लोपः लोपाभावपक्षे तु थकारस्यैव श्रवणं भवति । न तु खरि च इति चर्त्यम् । चर्त्यम्प्रति थकारभ्यासिद्धत्वान् ॐ

भयो होऽन्यतरस्याम् ८।४।६२

प० वि०—भयः ५।१ हः ६।१ अन्यतरस्याम् अ० ।

अर्थ—[पूर्वस्य सवर्णः] भय उत्तरस्य हकारस्य पूर्वसनर्णादेशो भवति अन्यतरस्याम् ।

(भय के पश्चात् हकार का विकल्प से पूर्वसवर्ण आदेश होता है)

उदा०—याग् हसति । याग्वसति । ॐ घोपवतो नाववतो महाप्राणस्य हस्य तादृशो वर्गचतुर्थ एवादेशः ।

शश्छोऽटि ८।४।६३

प० वि०—शः ६।१ छः १।१ अटि ७।१

अर्थ—[भय अन्यतरस्याम्] भय उत्तरस्य शकारस्य अटि परतश्छकारादेशो भवत्यन्यतरस्याम् । (भय के पश्चात् शकार के स्थान में विकल्प से छकार आदेश होता है अट् के परे रहने पर)

उदा०—अग्निचित् शेते । अग्निचिच् शेते । अग्निचिच्छेते ।
× छत्वममीति वक्तव्यम् × तच्छ्लोकेन ।

[हलो] यमा यमि लोपः ८।४।६४

ऋरो ऋरि सवर्णे ८।४।६५

प० वि०—ऋः ६।१ ऋरि ७।१ सवर्णे ७।१

अर्थ—[हलः अन्यतरस्याम्] हल उत्तरस्य सवर्णे, भरि परतो मरो लापो भवति अन्यतरस्याम् । (हल् के पश्चात् सवर्णं भरू के परे रहने पर भरू का विकल्प से लोप होता है)

उदा०—उत्थाता । उत्थातुम् । उत्थातव्यम् । उत्थ्याता । उत्थ्यातुम् । उत्थ्यातव्यम् ।

उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित ८।४।६६

प० वि०—उदात्तात् ५।१ अनुदात्तस्य ६।१ स्वरित. १।१

अर्थ—उदात्तात्परस्य अनुदात्तस्य स्वरितो भवति ।

(उदात्त क पश्चात् अनुदात्त का स्वरित होता है)

उदा०—क॒र्त्तव्य॑म् । प॒च॑ति, प॒ठ॑ति, चि॒की॒र्ष॑ति । भ॒ह्र॒रन् भा॒सु॒रम् ।
कौ॒ञ्जा॒यना । ना॒डा॒यन । चि॒की॒र्ष॑म् जि॒ही॒र्ष॑म् । चि॒की॒र्ष॑क जि॒ही॒
र्ष॑क । राज॒पुरु॑ष ।

सि०—क॒ । कृ॒ तव्य॑ । कृ॒ तव्य॑ । क॒र्त्तव्य॑ । क॒र्त्तव्य॑ । क॒र्त्तव्य॑
सु । क॒र्त्तव्य॑ अ॒म् । क॒र्त्तव्य॑म् । प॒च॑ । प॒च् शप् तिप् । प॒च अ॒
ति॑ । प॒च॑ति॑ । प॒च॑नि॑ । प॒च॑ति॑ । भास् । भास् पुरच् ।

१—भूवादयो धातव (१. ३. १) धातोरित्यन्तोदात्त (६. १. १५६)

२—प्रत्यय, परस्व, आद्युदात्तश्चेति (३. १. ३) प्रत्ययस्वरेण आद्युदात्त ।

३—धातुस्वर प्रत्ययस्वरो वा भवन् इति विचारणायां सति शिष्टे स्वरो

बलीयान् इति परिभाषया प्रत्ययस्वरो भवति । उदात्तस्य किमपि चिह्नं नास्ति ।

इति कृते, अनुदात्त पदमववर्जम् (६. १. १५२) इति घनन परिशिष्यमाणी

ककारोत्तरात्तरवर्तिनोरकारयोरनुदात्त कर्त्तव्य । चिह्नमपि यदुदात्त तदनुदा-

त्तस्य । ४—उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित (८. ४. ६५) इति यकारोत्तरवर्तिन

यकारस्य स्वरितत्वम् । कथं व्यञ्जनस्य व्यवधानं स्वरो न भवति इति

तदुच्यते—स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवदिति वचनात् ५—अनुदात्तो

मुष्पिनी (३. १. ४) ६—स्वरितोदात्तयारेकादेशे स्थानन्तरतम (१।१।४६)

इत्यनन उभयमवविशिष्ट स्वरिता भवति । ७—अनुदात्तो मुष्पिनी

(३. १. ३) ८—धातुस्वर एव भवति । ९—उदात्तादनुदात्तस्य

स्वरित, (८. ४. ६५) स्वरितात्सहितायामनुदात्तानाम् (१. २. ३६) इति एष-

श्रुति, एषश्रुतेरपि उदात्तवत् किमपि चिह्नं नास्ति । यदि एषश्रुते किमपि

चिह्नं नास्ति तदा कथं ज्ञापेत क उदात्त वा ण्यश्रुति, तदुच्यते—स्वरितात्

परस्य एषश्रुतिरेव भवति न तु उदात्त इति नियम साधारणतया ज्ञातव्य ।

भासुरम्^१ । कुञ्ज^२ । कुञ्ज चकम् । कुञ्ज आयन^३ । कौञ्जायन ।
 नड^४ । नड फक् । नड आयन^५ । नडायायन । ५ । ५ मन् ।
 चिकीर्ष^६ । चिकीर्ष यन्^७ । चिकीर्ष्यम् । चिकीर्ष अक । चिरी
 र्षक^८ । चिकीर्षक । राजपुरुष ।

अ अ ८।८।६८

प० त्रि०—अ अ० । अ अ० ।

अर्थ—अकारो विवृत सवृत्तो भवति । (विवृत प्रकार सवृत्त हाता है)

ॐ एकोऽऽ विवृतोऽपर मवृत्तस्तत्र त्रिवृत्तस्य सवृत्त क्रियते । सवृत्त
 स्वरकार इति शिवासूत्रेण अकारस्य सवृत्तप्रथमत्वं मुस्तम् स्त्रीर्न आकार
 प्लुतश्च विवृतकरणाश्चरा इत्यनेन विवृतप्रथमत्वं । तयो ह्रस्वनीर्षयो
 प्रथमभेदान् सवर्णसंज्ञा न प्राप्नोति तत अ इ उ ए सूत्रे कार्यार्थमकारो
 विवृत प्रतिज्ञातस्तस्य तथाभूतस्यैव प्रयोगो मा भूद् इति सवृत्तप्रत्यापत्ति-
 रिय क्रियते ॐ

उदा०—वृत्त । प्लुत्त ।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणज्ञमहावैयाकरणपण्डितब्रह्मवत्ता-

चार्याणामन्तेवासिना देवप्रकाशपातञ्जलेन विर-

चितायामष्टाध्यायी-प्रकाशिकायाम्

अष्टमाध्याय चतुर्थ पाद

इति अष्टमोऽध्याय

१—चित (६ १ १२६) २—किपोन्त उदात्त (फिन् सूत्रम् १) ३—
 तद्धितस्य (६ १ १५८) ४—चित (६ १ १५६) ५—जित्यादिनि-
 त्यम् (६ १. १६१) ६—तित्स्वरितम् (६ १ १७६) ७—लिति (६ १
 १८०) साधन न पदान्तेति० (१ १ ५७) सूत्रे द्रष्टव्यम् ८—समासस्य
 (६. १. २१७)

नामप्रकरणम्

(अजन्तपुल्लिङ्गा)

१—कृत^१ एव पुरुषादयोऽप्यदन्ता । २—सर्व^२, सर्वौ^३, सर्वे^४ । एव
विश्वाद्योऽप्यदन्ता ॥ ३—उमशब्दो नित्य द्विवचनान्त । उभौ २ ।
उभाभ्याम् ३ । उभया ॥ उभयशब्दस्य द्विवचन नास्ति । उभय —
उभय । उभयम्—उभयान् । उभयेन—उभयै । उभयस्मै—उभयेभ्य । उभ-
यस्मात् उभयेभ्य । उभयस्य उभयेषाम् । उभयस्मिन्—उभयेषु ॥ ४—
विश्वपा, हे विश्वपा, विश्वपौ, विश्वपा, विश्वपाम्, विश्वपौ,
विश्वप^५ ॥ ५—मुनि^६, मुनी, मुनय एव ऋष्यादय ॥ साधु, साधू,
साधव एव भान्वादय ॥ ६—सखि^७—सखा, सखायौ, सखाय ॥
पति^८—पति, पती, पतय ॥ ७—कति^९—कति, कतिभि, कतिभ्य २
कतीनाम्, कतिषु ॥ कतिशब्दो नित्य बहुवचनान्त ॥ ८—त्रि—
त्रय । त्रीन । त्रिभि । त्रिभ्य २ । त्रयाणाम्^{१०} । त्रिषु ॥ द्वौ २ ।
द्वाभ्याम् ३ । द्वयो २ ॥ ९—ग्रामणी । ग्रामणी । ग्रामण्य^{११} ॥ १०—
पितृ^{१२}—पिता, पितरौ, पितर ॥ ११—घातृ—घाता । घातारौ^{१३} ।
घातार । हे घात ॥ १२—नर । नरी । नर । नृणाम्—नृणाम्^{१४} ॥
१३—गो^{१५}—गौ । गावौ । गव । गाम् । गावौ । गा^{१६} ॥ १४—
रा^{१७} । रायौ । राय ।

(अजन्तस्त्रीलिङ्गा)

१५—रमा^{१८}—रमा । रमे । रमा । लताद्योऽप्यादन्ता । १५—सर्वा ।

१—निष्ठा (३ २ १०२) कृतवद् रामशब्दस्य स्थाणि । २—अदसतो
ति (७. १. २०) ३—घातो घातो (६ ४. १४०) ४—उणादयो बहुलम्
(३ ३ १) साधुक्त साधनम् ५—सस्युरसम्बुद्धौ (७. १ ९२) स्वरपात्परस्य
६—स्वरपात्परस्य (६ १ १०८) ७—पदस्यो लुक् (७ १ २२) ८—अत्रय
(७ १ ५३) ९—हरामनद्याम्नीय (७ ३. ११६) १०—ऋदुगन० (७
१. ६४) ११—ऋतो डिस्वनामस्थानयो (७ ३. ११०) १२—प्रप्नुतृच०
(६ ४ ११) १३—नृ च (६ ४ ६) १४—गोतो एित् (७ १ ६०) गोतो
मशसो (६ १. ६०) १४—राया हलि (७. २ ८५) १५—द्व्याप्रातिपदि

सर्वे । सर्वाः । १७—जरा^१ । जरसौ । जरसः । जरा । जरे । जराः ॥
 १८—मतिः^२ ॥ १९—तिस्रः^३ २ तिसृभिः । तिसृभ्यः । तिसृणाम् ।
 तिसृषु ॥ द्वि । द्विऔ । द्व् अ टाप् औ । द्वा औ । द्वा शी । द्वे । द्वे ।
 द्वाभ्याम् ॥ द्वयोः २ ॥ २०—कुमारी^४ ॥ एवं नद्यादयोऽपीदन्ताः ।
 लक्ष्मीः (अङ् यन्तत्वात्तु मुलोप) शेष गौरीवत् ॥ २१—स्त्री^५—स्त्री—
 द्वे स्त्रि । स्त्रियो । स्त्रियः ॥ २२—श्री^६—श्री । श्रियो । श्रियः ॥ २३—
 स्वस्^७—स्वसा । स्वसारो । स्वसारः ॥ मातृ—माता । मातरो । मातरः ।
 मातरम् । मातरो । मातः । शेषस्तु पितृवत् ॥

स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा ।

याता मातेति सप्तैते स्वस्मादय उदाहृताः ॥

(अजन्तनपु सकलिङ्गाः)

२४—फल^८—फल । फले । फलानि । एयं ज्ञानादयोऽप्यदन्ताः ॥
 २५—वारि^९—वारि । वारिणी । वारीणि ॥ दधि^{१०}—अन्य-
 रसयं वारिवत् विशेषस्तु दध्ना । दध्ने । दध्न २ । दध्नोः २ । दधनि^{११}—
 दध्नि । २५—मधु—मधु । मधुनी । मधूनि ॥ २६—मातृ—मातृ ।
 मातृणी । मातृणि ॥

(हलन्तपुल्लिङ्गा)

२७—लिह्^{१२}—लिट्—लिङ् । लिहौ । लिहौ । २८—दुह्—धुक्^{१३}—
 धुग् । दुहौ । दुह ॥ धुभ्याम् ॥ धुत् ॥ २९—अनदुह्^{१४}—अनद्वान् ।
 अनद्वहौ ॥ ३०—दिव्^{१५}—द्वौ । दिवौ । दिवः । ३१—चतुर्^{१६}—
 चत्वारः । चतुरः । चतुर्भिः ॥ चतुर्णाम्—चतुर्णाम् ॥ चतुर्षु ॥

कात् (४. १. १)

१—जराया जरसन्त्यतरस्यम् (७. २. १०१) २—मित्रया
 मित्रम् (३. ३. ६४) ३—त्रिचतुरो स्त्रिया तिसृचतम् (७. २. ६९)

४—इयात्प्रातिपदिकात् (४. १. १) ५—स्त्रिया (६. ४. ७६) ६—
 घञि ङुष्ठात् (६. ४. ७७) ७—अतुन्तुव् (६. ४. ११) ८—मतोऽम्
 (७. १. २४) ९—इकोऽचि विभक्तौ (७. १. ७३) १०—अभ्यिदधि०
 (७. १. ७५) ११—विभाषा द्वयो (६. ४. १३६) १२—हो ङ (८. २. ३१)
 १३—एकाचो० (= २. ३७) १४—चतुरत्तदुत्तरागुदात्त (७. १. ९८)
 १५—दिव भौत् (७. १. ८४)

३२—रिम्^१—रु । की । के ॥ ३३—उदम्—अयम् । इमो । इम ॥ ३४—
 राजन्—राजा । राजानो । राजान । राजानम् । राजानो । राज्ञ^२ ॥
 ३५—यञ्जन्—अन्यत्सर्वं राजन् इतिउत् विशेषस्तु यज्वन । यज्वना ।
 यज्वभ्याम् ॥ ३६—गुणिन्—गुणी^३ । गुणिनी । गुणिन । गुणिनम्
 गुणिनी । गुणिन । गुणिना । गुणिभ्याम् ॥ एव यशस्विनादयोऽपि
 इन्नन्ता ॥ ३७—मघन्^{१*}—मघवा । मघवानो । मघवान ॥ मघवानम् ।
 मघवानो । मघोत ॥ ३८—स्वन्—रजा । रजानो । रवान ॥ युवन्—
 युवा । युवानो । युवान ॥ ३९—पथिन्^४—पन्था । पन्थानो । पन्थान ॥
 ४०—पञ्चन् । पञ्चन्शब्दो नित्य बहुवचनान्त । पञ्च । पञ्च ।
 पञ्चभि । पञ्चभ्य । पञ्चानाम् । पञ्चसु ॥ अष्टन् । अष्ट । अष्ट ।
 इति सर्वं पञ्चवत् ॥ आत्मे कृते तु—अष्टा । अष्टा^५ । अष्टाभि ।
 अष्टानाम् ॥ ४१—ऋत्विग्—ऋत्विग्—ऋत्विक् । ऋत्विजो । ऋत्विज ॥
 युज्^६—युङ् । युज्जो । युज्ज । युज्जम् । युज्जो । युज । युग्भ्याम् ।
 राज्—राट्—राड् । राजो । राज । राजम् । राजो । राज । राजा ।
 राड्भ्याम् ॥ ४२—तद्^७—स । तो । ते ॥ ४३—युष्मद्^८—अस्मद्—
 त्वम् । युवाम् । यूयम् । अहम् । आवाम् । वयम् ॥ ४४—प्राच्^{१*}—
 प्राङ् । प्राञ्चो । प्राञ्च । प्राञ्चम् । प्राञ्चो । प्राच । प्राग्न्याम् ।
 प्रत्यच्—प्रत्यङ् । प्रत्यञ्चो । प्रत्यञ्च । प्रत्यञ्चम् । प्रत्यञ्चो । प्रतीच ।
 उदच्—उदङ् । उदञ्चो । उदञ्च । उदञ्चम् । उदञ्चो । उदीच ।
 उदीचा । उदग्भ्याम् । ४५—महन्^{१*}—महान् । महान्तो । महान्त ।
 महान्तम् । महान्तो । महन् ॥ ह महन् ॥ धीमन्—धीमान् । धीमन्तो ।
 धीमन्त । धीमत । धीमद्भ्याम् । धीमत्सु ॥ हे धीमन् ॥ भजन्—
 भयान्^{१*} । भजन्तो । भवन्त । ४६—ताटश्—ताटश् ताटग् । ताटशो ।
 ताटश । विश्^{१*}—विट्—विङ् । विशो । विश । विङ्भ्याम् विट्सु ॥

१—त्यादादीनामस्य प्रकरणं द्रष्टव्यम् २—मल्लापाज (६.४.१३४) ३—तो
 ष (६.४.१३) ४—इयुवमपानामतद्धिने (६.४.१३३) ५—पयिमपि०
 (७.१.८५) ६—अष्टन् आ विभक्तौ (७.१.८४) ७—युजरगमात् (७.१.७१)
 ८—ततो ग० (७.२.१०६) ९—त्यादादीनामस्य प्रकरणं द्रष्टव्यम् १०—
 उगिदघा० (७.१.७०) घन (६.४.१३७) ११—सातमहत् सपागस्य (६.
 (६.४.१०) १२—मत्वसन्तस्य चापाता (६.४.१४) १३—अदधभ्रस्व० (८

धृतस्पृश्—धृतस्पृक्—धृतस्पृग् । धृतस्पृशी ॥ ४७—यप्—यट्—यङ् ।
 पडिभ ॥ पण्णाम् । पट्सु ॥ ४८—विद्वस्—विद्वान् ॥ विदुपः ॥
 ४९—पु सि^३—पुमान् । पुमांसौ । हे पुमन् ॥ ५०—अदस्—असौ ।
 अम् । अमी ॥

(हलन्तस्त्रीलिङ्गा)

५१—उपानद्^४—उपानत्—उपानद् । उपानहो । उपानहः ॥ ५२—
 दिन् । द्यौः । दिवौ । दिव ॥ द्युम्याम् ॥ ५३—गिर—गी^५ । गिरौ ।
 गिर । ५८—चतस्—चतस्र ॥ ५९—स्मि टा । का । के । वा ॥ ६०—
 इदम्—इयम् ॥ ६१—वाच्—याक् । वाचौ । वाच ॥ ६२—अप्^६ शब्दो
 नित्यं बहुवचनान्तः । आप । अप । अदिभ । अपाम् । अप्सु ॥ ६३—
 दिश्—दिक्—दिग् । दिशी । दिश । दिग्भ्याम् । दिग्भिः ॥ दिशाम् ।
 दिक्षु ॥ ६४—अदस्—असौ । अम । अम् ॥ ६५—आशिप्—आशी ।
 आशिपौ । आशीभ्याम् ॥

(हलन्तनपु सकलिङ्गा)

६६—वार् जलार्थे—वा । वारी । वारि ॥ वाभ्याम् ॥ चतुर^७—
 चत्वारि ॥ शेष पुं वत् ॥ इदम्—इदम् । इमे । इमानि । इदम् । इमे ।
 इमानि । शेष पुं वत् ॥ ६७—तद्—तत् । ते । तानि । एतत् । एते ।
 एतानि ॥ यत् । ये । यानि ॥ ७९—वदत्^८—वदत् । वदति । वदन्ति—
 वदति । तुदत्—तुदत् । तुदन्ती—तुदती । तुदन्ति ॥ पचत्—पचत् ।
 पचन्ती । पचन्ति ॥ दीव्यन्^९—दीव्यन् । दीव्यन्ती । दीव्यन्ति ॥ ७०—
 धनुप्—धनुः । धनुषी । धनूँपि ॥

२. ३६)

१—यह्म्यो लुक् (७ १ २२) २—वसो सम्प्रसारणम् (६ ४
 १३१) ३—पु सोऽमुद् (७ १. ८९) ४—अदसोऽजेर्ददुदो म (८. २ ८०)
 ५—नहो व (८ २. ३४) ६—हति व (८ २. ७७) ७—पपो मि (७
 ४ ४८) ८—चतुरनङुहोराभुदात्त (७ १ ९८) ९—नाभ्यस्तच्छ्रु (७. १.
 ७८) वा नपुंसकस्य (७. १. ७९) १०—सप्स्यनो नित्यम् (७ १. ८१)

आख्यातप्रकरणम्

भू सत्तायाम् (होने में) उदात्तः उदात्तेत्

(शुद्धकर्तृप्रक्रियायाम्)

लटि^१ । लिटि^२ लुटि^३ । लृटि^४ । लेटि^५ लोटि^६ । । लङि^७ ।
लिङि^८ । आशिपि लिङि^९ । लुङि^{१०} । लृङि^{११} ।

(कर्मप्रक्रियायाम्)

लटि—(अस्मर्कः कोऽप्युपसर्गवशात्सकर्मकः) अनुभूयते मुर प्रकाशेन ।
अनुभूयेते । अनुभूयन्ते । त्वमनुभूयसे मया । अहमनुभूये त्वया ।

लिटि—अनुभूवे^{१२} । अनुभूवाते । अनुवभूयिरे । अनुभूयिषे ।
अनुवभूयाथे । अनुभूयिष्वे । अनुवभूविढ्वे^{१३} ।

लुटि—अनुभाविता^{१४} अनुभविता ।

लृटि—अनुभावित्यते-अनुभवित्यते ।

लेटि—अनुभविपते, अनुभविपाते । अनुभविपतै-अनुभविपातै ।
अनुभूयते-अनुभूयाते । अनुभूयतै अनुभूयातै ।

लोटि—अनुभूयताम् । अनुभूयेताम् । अनुभूयन्ताम् । अनुभूयस्व ।
अनुभूयेथाम् । अनुभूयध्वम् । अनुभूयै । अनुभूयाध्वै । अनु-
भूयामहै ।

लङि—अन्वभूयत । अन्वभूयेताम् । अन्वभूयन्त । अन्वभूयथा ।
अन्वभूयेथाम् । अन्वभूयध्वम् । अन्वभूये । अन्वभूयाध्वि । अन्वभूया-
महि ।

त्रिध्यादिलिङि—अनुभूयेत । अनुभूयेयाताम् । अनुभूयेरन् । अनु-

- १—वर्तमान लट् (३. २. १२३) २—परोक्षे लिट् (३. २. ११५) ३—घन-
घतन लुट् (३. ३. १५) ४—लृट् शेष च (३. ३. १३) ५—लिट् शेषे लेट् (३. ४. ७)
६—लोट् च (३. ३. १६०) ७—घनघतन लङ् (३. २. १११) ८—विधिनियम-त्रण०
(३. ३. १६१) ९—आशिपि लिङ् लाटौ (३. ३. १७३) १०—लुङ् (३. २. ११८)
११—त्रिध्नियम-तो० (३. ३. १३६) १२—मुखो बुक् लुङि लटौ (६. ४. ८८)
१३—विनापेट (८. ३. ७६) १४—स्वमिच्छनीपुट् (६. ४. ६२)

भूयेथा । अनुभूयेयाथाम । अनुभूयेध्वम् । अनुभूये । अनुभूयावहि ।
अनुभूयामहि ।

आशिपि लिङि—अनुभाविपीष्ट अनुमरिपीष्ट ।

लुङि—अन्वभावि^१ । अन्वभाविपाताम्—अन्वभविपाताम् । अन्व-
भविपत-अन्वभाविपत । अन्वभविपथा—अन्वभाविपथा । अन्व-
भविपाथाम्—अन्वभाविपाथाम् । अन्वभविध्वम्—अन्वभाविध्वम्^२,
अन्वभविद्धम्—अन्वभाविद्धम् । अन्वभाविपम्—अन्वभविपम् । अन्वभ-
विष्यहि, अन्वभाविष्यहि । अन्वमरिष्यमहि—अन्वभाविष्यमहि ।

अन्वभविष्यत-अन्वभाविष्यत ।

(भावप्रतियायाम्)

अत्र प्रत्ययेन कर्तृरनभिधानात् कर्तृकरणयोस्तृतीया । तत्र भावस्य
युष्मदस्मदर्थोऽपि शेष्यत्वात् प्रथमपुरुष एवात्र व्याख्याने, स्वतः क्रियाया
निवृत्तभेदाया अभिधानादेक्यचनमेव भवति ।

(भरद्भ्या, भवद्भ्य, त्वया, युवाभ्या, युष्माभि, मया, आवा-
भ्यामस्माभिर्ना भूयते)

भूयते । बभूवे । भविता-भाविता । भविष्यते भविष्यते । भावि-
पते भाविपातै, भविपते-भविपतै, भूयते भूयाते, भूयतै भूयातै । भव-
ताम् । अभूयत । भूयेत । भविष्यत भविष्यत । अभवि । अभ-
विष्यत-अभविष्यत ।

(कर्मकर्तृप्रतियायाम्)

शत्रु देवदत्तमभिभवति । शत्रुणा देवदत्त अभिभूयते । देवदत्त
अभिभूयते^३ स्वयमेव । एवं सर्वत्र कर्मबहुदाहरणानि । लुङि तरावदे तु
“अच कर्मकर्तरि” इति चिणादेशविकल्पनात् पक्षे सिच्, तस्य पूर्वं
चन्चिण्वदिट् तत्पक्षे वृद्धो (अभ्यभावि) । (अभ्यभाविष्ट अभ्य-
भविष्ट इति त्रैरूप्यम् ।

(कर्मव्यतिहारे)

कर्मव्यतिहारस्तु^४ प्रक्रियाशब्देन नोच्यते । अत्र केवलमात्मनेपदत्वमेव

१—चिण्भावकमणो (३. १ ६६) २—धि च (८ २. २५) ३—कर्म-
वत्कमणा तुल्यक्रिय (३ १ ८७) कर्मस्यभावकानां कर्मस्यक्रियाणां च कर्ता-
कर्मवद् भवति । ४—कर्तरि कर्मव्यतिहारे (१. ४ ११४)

वैशिष्ट्यम् । अत एव सर्वत्र आत्मनेपद कृत्वा कर्तृवद् रूपाणि ज्ञेयानि ।
 दिङ्मात्रमुदाह्रियते—व्यतिभवते । व्यतिभवेते । व्यतिभवन्ते । व्यति-
 भवसे । व्यतिभवथे । व्यतिभवध्वे । व्यतिभवे । व्यतिभवावहे ।
 व्यतिभवामहं । व्यतिभविता । व्यतिभविष्यते । व्यतिभविष्यते—व्यति-
 भविष्यते, व्यतिभाविष्यते—व्यतिभाविष्यते, व्यतिभविष्यते—व्यतिभविष्यते,
 व्यतिभाविष्यते—व्यतिभाविष्यते, व्यतिभवते—व्यतिभवाते, व्यतिभवते—
 व्यतिभवते । व्यतिभवताम् । व्यत्यभवत् । व्यतिभवेत् । व्यतिभवि-
 षीष्ट । व्यतिभविषीयास्ताम् । व्यतिभविषीरन् । व्यतिभविषीष्ठा ।
 व्यतिभविषीयास्थाम् । व्यतिभविषीध्वम्, व्यतिभविषीध्वम् ।
 व्यतिभविषीय । व्यतिभविषीवहि । व्यतिभविषीमहि । व्यत्यभविष्ट ।
 व्यत्यभविष्यत् ।

(सन्नन्तस्य-बुभूष)

भू सन्=बुभूष^१—कर्तृ प्रक्रियायाम्—बुभूषति । बुभूषाञ्चकार^२ ।
 बुभूषामास । बुभूषाम्बभूव । बुभूषिता । बुभूषिष्यति । बुभूषिष्यति—
 बुभूषिष्यति, बुभूषिष्यत्—बुभूषिष्यत्, बुभूषिष्यद्—बुभूषिष्यद् । बुभूषति—
 बुभूषति, बुभूषत्—बुभूषत्, बुभूषद्—बुभूषद् । बुभूषतु । अबुभूषत् ।
 बुभूषेत् । बुभूष्यात् । अबुभूषीत्^३ । अबुभूषिष्यत् ।

(भावकर्मकर्मकर्तृ प्रक्रियासु)

बुभूष्यते त्वया । अनुबुभूष्यते सुखम् । अभिबुभूष्यते देवदत्तः
 स्यमेव । अन्यत्सर्वं कर्तृवज्ज्ञेयम् ।

(कर्मव्यतिहारे)

व्यतिबुभूषते । व्यतिबुभूषां चक्रे—व्यतिबुभूषां वभूव—व्यतिबुभूषा-
 मास । व्यतिबुभूषिता । व्यतिबुभूषिष्यते । व्यतिबुभूषिष्यते—व्यतिबुभू-
 पिष्यते । व्यतिबुभूषताम् । व्यत्यबुभूषत् । व्यतिबुभूषेत् । व्यतिबुभूषि-
 षीष्ट । व्यत्यबुभूषिष्ट । व्यत्यबुभूषिष्यत् । ॐ सर्वत्र पूर्ववत्सन इति
 तद् इति धातुवृत्तौ सायण । तन्न, बुभूष धातोः कर्मव्यतिहारसंबन्धात् ।
 तेन कर्तरि कर्मव्यतिहारे इत्यनेनैव तद् ॐ ।

१—धातो कर्मण समान० (३ १७) २—कास्प्रत्ययादाममन्त्रे सिटि (३ १
 ३५) ३—इट ईटि (८. २ २८) X एकादेशे सिज्जलोप सिद्धो वक्तव्यः X
 (८. २. १) भक सवर्णे दीर्घं ६ १. ६७)

(यङन्तस्य-बोभूय)

भू यङ् = बोभूय^१

कर्त्तरि—गोभूयते । भावे—बोभूयते^२ । कर्मणि—अनुगोभूयते
मुखम् । कर्मकर्त्तरि—अभिगोभूयते शत्रु स्वयमेव । लुङि तश-ङे तु
अच कर्मकर्त्तरि इत्यनेन अभ्यगोभूयि शत्रु स्वयमेव, अभ्यगोभूय इति
च । एव सर्वासु प्रक्रियासु सनन्तवत्प्रक्रिया ।

(यङ् लुङन्तस्य बोभू)

लटि—गोभवीति—बोभोति^३ । बोभूत । बोभुनति^४ । बोभवीपि—
बोभोपि । बोभूय । बोभूय । गोभवीमि—गोभोमि । बोभूय । बोभम ।
लिटि—बोभवाचकार । लुटि—गोभविता । लुटि—गोभनिप्यति ।

लोटि—बोभविपति—बोभविपाति, बोभविपत्—बोभविपात्, बोभविपद्
बोभविपाद्, बोभवति—बोभनति, बोभनत्—बोभवान् बोभवद्-
बोभवाद् । लोटि—बोभोतु बोभूतात् । बोभूताम् । बोभुवतु । बोभूहि—
बोभूतम् । बोभूत । बोभनानि । गोभनत् । बोभवाम । लङि—अगो
भवीत्—अगोभोत्—अगोभवु । अगोभवम् । अगोभवान् । अगोभवाम् ।
लिटि—बोभूयान् । बोभूयाताम् । बोभूयु । बोभूया । बोभूयातम् ।
बोभूयात । बोभूयाम् । बोभूयाव । बोभूयाम ।

आशिपि लिङि—बोभूयात् । बोभूयास्ताम् । बोभूयासु । गोभूया ।
बोभूयास्तम् । गोभूयास्त । बोभूयामम् । बोभूयास्व । गोभूयास्व ।

लुङि—अगोभूयित—अगोभोत् । अगोभताम् अगोभवु । लुङि—
अगोभविष्यन् ।

भाष्यमर्थमर्कटपु प्रक्रियासु (बोभूयते त्वया इत्यादि) सर्वं यङ्-
षज्ञेयम् । कर्म-यतिहारे—व्यतिगोभूते, व्यतिगोभुनाते इत्यादीनि रूपाणि
अवगन्तव्यानि ।

(णिजन्तस्य भावय)

लटि—भावयति ।

१—घातारेकाच्चा ह्रादे ० (३ १ २२) २—घतो लोप (६ ४ ४८)
३—यङो वा ७ ३ ६४ वतमान लट (३ २ १२३) भूसुबोस्तिङि (७ ३ ८८)
इति गुणनिषेधोऽत्र न भवति द्योति (७ ४ ६५) इति सूत्रे बोभूतु इति गुणा-
भावाद्यानिपातनाञ्ज् ज्ञापकात् । इदमेव प्रकृति ग्रहणे यङ्नुगन्तव्यानि ग्रहण
भवति इत्यत्र ज्ञापकम् । ४—अचिन्नुयातु ० (६ ४ ६५)

लिटि भावयां^१चकार । भवायांवभूव । भावयामास ।

लुटि—भावयिता इत्यादि प्रकृतिवत् । आशिपि लिङि—भाव्यात्^२ ।
लुङि—अधीभवत् ।

(भावकर्मकर्मकर्तृप्रक्रियासु)

सकर्मकत्याद्भावासंभवः । तत्र लट्लोट्लङ्लिङ्विध्यादिलिङ्लु यकि
विकरणे णिलोपः (भाव्यते । भाव्यताम् । अभाव्यत । भाव्येत) अतो-
ऽन्येषु लुङ्ल्यतिरिक्तेषु कर्तृवद्गुरुपम् । लुङि तु चङः कर्तरि विधानात् ।
अन्यत्र सिलेव । तश्चन्दे तु चिणि (अभावि । अभावयिपाताम् इत्यादि)
स्यादिषु चिण्वदिट्पक्षे असिद्धवद्ग्राभात् इति चिण्वदिटोऽसिद्धत्वा-
यिलोपे (भाविष्यते । अभाविष्यत । अभाविष्यताम् । भाविषीष्ट ।
भाविता । कर्मकर्तरि तु यकिचणो प्रतिषेधे × णिअन्यिप्रन्धिअन्ने-
पदाकर्मकारणमुपसंख्यानम् × इति यकिचणोर्निषेधाद्यथायोगं सर्वप्रकर्तृ-
वद्गुरुप स्यादिषु तु कर्मयत् ।

२. (एध वृद्धौ उदात्तः अनुदात्तेत्)

लटि^३—लिटि—लुटि—लुटि—लेटि—लोटि—लङि—लिङि—आशिपि लिङि—
लुङि—लुङि भावे लट्लोट्लङ्लिङ्विध्यादिलिङ्लु यगुदाहार्यः । (एध्यते
भवता) इत्यादि । लुङि तश्चन्दे एधि भवता । शेपे तु कर्तृवद्गुरुपम् ।

सनि (एदिधिपते) इत्यादि सर्वत्र प्रकृतिवत् एदिधिष्यत इत्यादि
कर्तृवत् । णिचि एध्यते—एध्यति । लङि ऐदिधत्—ऐदिधत् ।

कर्मणि लुङि तश्चन्दे ऐधि । ऐवयिपाताम् इत्यादि ।

३. (अत सातत्यगमने)

अतति । आत । आततुः । आतुः । आतिथ । आतथुः । आत ।
आत । आतिव । आतिम । अतिता । अतिष्यति । अतिपति-आतिपति ।
अततु-अततात् । सिपि-अत—अततात् । आतत । अतेत् । अत्यात् ।
आतीन् । आतिष्टाम् । आतिषुः । आतीः । आतिष्टम् । आतिष्ट ।
आतिषम् । आतिष्व । आतिष्म । अतिष्यत् ।

१—अयामन्तात्वाप्येत्विष्णुषु । २—लटि । ३—लेटि । ४. ५. ५१) ३—लट्वादी-
द्रष्टव्यानि ।

४ (पिप् गत्याम्)

मेचति ॥ मिपेत्^१ । सिपित्तु^२ । सिपिधु । मिपेदिथ । सिपिधु ।
 सिपिध । सिपेध । सिपिविव । मिपिविम ॥ सेचिता ॥ सेचिप्यति ॥
 मेधिपति । मेधिपाति । मेधिपत् । मेधिपान् । मेधिपत् । सेधिपाद् ।
 सेचति । मेचानि । सेचत् । मेचान् । मेचद् । मेचाद् ॥ मेचतु-मेच-
 तान् ॥ असेचत् । मेचेत् । मिध्यान । असेवीन् । असेविप्यन् ॥

५ (खाद् भक्षण)

खादति ॥ चखाद् ॥ चखादतु । चखादु । चखादिथ । चखादधु ।
 चखाद । चखाद । चखादिथ । चखादिम ॥ खादिप्यति । अखादीन् ।

६ (गद व्यक्ताया वाचि)

गदति । जगाद । जगदतु । जगदु । जगदिथ । जगाद—
 जगद^३ ॥ अगादीन्^४ । अगादीन् ॥ अगदिप्यन् ।

७ (णद अव्ययने शब्दे)

नदति । ननाद । नेदतु^५ । नेदु । नेदिथ^६ । नेदधु । नद । ननाद-
 ननद । नेदिथ । नेदिम ॥ अनदीन् अनादीन्^७ ॥

८ (टुनदि समृद्धौ)

नन्दति । ननन्द ॥ अनन्दीन् ॥

९ (टदि परमैश्वर्ये)

इन्दति । इन्दाञ्चकार^८ । इन्दाभूव । इन्दाभास ॥ इन्दुदासा
 उदासेन ॥

१० (लोट् दर्शन)

लोपते ॥ लुपोते ॥ लोपिपीष्ट । अलोकिष्ट ॥

१—पादप्रत्ययस्य (८ ३ ५९) २—सप्तम्यापाक्षिप्ति (१. ३ ५)
 विनि च (१ १. ५) इति दुर्गाय नियम ३—उत्तमा वा (७ १ ११) ४—
 घना ह्लादमयो. (८. २ ७) ५—घञ् णङ्मध्यो (६ ४. १२०) ६—विनि च
 मेति (१ ४ १२१) ७—इतिगो मुष्णतो (३. १. ४८) ८—इवादेश्च.
 (७ १ १६)

लिटि भावयां^१चकार । भवायांभूव । भावयामास ।

लुटि—भावयिता इत्यादि प्रकृतिवत् । आशिपि लिङि—भाध्यात^२ ।
लुङि—अभीभवत् ।

(भावकर्मकर्मकर्तृ प्रत्रियासु)

सर्गमत्वाद्भावासमवः । तत्र लट्लोट्लङ्विध्यादिलिङ् लुक् यकि
विकरणे णिलोप (भाव्यते । भाव्यताम् । अभाव्यत । भाव्येत) अतो-
ऽन्येषु लुङ्व्यतिरिक्तेषु कर्तृवद्रूपम् । लुङि तु चङ्, कर्त्तरि विधानात् ।
अन्यत्र सिजेव । तशब्दे तु चिणि (अभावि । अभावयिपाताम् इत्यादि)
स्याङिषु चिरशब्देषु असिद्धवदत्राभात् इति चिरवन्निटोऽसिद्धत्वा-
णिलोपे (भाविष्यते । अभाविष्यत । अभाविपाताम् । भाविषीष्ट ।
भायिता । कर्मकर्त्तरि तु यक्चिणो प्रतिषेधे × णिअन्धिप्रग्धिङ् व्यात्मने-
पदाकर्मकाणामुपसंख्यानम् × इति यक्चिणोर्निषेधाद्यथायोग सर्वत्रकर्तृ-
वद्रूप स्यादिषु तु कर्मवत् ।

२ (एष वृद्धौ उदात्त अनुदात्तेत्)

लटि^३—लिटि—लुटि—लुटि—लेटि—लोटि—लङि—लिङि—आशिपि लिङि—
लुङि—लुङि भावे लट्लोट्लङ्विध्यादिलिङ् लुक् यगुदाहार्य । (एध्यते
भवता) इत्यादि । लुङि तशब्दे एधि भवता । शेषे तु कर्त्तृवद्रूपम् ।

सनि (एदिधिष्यते) इत्यादि सर्वत्र प्रकृतिवत् एदिधिष्यत इत्यादि
कर्त्तृवत् । णिचि एधयते—एधयति । लङि ऐदिधत—ऐदिधत् ।

कर्मणि लुङि तशब्दे ऐधि । ऐयिपाताम् इत्यादि ।

३ (अत सातत्यगमने)

अतति । आत । आततु । आतु । आतिथ । आतथु । आत ।
आत । आतिव । आतिम । अतिता । अतिप्यति । अतिपति आतिपति ।
अतनु अवतात् । सिपि—अत—अततात् । आतत् । अतेत् । अत्यात् ।
आतीत् । आतिष्टाम् । आतिषु । आती । आतिष्टम् । आतिष्ट ।
आतिपम् । आतिष्व । आतिप्स । अतिप्यन् ।

१—प्रयामन्तात्वाद्येत्विध्यासु (६. ४. १५) इति अयं पादेन । २—वेर-
निति (६. ४. ५१) ३—लडादीनामुदाहारणानि भूषातुवत् तत्तद्विधायकसूत्रेण
द्रष्टव्यानि ।

४ (पित्र गत्याम्)

सेत्रति ॥ सिपेव^१ । सिपिधतु^२ । सिपिधु । सिपेदिथ । सिपिधथु ।
सिपिध । सिपेध । सिपिधिव । सिपिधिम ॥ सेधिता ॥ सेधिष्यति ॥
सेधिपति । मेधिपाति । सेधिपत् । मेधिपात् । मेधिपद् । सेधिपाद् ।
सेधति । सेधाति । सेधत् । सेधान् । सेधद् । सेधाद् ॥ मेधतु-सेध-
तान् ॥ असेधत् । सेधेत् । मिष्यात् । असेधीत् । असेधिष्यन् ॥

५ (खाद् भक्षण)

खादति ॥ चखाद् ॥ चखादतु । चखादु । चखादिथ । चखादथु ।
चखाद । चखाद । चखादिष । चखादिम ॥ खादिष्यति । अखादीत् ।

६ (गद व्यक्ताया वाचि)

गदति । जगाद् । जगदतु । जगदु । जगदिथ । जगाद्—
जगद्^३ ॥ अगदीन्^४ । अगादीत् ॥ अगदिष्यन् ।

७ (णद अव्यक्ते शब्दे)

नदति । ननाद । नेदतु^१ । नेदु । नेदिथ^२ । नेदथु । नेद । ननाद-
ननद । नेदिष । निदिम ॥ अनदीन् अनानीन्^३ ॥

८ (टुनदि समृद्धौ)

नन्ति । ननन् ॥ अनन्दीन् ॥

९ (इदि परमेश्वर्ये)

इन्दति । इन्द्राच्चसार^१ । इन्द्राभूत् । इन्द्रामास ॥ इत्युदात्ता
न्दासेन ॥

१० (लावृ दर्शन)

लोकते ॥ लुलोके ॥ लोकिपीष्ट । अलोकिष्ट ॥

१—पादेनप्रत्ययमा (८ ३ ५९) २—असयागाह्निट् क्ति (१. २. ५)
जिति च (१ १ ५) इति गुणस्य निपथ ३—एतुत्तमा वा (७ १ ९१) ४-
अता हनादसपो (८ २ ७) ५—अत एकह्रस्वध्वे० (६ ४. १२०) ६—अति च
सेटि (६ ४ १२१) ७—इदिङो नुष्ठातो (७ १. ४८) ८—इवादेश०
(७ १ ३६)

११ (शक्ति शकायाम्)

शक्ते ॥ शशक्ते ॥ शक्किपीष्ट ॥ अशक्किष्ट ॥ इत्युदात्ता
अनुदात्तेत

१२ (वर्च दीप्रो)

वर्चते ॥ ववर्च ॥ वर्चिपीष्ट ॥ अवर्चिष्ट ॥ अवर्चिष्यत ॥

१३ (लोच दर्शने)

लोचते ॥ लुलोचे ॥ लोचिपीष्ट ॥ अलोचिष्ट ॥ इत्युदात्तो अनुदात्तो

१४ (अर्च पूजायाम्)

अर्चति ॥ आनर्च^१ । आनर्चतु । आनर्चु । आनर्चिथ । आन-
र्चथु । आनर्च । आनर्च । आनर्चिव । आनर्चिम ॥

१५ (कूज अव्यक्त शब्दे)

कूजति । चुकूज ॥ चोकूजते । कूजयति अचुकूजत ।

१६ (व्रज गतौ)

व्रजति । वव्राज । अव्राजीत्^२ ॥ इत्युदात्ता उदात्तेत ॥

१७ (वेष्ट वेष्टने)

वेष्टते ॥ विवेष्टे ॥ अवेष्टीत अवेष्टिष्ट ॥

१८ (चेष्ट चेष्टायाम्)

चेष्टते ॥ विचेष्टे ॥

१९ (पडि गतौ)

पण्डते । पण्डे । पण्डिपीष्ट ॥ अपण्डिष्ट ॥ इत्युदात्ता
अनुदात्तेत ॥

२० (कटे वर्षावर्णयो) २१ (रट परिभाषणे)

रटति चकाट । अरटीत्^३ ।

रटति ॥ रराट । रेटु । रेटिथ । रेटथु । रेट । रराट-रराट ।
रेटिव । रेटिम ॥ रट्यात् । रट्यास्ताम् । रट्यासु । अरटीत्-

१-अत आदे (७.४.७०) तस्मान्नुद्दिहल (७.४.७१) २-वदव-
हस तस्याच. (७.३.३) ३-ह्यतस्यण्त्वस० (७.२.५)

अरुदीत् ॥

२२ (मडि भूपायाम्)

मरुडति ॥ ममरुड ॥

२३ (पठ व्यस्ताया वाचि)

पठति । पपाठ । पठेतु । पेठु । पेठिथ । पेठथु । पेठ । पपाठ—
पपठ । पेठिव । पेठिम । अपठीन्—अपाठीन् ।

२४ (नीडू बिहारे)

नीडति । चिक्रीडतु । चिक्रीडु । इत्युदात्ता उदात्तेत

२५ (टुवेपू कम्पन)

वेपते । त्रिपे ।

२६ (त्रपूप् लज्जायाम्)

त्रपते । त्रेपे^१ । त्रेपाते । त्रेपिरे । त्रेपिपे । त्रेपाये । त्रेपिप्रे ।
त्रपे । त्रेपिपहे । त्रपिमहे । त्रपिता-त्रप्ता^२ । त्रपिप्यते-त्रप्यते । त्रपिपते-
त्रप्मते, त्रापिपते-त्राप्साते । त्रपते-त्राते । त्रपते-त्रापते । त्रपनाम् ।
अत्रपत । त्रपेत । त्रपिपाष्ट । त्रप्सीष्ट । अत्रपि-अत्रप्त ।

तित्रपिपत-तित्रप्सते । त्रात्रप्यत । त्रात्रप्यति । त्रात्रप्ति । त्रपयति^३ ।
अतित्रपत् । कृ-प्रत्यया —त्रपित्वा । त्रप्त्वा । त्रप्त । त्रप्तवान् ।

२७ (कपि चलन)

कम्पते । चम्पे । इत्युदात्ता उदात्तेत ।

२८ (पण व्यवहारे स्तुता च)

पणत । पेणै । पेणाते । पणिरे । पणिता । पणिप्यते । पणिपते ।
पणिपाते । पाणिपते । पाणिपाते । पणिपते । पणिपाने । पाणिपते ।
पाणिपाते । पणत । पणाते । पणने । पणाते । पणताम् । अपणत ।
पणिपीष्ट । अपणिष्ट । अपणिप्यत । पिपणिपते । पम्पयते^४ । पम्प-

१—तपनमजपपञ्च (६ ४ १२२) एतयामत एत्वमम्माससापञ्च किति
लिटि षटि^१ पति च । २—स्वरतिमूर्ति० (७.२ ४४) इतीडूबिहारे ३—पडा-
दिवाचित्वम्, मिता ह्रस्व (६ ४. १२) ४—नुगताश्रुनासिबान्तस्य (७ ४. ८५)

णीति । पम्पण्टि । पम्पाण्ट । पम्पणति^१ । अपम्पणीत् । अपम्पण् ।
पाणयति । अपीपणत् । इति उदात्त अनुदात्तेत्

२६ (चर गतिभक्षणयो)

चरति । चचार । चेरु । चेरिथ । चेरथु । चेर । चचार-
चचर । चेरिथ । चेरिम । चरिता । चरिष्यति । चरिपति-चारिपति ।
चरु-चरतात् । अचरत् । चरेत् । चर्यात् । अचारीत्^२ । अचरिष्यत् ।
चिचरिपति । चञ्चूर्यते^३ । चञ्चुरीति-चञ्चूर्ति । चञ्चूर्त । चञ्चूरति ।
चारयति । अचीचरत् । इति उदात्त उदात्तेत् ।

३० (जि जये)

जयिर्जयाभिभवयोराद्योऽर्थोऽसाधकर्मक ।

उत्कर्षप्राप्तिराद्योऽर्थोऽद्वितीयेऽर्थे सकर्मक ॥

जयति । जिगाय^४ । जिग्यतु^५ । जिग्युः । जिगायिथ-जिगोथ^६ ।
जिग्यिष । जेता । जेप्यति । जेपति-जेपाति । जैपति-जैपाति । जयतु ।
अजयत् । जयेत् । जीयात् । अजैपीत् । जिगीपति । जेजीयते । जेज-
यीति-जेजेति । जेजित । जेज्यति । जापयति^७ । अजीजपत् । विजयते^८ ,
पराजयते । इति अनुदात्त अनुदात्तेत् ।

३१ (शिक्ष विद्यापदाने)

शिक्षते । शिशिक्षे ।

३२ (भिक्ष भिक्षायामलाभे लाभे च)

भिक्षते । अय द्विकर्मक ॥

३३ (ईक्ष दर्शने)

ईक्षते । ईक्षांचक्रे । ईक्षिता । ईक्षिष्यते । ईक्षताम् । एक्षत ।
ईक्षेत । ईक्षिषीष्ट । ऐक्षिष्ट । ईचिक्षिषते । ईक्षयति । ऐचिक्षत् ।

१—अदम्पस्तात् (७. १. ४) २—अता ह्रान्तस्य (७. २. २)

३—वरफलोदच (७. ४. ८७) उत्तरस्यात् (७. ४. ८८) हलि च (८. २. ७७)

४—सन्निटोर्जे (७. ३. ४७) ५—एरनेकाचो (६. ४. ८२) इति अजादो

निष्ठति यण् ६—अजन्तत्वादिनिष्ठस्य आदिनियमादिह विकल्पः ७—क्रोड्जीना

शी (६. १. ४७) इत्येव स्थानं आत्वे पूषागमः ८—विपरार्थ्या जेः (१. ३. १६)

३४. (भाप व्यक्ताया वाचि)

भापते । वभापे । भापिता । भापिष्यते । बाभाष्यते । भापयति ।
अवभापत्^१ । अवभापत् ।

(कासृ शब्दकुत्सायाम्)

कासते । कासांचक्रे^२ । इति उदात्ता अनुदात्तेतः ।

३६. (द्युत दीप्ती)

द्योतते । द्युद्युते^३ । द्योतिता । द्योतिष्यते । द्योतिपते । द्योतिपाते ।
द्योतिपतै । द्योतिपातै । द्योतते । द्योनाते । द्योततै । द्योतातै । द्योतताम् ।
अद्योतत । द्योतेत । द्योतिपीष्ट । अद्योतिष्ट । अद्युतन्^४ ।

३७. (मिमिदा स्नेहने)

मेष्टते । मिमिदे । मेदिता । अमिदत्^५ ।

३८. (वृत् वृत्तने)

वर्त्तते । ववृते । वर्त्तिता । वर्त्तिष्यते । वर्त्त्यति^६ । वर्त्तिपते । वर्त्ति-
पाते । वर्त्तताम् । अवर्त्तत । वर्त्तत । वर्त्तिपीष्ट । अवृत्तत । अवर्त्तिष्ट ।
अवर्त्तिष्यत । अवर्त्त्यत् ।

३९. (वृधु वर्धने)

पूर्ववत् । वृत् । इति द्युतादय उदात्ता अनुदात्तेतः ।

४०. (राजू दीप्ती)

राजते । रराजे । इत्यादि पूर्ववत् । राजति । रराज । रेजतुः^७ ।

१—भ्राजभाष० (७. ४. ३५) इति वा लो चङ्पुषाघा ह्रस्वः २—
कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि (३. १. ३५) ३—द्युतिस्वाध्याः सम्प्रसारणम् (७. ४.
६७) इति हलादिशेष बाधित्वा सम्प्रसारणमुपसर्गस्य ४—द्युद्भ्यो छुटि (१.
३. ९१) इति छुटि वा पदस्मरणम् । पुषादि० (३. १. ५५) इति षङ् ।
५—वृद्ध्यः स्पर्शनो (१. ३. ६२) वा परस्मैपदम् । न वृद्धयश्चतुर्भ्यः
(७. २. ५६) ६—फला च सप्तानाम् (६. ४. १२५) इति एतेषा धातूनाम-
वर्णस्य स्थाने व एषारादेशो भवति, अम्यासलोपश्च लिटि विडति परतस्थ-
सि च सेटि ।

रराजतुः । रेजुः । रेजिय । रराजीति । रराष्टि^१ । राजयति ।
अरराजत्^२ । उदात्तः स्वरित्तेदुमयतोभापः ।

४१. (पत्लृ गतो)

पतति । पपात । पेततुः । पेतुः । पतिता । पतिप्यति । पातिपति ।
पातिपाति । पततु—पततान् । पतताम् । पतन्तु । पव-पततात् । पततम् ।
पतत । पतानि । पताय । पताम । पतेत् । पत्यात् । अपप्तत्^३ । पिप-
तिपति^४ । पित्सति^५ । पनीपत्यते^६ । पनीपत्ति । इति उदात्त उदात्तेत् ।

४२. (पद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु)

सीदति^१ । समाद् । सेदतुः । ससत्य^२—सेदिय । सेदिय । सेदिम ।
सत्ता । सत्स्यति । असीदत् । सीदेत् । सद्यात् । असदत्^३ । सिपत्सति ।
सासद्यते । सासदीति—सासत्ति । सादयति । असीपदत् ।

४३. (वुघ अवगमने)

४४ (रुह वीजजन्मनि प्रादुर्भावे च)

योधति । इति उदाना उदात्तेतः सहिस्तु अनुदात्तः ।

४५. (थ्रिञ् सेवायाम्)

अयति । शिभाय । शिथ्रियतुः । शिथ्रियुः । शिथ्रियिथ । शिभाय ।
शिथ्रय । शिथ्रियिथ । शिथ्रियिम । अयिता । अयिप्यति । अयतु । अअ-
यत् । आशिपि-श्रीयान्^१ । लुङि-अशिथ्रियत्^२ । तङि-अयते । शिथ्रिये
इत्यादि । शिथ्रियिपति^३ । शिथ्रीपति । शोथ्रीयते । शोथ्रीयति । शोथ्रेति ।
आययति । अशिथ्रयत् ।

१—अदन्तस्य (८. २. ३६) प्लुता प्लु (८. ४. ४०) २—मालोपि०
(७. ४. २) इति ऋदित्वादुत्तराहस्वनिर्णयः । ३—पठ. पुम् (७.
४. १६) पुषादिद्युतादिनृदित परस्मैपदेषु (३. १. ५५) इति अह्-उ-तनिपति-
परिद्वाराणां प्रथमस्यानम् इति वेदः । अनिट्पठे सनि मीमाषु० (७. ४. ५४)
इति इत् भावः । इम्भावे सः स्याप्यधातुके इति तत्त्वे पितृव्यस्य द्विवचनम्
५—नीम्बन्तु० (७. ४. ८४) इति अय्यासस्य नीक् । ६—पाप्मा० (७. ३. ७८)
७—सरि च (८. ४. ५४) ८—पुषादि० (३. १. ५५) ९—अह्-पु० (७. ४.
२५) १०—णिधि० (३. १. ४८) ११—सनी० (७. २. ४१)

४६ (भृञ् भरणे)

भरति । यभार । यभ्रतु । यमर्थ । यभृच । क्रादिनियमान्दिभाव ॥
भर्त्ता । भरिष्यति । भरतु । अभरत् । भरेत् । आशिपि भ्रियात्^१ ।
अभार्पात् ॥

भरते । यभ्रे । भर्त्तासे । भरिष्यते । भरनाम् । अभरत । भरेत
आशिपि भृपीष्ट^२ । अभृत^३ । विभरिपति । युभूर्पति । वेभ्रीयते^४ ।

४७ (हृञ् हरणे) ४८ (वृञ् धारणे)

हरति । जहार । हारयति । अजीहरत् ॥ धरति । धरते ।

४९ (णीञ् प्रापणे)

नयति । निनाय (वृद्ध्यायो) 'द्विर्वचनेऽचि' इति स्थानियद्भा
वात्रीशब्दो द्विरुच्यते । निन्यतु । निन्यु । निनयिथ निनय । निन्यथु ।
निनय । निनाय निनय । निन्यय । निन्यिम । (क्रादिनियमान्दि । यति
भारद्वाजनियमाद्विकल्प) नेता । नेप्यति । नयतु । अनयत् । नयत् ।
नीयात् । अनैपीत् । निनीपति । नेनीयते । नेनयीति । नेनेति ।
नेनीत । नाययति अनीनयत् । इति भरत्यादयोऽनुदात्ता स्वरिते ॥

५० (घट पान)

धयति । ऋघी^१ । ऋधु । दधु । दधाय । दधिय । दधिय ।
धाता । धास्यति । धयतु । अधयत् । धयेत् । आशिपि-धेयात्^१ ।
अदधत्^२ । अदधताम् । चङभावे अधासीत्^३ । अधासिष्टाम् । अधा
सिपु । यश्च विभाषा प्रायेदृशाब्बास^४ अधात् । अधाताम् । अधु ।
आत (३ ॥ ११०) इति भेजुस् ।

१—रिङ्शयमिलहस्तु (७ ४ २८) २—उश्च (१ २ १२) इति कित्वा-
दगुण । ३—उश्च (१ २ १२) ह्रस्वादङ्गात् (८ २ २७) ४—रीङ् ऋत
(७ ४ २७) इति परत्वाद् रीङि कृते द्विवचनम् ।

५—प्रादेव उपदेशांगिति (६ १ ४४) आत ओ सुल (७ १ ३४)
इति प्रीत्वे वृद्धि अयत्र विडति यजादावाद् घातुके आतो लोप इत्याल्लोप ।
इति च तस्य द्विवचनचि इति स्थानिवत्त्वाद् घा शब्दस्य द्विवचनम् । ६—
एलिङि (६ ४ ६७) ७—विभाषा घटशब्दो इति विभाषा चङ् । चङि प्रातो
लोपः (६ ४ ६४) इति आत्लोपे स्थानिवत्त्वाद् घाशब्दस्य द्विवचनम् ।
८—चङभावे सिचि यमरमनमाताम् इति सक ।

५१. (ग्लं म्ले हर्षक्षये)

ग्लायति । जग्लो । जग्लतु । जग्लुः । जग्लाय । जग्लिथ । जग्लधुः ।
जग्ल । जग्लो । जग्लिव । जग्लिम । ग्लायता । ग्लायस्यति । ग्लायतु ।
अग्लायत् । ग्लायेत् । आशिपि-ग्लायत्^१—ग्लेयात् । अग्लासीत् ।

५२. (पा पाने)

पियति । पपौ । पपतुः । पपुः । पपिथ । पपथुः । पप । पपौ । पपिम ।
पपिम । पाता । पाम्यति । पिथतु । अपिथत् । पिथेत् । पेयात्^२ । अपात्^३ ।
पिपामति । पेपीयने^४ । पापेति । पापाति । पापीतः^५ । पापति । पाय-
यति^६ । अपीपयत् ।

५३. (घ्रा गन्धोपादाने, ध्मा द्वाद्वाग्निसंयोगयोः प्ठा गति-
निवृत्ती. भ्ना अभ्यामे, दाण् दाने)

जिघ्रति । घमति । तिष्ठति । मनति । यच्छति ॥

५४. (म् गती)

सरति । ससार । सस्रतुः । सस्रुः । ससर्थ । सस्य । प्रादिपाठा-
दतिट्त्वम् । सस्रा । सरिष्यति । अद्धनोस्ये इतीट् । असरत् । सरेत् ।
स्रियात्^१ । असार्पित् । अमाप्रीम् । मीपीपति । अम्मनडति दीर्घे 'द्धतः'
इति इत्ये रपरे हलि चेति दीर्घे द्विर्वचने धृते । मेस्त्रियते । सस्रति ।
सस्रतः । ससरयति । अमीसरत् ।

५५. (अ गतिप्रापणयोः)

प्राच्छति^२ । आर^३ । आरतुः । आरुः । आरिथ । आरिय । अतो ।

१—वाग्नस्य गदोगादे (६. ४. ६८) २—एलिटि (६. ४. ६७) ३—गति
स्या० (२. ४. ७५) ४—पुमात्वा० (६. ४. ६६) इत्यनेनेत्वे इति द्विवचनम् ।
५—ई ह्यर्घ्या (६. ४. १११) ६—वाग्न्यासा० (७. २. २७) इति
गुर् । ७—रिहृण्यणिहृत् (७. ४. २८) ८—वाग्न्या० (७. २. ७८) ९—
गति द्वादि, स्यानिप्यत्वाद् अग्नस्य द्विवचनम्, उर्य् इति द्वाव राग्य,
ह्वादिनाम्, घन घादे इति दीर्घश्च, गगर्गनापत्वं चेति एव द्वयः । द्वाव
मर्षेण अद्धत्वात् (७. ४. ११) इति गुणः प्रादिनियमादिषु घतिषु
अतो भारदास्य इति निषम वाचिष्या इत्यनिप्ययोगात् (७. २. ११)
इति इट् ।

५१ (ग्लै म्लै हर्षक्षये)

ग्लायति । जग्लौ । जग्लतु । जग्लुः । जग्लाथ । जग्लिथ । जग्लथु ।
जग्ल । जग्लौ । जग्लिव । जग्लिम । ग्लाता । ग्लास्यति । ग्लायतु ।
अग्लायत् । ग्लायेत् । आशिपि-ग्लायत्^१—ग्लेयात् । अग्लासीत् ।

५२ (पा पाने)

पिषति । पपौ । पपतु । पपु । पपिथ । पपथु । पप । पपौ । पपिव ।
पपिम । पाता । पास्यति । पिउतु । अपिउत् । पिबेत् । पेयात्^२ । अपात्^३ ।
पिपासति । पेपीयते^४ । पापेति । पापाति । पापीत^५ । पापति । पाय-
यति^६ । अपीपयत् ।

५३ (घ्रा गन्धोपादाने, ध्मा शब्दाग्निसयोगयो प्ठा गति-
निवृत्ती म्ना अभ्यासे, दाण दाने)

जिघ्रति । धमति । तिष्ठति । मनति । यच्छति ॥

५४ (सृ गतौ)

सरति । ससार । सस्रत् । सस्रुः । ससर्थ । सस्र । क्रादिपाठा-
दनिट्त्वम् । सस्रौ । सरिष्यति । ऋद्धनो स्ये इतीट् । असरत् । सरेत् ।
स्रियात्^१ । असार्पात् । असार्ष्टाम् । सीपीरपति । अम्मनच्छति दीर्घे 'श्चत'
इति ईस्ये रपरे हलि चेति दीर्घे द्विर्यचने कृते । सेस्रियते । सस्रत्ति ।
सस्रत् । सारयति । असीसरत् ।

५५ (अ गतिप्रापणयो)

अच्छति^१ । आर^२ । आरतु । आरु । आरिथ । आरिय । अता ।

१—वाग्यस्य सयोगाद् (६ ४. ६८) २—एतिङि (६. ४. ६७) ३—गानि
स्था० (२. ४. ७७) ४—धुमास्था० (६ ४. ६६) इत्यनेनेत्वे कृते द्विवचनम् ।
५—ई ह्रस्वयो (६ ४. ११३) ६—वाच्छासा० (७ ३. ३७) इति
मुद् । ७—रिङ्गयग्लिङ्गु (७ ४. ७८) ८—पाघ्रा० (७ ३. ७८) ९—
गलि घृदि, स्थानिदत्वाद् ऋग्वरस्य द्विवचनम्, उरत् इति अन्ध रपरस्य,
हृतादिष्वपि, घत धावे इनि दीर्घत्व, मवर्णदापत्व चेति एष क्रमः । वाग्यत्र
मवर्ण ऋच्छयताम् (७ ४. ११) इति गुणः क्दिनियमादिट् घति तु
ऋनो भारदाजस्य इति नियम वाधित्वा इहत्यनिव्यपतीनाम् (७ २. ६३)
इति इट् ।

अरिप्यति^१। ऋच्छतु। आर्च्छेत ऋच्छेत्। आशिपि अर्यात्^२। आर्पात्।
आर्षात्। अरिरिपति^३। अरायते। अर्षयति^४। मा भवानर्षिपत्।
इति धेटादेयाऽनुदाता ।

५६ तृ (प्लवनसतरणयोः)

तरति। ततार। तेरतु^१। तेरिब। 'तेरिम। ऋच्छत्यताम् इति
गुणः। तरिता^२। तरीता। तरिप्यति। तरतु। अतरत्। तरेत्। 'आशिपि
तौर्यात्^३। अतारीत्। अनारिणाम्। अतारिषु। अतारी। अता-
रिष्टम्। अतारिष्ट। नितीर्षति^४। तितरिपति। तितरीपति इति उदात्ता
परस्मैभाष ॥

५७ (गम्लृ सृप्लृ गतो, त्यज हानौ)

गच्छति। अगमत्। त्यजति। तत्याज।

५८ (दृशिर प्रक्षरणे, दह भस्मीकरणे)

पश्यति। नृति। इति अनुदात्ताऽन्ते ॥

५९ (डुपचप् पाके)

पचति। पपाच। पेचतु। पेचु। पपयथ। पेचिथ। पक्ता। पद्यति।
पचतु। अपचत्। पचेत्। पच्यात्। अपाक्षीत्। तडि पचते। पेचे।
पेचात्। पेचिरे। पयता। पद्यते। पचताम्। अपचत। पचेत। पक्षीष्ट।
अपयत्। अपयताम्। अपद्यत। पिपक्षति। पिपक्षते। पापयते।
पापयति। पापयित। पापयत। पापयति। पाचयति। अपीपचत्।

१—ऋद्धनो स्ये (७ ० ७०) २—गुलोति सयोगाद्यो (७ ४ २९)
इति गुण ३—स्मिपूङ्गञ्ज० (७ २ ७४) ४—प्रातिहि० (७ ३.
३६) ५—दृष्टनञ्जप्रपञ्च (६ ४ ११२) ६—यता मा (७ २ ३८)
७—अत इदाता (७ १ १००) इति इत्तरपरत्वया हलि चति दीप ८—
दृ सनिवा (७ ० ४१) इति इटा विकल्पनात् सनि ग्रहगुहाश्च (७ २ १०)
इति सन विस्वादिगुणत्व ऋत इदातारिति इत्त्व हलि चति दीपत्व तीर शब्दस्य
द्विवचनम् ।

६० (यज दवपूजासगतिकरणदानेषु)

यजति—यजते । इयाज । ईजतु । ईजु । इयजिथ । इयष्ठ ।
ईजिव^१ । यष्टा^२ । यक्षयति । आशिपि—इज्यात् । अयाक्षीत् । अयाष्टाम् ।
तद्धि—यजते । ईजे ।

६१ (वह प्रापणे)

वहति । उवाह । ऊहतु । ऊहु । उवहिय—उवोढ । ऊहथु । ऊह ।
उवाह—उवह । उहिव । उहिम । कादिनियमादिट्, थलि भारद्वा-
जनियमादिढभावे । घत्वढत्वष्टुत्यढलोपेषु “सहिप्रहोरोदवर्णस्य”
इत्योत्वे उवोदेति भवति । एषमन्यत्रापि तवर्गादौ ढत्वादि ।
यजिघत्सप्रसारणम् । वोढा । वक्ष्यति । वहतु । अवहत् । वहत् ।
आशिपि कित्त्रात्सप्रसारणे उह्यात् । अवाक्षीत् । अवोढाम् ।
तद्धि—तहते । ऊहे । उहिपे । वोढा । वक्ष्यते । वहताम् । अवहत् ।
वहेत् । वक्षीष्ट । अयोढ । अवक्षाताम् । अवक्षत । अवोढा । अवोढम् ।
विवक्षते । वावक्षते । इति पचान्योऽनुदात्ता स्वरितेत्

६२ (वस निवासे)

वसति । उवास । ऊपतु । ऊपु । उवसिय—उवक्ष्य । उपिव ।
सप्रसारणम् यजिनत् । वस्ता ।

वत्स्यति^३ । वसतु । अवसत् । वसेत् । उप्यात् । अवासीत् । अव-
त्ताम् । अवात्सु । अवत्स्यत् । विवत्सति । वावस्यते । वावसीति । वाव
स्ति । वासयति । अनीवसत् । इति अनुदात्त उदात्तेत् ।

६३ (वद व्यक्ताया वाचि)

वदति । उवाद । उवतु । उदु । उवन्थि । उवाद—उवद् ।
ऊदिव । यजादित्वाकिति सम्प्रसारणम् । वदिता । वदिष्यति । वदतु ।
अवदत् । वदेत् । उद्यात् । अवादीन्^४ । (इति यजादिर्गण समाप्त)
इति उदात्त उदात्तेत् ।

१—कादिनियमादिट्, भारद्वाजनियमाद् इह्विकल्प किति वचिस्त्वपि-
यजादीना किति (६ १ ११) इति सप्रसारणम्, सप्रसारणे च कृते लिट्भ्या
सस्य० (६ १ १७) इति घञिति घम्यासस्य सप्रसारणम् । २—अश्चभ्रत्ज०
(८ २ ३६) ष्टुना ष्टु (८ ४. ४०) ३—स स्यादधातुके (७ ४ ४६)
४—वदप्रजहलन्तस्थाव (७ २ ३)

अथादादिर्गणः

१. (अद भक्षणे)

अति । अत्तः । अदन्ति । अत्ति । अत्थः । अत्थ । अदिम ।
अद्वयः । अद्वयः । आद^१ । आदतुः । आदुः । आदिथ । आदधुः ।
आद । आद । आदिथ । आदिम ।

जयाम । जयतुः । जयः^२ । जयसिथ । जयधुः । जय । जयास—
जयम । जजिथ । जजिम^३ । अत्ता । अत्स्यति । अत्सति । अत्माति ।
अत्सन् । अत्सान् । अत्सद् । अत्साद् । आत्सनि । आत्माति । आत्सन् ।
आत्मान् । आत्माद् । आत्माद् । अत्तु—अत्तान् । अत्ताम् ।
अदन्तु । अद्वि—अत्तात् । अत्तम् । अत्त । अदनि । अदाय । अदाम ।

आदन्^४ । आत्ताम् । आदन् । आदः । अत्ताम् । आत्त । आदम् ।
आद्व । आद्वम् । अद्यान् । अद्याताम् । अद्युः । अद्यान् । अद्यान्ताम् ।
अद्यामुः । अद्यमन्^५ । अद्यमताम् । अद्यमन् । आत्स्यन् ।

२. (हन हिमागतयो)

हन्ति । हन्तः^६ । हन्ति । हंसि । हथः । हथ । हग्मि । हंस्यः । हन्मः ।

जपान । जपतुः^७ । जपन्तुः । जपनिथ^८—जपन्थ । जपन्धुः ।
जप्न । जपान—जपन । जप्तिव । जप्तिम । हन्ता । हन्तिप्यति^९ ।

हंसति । हंसाति । हंसन् । हंसात् । हंसद् । हंसाद् । हंसति ।
हंसाति । हंसन् । हंसात् । हंसद् । हंसाद् ।

हन्तु—हतात् । हताम् । हन्तुः । जहि^{१०} । हन्तम् । हन् । हतानि ।

१—अत आदेः (७. ४. ७०) २—निट्प्रत्ययनराध्याम् (२. ४. ४०) न पठ्यते ०
(१. १. ४७) आदिनिष्ठायादि । यत्नि भारद्वाजनियमः इहरपति ० इत्यनन्
वाध्यते । ३—अद. सर्वपात्र (७. १. १०८) ४—मुट्प्रत्ययोः पात्र (२. ४. १७)
मुट्प्रत्ययः । ५—अनुदासारादेशः (१. ४. १८)

६—गणहन् (१. ४. ६८) ७—भारद्वाजनियमाद् विकल्पः ८—अदन्तो
स्ये (७. २. ७०) ९—हन्तेः (१. ४. १९.) इति आदेशः । अन्त्य पक्षिद्वय-
नामाग (१. ४. २२) इत्यनिदाशम् अतो हेरिति मुट् न भवति ।

हनाव हनाम । अहन् । अहताम् । अघ्नन् । अहन् । अहतम् । अहत ।
 अहनम् । अहन्व । अहन्म । हन्यान् । हन्याताम् । हन्धुः । वध्यात्^१ ।
 वध्यास्ताम् । वध्यासुः । अवधीत्^२ । अवधिष्टाम् । अवधिपुः । अहनिष्यत्
 जिघांसति^३ । जह्न्यते^४ । जहघनीति-जहघन्ति । जहघतः । जह्-
 घ्नति । X हन्तेर्हिसायां घ्नीभावो वक्तव्यः X जेघ्नीयते । घातयति ।
 अजाघतत् । कर्मणि-हन्यते । जघ्ने । हन्ता-घानिता^५ । हनिष्यते-घानि-
 ष्यते । हन्यताम् । अहन्यत । हन्येत । आशिपि-घानिपीष्ट-वधिपीष्ट ॥
 लुङि-अवधि-अघानि । अवधिपाताम्-अहसाताम्-अघानिपाताम् ।
 इति उदात्तावनुदात्तौ ॥

३. (ईड स्तुती)

ईद्रे । ईडाते । ईडते । ईडिपे^१ । ईडाथे । ईडिध्वे । ईडे । ईड्यहे ।
 ईड्महे । ईडांचक्रे । ईडिता, ईडितासं । ईडिताहे । ईडिप्यते । ईड्टाम् ।
 ईडाताम् । ईडिप्य । ईडिध्यम् । ईडे । ऐट् । ऐडाताम् । ऐट्ठाः । ऐड्ध्यम् ।
 ऐडि । ऐड्यहि । ऐड्महि । ईडीत । ईडीथाः । ईडिध्यम् । ईडिय ।
 आशिपि-ईडिपीष्ट । ईडिपीष्ठाः । ईडिपीध्यम् । ईडिपीय । ऐडिष्ट ।
 ऐडिध्यम् । ऐडिपि । कर्मणि-ईड्यते । सनि-ईडिडिपते । ईड्यति ।
 मा भवान् ईडिडत् ।

४ (आस उपवेसने)

आस्ते । आसाते आसते । आस्ते । आसाथे । आध्वे । आसे ।
 आम्वहे । आस्महे । आसांचक्रे ।

५. (आडः शासु इच्छायाम्)

आशास्ते । आशासाते । आशासते । आशास्ते । आशासाथे ।
 आशाध्वे । आशासे । आशास्वहे आशास्महे ॥ इति उदात्ता अनुदात्ततः

१—इतो वय जिङि (२. ४. ४२) २—शुडिष (२. ४. ४३) ३—अग्न-
 गमो वनि (१. ४. १६) ४—नृपतोऽनुनासिकान्तस्य (७. ४. ८३) ५—त्यसिष्
 (१. ४. १२) ६—ईड्यनोर्णो व (७. २. ७८)

६ (पूङ् श्राणिगभंविमोचने)

मूते । मुशते^१ । मुषते । मूषे । मुषाये । सूत्रे । मुने । सूत्रे ।
सूत्रे । मुपुषे । मुपुषाते । मुपुषिरे । मुपुषिरे । मुपुषिरे—मुपु-
षिरे ।

७ (शीट् म्वप्ने)

शेते । शयाते^१ । शेते^२ । शेपे । शयाये । शेप्ये । शय । शेनहे ।
शेमहे । शिरये । गिम्याते । शिरियरे । शिरिये । गिरयाये । शिरिय्ये—
शिरिय्ये । शिरये । शिरिय्यहे । शिरिय्यहे^३ । गयिता । शयिप्यते ।
शेताम् । शयाताम् । शेताम् । शेप्य । गयावाम् । शेप्यम् । शयै ।
शयारहे । शयामहे । अरोत । अगयानाम् । अशारत । अरोथा ।
अगयावाम् । अशाय्यम् । अशायि । अरोतहि । शयात । गयीयाताम् ।
शयारन् । गयीथा । गयीय ॥ आशिपि—शयिपीष्ट । शयिपीड्यम्—
शयिराप्नम् । गाययीय । अगायिष्ट । अशयिष्टा । अगयिड्यम्—
अगयिड्यम् ॥ अगयिषि । शिशयिपते । शिशय्यते^४ । शेशयीति ।
शेशानि । शशान । शेशयति । अशीशयन् ॥ इति उदात्ताय-
नुदात्तेषी ॥

८ (पुङ् स्तुती)

स्तुते । स्तुगते । स्तुगते । स्तुपे । स्तुप्ये । स्तुपे । स्तुनहे । स्तुप्ये ।
स्तुगते । स्तुगिरे । स्तुप्ये^१ । स्तुप्ये । स्तुप्ये ।

स्तोता । स्तोप्यते । स्तोताम् । स्तोताताम् । स्तुप्य । स्तुप्यम् । स्तुप्ये ।
अस्तुत । अस्तुताताम् । अस्तुथा । अस्तुवि । स्तुधीत । स्तुवीया-
ताम् । स्तुवीया । स्तुगीत । आशिपि—स्तोपीष्ट । स्तुहि—अस्तोष्ट ।
अस्तोपाताम् । अस्तोप्या^२ । अस्तोड्यम् । अस्तोपि । यदा “तुस्तु-
शम्यम्” इतीदं नदा स्तुवीते । स्तुगीये । स्तुवीप्ये । स्तुवीरहे । स्तु-
वीताम् । स्तुवीप्य । स्तुवीप्यम् । अस्तुगीत । अस्तुगीथा । अस्तुवीप्यम् ।
अस्तुगीरहि । परमेष्ठेयु—स्तोति^३—स्तुगीति । स्तुत—स्तुवीतः । स्तोपि-

१—प्रति श्रुतानु० (६ ४ ७३) २—शीट् सावधानुके पुण
(७ ४ २१) ३—शीट् स्तु (७. १ ६) ४—एनेकावो० (६ ४ १२)
५—प्रपङ् वि विडति (७. ४. २२) ६—आदिपाठादिद्वयम् । ७—तुस्तुत-
म्यम् : सावधानुके (७. ३ ६५)

स्तवीषि । स्तोमि^१ स्तवीमि । स्तुवः—स्तुवीवः । तुष्टाव । तुष्टोथ । तुष्टय । स्तोता । स्तोष्यति । स्तोतु—स्तवीतु । स्तुतात्-स्तुवीतात् । स्तुताम्-स्तुवीताम् । स्तुवन्तु । स्तुहि-स्तुवीहि । स्तवानि । अस्तीत्^२-अस्तवीत् । अस्तुताम्-अस्तवीताम् । अस्तुवन् । अस्तीः । अस्तवीः । अस्तवम् । अस्तुव । अस्तुवीव । स्तुयात् । स्तुवीयात् ।

स्तुयाताम्-स्तुवीयाताम् । स्तुयुः—स्तुवीयुः । स्तुयाः—स्तुयावीः । स्तुयाताम्-स्तुवीयाताम्-स्तुवीयुः । स्तुयाम्-स्तुवीयाम । आशिपि-स्तुयात् । अस्तावोत्^३ । अस्ताविष्टाम् ।

६. (ब्रून् व्यक्तायां वाचि)

ब्रूते, ब्रुवाते, ब्रूवते । ब्रूये, ब्रुवाये, ब्रूध्वे । ब्रुये, ब्रुवहे, ब्रूमहे । ऊच^४, ऊचाते, ऊचिरे । ऊचिये, ऊचाये, ऊचिध्वे । ऊच, ऊचिषहे, ऊचिमहे । वक्ता, वक्तासे, वक्ताहे । वक्ष्यते । ब्रूताम्, ब्रुवाताम्, ब्रूध्वम्, ब्रूयै, ब्रुवावहे । अब्रूत, अब्रूथाः, अब्रूयि । ब्रूवीत, ब्रुवीयाताम्, ब्रूवीय, ब्रुवीयहि । आशिपि—वक्षीष्ट । वक्षीष्ठाः, वक्षीय । अबोचत्^५, अबोचेताम्, अबोचन्त ।

ब्रवीति^६, ब्रूतः, ब्रुयन्ति । ब्रवीषि, ब्रूथः, ब्रूथ । ब्रूमीमि, ब्रूवः, ब्रूम । आह^७, आहनुः, आहुः । आत्थ, आहथु ।

उवाच^८, ऊचतुः, ऊचु । अवचिथ—उवकथ, ऊच । उवाच-उवच, ऊचिथ । वक्ता । वक्ष्यति । ब्रूतीतु—ब्रूतात्, ब्रूताम्, ब्रूह, ब्रूहम्, ब्रुयाणि । अब्रूवीन् अब्रूनाम्, अब्रूवीः, अब्रूयम्, अब्रूव । ब्रूयात्, ब्रूयाताम् । उच्चात्^९, उच्चास्ताम् । अवोचत्, अवोचताम्, अवोचन् । अनुदात्तो उभयतोभाषी ।

१०. (इण् गतो)

एति, इतः, यन्ति^{१०} । एषि, इथः, इथ । एमि, इवः, इमः ।

१—उतो वृद्धितुं किं हलि (७. ३. ८७) २—स्तुमुष्मन्त्यः परस्मैसंभु (७. २. ७२) इति इट्, सिचि वृद्धिः (७. २. १) इति वृद्धिः ३—ब्रुवो वाचिः (२. ४. ५३) वचिस्त्वपि० (६. १. १५) ४—वच उम् (७. ४. २०) ५—ब्रुव ईट् (७. ३. ६३) ६—ब्रुव पञ्चनामादित० (३. ४. ८५) ७—लिट्पम्यासङ्ग० (६. १. १७) ८—किदाशिपि (३. ४. १०४) वचिस्त्वपि० (६. १. १५) ९—इणो मण् (६. ४. ८१)

इयाय, ईयन्तुः, ईयुः । इययिथ—इयेथ । ईययुः, इय । इयाय—इयय, ईयिय । एता । एप्यति । एतु-इतात्, इताम्, यन्तु । इडि, अयानि । ऐन्, ऐनाम्, आयन् । ऐः, आयम् । इयान्, इयाताम् । ईयान्^१, ईयास्ताम् । अगात्^२, अगाताम्, अगुः । यगा, अगातम्, अगात । अगाम्, अगाव, अगाम । ऐप्यत् । इत्यनुदात्त परस्मैभाष ।

११. (इङ् अध्ययने)

अधीते, अधीयाते, अधीयते । अधिजगे^३, अधिजगाते, अधिजगिरे । अध्येता अध्येप्यते ।

अधीताम्, अधीयाताम्, अधीयताम् । अधीप्त्र, अधीयाधाम्, अधीप्त्रम् । अध्ययै, अध्ययावहे, अध्ययामहे । अध्यैत, अध्यैयाताम्, अध्यैयत । अध्यथा, अध्यैयायाम्, अध्यध्वम् । अध्यैयि, अध्यैवहि, अध्यैमहि । अधीयीत, अधीयीयाताम् अधीयीरन् । अध्यपीष्ट । लुङि-अध्यगीष्ट^४—अध्यैष्ट । अध्यगीप्यत—अध्यैप्यत । इति अनुदात्त-आत्मनेभाषः ।

१२. (अस भुवि)

अस्ति, स्तः^५, सन्ति । असि^६, स्थ, स्थ । अस्मि, स्व^७, स्म^८ ।

बभूव^९, बभूवतुः, बभूवुः । भविता । भविष्यति । अम्तु—स्तात्, स्ताम्, सन्तु । ण्वि^{१०}—स्तात्, स्तम्, स्त । असानि, असाव, असाम । आसात्^{११}, आस्ताम्, आसन्, आसीः, आस्तम्, आस्त, आसम, आस्य, आस्म । स्यात्, स्याताम्, स्युः । भूयात्, भूयास्ताम् । अभूत्^{१२} । अभविष्यत् । चकरोतञ्च । यङ्लुगन्तमप्यदादिकम् ।



१—प्रकृतसर्विधातु० (७ ४ २५) २—गातिस्था० (२ ४ ७७) ३—गाङ् लिटि (२. ४. ४६) आतो लोप० (६ ४. ६४) ४—विभाषा वुङ्लुङो. (२ ४ ५०) ५—इनसोरलोप (६ ४. १११) ६—तासस्योलोप (७ ४. ५०) ७—मस्तेर्म् (२. ४. ५२) ८—ध्वगोरेढावभ्यासलोपश्च (६. ४. ११६) ९—अस्तिसिचोऽष्टवने (७ ३. ६६) १०—गातिस्थातु० (२. ४ ७७)

अथ जुहोत्यादिर्गणः

१ (हु दानादादयो)

लटि^१ । जुहाम्, जुहवतु^२, जुहुवु । जुह्विष—जुहोथ, जुह्वथु, जुहुव । जुहाय—जुह्व, जुहुचिव ।

जुहवाचकार^३ । होता । होष्यति । जुहोतु, जुहुताम्, जुह्वतु । जुहुधि^४ । जुह्वानि । अजुहोत्, अजुहुताम्, अजुहुवु^५ । अनुहो, अजुहुतम्, अजुहुत । अजुह्वम् । जुहुयात्, जुहुयाताम्, जुह्वयु । आशिपि—हूयात्, हूयास्ताम् । अहौपीत्, अहौष्टाम्, अहौषु । अहौपी, अहौष्टम्, अहौष्ट । अहौषम्, अहौष्य ।

जुहूपति^६ । जोहूयते । जोहूवीति जोहोति । हारयति । अजुह्वत ।

७ (लिभी भये)

विभेति, विभित —विभीत^७, विभ्यति । विभयाचकार^८—विभाय । भेता । भेष्यति । विभेतु—विभितात्—विभीतात्, विभ्यतु—विभीहि—विभिहि—विभितात् विभीतम् । विभयानि । आभमेत् अविभीताम् । अविभयु । अविभे, अविभातम्—अविभितम् । अविभयम्, अविभीव—अविभिय ॥ विभिनात्—विभीयात् विभयाताम्, विभीयाताम् विभिया—विभीया । विभियाम् विभीयाम् ॥ आशिपि—भीयात्, भीयास्ताम्, भीयासु । अभैपीत्, अभैष्टाम्, अभैषु । अभैपी, अभैष्टम्, अभैष्ट । अभैषम्, अभैष्य । वेभीयते । वेभयीति वेभेति, वेभीत—वेभित, (प्रकृतिग्रहणे यङ्लुगन्तस्यापि ग्रहण भवतीति चेत्वम्) ।

३ (ह्री लज्जायाम्)

जिह्वेति, जिह्वीत जिह्वियति । जिह्वयाचकार—‘जिह्वाय । ह्वेता । ह्वेष्यति । जिह्वेतु । अजिह्वेत् ।

जिह्वीयात् । ह्वीयात् । अह्वैपीत् । अह्वेष्यत् । इत्यनुशात्ता परस्मैभाषा ।

१—जुहात्यादिभ्य इत् (२ ४ ७५) २—अचिन्तु० (६ ४ ७७)

३—भौहामृह्वा इत्तुवच्च इति पक्षे आम् प्रत्यय इत्तुवद्भावाद्विवचन च । ४—हुभन्त्या हेपि (६ ४ १०१) ५—हृन्तुवो सावधानुने (६ ४ ८७) ६—अभ्यन्तगमा सनि (६ ४ १६) ७—नियोज्यतरस्याम् (६ ४ ११५)

४ (पृपालनपूरणयो)

लटि^१ । पपार, पप्रतु^२—पपरतु पप्रु—पपरु । पपरिभ । पप्रथु,
पपरथु पप्र—पपर, पपार—पपर, पप्रिअ—पपरिव । परिता^३—परीता ।
परिप्यति—परीप्यति । पिपतु^४—पिपृतात्, पिपृताम् । पिपुरतु । पिपूर्हि,
पिपूर्तम् पिपूर्त । पिपराणि, पिपरात्र । अपिप अपिपृताम्, अपिपरु,
अपिप, अपिपूर्तम्, अपिपूर्त । अपिपरम, अपिपूर् । पिपृयात् पिपृ-
याताम्, पिपृयु^५ ॥

आशिपि—पूयात्^६, पूयास्ताम् । पूयांमु । अपारोत्, अपारिष्टाम्,
अपारिपु । अपारी, अपारिष्टम, अपारिष्ट । अपारिपम्, अपारिप्व,
अपारिप्म ।

पिपूर्पति, पिपरिपति—पपरीपति । पोपूर्यते । पापरीति—पापति,
पापूर्त, पापुरति । इत्युत्त परस्मैभाष

५ (दुभञ् धारणपोषणयो)

निभर्ति, निभृत^१, निभ्रति । बभार, बभ्रतु, बभ्रु । बभर्द्य, बभ्रिअ ।
निभराअकार । भर्ता । भरिप्यति । निभर्तु, निभृताम्, निभराणि ।
अनिभ, अनिभृताम्, अनिभरु । निभृयात् । भ्रियात् । अभाषीत् ।
अभरिप्यत् ।

निभृते, निभ्राते, निभ्रते । बभ्रे—विभराञ्चक्रे । विभृताम् ।
अनिभृत । निभ्रीत । भृषीष्ट । अभृत । अभरिप्यत् । इत्यनुदात्त
उभयतोभाष ।

६ (ओहाट् गतो)

जिहीते, जिहाते, जिहते । जिहीये, जिहीध्वे । जिहे जिह्वहे ।

७ (आहाव् त्यागे)

जहाति, जहिन^१—जहीत, जहति, जहासि, जहीय—जहिय,
जहीय—जहिय । जहामि, जहिय—जहीय, जहिम—जहीम । जही,
जहतु, जहु । जहाय—जहिय, जहथु, जह । जही, जहिय । हाता ।
हास्यति ।

१—अतिपिपर्योश्च (७ ४ ७७) २—ऋच्ययताम् (७ ४. ११)

३—वता वा (७ २ ३८) ४—उद्योष्यपूर्वस्य (७ १ १०२) ५—भृवामित्

(७ ४ ७६) ६—जहातेश्च (६. ४ ११६)

जहातु—जहितात्, जहीतात् जहिताम्—जहीताम्, जहतु ।
जहिहि—जहीहि-जहाहि, जहानि, जहाव । अजहात्, अजहिताम्,
अजहीताम्, अजहुः^१ । अजहा । अजहाम् ।

जह्यात्, जह्याताम्, जह्युः । हेयात्^२, हेयास्ताम्, हयासुः ॥ अहासीत्,^३
अहासिष्टाम् । अहापीः ॥

जिहासति । जेहीयते । हाययति । अजीहयत् ॥ इत्यनुदात्त परस्मैभाषः ।

८. (डुदाब् दाने)

ददाति, दत्तः^४, ददति^५ । ददासि, दत्थः, दत्थ । ददामि, दद्वः,
दद्वमः ॥ ददौ, ददतु, ददुः । ददाथ—ददित्थ, ददथु, दद ॥ ददौ,
ददिव, ददिम ॥ दाता । दास्यति । ददातु—दत्तात्, दत्ताम्, ददतु ।
देहि^६ दत्तात्, दत्तम्, दत्त । ददानि ॥ अददात्, अदत्ताम्, अददुः ।
अददाः, अदत्तम्, अदत्त । अददाम्, अदद्व ॥ दद्यात्, दद्याताम्,
दद्युः । देयात्, देयास्ताम्, देयासुः, अदात्^७, अदाम्, अदाव, अदाम ।
अदास्यत् ॥

दत्ते, ददाते, ददते, दत्से, ददाथे, दध्वे । ददे, दद्वहे, दद्वमहे ॥ ददे,
ददाते, ददिरे । ददिपे, ददाथे, ददिध्वे । ददे, ददिवहे, ददिमहे ॥
दातासे । दास्यते । दत्ताम्, ददाताम्, ददताम् । दत्स्व, ददाथाम्,
दध्वम् । ददै, ददावदै, ददामदै । अदत्त, अददाताम्, अददत्त ।
अदत्थाः, अददाथाम्, अदध्यम् । अददि, अदद्वहि ॥ ददीत, ददीया-
ताम्, ददीरन् । दासीष्ट ॥

अदित^८, अदिपाताम्, अदिपत । अदिथाः, अदिपि ॥ दातुमिच्छति
दिस्सति—दिस्सते^९ । देदीयते । दादाति—दादेति । दापयति । अदीदपत् ॥
अनुदात्त उभयतोभाषः ।

९ (डुधाब् धारणपोषणयो)

दधाति, धत्तः^{१०}, दधति, दधसि, धत्थः, धत्थ, दधामि, दध्वः ।
धम्मः । दधौ । धाता । धास्यति । दधातु—धत्तात्, धत्तां, दधतु । धेहि,

१—सिजम्यस्तविदिम्यश्च (४. १. १०६) २—एतिङि (६. ४. ६७)

३—यमरमनमाता सकृ च (७. २. ७३) ४—क्षाम्यस्तयोरानः (६. ४. ११२)

५—अदम्यस्तात् (७. १. ४) ६—ध्वसोरेद्धावम्यासलोपश्च (६. ४. ११६)

७—गातिस्पापु० (२. ४. ७७) ८—स्थाष्पोरिच्च (१. २. १७) ९—सनि

मीमाषु० (७. ४. ५४)

दधानि । अदधात्, अधत्ताम्, अदधुः । अदधाः । अदधाम, अदध्य ।
दध्यात्, दध्याताम् दध्युः । दध्याः, दध्यातम् । धेयात्, धेयास्ताम् ।
अधात्, अधाताम्, अधुः । अधाः, अधातम्, अधात । अधाम्, अधाव,
अयाम् ॥ धत्ते, दधाते, दधते । धत्ते, धत्ते, दधे, धध्यहे । दधे, दधाने,
दधिरे । दधिपे, दधे । धाता । धास्यते । धत्ताम्, धत्त, धध्यम्, दधै,
दधावहे । अधत्त, अधत्थाः, अदधि अदध्यहि । दधीत । धापीष्ट ।
अधित, अधिधाताम्, अधिपत । अधिधा । अधिपि । धित्सनि-धि-मते ।
देवोयते । दाधानि-दाधेति, धत्तः, दाधति । धापयात-धापयते ।
इत्यनुदात्त उभयतोभाषः ।

अथ दिवादिगणः

१. (दिव् क्रीडा-विजिगीषा-व्यवहार-द्युति-स्तुति-मोद-
मद-स्वप्न-कान्ति-गतिषु)

लटि^१ । दिदेव, दिदिषतुः, दिदिवुः । देविता, देविष्यति । दीव्यतु ।
अदीव्यत । दीव्येत् । दीव्यात् । अदीवीत् । अदेविष्यत् ।

२. (नृती गात्रविक्षेपे)

नृत्यति । ननर्त । नर्तिता^२ । नर्तिष्यति-नत्स्यति । नृत्यतु । अनृ-
त्यत् । नृत्येत् । नृत्यात् । अनर्तीत् । अनर्तिष्यत्-अनत्स्यत् । इति
उदात्तायुदात्ते^३ ॥

३. (पूङ् प्राणिप्रसवे)

सूयते । सुपुने । सोता-सविता^४ । सोप्यते-सविष्यते ।
सूयाम् । असूयत । सूयेत । सोपीष्ट-सोपीयाम् । सविपीष्ट
सविपीयाम् । असोष्ट । असविष्ट । इत्यनुदात्त आत्मनेभाषः ।

४. (शो तनूकरणे)

शयति^५, श्यतः, श्यन्ति । शशी, शशानुः, शशुः । शशाय-शशिय ।
शाता, शास्यति । श्यतु । अश्यत् । शायान् । शायाम्नाम् । अशान्^६,
अशानाम् अशुः अशा । अशामीन्^७ । अशामिष्टाम् ।

१-दिवादिभ्यः स्यत् (१. १. ६६) २-नेर्गुणिवि० (७. २. १७) ३-
स्वरतिगुणित्पूर्वनि० (७. २. ४४) ४-घोत स्यति (७. १. ७६) ५-दिवादि
प्रापेद्नाच्चागः (७. ४. ७७) ६-दशमनमातां नष्ट् (७. २. ७३)

५. (छो छेदने) ६. (पोऽन्तकर्मणि)

छद्यति । चच्छौ । इत्यादि सर्वं श्यतिवत् । स्यति । ससौ । इत्यादि सर्वं श्यतिवत् ।

७. (दो अवखण्डने)

द्यति । ददौ । इत्यादि सर्वं श्यतिवत् । श्यतिप्रभृतयोऽनुदात्ता-परस्मैभाषाः ।

(जनी प्रादुर्भावे)

जायते^१ । जज्ञे, जज्ञाते, जज्ञिषे, जज्ञिवहे । जनिता । जनिष्यते । जायताम् । अजायत । जायेत । जनिषीष्ट । लुङ्—अजनि—अजनिष्ट^२ अजनिषाताम् । दीपजन० (३ १ ६१) कर्त्तरि तशब्दे च्लेर्वा चिण् । जनिष्याश्च (७. ३. ३५) डात वृद्धिनिषेधः । जाजायते । जञ्ज-न्यते । जञ्जनीति-जञ्जन्ति, द्रष्टुदात्त अनुदात्तेत् ।

८—(पद गती)

पद्यते । पेदे । पत्ता । पत्यते । पद्यताम् । अपद्यत । पद्येत् । परमीष्ट । अपादि, अपसाताम् । चिण् ते पदे.. (३. १. ६०) इति कर्त्तरि तशब्दे चिण् । पिंसने । पनीपद्यत । पनीपदि ।

९. (विद दैन्ये) १०. (विद सत्तायाम्)

स्वियान् । चिस्त्रिटे । स्तेला । स्तेत्यने । तिस्रीष्ट । अस्त्रित् । लिङ् सिचौ० (१. २. ११) इति किस्वाद् गुणो न ॥ विद्यते । इत्यादि स्विदिषत् ।

११. (बुध अवगमने) १२. (युध सम्प्रहारे)

बुध्यते । बुबुधे । बोद्धा । भोत्स्यते । बुध्यताम् । अबुध्यत । बुध्येत् । भुत्सीष्ट । अबोधि-अबुद्ध । अनुत्साताम् । दीपजनेति तशब्दे वा चिण् ॥ युध्यते । इत्यादि बुधिचन् । लुङि ते तु अयुद्ध इति सिजेव । इत्यनुदात्ता अनुदात्ततः ॥

१३. (व्यध ताडने)

विध्यति^३ । विव्याध, विव्यधतु, विव्यधुः । विव्यधध—विव्यध,

१—शात्रनोर्जा (७. ३. ७९) २—प्रहिणोति (६. १. १६) ।

विध्ययथुः, विध्यव । विद्याय—विध्यय, विध्यधिव, विध्यधिम ।
व्यदा । व्यस्यति । विध्यतु । अविध्यन् । विध्येन् । विद्याय । सिदाशिपि
(३ ४ १०४) इति किन्नामप्रसारणम् । अव्यात्मीन् । अव्याद्वाम् ।
अव्यात्सु । अव्यम्यत् ।

१८ (पुप पुष्टी)

पुयति । पुषोप, पुषोपिथ, मादिनियमाश्रित्यमिट् । भारद्वाज
नियमस्तु इदंदेशोऽजन्तानाम्-इता चेद्दिह न प्रवर्तते । पोष्टा । पोष्टरान् ।
पुष्यतु । अपुयत् । पुष्यंत । पुष्यात् । अपुषन् ।

१७ (शुप शोपणो, तुप प्रीतो, दुप वैकृ-य)

शुयति । तुयति । दुपयति । इत्यादि पुषिरन् ।

१८ (नून काय) १९ (शुभ वृभुक्षायाम्)

मुभ्यति चुक्रोथ, चुक्रोथिथ । मोढा । क्रोम्यति । मुभ्यति । चुनोय ।
चोढा । इत्यनुदात्ता उदात्तेन ।

२१ (अमु उपगमे, अमु तपमि मेद च)

शाम्यति^१ । शशाम । शेमतु, शेमु । शेमिथ, शमथुः, शेम ।
शशाम—शगम, शेमिथ, शेमिम । शमिता । शमिष्यति । शाम्यतु ।
अशाम्यत् । शाम्येन् । शम्यान् । अशमन्^२ । अशमिष्यन् । शाम्यन्ति ।

२५ (अमु क्षपे, जितृप पिपासायाम्, हृप तुष्टी, कुप क्रोध)

अस्यति । आम, आमिथ । असिता । असिष्यति । अम्यतु ।
आम्यत् । अम्येन् । अम्यान् । आरमन्^३, आम्याताम् । तृप्यति ।

२६ (जिमिदा स्नहने)

मेयति^४ । मिमेद, मेदिथ । मेयिता । मेदिष्यति । मेयतु । अमेयन् ।
मेयेत् । मिमात् । अमिन्^५ ।

२७ (गृध्र अभिवाशायाम्=लान्ध वरने मे)

गृध्रति । जगर्थ, जगृधन्, जगर्थिथ, जगृधिर । गरिता । गरि-

१—शमाम्प्राता दीप इषति (७ ३ ७४) २—पुषादिशब्दादह (३ १ ११)
३—अस्यतिवक्तिव्यानिभ्याम् (३ १, १०) ४—मिदृष्टं (७, ३ ८०)
५—पुषादिशब्दादह अमिदन्, अमदिष्यति मिदं पुषादिशब्दाद्वेदोऽह इति निश्चयं ।

प्यति । गृध्यतु । अगृध्यत् । गृध्येत । गृध्यात् । अगृधत् । अगर्धिप्यत् ।
जिगर्धिपति । जरीगृध्यते । जगर्धि । लङि सिपि अजर्धा । इति
पुपादय । इति शमादय । उदात्ता उदात्तेत् ।

अथ स्वादिर्गणः

१—२ (पुञ् अभिपवे, चिज चयने)

पुष—लटि* । सुपाव, सुपुवतु, सुपुतु । सुपविथ—सुपोथ, सुपु-
यथु, सुपुव । सुपाव—सुपव, सुपुविष, सुपुबिम । ऋदिनियमादिट्, थलि
तु भारद्वाजनियमादिङ् विकल्प । उवच् अगुणवृद्धिविषये ।

सोता । सोप्यति । सुनोतु—सुनुतात् सुनुताम्, सुन्यन्तु । सुनु—
सुनुतात्, सुनुतम्, सुनुत । सुनयानि, सुनयाव, सुनयाम । आदि
पित्वाद्भित्वात् यण बाधित्वा गुण । असुनोत्, असुनुताम्, असु-
न्यन् । असुनो, असुनुतम्, असुनन्त । असुनयाम, असुन्य, असुन्म ।
लोपश्चास्यान्यतरन्याभ्यो (६ ४ १०७) सुनुयात् । सूयात्, सूयास्ताम् ।
असावीत्, असाविष्टाम्, असाविष्ट । असावी असाविषम् ।

सुनुते सुन्याते, सुन्यते । सुनुपे, सुन्वाथे, सुनुध्वे । सुन्दे, सुन्वहे—
सुनुवहे । पूर्ववद्यण् वमारलोपो । सुपुने, सुपुविषे, सुपुविध्वे—सुपुविद्ध्वे ।
विभापेत् (८-३-७६) सुपुवे सुपुविह्वे । सोता । सोप्यते । सुनुताम्,
सुन्वाताम्, सुन्वताम् । सुनुप्य, सुन्वाथाम्, सुनुध्वम् । सुनयै, सुनयावहे,
सुनयामहे । असुनुत, असुन्याताम् । असुन्वि, असुन्वहि असुनुवहि ।
सुन्वीत् । सोपीष्ट, सोपीयास्ताम् । सोपीद्ध्वम् (इण् पीध्वम् ८-३-५८)
अमोष्ट, असोपाताम् । अपोप्राः । मुसूपति—मुसूपते । सोपूयते । सोपु-
यीति सोपाति, सोपुत, सापुवति । सावयति—अमूपुवत् । चिञ्-चिनोति ।
चिकाय, चिक्यतु, चिक्यु । चिक्रियथ चिक्रथ, चिक्रियव । विभापा ये-
(७-३-५८) अन्यथा चिकाय इत्यादि । चेप्यति चिनोतु । अचिनोत् ।
चिनुयात् । चोयान् । चेपीष्ट । अचेपीत् । चिनुते । चिक्ये चिक्ये । चेता ।
चेप्यते । चिनुताम् । अचिनुत । चित्रीत् । चेपीष्ट । अचेष्ट । इत्यनु-
दात्तापुमयतोभाषो ।

१—एतावा वशी० (८. २ ३७) २—स्वादिभ्य इतु (१. १. ७१)

३—उतरश्च प्रत्यपादसंयोगपूर्वात् (६ ४ १०६)

४ (आप्त् व्याप्तौ, शक्त् शक्तौ)

आप्नोति । आप्नुत आप्नुवन्ति । लोपश्च स्य० ट्ठुकारलोप
सयोगपूर्वत्वात् भवति । ह्यनुना सावचातुके इति यणपि असन्नाग
पूर्वस्यत्यादौ 'अचिश्नुचातु० इत्युभङ्' । आप, आपनु आपु । आपिथ,
आपिथ । आप्ता । आप्त्यति । आप्नुहि । उतश्च प्रत्ययान् इति हर्लुक्
सयोगपूर्वत्वात् । आशिपि-आप्थान् । आपन् लुदिच्यादङ् । शक्नाति,
शक्नुवन्ति । शक्नुहि । अशक्नान् । शक्नुयात् । अशक्न, लादत्वा-
दङ् । इत्यनुदात्तानुदात्तौ ।

५ (अशूट् व्याप्तौ सधाते च)

अशुते, अशुताते, अशुतते । अशुये, अशुय । अशुय अशु-
यहे ॥ शान् इति तन्मर्गस्य श्चु रनिषय । आनश आनशात्, आन-
शिपे आनते, आनशिपे अनङ्ङ् । आनशिपह आनश्वह आनशि
महे आनश्मह । उदिच्यादिङ्विस्त्प । माल ऋचा दना पत्न, पढा क सि
प्नुना प्नु इति कचपत्ने । अत आङ इति अभ्यासस्य ढाघत्य 'अना-
तेरच इति नुडागमे रूपाणि । अष्टा-अशिता । अशिप्यते-अक्षयत । अशु-
ताम् अशुत । आशुत, आशुता, आशुति । आशुतीव । अशिपाष्ट-
अक्षाष्ट । अशिष्ट आष्ट । अशिशिपव "स्मूङ्० (७ २-७४) आशास्यते
सूचिम्त्रि० इति यङ् । उदात्त अनुदात्तम् ।

अथ तुदादिर्गणः

(तुद व्यथने, एतुद प्रेरणे, दिश अनिसर्जन, भ्रस्ज
पाके, क्षिप प्रेरणे, कृप विलखने)

तुदति । तुतोद, तुतुदत्तु, तुतुदु । तुतोदिय । क्कानिनिधक्कानिट ।
तोत्ता । तोत्स्यति । तुदत्तु-तुदवान् । अनुदत्, अनुदताम्, अनुदन् । तुदे-
त् । तुयात् तुयात्ताम् । तुयात्सोन्, अतोत्ताम्, अतोत्सु । अतोत्सी
अतोत्त । अतोत्सम् । अतोत्त्व, अतोत्तम् ।

तुद्वे । तुद्वे । तुद्वताम्, तुद्वताम् । तुद्वन्ताम् । तुद्वत् ।
अनुदत् । तुदेत् । तुद्वोष्ट, तुद्वीयात्ताम् लिङ्स्त्रिचावात्मनेपदेपु
(१-२-११) इति कित्त्वान्न गुण । अनुत्त, अनुत्ताताम् । तुद्वत्सति । तुद्व-

सते । तोतुद्यते । तोतुदीति तोतोत्ति तोतुत्त तोतुदति । गुट नुदति
इत्यादि तुदिवत् ।

दिश—दिशति, दिशते । देष्टा, देक्ष्यति देक्ष्यते । अन्यत्सर्वं तुदिवत्
प्रिशोपस्तु लुङि शल इगुपवात्० (३१-१३५) इति कस, 'कसस्याचि'
(७,३ ७०) इत्यल्लोप अदिक्षत् अदिक्षताम् अदिक्षन् ।

दिदिक्षति । दिदिक्षते । हलन्ताच्च इति किरम् । देदिश्यते । देदि-
शीति देदेष्टि । देशयति अदीदिशत् ।

भ्रञ्ज-भृञ्जति । शस्य सार्यवातुकमपित् इति ङित्वात् ग्रहिज्या०
इति मप्रसारणम्, पररूपत्त्वम् । मला जश ऋशि इति सभारस्य ढकार-
स्तस्य श्चुत् जकार, न च श्चुत्वे ढत्प्रमसिद्धम् इति वाच्यम् भृञ्जतीना
मिति निर्देशाद् इति माधवीयवातुवृत्तिः । वभर्ज्ज, वभर्ज्जतु ।
वभर्ज्जु वभर्ज्जिथ-वभर्ज्ज, वभर्ज्जेषु । कारितनियमादिङ् यलि भारद्वाज-
नियमादिङ् प्रिक्ल्प । भ्रञ्जोरापधयारमन्यतस्याम् (६-४-४७) इति रेफोप-
धयोनिवृत्तिः । रमागमश्च विकल्पेन । आगमे अफार उच्चारणार्थः ।
अन्यडा वभ्रञ्ज, वभ्रञ्जतु वभ्रञ्जु वभ्राञ्जथ, वभ्रञ्ज, वभ्रञ्जथु, वभ्रञ्ज ।
वभ्रञ्जिव । भर्ष्ठा-भ्रष्टा । रमभावे रभा० इति सकारलोप । 'व्रश्च०'
आदिनामयत्र जभारस्य पत्वे ण्डुत्तम् ।

भर्ष्यति भ्रक्ष्यति । भृञ्जतु । अमृञ्जत् । भृञ्जेत्, भृञ्ज्यात् भृञ्ज्या-
स्ताम् । यासुट ङित्वासप्रसारणम् । रमागमश्चानन पूर्वविप्रातपेथेन
वाध्यते । अभार्क्षीत्, अभार्क्षाम्, अभार्क्षु । अभार्क्षी, अभार्क्षम्,
अभार्क्ष । अभार्क्षम्, अभार्क्ष, अभार्क्षम् । अभार्क्षीत्, अभार्क्षाम्,
अभार्क्षु इत्यादि । वद्व्रज० इति वद्धि । मलि सिचा लापे सकारस्या-
भावात् पढो क सि इति न । विभक्षति विभर्ज्जिपति, विभ्रक्षति, विभ्र-
जिपति । अनेनैव प्रकारेण आत्मनेपदे रुपाणि अभ्यस्तव्यानि ।

क्षिप—क्षिपिति । चिक्षेप । इत्यादि तुदिवत् । कृप-कृपति । कृपते ।
चकर्प । चकृपे । कृष्टा-कृष्टा कृक्षीष्ट X स्प्रशमृशकृपटृपट्टां च्ले सिञ्जा
यस्तव्य X अकाक्षीत् अकाक्षीत् । शल इगुपवादनित कस इति कस ।

कसस्याचि इत्यल्लोपे अकृक्षत् । इत्यनुदात्ता स्वरित्तेत ।

१२ (ओत्रश्चू छेदने)

चृश्चति । ग्रहित्येति संप्रसारणे, श्चुत्वे रूपम् । वव्रश्च, वव्रश्चतु,

१ अनुदात्तस्पर्चदु पयस्य० (६१-१८)

वप्रश्चु । वप्रश्चिच—वप्रष्ठ । ऊट्त्वात् सर्वात्रेड् विरूप । क्वादि-
नियम प्रतिपिद्धविषय इति थन्यपि विकल्प म् ।

प्रष्टा—प्रश्चिता । प्रक्षयति—प्रश्चिचयति । वृश्चतु । अवृश्चतु ।
वृश्चेत् । वृश्च्यान् । अप्रश्चीत् । अप्रश्चिष्टाम्, अप्रश्चिषु । अप्रश्ची,
अप्रश्चिष्टम्, अप्रश्चिष्ट । अप्रश्चिषम् । नेटि (७ २ ४) इति न
वृद्धि । अनिटि तु अप्राक्षीन् ।

१३ (इष इच्छायाम्, मिल इलेपणे, लिख अक्षरविन्यासे)
इच्छति । इष्य' इषतु । एषिता—एष्टा^२ । एषिष्यति । इच्छतु^३ ।
ऐच्छत् । ऐषीत् ।

मिलति इत्यादि । लिखति । लिलेख । लेखिता । लिखिष्यति ।
लिखतु । अलिखत् । लिखेत् । लिख्यात् । अलेखीन् । इत्युत्ता
उत्तात्त ।

१४ (मृड् प्राणत्याग)

म्रियते (म्रियतेर्लुङ् लिङाश्च इति (१ ३ ६१) तङ् । ममार, मम्रतु
मम्रु । ममर्थ । मम्रन । क्वादिनियमान्दि थलि तु अचस्तात्थत्य-
निटा नित्यम् इनीष् न । मना मरिष्यति । म्रियताम् । अम्रियत । म्रियत ।
मृषीष्ट । अमृत । चश्च (१ २ १२) इति लिङ्सिचो, चित्वाभ्र गुण ।

इत्यनुदात्त आत्मनभाप ।

१५ (कृ विक्षेपे)

क्रि०ति । चकार, चकुरु^४, चक्रुः । चकरिथ, चकरथु, चकर ।
चकार-चकर चकरिय, चकरिम ।

करिता-करीता^५ । करिष्यति-करीष्यति । किरतु । अकिरत् । किरेत् ।
कीर्यान् । इवे हलि चेति दीर्घ । अकारोत् । अकारिष्टाम् ।
चिरुरिपति—सनि प्रहप्रहोरश्च इति इतिनपेधे प्राप्ते, तन्पनाद इट् सनि
वा इति विकल्पिते क्रिश्च पञ्चम्य इति नित्यमिट् । चेकीर्यते । चाक-
रीति—चाकर्ति, चाकृत, चाकति । कारयति । अचीकरत् । इत्युदात्त
उदात्तेत् ।

१ सम्प्रासस्यासवर्णे (६-४-७८) २ तीपसह० (७-२-४८) ३ इषुगमिय-
माद्य (७-१-७३) ४—अञ्जल्यताम् (७ ४ ११) ५—वृत्तो वा (७ २ ३८)

१६. (प्रच्छ शीप्सायाम्)

पृच्छति । पप्रच्छ, पप्रच्छतुः, पप्रच्छुः । पप्रच्छिथ पप्रच्छ, पप्रच्छथुः पप्रच्छ । पप्रच्छ, पप्रच्छव, पप्रच्छिम । क्रादिनियमादित् । थलि तु भारद्वाजनियमाद् इङ्विकल्पः । प्रष्टा । प्रक्षति । पृच्छतु । अपृच्छत् । पृच्छेत । पृच्छयात् । अप्राक्षीत्, अप्राष्टाम्, अप्राक्षः ।

इत्यनुदात्त सदाच्चेत् ।

अथ रुधादिर्गणः

१ (रुधिर् आवरणे)

अयं द्विकर्मक । रुणद्धि । रूय, रूयतु, रूयिथ । रोद्धा । रोत्स्यति । रुणद्धु, रुन्धात्, रुन्धाम्, रुन्धन्तु । रुणद्धि, रुन्धम्, रुन्ध । रुणधानि, रुणवान्, रुणधाम । अरुणत्—अरुणद्, अरुन्वाम्, अरुन्धन् । अरुणत्—अरुणद्—अरुणः, अरुन्वम्, अरुन्व । अरुणधम्, अरुन्ध्व, अरुन्धम् । इङ् इयादिना तिस्थालोऽङ् । जश्च वा चत्वञ्च । सिपि "ऋश्च" इति वा रुन्धमपि । रुन्धात्, रुन्धाताम्, रुन्धुः । रुन्धात्, रुन्धास्ताम् । रुन्धासुः । लुङि इरितो वा (३ १. ५७) इति अङ् पठे—अरुधत्, अरुधताम् । अन्यत्रा—अरौत्सीत्, अराद्धाम्, अरौत्सुः । अरौत्सीः, अरौद्धम्, अरौद्ध । अरौत्सम्, अरौत्सव, अरौत्सम् ।

रुन्धे, रुन्धाते, रुन्धते । रूयधे, रूयधिये । रोद्धा । रोत्स्यते । रुन्धाम् । अरुन्धन् । रुन्धीत । रूत्सीष्ट । लिङ्सिचो० (१. २. ११) इति क्त्वम् । अरुद्ध, अरुन्माताम्, अरुन्सन । अरुद्धाः, अरुत्सि, अरुत्सवहि ॥

२. (भिदिर् विदारणे)

भिनत्ति, भिन्त, भिन्दन्ति । भिनत्सि, भिन्यः भिन्य । भिनद्मि, भिन्द्वः, भिन्द्मः । विभेद, विभिदतुः, विभिदुः । विभेदथ । भेत्ता । भेत्यति । भिनत्तु-भन्तात्, भिन्ताम्, भिन्दन्तु । भिन्य । अभिनत्-अभिनद्-अभिन्ताम्, अभिन्दन् । अभिनः, अभिन्तम्, अभिन्त । भिन्द्यात्, भिन्द्याताम्, भिन्द्युः । भिद्यात्, भिद्यास्ताम् । लुङि—अभदत् । अभैत्सीत्, अभैत्साम्, अभैत्सुः । भिन्ते । विभिदे, विभिधे ।

३. (छिदिद् द्वंधीकरणे)

छिनत्ति इत्यादि भिद्वत् “इति अनुदात्तास्वरितेवः ।

४. (खिद दैन्ये, विद विचारणे)

खिन्ते, खिन्दाते, खिन्दते । खिन्से, खिन्दाथे, खिन्ध्वे । खिन्दे, खिन्द्वथे, खिन्द्वमहे । खिन्ताम्, खिन्दाताम्, खिन्द्वताम् खिन्स्व, खिन्दायाम्, खिन्ध्वम् । खिनदै, खिनदायदै, खिनदामदै । अखिन्त, अखिन्दाताम्, अखिन्दत । अखिन्दि । खिन्हीत । चिखिदे । खेत्ता । खिन्ते इत्यादि खिद्वत् । इत्यनुदात्तावनुदात्तेौ

५. (भुज पालनाभ्यवहारयोः)

भुनक्ति, भुङ्क्ते, भुञ्जन्ति । भुनक्ति, भुङ्क्थः, भुङ्क्थ । भुनक्ति, भुञ्जः, भुञ्जः । भुभोज, भुभुजतुः, भुभोजिथ । भोक्ता । भोक्षति । भुनक्तु । अभुनक् । भुञ्ज्यात् । भुञ्ज्यात् । अभोक्षीत्, अभोक्ताम् । भुजोऽनयने (१-३-६६) इति वङ् । भुङ्क्ते, भुञ्जाते । भुङ्क्ते भुञ्जथे, भुङ्ध्वे, भुञ्ज, भुञ्ज्वहे, भुञ्ज्वहे । भुभुजे । भोक्ता, भोक्षते । भुङ्क्ताम् । अभुङ्क्त, अभुञ्जाताम् ।

भुञ्जीत, भुञ्जीयाताम्, भुञ्जीरन् । भुञ्जीष्ट । अभुक्त, अभुञ्जाताम् । लिङासचायाः भनेपदेषु (१.२.११)

६. (हिसि हिंसामाम्)

हिनस्ति, हिंस्तः, हिंसन्ति । हिनस्ति, हिनस्मि । जिहिंस, जिहिंसतुः, जिहिंसिथ । हिंसिता । हिंसिष्यति । हिनस्तु, हिंस्ता, हिंस्ताम्, हिंसन्तु । हिंसि । सतापेऽनुस्वारपरसवर्णौ^१ हिनसानि । अहिनत्, अहिंताम्, अहिंसन् । अहिनत्-अहिनद्-अहिनः, अहिनसम्, अहिंस्व । त्रिपि-तिप्यनस्तेः इति सस्य वः । त्रिपि धा-नोर्या, इति दत्वस्त्वे । हिंस्यात्, हिंस्याताम्, हिंस्युः । हिंस्यात् हिंस्याताम् । अहिंसीत्, अहिंसिष्ट । इत्युदात्त उदात्तेत् ।

अथ तनादिर्गणः

१. (तन् विस्तारे, पणुदाने)

तनोति । ततान्, तेनतुः, तेनुः । तेनिथ, तेनयुः, तेन । ततान-तवन,

तेनिच, तेनिम । तनिता । तनिष्यति । तनोतु—तनुतात्, तनुताम्, तन्वन्तु । तनु, तनवानि । उत्तरच प्रत्ययात्० (६ ४.१०३) इति हेर्लुक् । अतनोत्, अतनुताम्, अतन्वन् । अतनो, अतनुतम् अतनुत । अतनवम् अतन्व—अतनुव । तनुयात्, तनुयाताम्, तनुयु । तनुया, तनु, यातम्, तनुयात । तनुयाम् । तन्यात्, तन्यास्ताम्, तन्यासु । अतनीत्—अतानीत् । तनुते, तन्याते, तन्वते । तनुपे, तन्वाथे, तनुध्वे । तन्वे, तनुवहे, तनुमहे । तेने, तेनाते, तेनिरे । तेनिपे, तेनाथे तेनिध्वे । तनिता । तनिष्यति । तनुताम्, तन्वाताम् तन्वन्ताम् । तनुष्य, तनवै । अतनुत, अतन्वाताम्, अतन्वत । अतनुया । तन्वीत, तन्वीयाताम्, तन्वीरम् । तनिपीष्ट, तनिपीयास्ताम्, तनिपीरम् । अतत—अतनिष्ट, अतथा—अतनिष्ठा, अतनिध्वम् । तनादिभ्यस्तथासो इति पक्षे सिचो लुक् ।

पणु दाने—सनोति—सनुते इत्यादि तनोतिवत् । इत्युदात्तो स्वरितेतो ।

२ (मनु अवबोधने)

मनुते, मेने इत्यादि । इत्युदात्त अनुवात्तेत् ।

३ (डुकृञ् करणे)

करोति, कुरुत कुर्वन्ति । करोपि, कुरुथ, कुरुथ । करोमि, कुरु', कुर्म अत उत्सार्वधातुके इति उकारलोप । चकार, चक्रन्तु, चक्रु । चकर्थ, चक्रधु, चक्र । चकार—चकर, चकृव, चकृम ।

कर्त्ता । करिष्यति ऋद्धनो स्ये इति इट् । करोतु—कुरुतात्, कुरुताम्, कुर्वन्तु । कुरु—कुरुतात्, कुरुतम्, कुरुत । करवाणि, करवाव, करवाम ।

अकरोत्, अकुरुताम्, अकुर्वन् । अकरो, अकुरुतम्, अकुरुत ।

अकरवम्, अकरवाव, अकरवाम । कुर्यात्, कुर्याताम्, कुर्यु । ये चेति नित्य उपकारस्य लोप । क्रियात् क्रियास्ताम्, क्रियासु—रिङ्शायग्लिङ् (७. ४२८) अकार्पात्, अकाष्टोम्, अकापु । अकार्पा अकाष्टम्, अकाष्ट । अकार्पम्, अकार्प्य, अकार्प्य । अकरिष्यत् ।

कुरुते, कुर्याते, कुर्मते । कुरुपे, कुर्वहे, कुर्महे । चक्रे, चक्राते, चक्रिरे । कुरुताम्, कुरुष्व, करवै । अकुरुत । कुर्यात् । कृपीष्ट । अकृत् । इत्यत्र तनादिभ्यस्तथासो इति विकल्पितो लुङ् न भवति ।

अथ क्‌यादिर्गणः

१-३—(डुकीञ् द्रव्यविनिमये, प्रीञ् तर्पणे कान्ती च,
श्रीञ् पाके)

क्रीणाति । क्रीणीते, क्रीणाते, क्रीणते, क्रीणीपे, क्रीणाथे, क्रीणीध्वे ।
क्रीणे, क्रीणीवहे, क्रीणीमहे । क्रिक्तयो परस्मान्नित्यत्वाद्‌न्तरङ्‌गत्वादी
त्यात्पूर्वमन्तादेशात् श्नाभ्यस्तयोराल्लोप ॥

चिक्राय, चिक्रियतु, चिक्रियथ चिक्रेथ, चिक्रियथु चिक्रिय ।
चिक्राय चिक्रय, चिक्रियि, चिक्रियिम । चिक्रिये, चिक्रियाते, चिक्रि-
यिपे, चिक्रियाथे, चिक्रियिध्वे । क्रेता । क्रेष्यते ति ॥

क्रीणातु-क्रीणीतात्, क्रीणीताम्, क्रीणन्तु । क्रीणीहि क्रीणीतात्,
क्रीणीताम्, क्रीणीत । क्रीणानि, क्रीणाव, क्रीणाम । क्रीणीताम्,
क्रीणाताम्, । क्रीणताम् । क्रीणीष्व, क्रीणावहि । अक्रीणात्,
अक्रीणीताम्, अक्रीणा अक्रीणीतम् अक्रीणीत अक्रीणाम,
अक्रीणीव । अक्रीणीत, अक्रीणीथा, अक्रीणाथाम्, अक्रीणीभ्रम ।
अक्रीणि अक्रीणीवहि ।

क्रीणीयात्, क्रीणीयाताम्, क्रीणीया, क्रीणीयाम्, क्रीणीयाव ।
क्रीणीत क्रीणीयाताम्, क्रीणीथा, क्रीणीय, क्रीणीवहि, क्रीणीमहि ।
क्रीयात् क्रीयास्ताम् । क्रेपोष्ट क्रेपोयास्ताम् इत्यादि । अक्रेपीत्,
अक्रेष्टाम्, अक्रेपु । अक्रेपी, । अक्रेष्टम् अक्रेष्ट । अक्रेपम्, अक्रेष्य
अक्रेप्म । अक्रेष्ट, अक्रेपाताम्, अक्रेष्टा अक्रेपि ।

चिक्रीपति—चिक्रीपते । चिक्रीयते । क्रापयति*, अचिक्रपत् ।

श्रीञ् प्रीञ् इत्यादि क्रीणातिवत् । इत्यनुदात्ता उभयतोभाषा ।

४-७ (पूञ् पवने, मूञ् बन्धने, लूञ् छदने, स्तूञ्
आच्छादने)

पुनाति, पुनीत पुनन्ति । पुनासि पुनीथ पुनीथ । पुनामि,
पुनीव पुनीम. ।

पुपाव, पुपुनतु पुपुवु । पुपविथ, पुपवथु, पुपय । पुपाव पुपय
पुपवि, पुपविम । पविता । पविष्यति पविष्यते पुनातु - पुनीतान्,

संशोधनपत्रम्

श्रुत	पक्ति	भगुद	श्रुत
॥	१३	येषा वण्णिता	यस्य वण्णस्य
१५	१	पप	पप
१७	१	वक्	वक्
१७	६	वाक्वरूपम्	वाक्वरूपम्
१७	१५	विरप्तिन	विरप्तिन्
१८	१४	राजान	राजान्
१८	१५	राजान	राजान्
२३	१७	भादेश	भादेश
२५	१६	परस्य	परस्य
३२	१७	वत्सभावात्	वत्सभावात्
३३	३६	कण्डूतिः	कण्डूति
६५	१२	कीर कीर	कीर् कीर्
३६	१	कप् तस	कप् तस्
४२	१५	दीर्घत्पुत	दीर्घत्पुत
४६	८	देवित्वा स	देवित्वा स
४८	४	धत्	धत्
५०	१	निर कीशाम्बी	
		निर कीशाम्बी	
५३	१४	मिप्त	मिप्त.
५४	१४	कुरुवर ^{१०}	कुरुवर ^{१०}
५७	१३	सप्	सप्
५८	२१	अनुकीड	अनुकीड्
५८	२१	अनुकीड त	अनुकीड् त
६२	२८	अनुकर ओ	अनुकर् ओ
६५	२४	अणाम्	अणाम्
६७	१३	कट् य त	कट् य त
६८			

६८	२	हुङ हुण्ड	हुङ हुण्ड
६९	७	दा लट्	दा लट्
६९	७	दा दा तिप्	दा दा तिप्
७०	१	यचि भम् यचि भम्	१।४।१८
७०	१२	सोमप् प्रस्	सोमप् प्रस्
७१	५	क्रियाया	क्रियायाः
७५	२	कृषद्गो	६।१
		कृषद्गो	— ६।१
७६	६	क्रियाया	क्रियाया
७७	३	क्रियाया	क्रियाया
७२	२०	ग्रामम्	ग्रामम्
८०	३	हुक् (समा०)	
		हकरो (इतरे०)	
८०	२३	प्रमुङ्ते	प्रमुङ्ते
८१	१३	दुष्	दुस्
८२	२५	वेदितव्य	वेदितव्य
९३	२३	घान्घर्ष	घान्घर्षः
९६	१०	पञ्चना	पञ्चानां
९६	३१	१५ गोस्त्रिवो०	
		ह्रस्वो० (१ २.५७)	
१०४	२०	कवमली कविमली	
११५	१२	त् ^० पट्	त् ^० पट्
११७	६	बुधुध	बुधुध्
१२०	१७	बुवो	बुवो
१२६	१४	अप्सरस	अप्सरस
१३७	५	सीलूय	सीलूय
१३६	२७	घट्	घट्
१४४	४	उप् पद	उद पद
१४६	७	पच य	पच् य
१४७	२१	तुद ध	तुद ध
१४६	८	कट्	कट्

१४. (ज्या वयाहानी)

जिनाति, जिज्यौ, जिज्यनुः, जिज्युः । जिज्यिथ-जिज्याथ । ज्याता ।
ज्यास्यति-अन्यस्मिन् पूर्ववत् लुङि तु यमरमनमातां मङ् च (७.१२.७३)
इति सगितो । अज्यासीन्, अज्यामिष्टाम् । ग्रहिग्येति संप्रसारणे कृते
दीयः पुनश्च प्यादीनां ह्रस्वः इति ह्रस्वः ॥

१५. (ज्ञा अवबोधने)

जानाति, जानीनः, जानन्ति । ज्ञाहौ, ज्ञाहनुः, ज्ञाहुः, ज्ञाहिथ—
ज्ञायाथ । आशिपि, ज्ञायात्-ज्ञेयात् वाऽन्यस्य मयोगादेः, इति इत्वि-
कल्पः । अज्ञासीन् अज्ञासिष्टाम् । इति प्यादयो ल्वाडयश्च । इत्यनुदात्तौ
उदात्तेर्त्ता ॥

(मन्य विलोडने, अक्ष भोजने, विष विप्रयोगे, मुप स्तेये
पुप पुष्टौ)

मप्याति । मुप्याति, पुप्याति । इति उदात्ता उदात्तेतः ।

१६. ग्रह उपादाने)

गृह्णाति, गृह्णीतः । ग्रहिग्येति सम्प्रसारणम् । गृह्णीते ।

अग्राह, अगृह्णुः, अगृह्णुः । अग्रहिथ, अग्रह्युः । अग्रहे, अग्रहाते,
अग्रह्ये, अग्रह्ण्ये—अग्रह्ये । ग्रहीना—ग्रहीष्यति, ग्रहीष्यते । ग्रहो-
ऽलिति दीर्घः । गृह्णान्, गृह्णास्नाम् । ग्रहासुः । ग्रहीषीष्ट, ग्रहीषीयास्ताम् ।
अग्रहीन्, अग्रहीष्टाम्-अग्रहीष्ट, अग्रहीषाताम् । ग्रह्यन्तेति वृद्धिनिषेधः ।
इत्युदात्तः स्वरितेन ।

चुरादिगणः

पुनीताम् पुनन्तु, पुनै । अपुनात् अपुनीताम्, अपुना, अपुनाम्, अपुनीव । पुनीयात् पुनीया, पुनीयाम् । पूयात्, पूयास्ताम्, पूयासु । अपावीत् ।

पुनीते, पुनाते, पुनते । पुनीषे, पुने । पुपुवे, पुपुराते, पुपुविरे । पुपुविषे, पुपुषे । पुनीताम् । अपुनीताम्, पुनीत । पविषीष्ट ॥ अपविष्ट लृञ्-लुनाति इत्यादि पुनातिवत् । लिटि-तस्तार, तस्तरतु, तस्तरु तस्तरिथ, तस्तरिव । ऋच्छत्यताम् इति गुण ।

स्तरिता स्तरीता चतो वा इत्यलिटोऽो दीर्घविकल्प । स्तरीष्यति, स्तरिष्यति ।

स्तृणातु, स्तृणीहि, स्तृणानि, स्तृणाव । अस्तृणात्, अस्तृणीताम्, अस्तृणा । अस्तृणाम् । स्तृणीयात्, स्तृणीयाताम्, स्तृणीयु । स्तृणीया, स्तृणीयातम् स्तृणीयात् । स्तृणाम्, स्तृणीव, स्तृणीम । स्तीर्यात्, स्तीर्यास्ताम्, स्तीर्यासु, अस्तारीत्, अस्तारिष्टाम्, अस्तारिषु अस्तारी, अस्तारिष्टम् अस्तारिष्य । अस्तारिष्यत्—अस्तारीष्यत् ।

स्तृणीते । तस्तरे, तस्तरिषे, तस्तरिषहे । स्तृणीताम् स्तृणीष्य, स्तृणै । अस्तृणीत अस्तृणाताम् । स्तृणीत् । स्तीर्याष्ट—स्तरिषीष्ट लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु (७ २ ४२) इतीङ्विकल्प, उश्च इति क्त्विम्, इदपक्षे वत् इति दीर्घस्य न लिङि (७ २ ३६) इति निषेध । अस्तीष्ट—अस्तरिष्ट अस्तरिष्ट—लिङ्सिच् इतीङ्व विकल्प, इटि वत् इति वा दीर्घ अनिटि उश्च (१ २ १२) इति क्त्विम् । इत्युदात्ता उभय तोभाषा ।

१३ (क्ष हिंसायाम्, प शालनपूरणयो, ज वयोहानौ, द विदारणे, म हिंसायाम्, ग शब्दे)

श्रूणाति इत्यादि पुनातिवत् । लिटि असयोगाल्लिट इत्यपितो लिट क्त्वे शब्दप्रा हस्यो वा (७ ४ १२) इति द्वस्वपक्षे यगादेश । अन्यदा ऋच्छत्यताम् (७ ४ ११) इति गुण । अपितो लिट क्त्वेन अयुक् किति (७ २ ११) इति प्राप्तस्येखनिषेधस्य क्वादिनियमेन बाध । शशार, शश्रु, शश्रु, शशारत्तु शशरु । शशारिथ, शश्रु, शश्रु, शशरथु, शशर । शशार-शशर, शश्रिव, शशरिव । अन्यत्र स्तृणातिवत् । आशिषि शीर्यात्, शीर्यास्ताम्, शीर्यासु । अशारीत्, अशारिष्टाम् । इटो दीर्घस्य सिचि च परस्मैपदेषु (७ २ ४०) इति निषेध । इत्युदात्ता उदात्तेत ।

१४. (ज्या वयाहानो)

जिनाति, जिज्यौ, जिज्यतुः, जिज्युः । जिज्यिष्य-जिज्याय । ज्याता ।
ज्यास्यति-अन्यस्मिन् पूर्ववत् लुङि तु यमरमनमातां सकृच्च (७.) २. ७३)
इति सगिटो । अज्यासोन, अज्यामिष्टाम् । प्रहिज्येति संप्रसारणे कृते
दीपः पुनरच प्यादोनां द्वयः इति ह्रस्वः ॥

१५. (ज्ञा अवबोधने)

जानाति, जानीत, जानन्ति । जज्ञौ, जज्ञतुः, जज्ञुः, जज्ञिय-
जज्ञाय । आशिपि, ज्ञायान्-ज्ञेयान् वाऽन्यस्य मयोगार्थः, इति इत्थि-
कल्पः । अज्जामीन् अज्ञासिष्टाम् । इति प्यादयो ह्याड्यश्च । इत्यनुदात्तो
उदात्तेर्त्तौ ॥

(मन्य विलोडने, अन्न भोजने, विष विप्रयोगे, मुष स्तेपे
पुष पुष्टौ)

मप्नाति । मुप्नाति, पुष्णानि । इति उदात्ता उदात्तेः ।

१६. ग्रह उपादाने)

गृह्णाति, गृह्णीतः । प्रहिज्येति मन्प्रसारणम् । गृह्णीते ।

जग्राह, जगृदतुः, जगृदुः । जग्रहिष्य, जगृधुः । जगृहे, जगृहाने,
जगृह्ये, जगृहिद्वे—जगृहिष्ये । प्रहीता—प्रहीष्यति, प्रहीष्यते । प्रहो-
इतिटि दीर्घः । गृह्णान्, गृह्णाम्नाम् । गृह्णामुः । प्रहीपीष्ट, प्रहीपीषाम्नाम् ।
अप्रहीन्, अप्रहीष्टाम्-अप्रहीष्ट, अप्रहीषाताम् । ह्यन्तेति वृद्धिनिषेधः ।
इत्युदात्तः स्वरितेन ।

चुरादिगणः

१. (चुर स्तेपे)

चोरयति । चिच्यचेति (१. ३. ७४) आत्मनेपदम् । चोरयते । चोर-
याचकार चोरयां चक्रे । चोरयिता । चोरयिष्यति-चोरयिष्यते ॥

चोर्यान्-चोरयिषीष्ट । अचूचुरन्-इत्युदात्त उदात्तेन ।

२. (कथ वाक्यप्रवचने)

कथयति । अकथयन् । कथयांचकार । अदन्तोऽयम् ॥

पुनीताम् पुनन्तु, पुनै । अपुनात् अपुनोताम्, अपुना, अपुनाम्
अपुनोव । पुनीयात् पुनीया, पुनीयाम् । पूयात्, पूयास्ताम्, पूयासु ।
अपावीत् ।

पुनीते, पुनाते, पुनते । पुनीये, पुने । पुपुवे, पुपुवाते, पुपुविरे ।
पुपुविपे, पुपुपे । पुनोताम् । अपुनीताम्, पुनीत । पविपीष्ट ॥ अपविष्ट
लुङ्-लुनाति इत्यादि पुनातिवत् । लिटि तस्तार, तस्तरतु, तस्तरु
तस्तरिय, तस्तरिष । ऋच्छत्यताम् इति गुण ।

स्तरिता स्तरीता वृत्तो वा इत्यलिटो दीर्घविकल्पः । स्तरीप्यति,
स्तरिप्यति ।

स्तृणात्, स्तृणीहि, स्तृणानि, स्तृणाव । अस्तृणात्, अस्तृणीताम्,
अस्तृणा । अस्तृणाम् । स्तृणीयात्, स्तृणीयाताम्, स्तृणीयु । स्तृणीया,
स्तृणीयातम् स्तृणीयात् । स्तृणाम्, स्तृणीव, स्तृणीम । स्तीर्यात्, स्तीर्या-
स्ताम्, स्तीर्यासु, अस्तारीम्, अस्तारिष्टाम्, अस्तारिषु अस्तारी अस्ता
रिष्टम् अस्तारिष्य । अस्तारिष्यत्—अस्तारीप्यत् ।

स्तृणीते । तस्तरे, तस्तरिपे, तस्तरिष्वहे । स्तृणीताम् स्तृणीष्व,
स्तृणै । अस्तृणीत अस्तृणाताम् । स्तृणीत् । स्तीर्षाष्ट—स्तरिपीष्ट
लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु (७ २ ४२) इतीङ्विकल्पः, उश्च इति क्तिन्म्,
इदपक्षे वृत् इति दीर्घस्य न लिङि (७ २ ३६) इति निषेधः । अस्तीर्ष-
अस्तरिष्ट—अस्तरिष्ट—लिङ्सिच्वा इतीङ् विकल्पः, इटि वृत् इति वा
दीर्घः, अनिटि उश्च (१ २ १२) इति क्तिन्म् । इत्युदात्ता उभय
तोभावाः ।

१३ (शृ हिंसायाम्, प बालनपूरणयो, ज वयोहानौ, द
विदारणे, म हिंसायाम्, न शब्दे)

शृणाति इत्यादि पुनातिवत् । लिटि अस्ययोगाल्लिट इत्यपितो लिट
क्तिन्ने शृद्प्रा द्वयो वा (७ ४ १२) इति ह्रस्वपक्षे यगादेशः । अन्यदा
ऋच्छत्यताम् (७ ४ ११) इति गुणः । अपितो लिट क्तिन्नेन श्रयुक्त
किति (७ २ ११) इति प्राप्तस्येहिनपेक्षस्य क्वादिनियमेन नाथ । शशार,
शश्रु, शश्रु, शशरतु शशरु । शशरिय, शश्रु, शश्रु, शशरथु,
शशर । शशार-शशर, शश्रिव, शशरिन् । अन्यत्र स्तृणातिवत् । आशिपि
शीर्यात्, शीर्यास्ताम्, शीर्यासु । अशारीत्, अशारिष्टाम् । इदो दीर्घस्य
सिचि च परस्मैपदेषु (७ २ ४०) इति निषेधः । इत्युदात्ता उदात्ते ।

१४. (ज्या वयाहानो)

जिनाति, जिज्यौ, जिज्यतुः, जिज्युः । जिज्यिथ-जिज्याथ । ज्याता । ज्यास्त्रति-अन्यत्सत्रं पूर्ववत् लुङि तु यमरमनमातां सकृ च (७.) ७३) इति सगिटो । अज्यासीत्, अज्यामिष्टाम् । प्रहिज्येति सप्रसारणे कृते दीपः पुनश्च प्यादीनां ह्रस्वः इति ह्रस्वः ॥

१५. (ज्ञा अवबोधने)

जानाति, जानीत, जानन्ति । जज्ञौ, जज्ञतुः, जज्ञुः, जज्ञिथ—जज्ञाथ । आशिपि, ज्ञायात्-ज्ञेयात् वाऽन्यस्य मयोगादेः, इति इत्ववि-कल्प । अज्ञासीत् अज्ञासिष्टाम् । इति प्यादयो ह्यादयरच । इत्यनुदात्तो उदात्तेतो ॥

(मन्य विलोडने, अश भोजने, विष विप्रयोगे, मुष स्तेये पुप पुष्टौ)

मप्नाति । मुप्नाति, पुप्णाति । इति उदात्ता उदात्तेतः ।

१६. ग्रह उपादाने)

गृणाति, गृहीतः । प्रहिज्येति सम्प्रसारणम् । गृहीते ।

जग्राह, जगृदतुः, जगृदुः । जग्रहिथ, जगृदथुः । जगृहे, जगृहाते, जगृह्ये, जगृहिद्वे—जगृहिध्वे । प्रहीता—प्रहीप्यति, प्रहीप्यते । प्रहो-इतिटि दीर्घः । गृह्यान्, गृह्याम्नाम् । गृह्यासुः । प्रहीषीष्ट, प्रहीषीष्याम्नाम् । अग्रहीत्, अग्रहीष्टाम्-अग्रहीष्ट, अग्रहीषाताम् । ह्र्यन्तेति वृद्धिनिषेधः । इत्युदात्तः स्वरितेन् ।

चुरादिगणः

१. (चुर स्तेये)

चोरयति । चिच्यमेति (१. ३. ७४) आत्मनेपदम् । चोरयते । चोर-याचकार चोरयां चक्रे । चोरयिता । चोरयिष्यति-चोरयिष्यते ॥

चोर्यान्-चोरयिषीष्ट । अचूचुरन्-इत्युदात्त उदात्तेन ।

२. (कथ वाक्यप्रचन्दे)

कथयति । अकथयन् । कथयांचकार । अकथोऽयम् ॥

संशोधनपत्रम्

श्रुत पक्ति	अश्रुत	श्रुत
८ १३ वेपा वण्णा	यस्य वण्णस्य	
१५ १ पय	पय	
१७ १ वक्	वक्	
१७ ६ शब्दरूपम्	शब्दरूपम्	
१७ १५ विरप्तिन	विरप्तिन्	
१८ १४ राजान	राजान्	
१८ १५ राजान	राजान्	
२३ १७ आदेश	आदेशः	
२५ १६ परस्पर	परस्पर	
३२ १७ वत्त्वभावात्	वत्त्वभावात्	
३३ ३६ कण्डूतिः	कण्डूतिः	
६५ १२ कीर् कीर्	कीर् कीर्	
३६ १ रुध् तस्	रुध् तस्	
४२ १५ दीर्घप्लुत	दीर्घप्लुत	
४६ ८ देवित्वा स	देवित्वा स	
४८ ४ अल	अल्	
५० १ निर कौशाम्बी		

निर कौशाम्बी

५३ १४ भिन्नः	भिन्नः	
५४ १४ कुरुवर ^{१०}	कुरुवर ^{१०}	
५७ १३ शप्	शप्	
५८ २१ अनुकीड	अनुकीड्	
५८ २१ अनुकीड त	अनुकीड् त	
६२ २८ अनुकर गो	अनुकर गो	
६५ २४ अणाम्	अणाम्	
६७ १३ कर् अ त	कर् अ त	
६८ १ हुड	हुड्	
६८ १ नुम् ड हुण्ड	नुम् ड हुण्ड	

६८ २ हुड हुण्ड	हुड् हुण्ड	
६९ ७ दा लट	दा लट	
६९ ७ दा दा तिप्	दा दा तिप्	
७० १ यचि भम् यचि भम्	१।५।१८	
७० १२ सोमप् भस्	सोमप् भस्	
७१ ५ क्रियाया	क्रियायाः	
७५ २ कृधदुहो ६।१	कृधदुहो.—६।२	
७६ ६ क्रियाया	क्रियायाः	
७७ ३ क्रियाया	क्रियायाः	
७२ २० ग्रामम्	ग्रामम्	
८० ३ हृक् (समा०)	हृकरी (इतरे०)	
८० २३ प्रयुङते	प्रयुङ्ते	
८१ १३ दुष	दुस्	
८२ २५ वेदितव्य	वेदितव्यः	
९३ २३ धान्ययं.	धान्ययंः	
९६ १० पञ्चना	पञ्चानां	
९६ ३१ १५ गोस्त्रियो०	ह्रस्वो० (१.२.४७)	

१०४ २० रुक्मणी रुक्मणी

११५ १२ स^१ पत् स^१ पत्

११७ ६ बुभुक्ष बुभुक्ष.

१२० १७ बुबो बुबो

१२६ १४ अप्तरस अप्तरस

१३७ ५ लोबूय लोबूय

१३९ २७ अट् अट्

१४४ ४ उप् पद उद पद

१४६ ७ पच य पच य

१४७ २१ तुद अ तुद अ

१४९ ८ कर् कर्

१४६	६ उ तस । कुर	उतस कुर	२७२	६ निदश	निदश
१४७	१५ क काक	क क । क	२७६	१२ डट	डट
१६०	७ शत	शते	२७८	अश	अश
१६०	८ शने क्रिया ।	शेत ५ । १	२७९	बहव	बहव
१७३	१४ रुघ	रुघ	२८६	३ द्राघी	दाघी
१७६	२२ सावदितान	स । वदितान्	३३०	२४ माता मु पिता मु	
१७६	२३ प्रतिभू	प्रतिभू		मातृ मु पितृ मु	
१८०	११ यस्य सो	यस्य स	३४०	१४ अवि	अवि
१८७	१० विद्य	वेद्य	३४७	१६ आदेशो	आदेशो
१९१	२२ माट	माट	३३७	२५ हिरण्य	हिरण्य
१९७	३ माग	माग	३४५	२५ कै गो	कै ग
१९७	११ दुवम	दुवम्	३७०	२० परत	परत
१९७	१५ सव	साधन सर्व	३७६	४ तस्य	तस्य
१९८	२६ देवदत्त	देवदत्त	३७६	१७ ईन इम	इन् इय्
१९८	२७ देवदत्त	देवदत्त	३७८	६ एम एम	राम एम
२००	१ भ मवेय	भि मवेय	२८३	२० अग	अग
२००	६ लिङ्गोटा	लिङ्गोटी	३८५	गुप्तद	गुप्तद
२०२	१३ एषावहि	एषावहै	३८६	८ प ^३ श्री।पा प-पा ^३ श्रीपापा	
२०२	१३ एषामहि	एषामहै	३८६	१६ ३-प्रातो ६४-वृद्धिरेचि	
२१०	७ पेषिष	पेषिष	३७६	२६ ४-द्विब० स्थानन्तरतम	
२१०	११ पच ईट्	पच् ईट्	३८८	२४ मृस्त	मुप्त
२१०	२२ वेदिम	वेदिम	३९२	१७ गतु और धार और	
२१२	८ संहि	सेह	३९३	६ परतो	परतो
२१२	२० ओ	ओ	३९४	१७ पयानो	पयानो
२१६	१३ स्त्रो	स्त्रो	३९५	१८ गो ओ	गो ओ
२२३	२६ कुमारीप	कुमारीपु	३९३	१४ सिचि	सिचि
२३३	२८ र्गणी	र्गनी	४०६	१३ वलोद	वलादे
२५७	८ अस्माकीन	आस्माकीन	५०६	हस्वस	महस्व
२५७	११ अस्माकीन	आस्माकीन	४०८	११ ईत्स	ईत्स्
२५९	२७ प्राहृतनम्	प्राहृतनम्	४०८	१६ बभ्रस्ज	बभ्रस्ज
२६२	तवगीयम	तवर्गीयम	४०६	६ ओ	ओ सन् ।

४११	२ त्स्मत्	त्स्मत्	४८१	४ सश्च	स च
४१२	२० सस्मथ	सस्मथे	४८२	१ शृष्	शृष्
४१३	२५ ऋ	ऋ	४८६	१८ अदस्	अद
४१३	२८ व्यधि	व्यधि	४९७	३१ जिह्वाभल	जिह्वाभल
४१४	१ ऋयल्	ऋयल्	४९४	१३ वण	वण
४२०	१६ सोत्रत्व	सोत्रत्व	४९८	२३ सपिस्	सपिस्
४२०	१७ विम्वतो	विम्वतो	५००	२६ पुन्ना	पुन्ना
४२०	२२ अष्टन्	अष्टन्	५०५	७ बह्मा	बह्मा
४२३	११ वादेशो	वादेशो	५०८	२३ स्वरो न	स्वरो
४२६	१४ परतो	परतो	५१०	१७ गवः	गवः
४३०	१० दीवार	दीवार	५११	२० खी	खी
४३२	४ कृयीश्च	कृयीश्च	५१२	८ पन्था	पन्थाः
४४४	४ उक्	उक्	५१२	११ अष्टा । अष्टा	अष्टो । अष्टो
४३६	१ एल	एलि	५१३	२२ अम	अम्
४३६	१६ हाप्	हाप् इ लुङ्	५१३	३६ इदम्	इदम्
४४१	१२ खजणा	खजणा	५१४	१० विडवे	विडवे
४४३	१४ उरुण्	उरुण्	५१५	१६ वयवे	वयवे
४४७	५ आम्वाथं	आम्वाथं	५१५	१७ भय	भय
४५३	१४ य	य	५१६	२० त्यमेव	त्यमेव
४५३	२५ प	प	५१७	७ यङ्लुङन्तस्य	यङ्लुङन्तस्य
४५५	७ पस्तु	पस्तु	५१७	९ बोभमः	बोभूमः
४६४	२८ आय् च	आय् च	५१७	२० अवोभताम्	अवोभूताम्
४६६	२२ इयति	इयति	५२१	१५ अत्रपि	अत्रपिष्ट
४६६	२३ पिपि	पिपि	५२३	२३ वत्तते	वत्तते
४७१	१० चरीकर्ती	चार्कती			

नोट— अष्टाध्यायी-प्रकाशिका में संस्कृत होने के कारण कुछ टाइप छापने के समय टूट गये अधिकतर क, द्र, वत्तते, गम भु तम् का क, द्र, वत्तते, यम स तस रह गया । इसी प्रकार की अनुसंधान रह गई थी । हमन इनको शुद्ध कर दिया है । और जहाँ कही और अनुदि भासूम पडे वहाँ उसके समीपवर्ती शब्दों को देखना चाहिये और तुलना करके शुद्ध कर लेना चाहिये ।

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥